श्रीहरिः

महर्षि-कृष्णद्वैपायनवेदव्यासरचित

महाभारत

भीष्मपर्व

मुरादाबादनिवासि-सनातनधर्मपताका सम्पादक

(ऋषिकुमार) रामस्वरूपशर्माकृत

हिन्दी भाषानुवाद सहित

THE MAHABHARAT

BHISHM PARV

With Hindi Translation

by

(Rishikumar)

Ramswroop Sharma

सनातनधर्म यन्त्रालय

मुरादाबाद में छपा.

प्रिंटर और पब्लिशर पण्डित रामस्वरूप शर्मा

१९१७

श्रीहरिः

महाभारत—भीष्मपर्वकी विषयसूची

जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठाङ्क
९०	आर्श्यशृंगिसे इरावान्‌का वध	५७६
९१	घटोत्कचका रणरङ्ग	५८६
९२	घटोत्कच तथा दुर्योधनका युद्ध	५९३
९३	घटोत्कच तथा दुर्योधनका युद्ध	५९६
९४	भीमसेनके सामने द्रोण, और घटोत्कचकी माया	६०५
९५	घटोत्कच भगदत्तयुद्ध	६११
९६	रणभूमिका दृश्य	६२१
	(आठवें दिवसकी रात्रि)	
९७	दुर्योधनका शोक	६३३
९८	भीष्मके वचन	६३९
	(नवमदिवस)	
९९	व्यूहरचना, उत्पातदर्शन	६४६
१००	अभिमन्युका घमसान मचाना	६५०
१०१	अलम्बुषका भागना, द्रोण अर्जुनसमागम	६५७
१०२	हाथियोंका नाश	६६५
१०३	भीष्म तथा धृष्टद्युम्नका युद्ध	६७०
१०४	भीष्म तथा सात्यकिका युद्ध	६७७
१०५	शल्य तथा युधिष्ठिरका युद्ध	६८२
१०६	अजित भीष्म	६८७
	(नवमदिवसकी रात्रि)	
१०७	भीष्मकी उदारता, अपनी मृत्युका निमित्त बताना	६९८
	(दशमदिवस)	
१०८	भीष्मबधकी योजना, भीष्मशिखंडिमिलाप	७१४
१०९	भीष्म तथा अर्जुनका युद्ध	७२२
११०	भीष्मका संरक्षण	७२७
१११	कौरवोंका रोकना, द्वन्द्वयुद्ध	७३३

भीष्मवधपर्वसमाप्त

भीष्मपर्वकी विषयसूची समाप्त

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

भीष्मपर्व

जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच । कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः । पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥१॥ वैशम्पायन उवाच । यथा युयुधिरे वीरा कुरुपाण्डवसोमकाः । कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु त्वं पृथिवीपते॥२॥तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सह सोमकाः । कौरवाः समवर्त्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः । आशंसन्तो जयं युद्धे बलेनाभिमुखा रणे ॥ ४ ॥ अभियाय च दुर्धर्षां धार्त्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् । प्राङ्मुखाः

नारायण, नरोंमें उत्तम नर तथा वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको प्रणाम करके, फिर इतिहास ग्रन्थोंके वर्णनका आरम्भ करे ॥ * ॥ जनमेजयने कहा, कि–हे मुने ! कुरु, पाण्डव, सोमक तथा अनेकों देशोंसे आये हुए बड़े२ महात्मा वीर राजे किस प्रकार लड़े थे, यह मुझे सुनाइये ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–हे भूपते ! वीर कौरव, पांडव और सोमक, तपोभूमि कुरुक्षेत्रमें किस प्रकार लड़े थे, उसको तुम सुनो ॥ २ ॥ महाबली पांडवोंने सोमकों के साथ कुरुक्षेत्रमें आकर विजयकी इच्छासे कौरवोंके साथ कैसा वर्त्ताव किया था, उसको भी सुनो ॥ ३ ॥ विधिविधानसे वेदको पढ़े हुए वह सब चित्तसे युद्ध करना चाहते थे और उनको युद्धमें जयकी बड़ी भारी आशा थी इसकारण उन्होंने रणभूमिमें जाकर सेनाके साथ युद्धका आरंभ करदिया॥४॥दुर्योधनकी किसीसे न दबने वाली सेनाके पास आकर रणके पश्चिमभागमें कितनों ही ने

दक्षिणे भागे न्यविशन्त ससैनिकाः ॥५॥ समन्तपञ्चकाद्वाह्यं शिविराणि सहस्रशः । कारयामास विधिवत् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥६॥ शून्या च पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता । निरश्वपुरुषेवासीद् रथकुञ्जरवर्जिता ॥ ७ ॥ यावत्तपति सूर्य्यो हि जम्बूद्वीपस्य मण्डलम् । तावदेव समायातं बलं पार्थिवसत्तम ॥ ८ ॥ एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम् । पर्य्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान् वनानि च ॥ ६ ॥ तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ । आदिदेश सवाहानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥ १० ॥ शय्याश्च विविधास्तात तेषां रात्रौ युधिष्ठिरः । एवं वेदी वेदितव्यः पाण्डवेयोऽयमित्युत ॥ ११ ॥ अभिज्ञानानि सर्वेषां संज्ञाश्चाभर-

---

अपनी सेनाके साथ पूर्वकी ओरको मुख करके पड़ाव डालदिया ५ कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिरने समन्तपञ्चक नामवाले कुरुक्षेत्रके मैदानमें आकर बाहरकी ओर सिलसिलेवार हजारों तंबू खड़े करदिये॥६॥ घोड़े, पैदल, रथ और हाथियोंसे रहित हुई तथा जिसपर बालक और वृद्ध ही शेष रह गये हैं ऐसी पृथिवी सूनी मालूम होने लगी ७ हे श्रेष्ठ-राजन् ! जम्बूद्वीपमें जितने मण्डल पर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं उस भूमण्डलमेंसे अनेकों सेनाओंने आकर कुरुक्षेत्रमें पड़ाव डालदिये ॥ ८ ॥ और तहां आकर वह सब वर्ण देश, नदी, पहाड़ तथा वन आदिके अनेकों योजन लम्बे स्थानको घेरकर एक स्थानपर ठहरगये ॥ ६ ॥ हे नरेन्द्र ! राजा युधिष्ठिरने वहां आये हुए उन सब पुरुषोंके लिये तथा कैवर्त, म्लेच्छ आन्ध्र आदि प्रान्तोंमें रहनेवाले बाहरके दूसरे लोगोंके लिये भी, जिनसे उत्तम और हो ही नहीं सकते ऐसे उत्तम प्रकारके भक्ष्य भोज्य मँगवाये थे ॥ १० ॥ हे तात ! उस ही रातमें राजा युधिष्ठिरने उनके लिये अनेकों प्रकारकी शय्या आदि जिस किसी वस्तुकी भी आवश्यकता हुई वह मँगवादी, पांडुनन्दन युधिष्ठिर अवसरको समझते थे ॥ ११ ॥ युद्धका समय आते ही युधिष्ठिरने, अपने

णानिच । योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा ध्वजाग्रं पार्थस्य धार्त्तराष्ट्रो महामनाः । सह सर्वैर्महीपालैः प्रत्यव्यूहत पांडवम् ॥ १३ ॥ पांडुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि। मध्ये नागसहस्रस्य भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा दुर्योधनं हृष्टाः पाञ्चाला युद्धनन्दिनः । दध्मुः प्रीता महाशंखान् भेर्यश्च मधुरस्वनाः ॥ १५ ॥ ततः प्रहृष्टां मां सेनामभिप्रेक्ष्याथ पाण्डवाः। बभूवुर्हृष्टमनसो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥ ततो हर्षं समागम्य वासुदेवधनञ्जयौ । दध्मतुः पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ शंखौ रथे स्थितौ॥ १७ ॥ पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं देवदत्तस्य चोभयोः । श्रुत्वा तु निनदं योधाः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ १८ ॥ यथा सिंहस्य नदतः स्वनं श्रुत्वेतरे मृगाः ॥ त्रसेयुर्न्निनदं श्रुत्वा तथासीदत तद्बलम्

योधा कहीं भूलमें अपने ही योधाओंको न मारने काटने लगें, इसलिये अपनी पहिचानके चिन्ह, नाम और गहनें बांट दिये॥ १२॥ अर्जुनकी ध्वजाके अग्रभागको देखकर, जिसके शिर पर सफेद छत्र चलरहा था ऐसे, हजारों हाथी और अपने सौ भाइयोंके बीचमें चलनेवाले बड़े हौंसलेवाले दुर्योधनने, सब राज्यके राजाओंको साथमें लेकर पाण्डवोंके सामने अपनी सेनाकी रचना करना आरम्भ कर दी ॥ १३-१४ ॥ दूसरी ओर दुर्योधनको देखकर युद्धसे प्रसन्न होनेवाले पंचालोंने बड़ा आनन्द माना और मौजमें आकर मधुर स्वर वाले बड़े २ शङ्ख और भेरियोंको बजाने लगे१५ तदनन्तर उस प्रसन्न होती हुई सेनाको देखकर पाण्डव और वीर श्रीकृष्ण भी मनमें बड़े प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ फिर पुरुषोंमें सिंहसमान तथा एक ही रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने बड़े आनन्दके साथ अपने दिव्य शङ्खोंको बजाना आरम्भ कर दिया ॥ १७ ॥ उन पाञ्चजन्य और देवदत्त नामवाले दोनों शङ्खों के शब्दको सुनकर कौरवोंके योधाओंका मल मूत्र निकलपड़ा१८ जैसे सिंहकी दहाड़को सुनकर दूसरे पशु डरजाते हैं तैसे ही सब

॥ १६ ॥ उद्‌तिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन। अस्तं गत इवा-दित्ये सैन्येन सहसा हृतः ॥ २० ॥ ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांस-शोणितवृष्टिमान्। दिव्यांस्तान्यवृष्टिमान् तान्यद्भुतमिवाभवत्॥२१॥ वायुस्ततः प्रादुरभून् नीचैः शर्करकर्षणः। विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥ उभे सैन्ये च राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम्। कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥ २३ ॥ तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु सङ्गमः। युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥ २४ ॥ शून्यासीत् पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता। तेन सेनासमूहेन समानीतेन कौरवैः ॥ २५ ॥ ततस्ते समयं चक्रुः कुरु-पाण्डवसोमकाः। धर्मान् संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ ॥२६॥ निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात् प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ यथापरं यथा-

---

योधा उन शङ्खोंकी ध्वनिको सुनकर डर गये ॥ १९॥ उस समय भूमिपरसे इतनी अधिक धूलि उड़ने लगी कि—कुछ दीखता ही नहीं था, मानो सूर्य छिप गया हो इसप्रकार वह सेनाकी गरदसे एक साथ ढकगया ॥ २०॥ चारों ओर सब सेनाओंके ऊपर मेघ मांस और रुधिरकी वर्षा करने लगा, यह देखकर सबोंको अचरजसा मालूम हुआ ॥ २१ ॥ फिर कङ्करोंकी वर्षा करने वाला वायु चलने लगा, उससे सैंकड़ों और लाखों योधा घायल होगये॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय कुरुक्षेत्रमें सावधान होकर युद्ध करनेके लिये खड़ी हुई दोनों सेनायें खलभलाये हुए दो समुद्रों की समान मालूम होती थीं ॥२३॥ वास्तवमें उस समय उन दोनों सेनाओंका आपसमें भिड़ना प्रलयकालके दो समुद्रोंकी समान अद्भुत दीखता था ॥२४॥ घोड़े, पैदल,रथ और हाथियोंसे रहित हुई तथा बालक और बूढ़े ही जिसमें शेष रह गये हैं ऐसी सकल पृथिवी उससमय सूनीसी मालूम होती थी ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार दोनों सेनायें आकर जब आमने सामने खड़ी होगयीं, उस समय पाण्डव और सोमकोंने कौरवोंके साथ युद्ध करनेकी

योगं नच स्याच्छलनं पुनः ॥ २७ ॥ वाचा युद्धे प्रवृत्तानां वाचैव-प्रतियोधनम् । निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन॥२८॥ रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः । अश्वेनाश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥ २९ ॥ यथायोग्यं यथाकामं यथोत्साहं यथा बलम् । समाभाष्य प्रहर्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥ ३० ॥ एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा । क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन॥३१॥ न सूतेषु न धुर्येषु नच शस्त्रोप नायिषु । न भेरीशंखवादेषु प्रहर्तव्यं कथञ्चन ॥ ३२ ॥ एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः । विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः पर-

ठहरायी और हे भरतर्षभ ! किस न्यायके अनुसार धर्मसे युद्ध कियाजाय इसका भी उन्होंने यथोचित निश्चय कर लिया, कि–जब युद्ध बन्द हुआ करे तब सब पहिलेकी समान ही प्रीतिके साथ रहा करैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ समान बलवाला समान बलवालेके साथ ही युद्ध करै और डरपोक डरपोकके साथ लड़ै, वाणीसे युद्ध करने वालोंके साथ वाणीसे युद्ध करने वाले ही लड़ैं और जो सेनामेंसे बाहर निकल गये हों उनके ऊपर कभी हाथ न छोड़ना॥२८॥ रथीको रथीके साथ, हाथीके सवारको हाथी पर चढ़े हुएके साथ, घुड़सवारको घुड़सवारके साथ और हे भारत ! पैदल को पैदलके साथ ही युद्ध करना होगा ॥ २९ ॥ इच्छाके अनुसार और उत्साहके अनुसार अपने योग्य हो उसको सामने पुकार कर युद्ध करना चाहिये विश्वासी और घबड़ाये हुएके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये॥३०॥दूसरेके साथ युद्ध करने वाला, शरणागत, पीठ फेरनेवाला, शस्त्रहीन और जिसका कवच टूटगया हो उसके ऊपर कभी हथियार नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ३१॥ सारथी, सहीस, शस्त्र लाकर देनेवाला, बिगुल बजाने वाला तथा शंख बजानेवाला, इनके ऊपर भी किसीको कभी प्रहार नहीं करना चाहिये॥३२॥ इसप्रकार धर्मयुद्धका नियम बांधकैर कौरव, पांडव और सोमक आदि सब

स्परम् ॥ ३३ ॥ निविश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः । हृष्टरूपाः सुमनसो बभूवुः सहसैनिकाः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि सैन्यशिक्षणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः पूर्वापरे सैन्ये समीक्ष्य भगवानृषिः । सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः । प्रत्यक्षदर्शी भगवान् भूतभव्यभविष्यवित् ॥ २ ॥ वैचित्रवीर्यं राजानं स रहस्यं ब्रवीदिदम् । शोचन्तमार्त्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच । राजन् परीतकालास्ते पुत्राश्चान्ये च पार्थिवाः । ते हिंसन्तीव संग्रामे समासाद्येतरेतरम् ॥ ४ ॥ तेषु कालपरीतेषु विनश्यत्स्वेव भारत ।

एक दूसरेके मुखकी ओरको देखतेहुए बड़े अचरजमें होगये ३३ इसप्रकार अपनी २ सेनामें सूचना देकर पुरुषोंमें सिंहसमान वह महात्मा अपने योधाओं सहित बड़े आनन्दको प्राप्त हुए, यह बात उनके मुखोंको देखनेसे प्रतीत होती थी ॥ ३४ ॥ * ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें युद्ध करनेके लिये तयार होकर खड़ी हुई दोनों ओर की सेनाओंको देखकर सकल वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सत्यवतीके पुत्र, भरतवंशके पितामह, संग्राममें होनेवाले युद्धको प्रत्यक्ष देखनेवाले और भूत, भविष्यत् तथा वर्त्तमानके ज्ञाता भगवान् व्यासमुनि ने, शोक करके पीड़ा पाते तथा अपने पुत्रोंके अन्यायका विचार करतेहुए, विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्रके पास आकर एकान्तमें उस से इसप्रकार कहा ॥ १–३ ॥ व्यासजी बोले, कि—हे राजन् ! तेरे पुत्रोंका तथा और सब राजाओंका यह विपरीत समय आगया है और यह सब एक दूसरेके सामने खड़े होकर आपसका संहार करडालेंगे ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी ! इनका समय आपहुंचा है, इस

कालपर्य्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ५ ॥ यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेतान् विशाम्पते । चक्षुर्ददानि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम । युद्धमेतत्त्वशेषेण श्रृणुयां तव तेजसा ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नेच्छति द्रष्टुं संग्रामं श्रोतुमिच्छति । वराणामीश्वरो व्यासः सञ्जयाय वरं ददौ ॥ ८ ॥ एष ते सञ्जयो राजन् युद्धमेतद्वदिष्यति । एतस्य सर्वसंग्रामे न परोक्षं भविष्यति ॥ ९ ॥ चक्षुषा संजयो राजन् दिव्येनैव समन्वितः । कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति ॥ १० ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा दिवा वा यदि वा निशि । मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति संजयः ॥ ११ ॥ नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं

लिये इन सबोंका अवश्य ही नाश होगा, समय को पलटा हुआ जानकर तू अपने मनको शोकमें न डुबा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! यदि तू इनको संग्राममें लड़ते हुए देखना चाहता हो तो हे पुत्र ! मैं तुझे इनका युद्ध देखनेके लिये नेत्र दूँ ? और तू सुखसे संग्रामको देख ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ ! अपने संबन्धी मारे जाते हों, इस दृश्यको देखना मुझे अच्छा नहीं लगता, परन्तु आपकी कृपा हो तो मैं युद्धका सब समाचार सुनना चाहता हूं ॥ ७ ॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि–राजा जनमेजय ! युद्धको प्रत्यक्ष देखना तो नहीं परन्तु सुनना चाहते हुए धृतराष्ट्रके लिये, वरदान देने वालोंमें श्रेष्ठ व्यासजीने सञ्जयको वरदान दिया ॥ ८ ॥ और धृतराष्ट्रसे कहा, कि–हे राजन् ! रणभूमिमें जो युद्ध होगा उसको यह सञ्जय नित्य तुम्हें सुनावेगा और सब संग्राममें कोई बात ऐसी नहीं होगी, जिसको यह सञ्जय प्रत्यक्ष न देख सके ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार दिव्यदृष्टिको प्राप्त हुआ यह सञ्जय रणमें जो कुछ घटना होगी वह सब तुझे सुना देगा और उसको सर्वज्ञपना प्राप्त होगा ॥ १० ॥ प्रत्यक्ष वा पीछे रातमें वा दिनमें तथा मनमें विचारी हुई बातको भी सञ्जय जान सकेगा ॥ ११ ॥ इसको शस्त्र काट नहीं सकेंगे, परिश्रम

दाक्ष्यिते ध्रुवः । गवाल्गणिरयं जीवन्युद्धदस्माद्विमोक्ष्यति ॥१२॥ अहन्तु कीर्त्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ । पाण्डवानाञ्च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुच ॥ १३ ॥ दिष्टमेतन्नरव्याघ्र नाभिशोचितु-मर्हसि । न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा स भगवान् कुरूणां प्रपितामहः । पुनरेव महाभागो धृतराष्ट्रमुवाच ह ॥ १५ ॥ इह युद्धे महाराज भविष्यति महान् क्षयः । तथेह च निमित्तानि भयदान्युपलक्षये।१६। श्येना गृध्राश्च काकाश्च कंकाश्च सहिता बकैः । सम्पतन्ति नगाग्रेषु समवायांश्च कुर्वते ॥ १७ ॥ अभ्यग्रञ्च प्रपश्यन्ति युद्धमानन्दिनो द्विजाः । क्रव्यादा भक्षयिष्यन्ति मांसानि गजवाजिनाम् ॥ १८ ॥ निर्दयश्चाभिवासन्तो भैरवा भयवेदिनः । कङ्काः प्रयान्ति मध्येन

इसको कष्ट नहीं दे सकेगा. यह गावल्गणि जीता हुआ ही युद्धमें से छूट आवेगा ॥ १२ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! मैं इन सब कौरव और पाण्डवोंकी कीर्तिको फैलाऊंगा, तू शोक न कर ॥ १३ ॥ हे नरेन्द्र ! जो अवश्य ही होनी है उसके लिये शोक करना तुझे उचित नहीं है और यह होनी किसी की टाली टल भी नहीं सकती, और हार जीतके विषयमें तो इतना ही समझलेना चाहिये कि-जिधर धर्म होता है, उधर ही विजय हुआ करती है १४ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-कौरवोंके पितामह भगवान् व्यासजी ऐसा कह कर फिर भी महाभाग धृतराष्ट्रसे कहनेलगे, कि—॥ १५ ॥ हे महाराज ! इस युद्धमें बड़ा भारी संहार होगा, क्योंकि—ऐसे ही भयसूचक कुशकुन देखनेमें आते हैं ॥ १६ ॥ बाज, गिद्ध, कौए, कङ्क और बगले वृक्षोंकी टहनियों पर आकर गिरते हैं और टोलियें बाँधते हैं ॥ १७ ॥ इस युद्धसे मानो आनन्द मनाते हों ऐसे वह पक्षी रणभूमिकी ओरको मुख उठाकर देखते हैं, इसलिये अवश्य ही मांसाहारी जीव हाथी और घोड़ोंके मांस खायँगे ॥ १८ ॥ भय दिखाने वाले भैरव जातिके पक्षी भयानक

दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १९ ॥ उभे पूर्वापरे सन्ध्ये नित्यं पश्यामि भारत । उदयास्तमने सूर्य्यं कबन्धैः परिवारितम् ॥ २० ॥ श्वेतलोहितपर्यन्ताः कृष्णग्रीवाः सविद्युतः । त्रिवर्णाः परिघाः सन्धौ भानुमन्तमवारयन् ॥२१॥ ज्वलितार्केन्दुनक्षत्रं निर्विशेषदिनक्षयम् । अहोरात्रं मया दृष्टं तत्क्षयाय भविष्यति॥२२॥अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्त्तिकीम् । चन्द्रोभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले ॥ २३ ॥ स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमालिङ्ग्य पार्थिवाः । राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥ २४ ॥ अन्तरिक्षे वराहस्य वृषदंशस्य चोभयोः । प्रणादं युध्यतो रात्रौ रौद्रं नित्यं प्रलक्षये २५-देवताप्रतिमाश्चैव कम्पन्ति च हसन्ति च । वमन्ति रुधिरं चास्यैः

शब्द करते हैं, कङ्क पक्षी कुरुक्षेत्रकी भूमिके मध्यमें होकर दक्षिण दिशाकी ओरको उड़े चलेजाते हैं ॥ १९ ॥ हे भारत ! प्रातः-काल और सायङ्काल दोनो सन्ध्याओंके समय उदय और अस्त होतेम सूर्यको मैं नित्य अनेकों राहुओंसे घिराहुआ देखता हूं ॥ २० ॥ सन्ध्याके समय दोनों ओरसे सफेद और लाल रङ्गके मध्यमें काले रङ्गके बिजलीवाले तथा परिघकी समान सफेद काले और लाल तीन रङ्गके बादल सूर्यनारायणको ढकदेते हैं ॥ २१ ॥ सूर्य, चन्द्रमा और तारागण जलते हुएसे दीखते हैं तथा रात दिन मुझे दीखते हैं; यह लक्षण भयदायक ही होगा ॥ २२ ॥ कातककी पूनोके दिन नीलकमलकी समान स्वच्छ आकाशमें चन्द्रमा, न होनेकी समान, कान्तिहीन और अग्निकी समान दहकतासा दीखता था ॥ २३ ॥ इसकारण लोहेके दण्डों की समान भुजाओंवाले बड़े २ शूर राजे, राजकुमार और क्षत्रिय कटकर भूमिका आलिङ्गन करते हुए रणभूमिमें सोवेंगे ॥ २४ ॥ रातके समय कूद २ कर अन्तरिक्षमें युद्ध करते हुए शूकर और बिलावोंके भयानक शब्दोंको मैं नित्य सुनता हूं ॥ २५ ॥ देवताओं की प्रतिमायें काँपती हैं, हँसती हैं, मुखोंमेंसे रुधिरकी वमन करती

क्षिपन्ति प्रपतन्ति च ॥ २६ ॥ अनाहता दुन्दुभयः प्रणदन्ति विशाम्पते । अयुक्ताश्च प्रवर्त्तन्ते क्षत्रियाणां महारथाः ॥ २७ ॥ कोकिलाः शतपत्राश्च चाषा भासाः शुकास्तथा । सारसाश्च मयूराश्च वाचो मुञ्चन्ति दारुणाः ॥ २८ ॥ गृहीतशस्त्राः क्रोशन्ति चर्मिणो वाजिपृष्ठगाः । अरुणोदये प्रदृश्यंते शतशः शलभव्रजाः॥२९ उभे सन्ध्ये प्रकाशन्ते दिशो दाहसमन्विते । पर्जन्यः पांसुवर्षी च मांसवर्षी च भारत ॥ ३० ॥ या चैषा विश्रुता राजंस्त्रैलोक्ये साधुसम्मता । अरुन्धती तयाप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः ॥ ३१ ॥ रोहिणीं पीडयन्नेष स्थितो राजन् शनैश्चरः । व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद्भयम् ॥ ३२ ॥ अनभ्रे च महाघोरः स्तनितः श्रूयते

हैं, पसीनेमें भीगजाती हैं और आपसे आप ही गिरपड़ती हैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! नगाड़े विना ही बजाये बजने लगते हैं, क्षत्रियोंके बड़े २ रथ विना ही घोड़े जोते चलने लगते हैं ॥२७॥ कोयल, शतपत्र, पपैया, भास, तोते, सारस, और मोर दारुण शब्द करते हैं ॥ २८ ॥ शस्त्रधारी और कवचधारी घुड़सवार रोते हैं, पौ फटनेके समय आकाशमें हजारों टीड़ीदल दीखते हैं ॥ २९ ॥ दोनों सन्ध्याके समय दिशाओंमें ऐसा उजाला होता है मानो आग लगरही है और हे भारत ! धूलकी तथा मांसकी वर्षा होती है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है और साधु पुरुष जिसकी प्रतिष्ठा करते हैं उस अरुन्धतीने वशिष्ठ को अपने आगेसे पीछे करलिया है ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! देखो यह शनैश्चर रोहिणीको पीड़ा देता हुआ स्थित है, और चन्द्रमा भी मृगचिन्ह आदिसे सूना दीखरहा है, इससे निःसन्देह बड़ा-भारी भय आनेवाला है ॥ ३२ ॥ आकाशमें बादलोंका पता नहीं है, परन्तु महाघोर गड़गड़ाहट सुनायी आरही है और यह देखो रोते हुए हाथी घोड़े आदि वाहनोंकी आँखोंमेंसे आँसुओं

स्वनः । वाहनानां च रुदतां निपतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माण-
पर्वणि श्रीवेदव्यासदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

व्यास उवाच । खरा गोषु प्रजायन्ते रमन्ते मातृभिः सुताः । अनार्त्तवं पुष्पफलं दर्शयन्ति वनद्रुमाः ॥१॥ गर्भिण्योऽजातपुत्राश्च जनयन्ति विभीषणान् । क्रव्यादाः पक्षिभिश्चापि सहाश्नन्ति परस्परम् ॥ २ ॥ त्रिविषाणाश्चतुर्नेत्राः पञ्चपादा द्विमेहनाः । द्विशीर्षाश्च द्विपुच्छाश्च दंष्ट्रिणः पशवोऽशिवाः ॥३॥ जायन्ते विवृतास्याश्च व्याहरन्तोऽशिवा गिरः।त्रिपदाः शिखिनस्तार्क्ष्याश्चतुर्दंष्ट्रा विषाणिनः ॥ ४ ॥ तथैवान्याश्च दृश्यन्ते स्त्रियो वै ब्रह्मवादिनाम् । वैनतेयान् मयूरांश्च जनयन्ति पुरे तव ॥ ५ ॥ गोवत्सं वडवा सूते श्वा शृगालं महीपते । कुक्कुरान् करभाश्चैव शुकाश्चाशुभवादिनः ॥ ६ ॥ स्त्रियः

की बूंदें टपकरही हैं ॥ ३३ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

व्यासजीने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! गौओंमें गधे उत्पन्न होरहे हैं,पुत्र माताओंके साथ मैथुन करने लगे हैं तथा वनके वृक्ष विना ही ऋतुओंके फूल और फलोंको धारण करते हैं ॥ १ ॥ गर्भिणियोंके पुत्र उत्पन्न नहीं होते, किन्तु भयानक जीवोंको उत्पन्न करती हैं, मांसभोजी वनके जीव पक्षियोंके साथ भोजन करते दीखते हैं ॥ २ ॥ यह जो तीन सींग, चार नेत्र, पाँच पैर, दो गुदा, दो शिर और पूंछवाले बड़ी २ दाढ़ोंवाले पशु दीखते हैं, ये बड़े ही अमङ्गलसूचक हैं ॥ ३ ॥ देखो तीन पैर वाले मोर तथा चार दाढ़ और सींगों वाले पक्षी उत्पन्न होते हैं और वह मुख फैलाकर अमङ्गलसूचक किल्लियें मारते हैं ॥४॥ तथा और भी नयी बातें दीखती हैं, तुम्हारे नगरमें ब्रह्मवादियो की स्त्रियें गरुड़ और तोतोंको उत्पन्न करती हैं ॥ ५ ॥ घोड़ी गौके बच्चेको उत्पन्न करती है, हे राजन् ! कुत्ता गीदड़को उत्पन्न करता है, करभ नामके पशु कुत्तोंको उत्पन्न करते हैं और तोते अशुभ वाणी बोलते हैं ॥६॥ कोई स्त्रियें चार २ पाँच २ कन्याओं

काश्चित् प्रजायन्ते चतस्रः पञ्च कन्यकाः। जातमात्राश्च नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥ ७ ॥ पृथक्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च । नृत्यन्ति परिगायन्ति वेदयन्तो महद्भयम् ॥ ८ ॥ प्रतिमाश्चालिखन्त्येताः सशस्त्राः कालचोदिताः । अन्योन्यमभिधावन्ति शिशवो दण्डपाणयः ॥ ९ ॥ अन्योन्यमभिमृद्नन्ति नगराणि युयुत्सवः । पद्मोत्पलानि वृक्षेषु जायन्ते कुमुदानि च ॥१०॥ विश्वग्वाताश्च वान्त्युग्राः रजो नाप्युपशाम्यति । अभीक्ष्णं कम्पते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥ ११ ॥ श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥ १२ ॥ धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यश्चाक्रम्य तिष्ठति । सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महा-

को एक साथ ही उत्पन्न करती हैं तथा वह कन्यायें उत्पन्न होते ही नाचती हैं, गाती हैं और हँसती हैं ॥ ७ ॥ तथा चाण्डाल जाति के क्षुद्र पुरुष मानो बड़ेभारी भयको सूचित कर रहेहों इसप्रकार हँसते हैं, नाचते हैं और गाते हैं ॥ ८ ॥ भूमिपर ऐसा मालूम होता है, कि—मानो कालकी प्रेरणाकी हुई शस्त्र धारण किये हुए अनेकों प्रतिमायें बनी हुई हैं, बालक हाथोंमें दण्डे लिये हुए, एक दूसरेके ऊपरको दौड़ते हैं ॥ ९ ॥ बालक खेलमें नगर बनाकर युद्धकी इच्छासे एक दूसरेके नगरोंको नष्ट करते हैं, वृक्षोंपर पद्म उत्पल और कुमुद उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥ चारों दिशाओंमें उग्र पवन चलते हैं, धूलिका उड़ना शान्त नहीं होता है, भूमि वार २ डगमगाती है, राहु सूर्यके ऊपर आक्रमण करता है ॥ ११ ॥ केतु चित्रा नक्षत्रके ऊपर आक्रमण करके बैठ गया है अर्थात् चित्राको लाँघकर स्वाति आदि नक्षत्रों में पहुंच गया है, राहु तथा केतु सदा सात राशिके अन्तर पर रहते हैं परन्तु इस समय तो वह एक राशिमें आगये हैं, इससे विशेषरूप से कौरवोंका नाश होगा, यह बात दीखती है ॥ १२ ॥ धूमकेतु नामका महाघोर ग्रह इस समय दीखने लगा है और पुष्य नक्षत्र

ग्रहः ॥१३॥ मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः । भगं नक्षत्र माक्रम्य सूर्य्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४ ॥ शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते । उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्ष्यते॥१५॥श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः । ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६ ॥ ध्रुवः प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्त्तते । रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ । चित्रा स्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥ १७ ॥ वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः । ब्रह्म-राशिं समावृत्य लोहितांगो व्यवस्थितः ॥ १८ ॥ सर्वसस्यपरि-च्छन्ना पृथिवी सस्यमालिनी । पञ्चशीर्षा यवाश्चापि शतशीर्षाश्च शालयः ॥ १९ ॥ प्रधानाः सर्वलोकस्य यास्वायत्तमिदं जगत् ।

का आक्रमण करके बैठगया है इस लिये वह महाग्रह दोनों सेनाओंका बड़ाभारी अमङ्गल करेगा ॥१३॥ मघा नामक नक्षत्रमें मङ्गल वक्र होकर पड़ा है और शनि पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रको आक्र मण करके उसको पीड़ा देता है ॥१४॥ शुक्र पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र को आक्रमण करके शोभा पारहा है और परिघ नामके उपग्रहके साथ उत्तराभाद्र पद नक्षत्रको आक्रमण करना चाहता है ॥१५॥ धुएं रहित अग्निकी समान दहकता हुआ केतु ग्रह तेजस्वी होकर जिसका देवता इन्द्र हैं ऐसे ज्येष्ठा नक्षत्र को आक्रमण करके स्थित है ॥ १६ ॥ चित्रा तथा स्वातिके मध्यभागमें स्थित क्रूर ग्रह राहु बड़े भयानक रूपसे प्रज्वलित हुआ है, वह रोहिणीको तथा एक नक्षत्रमें स्थित सूर्य चन्द्रमा दोनोंको पीड़ा देता हुआ दक्षिणकी ओरसे वक्र होताहुआ जाता है ॥ १७ ॥ अग्निकी समान कान्ति मान् मङ्गल वारम्वार वक्र होकर, बृहस्पतिके आक्रमण किये हुए श्रवण नक्षत्र को पूर्ण दृष्टिसे वेध करके स्थित है ॥ १८ ॥ पृथ्वी सब प्रकारके धान्योंकी सम्पदा से भरपूर होकर धान्यकी वाली रूपी मालाओं वाली होगयी है, जौ में पांच और साठीमें सौ २ वालियें आयी हैं ॥ १९ ॥ इस जगत्में जो चौपाये प्राणियोंमें

ता गावः प्रस्नुता वत्सैः शोणितं प्रक्षरन्त्युत ॥ २० ॥ निश्चेरुरर्चिश्चापात् खड्गाश्च ज्वलिता भृशम्। व्यक्तं पश्यन्ति शस्त्राणि संग्रामं समुपस्थितम् ॥ २१ ॥ अग्निवर्णा यथा भासः शस्त्राणामुदकस्य च। कवचानां ध्वजानां च भविष्यति महाक्षयः ॥ २२ ॥ पृथिवी शोणितावर्त्ता ध्वजोडुपसमाकुला। कुरूणां वैशसे राजन् पाण्डवैः सह भारत ॥ २३ ॥ दिक्षु प्रज्वलितास्याश्च व्याहरन्ति मृगद्विजाः। अत्याहितं दर्शयन्तो वेदयन्ति महद्भयम् ॥२४॥ एकपक्षाक्षिचरणः शकुनिः खचरो निशि। रौद्रं वदति संरब्धः शोणितं छर्दयन्निव ॥ २५ ॥ शस्त्राणि चैव राजेन्द्र प्रज्वलन्तीव संप्रति।

उत्तम हैं और जिनके आधार पर यह जगत् ठहरा हुआ है वह गौएं बछड़ोंको चोंखानेके पीछे दुही जाने पर रुधिरकी धारें टपकाती हैं ॥ २० ॥ धनुषोंमें से अग्निकी लपटें निकलती हैं, तलवारें अत्यन्त जलती हुईसी दीखती हैं, इससे संग्राम समीप ही आलगा है, इस बातकी शस्त्र स्पष्ट ही सूचना देते हैं ॥ २१ ॥ शस्त्रोंकी जलकी कवचोंकी और ध्वजाओंकी कान्तियें अग्निकी समान भयानक होगयी हैं इससे प्रतीत होता है, कि—आगेको बड़ाभारी क्षय होने वाला है ॥ २२ ॥ हे भारत ! जब कौरवोंका पाण्डवोंके साथ महा संहार करनेवाला युद्ध होगा तब भूमि पर लोहूकी नदियें बहेंगी और उनमें ध्वजारूपी नौकायें तैरने लगेंगी ॥२३॥ पशु और पक्षी जब दिशाओंकी ओरको मुख फैलाकर चीखें मारते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, कि—मानो उनके मुखोंमें से आग निकल रही है, वह अति अशुभ लक्षण दिखाते हुए बड़ा भारी भय आनेकी सूचना देते हैं ॥ २४ ॥ एक पङ्ख, एक आँख और एक चरणवाला विचित्र जातिका एक पक्षी रातके समय आकाशमेंको उड़ता २ रुधिरकी वमन करता हुआसा क्रोधमें भर कर महाघोर शब्द किया करता है ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! इस समय शस्त्र प्रज्वलित होकर भयङ्करता दिखाते हैं तथा महात्मा

सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्यते प्रभा ॥ २६ ॥ सम्वत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ । विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ॥ २७ ॥ चंद्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम् । अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥ २८ ॥ अशोभिता दिशः सर्वाः पांशुवर्षैः समन्ततः । उत्पातमेघा रौद्राश्च रात्रौ वर्षन्ति शोणितम् ॥ २९ ॥ कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते । अभीक्ष्णं वाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ॥ ३० ॥ विषमं जनयन्त्येते आक्रन्दजननं महत् । त्रिषु सर्वेषु नक्षत्रनक्षत्रेषु विशाम्पते । गृध्रः

सप्त ऋषियोंकी कांति ढकसी गयी है ॥ २६ ॥ एक साल रहने वाले दमकते हुए बृहस्पति और शनैश्चर नामके दो ग्रह विशाखा नक्षत्रके पास आगये हैं ॥ २७ ॥ चन्द्रमा और सूर्य इन दोनों ग्रहोंको पखवासे गिनकर तेरहवें दिन विना ही पर्वके राहुने ग्रस लिया है, वह दोनों प्रजाका नाश करना चाहते हैं ॥ २८ ॥ धूलकी वर्षाओं से सब दिशायें चारों ओर से अमङ्गल रूप बन गयी हैं और भयानक उत्पातोंको सूचित करनेवाले मेघ रातमें रुधिरकी वर्षा करते हैं ॥ २९ ॥ हे राजन्! घोर कर्म वाला राहु कृत्तिकाको पीड़ा देता है और उत्पातोंकी सूचना देनेवाले धूमकेतु का सहारा लेकर ऊपर ही ऊपर प्रचण्ड पवन चला करते हैं ॥३०॥ यह पवन चिल्लाहट उत्पन्न करने वाले महाभयदायक युद्ध को उत्पन्न करेंगे राजाओंका अश्वपति गजपति और नरपति ऐसे तीन प्रकारका छत्रचक्र कहा है, अश्विनी आदि नौ नक्षत्रोंमेंसे किसी भी नक्षत्रको पापग्रहका वेध होय तो अश्वपतिको विघ्न होता है; मघा आदि नौ नक्षत्रोंमें पापग्रहका वेध होय तो गजपति का अनिष्ट होता है और मूल आदि नौ नक्षत्रोंमेंके किसी नक्षत्र को पापग्रहका वेध होय तो राजाका अनिष्ट होता है हे राजन्! इस समय तीन प्रकारके छत्रसंबन्धी नौ नौ मंडलवाले नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रके शिरपर भी पापग्रह पड़े होयं तो बड़े भारी भयको

सम्पतते शीर्षं जनयन् भयमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वांश्च षोडशीम् । इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् । चंद्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥ ३२ ॥ अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षयिष्यतः । मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत्कृष्णचतुर्दशीम् । शोणितैर्वक्त्रसम्पूर्णा अतृप्तास्तत्र राक्षसाः ॥ ३३ ॥ प्रतिस्रोतो महानद्यः सरितः शोणितोदकाः । फेनायमानाः कूपाश्च कूर्दन्ति वृषभा इव ॥ ३४ ॥ पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः । अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ ॥ ३५ ॥ विनिःसृत्य महोल्काभिस्तिमिरं सर्वतो दिशम् । अन्योन्यमुपतिष्ठद्भिस्तत्र चोक्तं महर्षिभिः ॥ ३६ ॥ भूमिपालसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम् । कैलासमन्दाराभ्यान्तु तथा हिमवता विभो

उत्पन्न करते हैं ॥३१॥ पहिले चौदहवें दिन, पन्द्रहवें दिन अथवा सोलहवें दिन अमावास्या हुई थी, इस बातको मैं जानता हूं, परन्तु तेरहवें दिन कभी अमावस्या हुई हो यह मुझे नहीं मालूम, यह तो एक महीनेमें तेरहवें दिन चन्द्रमा और सूर्य दोनोंका ग्रहण हुआ है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको विना ही पर्वके राहुने ग्रसलिया है, इस कारण यह दोनों प्रजाका नाश करेंगे, कृष्णपक्षकी चौदसके दिन मांसकी भयानक वर्षा हुई थी और राक्षसोंके मुख रुधिर से भरगये तो भी वह तृप्त नहीं हुए ॥ ३३ ॥ बड़ी बड़ी नदियोंके प्रवाह उलटे बहते हैं उनमें रुधिरसे बहता दीखता है और झागोंसे उफनते हुए कुए बैलोंकी समान कूदते हैं ॥ ३४ ॥ इन्द्रके वज्रकी समान कांति वाले उल्का बड़े भारी गर्जनेके शब्दोंके साथ आकाशमें से नीचे गिरते हैं; इसलिये आजकी रात बीत जाने पर तुम दुःखमें पड़ोगे ॥ ३५ ॥ लोग, अन्धकार से भरीं हुई सब दिशाओंमें बलती हुई मसालोंको ले कर बाहर निकल पड़ेंगे, उस समय आपसमें टकरावेंगे, ऐसा अवसर आनेपर महर्षि कहते हैं, कि—भूमि हजारों राजाओंके

॥३७॥ सहस्रशो महाशब्दः शिखराणि पतन्ति च। महाभूता भूमिकम्पे चत्वारः सागराः पृथक्। वेलामुद्वर्तयन्तीव क्षोभयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥ वृक्षानुन्मथ्य वान्त्युग्रा वाताः शर्करकर्षिणः। आभग्नाः सुमहावातैरशनीभिः समाहताः ॥ ३९ ॥ वृक्षाः पतन्ति चैत्याश्च ग्रामेषु नगरेषु च। नीललोहितपीतश्च भवत्यग्निर्हुतो द्विजैः ॥ ४० ॥ वामार्चिर्दुष्टगन्धश्च मुञ्चन् वै दारुणं स्वनम्। स्पर्शा गन्धा रसाश्चैव विपरीता महीपते ॥ ४१ ॥ धूमं ध्वजा प्रमुञ्चन्ति कम्पमाना मुहुर्मुहुः। मुञ्चन्त्यङ्गारवर्षञ्च भेर्यश्च पटहास्तथा ॥ ४२ ॥ शिखराणां समृद्धानामुपरिष्टात् समन्ततः। वायसाश्च रुवन्त्युग्रं वामं मण्डलमाश्रिताः ॥ ४३ ॥ पक्वापक्वेति सुभृशं वावाशयन्ते वयांसि च। निलीयन्ते ध्वजाग्रेषु क्षयाय

रुधिरको पीती हैं और हे राजन्! कैलास, मन्दराचल तथा हिमाचलमेंसे बड़े २ हजारों शब्द होंगे शिखर नीचे गिर पड़ेंगे, भूमि डगमगाने लगेगी और उमड़े हुए चारों समुद्र अलग २ हो पृथ्वी को दोलायमान करके अपने किनारों से बाहर निकल पड़ेंगे ॥३६–३८॥ यह देखो कङ्करोंकी वर्षा करनेवाले उग्र वायु वृक्षोंको उखाड़ कर जोरसे चल रहे हैं, ग्रामोंमें और नगरोंमें साधारण वृक्ष और पवित्र वृक्ष पवनोंके और बिजलियोंके झपाटोंसे लंबे२ होकर भूमिपर सो रहे हैं, ब्राह्मण जब आहुतियें देते हैं तब होमा हुआ अग्नि भी काला लाल और पीले रङ्गका होजाता है ॥३६॥४०॥ उसकी बाईं लपट दुर्गन्धयुक्त होकर बड़ा भयानक शब्द करती है हे राजन्! स्पर्श, गन्ध और रस भी विपरीत होरहे हैं ॥४०॥ बारंबार कांपती हुई ध्वजाओंमेंसे धुआं निकलता है, नगाड़े और ढोलोंमेंसे अङ्गारोंकी वर्षा होती है ॥ ४२ ॥ और बड़े २ वृक्षोंकी टहनियों पर बाईं ओरको टोलियें बना कर बैठे हुए कौए भयानक शब्द करते हैं ॥ ४३ ॥ और पक्षी पकवा पकवा ऐसा अशुभसूचक शब्द करते हुए राजाओंके नाशके लिये

पृथिवीक्षितास् ॥४४॥ ध्यायन्तः प्रकिरन्तश्च ज्वाला वेपथुसंयुताः। दीनास्तुरङ्गमाः सर्वे वारणाः सलिलाश्रयाः ॥ ४५ ॥ एतच्छ्रुत्वा भवानत्र प्राप्तकालं व्यवस्यताम् । यथा लोकः समुच्छेदं नायं गच्छेत भारत ॥ ४६ ॥ वैशम्पायन उवाच । पितुर्वचो निशम्यैतद्ध धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् । दिष्टमेतत् पुरा मन्ये भविष्यति नरक्षयः ॥ ४७ ॥ राजानः क्षत्रधर्मेण यदि वध्यन्ति संयुगे । वीरलोकं समासाद्य सुखं प्राप्स्यन्ति केवलम् ॥ ४८ ॥ इह कीर्त्तिं परे लोके दीर्घकालं महत् सुखम् । प्राप्स्यन्ति पुरुषव्याघ्राः प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥४९॥ वैशम्पायन उवाच । एवं मुनिस्तथेत्युक्त्वा कवीन्द्रो राजसत्तम । धृतराष्ट्रेण पुत्रेण ध्यानमन्वगमत् परम्॥५०॥ स मुहूर्त्तं तथा ध्यात्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः । असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्ष-

---

इधर उधरको उड़ २ कर बार बार उनकी ध्वजाओंके दण्डोंके ऊपर जा जाकर बैठते हैं ॥ ४४ ॥ हाथी विचारमें पड़कर बारंबार मलमूत्रका त्याग करते हुए थर२ कांपते हैं घोड़े तथा हाथी दीन बनकर पसीनेमें न्हाजाते हैं ॥४५॥ इसप्रकार जहां तहां अपशकुन और विपरीत दशा दीखती है । इस बातको मुझसे सुनकर हे भरतवंशी राजन्! पृथ्वीपर लोकोंका नाश न हो, इस बातका ध्यान रखकर जैसा उचित मालूम हो तैसा समयके अनुकूल उपाय करिये ॥ ४६ ॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—पिताकी इस बात को सुनकर राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि—मैं मानता हूं कि—यह होनी पहिले ही लिखी जा चुकी है, इसलिये मनुष्योंका महानाश अवश्य ही होगा ॥ ४७ ॥ यदि राजे संग्राममें क्षत्रियके धर्मके अनुसार मारे जायँगे तो वीर लोकको प्राप्त होंगे और ब्रह्मानन्द का सुख पावेंगे ॥४८॥ यह पुरुषसिंह महासंग्राममें अपने प्राणों को त्यागकर इस लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें चिरकाल तक महासुखको पावेंगे ॥ ४९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे श्रेष्ठ राजन्! अपने पुत्र धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर कवियोंमें श्रेष्ठ मुनि

यते जगत् ॥ ५१ ॥ सृजते च पुनर्लोकान् नेह विद्यति शाश्वतम् । ज्ञातीनां वै कुरूणां च सम्बन्धिसुहृदान्तथा ॥ ५२ ॥ धर्म्यं देशय पन्थानां समर्थो ह्यसि वारणे । क्षुद्रं ज्ञातिवधं प्राहुर्मा कुरुष्व ममाप्रियम् ॥ ५३ ॥ कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते । न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथञ्चन ॥ ५४ ॥ हन्यात् स एनं यो हन्यात् कुलधर्मं स्विकां तनुम् । कालेनोत्पथगन्तासि शक्ये सति यथापदि ॥५५॥ कुलस्यास्य विनाशाय तथैव च महीक्षिताम् । अनर्थो राज्यरूपेण तव जातो विशाम्पते ॥ ५६ ॥ लुप्तधर्मा परेणासि धर्मं दर्शय वै सुतान् । किन्ते राज्येन दुर्धर्ष येन प्राप्तोऽसि किल्विषम्

व्यासजी परमध्यानमें मग्न होगये ॥ ५० ॥ और एक मुहूर्त भर ध्यान करके यह बात बोले, कि—हे राजेन्द्र ! निःसन्देह काल जगत्का संहार करता है ॥ ५१ ॥ और वह काल ही फिर लोकों को रच देता है, इस लोकमें सदाकाल रहने वाला तो कोई पदार्थ है ही नहीं इस लिये कुरुओंको जातिवालोंको संबन्धियोंको और स्नेहियोंको तुम धर्मके मार्गका उपदेश दो तुम इनको रोकसकते हो जातिका नाश करना बड़ा खोटा काम है, ऐसा धर्मको जाननेवाले ऋषि मुनि कहगये हैं, इसलिये जो मुझै अच्छा नहीं लगता वह काम तुम न करो ॥ ५२-५३ ॥ हे राजन् ! यह काल ही तुम्हारे पुत्ररूपसे उत्पन्न होगया है, वेदमें वधको अच्छा नहीं कहा है और इसमें किसीप्रकार भी हित नहीं होसकता ॥ ५४ ॥ मनुष्य का जो अपना कुलधर्म है वह तो अपने शरीरकी समान प्यारा है, जो अपने कुलधर्मका नाश करता है वह कुलधर्म उसका ही नाश करदेता है, तुम इससे आपत्तिको रोकनेको समर्थ होकर भी कालके वशमें होकर आपत्तिमे फँसगये हो ॥ ५५ ॥ अपने कुल के तथा राजाओंके नाशके लिये हे राजन् ! यह तुम्हारा राज्य ही अनर्थ रूप होगया ॥ ५६ ॥ तुम धर्मसे अत्यन्त ही भ्रष्ट हो गये हो तो भी हे राजन् ! तुम अपने पुत्रोंको तो धर्मका मार्ग

॥ ५७ ॥ यशो धर्मश्च कीर्तिश्च पालयन् स्वर्गमाप्स्यसि । लभन्तां पाण्डवा राज्यं शमं गच्छन्तु कौरवाः ॥ ५८ ॥ एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । आक्षिप्य वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यश्चैवाब्रवीत् पुनः ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । यथा भवान् वेत्ति तथैव वेत्ता भवाभावौ विदितौ मे यथार्थौ । स्वार्थे हि संमुह्यति तात लोको मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि ॥ ६० ॥ प्रसादये त्वामतुलप्रभावं त्वं नो गतिर्दर्शयिता च धीरः । न चापि ते मद्वशगाः महर्षे न चाधर्मं कर्तुमर्हो हि मे मतिः ॥ ६१ ॥ त्वं हि धर्मप्रवृत्तिश्च यशः कीर्त्तिश्च भारती । कुरूणां पाण्डवानां च मान्यश्चापि पितामहः ६२

दिखाओ, हे दुर्धर्ष ! जिस राज्य से तुम पापमें फँसे हो उस राज्य की तुम्हें क्या आवश्यकता है ! ॥५७॥ याद रक्खो, कि—यश धर्म और कीर्त्ति ही तुम्हें स्वर्गमें लेजायँगे, पाण्डवोंको उनका राज्य मिल जाना चाहिये और कौरवोंको शान्त होकर बैठना चाहिये ॥ ५८ ॥ जब विप्रेन्द्र व्यासजी ऐसा कह रहे थे उसी समय बातको समझनेवाले अम्बिकाके पुत्र राजा धृतराष्ट्र उनको बोलने से रोककर बीचमें ही इसप्रकार कहनेलगे ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्र बोले, कि—दूसरेके और अपने जन्ममरणके सम्बन्धका मेरा ज्ञान और आपका ज्ञान एकसमान है, मैं जन्म और मरणको यथार्थरूपसे जानता हूं, तो भी लोग अपने लाभके विषयमें सत्य असत्यके विचारसे विमुख ही रहते हैं, इसकारण हे तात ! आप मुझे भी एक साधारण मनुष्यकी समान समझिये ॥६०॥ आपका प्रभाव अतोल है, आप धीर हैं, आप ही हमें उत्तम मार्ग दिखानेवाले और जीवनाधार हैं मैं आपसे प्रसन्न होनेकी प्रार्थना करता हूं, हे महर्षे ! मेरे पुत्र मेरे वशमें नहीं है और मेरी समझमें वह अधर्म करनेके योग्य भी नहीं हैं ॥६१॥ तुम ही धर्मको चलाने वाले हो, तुम ही भरतवंशी राजाओंके यश और कीर्त्तिरूप हो तथा कौरव और पाण्डवोंके मान्य पितामह भी तुम ही हो ॥६२॥

व्यास उवाच । वैचित्रवीर्य नृपते यत्ते मनसि वर्त्तते । अभिधत्स्व यथाकामं छेत्तास्मि तव संशयम् ॥ ६३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । यानि लिङ्गानि संग्रामे भवन्ति विजयिष्यताम् । तानि सर्वाणि भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥ ६४ ॥ व्यास उवाच । प्रसन्नभाः पावक ऊर्ध्वरश्मिः प्रदक्षिणावर्त्तशिखो विधूमः । पुण्या गन्धाश्चाहुतीनां प्रवान्ति जयस्यैतद् भाविनो रूपमाहुः ॥ ६५ ॥ गम्भीरघोषाश्च महास्वनाश्च शंखा मृदङ्गाश्च नदन्ति यत्र । विशुद्धरश्मिस्तपनः शशी च जयस्यैतद् भाविनो रूपमाहुः ॥६६॥ इष्टा वाचः प्रसृता वायसानां संप्रस्थितानां च गमिष्यतां च । ये पृष्ठतस्ते त्वरयन्ति राजन् ये चाग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥ ६७ ॥ कल्याणवाचः शकुना राजहंसाः शुकाः क्रौञ्चाः शतपत्राश्च यत्र । प्रदक्षिणाश्चैव भवन्ति

व्यासजीने कहा, कि-हे विचित्रवीर्यके पुत्र राजा धृतराष्ट्र ! जो बात तेरे मनमें हो उसको तू इच्छानुसार कह दे. मैं तेरे संदेह को दूर कर दूंगा॥६३॥धृतराष्ट्रने कहा कि-हे भगवन् ! जिन २ लक्षणोंसे संग्राम में विजय होती है उन सब शुभ शकुनों को मैं आपसे यथावत् सुनना चाहता हूं ॥ ६४ ॥ व्यासजीने कहा कि—होमका अग्नि प्रसन्न ज्वालाओं वाला दीखे, उसकी लपटें ऊंची जायँ और दाहिनी ओरको जायँ, धुआं न उठे, आहुतियोंकी पवित्र सुगन्धि चारों ओर फैलजाय, यह होनहार विजयके लक्षण कहे हैं ॥ ६५ ॥ जब शङ्खोंमेंसे और मृदङ्गोंमेंसे बड़ा भारी और गम्भीर शब्द निकलै, जब सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें निर्मल हों तो उसको होनेवाली विजयको स्वरूप कहते हैं ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! कौए उड़ते २ वा एक स्थान पर बैठे २ मीठी बोली बोलैं और बोलते हुए कौए जिस सेनाके पीछे हों वह सेना शीघ्रतासे आगे जाय ऐसा सूचित करते हैं और जो कौए सेनाके आगे हों वह सेनाको आगे बढ़नेका निषेध करते हैं ॥ ६७ ॥ राजहंस तोते क्रौंच और शतपत्र आदि पक्षी जब मङ्गलकारक वाणी बोलते हैं तथा संग्राम

संख्ये ध्रुवं जयस्तत्र वदन्ति द्विजाः ॥ ६८ ॥ अलङ्कारैः कवचैः केतुभिश्च मुखप्रणादैर्हेषितैर्श्च हयानाम् । आजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया येषाञ्चमूस्ते विजयन्ति शत्रून् ॥६९॥ हृष्टा वाचस्तथा सत्त्वं योधानां यत्र भारत । न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्ति रणोदधिम् ॥ ७० ॥ इष्टा वाचः प्रविष्टस्य दक्षिणाः प्रविविक्षतः । पश्चात् सन्धारयन्त्यर्थमग्रे च प्रतिषेधिकाः ॥ ७१ ॥ शब्दरूपरसस्पर्शगन्धाश्चाविकृताः शुभाः । सदा हर्षश्च योधानां जयतामिह लक्षणम् ७२ अनुगा वायवो वान्ति तथाभ्राणि वयांसि च । अनुप्लवन्ति

की दक्षिण दिशामेंको उड़कर जाते हैं तब जय होती है, ऐसा ब्राह्मण कहते हैं ॥६८॥ जिसकी सेना गहने, कवच ध्वजा पताका और घोड़ोंके सुखदायक हिनहिनाहटोंवाली होकर शोभा पाती है जिसकी ओरको देखकर शत्रु भयभीत हो उस सेनावाला राजा शत्रुओंके ऊपर विजय पाता है ॥ ६९ ॥ हे भरतवंशी बेटा ! जिस सेनामें योधाओंकी बातें प्रसन्नता भरी होती हैं जिस सेना के योधा अपने बलका वर्णन करते हैं तथा जिस सेनाके योधाओं की मालायें कुम्हलातीं नहीं है वह सेना संग्रामरूप समुद्रको तर जाती है अर्थात् विजय पाती है ॥७०॥ शत्रुकी सेनामें पहुंचकर जो योधा अभी तुझे मारे डालता हूं ऐसी स्पष्ट बात कहता है और शत्रुकी सेनामें घुमनेकी इच्छा करते समय अब तू मारा गया, ऐसी चतुराई भरी और भयदायक वाणी बोलता है परिणाममें उसकी विजय होती है और युद्धमें जाते समय आरम्भमें ही तू लड़ने से हट जा मारा जायगा, ऐसी निषेध करनेवाली बात कहनेमें आवे तो वह वाणी परिणाममें मरणकी सूचना देती है ॥ ७१ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इनमें कुछ विकार न होकर यह शुभ प्रतीत हों योधाओंका चित्त सदा हर्षमें दीखे यह संग्राममें विजय पाने वालोंका लक्षण है ॥ ७२ ॥ वायु अनुकूल चलें, तैसे ही मेघ और पक्षी भी अनुकूल मालूम हों तथा मेघ और इंद्रधनुष

मेघाश्च तथैवेन्द्रधनूंपि च ॥ ७३ ॥ एतानि जयमानानां लक्षणानि विशाम्पते । भवन्ति विपरीतानि मुमुर्षूणां जनाधिप ॥ ७४ ॥ अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः । हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते ॥ ७५ ॥ एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि । तां दीर्णामनुदीर्यन्ते योधाः शूरतरा अपि ॥ ७६ ॥ दुर्निवर्त्या तदा चैव प्रभग्ना महती चमूः । अपामिव महावेगास्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ ७७ ॥ नैव शक्या समाधत्तुं सन्निपाते महाचमूः । दीर्णामित्येव दीर्यन्ते सुविद्वांसोऽपि भारत ॥ ७८ ॥ भीतान् भग्नांश्च सम्प्रेक्ष्य भयं भूयोऽभिवर्द्धते । प्रभग्ना सहसा राजन् दिशो विद्रवते चमूः ॥ ७९ ॥ नैव स्थापयितुं शक्या शूरैरपि महाचमूः ।

जहां जल बरसावें तहां विजय ही होती है ॥ ७३ ॥ हे राजन् ! यह विजय होने वालोंके लक्षण हैं और जो संग्राममें मरण पाने वाले हैं उनको इनके विपरीत शकुन होते हैं ॥७४॥ सेना थोड़ी हो चाहे बहुत हो यदि योधाओंको हर्ष होता है तो एक यही विजय का लक्षण कहलाता है, यह मुझको निश्चय है ॥ ७५ ॥ यदि एक योधा भयभीत होजाय तो जिसमें बड़े २ वीर हों ऐसी बड़ी भारी सेनाको भी छिन्न भिन्न कर डालता है अर्थात् एक योधा का उत्साह टूटनेसे सब योधाओंका उत्साह भङ्ग होजाता है ७६॥ हे भारत ! जैसे वर्षाके जलके बड़े भारी प्रवाहको पीछेको नहीं लौटाया जासकता, जैसे भयभीत हुए मृगोंकी पांतोंको भागतेसे नहीं रोका जासकता तैसे ही बड़ीभारी सेनामें भी जब भागड़ पड़जाती है तो,उसको रोकना कठिन होजाता है ॥ ७७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जब सेनामें भागड़ पड़जाती है तब बड़ीभारी सेनाको कोई भी सामटी नहीं रखसकता, बड़े रणचतुर योधा भी भागती हुई सेनाके पीछे भागने लगते हैं ॥ ७८ ॥ भयभीत हुए और भागते हुए योधाओंको देखकर भय और अधिक बढ़जाता है, हे राजन् ! भयभीत हुई सेना एकसाथ दिशाओंमेंको भागने लगती है ॥ ७९ ॥ उस समय बड़े २ वीर सेनापति भी चार

सत्कृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः उपायपूर्वं मेधावी यतेत सततोत्थितः ॥८०॥ उपायविजयं श्रेष्ठमाहुर्भेदेन मध्यमम्। जघन्य एप विजयो यो युद्धेन विशाम्पते ॥ ८१ ॥ महान् दोषः सन्निपातस्तस्याद्यः क्षय उच्यते । परस्परज्ञाः संहृष्टा व्यवधूताः सुनिश्चिताः ॥ ८२ ॥ अपि पञ्चाशतं शूरा मृद्नन्ति महतीं चमूम् । अपि वा पञ्च पट् सप्त विजयन्त्यनिवर्त्तिनः ॥ ८३ ॥ न वैनतेयो गरुडः प्रशंसति महाजनम् । दृष्ट्वा सुपर्णोऽपचितिं महत्या अपि भारत॥८४॥ न वाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः । अध्रुवो

अङ्गोंवाली वड़ीभारी सेनाको सत्कारसे समझाकर पीछेको नहीं लौटा सकते, इसलिये हे राजन् ! बुद्धिमान् पुरुपको सदा सावधान होकर साम आदि उपायोंसे विजय करनेके लिये उद्योग करना चाहिये ॥ ८० ॥ हे राजन् ! पण्डित कहते हैं, कि—साम आदि उपायसे जो विजय होती है वह श्रेष्ठ है भेदसे जो विजय होती है वह मध्यम है और युद्ध से जो विजय होती है वह अधम है ॥ ८१ ॥ युद्ध सकल दोपोंका भण्डार माना जाता है, क्यों कि—मनुष्योंका नाश उसका मुख्य कारण होता है, एक दूसरे के मनको जानने वाले उत्साह शक्तियुक्त, स्त्री पुत्र आदिमें मनको आसक्त न रखनेवाले और जिनका निश्चय दृढ़ है ऐसे पचास वीर पुरुप भी वड़ीभारी सेनाका संहार कर सकते हैं और पीछेको पैर न रखनेवाले दृढ़ विचारके पाँच छः वा सात योधा भी वड़ी भारी सेनाका नाश करसकते हैं ॥ ८२—८३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! विनताके पुत्र सुंदर वर्णवाले गरुड़जी असंख्यों पक्षियों के वड़े भारी समूहको देखकर उनका पराजय करनेके लिये बहुत से मनुष्योंसे सहायताके लिये प्रार्थना नहीं करते हैं ॥ ८४ ॥ इसलिये सेना वड़ीभारी हो तब ही उसकी विजय होती है, यह बात सदा ठीक नहीं उतरती है, विजयका मिलना अनिश्चित है वह तो दैवके अधीन है तो भी संग्राममें विजय पाने

हि जयो नाम दैवञ्चात्र परायणम् । जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥ ८५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि निमित्ताख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा ययौ व्यासो धृतराष्ट्राय धीमते । धृतराष्ट्रोऽपि तच्छ्रुत्वा ध्यानमेवान्वपद्यत ॥१॥ स मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा विनिः श्वस्य मुहुर्मुहुः । सञ्जयं संशितात्मानमपृच्छद् भरतर्षभ ॥ २ ॥ सञ्जयेमे महीपालाः शूरा युद्धाभिनन्दिनः । अन्योऽन्यमभिनिघ्नन्ति शस्त्रैरुच्चावचैरिह ॥ ३ ॥ पार्थिवाः पृथिवीहेतोः समभित्यज्य जीवितम् । न वा शाम्यंति निघ्नन्तो वर्धयंति यमक्षयम् ॥ ४ ॥ भौममैश्वर्यमिच्छन्तो न मृष्यन्ते परस्परम् । मन्ये बहुगुणा भूमिस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥५॥ बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि

वालोंको भी बड़ीभारी हानि पहुंचती है ॥ ८५ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि—हे राजन् ! बुद्धिमान् धृतराष्ट्र से इसप्रकार कहकर भगवान् वेदव्यासजी चले गये और धृतराष्ट्र उनकी बातको सुनकर बड़े विचारमें पड़ गया ॥ १ ॥ थोड़ी देर विचार करके तथा वारंवार श्वास लेकर हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! जिसका आत्मा बड़ा ही श्रेष्ठ है ऐसे सञ्जयसे उन्होंने पूछा, कि–हे सञ्जय ! जिनको युद्ध प्यारा है ऐसे ये सब राजे छोटे बड़े शस्त्रोंके द्वारा एक दूसरेका नाश करनेको तथा पृथिवीको प्राणों की बलि देनेको ही इकट्ठे हुए हैं, ये मर मिटेंगे परंतु नम्र नहीं होंगे यह एक दूसरोंका नाश करके केवल यमलोककी ही शोभाको बढ़ावेंगे ॥ २—४ ॥ भूमिका ऐश्वर्य चाहते हुए ये एक दूसरेको नहीं देखसकते हैं, हे संजय ! मैं भूमिको अनेकों गुणोंवाली मानता हूं, इसका वर्णन मुझै विस्तारसे सुना ॥ ५ ॥ इस कुरुजाङ्गल देशमें हजारों लाखों दशहजार,

च । कोट्यश्च लोकवीराणां समेताः कुरुजाङ्गले ॥ ६ ॥ देशानां च परीमाणं नगराणां च सञ्जय । श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यत एते समागताः ॥७॥ दिव्यबुद्धिप्रदीपेन युक्तस्त्वं ज्ञानचक्षुषा । प्रभावात्तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्यामिततेजसः ॥८॥ सञ्जय उवाच । यथाप्रज्ञं महाप्रज्ञ भौमान् वक्ष्यामि ते गुणान् । शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ॥९॥द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थविराणि च । त्रसानां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः ॥ १० ॥ त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजन् जरायुजाः । जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ११ नानारूपधरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश । वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १२ ॥ ग्राम्याणां पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चारण्यवासिनाम् । सर्वेषामेव भूतानामन्योऽन्येनोपजीवनम् ॥ १३ ॥ उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पंचैव जातयः । वृक्षगुल्मलता-

---

अरबों और करोड़ों वीर राजे इकट्ठे हुए हैं ॥ ६ ॥ हे सञ्जय ! जिन २ देशों तथा नगरोंमेंसे वह यहां आये हैं उन देशोंका और नगरोंका ठीक २ परिमाण मैं यथावत् सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥ परम तेजस्वी व्यासजीके प्रभावसे तूने दिव्यबुद्धि और ज्ञानदृष्टिको पाया है, इसलिये तू मुझे सब सुना ॥८॥ सञ्जयने कहा, कि-हे महाबुद्धिमान् ! मैं आपको प्रणाम करके अपने ज्ञान के अनुसार इस पृथिवीके गुण कहता हूं, उनको तुम शास्त्रदृष्टिवाले होकर सुनो ॥९॥ इस पृथिवी पर स्थावर और जङ्गम दो प्रकारके प्राणी हैं, उनमें चरों में भी अण्डज, स्वेदज और जरायुज यह तीन प्रकारके हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! चर और जङ्गम प्राणियों में भी जरायुज श्रेष्ठ माने जाते हैं और जरायुजोंमें भी मनुष्य और पशु उत्तम हैं ॥ ११ ॥ हे पृथिवीपते राजन् ! उनमें भी यज्ञोंकी विधियोंको बतानेवाले वेदोंमें नानाप्रकारके रूपों वाले चौदह भेद कहे हैं ॥ १२ ॥ उनमें भी ग्रामवासी प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और वनवासियोंमें सिंह श्रेष्ठ मानेजाते हैं, वह सब एक दूसरेके ऊपर अपनी आजीविका रखते हैं ॥१३॥ हे राजन् ! जो पृथिवी

वल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥१४॥ तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पंचसु । चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसंमता ॥ १५ ॥ य एतां वेदगायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्वितां । तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति॥१६॥ अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः । सिंहा-व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा ॥ १७ ॥ ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्तारण्याः स्मृता नृप । गौरजाविमनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः॥१८ एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः । एते वै पशवो राजन् ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥१९॥ भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं

को फोड़कर उत्पन्न होते हैं वह स्थावर उद्भिज्ज कहलाते हैं और उनमें वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली तथा त्वक्सार ये तृण की जातिके भी पांच भेद हैं ॥ १४ ॥ स्वेदज प्राणी भी उद्भिज्जोंके भीतर ही मानेजाते हैं, क्यों कि—वह जलको फोड़कर उत्पन्न होते हैं अण्डजोंको जरायुजोंमें माना जाता है. (क्योंकि—अण्डज और जरायुज दोनों मैथुनसे उत्पन्न होते हैं) सात प्रकारके ग्रामके पशु, सात प्रकारके वनके पशु और पांच प्रकारके उद्भिज्ज सब मिलकर उन्नीस प्रकारके हुए, उनमें उनकी मूल प्रकृति पंचमहाभूतोंको इकट्ठा करदेनेसे चौबीस भेद होते हैं, इस चौबीस तत्त्वरूप कार्यकारणात्मक ब्रह्म को गायत्री नामसे कहा है ॥१५॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! सकल गुणोंसे युक्त, पवित्र और कार्य कारणरूप गायत्रीमंत्रस्वरूप ब्रह्मको जो पुरुष ठीकर जानता है वह जन्म मरणसे छूट जाता है ॥ १६ ॥ इनकी व्याख्या इसप्रकार है, कि सात वनके और सात ग्रामके हैं, सिंह, वराह, शूकर, भैंसे, हाथी ॥ १७ ॥ रीछ और वानर ये सात प्राणी हे राजन ! वनवासी कहलाते हैं और गौ, बकरी, भेड़, मनुष्य घोड़े खच्चर और गधे इन सातों को साधु पुरुष ग्रामपशुओंमें गिनते हैं इसप्रकार हे राजन् ! वनके और ग्रामके चौदह प्रकारके पशु कहलाते हैं ॥ १८ ॥१९॥ यह सब जगत् इस भूमि

विनश्यति । भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव सनातनी ॥ २० ॥ यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् । तत्रातिगृद्धा राजानो विनिघ्नंतीतरेतरम् ॥ २१ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सञ्जय । तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः ॥ १ ॥ प्रमाणञ्च प्रमाणज्ञ पृथिव्या मम सर्वतः । निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सञ्जय । सञ्जय उवाच पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात् । जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥ भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च । गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥ ४ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पंचमः । भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता

पर ही उत्पन्न होता है और इस भूमिपर ही नष्ट होजाता है यह भूमि ही प्राणियोंके लिये निवासस्थान है तथा यह भूमि ही सनातन है ॥ २० ॥ जिसकी भूमि है उसका यह स्थावर जङ्गम सब जगत् है और उस भूमि में ही अत्यन्त लोभ करनेवाले राजे आपसमें एक दूसरे का प्राणनाश करते हैं ॥ २१ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे सञ्जय ! नदियोंके और पर्वतोंके नाम तथा भूमिपर जो और अनेकों देश हैं उनके नाम ॥ १ ॥ हे परम चतुर ! पृथिवीका नाप तथा जो कोई वन हों उन सबके नाम मुझे विस्तारसे सुना ॥ २ ॥ सञ्जय बोला, कि—हे महाराज धृतराष्ट्र ! भूतल परकी सब वस्तुएं पञ्चमहाभूतका संग्रह है इस लिये विद्वान् पुरुष पृथिवी परकी सब वस्तुओंको आपसमें एक समान कहते हैं ॥ ३ ॥ भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश इन पांच तत्त्वोंमें पहिले २ से अगला २ अधिक गुणोंवाला है और भूमि सबोंमें प्रधान मानी जाती है ॥ ४ ॥ तत्त्वको जानने वाले ऋषियोंने शब्द स्पर्श, रूप, रस और पांचवां गन्ध ये भूमि

ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ ५ ॥ चत्वारोऽप्सु गुणा राजन् गन्धस्तत्र न विद्यते । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः । शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु ॥६॥ एत पंच गुणा राजन् महाभूतेषु पंचसु । वर्त्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ॥७॥ अन्योऽन्यं नाभिवर्त्तन्ते साम्यं भवति वै यदा ॥८॥ यदा तु विषमीभावमाविशंति परस्परम् । तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहंति नान्यथा ॥ ९ ॥ आनुपूर्व्या विनश्यंति जायते चानुपूर्वशः । सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥ १० ॥ तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पांचभौतिकाः । तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ११ ॥ अचिंत्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् । प्रकृतिभ्यः प

के गुण कहे हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जलमें चार गुण हैं, उसमें गन्ध नहीं है. शब्द स्पर्श और रूप ये तीन तेजके गुण हैं, शब्द और स्पर्श ये दो वायुके गुण हैं और आकाशमें एक गुण शब्द ही है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार यह पाँच गुण, जिनमें सकल भूत रहते हैं ऐसे अखिल ब्रह्माण्डके आश्रयरूप पञ्च महाभूतोंमें रहते ॥ ७ ॥ जब वह पञ्चमहाभूत समानतामें होते हैं उस समय एक दूसरेके साथ नहीं मिलते हैं ॥ ८ ॥ परन्तु जब उनमेंसे कोई कम और कोई अधिक होता है तब वह आपसमें मिलजाते हैं और जब ऐसा होता है तब उनमेंसे जीवोंके देह बनकर उन में जीव प्रवेश करते हैं. परन्तु इनकी समान दशा में ऐसा नहीं होसकता ॥ ९ ॥ इन सबोंकी उत्पत्ति क्रमसे होती है, अर्थात् पृथिवीका जलमें जलका तेजमें, तेजका वायुमें और वायुका आकाशमें लय होता है और फिर आकाशमेंसे वायुका, वायुमें से तेजकी, तेजमेंसे जल की और जलमेंसे पृथिवीकी क्रमसे उत्पत्ति होती है, किसी भी भूतका परिमाण नहीं है सब अपरिमेय और ऐश्वर्ययुक्त हैं १० ॥ जहां तहां हरएक पदार्थोंमें पञ्चभूतोंकी प्रकृति देखनेमें आती हैं, मनुष्य तर्कशक्तिके द्वारा इन दीखतेहुए पञ्चभूतोंसे बने पदार्थों के प्रमाण कहने के लिये तत्पर होते हैं ॥ ११ ॥ परन्तु जो पदार्थ

यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥ सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनंदन । परिमण्डलो महाराज द्वीपोसौ चक्रसंस्थितः ॥ १३ ॥ नदीजलप्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाभ्रसन्निभैः । पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४ ॥ वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नधनधान्यवान् । लवणेन समुद्रेण समन्तात् परिवारितः ॥ १५ ॥ यथाहि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः । एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥ १६ ॥ द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान् । सर्वौषधिसमावायः सर्वतः परिवारितः ॥ १७ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि सुदर्शनद्वीपवर्णने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । उक्तो द्वीपस्य संक्षेपो विधिवद्बुद्धिमंस्त्वया ।

विचारमें न आसकते हों, उनका तर्कके द्वारा निर्णय न करे, क्योंकि—जो पदार्थ प्रकृतिसे परली ओर है वह तो अचिन्त्य है, विचारमें आही नही सकता, यही तो अचिन्त्य वस्तुका लक्षण है ॥ १२ ॥ हे कुरुनन्दन ! अब मैं आपको सुदर्शन द्वीपका वृत्तान्त सुनाऊँगा, हे महाराज ! यह द्वीप चक्रकी समान मण्डलाकारसे बसा हुआ है ॥ १३ ॥ नदियोंके जलों से, मेघोंकी समान पर्वतोंसे अनेकों आकारके रमणीय पुर और नगरोंसे, फूल खिलेहुए वृक्षोंसे तथा खारी समुद्रसे घिरा हुआ है और जैसे बहुतसे धन धान्यका सम्पदावाला पुरुष दर्पणमें अपना मुख देखता है तैसे ही सुदर्शन द्वीप चन्द्रमण्डलमें दीखता है ॥ १४ ॥ १६ ॥ यह सुदर्शन द्वीप चारों ओर सब प्रकारकी औषधिओंसे ढका हुआ है, इसके दो भागोंमें पीपल है और दो भागोंमें बड़ाभारी शशा (खरगोश) है इसको छोड़कर शेष सब स्थान जलमय है, इसके सिवाय और वृत्तान्त संक्षेपमें कहता हूं, उसको भी सुनो ॥१७॥ ॥ १८ ॥ पांचवां अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ छ छ छ

धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे बुद्धिमान् सञ्जय ! तूने यह विधिवत्

तत्त्वज्ञश्चासि सर्वस्य विस्तराद् ब्रूहि सञ्जय ॥ १ ॥ यावान् भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे । तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं राज्ञा स पृष्टस्तु सञ्जयो वाक्यमब्रवीद् । संजय उवाच । प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ३ ॥ हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः । नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसन्निभः ॥४॥ सर्वधातुविचित्रश्च शृङ्गवान्नामपर्वतः । एते वै पर्वता राजन् सिद्धचारणसेविताः ॥ ५ ॥ तेषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः । तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत॥६॥ वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः । इदन्तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥७॥

द्वीपका वर्णन मुझसे संक्षेपमें कहा, परन्तु तू सब तत्त्वका ज्ञानने वाला है, इसलिये इस सबको विस्तारके साथ कहकर सुना॥१॥ शश लक्षणमें जो भूमिका फैलाव दीखता है वह उसका प्रमाण तथा पीपलका समान जो भाग कहा है उसको भी विस्तारके साथ कहकर सुना ॥ २ ॥ वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-राजा के ऐसा पूछने पर सञ्जयने उनसे फिर इसप्रकार कहा, सञ्जय बोला, कि—हे महाराज ! पूर्व दिशासे लेकर पश्चिम दिशा तक पहुंचे हुए छः वर्ष नामके पर्वत हैं, यह इतने बड़े हैं, कि—पूरब तथा पच्छिमके समुद्रमें घुसे हुए हैं ॥ ३ ॥ हिमवान्, हेमकूट, पर्वतोंमें उत्तम निषध, नील, चन्द्रमाकी समान श्वेत वैदूर्यमय ॥ ४ ॥ और सकल धातुओंके कारण विचित्र दीखनेवाला शृङ्गवान्, हे राजन् ! इन छहों पर्वतोंमें सिद्ध और चारण रहते ह ॥ ५ ॥ इनमें से हरएक पर्वतपरकी भूमिका विस्तार हजार २ योजनका है और वहां रमणीय तथा पवित्र स्थान हैं और हे भारत ! यह देश वर्ष नामसे कहे जाते ह ॥ ६ ॥ इन देशोंमें अनेकों प्रकारके अनेकों प्राणी रहते हैं, जिसमें हम रहते हैं यह देश भारतवर्ष कहलाता है और इसके अनन्तर उत्तर दिशामें जो

हेमकूटाद् परञ्चैव हरिवर्षं प्रचक्षते । दक्षिणेन तु नीलस्य निषध-स्योत्तरेण तु ॥ ८ ॥ प्रागायतो महाभाग माल्यवान्नाम पर्वतः । ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥ ९ ॥ परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः । आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥ १० ॥ योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः । अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां महीपते ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् च लोकानावृत्य तिष्ठति । तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता विभो ॥ १२ ॥ भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत । उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ १३ ॥ विहगः सुमुखो यस्तु सुपर्णस्यात्मजः किल । स वै विचिन्तयामास सौवर्णान् वीक्ष्य वायसान् ॥१४॥ मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम् । अविशेष

देश है वह हिमवान् वर्ष कहलाता है ॥ ७ ॥ हेमकूटके परलीपार जो भूमि है वह हरिवर्ष कहलाती है, नीलपर्वतके दक्षिणमें और निषधके उत्तरमें हे महाभाग ! पूर्व पश्चिम पड़ाहुआ माल्यवान् नाम का पर्वत है, माल्यवान्के ऊपर कहिये उत्तरमें गन्धमादन नामका पर्वत है ॥ ८-९ ॥ इन दोनों पहाड़ोंके बीचमें चारों ओरसे गोल आकार वाला सुवर्णका मेरु पहाड़ है और प्रातःकालके सूर्यकी समान तथा धुएँ रहित अग्निकी समान दमकता रहता है ॥१०॥ हे राजन् ! यह पहाड़ चौरासी हजारयोजन ऊँचा और चौरासी हजार योजन ही नीचे भूमिमें गड़ा हुआ है ॥ ११ ॥ यह मेरु पहाड़ ऊपर नीचे तथा मध्यमें लोकोंको घेरे हुए खड़ा है, हे विभो ! उसके आस पासके भागोंमें चार द्वीप स्थित हैं ॥ १२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! वह द्वीप भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप और उत्तर कुरु नामके हैं तथा उनमें पुण्यात्मा पुरुष रहते हैं ॥ १३ ॥ सुपर्णका पुत्र सुमुख नामका गरुड़ पक्षी, मेरु परके कौओंको भी सोनेके देखकर तथा यह मेरु उत्तम मध्यम अधम सबको समान भावसे रखता है, यह देखकर क्रोधमें भरगया था और इसको छोड़कर

करो यस्मात्तस्मादेनं त्यजाम्यहम् ॥ १५ ॥ तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषाम्वरः । चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥ स पर्वतो महाराज दिव्यपुष्पफलान्वितः । भवनैरावृतः सर्वैर्जाम्बूनदपरिष्कृतैः ॥ १७ ॥ तत्र देवगणा राजन् गन्धर्वासुर-राक्षसाः । अप्सरोगणसंयुक्ता शैले क्रीडन्ति सर्वदा ॥ १८ ॥ तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चापि सुरेश्वरः । समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः ॥ १९ ॥ तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हाहाहूहूः । अभिगम्यामरश्रेष्ठांस्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥ २० ॥ सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः । तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वणि पर्वणि ॥ २१ ॥ तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते । इमानि तस्य रत्नानि यस्येमे रत्नपर्वताः ॥ २२ ॥ तस्मात् कुवेरो भगवांश्चतुर्थं भाग-

---

चलागया॥१५॥ ज्योतिषचक्रमें का मुख्य सूर्य, नक्षत्रों सहित चन्द्रमा और वायुदेव भी निरन्तर मेरुकी प्रदक्षिणा किया करते हैं॥१६॥ हे महाराज ! यह पहाड़ दिव्य फूल और फलोंवाला है तथा यह सब ही पहाड़ दमकते हुए सोनेके सुन्दर भवनोंसे छाया हुआ है ॥१७॥ हे राजन् ! उस पहाड़ पर सदा देवताओंके गण, गन्धर्व सुर, और राक्षस अप्सराओंके साथ क्रीडा करते हैं ॥ १८ ॥ तहां ब्रह्मा रुद्र और सुरेश्वर इन्द्र आदि इकट्ठे होकर बड़ी बड़ी दक्षिणाओंवाले अनेकों प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥ १९ ॥ तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु हाहा और हूहू सदा अनेकों स्तोत्रोंसे देवताओं को प्रसन्न करते हुए तहां विचरा करते हैं ॥ २० ॥ हरएक पर्वकालमें महात्मा सप्त ऋषि और प्रजापति कश्यपजी इस पहाड़ पर जाते हैं और तेरा कल्याण हो, ऐसा आशीर्वाद देते हैं ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इस पहाड़के शिखरों पर कविके पुत्र उशना दैत्योंके साथ विहार करते हैं और जहां २ रत्न उत्पन्न होते हैं वह सब पहाड़ रत्नोंसे भरे हुए शिखरोंवाले मेरुके शाखा पर्वत कहलाते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् कुवेर इन रत्नोंकी उत्पत्तिमेंसे

मश्नुते । ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति ॥ २३ ॥ पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् । कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ॥२४॥ तत्र साक्षात् पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः । उमासहायो भगवान् रमते भूतभावनः ॥ २५ ॥ कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् । त्रिभिर्नेत्रैः कृतां द्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २६ ॥ तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः । पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ॥२७॥ तस्य शैलस्य शिखरात् क्षीरधारा नरेश्वर । विश्वरूपापरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ॥२८॥ पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गंगा भागीरथी शुभा । प्लवंती प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ॥ २९ ॥ तथा ह्युत्पादितः पुण्यः स

चौथा भाग लेते हैं और उस धनका सोलहवाँ भाग मनुष्योंको देते हैं ॥२३॥ मेरु पहाड़के उत्तरी भागमें अनेकों सुन्दर शिलाओंसे भरा हुआ और सब ऋतुओंके फूलोंसे युक्त अति रमणीय कर्णिकार नामका एक दिव्य वन है ॥ २४ ॥ तहाँ दिव्य प्राणियोंको साथमें लिये हुए साक्षात् प्राणियोंका कल्याण करने वाले पशुपति शङ्कर उमा देवीके साथ रमण करते हैं ॥ २५ ॥ उमाके साथ रमण करते समय पैरोंतक लटकने वाली कनेरके फूलोंकी लम्बी माला पहरते हैं और उदय हुए तीन सूर्योंकी समान तीन नेत्रोंसे वह भगवान् तहाँ उजाला किये रहते हैं ॥ २६ ॥ इनका दर्शन बड़ा भारी तप करने वाले, सिद्ध, सुन्दर व्रत धारण करने वाले और सत्यवादी ही कर सकते हैं क्योंकि-दुराचरणियों को भगवान् महेश्वरका दर्शन नहीं होसकता ॥२७॥ हे राजन् ! उस पहाड़के शिखर परसे दूधकी धारकी समान सफेद धारवाली विश्वरूपा बड़ी उछलती और भयानक शब्द करती हुई, पवित्र जलवाली, मङ्गलकारिणी भागीरथी गङ्गा बड़े वेगसे चन्द्रमस नाम वाले बड़े विशाल और अतिसुन्दर सरोवरमें गिरती है तथा अनेकों पुण्यात्मा उसके किनारे पर रहते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

ह्रदः सागरोपमः । तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि ॥ ३० ॥ शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव पिनाकधृक् । मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमाली महीपते ॥ ३१ ॥ जम्बुखण्डे तु तत्रैव महाजनपदो नृप । आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां तत्र भारत ॥३२॥ सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ ३३ ॥ जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः । गन्धमादनशृंगेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥ ३४ ॥ संवृतोऽप्सरसां संघैर्मोदते गुह्यकाधिपः । गन्धमादनपार्श्वे तु परे त्वपरगण्डिकाः ॥ ३५ ॥ एकादशसहस्राणि वर्षाणां परमायुषः । तत्र हृष्टा नरा राजंस्तेजोयुक्ता महाबलाः । स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ।३६।

गङ्गाकी धारके पड़नेसे उत्पन्न हुआ वह पवित्र और सुन्दर सरोवर सागरकी उपमा देने योग्य है, जिसको पर्वत भी धारण नहीं करसकते ऐसी दुर्धरा गङ्गाको पिनाकधारी शिवजी सैंकड़ों और सहस्रों वर्ष पर्यन्त अपने शिर पर धारण किये रहे थे, हे राजन्! मेरुके पश्चिममें केतुमाल पर्वत है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राजन्! तहां जम्बूखण्ड नामका बड़ाभारी देश है और हे भारत! तहां रहने वालोंकी आयु दश हजार वर्षकी है ॥ ३२ ॥ तहांके पुरुष सुवर्णकी समान वर्ण वाले और स्त्रियें अप्सराओंकी उपमा देने योग्य हैं, वह सब रोग रहित, शोकरहित तथा सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं ॥ ३३ ॥ तहांके पुरुष तपे हुए सोनेकी समान कान्ति वाले उत्पन्न होते हैं, गन्धमादन पहाड़ पर गुह्यकोंका स्वामी कुबेर, राक्षसोंके और अप्सराओंके गणोंसे घिरकर आनन्द मानता है, गंधमादनके आस पास बहुतसे छोटे २ पहाड़ हैं ॥ ३४-३५ ॥ तहां रहनेवालोंकी ग्यारह हजार वर्षकी परमायु होती है, हे राजन्! महाबली, तेजस्वी और आनन्दयुक्त पुरुष तहां रहते हैं तथा उनकी स्त्रियें भी कमलकी समान वर्णवाली और देखनेमें मनको प्रस-

नीलात्परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम् । वर्षमैरावतं राजन् नाना-
जनपदावृतम् ॥ ३७ ॥ धनुः संस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
इलावृतं मध्यमन्तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ॥३८ ॥ उत्तरोत्तरमेतेभ्यो
वर्षमुद्रिच्यते गुणैः । आयुः प्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥३९॥
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत । एवमेषा महाराज पर्वतैः
पृथिवी चिता ॥ ४० ॥ हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः ।
यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकैः सह मोदते ॥४१॥अस्त्युत्तरेण कैलासं
मैनाकं पर्वतं प्रति । हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः
॥ ४२ ॥ तस्य पार्श्वे महद्दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम् । रम्यं विन्दु-
सरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥४३ ॥ दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गा-

न्नता देनेवाली हैं ॥ ३६ ॥ नीलगिरिसे आगे श्वेतगिरि है और
उसके आगे हेमगिरि नामका पहाड़ है, हे राजन् ! उसके आगे
अनेकों देशोंसे घिरा हुआ ऐरावत वर्ष है ॥३७॥ हे महाराज !
सबसे उत्तरमें ऐरावत वर्ष और सबसे दक्षिणमें पहिले कहा हुआ
भारतवर्ष इन दोनों देशोंका आकार इकट्ठी हुई धनुषकी दोनों
अनियोंकी समान है, यह पांच वर्ष (श्वेत, हैरण्यक, इलावृत्त,
हरिव और हैमतवर्ष) मध्यभागमें हैं और इलावृत्त पांचोंके बीचमें
है ॥ ३८ ॥ ये सातों देश (भारत और ऐरावत सहित) उत्तरो-
त्तर आयु,आरोग्य, धर्म,अर्थ और काममें एक एकसे अधिक हैं ३९
हे भारत ! इन देशोंमें अनेकों प्रकारके प्राणी रहते हैं, उन
सबोंकी एकसमान आयु होती है, हे महाराज ! इसप्रकार सब
पृथिवी पहाड़ोंसे छायी हुई है ॥४०॥ तहां कैलास नामसे प्रसिद्ध
हेमकूट पर्वत बड़ा भारी है, हे राजन् ! जहां कुवेर गुह्यकों के साथ
आनन्दमें रहते हैं ॥ ४१ ॥ कैलास पर्वतसे उत्तरमें मैनाक पर्वतके
समीप सुवर्णके शिखरों वाला दिव्य मणिमयगिरि है ॥ ४२ ॥
इस पहाड़के एक बाजू पर सोनेकी रेतीके किनारों वाला एक
सुन्दर विन्दुसर नामका बड़ाभारी सरोवर है तहां राजा भगीरथ

मुवास बहुलाः समाः । यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ॥ ४४ ॥ तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः । स्रष्टा भूतपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः ॥ ४५ ॥ उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः । नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः॥४६॥ तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमन्तु प्रतिष्ठिता । ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥ वस्वौकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती । जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ॥४८॥ अचिन्त्या दिव्यसंकाशा प्रभोरेषैव सन्निधिः । उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥ ४९ ॥ दृश्याऽदृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती । एता दिव्याःसप्त गङ्गा त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥५०॥रक्षांसि वै हिमवति हेम-

---

गङ्गाको देखकर बहुतसे वर्षों तक रहे थे,तहां यज्ञोंके खम्भे मणियों से जड़े हुए और टूटी हुई यज्ञकी वेदियें सोनेकी बनी हैं ॥४३॥ ॥ ४४ ॥ तहां इन्द्रने यज्ञ करके बड़ाभारी यश और सिद्धि पायी थी,तहां ही सब लोकोंको उत्पन्न करनेवाले उग्रतेजवाले सनातन रुद्र भगवान् की सब लोग चारों ओरसे उपासना करते हैं तहां नर, नारायण, ब्रह्मा, मनु और पांचवें महादेवजी सदा निवास करते हैं ॥४५॥४६॥ त्रिपथगामिनी दिव्य गङ्गा दिव्य ब्रह्मलोकसे उतर कर पहिले तहां ही स्थित हुई थी और फिर सात धार होकर फैल गयी ॥ ४७ ॥ वह सात धारें ये हैं—वस्वौकसारा, नलिनी, पवित्र करने वाली सरस्वती, जंबूनदी, सीता गङ्गा और सातवीं सिन्धु ॥ ४८ ॥ यह सात नदीरूप परमेश्वरकी दिव्य रचना लोकोंका बड़ा ही उपकार करने वाली हैं, जहां लोग सहस्रों युगोंकी समाप्ति तक यज्ञोंके द्वारा परमात्माकी उपासना कर सकते हैं ॥ ४९ ॥ सरस्वती नामवाली गङ्गाकी धारा कहीं दीखती है और कहीं छिपी रहती है, ये दिव्य सात गङ्गायें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ५० ॥ हिमवान् पर राक्षस रहते हैं, हेमकूट पर गुह्यक रहते हैं निषध पर्वत पर सर्प और नाग रहते हैं और

कूटे तु गुह्यकाः। सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ॥५१॥ देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते। गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा। शृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसञ्चरः ॥ ५२॥ इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः। भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ ५३ ॥ तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी। अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता॥५४॥यान्तु पृच्छसि मां राजन् दिव्यामेतां शशाकृतिम्। पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे। कर्णौ तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च ताम्रपर्णशिलो राजञ्छ्रीमान् मलयपर्वतः। एतद् द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशसंस्थितम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

गोकर्ण तपस्वियोंका वन हैं ॥ ५१ ॥ श्वेत पर्वत देवता और असुर सबोंका निवासस्थान कहलाता है गन्धर्व नित्य निषध पर रहते हैं तथा नीलगिरि पर ब्रह्मर्षि रहते हैं और हे महाराज! शृङ्गवान् तो केवल देवताओंके ही विचरनेका स्थान है ॥ ५२ ॥ हे महाराज! जिस पर स्थावर और जङ्गम सब प्राणी रहते हैं ऐसे सात वर्षोंका विभाग इस प्रकार किया है ॥ ५३ ॥ तहां देवताओंका और मनुष्योंका बड़ाभारी ऐश्वर्य है, जिसकी गिनती नहीं होसकती, जो अपना कल्याण चाहता हो उसको इसके ऊपर श्रद्धा रखनी चाहिये ॥ ५४ ॥ हे राजन्! तुमने मुझसे जिस दिव्य शशाकृतिके विषयमें पूछा था, उन सुन्दर देशोंका वर्णन मैंने तुम्हें कह कर सुनादियो, परन्तु उस शशके दोनों ओर दक्षिण और उत्तरमें दो वर्ष (देश) हैं, उनका वर्णन भी मैंने तुम्हें सुना दिया, नागद्वीप और काश्यप द्वीप ये दोनों शशाकृतिके कानरूप हैं ॥ ५५ ॥ हे राजन्! ताँबेकेसे रङ्गकी शिलाओं वाला परमशोभायुक्त जो मलयगिरि है वह जम्बूद्वीपमें शशकी समान दीखता है और जम्बूद्वीपका वासनामय दूसरा रूप है ॥ ५६ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ छ

धृतराष्ट्र उवाच। मेरोरथोत्तरं पार्श्वं पूर्वं चाचक्ष्व सञ्जय। निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तञ्च पर्वतम् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच। दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे। उत्तराः कुरवो राजन् पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥२॥ तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः। पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥ सर्वकामफलास्तत्र केचिद् वृक्षा जनाधिप। अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ॥ ४ ॥ ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसञ्चामृतोपमम्। वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ ५ ॥ सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका। सर्वर्त्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप। पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ॥६॥ देव-

---

धृतराष्ट्रने कहा, कि हे महाबुद्धि सञ्जय ! मेरुके उत्तर तथा पूर्वके भागका तथा माल्यवान् पर्वतका पूरा २ वर्णन करके सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! नील गिरिके दक्षिण और मेरु पर्वतके उत्तर भागमें एक उत्तरकुरु देश है, उसमें सिद्ध पुरुष रहते हैं ॥ २ ॥ तहांके वृक्ष मीठे फलों वाले और सदा फूल फलोंसे लदे हुए रहते हैं, फूल बड़े सुगन्धि वाले और फल बड़े रसीले होते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन्! तहांके कोई वृक्ष तो इच्छानुसार सकल फल देने वाले हैं और हे राजन् ! और कितने ही वृक्ष तहां क्षीरी नामके हैं ॥ ४ ॥ जो सदा दूध और अमृतकी समान स्वादवाला छः प्रकारका रस टपकाया करते हैं, वह वृक्ष वस्त्रोंको उत्पन्न करते हैं और फलोंमेंसे गहने भी उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥ तहांकी सब भूमि मणियों की है और तहां की वालू सोनेके छोटे२ कणोंसे मिली है, हे राजन् ! उस भूमिको स्पर्श करने पर सब ही ऋतुओंका सुख मिलता है और कीच तहां है ही नहीं, तहां की छोटी २ तलैयें भी सुखदायक स्पर्श वालीं देखनेमें सुन्दर और जल पीनेमें बड़ा ही गुणकारक हैं ॥ ६ ॥ तहां सब

लोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः । शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शिनाः ॥ ७ ॥ मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । तेषान्ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसन्निभम् ॥८॥ मिथुनं जायते काले समन्ताच्च प्रवर्द्धते । तुल्यरूपगुणोपेतं समवेशं तथैव च ॥ ९ ॥ एवमेवानुरूपश्च चक्रवाक समं प्रभो। निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ १० ॥ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जीवन्ति ते महाराजन् चान्योऽन्यं जहन्त्युत ॥ ११ ॥ भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः । तान्निर्हरन्तीह मृतान् दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥ १२ ॥ उत्तराःकुरवो राजन् व्याख्यातास्ते समासतः । मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ॥ १३ ॥ तस्य मूर्धाभिषिक्तस्तु भद्रा-

---

ध्यमनु देवलोकसे गिरेहुए ही जन्म लेते हैं, वह सब विष्णुभक्तों के सङ्गी और देखनेमें बड़े ही प्यारे होते हैं॥७॥तहां स्त्री पुरुषोंके जोड़े बड़े सुन्दर उत्पन्न होते हैं, स्त्रियें अप्सराओंकी समान होती हैं और वह उन क्षीरी वृक्षोंके अमृतकी समान दूधको पीकर पलते हैं ॥ ८ ॥ तहां जो जोड़े उत्पन्न होते हैं वह एक ही समय में उत्पन्न होकर एक समान रूपसे ही पलते हैं, वह रूप, गुण और वेशमें एक दूसरेके समान होते हैं॥९॥ हे राजन् ! वह चक्रवाकके जोड़े कैसे आपसमें समान भाववाले, रोगरहित तथा नित्य प्रसन्न मनवाले होते हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! वह दशवार सहस्र वर्ष पर्यन्त और दश सौ अर्थात् ग्यारह सहस्र वर्ष पर्यन्त जीते हैं और आपसमें एक दूसरेका त्याग नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ तहां तीखी चोंचवाले और महाबली भारुण्ड नामके पक्षी होते हैं, वह मरे हुए प्राणियोंको लेजाकर पहाड़के खाड़ोंमें फेंकदेते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मैंने आपको उत्तर कुरुओंका वर्णन संक्षेपमें सुनाया, अब मैं तुमको मेरुके पूर्व भागका यथावत् वर्णन सुनाता हूं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मेरुके पूर्वमें भद्राश्व

श्वस्य विशाम्पते । भद्रसालवनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥ १४ ॥
कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः । द्रुमश्च योजनोत्सेधः
सिद्धचारणसेवितः ॥१५॥ तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महा-
बलाः । स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ १६ ॥
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णा पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रशीतलगात्र्यश्च
नृत्यगीतविशारदाः ॥ १७ ॥ दशवर्षसहस्राणि तत्रायुर्भरतर्षभ ।
कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥ १८ ॥ दक्षिणेन
तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु । सुदर्शनो नाम महान् जम्बूवृक्षः
सनातनः ॥१९॥ सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः । तस्य
नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ॥ २० ॥ योजनानां सह-

नामका एक मुख्य देश है, तहां भद्रशाल नामका वन और कालाम्र नामका बड़ाभारी वृक्ष है ॥ १४ ॥ हे महाराज ! वह कालाम्र वृक्ष बड़ा अच्छा मालूम होता है और उसमें सदा फूल फल लगे रहते हैं, वह चार कोस तक फैला हुआ है और उसकी छायामें सिद्ध चारण आदि रहते हैं ॥१५॥ तहांके वह प्रसिद्ध पुरुष श्वेतवर्णके, तेजस्वी और बड़े बली हैं तथा तहांकी स्त्रिये कुमुदकी समान रङ्गकी, देखनेमें बड़ी ही प्यारी लगती हैं ॥ १६ ॥ वह चन्द्रमाकी समान कान्तिवाली, चन्द्रमा की समान गौरवर्णी और पूर्णचन्द्रमा की समान मुखवाली होती हैं, उनके शरीर चन्द्रमाकी समान शीतल होते हैं और नाचने गानेमें बड़ी ही चतुर होती हैं ॥१७॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तहां आयु दशसहस्र वर्ष की होती है और तहां के निवासी कालाम्रवृक्षके रसको पीकर सदा अटलयौवन रहते हैं १८ नीलके दक्षिण और निषधके उत्तरमें देखनेमें बड़ा सुन्दर एक जम्बू नामका बड़ाभारी वृक्ष है ॥१९॥ वह बड़ा पुरातन सकल इच्छित पदार्थोंको देनेवाला, पुण्यवान् और सिद्ध चारणोंका सेवन किया हुआ है, इस वृक्षके ही नामसे प्रसिद्ध होनेके कारण यह देश सनातन से जंबूद्वीप नामवाला है ॥ २० ॥ हे भरतर्षभ !

स्रश्च शतश्च भरतर्षभ । उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृङ् मनुजेश्वर ॥ २१ ॥ अरत्नीनां सहस्रश्च शतानि दश पञ्च च । परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम् ॥२२॥पतमानानि तान्युर्वीं कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् । मुञ्चन्ति च रसं राजंस्तस्मिन् रजतसन्निभम् ॥२३॥तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप । मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा सम्प्रयात्युत्तरान् कुरून् ॥ २४ ॥ तत्र तेषां मनः शान्तिर्न पिपासा जनाधिप । तस्मिन् फलरसे पीते न जरा बाधते च तान् ॥ २५ ॥ तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् । इन्द्रगोपक-संकाशं जायते भास्वरन्तु तत् ॥२६॥ तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः । तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा ॥२७॥ नाम्ना सम्वर्त्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ । तथा माल्यवतः शृङ्गे

जम्बू वृक्ष एक हजार और एक सौ योजन ऊँचा है। हे मनुजेश्वर! वह वृक्षराज अपनी ऊँचाई से मानो आकाशको छुए रहता है ॥ २१ ॥ इस वृक्षमें पकते ही टूट जाने वाले फल होते हैं,उनकी तोल ढाई सहस्र अरत्नि होती है ॥ २२ ॥ ये फल पृथ्वी पर गिरते समय बड़ा शब्द करते हैं और गिर कर फूट जाने पर उन मेंसे चाँदीके रंगकी समान धौला रस पृथ्वी पर फैल जाता है ॥ २३ ॥ हे जनाधिप ! उस जम्बूवृक्षके फलका रस नदीकी समान होकर मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा करता हुआ उत्तरकुरु प्रदेशमें बहता है॥२४॥तहांकी प्रजा उस फलके रसको पीती है इससे हे राजन् ! उनके मनको शांति मिलती है फिर उनको पिलास लगती ही नहीं और न उनको वृद्धावस्था कष्ट देती है ॥ २५ ॥ तथा इस वनमें इन्द्रगोपकी समान पीले वर्णका और देवताओंको भी शोभित करे ऐसा तेजस्वी जांबूनद नामवाला सोना उत्पन्न होता है, तथा उदय होते हुए सूर्यकी समान रक्तवर्णके पुरुष भी उत्पन्न होते हैं तथा हे राजन् ! माल्यवान् पर्वतके शिखर पर सदा यज्ञाग्नि दिखाई देती है, यह अग्नि कालाग्नि सम्वर्तक नामसे कही

पूर्वपूर्वानुगण्डिकाः ॥ २८ ॥ योजनानां सहस्राणि पंचषणमाल्यवानथ । महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २९ ॥ ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे सर्वेषु साधवः । तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः । रक्षणार्थन्तु भूतानां प्रविशंते दिवाकरम् ॥ ३० ॥ षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च । अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य्य दिवाकरम् ॥ ३१॥ षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च । आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । वर्षाणाञ्चैव नामानि पर्वतानां च सञ्जय । आचक्ष्व मे यथा तत्त्वं ये च पर्वतवासिनः ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु । वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २ ॥ शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रिय-

---

जाती हैं तथा इस माल्यवान्के पूर्व में बहुत से छोटे छोटे पर्वत हैं वह ग्यारह २ योजन ऊँचे होते हैं तथा वह माल्यवान्के नाम से प्रसिद्ध हैं तहां सुवर्णकेसे वर्णके ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट हुए मनुष्य ही जन्म लेते हैं और वे सब ब्रह्मसाधन ही करते हैं वह उग्र तप करते हैं ब्रह्मचर्य पालते हैं और अंत में वे प्राणिमात्रके कल्याण के लिये सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ २९—३० ॥ इन साधुपुरुषोंमें छियासठ सहस्र तो सूर्यनारायणको घेर कर अरुण के आगे २ चलते हैं इतना ही नहीं परन्तु वह छियासठ सहस्र वर्ष तक इस प्रकार सूर्यका ताप सहकर चन्द्रमण्डलमें प्रवेश करते हैं ॥ ३१—३२ ॥ सातवां अध्याय समाप्त॥ ७ ॥ छ

धृतराष्ट्रने बूझा कि-हे सञ्जय ! सकल वर्षोंके और पर्वतोंके नाम तथा वहां रहनेवाले लोकोंका वर्णन तू मुझै यथार्थरीतिसे सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि-श्वेतपर्वतके दक्षिणमें और निषधके उत्तरमें रमणक नामका देश है,तहां पवित्र कुलमें उत्पन्न हुए अतीव सुन्दर शत्रुशून्य साढ़े ग्यारह सहस्र वर्षकी आयु वाले और सदा

दर्शनाः । निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ३ ॥ दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पंच च । जीवंति ते महाराज नित्यं मुदितमानसाः ॥ ४ ॥ दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु । वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥ ५ ॥ यत्र चायं महाराज पक्षिराड् पतगोत्तमः । यक्षानुगा महाराज धनिनः प्रियदर्शनाः॥६॥ महाबलास्तत्र जना राजन् मुदितमानसाः । एकादशसहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ ७ ॥ आयुःप्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पंच च । शृङ्गाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप ॥ ८ ॥ एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् । सर्वरत्नमयश्चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ ९ ॥ तत्र स्वयम्प्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली । उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ॥ १० ॥ वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गमतः परम् । न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः ॥ ११ ॥ चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवावृतः । पद्मप्रभाः

आनन्दमें मग्न रहनेवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं और तहां रहते हैं ॥ २—४ ॥ नीलके दक्षिण और निषधके उत्तरमें हिरण्मयवर्ष है, इस देशमें हैरण्वती नदी बहती है, तहां हे महाराज ! पक्षिराज गरुड और यक्षों सहित दर्शनीय कुवेर भी रहता है, हे राजन ! तहां प्रसन्न मनवाले और महाबली पुरुष उत्पन्न होते हैं, हे राजन् ! वह बारह सहस्र पांच सौ वर्ष तक पुण्यभोग भोगते हैं , हे राजन् ! शृङ्गपर्वतके तीन सुन्दर शिखर हैं॥५-८॥एक शिखर मणियोंसे भरा हुआ है दूसरा अद्भुत शिखर रजतमय है और तीसरा सुन्दर भवन तथा सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित हैं,और अपने आप प्रकाश करनेवाली शाण्डिली नामकी देवी तहां रहती है, हे राजन् ! शृङ्गपर्वतके उत्तरमें समुद्र तक ऐरावत वर्ष है, उसके समीप ही उसकी समान महिमावाला शृङ्गवान् पर्वत है, इस पर्वत पर सूर्य नहीं तपते और मनुष्य वृद्ध नहीं होते हैं ॥९-११॥नक्षत्रों सहित चन्द्रमा ज्योतिर्मयसा होकर

पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ १२ ॥ पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः । अनिष्पन्दा इष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः ॥१३॥ देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप । त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणान्ते जनाधिप ॥ १४ ॥ आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम । क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः । हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकामये ॥ १५ ॥ अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोजवम् । अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम् ॥ १६ ॥ स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ । संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्त्ता कारयिता तथा ॥ १७ ॥ पृथिव्यापस्तथाकाशः वायुस्तेजश्च पार्थिव । स यज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः॥१८॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तः संजयेन धृतराष्ट्रो महामनाः । ध्यानमन्वगमद्राजा पुत्रान्

तहां प्रकाश करता है, तहां कमलकी समान कांतिवाले, कमल केसे वर्णके, और कमलकी समान नेत्रोंवाले ॥ १२ ॥ तथा कमलकी समान सुगंधिवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं, हे नृप ! वह विना खाये जीवित रहते हैं, जितेन्द्रिय, देवतुल्य, सुगंधप्रिय और रजोगुणरहित होते हैं तथा देवलोकसे भ्रष्ट हुए होते हैं, हे राजन् ! उनकी आयु तेरह सहस्र वर्षकी होती है और हे राजन! इतने ही वर्ष वह जीवित रहते हैं, क्षीरोद समुद्रसे उत्तरमें सोनेके बनाए हुए शकट पर भगवान् विष्णु निवास करते हैं ॥ १३—१५ ॥ यह विष्णुका यान आठ चक्रवाला, सब प्राणियोंसे युक्त, मनकी समान तेजवाला, अग्निकी समान वर्ण वाला, महातेजस्वी और सुवर्णसे विभूषित है ॥ १६ ॥ हे भरतर्षभ ! वह देव सब प्राणियोंके ईश्वर और व्यापक हैं, वह ही संक्षेप, विस्तारके कर्ता तथा करवाने वाले हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और तेज भी वही हैं वह सब प्राणियोंके यज्ञस्वरूप हैं और अग्नि उनका हवि ग्रहण करनेका मुख है ॥ १८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजन् ! सञ्जयके पाससे इस प्रकार सुनता हुआ महामना राजा

प्रति जगाम्नृपः ॥१९॥ सोऽवचिन्त्य महातेजाः पुनरेवाब्रवीद्वचः । असंशयं सूतपुत्र कालः संक्षिपते जगत् ॥ २० ॥ सृजते च पुनः सर्वं नेह विद्यति शाश्वतम् । नरो नारायणश्चैव सर्वज्ञः सर्वभूतहृत् ॥ २१ ॥ देवा वैकुण्ठमित्याहुर्नरा विष्णुमिति प्रभुम् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्च्छितं बलम् । तत्रातिमात्रलुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ १ ॥ यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र मे सज्जते मनः । एतन्मे तत्त्वमाचक्ष्व त्वं हि मे बुद्धिमान्मतः ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । न तत्र पाण्डवा गृद्धाः शृणु राजन् वचो मम । गृद्धो दुर्योधनस्तत्र शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ३॥

धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके संबंधमें विचार करता हुआ ध्यानपरायण होगया ॥ १९ ॥ कुछ समय तक विचार कर महातेजस्वी वह राजा बोला कि—ओ सूतपुत्र ! वास्तवमें इस जगत्के नाशका समय आही गया है ॥ २० ॥ अरे ! कुछ भी सदा रहने वाला नहीं है सर्वज्ञ नर और नारायण ही सबका संहार करते हैं और केवल वह ही फिर सब रचते हैं ॥ २१ ॥ देवता इन ही प्रभु को वैकुण्ठवासी कहते हैं और मनुष्य इनको ही विष्णु कहते हैं ॥ २२ ॥ आठवां अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने बूझा कि—हे सञ्जय ! जो भारतवर्ष है और जहां इतनी बड़ी भारी सेना (लड़नेमें) मोहित होगई है, जिसको पानेके लिये मेरा पुत्र दुर्योधन अतीव ललचा गया है और जिसके लिये राजा पाण्डुके पुत्र भी लोभ करने लगे हैं और जिसके लिये मेरे मनमें भी लोभ समा गया है उसका मुझे यथार्थ वर्णन करके सुना क्योंकि—तू बड़ा बुद्धिमान् है ॥ १-२ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! तुम मेरे वचन सुनो, इस देशके राज्यमें पाण्डवों को लोभ नहीं आया है, इस राज्यको पानेके लिये तो केवल दुर्योधन सुबलपुत्र शकुनि और दूसरे पृथक् २ देशके राजे तथा

अपरे क्षत्रियाश्चैव नानाजनपदेश्वराः। ये गृद्धा भारते वर्षे न मृष्यन्ति परस्परम्॥४॥अत्र ते कीर्त्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्। प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च॥५॥पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः। ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च॥६॥ तथैव मुचुकुंदस्य शिवेरौशीनरस्य च। ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा। कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः॥७॥ सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च। अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम्॥ ८ ॥ सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् ॥ ९ ॥ तत्ते वर्षं प्रवक्ष्यामि यथायथमरिन्दम। शृणु मे गदतो राजन यन्मां त्वं परिपृच्छसि। महेन्द्रो मलयः सह्य शुक्तिमानृक्षवानपि॥१०॥विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वता।तेषां सहस्रशो राजन् पर्वतास्ते समीपतः॥ ११ ॥ अविज्ञाता सारवन्तो विपुला-

---

क्षत्रियोंके चित्तमें लोभ समा गया है। यह लोभ के कारण ही एक दूसरेको सह (देख) नहीं सकते॥ ३-४ ॥ हे भारत! अब मैं तुमसे भारतवर्षका वर्णन करता हूं सुनो। देवराज इन्द्र, वैवस्वत मनु वेनपुत्र पृथु, महात्मा इक्ष्वाकु ययाति अम्बरीष मांधाता, नहुष, मुचुकुन्द, उशीनरके पुत्र शिवि ऋषभ, ऐल, नृग, कुशिक और महात्मा गाधिराज, सोमक, दिलीप और हे महाराज! और भी बलवान् क्षत्रिय राजाओंको तथा सबोंको यह भारतवर्ष प्रिय है अतः हे शत्रुदमन! मैं तुम्हें इस भारतवर्षका वर्णन सुनाता हूं उसको तुम सुनो॥ ५—९ ॥ हे राजन्! तुमने जो मुझसे बूझा था उसका मैं अब वर्णन करता हूं उसको तुम सुनो॥ १० ॥ हे राजन्! इस भारतवर्षमें महेंद्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षमान् विंध्य, और पारियात्र यह सात पर्वत कुलपर्वत कहलाते हैं॥ ११ ॥ हे राजन्! इन पर्वतोंके आसपास भी दूसरे सहस्रों पर्वत हैं और किसीके जानने में न आए हुए दूसरे बहुत से पर्वत विचित्र शिखर वाले और धनसे भरपूर और

श्चित्रमानवाः। अन्ये ततोऽपरिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ॥१२॥ आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो। नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिंधुं सरस्वतीम् ॥ १३ ॥ गोदावरीं नर्मदां च वाहुदां च महानदीम्। शतद्रुं चन्द्रभागाञ्च यमुनां च महानदीम् ॥ १४ ॥ दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम्। नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम् ॥ १५ ॥ इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि। वेदस्मृतां वेदमतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम् ॥ ६१ ॥ करीषिणीं चित्रवाहां चित्रसेनां च निम्नगाम्। गोमतीं धूतपापाञ्च वंदनाञ्च महानदीम् ॥ १७ ॥ कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम् ॥ १८ ॥ रहस्यां शतकुम्भाञ्च सरयूञ्च तथैव च। चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा ॥ १९ ॥ शरावतीं पयोष्णीञ्च परां भीमरथीमपि। कावेरीं चुलुकां वाणीं तथा शतवलामपि ॥ २० ॥ नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां

विशाल कुलपर्वतों के समीपमें हैं ॥१२॥ तैसे ही अतीव अज्ञात क्षुद्र प्राणियोंके उपजीवनरूप बहुत से छोटे छोटे पर्वत हैं, हे राजन्! उन पर्वतोंके समीपमें आर्य म्लेच्छ और दूसरी मिश्र जातियोंके मनुष्य रहते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन्! वह मनुष्य नीचे लिखी हुई नदियोंका जल पीते है। वह नदियें बड़ी गंभीर हैं (उन नदियोंके नाम इस प्रकार हैं) गंगा, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा,महानदी,वाहुदा,शतद्रू, चन्द्रभागा, महानदी यमुना दृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूलवालुका, वेत्रवती, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती, त्रिदिवा, इक्षुला, कृमि,करीषिणी, चित्रवाहा, चित्रसेना, गोमती, धूतपापा, महानदी वन्दना, कौशिकी, त्रिदिवा कृत्या, निचिता, लोहितारिणी, रहस्या, शतकुंभा, सरयू, चर्मण्वती, वेत्रवती हस्तिसोमा, दिशा शरावती, पयोष्णी, वेणा, भीमरथी, कावेरी, चुलुका, वाणी, शतवला, नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कुण्डली, सिंधु,

जनाधिप । पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ॥ २१ ॥ पूर्वाभिरामां वीराञ्च भीमामोघवतीं तथा । पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ॥ २२ ॥ करीषिणीमसिक्नीञ्च कुशचीरां महानदीम् । मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ॥ २३ ॥ पुरावतीमनुष्णाञ्च शैब्यां कापीञ्च भारत । सदानीरामधृष्याञ्च कुशधारां महानदीम् ॥ २४ ॥ सदाकान्तां शिवाञ्चैव तथा वीरवतीमपि । वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीञ्च कम्पनां सहिरण्वतीम् ॥२५॥ वरां वीरकरां चापि पंचमीं च महानदीम् । रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् । उपेन्द्रां बहुलाञ्चैव कुचीरामंबुवाहिनीम् । विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ॥ २७ ॥ विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि । खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् ॥२८॥ शीघ्रां च पिच्छिलाञ्चैव भारद्वाजीञ्च निम्नगाम् । कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम् ॥ २९ ॥ दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम् । यवक्षामथ रोहीञ्च तथा जाम्बूनदीमपि ॥ ३० ॥ सुनसां

राजनी, पुरमालिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओघवती, पापहरा. पाशाशिनी, महेन्द्रा, पाटलावती ॥ १९—२२ ॥ करीषिणी, असिक्नी, महानदी कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, घृतवती ॥ २३ ॥ पुरावती, अनुष्णा, शैब्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या तथा महानदी कुशधारा ॥ २४ ॥ सदाकान्ता, शिवा तथा वीरवती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना और हिरण्वती ॥ २५ ॥ वरा, वीरकरा, महानदी पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा और कपिञ्जला ॥ २६ ॥ उपेन्द्रा, बहुला, कुचीरा, अंबुवाहिनी, विनदी, पिंजला, महानदी तुङ्गवेणा ॥ २७ ॥ विदिशा कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, खलु, सुवामा, वेदाश्वा, महानदी हरिश्रावा ॥ २८ ॥ शीघ्रा, पिच्छिला, भारद्वाजी नदी, कौशिकी नदी, शोणा, बाहुदा और चन्द्रमा ॥ २९ ॥ दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्वती, यवक्षा, रोही तथा जंबूनदी ॥ ३० ॥

तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम् । नीलां घृतवतीञ्चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥ ३१ ॥ मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनीम् । एताश्चान्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ॥ ३२ ॥ सदा निरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम् । ब्राह्मणीञ्च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥३३॥ चित्रोपलां चित्ररथां मञ्जुलां वाहिनीं तथा । मन्दाकिनीं वैतरणीं कोशां चापि महानदीम् । शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम् ॥ ३४ ॥ लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् । कुमारीमृषिकुल्याञ्च मारिषां च सरस्वतीम् । मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वा गङ्गाश्च भारत ॥ ३६ ॥ विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः। तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः॥३७॥ इत्येताः सरितो राजन् समाख्याताः यथास्मृति । अत ऊर्ध्वं जनपदान्निबोध गदतो मम ॥ ३८ ॥ तत्रेमे कुरुपांचालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः । शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा

सुनसा, तमसा, दासी, वसा और वाराणसी, नीला, घृतवती, तथा महानदी पर्णाशा ॥ ३१ ॥ मानवी, वृषभा, ब्रह्ममेध्या और बृहद्ध्वनि हे राजन् ! ये तथा दूसरी भी बड़ी २ नदी हैं ॥३२॥ हे भारत ! जैसे, कि—सदा निर्दोष रहनेवाली कृष्णा, मन्दगा, मन्दवाहनी, ब्राह्मणी, महागौरी और दुर्गा ॥ ३३ ॥ चित्रोपला चित्ररथा, मञ्जुला, वाहिनी, मन्दाकिनी वैतरणी तथा महानदी कोपा ॥ ३४ ॥ शुक्तिमती, अनङ्गा, वृषसाह्वया, लोहित्या, करतोया तथा वृषका ॥ ३५ ॥ कुमारी, ऋषिकुल्या, मारिषा, सरस्वती, मन्दाकिनी तथा सकल गङ्गायें ॥ ३६ ॥ ये सब नदियें विश्वकी मातारूप हैं तथा सब ही बड़ाभारी फल देनेवाली हैं इनके सिवाय और भी बिना नामकी सैंकड़ों तथा सहस्रों नदियें हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह सब नदियें मैंने अपनी यादके अनुसार आपको गिनवा दीं, अब आगे मैं देशोंके नाम कहता हूं उनको भी मुझसे सुनिये ॥ ३८ ॥ तिन नदियोंके किनारों

मालास्तथैव च ॥ ३९ ॥ मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुन्तयः कान्तिकोशलाः । चेदिमत्स्यकरूपाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥ ४० ॥ उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह । पांचालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरन्धराः ॥ ४१ ॥ गोधा मद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः । जठराः कुक्कुराश्चैव सुदशार्णाश्च भारत ॥४२॥ कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः । गोमंता मन्दकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः ॥४३॥ अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः । अधिराज्यकुशाद्यश्च मल्लराष्ट्रञ्च केवलम् ॥४४॥ वारवास्यायवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः । विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥४५॥ अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च । मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा माहिकाः शशिकास्तथा॥४६॥ वाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः । अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्ममण्डलाः॥४७॥ अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिषाः । उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥ ४८ ॥

पर ये देश हैं—कुरुपाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय, जाङ्गल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध तथा माल ॥ ३९॥ मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुंति, कांतिकोसल, चेदि, कुरूप, भोज, सिन्धु और पुलिंदक ॥ ४० ॥ उत्तम, दशार्ण, मेकल, उत्कल, पाञ्चाल, कोसल, नैकपृष्ठ और धुरन्धर ॥ ४१॥ गोध, मद्र, कलिङ्ग, काशि, अपरकाशि हे भारत! जठर, कुक्कुर और दशार्ण॥४२॥कुन्ति,अवन्ति,अपरकुन्ति गोमन्त, मन्दक, सण्ड, विदर्भ और रूपवाहिक ॥ ४३ ॥ अश्मक पांडुराष्ट्र, गोपराष्ट्र,करीति, अधिराज्य, कुशाद्य, मल्लराष्ट्र और केवल ।४४। वारवास्य, अपवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह मागध, स्वक्ष, मलज, तथा विजय ॥४५ ॥ अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यकृल्लोमा, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद माहिक और शाशिक ॥ ४६ ॥ वाह्लीक, वाटधान आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पाञ्चाल और चर्ममण्डल ॥ ४७ ॥ अटवीशिखर, मेरुभूत, मारिष, उपावृत्त, अनुपावृत्त,

कुंदापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः। अंध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥ ४९ ॥ बहिर्गिर्य्याङ्गमलजा मागधा मानवर्ज्जकाः। समंतराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥५० ॥ पुण्ड्रा भर्गाः किरताश्च सुदृष्टा यामुनास्तथा। शका निषादा निषधास्तथैवानर्त्तनैर्ऋताः ॥५१॥ दुर्गालाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा। तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यकागुणाः ॥ ५२ ॥ तिलभारा मसीराश्च मधुमंतः सुकन्दकाः। काश्मीरा सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा ॥५३॥ अभीसारा उलूताश्च शैवला बाह्लिकास्तथा। दार्वी च वानवादर्वा वातजामरथोरगाः ॥ ५४ ॥ बहुवाद्याश्च कारव्य सुदामानः सुमल्लिकाः। वध्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ॥ ५५ ॥ वनायवो दशाः पार्श्वरोमाणः कुशविन्दवः। कच्छा गोपालकच्छाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥५६॥ किराता वर्बराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः। औंड्रा म्लेच्छा सैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष ॥५७॥ अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ।

स्वराष्ट्र तथा केकय ॥ ४८॥ कुन्द अपरान्त, माहेय, कक्ष, समुद्र, निष्कुट और पहाड़ों पर रहनेवाले तथा पहाड़ोंकी तलैटियोंमे रहने वाले आन्ध्र, अङ्गमलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर, प्रावृषेय तथा हे राजन्! भार्गवपुण्ड्र, किरात, सुदृष्ट, यामुन, शक, निषाद निषध, आनर्त्त और नैर्ऋत ॥ ४९—५१ ॥ दुर्गाल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, कोसल, तीरग्रह, शूरसेन, ईजक, कन्यकागुण, तिलभार, मसीर, मधुमन्त, सुकन्दक, काश्मीर, सिंधु, सौवीर, गान्धार तथा दर्शक ॥५२॥५३॥ अभिसार, उलूत, शैवल, बाल्हीक, दारवीच, वानवादर्व, वातज, अमरथ तथा उरग॥५४॥ बहुवाद्य, सुदामान, सुमल्लिक, वध्र, करीषक, कुलिन्द, उपत्यक, वनायु, दश, पार्श्व राम, कुशविन्दु, कच्छ, गोपालकच्छ, जाङ्गल तथा कुरुवर्णक, किरात वर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, औंड्र, म्लेचछ, सैसि, रिध्र तथा पार्वतीय आदि ॥५५—५७॥ इनके सिवाय हे भरतर्षभ! दक्षिण दिशामें कितने ही देश हैं, उनके नाम तुम सुनो—द्रविड, केरल

द्राविडाः केरलाः प्राच्या मूषिका वनवासिकाः ॥ ५८ ॥ कर्णाटका माहिषका विकल्पा मूषकास्तथा । झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभकाननः ॥५९॥ कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोकणा मालवा नराः । समंगाः करकाश्चैव कुकुरांगारमारिषाः ॥६०॥ ध्वजन्युत्सवसंकेता-स्त्रिगर्ताःशाल्वसेनयः । व्यूकाः कोकवकाः प्रोष्ठाःसमवेगवशास्तथा ६१तथैव विंध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह । मालवा वल्लवा-श्चैव तथैवापरवल्लवाः ॥ ६२॥ कुलिन्दाः कालदाश्चैव कुण्डलाः करटास्तथा । मूषकास्तनबालाश्च सनीप घटसृञ्जयाः ॥ ६३ ॥ अठिदाःपाशिवाटाश्च तनयाः सुनयास्तथा । ऋषिका विदभाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ६४ ॥ उत्तराश्चापरे म्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम ! यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥६५॥ सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह । तथैव रमणाश्चीना-स्तथैव दशमालिकाः ॥ ६६ ॥ क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च । शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीरा पत्तिभिः सह ॥६७॥ खाशीरा

प्राच्य, मूषिक और वनवासिक ॥ ५८ ॥ कर्णाटक, महिषक, विकल्प मूषक, झिल्लीक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन ॥ ५९ ॥ कोकुट्टक, चोल, कोकण, मालवाणक, समंग करक, कुकुर और अङ्गार-मारिप ६० ध्वजिन्युत्सवसङ्केत, त्रिगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकवक, प्रोष्ठ तथा समवेगवश ॥ ६१ ॥ विन्ध्यचुलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, वल्लव और अपरवल्लव ॥६२॥ कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, तनबाल, नीप, घट और सृञ्जय ॥ ६३ ॥ अठिद, पाशि-वाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदभ, काक, तंगण और परतङ्गण ६४ और हे भरतसत्तम! जिनमें कठोर म्लेच्छ रहते हैं ऐसे उत्तर तथा अपरदेश, यवन, चीन तथा काम्बोज देश ॥ ६५ ॥ सकृद्ग्रह, कुलत्थ, हूण, पारसीक (ईरान), रमण, चीन, दशमालिक, ॥ ६६ ॥ तथा जहाँ क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं ऐसा शूद्रआभीर, दरद और काश्मीर देश है ॥ ६७ ॥ इनके

श्चान्तचाराश्च पल्लवा गिरिगह्वराः । आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैवस्तन-पोषिकाः ॥ ६८ ॥ पोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानाञ्च जातयः तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥ ६९ ॥ एते चान्ये जन-पदाः माच्योदीच्यास्तथैव च । उद्देशमात्रेण मया देशाः सङ्कीर्त्तिता विभो ॥ ७० ॥ यथागुणबलञ्चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् । दुह्येत धेनुः कामधुक् भूमिः सम्यगनुष्ठिता ॥ ७१ ॥ तस्यां गृद्ध्यन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः । ते त्यजन्त्याहवे प्राणान् वसुगृद्धा-स्तरस्विनः ॥ ७२ ॥ देवमानुषकायानां कामं भूमिपरायणम् । अन्योऽन्यस्यावलुम्पन्ति सारमेया यथामिषम् ॥ ७३ ॥ राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुन्धराम् । न चापि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित् ॥ ७४ ॥ तस्मात् परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः

सिवाय दूसरी जातियें जिनमें रहती हैं ऐसे खाशीर, अन्त-चार पल्हव, गिरिगव्हर आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, पोषक, कलिङ्ग, किरातदेश, तोमर, हन्यमान और करभजक आदि देश हैं ॥ ६८ ॥६९॥ हे विभो ! पूर्व तथा उत्तर दिशामें इनके सिवाय और भी बहुतसे देश हैं मैंने तो जो तुम्हारी समझमें आजायँ उनके ही नाम लेकर गिनवा दिया है ॥ ७० ॥ हे राजन् ! अपने गुण तथा बलसे क्षत्रियोंकी रक्षा की हुई यह भूमि कामधेनुकी समान रक्षा करने वालेको धर्म अर्थ और कामका फल देती है, इसलिये ही धर्म तथा अर्थके फलको जाननेवाले क्षत्रिय उसकी कामनासे और धनकी इच्छासे पराक्रमी बनकर, युद्धमें अपने प्राण तक देदेते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ देवताओंके और मनुष्योंके दोनों प्रकारके शरीरधारी प्राणियोंको भूमि ही परम शरण है, क्योंकि—भूलोकवासियों के यज्ञभागों पर ही देवताओंका आधार होता है, हे भरतर्षभ ! वसुन्धराको भोगनेकी इच्छा वाले राजे, जैसे कुत्ते मांसके टुकड़ोंके लिये आपसमें खेंचातानी करते हैं तैसे ही आपसमें एक दूसरेका नाश कर डालते हैं परन्तु इतने पर भी

साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५ ॥ पिता भ्राता च पुत्राश्च खन्द्यौश्च नरपुङ्गव। भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शिना ७६ ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतीयनदीदेशादिनामकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च । प्रमाणमायुषः सूत बलश्चापि शुभाशुभम् ॥१॥ अनागतमतिक्रान्तं वर्त्तमानं च संजय । आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥२॥ सञ्जय उवाच । चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ । कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्धन ॥ ३ ॥ पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो । संक्षेपाद् द्वापरस्याथ ततस्तिष्यं प्रवर्त्तते ॥ ४ ॥ चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम । आयुःसंख्या कृतयुगे संख्याता

उनकी कामनाकी तृप्ति नहीं होती है क्योंकि-तृष्णा तो कभी पूरी होती ही नहीं ॥ ७३ ॥७४॥ हे भारत ! इसलिये ही कौरव और पाण्डव भी इस भूमिके लिये ऐसा भारी संग्राम करनेको तयार हुए हैं. ये साम.भेद और दण्डके द्वारा भी भूमिको पानेका उद्योग करते हैं, हे राजन् ! यदि सावधानी रक्खी जाय तो यह पृथिवी ही सकल प्राणिमात्रका पिता भाई पुत्र आकाश और स्वर्गरूप होजाती है अर्थात् सकल कामनाओंको पूरी करती है ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ ❀ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि हे सञ्जय ! इस भारत हैमवत् और उसके साथ हो हरिवर्षमें आयुका प्रमाण, बल,शुभ,अशुभ,भूत,भविष्य, तथा वर्त्तमान आदिकालका ठीक२ वर्णन तू मुझे विस्तार के साथ कहकर सुना ॥ १-२ ॥ सञ्जय बोला, कि--हे भरत-वंशमें श्रेष्ठ कुरुके वंशको उन्नति देनेवाले महाराज ! भारतवर्ष में चार युग हैं—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! पहिले सत्ययुग, फिर त्रेतायुग, फिर द्वापरयुग और तिस के पीछे कलियुगका प्रचार होता है ॥ ४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! हे राज-

राजसत्तम ॥ ५ ॥ तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप । द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥६॥ न प्रमाणस्थिति-र्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन् भरतर्षभ । गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ॥ ७ ॥ महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः । प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥ जाताः कृतयुगे राजन् धनिनः प्रियदर्शनाः । प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ॥ ९ ॥ महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः । प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्धराः ॥ १० ॥ वरार्हा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः । त्रेतायां क्षत्रिया राजन् सर्वे वै चक्रवर्त्तिनः ॥ ११ ॥ सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा चैवं च द्वापरे । महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परजयैषिणः ॥ १२ ॥ तेजसाल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप । लुब्धा अनृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति

सत्तम ! सत्ययुगमें मनुष्योंकी आयु की संख्या चार हजार वर्षकी कही है ॥ ५ ॥ और हे नरेन्द्र! त्रेतायुगमें मनुष्योंकी आयु तीनहजार वर्षकी होती है और द्वापरयुगमें मनुष्यमात्र दो हजार वर्ष तक जीते हैं ॥६॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ! कलियुगमें तो आयुका कुछ ठौर ठिकाना ही नहीं है, क्योंकि-कोई गर्भमें और कोई उत्पन्न होते ही मर जाते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! सत्ययुगमें महाबली, महापराक्रमी, बुद्धिमान्, श्रेष्ठ गुणोंवाले प्रियदर्शन और धनवान् मनुष्य उत्पन्न होते हैं तथा उनके सैंकड़ों और सहस्रों सन्तानें होती हैं तथा उन में बड़े२ तपस्वी धनी उत्पन्न होते हैं. इस युगमें क्षत्रिय बड़े उत्साही महात्मा, धर्मात्मा सत्यवादी, रूपवान्, बड़े २ शरीरों वाले महा-वीर और बड़े २ धनुषधारी होते हैं ॥ ८ ॥ १० ॥ वह वर देनेके योग्य, युद्धमें शूर और श्रेष्ठ होते हैं, हे राजन् ! त्रेतायुगमें सब क्षत्रिय चक्रवर्ती ही उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥ द्वापरमें सब वर्णों के लोग बड़े उत्साही वीर और परस्परमें विजय पानेकी इच्छा वाले उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥ परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! कलि-

भारत ॥१३॥ ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च। तिष्ये भवति भूतानां रागो लोभश्च भारत ॥१४॥ संक्षेपो वर्त्तते राजन् द्वापरेऽस्मिन्नराधिप। गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भारतवर्षे कृतायानुरोधे-नायुर्निरूपणे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

समाप्तञ्च जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व ॥

॥ अथ भूमिपर्व ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥ जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह संजय। विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणन्तु तत्त्वतः ॥१॥ समुद्रस्य प्रमाणञ्च सम्यगच्छिद्रदर्शनम्। शाकद्वीपञ्च मे ब्रूहि कुशद्वीपञ्च सञ्जय ॥२॥ शाल्मलिश्चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च। ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ॥३॥ सञ्जय उवाच। राजन् सुबहवो द्वीपा

युग में थोड़े तेजवाले और बड़े क्रोधी लोभी तथा मिथ्याभाषी होते हैं ॥ १३ ॥ हे भारत! वह आपसमें डाह करने वाले, अभिमानी क्रोधी कपटी और पराये गुणोंमें दोष लगाने वाले तथा विषयी और लोभी होते हैं ॥ १४ ॥ हे राजन्! इस (वर्त्तमान) द्वापरयुगमें पहिलेकी अपेक्षा न्यून गुणों वाले मनुष्य होने लगे हैं भरतखण्डकी अपेक्षा हैमवत् खण्डमें अधिक गुणी और हरि-खण्डमें उनसे भी अधिक श्रेष्ठ और गुणवान् पुरुष उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥ दशवां अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय! इस समय तूने मुझे जम्बू-खण्डका वर्णन तो ठीक २ कह सुनाया, अब तू मुझे इसका परि-माण और विभाग ठीक २ सुना ॥ १ ॥ हे सञ्जय! तू मुझे समुद्र, शाकद्वीप और कुशद्वीप का परिमाण भी ठीक २ बता ॥२॥ तथा हे सञ्जय तू मुझे शाल्मली, क्रौंचद्वीप, राहु, चन्द्रमा और सूर्यका भी ठीक २ वृत्तान्त सुना ॥ ३ ॥ सञ्जय बोला, कि—हे

यैरिदं सन्ततं जगत्। सप्त द्वीपान् प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहांस्तथा।४। अष्टादश सहस्राणि योजनानि विशां पते। षट्शतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः ॥५॥ लावणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः। नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥ ६ ॥ नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः। सिद्धचारणसंकीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥ ७ ॥ शाकद्वीपञ्च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव। शृणु मे त्वं यथान्यायं ब्रुवतः कुरुनन्दन ॥ ८ ॥ जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स नराधिप। विष्कम्भेण महाराज सागरोऽपि विभागशः ॥ ९ ॥ क्षीरोदो भरतश्रेष्ठ येन सम्परिवारितः। तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः॥१०॥ कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते। शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावद्‌ भरतर्षभ ॥ ११ ॥ उक्त एष महाराज

राजन्! बहुत से द्वीप हैं, कि—जिनसे यह जगत् भर रहा है, परन्तु मैं तो उनमेंसे केवल सात द्वीप और सूर्य चन्द्रमा और राहुका ही वृत्तान्त कहूंगा ॥ ४ ॥ हे राजन्! जम्बू नामका पर्वत पूरे अठारह हजार छः सौ योजन लंबा है ॥ ५ ॥ खारी समुद्र की परिधि इससे दुगनी है, उसके किनारे पर और टापुओंमें अनेकों देश हैं, उसमें बहुतसे मणि और मूंगे हैं ॥ ६ ॥ वह सागर अनेकों धातुओंसे चित्र विचित्र दीखने वाले अनेकों पहाड़ों से घिरा हुआ है, सिद्ध और चारणोंसे भरा हुआ तथा मंडलाकार है ॥ ७ ॥ हे राजन्! हे कुरुनन्दन्! अब मैं तुम्हें शाकद्वीपका वृत्तांत यथावत् सुनाता हूं उसको सुनो ॥८॥ हे राजन्! यह द्वीप जम्बूद्वीपसे दुगना है, हे महाराज! सागर भी अपने प्रमाणके अनुसार इससे दुगना बड़ा है ॥९॥ हे भरतसत्तम! यह द्वीप सागरसे घिरा हुआ है इसमें के सब देशवासी पुण्यात्मा हैं और इसमें रहने वाले जीव मरते नहीं हैं ॥१०॥ फिर तहां अकाल तो पड़ ही कैसे सकता है? तहां के पुरुष क्षमावान् और तेजस्वी हैं, हे भरतसत्तम! इसप्रकार मैंने तुम्हें शाकद्वीपका वृत्तान्त संक्षेपमें सुना दिया ॥ ११ ॥ हे महाराज! अब आप क्या सुनाना

किमन्यत् कथयामि ते। धृतराष्ट्र उवाच। शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथा-वदिह सञ्जय ॥१२॥ उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः। सञ्जय उवाच। तथैव पर्वता राजन् सप्तात्र मणिभूषिताः ॥ १३ ॥ रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु। अतीव गुणवत् सर्वं तत्र पुण्यं जनाधिप ॥ १४ ॥ देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते। प्रागायतो महाराज मलयो नाम पर्वतः ॥१५॥ ततो मेघाः प्रवर्त्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः। ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः॥१६॥ ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्। ततो वर्षं प्रभवति वर्षकाले जनेश्वर ॥ १७॥ उच्चैर्गिरी रैवतको यथा नित्यं प्रतिष्ठिता। रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥१८॥ उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो

चाहते हैं सो बताइये, धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय! तूने मुझे शाकद्वीपका वृत्तान्त संक्षेपसे सुनाया परन्तु हे परमचतुर! अब तू सबसे अधिक विस्तारसे ठीक २ सुना, सञ्जय बोला कि—हे राजन्! इस द्वीपमें मणियों से शोभायमान सात पहाड़ हैं, उन सबोंमें रत्नोंकी खानें हैं और बहुत सी नदियें भी हैं उन सब के नाम मैं कहता हूं अब तुम उनको सुनो हे राजन्! इस द्वीप में सब वस्तुएं अति पवित्र और गुणों से भरी हैं॥ ११—१४॥ उन सब पहाड़ोंमें उत्तम और देवर्षि तथा गन्धर्वोंसे युक्त मेरु नामका पर्वत है, हे महाराज! दूसरा पहाड़ पूर्वकी ओरको फैला हुआ और मलय नाम वाला है॥ १५॥ यहां ही सब मेघ इकट्ठे होते हैं और सब दिशाओंमेंको फैलजाते हैं, हे कुरुनन्दन! इस द्वीपमें जलधार नामका तीसरा एक बड़ा भारी पहाड़ है १६ इस पहाड़मेंसे इन्द्र सदा पवित्र जल लेता है और हे राजन्! वही जल बरसातमें भूमि पर बरसता है॥ १७॥ बड़ा ही ऊंचा रैवतक नामका एक चौथा पहाड़ है उसके ऊपर आकाशमें विचरने वाला एक रेवती नामका नक्षत्र दिव्यरूपसे रहता है यह मर्यादा ब्रह्मा जीने स्वयं बाँधी है॥ १८॥ हे राजेन्द्र! उत्तरदिशामें नये मेघकी समान कान्ति वाला तथा उज्ज्वल शरीर वाला सुन्दर श्याम

नाम महागिरिः । नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः ॥१९॥ यतःश्यामत्वमापन्नाः प्रजा जनपदेश्वर । धृतराष्ट्र उवाच । सुमहान् संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं सञ्जय त्वया ॥२० ॥ प्रजाः कथं सूतपुत्र सम्प्राप्ता श्यामतामिह । सञ्जय उवाच । सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन ॥ २१ ॥ गौरः कृष्णश्च पतगस्तयोर्वर्णान्तरे नृप । श्यामो यस्मात् प्रवृत्तो वै तस्माच्छ्यामो गिरिः स्मृतः ॥ २२ ॥ ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः। केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्त्तते२३ तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः । वर्षाणि तेषु कौरव्य सप्तोक्तानि मनीषिभिः ॥ २४ ॥ महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरः । जलधारो महाराज सुकुमार इति स्मृतः ॥ २५ ॥ रैवतस्य तु कौमारः श्यामस्य मणिकाञ्चनः । केसरस्याथ मौदाकी परेण

नामका एक ऊँचा पांचवां पहाड़ है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! तहां जो लोग रहते हैं वह श्यामवर्णके ही होते हैं धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! तूने जो कहा, उससे मेरे मनमें एक बड़ीभारी शङ्का उठती है॥२०॥हे सूतनन्दन ! तहांकी प्रजा श्याम रङ्गकी क्यों होती है ! सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! हे कुरुनन्दन ! सब द्वीपोंमें गोरी श्याम और गौरकृष्ण मिश्रित रङ्गकी प्रजा देखनेमें आती है, परन्तु इस द्वीपमें तो केवल श्याम रङ्गकी हीं प्रजा देखने में आती है इस कारण ही यह पहाड़ श्यामगिरि कहलाता है २१ ॥ २२ ॥ हे कौरवेन्द्र । उसके आगे जिसका उदय बड़ाभारी है ऐसा दुर्गशैल नामका बड़ाभारी छठा पहाड़ है, इसके आगे जिस में से केसर सहित वायु चलता है ऐसा केसरी नामका पहाड़ है२३ हे कुरुवंशी ! इन सब पहाड़ोंका परिमाण मैंने तुम्हें जो पहले पहाड़ का बतलाया है उससे दुगना २ है तहां और भी सात वर्ष(देश)हैं ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ २४ ॥ महामेरुके ऊपर जो वर्ष है वह महाकाश कहलाता है मलयके ऊपरका कुमुदोत्तर कहलाता है और हे महाराज ! जलधारके ऊपर सुकुमार कहलाता है ॥२५॥ रैवत परका कौमार श्यामगिरि परका मणिकाञ्चन और केसर

तु महापुमान् ॥ २६ ॥ परिवार्य तु कौरव्य दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च । जम्बूद्वीपेन सङ्ख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ॥ २७ ॥ शाको नाम महाराज प्रजा तस्य सदानुगा । तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शङ्करः ॥ २८ ॥ तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च । धार्मिकाश्च प्रजा राजंश्चत्वारोऽतीव भारत ॥ २९ ॥ वर्णाः स्वधर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते । दीर्घायुषो महाराज जरामृत्युविवर्जिताः ॥३०॥ प्रजास्तत्र विवर्द्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः । नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधागता ॥ ३१ ॥ सुकुमारी कुमारी च शीताशी वेणिका तथा । महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी ॥ ३२ ॥ चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम । तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह ॥ ३३ ॥ सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः ।

गिरि परका मौदाकी वर्ष है, तहांसे आगे महापुमान् नामका एक पहाड़ और भी है ॥ २६ ॥ हे महाराज ! उसके बीचमें एक बड़ा भारी शाक नामक वृक्ष है, उसकी लम्बाई और चौड़ाई जंबूद्वीप के जंबू वृक्षकी समान है और तहां की प्रजा सदा उस वृक्षकी उपासना करती है तहां का देश पवित्र है और तहांके लोग शङ्कर का पूजन करते हैं ॥ २७ ॥२८॥ तहां सिद्ध चारण और देवता आया जाया करते हैं तहां जो प्राणी उत्पन्न होते हैं वह चारों वर्णोंके बड़े धर्मज्ञ लोग होते हैं वह सब अपने २ धर्ममें तत्पर रहते हैं इस स्थान पर चोर देखनेमें नहीं आते, हे महाराज ! तहांकी प्रजा बड़े आदरवाली तथा जरा और मरणके भयसे रहित होनेके कारण जैसे चौमासेमें नदियें बढ़ती हैं तैसे ही बढ़ती है, तहां पवित्र जलवाली बहुतसी नदियें हैं और गङ्गा भी तहां ही बहुतसे भागमें फैली हुई देखनेमें आती है ॥ २९–३१ ॥ हे कुरुनन्दन ! तहां सुकुमारी, कुमारी, शीताशी और वेणिका यह महानदी और मणिजला नामकी नदी है ॥ ३२ ॥ हे भरतसत्तम ! चक्षुर्वर्धनिका आदि पवित्र जलवालीं लाखों नदियें हैं, अपार जलवालीं इन नदियोंमेंसे इन्द्र जल लेता है और बरसाता

न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥३४॥शक्यं ते परिसंख्यातु पुण्यास्ता हि सरिद्वराः। तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ३५मंगाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।मंगाः ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप॥३६॥मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः। मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ॥ ३७ ॥ सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः। शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ३८ न तत्र राजा,राजेन्द्र न,दण्डो न च दण्डिकाः। स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥३९॥ एतावदेव शक्यन्तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम्। एतदेव च श्रोतव्य शाकद्वीपे महौजसि ॥४०॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि शाकद्वीप-
वर्णन एकादशोऽध्यायः ॥ ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच ॥ उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा। एवं

हे तहां की सकल पवित्र नदियोंके नाम और गिनती बताना कठिन है इस शाकद्वीपमें चार पवित्र देश हैं॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उन देशोंके नाम मङ्ग, मशक, मानस और मन्दग हैं हे राजन्! मङ्ग देश में केवल अपने कर्ममें प्रवीण ब्राह्मण ही रहते हैं॥ ३६॥ मशककै देशमें इच्छानुसार वस्तुएं देनेवाले धर्मात्मा क्षत्रिय बसते हैं हे महा-राज! मानस नामके देशमें केवल व्यापारसे ही आजीविका करने वाले वैश्य बसते हैं॥ ३७ ॥ मंदग देशमें सकल कामोंसे युक्त वीर धर्म अर्थमें प्रेम करने वाले और सदा धर्मशील शूद्र रहते हैं॥ ३८॥ हे राजेन्द्र! इस शाकद्वीपमें राजा नहीं है दण्ड नहीं है तथा दण्ड देने योग्य मनुष्य भी नहीं हैं तहां धर्मको जाननेवाले पुरुष अपने धर्मके द्वारा ही परस्पर एक दूसरेकी रक्षा कर लेते हैं ३९ उस शाकद्वीपके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है और मनुष्योंको भी प्रभावशाली इस द्वीपके विषयमें इतना ही सुनना चाहिये॥ ४० ॥ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

सञ्जय कहता है कि-हे कुरुवंशी राजन्! उत्तर दिशामेंके

तत्र महाराज श्रुतश्च निबोध मे॥१॥ घृतोयः समुद्रोऽत्र दधिमांडो-दको परः। सुरोदः सागरश्चैव तथान्यो जलसागरः॥ २॥ पर-स्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप। पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः॥ ३॥ गौरस्तु मध्यमे द्वीप गिरिर्मानःशिलो महान्। पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप॥ ४॥ तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः। प्रसन्नश्चाभवत्तत्र प्रजानां व्यदधत् सुखम्॥ ५॥ कुशस्तंबः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह। सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप॥ ६॥ क्रौंचद्वीपे महाक्रौंचो गिरी रत्नचयाकरः। सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा॥७॥ गोमंतः पर्वतो राजन् सुमहान् सर्वधातुकः। यत्र नित्यं निवसति

द्वीपोंके विषयमें जो कुछ सुना है वह अब मैं तुम्हें विस्तारके साथ सुनाता हूँ उसको सुनो॥ १॥ इस उत्तरदिशामें एक समुद्र, जलके स्थानमें घीसे भरा हुआ है, दूसरा दहीका है, तीसरा मदिराका है और चौथा समुद्र जलका है, ॥ २॥ हे राजन्! ज्यों २ उत्तरमें जाओ और जो २ द्वीप आवे वह २ हे महाराज! क्रमसे एक दूसरेकी अपेक्षा दूना बड़ा है और वहांके सब पहाड़ समुद्रसे घिरे हुए हैं॥ ३॥ इनमेंके मध्यके द्वीपमें मनःशिल नाम का बहुत बड़ा पहाड़ है और उसका नाम गौरगिरि है तथा हे राजन्! पश्चिममें नारायणका बड़ा प्यारा कृष्ण नामका बड़ा पहाड़ है॥ ४॥ वहां केशव स्वयं दिव्य रत्नोंकी रक्षा करते हैं और वह जब प्रसन्न होते हैं तब प्रजाओंको सुख देते हैं॥ ५॥ हे राजन्! कुशद्वीपमें कुश होता है और शाल्मलीद्वीपमें सेमलका वृक्ष होता है और वहांके लोग उसका पूजन करते हैं॥६॥ हे महाराज! क्रौंच-द्वीपमें रत्नोंकी खानकी समान क्रौंच नामका बड़ाभारी पर्वतराज है वह सदा चारों वर्णोंकी प्रजाओंसे पूजा जाता है और हे राजन्! एक गोमन्त नामका बड़ा ही भारी पहाड़ है, वह सब धातुओंसे भरा हुआ

श्रीमान् कमललोचनः ॥ ८ ॥ मोक्षिभिः संगतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः । कुशद्वीपे तु राजेंद्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥ ९ ॥ स्वनामनामा दुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः । द्युतिमान्नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥१०॥ चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः । षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥ ११ ॥ तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः सर्वभागशः । औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमंडलम् १२ तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम् । धृतिमत् पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ १३ ॥ सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्भकाः । एतेषु देवगंधर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥ १४ ॥ विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः । न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप १५ गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव । अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ॥ १६ ॥ यथाश्रुतं महाराज तदव्यग्रमनाः शृणु ।

है और तहां मोक्षकी इच्छावालोंके द्वारा सेवा किये हुए श्रीमान् कमललोचन नारायण प्रभु श्रीहरि सदा निवास करते हैं हे राजेन्द्र! कुशद्वीपमें मूंगोंके वृक्षोंसे युक्त अपने नामके योग्य और किसी से दवाव न खाने वाला एक हेम नामका पहाड़ है ॥७—१० ॥ हे कुरुवंशी ! चौथा पुष्पवान् पांचवां सुकेशी और छठा हरिगिरि नामका पहाड़ है इस प्रकार तहां छः श्रेष्ठ पहाड़ हैं ॥ ११ ॥ इन पहाड़ोंका मध्यका भाग ज्यों ज्यों उत्तरकी ओरको बढ़ता है त्यों त्यों एक दूसरेसे दूने विस्तारवाला है पहिला औद्भिद वर्ष दूसरा वेणुमण्डल तीसरा सुरथाकार चौथा कम्बल पांचवां धृतिमत् छठा प्रभाकार और सातवां कपिल-वर्ष है ये सातों वर्ष लम्भक हैं, हे जगदीश्वर ! इनमें देवता और गंधर्व जातिकी प्रजा रहती है वह तहां सदा विहार करते हैं और आनंदमें दिन विताते हैं उनकी मृत्यु तो होती ही नहीं तथा हे राजन् ! तहां चोर वा म्लेच्छ जाति के पुरुष भी नहीं हैं ॥ १२—१५ ॥ परन्तु हे राजन् ! तहां के सब मनुष्योंके शरीर गोरे, सुकुमार और सुन्दर रूप वाले होते हैं हे राजन् ! अब शेष सब प्रजाके विषयमें जो कुछ मैंने सुना है

क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥ १७ ॥ क्रौञ्चात् परो वामनको वामनादन्धकारकः । अन्धकारात् परो राजन् मैनाकः पर्वतोत्तमः ॥ १८ ॥ मैनाकात् परतो राजन् गोविंदो गिरिरुत्तमः । गोविन्दात् परतो राजन् निविडो नाम पर्वतः ॥ १९ ॥ परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्द्धन । देशास्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २० ॥ क्रौंचस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः । मनोऽनुगात् परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ॥ २१ ॥ उष्णात् परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः । अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥ २२ ॥ मुनिदेशात् परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः । सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ॥ २३ ॥ एते देशा महाराज

उसको विस्तारके साथ कहता हूं, हे महाराज ! आप सावधानचित्त होकर सुनिये हे महाराज ! क्रौंच द्वीपमें क्रौंच नामका बड़ा भारी पहाड़ है ॥ १६ ॥ १७ ॥ क्रौंचके आगेके पहाड़ का नाम वामनक है, वामनकसे अगला अन्धकारक पहाड़ है और हे राजन् ! अन्धकारकसे अगला पहाड़ोंमें उत्तम मैनाक पहाड़ है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मैनाकके आगे पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोविन्दगिरि है और हे राजन् ! गोविन्दगिरिसे आगे निविड़गिरि है ॥ १९ ॥ हे वंश को बढ़ानेवाले राजन् ! ये पहाड़ भी क्रमसे एक दूसरेकी अपेक्षा दूने बड़े हैं इन पर कितने ही देश हैं. उनके नाम भी मैं तुम्हें सुनाता हूं, सुनो ॥ २० ॥ क्रौंचके पास कुशल नामका देश है, वामनके पास मनोनुग नामका देश है और हे कुरुकुलके सम्पालक! मनोनुगके आगे उष्ण नामका देश है ॥ २१ ॥ उष्णसे आगे प्रावरक प्रावरकें से आगे अन्धकारक और अन्धकारकसे आगे मुनिदेश है ॥ २२ ॥ मुनिदेशसे आगे जो देश है वह दुंदुभिस्वन नामसे प्रसिद्ध है, हे राजन् ! तहां सिद्ध चारण तथा अधिकतर गौर लोग रहते हैं ॥ २३ ॥ हे महाराज ! यह देश देवता और

देवगंधर्वसेविताः । पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् २४ तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः । तं पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ॥२५॥ वाग्भिर्मनोऽनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप । जम्बूद्वीपात् प्रवर्त्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ॥ २६ ॥ द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम । ब्रह्मचर्य्येण सत्येन प्रजानां हि दमेन च ॥ २७ ॥ आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः । एको जनपदो राजन् द्वीपेष्वेतेषु भारत । उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ॥ २८ ॥ ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः । द्वीपानेतान् महाराज रक्षंस्तिष्ठति नित्यदा ॥ २९ ॥ स राजा स शिवो राजन् स पिता प्रपितामहः । गोपायति नरश्रेष्ठ प्रजाः सजडपंडिताः ॥ ३० ॥ भोजनञ्चात्र कौरव्य प्रजाः स्वयमुपस्थितम् । सिद्धमेव

गन्धर्वोंसे सेवित हैं, पुष्करद्वीपमें मणि और रत्नोंवाला पुष्करगिरि है ॥ २४ ॥ और जिनकी देवता और महर्षि उपासना करते हैं ऐसे साक्षात् प्रजापति तहां स्वयं रहते हैं ॥ २५ ॥ तथा हे राजन् ! देवता और महर्षि मनको अच्छी लगनेवाली वाणियोंसे उनका पूजन करते हैं इस जम्बूद्वीपमें अनेकों प्रकारके रत्न दूसरे द्वीपोंमें जाते हैं और तहांकी प्रजा उनको भोगती है, हे कुरुसत्तम! जंबूद्वीपकी प्रजा ब्रह्मचर्य, सत्य और दमको पालन करती है तथा इन प्रजाओंमें आरोग्य और आयु पहिले की अपेक्षा अगले २ द्वीपकी दुगना है और हे भरतवंशी राजन् ! इन द्वीपोंमें जितने देश हैं उन सब देशों को एक ही देश कहा जाता है क्यों कि–इन सब देशोंमें एक ही धर्म देखनेमें आता है ॥ २६ ॥ २८ ॥ और प्रजापति स्वयं नियन्ता बन हाथमें दण्ड लेकर हे महाराज ! उन द्वीपोंकी रक्षा करते हुए विराजे रहते हैं॥२९॥ और हे राजन् ! वह आप ही उनके राजा शिव, पिता और प्रपिता हैं, हे राजन् ! वह उस प्रजामेंके जड़ और चेतन सबोंकी रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥ हे महाबाहु कुरुवंशी ! तहां रहने वाली प्रजा सदा

महाबाहो तद्धि भुञ्जन्ति नित्यदा ॥ ३१ ॥ ततः परं समा नाम दृश्यते लोकसंस्थितिः । चतुरस्रं महाराज त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ३२ तत्र तिष्ठन्ति कौरव्य चत्वारो लोकसम्मताः । दिग्गजाः भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः ॥ ३३ ॥ सुप्रतीकस्तदा राजन् प्रभिन्नकरटामुखः तस्याहं परिमाणन्तु न संख्यातुमिहोत्सहे ॥ ३४ ॥ असङ्ख्यातः स नित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा । तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्य एव हि ॥ ३५ ॥ असम्बद्धा महाराज तान्निगृह्णन्ति ते गजाः । पुष्करैः पद्मसङ्काशैर्विकसद्भिर्महाप्रभैः ॥३६॥ शतधा पुनरेवाशु ते तान् मुञ्चन्ति नित्यशः । श्वसद्भिर्मुच्यमानास्तु दिग्गजैरिह मारुताः ॥ ३७ ॥ आगच्छन्ति महाराज ततस्तिष्ठन्ति वै प्रजाः । धृतराष्ट्र उवाच । परो वै विस्तरोऽत्यर्थं त्वया संजय कीर्तितः ३८

अपने आप आकर प्राप्त हुए पक्वान्नका भोजन करती हैं ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तहांसे आगे जो देश है, उसमें समानामके मनुष्य रहते हैं वह चौखूंटी बनावटका और तेतीस मण्डलोंवाला है ३२ हे कुरुवंशी ! तहांकी दिशाओं में समत वामन ऐरावत पुण्डरीक कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सावभौम और सुप्रतीक नामके दिग्गज रहते हैं, हे राजन् ! इन हाथियोंमें सुप्रतीक जातिके हाथी जिनकी कनपटियोंमेंसे मद टपका करता है उन हाथियोंकी ऊँचाई और मोटाईका वर्णन मुझसे नहीं होसकता ॥ ३३॥३४॥ हे राजन् ! उनकी ऊँचाई और मोटाई ऊपर नीचे तथा मध्यभागमें अकथनीय है, तहां निरन्तर सब दिशाओंका पवन चला करता है, उस वायुको खुले फिरते हुए हाथी अपनी कमलकी समान लाल लाल और बड़ी कान्ति वाली तेजस्वी सूंडों से श्वासमें लिया करते हैं॥ ३५—३६ ॥ और उस पवनको वह हाथी सैंकड़ों प्रकारसे फिर सूंडोंमें से निकाल देते है वह दिशाओंके हाथी अपनी सूंडोंमेंसे जिस पवनको छोड़ते हैं उस पवनसे ही हे महाराज ! सब प्रजायें अपना निर्वाह करती हैं धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय! उस द्वीपके विस्तार को तो भले प्रकारे कहकर सुनाया

दर्शितं द्वीपसंस्थानमुत्तरं ब्रूहि सञ्जय। सञ्जय उवाच। उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहं वै शृणु तत्त्वतः॥ ३९ ॥ स्वर्भानोः कौरश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः। परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः॥ ४० ॥ योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशास्य वै। परिणाहेन षट्त्रिंशद्विपुलत्वेन चानघ ॥ ४१ ॥ षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा। चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ॥४२॥ विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम्। एकोनषष्टिविष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः॥ ४३ ॥ सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चान्ये कुरुनन्दन। विष्कम्भेण ततो राजन् मण्डलं त्रिंशता समम् ॥ ४४ ॥ अष्टपञ्चाशतं राजन् विपुलत्वेन चानघ। श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः ॥४५॥ एतत् प्रमाणमर्कस्य निर्दिष्टमिह भारत।

॥ ३७-३८ ॥ और द्वीपोंकी दशा भी सुनायी अब तू मुझे सूर्य चन्द्रमा तथा राहुका प्रमाण सुना सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज! मैंने आपको द्वीपोंकी लम्बायी चौड़ायी आदि सुनायी अब ग्रहोंका ठीक परिमाण सुनिये ॥३९॥ हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजन्! राहुका जो परिमाण सुननेमें आता है,उसको मैं आपसे कहता हूं, इस राहुका विस्तार बारह हजार योजन कहा जाता है और परिधिको नापा जाय तो उसको मण्डल छत्तीस हजार योजनका कल्पना किया जाता है॥ ४० ॥ ४१ ॥ पौराणिक पण्डित कहते हैं, कि—वह छः हजार योजन है हे राजन्! चन्द्रमाका विस्तार ग्यारह हजार योजनका है॥ ४२ ॥ और परिधिसे तैंतीस हजार योजनका है, परन्तु कितने ही महात्मा चन्द्रमाका व्यास पांच हजार नौ सौ योजनका कहते हैं॥ ४३ ॥ हे कुरुनन्दन! परम उदार शीघ्रगामी सूर्य मण्डलका विस्तार दश हजार योजनका है और परिधिके नामसे तीस हजार है, परन्तु कितने ही कहते हैं, कि-पांच हजार आठसौ योजनका विस्तार है, हे भारत! इस प्रकार मैंने आपको सूर्य चन्द्रमाका प्रमाण सुनाया, राहु अपने

स राहुश्छादयत्येतौ यथाकालं महत्तया ॥ ४६॥ चन्द्रादित्यौ महाराज संक्षेपेऽप्युदाहृतः। इत्येतत्ते महाराज पृच्छतः शास्त्रचक्षुषा४७ सर्वमुक्तं यथातत्त्वं तस्माच्छममवाप्नुहि । यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥ ४८ ॥ तस्मादाश्वस कौरव्य पुत्रं दुर्योधनं प्रति । श्रुत्वेदं भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोनुगम् ॥ ४६ ॥ श्रीमान् भवति राजन्यः सिद्धार्थः साधुसम्मतः । आयुर्बलञ्च कीर्त्तिश्च तस्य तेजश्च वर्द्धते ॥ ५० ॥ यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः । प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥५१॥ इदन्तु भारतं वर्षं यत्र वर्त्तामहे वयम् । पूर्वैः प्रवर्त्तितं पुण्यं तत् सर्वं श्रुतवानसि५२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समाप्तञ्च भूमिपर्व

बड़पनसे चन्द्रमा और सूर्यको ढक लेता है, हे महाराज ! आपने मुझसे जो बात पूछी थी, वह मैंने ज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा आपको संक्षेपमें ठीक २ सुनादी, इस जगत्‌की रचना किस प्रकार हुई, यह बात भी आपको ठीक २ कहकर सुनादी, आप अपने चित्त को शान्त करिये ॥ ४४-४८ ॥ हे कुरुवंशी ! आप अपने पुत्र दुर्योधनके लिये निश्चिन्त रहिये, हे भरतश्रेष्ठ! इस रमणीय भूमिपर्वको सुननेसे राजे श्रीमान् होते हैं, उनका विचारा हुआ अर्थ सिद्ध होता है, साधु पुरुषोंमें प्रतिष्ठा पाते हैं तथा उनके आयु, बल, कीर्त्ति और तेज बढ़ते हैं ॥ ४६ ॥ ५० ॥ हे राजन् ! जो पुरुष पूर्णिमा या अमावसके दिन व्रती रहकर इस भूमिपर्वकी कथा सुनता है, उसके पितर और पितामह तृप्त होते हैं ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! पहले राजाओंने जिसमें पुण्यका अनुष्ठान किया है और इस समय हम जिसमें बसते हैं उस भारतवर्षके विषयमें भी आपने बहुत कुछ सुनलिया ॥ ५२ ॥ बारहवां अध्याय समाप्त

अथ भगवद्गीतापर्व ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्य भारत । प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १ ॥ ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः । आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् २ सञ्जय उवाच । सञ्जयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ । हतो भीष्मः शान्तवो भरतानां पितामहः ॥ ३ ॥ ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् । शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४ ॥ यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाकरोत् । स शेते निहतो राजन् सङ्ख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ५ ॥ यः सर्वान् पृथिवीपालान् समवेतान् महामृधे । जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६ ॥ जामदग्न्यं रणे रामं योऽयुध्यदपसम्भ्रमः । न हतो जामदग्न्येयन स हतोऽद्य

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे भरतवंशी ! भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानको जानने वाला तथा सकल बातोंको प्रत्यक्ष देखने वाला और विद्वान् गावल्गणका पुत्र सञ्जय संग्रामकी घटना को देखकर एकायकी दुःखित होता हुआ राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर खड़ा होगया, उस समय राजा धृतराष्ट्र इस विचारमें मग्न थे, कि-भरतवंशके पितामह भीष्मजी मारे गये या क्या हुआ? उन को भीष्मपितामहके मारेजानेका समाचार सुनाता हुआ कहनेलगा ॥१॥२॥सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! मैं सञ्जय आया हूं हे भरत-सत्तम आपको प्रणाम करता हूं भरतवंशियोंके पितामह और शन्तनु के पुत्र भीष्मजी मारेगये ॥ ३ ॥ सब योधाओंके स्तम्भरूप धनुष-धारियोंके आश्रयरूप और कुरुओंके पितामह आज शरशय्याके ऊपर सोरहे हैं ॥ ४ ॥ जिनकी वीरताके भरोसे पर आपके पुत्रने जुआ खेला था उन भीष्मजीको हे राजन् ! आज शिखण्डीने मार डाला है और वह रणभूमि में सोरहे हैं ॥ ५ ॥ जिस महा-रथीने काशीपुरीमें एक ही रथके सहारेसे इकट्ठेहुए सब राजाओं को हरा दिया था॥६॥ जिन्होंने जमदग्निके पुत्र परशुरामके साथ

शिखण्डिना ॥ ७ ॥ महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ॥८॥ शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः-
खड्गजिह्वो दुरासदः । नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः॥९॥
पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे । प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं
दृष्ट्वेव गोगणः ॥ १० ॥ परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ११ ॥ यः स शक्र
इवाक्षोभ्यो वर्षन् बाणान् सहस्रशः । जघान युधि योधानामर्बुदं
दशभिर्दिनैः ॥ १२ ॥ स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।

क्षण भरको भी न घबड़ाकर रण किया था और जिनको जम-
दग्निके पुत्र परशुराम भी नहीं मार सके थे वह भीष्म पितामह
आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये हैं ॥ ७ ॥ शूरतामें इन्द्रकी
समान स्थिरतामें हिमालयकी समान गम्भीरतामें समुद्रकी समान
सहनशीलतामें साक्षात् पृथिवीकी समान ॥८॥ शूर ही जिनकी
दाढ़ है धनुष ही जिनका मुख है तलवारकी समान जीभवाले
दुरासद और मनुष्योंमे सिंहासन तुम्हारे पिता भीष्मजीको आज
शिखण्डीने मार डाला और वह रणभूमिमें पड़े हैं ॥ ९ ॥ संग्राम
करनेको उद्यत हुए जिनको देखते ही पाण्डवोंकी सेना जैसे सिंह
को देखकर गौओंकी टोली बिखर जाती है तैसे ही बिखर गयी
थी और भयके मारे कांपने लगी थी ॥१०॥ वह शत्रुकी सेनाका
संहार करनेवाले भीष्मपितामह दश दिन तक तुम्हारी सेनाकी
रक्षा करके तथा कठोर पराक्रम करके आज सूर्यकी समान
अस्त होगये ॥ ११ ॥ और इन्द्रकी समान किसीसे न दबनेवाले
भीष्मजी हजारों बाणोंकी बरसात बरसाकर दश दिनमें एक
अर्बुद योधाओंका संहार करके अन्तमें आज वायुके तोड़े हुए
वृक्षकी समान प्राणहीन होकर भूमिपर सोरहे हैं हे भरतवंशी
राजन्! भीष्मजी ऐसी दशा भोगनेके योग्य नहीं थे यह सब

तव दुर्मन्त्रिते राजन् यथा नार्हः स भारत ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीष्ममृत्यु-
श्रवणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥ कथं कुरूणामृषभो हतो भीष्मः शिखंडिना । कथं रथात् सन्यपतत् पिता मे वासवोपमः ॥ १ ॥ कथमाचक्ष्व मे योधा हीना भीष्मेण सञ्जय । वलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ २ ॥ तस्मिन् हते महाप्राज्ञे महेष्वासे महाबले । महासत्वे नरव्याघ्रे किमु आसीन्मनस्तव ॥ ३ ॥ आर्त्तिं परामाविशति मनः शंसति मे हतम् । कुरूणामृषभं वीरमकम्पं पुरुषर्षभम् ॥ ४ ॥ के तं यान्तमनुप्राप्ताः के वास्यासन् पुरोगमाः । केऽतिष्ठन् के न्यवर्त्तंत केऽन्ववर्त्तन्त सञ्जय ॥ ५ ॥ के शूरा रथशार्दूलमद्भुतं

आपकी अनुचित करतूतका ही परिणाम है ॥१२॥१३॥ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे सञ्जय! कुरुओंमें श्रेष्ठ भीष्मजी शिखण्डी के हाथसे कैसे मारेगये ? जिनको इन्द्रकी समान कहा जासकता है ऐसे मेरे पिताजी, रथसे नीचे कैसे गिरे ॥ १ ॥ हे सञ्जय ! भीष्मजीसे शून्य हुए मेरे योधाओंने क्या किया ?, जो भीष्मजी बलमें देवताओंकी समान थे और पिताके वचनसे ब्रह्मचर्यसे रहते थे ॥ २ ॥ महाबुद्धिमान् बड़े भारी धनुषधारी, महाबली, बड़ा भारी हौंसला रखनेवाले और पुरुषोंमें सिंहसमान भीष्मजीके गिर जानेसे हमारे योधाओंके चित्तमें कैसा असर हुआ ? ॥३॥ कुरुओंमें श्रेष्ठ, वीर, निर्भय और पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीष्मजी मारेगये, इस बातको सुनते ही मेरे मनमें बड़ा दुःख हुआ है, हे सञ्जय ! जब भीष्मजी पाण्डवोंकी सेनाके सामने युद्ध करनेको गये उस समय उनके आगे, इधर उधर तथा पीछे २ कौन २ गया था ? उनके साथमें कौन खड़ा रहा था ? कौन भाग गया था ? रथियों में सिंह तथा क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ पाण्डवोंकी सेनामें जब यह गये उस

क्षत्रियर्षभम् । तथानीकं गाहमानं सहसा पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ६ ॥ यस्तमोऽर्क इवापोहन् परसैन्यममित्रहा । सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत् ॥ ७ ॥ अकरोद् दुष्करं कर्म रणे पाण्डुसुतेषु यः । ग्रसमानमनीकानि य एनं पर्यवारयन् ॥ ८ ॥ कृतिमन्तं दुराधर्षं सञ्जयास्य त्वमन्तिके । कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ९ ॥ निकृन्तन्तमनीकानि शरदंष्ट्रं तरस्विनम् । चापव्यात्ताननं घोरमसिजिह्वं दुरासदम् ॥ १० ॥ अनर्हं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् । पातयामास कौन्तेयः कथं तमजितं युधि ॥ ११ ॥ उग्रधन्वानमुग्रेषुं वर्त्तमानं रथोत्तमे । परेषामुत्तमांगानि प्रचिन्वन्तमथेषुभिः ॥ १२ ॥ पांडवानां महत् सैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे । कालाग्निमिव दुर्धर्षं समचेष्टत नित्यशः ॥ १३ ॥ परिकृष्य स

समय मेरी सेनामेंके कौन कौन वीर एकसाथ इनके पीछे गये थे ?-६ जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करता है तैसे ही शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाले, सूर्यकी समान तेजस्वी, शत्रुको भयभीत करनेवाले ॥७॥ जिन्होंने रणमें पांडवोंके सामने जाकर जो किसीसे न होसकै ऐसा अद्भुत पराक्रम किया है ऐसे शत्रुकी सेनाका ग्रास करनेवाले पितामहको किसने घेर लिया ? ॥८॥ हे सञ्जय ! तूने स्वयं पास रहकर उनके असह्य पराक्रमको देखा है,इसलिये मुझे बता कि-शान्तनुके पुत्रको पाण्डवोंने कैसे घेर लिया ॥ ९ ॥ शत्रुकी सेना के नाशक, बाण ही जिनकी दाढें हैं ऐसे धैर्यधारी, धनुषरूप खुलेहुए मुखवाले, भयानक दुरासद तलवार रूप जीभ वाले, जिनको सहना कठिन था और जो मारेजानेके योग्य नहीं थे ऐसे पुरुषसिंह, लज्जावान्, जिनको किसीने नहीं जीता था और न कोई जीत ही सकता था उन पितामहको अर्जुनने रणमें कैसे गिरा दिया ? ॥ १०—११ ॥ उनका धनुष बड़ा उग्र था, उत्तम रथमें बैठे हुए थे, बाणोंसे शत्रुओंके शिर काटनेवाले थे, उनको युद्धके लिये उद्यत हुए देखकर पांडवोंकी सेना कांपने लगी थी ऐसे कालाग्निकी समान शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाले और

सेनां तु दशरात्रमनीकहा। जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १४ ॥ यः स शक्र इवाक्षय्यं वर्षं शरमयं क्षिपन्। जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १५ ॥ स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः। मम दुर्मन्त्रितेनाजौ यथा नार्हति भारतः ॥ १६ ॥ कथं शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी। प्रहर्त्तुमशकत्तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥१७॥ कथं भीष्मेण संग्रामं प्राकुर्वन् पाण्डुनन्दनाः। कथञ्च नाजयद्भीष्मो द्रोणे जीवति सञ्जय १८ कृपे सन्निहिते तत्र भारद्वाजात्मजे तथा। भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥ १९ ॥ कथञ्चातिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना। भीष्मो विनिहतो युद्धे देवरपि दुरासदः ॥ २० ॥ यः स्पर्द्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम्। अजितं जामदग्न्येन

अपनी सेनाको साथ लेकर कठिन पराक्रम करने वाले भीष्मजी दशरात्रि तक घोर युद्ध करके आदित्यकी समान कैसे अस्त होगये ? ॥ १२ –१४ ॥ इन्द्रकी समान अक्षय बाणोंकी वर्षा बरसा कर दश दिन तक रणमें एक अर्बुद योधओंको मारा था वह भरतोंके पितामह भीष्मजी आज मेरी अनुचित संमतिसे वायुके तोड़े हुए वृक्षकी समान रणभूमिमें पड़े हैं, ओः ! यह तो इसप्रकार मारे जानेके योग्य नहीं थे ॥ १५-१६ ॥ भयानक पराक्रमवाले शान्तनुके पुत्र भीष्मजीको देखकर पांचालों की सेना उनके ऊपर प्रहार करनेको कैसे समर्थ हुई ? ॥ १७ ॥ हे सञ्जय ! पांडवोंने भीष्मजीके साथ कैसे युद्ध किया ? और द्रोणके जीते हुए भीष्म विजय क्यों न पासके ? ॥ १८ ॥ जब कृपाचार्य और भरद्वाजके पुत्र द्रोण उनके पास थे तो प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ पितामह कैसे मारे गये ॥ १९ ॥ अतिरथ और देवता भी जिनके ऊपर हाथ नहीं छोड़ सकते थे ऐसे पितामह संग्राममें पञ्चालदेशी शिखण्डीके हाथसे कैसे मारेगये ॥ २० ॥ वह तो सदा जमदग्निके महाबली पुत्रके साथ रणमें कुचेष्टा लेते थे, वह

शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥२१॥ तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोदितम् सञ्जयाचक्ष्व मे वीरं येन शर्म न विद्महे ॥ २२ ॥ मामकाः के महेष्वासा नाजहुः संजयाच्युतम् । दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥२३॥ यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः कच्चित्ते कुरवः सर्वे नाजहुः सञ्जयाच्युतम् ॥ २४ ॥ अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम । यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ २५ ॥ यस्मिन् सत्यञ्च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे । अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।२६। मौर्वीघोषस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान् । धनुर्ह्रादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥२७॥ योऽभ्यवर्षत कौन्तेयान् सपाञ्चालान् ससृञ्जयान् । निघ्नन् पररथान् वीरो

परशुराम उनको कभी जीत ही नहीं सके थे ऐसे इन्द्रकी समान पराक्रमी और महारथके कुलमें उत्पन्न हुए भीष्मजी कैसे मारे गये,इसका वृत्तांत हे सञ्जय ! तू मुझे ठीकर सुना, क्यों कि यह सुने विना मुझे चैन नहीं पड़सकता ॥ २१—२२ ॥ हे सञ्जय ! मेरी सेनामें कौन २ से धनुषधारी पीछेको पैर न धरनेवाले रणमें भीष्मजीको छोड़कर नहीं हटे थे,और दुर्योधनकी आज्ञासे कौन२ से योधा रणमें उनकी रक्षा करनेको खड़े रहे थे ॥ २३ ॥ जब सब पांडव शिखण्डीको अपने आगे करके भीष्मजीके सामने आये उस समय हे सञ्जय ! कुरु अच्युत भीष्मजीके आसपास खड़े रहे होंगे ! ॥ २४ ॥ वास्तवमें मेरा हृदय पत्थरका ही है कि-जो पुरुषोंमें सिंह समान भीष्मजी मारे गये, इस बातको सुनते ही फट नहीं गया? ॥२५॥ ओः ! जिस भरतवंशमें श्रेष्ठ भीष्म-पितामहके सत्य, बुद्धि और नीतिकी थाह नहीं मिलती थी वह दुराधर्ष पितामह रणमें कैसे मारेगये ? ॥ २६ ॥ यह पितामह तो प्रत्यञ्चाकी घोषरूपगर्जनावाले, बाणरूप धारावाले और धनुषसे वज्रकी समान ध्वनिवाले अतिऊँचे महामेघकी समान थे ॥२७॥ पांडव, पाञ्चाल, सृञ्जय तथा दूसरे रथियोंके ऊपर, वज्रको धारण

दानवानिव वज्रभृत् ॥ २८ ॥ इष्वस्त्रसागरं घोरं बाणग्राहं दुरासदम् । कार्मुकोर्मिणमक्षय्यमद्वीपं चलमप्लवम् ॥ २९ ॥ गदासिमकरावासं हयावर्त्तं गजाकुलम् । पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ३० ॥ हयान् गजपदातींश्च रथांश्च तरसा बहून् । निमज्जयन्तं समरे परवीरापहारिणम् ॥ ३१ ॥ विदह्यमानं कोपेन तेजसा च परन्तपम् । वेलेव मकरावासं के वीराः पर्यवारयन् ३२ भीष्मो यदकरोत् कर्म समरे सञ्जयारिहा । दुर्योधनहितार्थाय के तस्यास्य पुरोऽभवन् ॥ ३३ ॥ के रक्षन् दक्षिणं चक्रं भीष्मस्यामिततेजसः । पृष्ठतः के परान् वीरानपासेधन् यतव्रताः ॥ ३४ ॥ के पुरस्तादवर्तन्त रक्षन्तो भीष्ममन्तिके । के रक्षन्नुत्तरं चक्र

करनेवाले वीर भीष्मजी इसप्रकार बाण बरसाते थे जैसे इन्द्र दानवोंके ऊपर बाण बरसाया करता है ॥ २८ ॥ तो भी शत्रुओं के नाशक, शस्त्र और तीरोंके समुद्रसमान जिसमें बाण ही कछुए थे धनुष ही तरङ्गें थीं, जिसमें ओर छोर वा टापू नहीं था, जिसमें तोफान उठरहा था और पार होनेका कोई साधन नहीं था, जिसमें गदा और तलवारें मछलियोंकी समान थीं ऐसे हाथी घोड़े और रथरूप भँवरवाले, पैदलरूप मछली तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके शब्दरूप गर्जनावाले रणरूप महासागरमें बहुतसे हाथी घोड़े और रथोंको वेगसे डुबाते हुए तथा शत्रुकी सेनाका संहार करनेवाले, कोपसे मानो जल रहे हों और तेजसे शत्रुओंको जलानेवाले भीष्मजीको, जैसे किनारा समुद्रको रोक लेता है तैसे जिन्होंने रोकलिया था ऐसे कौन वीर थे ॥ २९—३२ ॥ हे सञ्जय ! दुर्योधनके हितके लिये शत्रुओंका नाश करनेवाले भीष्म जीने जब संग्राममें बड़ाभारी पराक्रम किया था, उससमय उनके रथके आगे कौन २ चले थे ॥ ३३ ॥ अपारपराक्रमी भीष्मजीके दाहिने पहियेका रक्षक कौन था, उनके पीछे कौन था तथा कौन से व्रतधारी शत्रुओंके वीरोंको उन्होंने आगे बढ़नेसे रोका था ? ॥ ३४ ॥ कौन समीपमें इनकी रक्षाके लिये इनके आगे रहे थे

वीरा वीरस्य युध्यतः ॥३५॥ वामे चक्रे वर्त्तमानाः केऽघ्नन् सञ्जय सृञ्जयान् । अग्रतोऽग्रयमनीकेषु केऽभ्यरक्षन् दुरासदम् ॥ ३६ ॥ पार्श्वतः केऽभ्यरक्षन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम् । समूहे के परान् प्रत्ययुध्यन्त सञ्जय ॥३७॥ रक्षमाणः कथं वीरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते । दुर्जयानामनीकानि नाजयंस्तरसा युधि ॥३८॥ सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठीप्रजापतेः । कथं प्रहर्तुमपि ते शेकुः कथं सञ्जय पाण्डवाः ॥ ३९ ॥ यस्मिन् द्वीपे समाश्वस्य युध्यन्तं कुरवः परैः । तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि सञ्जय ॥ ४० ॥ यस्य वीर्यं समाश्रित्य मम पुत्रो बृहद्बलः न पाण्डवानगणयत् कथं स निहतः परैः ॥ ४१ ॥ यः पुरा विबुधैः सर्वैः सहाये युद्धदुर्मदः । काङ्क्षितो

और जब ये वीर पितामह युद्ध कररहे थे उस समय किस २ ने इनके बायें पहियेकी रक्षा की थी ? ॥ ३५ ॥ जब सृञ्जयोंने इनको घेर लिया तब किसने इनके बायें पहियेकी रक्षा करते हुए सृञ्जयोंके ऊपर प्रहार किया था तथा सेनाके सामने आकर कौन इन दुरासद और मुख्य पितामहकी रक्षा करता था ॥ ३६ ॥ हे सञ्जय ! किसने घोर आपत्तिको अपने ऊपर लेकर इनके करवटकी रक्षा की थी और साधारण युद्धके समय किन योधाओं के साथ संग्राम किया था ? ॥ ३७ ॥ यदि हमारे वीरोंने इनकी रक्षा की होती और इन्होंने वीरोंकी रक्षा की होती तो दुर्जय पाण्डवोंकी सेना एकायकी युद्धमें विजय कभी पाती ही नहीं ॥ ३८ ॥ हे सञ्जय ! सब लोकके ईश्वर प्रजापतिके परमेष्ठी अर्थात् हिरण्यगर्भकी समान भीष्मजीके ऊपर पांडव कैसे प्रहार कर सके ? ॥ ३९ ॥ हे सञ्जय ! जिस टापूका आसरा लेकर कौरव वैरियोंके साथ युद्ध कर रहे हैं उन नरव्याघ्र भीष्मरूप टापूको तू डूबगया बता रहा है ॥ ४० ॥ जिनकी वीरता के भरोसे पर मेरे पुत्रोंने पाण्डवोंको कुछ नहीं गिना उन पितामह को वैरियोंने कैसे मारडाला ? ॥ ४१ ॥ उन दुर्मद और महाव्रत-

दानवान् हनद्भिः पिता मम महाव्रतः ॥ ४२ ॥ यस्मिन् जाते महावीर्ये शांतनुर्लोकविश्रुतः । शोकं दैन्यञ्च दुःखञ्च प्राजहात् पुत्रलक्ष्मणि ॥ ४३ ॥ प्रोक्तं परायणं प्राज्ञं स्वधर्मनिरतं शुचिम् । वेदवेदांगतत्त्वज्ञं कथं शंससि मे हतम् ॥ ४४ ॥ सर्वास्त्रविनयोपेतं शांतं दान्तं मनस्विनम् । हतं शान्तनवं श्रुत्वा मन्ये शेषं हतं बलम् ॥ ४५ ॥ धर्मादधर्मो बलवान् सम्प्राप्त इति मे मतिः । यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ ४६ ॥ जामदग्न्यः पुरा रामः सर्वास्त्रविदनुत्तमः । अम्बार्थमुद्यतः संख्ये भीष्मेण युधि निर्जितः ॥ ४७ ॥ तमिन्द्रसमकर्माणं ककुदं सर्वधन्विनाम् । हतं शंससि मे भीष्मं किन्नु दुःखमतः परम् ॥४८॥ असकृत् क्षत्रिय-

---

धारी मेरे पितासे दानवोंको मारनेके लिये पहिले सब देवताओंने सहायता मांगी थी ॥ ४२ ॥ इन महापराक्रमी पुत्रका जन्म होने पर इनमें पुत्रके लक्षण देखकर जगत्में प्रसिद्ध राजा शन्तनु ने पुत्रशोक दीनता और दुःखको त्याग दिया था और यह तो कर्त्तव्यका पालन करनेवाले बुद्धिमान, अपने धर्ममें तत्पर तथा पवित्र वेद और उनके अङ्गोंके तत्त्वको जानते थे तो भी तू कहता है, कि-भीष्म पितामह मारेगये हाय ! ॥४३॥४४॥सब अस्त्र शस्त्रोंके ज्ञाता, शान्त, दान्त और धीरजवाले शंतनुके पुत्रको जब तू मारा गया कहता है तो मैं समझता हूं, कि-बाकी की सेना भी मारीगयी मेरी समझमें इस समय धर्मसे अधर्म बलवान् होगया, क्योंकि-राजा पांडुके पुत्र भी अपने वृद्ध पितामहको मारकर ही राज्य भोगना चाहते हैं ॥ ४६ ॥ पहिले सकल अस्त्र शस्त्र जाननेवालों में चतुर जमदग्निके पुत्र परशुरामने जब अम्बाके लिये युद्ध मांगा था तब जिन्होंने संग्राममें परशुरामको भी हरादिया था ॥ ४७ ॥ इन्द्रकी समान पराक्रम करनेवाले सकल धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ उन पितामहको तू कहता है, कि-मारेगये, इससे अधिक और क्या दुःख होगा ? ॥ ४८ ॥ सब भूमण्डलके क्षत्रियोंको युद्धमें बारंबार

भ्राताः संख्ये येन विनिर्जिताः । जामदग्न्येन वीरेण परवीरनिवा-तिना ॥ ४६ ॥ न हतो यो महाबुद्धिः स हतोऽद्य शिखण्डिना । तस्मान् नूनं महावीर्याद् भार्गवाद्युद्धदुर्मदात् ॥ ५० ॥ तेजोवीर्य-बलैर्भूयान् शिखण्डी द्रुपदात्मजः । यः शूरं कृतिनं युद्धे सर्वशास्त्र-विशारदम् ॥ ५१ ॥ परमास्त्रविदं शूरं जघान भरतर्षभम् । के वीरास्तममित्रघ्नमन्वयुः शस्त्रसंसदि ॥ ५२ ॥ शंस मे तत् यथा चासीद्युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः । योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य सञ्जय ॥ ५३ ॥ अगोपमिव चोद्भ्रान्तं गोकुलं तद्बलं मम । पौरुषं सर्वलोकस्य परं यस्मिन् महाहवे ॥ ५४ ॥ परासक्ते च वस्तस्मिन् कथमासीन् मनस्तदा । जीवितेऽप्यद्य सामर्थ्यं किमिवास्माकं सञ्जय ॥ ५५ ॥ घातयित्वा महावीर्यं पितरं लोकधार्मिकम् । अगाधे

हरानेवाले और शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाले वीर जमदग्निके पुत्र रामके हाथसे भी जो नहीं मारे गये वह बुद्धिमान् भीष्मजी आज शिखण्डीके हाथसे मारेगये, वास्तवमें महावीर्यवान् युद्ध-दुर्मद, भृगुनन्दन परशुरामसे भी, द्रुपदका पुत्र शिखण्डी तेज वीरता और बलमें बढ़कर है, क्योंकि—उसने युद्धमें कृतकृत्य, सब शास्त्र और बड़े२ अस्त्रोंको जानने वाले भरतवंशमें श्रेष्ठवीर भीष्मजीको मारडाला है, इस शस्त्रयुद्धके समय कौन २ से वीर पुरुष शत्रुओंका नाश करनेवाले पितामहके पीछे २ गये थे ? ॥ ४६-५२ ॥ हे सञ्जय ! पितामहका पांडवोंके साथ किसप्रकार युद्ध हुआ था ? वह वृत्तान्त तू मुझे सुना, मेरे पुत्रोंकी सेना उस समय पति पुत्र रहित स्त्रीकी समान होगयी होगी ॥ ५३ ॥ मेरा सेनादल तो अब बिना ग्वालियेके गौओंके व्याकुल झुण्ड की समान होगया होगा, जिनमें संसारभरका पुरुषार्थ था ऐसे भीष्म जब रणभूमिमें गिरे होंगे उस समय मेरी सेनाके मनकी क्या दशा हुई होगी ? हे सञ्जय ! जगत्में अद्वितीय धर्मात्मा और महावीर अपने पिताको इस युद्धमें मरवाकर अब हमारे जीनेमें क्या सार रह गया ? ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ नदीके पारजाने

सलिले मग्नां नौकां दृष्ट्वेव पारगाः ॥ ५६ ॥ भीष्मे हते भृशं दुःखात् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः । अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ॥ ५७ ॥ यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते । यस्मिन्नस्त्राणि मेधा च नीतिश्च पुरुषर्षभे ॥ ५८ ॥ अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि । न चास्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च ॥ ५९ ॥ न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद्विमुच्यते कालो नूनं महावीर्य सर्वलोकदुरत्ययः ॥ ६० ॥ यत्र शान्तवं भीष्मं हतं शंससि संजय । पुत्रशोकाभिसन्तप्तो महद्दुःखमचिन्तयन् ॥ ६१ ॥ आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छांतनुनन्दनात् । यदादित्य-मिवापश्यत् पतितं भुवि संजय ॥ ६२ ॥ दुर्योधनः शान्तनवं किन्तदा प्रत्यपद्यत । नाहं स्वेषां परेषां वा बुद्ध्या सञ्जय चिन्त-

---

की इच्छावाले मनुष्य जब नौकाको अगाध जलमें डूबती हुई देखते हैं उस समय उनकी जो दशा होती है वही दशा पितामह के मारेजाने पर मेरे पुत्रोंकी हुई होगी और मैं समझता हूं, कि—वह बड़ाभारी शोक करते होंगे, हे सञ्जय ! वास्तवमें मेरा यह हृदय पत्थर है ॥ ५६—५८ ॥ कि—जो पुरुषव्याघ्र भीष्म जीके मरणको सुनकर भी नहीं फटता है, जिस निडर श्रेष्ठ पुरुषमें अस्त्र, बुद्धि और नीति अथाह थे वह रणमें कैसे मारेगये ? ॥५६॥ अस्त्र, शूरता, तप, बुद्धि, धीरज और दानसे कोई भी प्राणी मृत्युसे नहीं छूटसकता, निःसन्देह महावली काल ही सब लोकों का नाश करता है ॥६० ॥ हे सञ्जय ! तू शान्तनुके पुत्र भीष्मजी को मारे गये कहता है, परन्तु पुत्रके शोकसे दुःखित हुए मुझको इन शान्तनुके पुत्र भीष्मजीसे ही परम रक्षाकी आशा थी, परन्तु हे सञ्जय ! आदित्यकी समान पृथिवीपर पड़े हुए शान्तनु नन्दन को भूमि पर पड़े हुए देखकर उस समय दुर्योधनने कौनसा उपाय करने का विचार किया था ? हे सञ्जय ! बुद्धिसे विचार

यन् ॥ ६३ ॥ शेषं किंचित् प्रपश्यामि प्रत्यनीके महीक्षिताम् । दारुणः क्षत्रधर्मोऽयमृषिभिः सम्प्रदर्शितः॥ ६४॥यत्र शान्तनवं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पांडवाः । वयं वा राज्यमिच्छाम घातयित्वा महाव्रतम् ॥ ६५ ॥ क्षत्रधर्मे स्थिताः पार्था नापराध्यन्ति पुत्रकाः । एतदार्येण कर्त्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ६६ ॥ पराक्रमः परा शक्तिस्तत्तु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् । अनीकानि विनिघ्नन्तं ह्रीमन्त-मपराजितम् ॥ ६७ ॥ कथं शान्तनवं तातं पांडुपुत्रा न्यवारयन् यथा युक्तान्यनीकानि कथं युद्धं महात्मभिः ॥ ६८ ॥ कथं वा निहतो भीष्मः पिता सञ्जय मे परैः । दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनि-श्चापि सौबलः ॥६९॥ दुःशासनश्च कितवो हते भीष्मे किमब्रुवन् । यच्छरीरैरुपास्तीर्णां नरवारणवाजिनाम् ॥ ७० ॥ शरशक्तिमहा-

---

करने पर मुझे प्रतीत होता है, कि–मेरे और शत्रुके सकल राजाओंमेंसे अब कोई भी जीवित नहीं बचेगा, ओः ! ऋषियोंने क्षत्रियोंका धर्म बड़ा ही दारुण कहा है, (सो सत्य है) ॥६१–॥ ६४ ॥ जिस क्षत्रियधर्मके अनुसार पाण्डव पितामहको मारकर राज्य लेना चाहते हैं और हम भी उन महाव्रतधारीको मरवाकर राज्य लेना चाहते हैं ॥ ६५ ॥ हे सञ्जय ! क्षत्रियधर्ममें रहने वाले कुन्तीके पुत्र और मेरे पुत्र अपने धर्मका पालन करते हुए क्या अपराध नहीं कररहे हैं ? घोर आपत्तियें पड़ने पर क्षत्रियको ऐसा करना चाहिये ॥ ६६ ॥ क्यों कि—पराक्रमीपना और परम शक्ति यह दोनों बातें क्षत्रियधर्ममें रहती हैं, हे सञ्जय ! ठीक २ बता, कि—पांडवोंने शन्तनुके पुत्र और मेरे पिता भीष्मजीको कि—जो विनयी और किसी से न हारने वाली सेना का नाश करनेमें लगे हुए थे उनको कैसे रोक दिया ? उन्होंने सेनाकी रचना किसप्रकार की थी और उन महात्माके साथ किसप्रकार युद्ध किया था ? ॥ ६७—६८ ॥ हे सञ्जय ! मेरे पिता भीष्मजी को वैरियोंने कैसे मारडाला ? जब वह मारे गये उस समय दुर्योधन

खड्गतोमरार्चां महाभयाम् । प्राविशन् कितवा मन्दाः सभां युद्धविशारदाम् ॥ ७१ ॥ प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः । के जीयन्ते जितास्तत्र कृतलक्ष्या निपातिताः ॥ ७२ ॥ अन्ये भीष्माच्छान्तनवात् तन्ममाचक्ष्व सञ्जय । नहि मे शान्तिरस्तीह श्रुत्वा देवव्रतं हतम् ॥७३॥ पितरं भीमकर्माणं भीष्ममाहवशोभिनम् । आर्त्तिं मे हृदये रूढां महतीं पुत्रहानिजाम् ॥ ७४ ॥ त्वं हि मे सर्पिषेवाग्निमुद्दीपयसि संजय । महान्तं भारमुद्यम्य विश्रुतं सार्वलौकिकम् ॥ ७५ ॥ दृष्ट्वा विनिहतं भीष्मं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।

कर्ण सुवल के पुत्र शकुनि और दुःशासन क्या कहने लगे थे, हे सञ्जय ! मनुष्य हाथी और घोड़ोंके शरीरों से बिछायी हुई ॥ ६९ ॥ ७० ॥ बाण, शक्ति और बड़ी २ तलवारें और तोमररूप पाशोंवाली महाभयावनी युद्धके कारण जिसमें घुसना कठिन है ऐसी (रणयज्ञ मण्डपरूप) द्यूतसभामें कौन २ से अल्पबल वाले जुआरियोंने प्रवेश किया था और किन २ महापुरुषोंने प्राणनाश के कारण भयानक उस सभा में द्यूत खेला था, तथा हे सञ्जय ! शन्तनुके पुत्र भीष्मजीके सिवाय और कौन २ से राजे रण में जाते थे ? कौन से राजे हारे थे? और कौन २ से राजे लक्ष्य बनकर रणभूमि पर गिरे थे ? यह बात मुझे बता, क्यों कि—देवव्रत रण में मारे गये, यह बात सुन कर मेरा धीरज उड़ गया है ॥ ७१—७३ ॥ भीष्मजी मेरे पिता की समान, भयङ्कर पराक्रम करनेवाले और युद्ध की शोभारूप थे, हे सञ्जय ! अब अपने पुत्रके मारेजानेकी बड़ीभारी चिन्ता मेरे हृदयमें जमगयी है और जैसे घी अग्निको प्रज्वलित कर देता है तैसे ही वह चिन्ता मेरी पीड़ाको बढ़ाती है, सब लोगोंके मान्य और प्रसिद्ध भीष्मजीने जब अपने ऊपर युद्धका बड़ाभारी बोझा धारण करलिया और उसके अनन्तर ही मारेगये तब मेरी समझ में तो मेरे पुत्रोंको बड़ाभारी शोक हुआ होगा, मैं दुर्योधनके किये

श्रोष्यामि तानि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ ७६ ॥ तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यद्‌ वृत्तं तत्र सञ्जय । यद्‌ वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्या-बुद्धिसम्भवम् ॥ ७७ ॥ अपनीतं सुनीतं यत् तन्ममाचक्ष्व सञ्जय । यत् कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता ॥७८॥ तेजोयुक्तं कृता-स्त्रेण शंस तच्चाप्यशेषतः । यथा तदभवद्‌ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥ क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाभवत् ॥ ८० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच । त्वद्युक्तोयमनुप्रश्नो महाराज यथार्हसि । न तु दुर्योधने दोषमिममासक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः । एनसा तेन नान्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥ २ ॥ महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् । स वध्यः सर्वलोकस्य

हुए दुःखदायक कामोंको सुनना चाहता हूं ॥ ७४—७६ ॥ इस लिये हे सञ्जय ! तहां जो घटना हुई हो वह सब मुझे कह कर सुना, हे सञ्जय ! उस रणभूमिमें मूढ़ मनुष्यकी बुद्धिके दोषके कारणसे जो भला या बुरा परिणाम हुआ हो, वह मुझे सुना, उस महासंग्राममें विजयकी इच्छावाले तथा शस्त्रविद्यामें चतुर भीष्मजीने जो २ पराक्रमभरा काम किया हो वह भी पूरा २ मुझे सुना तथा कौरव पाण्डवोंकी सेनामें जिस क्रमसे और जिस समय जिसप्रकार युद्ध हुआ हो वह भी मुझे सुना ॥ ७७—८० ॥ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय बोला, कि-हे महाराज ! आपने मुझसे जो प्रश्न किया यह आपके योग्य ही है, परन्तु यह सब दोष आपको दुर्योधनके शिर नहीं मढ़ना चाहिये ॥ १ ॥ क्योंकि-जो मनुष्य अपने खोटे कामसे बुरा फल पाता है उस मनुष्यको उस पापका बोझा दूसरे के शिर पर नहीं डालना चाहिये ॥ २ ॥ हे महाराज ! सब मनुष्योंमें जो मनुष्य निन्दाका काम करता है वह निन्दाका काम

निन्दितानि समाचरन् ॥ ३ ॥ निकारो निकृतिप्रज्ञैः पाण्डवैस्त्वत्-प्रतीक्षया । अनुभूतः सहामात्यैः क्षान्तश्च सुचिरं वने ॥ ४ ॥ हयानां च गजानाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् । प्रत्यक्षं यन्मया दृष्टं दृष्टं योगबलेन च ॥५॥ शृणु तत् पृथिवीपाल मा च शोके मनः कृथाः । दिष्टमेतत् पुरा नूनमिदमेव नराधिप ॥ ६ ॥ नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते । यस्य प्रसादाद्दिव्यं तत् प्राप्तं ज्ञान-मनुत्तमम् ॥ ७ ॥ दृष्टिश्चातीन्द्रिया राजन् दूराच्छ्रवणमेव च । परचित्तस्य विज्ञानमतीतानागतस्य च ॥ ८ ॥ व्युत्थितोत्पत्तिवि-ज्ञानमाकाशे च गतिः शुभाः । अस्त्रैरसंगो युद्धेषु वरदानान्महात्मनः ॥ ९ ॥ शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम् । भारताना-मभूद्युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम् ॥ १० ॥ तेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु

करनेवाला सब मनुष्योंसे मारेजाने योग्य कहलाता है ॥ ३ ॥ सरल स्वभावके पाण्डवोंने केवल आपको बड़प्पन रखनेके लिये ही अपने मित्र और मंत्रियोंके साथ वनमें रहकर अपमानको सहा था ॥ ४ ॥ घोड़े, हाथी और बहुतसे तेजस्वी राजे, जिनको मैंने योगबलसे प्रत्यक्ष देखा है हे राजन् ! उन सबोंके कर्मोंको मैं तुम से कहता हूं उसको अब तुम सुनो और मनमें वृथा शोक न करो क्योंकि-हे राजन् ! यह सब पहिलेका ही लिखा हुआ है ॥५-६॥ जिनके अनुग्रहसे मुझे उत्तम ज्ञाननेत्र प्राप्त हुए हैं, दूरसे देखने की तथा सुननेकी शक्ति प्राप्त हुई है, भूत, भविष्यको जान सकता हूं, दूसरेके मनकी बात जान सकता हूं, शास्त्रका उल्लङ्घन करने वालेकी उत्पत्तिका ज्ञान, आकाशमें आनन्दसे विचरना, तथा युद्धोंमें शस्त्रोंसे घायल न होना, यह सब जिन महात्माके वरदान से मुझे मिला है उन पराशरके पुत्र, तुम्हारे बुद्धिमान् पिता व्यासजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥७-९॥ और भरतवंशी राजाओं में रोमाञ्च खड़े करनेवाला तथा अति अद्भुत और विचित्र यह युद्ध जिस प्रकार हुआ था उसको कहता हूं, तुम मुझसे विस्तार के साथ सुनो ॥ १० ॥ हे राजन् ! (कुरुक्षेत्रमें) जब विधिके

च विशानतः । दुर्योधनो महाराज दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥ दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः । अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥ १२ ॥ अयं स मामभिप्राप्तो वर्षपूगाभिचिंतितः । पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः ॥ १३ ॥ नातः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात् । हन्याद्गुप्तो ह्यसौ पार्थान् सोमकांश्च ससृञ्जयान् ॥ १४ ॥ अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाहं हन्यां शिखण्डिनम् । श्रूयते स्त्री ह्यसौ पूर्वं तस्माद्वर्ज्यो रणे मम ॥ १५ ॥ तस्माद्भीष्मो रक्षितव्यो विशेषेणेति मे मतिः । शिखण्डिनो वधे यत्ताः सर्वे तिष्ठन्तु मामकाः ॥१६॥ तथा प्राच्या प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः । सर्वथास्त्रेषु कुशलास्ते रक्षन्तु पितामहम् ॥ १७ ॥ अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात् सिंहं महाबलम्

अनुसार सेनाके व्यूह रचेगये और युद्धके लिये सेनायें तयार होनेलगीं उस समय हे महाराज ! दुर्योधन दुःशासनसे इसप्रकार कहनेलगा, कि—॥ ११ ॥ हे दुःशासन ! पितामह भीष्मजी की रक्षाके लिये अब शीघ्र ही रथोंको जोड़दो और सब सेना की टुकड़ियोंको भी तुम शीघ्र ही युद्धके लिये प्रेरणा करो ॥ १२ ॥ जिस कुरु पाण्डवों की सेनाको इकट्ठी देखनेके लिये मैं बहुत वर्षों से विचार कररहा था वह समय आज आपहुंचा है ॥ १३ ॥ इस रणमें भीष्मजीकी रक्षासे बढ़कर मेरी समझमें हमारा कोई और विशेष काम नहीं है, यदि भीष्मजीकी रक्षा किये रहोगे तो वह पाण्डव, सोमक और सृञ्जयों को मारडालेंगे ॥ १४ ॥ परंतु शुद्धचित्त वाले पितामहने पहिलेसे ही कहदिया है, कि—मैं शिखण्डीको नहीं मारूंगा क्योंकि—सुना है वह पहिले स्त्री था, इसलिये वह रणमें त्यागने ही योग्य है ॥ १५ ॥ पितामहने ऐसा कहा है, इसलिये ही उनकी विशेष रूपसे रक्षा करनी चाहिये यह मेरा विचार है, मेरे सब सैनिक शिखण्डी को वध करनेके लिये तयार रहें ॥ १६ ॥ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तरके जो योधा सब अस्त्रोंमें कुशल हों वह पितामहकी रक्षा करें ॥ १७ ॥

घा सिंहं जम्बुकेनेव घातयामः शिखण्डिना ॥ १८ ॥ वामं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् । गोप्तारौ फाल्गुनं माप्तौ फाल्गुनोऽपि शिखण्डिनः ॥ १९ ॥ संरक्ष्यमाणः पार्थेन भीष्मेण च विवर्जितः । यथा न हन्याद्गांगेयं दुःशासन तथा कुरु ॥ २० ॥ छ

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्योधन दुःशासनसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच । ततो रजन्यां व्युष्टायां स शब्दः समभवन् महान् । क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति ॥ १ ॥ शङ्ख-दुन्दुभिघोषैश्च सिंहनादैश्च भारत । हयहेषितनादैश्च रथनेमिस्वनै-स्तथा ॥ २ ॥ गजानां बृंहताञ्चैव योधानां चापि गर्ज्जताम् । चक्ष्वेलितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥ उदतिष्ठन्

महाबली सिंह भी यदि रक्षारहित हो तो उसको भेड़िया ही मारडालता है, ऐसे ही हमको शिखण्डीरूप गीदड़के हाथसे भीष्म रूप सिंहको नहीं मरवाना चाहिये ॥ १८ ॥ युधामन्यु अर्जुनके रथके वायें पहियेकी रक्षा करता है उत्तमौजा दाहिने पहिये की रक्षा करता है और इन दोनोंका रक्षा कियाहुआ अर्जुन शिखण्डी की रक्षा करता है ॥ १९ ॥ इसलिये हे दुःशासन ! ऐसा यत्न करो, कि—अर्जुनसे रक्षा कियाहुआ और भीष्मका त्यागा हुआ शिखण्डी गङ्गानन्दन भीष्मको कहीं मार न डाले ॥ २० ॥ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि–जब रात्रि पूरा होगयी तब तयार हो जाओ, तयार होजाओ, ऐसा कहते हुए राजाओंका बड़ाभारी कोला हल होउठा ॥ १ ॥ हे भारत ! सिंहकी समान शङ्ख और दुन्दु-भियोंके शब्द से घोड़ोंकी हिनहिनाहटों से रथोंके पहियोंकी घर घराहटों से हाथियोंकी चिङ्घाड़ों से तथा गरजते हुए योधाओंके सिंहनाद से भुजदण्डोंको ठोंकनेसे तथा सामनेके योधाओंको युद्ध के लिये पुकारनेसे जहां तहां घोर शब्द होने लगा ॥ २ ॥ ३ ॥

महाराज सर्वं युक्तमशेषतः । सूर्योदये महत् सैन्यं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ४ ॥ राजेन्द्र तव पुत्राणां पाण्डवानां तथैव च । दुष्प्रधृष्याणि चास्त्राणि सशस्त्रकवचानि च ॥५॥ ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत । त्वदीयानां परेषाञ्च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ६ ॥ तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः । विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः ॥ ७ ॥ रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः । अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत् ॥ ८ ॥ धनुर्भिऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः । योधाः प्रहरणैः शुभ्रैस्तेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥९ ॥गजाः पदाता रथिनस्तुरगाश्च विशाम्पते । व्यतिष्ठन् वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥ ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः । स्वेषाञ्चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः ॥११॥ काञ्चना मणिचित्राङ्गा ज्वलन्त इव पावकाः । अर्चिष्मन्तो

हे महाराज ! कुरु और पांडवोंकी बड़ी भारी सेनाने सूर्यका उदय होते ही चढ़ाईके लिये सब उचित ठीकठाक करली ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! सूर्योदय होते ही तुम्हारे पुत्रोंके और राजा पांडुके पुत्रों के, जो पीछेको नहीं लौटाये जासकते ऐसे अस्त्र शस्त्र और कवच तथा हे भारत ! शस्त्र धारण करनेवाले बड़े२ सेनादल दीखने लगे ॥५–६॥ सुनहरी कामसे शोभायमान किये हुये हाथियोंके हौदे और रथ रणभूमिमें बिजलीवाले मेघोंकी समान दीखने लगे ॥ ७ ॥ रथोंकी और सेनाओंकी टुकड़ियोंसे मानो वास्तवमें नगर बसाहुआ है ऐसा प्रतीत होने लगा उनमें तुम्हारे पिता तो पूर्ण चन्द्रमाकी समान बड़े हा शोभित होरहे थे ॥ ८ ॥ धनुष, ऋष्टि खड्ग, गदा, शक्ति और तोमर आदि अनेकों सुन्दर आयुधोंको लेकर सब योधा उन टुकड़ियोंमें क्रम से खड़े होगये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सैंकड़ों और हजारों हाथी पैदल रथी तथा घोड़े जाल-व्यूह की रचना से खड़े होगये ॥ १० ॥ तुम्हारी सेनाकी तथा पांडवोंकी सेनाकी अनेकों आकारकी हजारों चमकती हुई ध्वजायें भी फड़कती हुई दीखने लगीं ॥ ११ ॥ ये ध्वजायें सोने से

व्यरोचन्त ध्वजारोहाः सहस्रशः ॥ १२ ॥ महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव । सन्नद्धास्ते प्रवीराश्च ददृशुर्युद्धकांक्षिणः ॥१३॥ उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः कलापिनः । ऋषभाक्षा मनुष्येन्द्राश्चमूमुखगता बभुः ॥ १४ ॥ शकुनिः सौबलः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः । विन्दानुविन्दौ कैकेयाः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥१५॥ श्रुतायुधश्च कालिंगो जयत्सेनश्च पार्थिवः । बृहद्बलश्च कौशल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १६ ॥ दशैते पुरुषव्याघ्राः शूरा परिघबाहवः । अक्षौहिणीनां पतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ १७ ॥ एते चान्ये च बहवो दुर्योधनवशानुगाः । राजानो राजपुत्राश्च नीतिमंतो महारथाः ॥ १८ ॥ सन्नद्धाः समदृश्यन्त स्वेष्वनीकेष्व-

---

मढ़ी मणियोंसे जड़ी अग्निकी समान दमकती हाथियोंके ऊपर खड़ी की जाने के कारण बड़ी ही सुन्दर दीखती थीं ॥१२॥ ये ध्वजायें मानो इन्द्रपुरीमें श्वेत पताकायें खड़ी का गयी हों ऐसी दीखती थीं, उन ध्वजाओंके पास युद्धमें शस्त्रोंसे सजे खड़े हुए वीर भी रणरङ्गमें रंगेहुए दीखते थे ॥ १३ ॥ बैलकीसी बड़ी २ आंखों वाले भाथे लगाये और दस्ताने पहिरे अपनी २ टुकड़ियोंके आगे अस्त्रोंको सम्हाले खड़े हुए वीर पुरुष भी दीखते थे ॥ १४ ॥ सुबलका पुत्र शकुनि, शल्य, जयद्रथ, अवन्तिका राजा विन्द और अनुविन्द, केकय बान्धव, कम्बोजका राजा सुदक्षिण ॥ १५ ॥ कलिङ्गका राजा श्रुतायुध, राजा जयत्सेन, कोसलका राजा बृहद्बल, और सात्वतवंशका कृतवर्म्मा, ये दश योधा पुरुषोंमें व्याघ्रसमान वीर, लोहेके दण्डेकीसमान भुजावाले और बड़े२यज्ञ करके ब्राह्मणों को दक्षिणायें देनेवाले हैं, ये सब एक २ अक्षौहिणी सेनाके अग्र भागमें खड़े थे ॥ १६—१७ ॥ इनके सिवाय और भी बहुतसे महारथी तथा नीतिमान् राजकुमार और राजे दुर्योधनके आधीन हुए हैं ॥ १८ ॥ ये सब वीर पुरुष हथियारोंको सम्हालकर

वस्थिताः । बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे बलिनो युद्धशालिनः ॥ १६ ॥ हृष्टा दुर्योधनस्यार्थे ब्रह्मलोकाय दीक्षिताः । समर्था दशवाहिन्यः परिगृह्य व्यवस्थिताः ॥ २० ॥ एकादशी धार्त्तराष्ट्री कौरवाणां महाचमूः । अग्रतः सर्वसैन्यानां यत्र शांतनवोऽग्रणीः ॥ २१ ॥ श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम् । अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम् ॥ २२॥ हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम् । श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः ॥ २३ ॥ सृञ्जयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः । जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा ॥ २४ ॥ धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः । एकादशैताः श्रीजुष्टा वाहिन्यस्तव पार्थिव ॥२५॥ पांडवानां

अपनी २ टुकड़ियोंके मुहानों पर खड़े थे, यह सब अपने शरीरों पर काली मृगछालायें बांधे हुए थे, बलवान् लड़ाके, प्रसन्नतासे दुर्योधनके लिये ब्रह्मलोकमें जानेकी दीक्षा लेकर दश अक्षौहिणी सेनाके मुहानों पर आकर खड़े थे ॥ १६—२० ॥ इन दशके सिवाय कुरुसेनाका नायक दुर्योधन जिसमें खड़ा था ऐसा ग्यारहवा सेनाका बड़ाभारी विभाग था, वह सब से आगे था, उसके मुहाने पर शंतनुनन्दन भीष्म जी खड़े थे॥२१॥हे महाराज ! सफेद टोप, सफेद घोड़े, सफेद छत्र और सफेद कवच से शोभायमान भीष्मजी, मानो चन्द्रमा उदय होरहा हो ऐसे दीखते थे २२ और सोनेकी तालवृक्षकी समान ध्वजासे युक्त रथमें खड़े हुए तथा सफेद मेघ से घिरे हुए सूर्यकी समान भीष्मजीको कौरवोंने और पांडवोंने भी देखा ॥ २३ ॥ जंभाई लेते हुए सिंहको देखते ही जैसे छोटे २ वनके पशु घबड़ा जाते हैं तैसे ही भीष्मजीको रणभूमिमें आये हुए देखकर धृष्टद्युम्न आदि सब बड़े २ धनुषधारी सृञ्जय और योधा बारंबार कांपने लगे, हे राजन् ! इसप्रकार तुम्हारी शोभावाली सेनाके ग्यारह विभाग हुए थे ॥२४-२५॥

तथा सप्त महापुरुषपालिताः । उन्मत्तमकरावर्त्तौ महाग्राहसमाकुलौ ॥ २६ ॥ युगान्ते समवेतौ द्वौ दृश्येते सागराविव । नैव नस्तादृशो राजन् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः । अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच । यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् । तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १ ॥ मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत । दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥ २ ॥ द्विधाभूत इवादित्य उदये प्रत्यदृश्यत । ज्वलन्त्या शिखया भूयो भानुमानुदितो रविः ॥ ३ ॥ ववाशिरे च दीप्तायां दिशि गोमायुवायसाः । लिप्समानाः शरीराणि मांसशोणितभोजनाः

इसीप्रकार पांडवोंके सात विभागोंकी भी महापुरुष रक्षा करते थे, एक दूसरीके सामने आकर खड़ी हुई ये दोनों सेनायें. प्रलयकाल के उन्मत्त मगरोंसे उथल पुथल कियेहुए और बड़े २ ग्राहोंसे भरेहुए दो सागरोंकी समान प्रतीत होती थीं, हे राजन् ! कौरवों की सेनाका ऐसा बड़ा पड़ाव मैंने पहिले न कभी सुना था और न कभी देखा था ॥ २६—२७ ॥ सोलहवां अध्याय समाप्त१६

सञ्जय बोला, कि—जैसे भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यासजीने कहा था तैसे हीं सब राजे कुरुक्षेत्रमें युद्धके लिये इकट्ठे हुए थे १ जिस दिन युद्धका आरम्भ हुआ उस दिन चन्द्रमा मघाविषय कहिये पितरोंके देशमें गया था और सात महाग्रह भी आकाश में देदीप्यमान दीखते थे ॥२॥ सूर्य उदयकालमें दो टुकड़े हुआसा दीखा तथा वह उदय हुआ सूर्य अत्यन्त वलतीहुई लपटों वाला सा दीखा ॥ ३ ॥ मांस और रुधिरको खानेवाले सियार और कौए भी कलेवाके लिये शरीरोंको पानेकी आशामें कुछ प्रकाश

॥४॥ अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः । भरद्वाजात्मजश्चैव प्रातरुत्थाय संयतौ॥५॥जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणामित्यूचतुररिन्दमौ। युयुधाते तवार्थाय यथा स समयः कृतः ॥ ६ ॥ सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तत्र । समानीय महीपालानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायापावृतं महत् । गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सह लोकताम् ॥ ८ ॥ एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः । सम्भावयध्वमात्मानमव्यग्रमनसो युधि॥९॥नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः । संसिद्धाः परमं स्थानं गता कर्मभिरीदृशैः ॥ १० ॥ अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे । यदयं निधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः ॥ ११ ॥ एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ । निर्ययुः स्वान्यनीकानि

वाले आकाशमें उड़ते हुए शब्द करनेलगे ॥ ४ ॥ प्रतिदिन प्रातः कालके समय उठकर पाण्डवोंके पितामह और कुरुओंके पिता भीष्मजी तथा भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्य ये दोनो जितेन्द्रिय और शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुष भी 'राजा पांडुके पुत्रोंकी विजय हो' ऐसा कहा करते थे तो भी हे राजन्! वे तुम्हारे लिये युद्ध करते थे,क्योंकि--ऐसा करने की तुमसे प्रतिज्ञा करचुके थे५-६ फिर सब धर्मोको जाननेवाले तुम्हारे पिता भीष्मजीने सब राजाओं को अपने पास बुलाकर यह बात कही, कि--॥७॥ अरे क्षत्रियों ! स्वर्गमें जानेको तुम्हारे लिये यह एक बड़ाभारी द्वार खुला है, इस मार्गसे इन्द्र और ब्रह्माके लोकमें आनन्दसे जाओ॥ ८॥ आपके पूर्व पुरुषोंने तथा उनके भी पुरुषाओंने यह सनातन मार्ग तुम्हारे लिये स्थापन किया इसलिये तुम शान्त मन से इस युद्धमें अपने आत्माको शोभाय मान करो॥९॥ पहिले ऐसे कर्मों से ही नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहुष और नृग आदि राजे अपने प्रयोजनको बनाकर परम पद पर पहुंचे थे॥१०॥क्षत्रियका रोगसे अपने घरमें मरना अधर्म है और संग्राममें जो शस्त्रसे माराजाता है यही क्षत्रिय का सनातन धर्म है ॥११॥ हे भरतर्षभ ! भीष्मजीकी इस बातको

शोभयन्तो रथोत्तमैः ॥ १२ ॥ स तु वैकर्त्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः । न्यसितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ ॥ १३ ॥ अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव तावकाः । निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश ॥ १४ ॥ श्वेतैश्छत्रैः पताकाभिर्ध्वजवारणवाजिभिः । तान्यनीकानि शोभन्ते गजै रथपदातिभिः ॥ १५ ॥ भेरीपणवशब्दैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः । रथनेमिनिनादैश्च बभूवाकुलिता मही ॥१६॥ काञ्चनाङ्गदकेयूरैः कार्मुकैश्च महारथाः । भ्राजमाना व्यराजन्त साग्नयः पर्वता इव ॥ १७ ॥ तालेन महता भीष्मः पञ्चतोरणकेतुना । विमलादित्यसङ्काशस्तस्थौ कुरुचमूपतिः ॥ १८ ॥ ये त्वदीया महेष्वासा राजानो भरतर्षभ । अवर्त्तन्त यथादेशं राजन् शान्तनवस्य ते ॥ १९ ॥ स तु गोवासनः शैव्यः

सुनकर सब राजे उत्तम रथोंसे शोभायमान अपनी२ सेनाकी ओर को चले गये ॥ १२ ॥ परन्तु हे भरतश्रेष्ठ ! मंत्री और बान्धवों सहित एक सूर्यपुत्र कर्णके ही अस्त्र भीष्मजीने दूर फिकवा दिये थे ॥ १३ ॥ कर्णको वैसा ही छोड़ कर तुम्हारे पुत्र और तुम्हारे पक्षके सब राजे सिंहनाद से दशों दिशाओंको गुञ्जारते हुए छावनी में से बाहर निकले ॥ १४ ॥ सफेद छत्र पताकायें, ध्वजा, हाथी तथा घोड़ोंसे और पैदलोंसे वह सेनायें बड़ी शोभा पारही थीं ॥१५॥ नफीरी ढोल और नगाड़ोंके शब्दोंसे तथा रथोंके पहियों की घरघराहटसे उस समय यह भूमण्डल व्याकुल हो उठा था ॥ १६ ॥ सोनेके बाजूबन्द, जोशन तथा सोनेका झोल करेहुए धनुषोंसे ये महारथी उस समय अग्निवाले पहाड़ोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ १७ ॥ जिसमें पांच तारोंका चिन्ह था ऐसी ध्वजा से भीष्मजी भी कुरुओंकी सेनाके मुहाने पर खड़े हुए निर्मल आदित्यकी समान शोभा पारहे थे ॥ १८ ॥ हे भरत-सत्तम! बड़े धनुषधारी जो जो राजे तुम्हारे पक्षके थे, हे राजन्! वह शन्तनुनन्दनकी आज्ञाके अनुसार अपने अपने स्थानों पर

सहितः सर्वराजभिः। ययौ मातङ्गराजेन राजार्हेण पताकिना ॥ २० ॥ पद्मवर्णस्त्वनीकानां सर्वेषामग्रतः स्थितः। अश्वत्थामा ययौ यत्तः सिंहलाङ्गूलकेतुना ॥२१॥ श्रुतायुश्चित्रसेनः पुरुमित्रो विविंशतिः। शल्यो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च महारथः ॥ २२ ॥ एते सप्त महेष्वासा द्रोणपुत्रपुरोगमाः। स्यन्दनैर्वरवर्माणो भीष्मस्यासन् पुरोगमाः ॥ २३ ॥ तेषामपि महोत्सेधाः शोभयन्तो रथोत्तमाः। भ्राजमाना व्यरोचन्त जाम्बूनदमया ध्वजाः ॥ २४ ॥ जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता। केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह ॥ २५ ॥ अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षतः। महान् दुर्योधनस्यासीन्नागो मणिमयो ध्वजः ॥ २६ ॥ तस्य पौरवकालिङ्गकांबोजाः समुदक्षिणाः। क्षेमधन्वा च शल्यश्च तस्थुः

सम्हल कर खडे होगये ॥ १९ ॥ पहिले गोवासनका राजा शैव्य सब राजाओंके साथ पताका वाले और राजाके बैठने योग्य गजराजके ऊपर बैठकर रणभूमिमें आया ॥ २० ॥ फिर कमलके से रङ्गवाला और सिंहकी पूँछकी समान ध्वजावाला अश्वत्थामा, उद्योगके साथ सकल सेनाओंके आगे आकर खड़ा होगया श्रुतायुध, चित्रसेन पुरुमित्र विविंशति शल्य भूरिश्रवा और विकर्ण इन सात धनुषधारियोंके आगे रहनेवाला द्रोणपुत्र था, वह सब रथ और उत्तम कवचों वाले महारथियोंके साथ आगे आकर खड़ा होगया इस समय रथोंको शोभा देने वाले रथोंके ऊपर सवार हुए इन राजाओंके ऊँचे २ रथोंके ऊपरका सोनेकी ध्वजायें बड़ी शोभा देरही थीं सोनेकी वेदी कमण्डलुसे शोभायमान और धनुषके चिन्हवाला द्रोणाचार्यका झण्डा भी बड़ी शोभा पारहा था, सैंकड़ों और हजारों टुकड़ियोंको खेंचरहा था, जिस के ऊपर मणियोंके हाथीका चिन्ह बनाया गया था ऐसी दुर्योधनकी बड़ीभारी ध्वजा भी उस समय रणभूमिमें शोभा पारही थी ॥ २१—२६ ॥ पुरुदेश, कलिङ्ग, और कांबोज देशका राजा

प्रमुखतो रथाः ॥ २७ ॥ स्यन्दनेन महाहण केतुना वृषभेण च । प्रकर्षन्नेव सेनाग्रं मागधस्य कृपो ययौ ॥ २८ ॥ तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना । शारदांबुधरप्रख्यं प्राचयानां सुमहद्बलम् २९ अनीकप्रमुखे तिष्ठन् वराहेण महायशाः । शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः ॥३०॥ शतं रथसहस्राणां तस्यासन् वशवर्त्तिनः। अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट् ॥ ३१ ॥ तत् सिन्धुपतिना राज्ञा पालितं ध्वजिनीमुखम् । अनन्तरथनागाश्वमशोभत महद्द बलम् ॥ ३२ ॥ षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च । पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह ॥३३॥ तस्य पर्वतसंकाशा

सुदक्षिणका राजा क्षेमधन्वा तथा शल्य ये महारथी दुर्योधनके आगे २ चलते थे, जिसमें बैलका चिन्ह था ऐसी ध्वजावाले तथा बहुमूल्य रथमें बैठेहुए कृपाचार्य मागधकी सेनाको बढ़ाते हुए आगे २ चलते थे ॥ २७ ॥ पूर्वकी ओरके राजाओंकी बड़ीभारी सेना, जो शरद् ऋतुके बादलोंकी समान मालूम होती थी, उसकी रक्षा उदारचित्त अङ्गदेशका राजा और कृपाचार्य करते थे ॥२८॥ जिसमें वराहका चिन्ह था ऐसी सुन्दर रुपहली ध्वजासे शोभायमान बड़ा कीर्त्तिमान् राजा जयद्रथ सेनाके मुहाने पर खड़ा था ॥२९॥ इस जयद्रथकी अधीनतामें एक लाख रथ, आठ हजार हाथी और साठ हजार घुड़सवार थे ॥ ३० ॥ असंख्यों रथ, हाथी और घोड़ोंसे भराहुआ, सिन्धदेशके राजाकी आज्ञामें चलने वाला यह बड़ाभारी सेनादल बड़ा ही सुन्दर मालूम होता था ३१ सब कलिङ्गोंका राजा केतुमान् साठ हजार रथ और दश हजार हाथियोंको साथ लेकर चलदिया ॥ ३२ ॥ पहाड़ोंकी समान कायावाले जिनके ऊपर तोमर और बाणोंसे भरेहुए भाथोंके यंत्र लटक रहे थे ऐसे ध्वजा पताकावाले उसके बड़े २ हाथी बहुत ही सुन्दर मालूम होते थे ॥ ३३ ॥ अग्निकी समान दमकते हुए ध्वजाओंके दण्डे, सफेद छत्र, बाजूबन्द, चंवर और पंखोंसे सजा

व्यरोचन्त महागजाः । यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः ॥ ३४ ॥ शुशुभे केतुमुख्येन पावकेन कलिङ्गकः । श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च ॥३५॥ केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमांकुशम् । आस्थितः समरे राजन् मेघस्थ इव भानुमान् ॥ ३६ ॥ तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः । भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा ॥ ३७ ॥ गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन सम्मितौ । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ ॥ ३८ ॥ स रथानीकवान् व्यूहा हस्त्यङ्गो नृपशीर्षवान् । वाजिपक्षः पतत्युग्रः प्रहसन् सर्वतोमुखः॥३९॥ द्रोणेन विहितो राजन् राज्ञा शान्तनवेन च । तथैवाचार्यपुत्रेण वाह्लीकेन कृपेण च ॥ ४० ॥ *

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

हुआ कलिङ्ग देशका राजा भी सुन्दर मालूम होता था ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! परमपवित्र अंकुशवाले बड़े भारी हाथी पर बैठा हुआ केतुमान् भी रणमें जैसे सूर्य मेघमण्डलमें शोभा पाता है तैसे शोभा पारहा था ॥ ३५ ॥ तेजसे दीप्यमान और उत्तम हाथी पर बैठा हुआ इन्द्रकी समान दीखने वाला राजा भगदत्त भी रणमें खड़ा होगया ॥ ३६ ॥ अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द जो बलमें भगदत्तकी समान थे वह भी केतुमान्के पीछे अपने सुन्दर हाथियों पर बैठकर रणमें आये ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! द्रोणाचार्य, शन्तनुनन्दन भीष्म, आचार्यका पुत्र अश्वत्थामा, वाह्लीक और कृपाचार्यने रथसेनासे जो व्यूहरचनाकी थी, उस सेनाका अङ्ग हाथी, मस्तक राजमण्डल, और पङ्ख घोड़े थे, इस प्रकार चुना हुआ व्यूह हँसता हुआ चारों ओरसे कुरुक्षेत्रमें प्रतिपक्षी वीरोंकी ओरका उड़नेलगा ॥ ३८—३९ ॥ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । ततो मुहूर्त्तात्तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम् ॥ १ ॥ शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः । नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा॥२॥ हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम् । क्षणेनैव नभोभूमिः शब्देनापूरितन्तदा ॥ ३॥ पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥ ४ ॥ तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः।भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः॥५॥ ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप । काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्व-लिता इव पावकाः ॥६॥ स्वेषाञ्चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत । महेंद्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ॥ ७॥ कांचनैः कवचैर्वीरा ज्वलनार्कसमप्रभैः । सन्नद्धाः समदृश्यन्त ज्वलनार्कसमप्रभाः॥८॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! ऐसी रचना होजाने पर तुरन्त ही युद्ध करनेके लिये इकट्ठे हुए योधाओंका हृदयको कँपाने वाला बड़ाभारी शब्द सुनायी आया ॥ १ ॥ शंख और नगाड़ों की ध्वनियें हाथियोंकी चिंघाड और रथोंके पहियोंकी घरघराहट से मानों पृथिवी फटी जाती है ऐसा प्रतीत होनेलगा ॥ २ ॥ उस समय घोड़ोंकी हिनहिनाहट और योधाओं की गर्जनासे एक क्षण भरमें ही पृथिवी और आकाश में बड़ाभारी कोलाहल होगया ॥ ३ ॥ हे प्रतापी राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंकी और पाण्डवोंकी सेना जब आमने सामने आकर भिड़ीं तो कांपने लगीं ॥ ४ ॥ उनमें सोनेसे सजाये हुए रथ और हाथी बिजली वाले मेघोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे योधाओंकी अनेकों प्रकारकी और सोनेके बाजूबन्दोंसे शोभायमान ध्वजायें रणमें जलतेहुए अग्निकी समान दीखती थीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे और उनके बड़े २ भारी केतु इन्द्रभवनके सफेद केतुओंकी समान दीखते थे ॥ ७ ॥ सोनेके गहने और कवचोंसे सब योधा देदी-प्यमान अग्नि और सूर्यकी समान प्रतीत होते थे ॥ ८ ॥

कुरुयोधवरा राजन् विचित्रायुधकार्मुकाः । उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तल-बद्धाः पताकिनः ॥ ९ ॥ अपभान्ता महेष्वासाश्चमूमुखगता वभुः । पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप । दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा ॥ १० ॥ विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः । सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः ॥ ११ ॥ रथविंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः । अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ॥ १२ ॥ शाल्वा मत्स्यास्तथाम्बष्ठास्त्रैगर्त्ताः केकयास्तथा । सौवीरा कैतवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यवासिनः ॥१३॥ द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः । महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम् ॥ १४ ॥ अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् । मागधो यत्र नृपतिस्तद्रथानीकमन्वयात् ॥ १५ ॥ रथानाञ्चक्ररक्षाश्च पादरक्षाश्च दन्तिनाम् । अभवन् वाहनीमध्ये

कुरुओंके सब बड़े २ धनुषधारी योधा विचित्र आयुध और धनुषों को ऊँचे करके, हाथोंमें चमड़ेके मोजे पहर कर बैलकीसी बड़ी २ आँखों वाले सब अपने २ स्थानों पर आकर खड़े होगये, उस समय वह बड़े ही अच्छे मालूम होते थे॥९॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्र, दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुःसह, विविंशति चित्रसेन महारथी विकर्ण, सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय, भूरिश्रवा, शल ॥ १० ॥ ११ ॥ और उनके अनुयायी बीस हजार रथोंके योधा भीष्मजीके पीछे रहकर उनकी रक्षा करते थे और अभीषाह, शूरसेन, शिवी वसाती ॥ १२ ॥ साल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रिगर्त्त, केकय, सौवीर, कैतव, पूर्व—पश्चिम तथा उत्तर देश वाले ॥ १३ ॥ ये बारह देशोंके राजे प्राणोंकी भी परवाह न करके रथोंके बड़ेभारी समूह से पितामह भीष्मजीकी रक्षा कर रहे थे और बड़े वेगवाले दश हजार हाथियोंके बड़ेभारी सेनादलके साथ मगधदेशका राजा इस रथसेनाके पीछे २ चलता था ॥ १४ ॥ १५ ॥ रथके पहियों

शतानामयुतानि षट् ॥ १६ ॥ पादाताश्चाग्रतोऽगच्छन् धनुश्चर्मासिपाणयः । अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः ॥ १७ ॥ अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत । अदृश्यंत महाराज गङ्गेव यमुनान्तरे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णनेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अक्षौहिण्यो दशैका च व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पाण्डवः ॥ १ ॥ यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गांधर्वमासुरम् । कथं भीष्मं स कौंतेयः प्रत्यव्यूहत संजय ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । धार्त्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पांडवः । अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनञ्जयम् ॥ ३ ॥ महर्षे-

---

की रक्षा करनेवाले और हाथियोंके पैरोंकी रक्षा करनेवाले मनुष्य ही इस सेना में आठ हजारके समीप थे ॥ १६ ॥ धनुष तलवार ढाल और हाथोंमें गोहके चमड़ेके मोजे पहरे हुए और सेनाके आगे चलने वाले पैदल इस सेनामें अनेक सैकड़ों और हजारों थे ॥ १७ ॥ हे भरतवंशी महाराज ! तुम्हारे पुत्रकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना यमुना नदीके साथ मिलीहुई गङ्गा नदीकी समान प्रतीत होती थी ॥ १८ ॥ अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाकी व्यूह रचनाको देखकर पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिरने अपनी थोड़ीसी सेनाकी व्यूहरचना किस प्रकार की थी ? ॥ १ ॥ हे सञ्जय ! जो मनुष्यों की देवताओंकी गन्धर्वोंकी और असुरोंकी व्यूहरचनाको जानते हैं उन भीष्मजीके सामने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने अपनी सेनाकी व्यूहरचना किसप्रकार की थी सो मुझे सुना ॥ २ ॥ सञ्जयने कहा, कि—आपके पुत्रोंकी सेनाकी व्यूहरचनाको देखकर पाण्डु के पुत्र धर्मात्मा धर्मराजने धनंजय से कहा कि ॥ ३ ॥ हे तात !

वचनात्तात वेदयन्ति बृहस्पतेः । संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेत् बहून् ॥ ४ ॥ सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह । अस्माकञ्च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥ ५ ॥ एत-द्वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पांडव । एतच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पांडवः ॥ ६ ॥ एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम् । अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥ ७ ॥ यः सवात इवोद्भूतः समरे दुःसहः परैः । स नं पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतां वरः ॥ ८ ॥ तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन् पुरुषसत्तमः । अग्रेऽग्रणी-र्योत्स्यति नो युद्धोपायविचक्षणः ॥ ९ ॥ यं दृष्ट्वा कुरवःसर्वे दुर्योधनपुरोगमाः । निवर्तिष्यन्ति संत्रस्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा

महर्षि बृहस्पतिके वचन यह बताते हैं कि—यदि थोड़े मनुष्य हों तो उनको इकट्ठे रख कर लड़ावे और यदि सेनामें बहुतसे पुरुष हों तो उनको इच्छानुसार फैलाकर लड़ावे ॥ ४ ॥ यदि बहुतोंके साथ थोड़ोंको लड़ाना हो तो सूचीमुख नामका व्यूह बनावें शत्रु की सेना के साथ तुलना करने पर हमारी सेना बहुत ही थोड़ी है ॥ ५ ॥ इसलिये हे पाण्डव ! अब इन महर्षिके वचनके अनु-सार तू व्यूहरचना कर, धर्मराजकी इस बातको सुनकर अर्जुन ने उनको उत्तर दिया, कि—॥ ६ ॥ हे राजसत्तम ! मैं आपके लिये वज्रपाणि इन्द्रका चलाया हुआ अचलवज्र नामका दुर्गव्यूह रचता हूं ॥७॥ यह वायुकी समान उद्धत और वायुसे ही उत्पन्न हुआ है रणमें वैरी इसको सह नहीं सकता और प्रहार करनेके लिये यह बड़ा उत्तम है, इस व्यूह से खड़ीकी हुई सेनाके मुहाने पर खड़ा होकर भीमसेन लड़ेगा ॥८॥ युद्धकी रीति जाननेमें चतुर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीमसेन शत्रुकी सेनाके बलको घटाता हुआ हमारी सेनाके मुहाने पर खड़ा होकर युद्ध करेगा ॥ ९ ॥ उसको देखते ही दुर्योधनके सब योधा इसप्रकार पीछेको भागेंगे जैसे

॥ १० ॥ तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयाः । भीमं प्रहर्तां श्रेष्ठं देवराजमिवामराः ॥ ११ ॥ न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम् । द्रष्टुमप्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम् ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुस्तथा चक्रे धनञ्जयः । व्यूह्य तानि बलान्याशु प्रययौ फाल्गुनस्तथा ॥ १३ ॥ सम्प्रयातान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवानां महाचमूः । गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्पन्दमाना व्यदृश्यत ।१४। भीमसेनोऽग्रणीस्तेषां धृष्टद्युम्नश्च वीर्यवान् । नकुलः सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः॥१५॥ विराटश्च ततः पश्चाद् राजाथाक्षौहिणीवृतः । भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः ॥ १६ ॥ चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युती । द्रौपदेयाः ससौभद्राः पृष्ठगोपास्त-

---

सिंहको देखकर वनके छोटे २ पशु भागते हैं ॥ १० ॥ प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ यह भीमसेन हमारे लिये परकोटा रूप हो जायगा और जैसे देवता देवराज इन्द्रके सहारे से रहते हैं तैसे ही हम निर्भय होकर इसके आश्रय से रहसकेंगे ॥ ११ ॥ क्योंकि-इस लोक और परलोक में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, कि—जो क्रोधमें भरे उग्र कर्म करनेवाले मनुष्योंमें श्रेष्ठ भीमसेन की ओर को आंख उठाकर देखनेका साहस भी कर सकै ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर धनञ्जयने शीघ्र ही अपनी सेनाको व्यूहरचनासे खड़ा कर दिया, फिर वह अर्जुन शत्रुओंकी ओरको गया ॥१३॥ पांडवोंकी महासेना कौरवोंकी सेनाको अपनी ओरको आती हुई देखकर जलसे भरीहुई गङ्गाकी समान धीरे २ आगेको बढ़ती हुई दीखने लगी ॥ १४ ॥ भीमसेन, वीर धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और राजा धृष्टकेतु यह उस सेनाके आगे २ चल रहे थे १५ बेटे, भाई और एक अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर राजा विराट उस सेनाकी रक्षा करता हुआ पीछे२ चलता था ॥ १६ ॥ परम कांतिमान् माद्रीके पुत्र भीमसेनके रथके दोनों पहियोंकी रक्षा करते थे और द्रौपदीके पांचों पुत्र तथा सुभद्राका वेगवान् पुत्र भीमसेन

रक्षिनः ॥ १७ ॥ धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः । सहितः पृतनाशूरे रथमुख्यैः प्रभद्रकैः ॥ १८ ॥ शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाभिरक्षितः । यत्तो भीष्मविनाशाय प्रययौ भरतर्षभ ॥ १९ ॥ पृष्ठतोऽप्यर्जुनस्यासीद् युयुधानो महाबलः । चक्ररक्षौ तु पांचाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २० ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान् । भीमसेनो गदां बिभ्रद् वज्रसारमयीं दृढाम् । चरन् वेगेन महता समुद्रमपि शोषयेत् ॥ २१ ॥ एते तिष्ठन्ति सामात्याः प्रेक्षन्तस्ते जनाधिप । धृतराष्ट्रस्य दायादा इति बीभत्सुरब्रवीत् ॥ २२ ॥ भीमसेनं तदा राजन् दर्शयन्स्व महाबलम् । ब्रुवाणन्तु तथा पार्थं सर्वसैन्यानि भारत ॥ २३ ॥ अपूजयंस्तदा वाग्भिरनुकूलाभिराहवे । राजा तु मध्यमनीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥ बृहद्भिः कुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव । अक्षौहिण्याथ

के पीछे के भागकी रक्षा करते थे ॥ १७ ॥ महारथी धृष्टद्युम्न और पाञ्चाल सेनामें शूरवीर प्रभद्रक नामक रथियोंके साथ २ उन राजकुमारोंकी रक्षा करते थे ॥ १८ ॥ और हे भरतर्षभ ! भीष्मका नाश करनेके लिये अर्जुनकी रक्षामें शिखण्डी तयार होकर चलता था ॥ १९ ॥ अर्जुनके पीछे बलवान् युयुधान चलता था, पाञ्चाल राजपुत्र युधामन्यु और उत्तमौजा केकय धृष्टकेतु और वीर्यवान् चेकितान साथमें रहकर अर्जुन के चक्रकी रक्षा करता था । हे महाराज ! इस समय अर्जुनने युधिष्ठिर से महाबल भीमसेनको दिखाते हुए कहा, कि--हे राजन् ! यह भीमसेन वज्रसारमयी गदाको धारण करके बड़े वेग से चलता है, यह समुद्रको भी सुखा सकता है अरे ! मंत्रियों सहित यह धृतराष्ट्रके पुत्र भी भीमसेनको देखकर ठिठक रहे हैं ॥ २० ॥२३॥ हे भारत ! अर्जुन इस प्रकार सेनामें कह रहा था उसको सुनकर सब सेनापति उसके अनुकूल वाक्य कहकर उस की प्रशंसा करने लगे ॥ २४ ॥ इस समय कुन्तीके पुत्र राजा

पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः । विराटमन्वयात् पश्चात् पांडवार्थे पराक्रमी ॥ २५ ॥ तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः । नानाचिन्हधरा राजन् रथेष्वासन् महाध्वजाः ॥ २६ ॥ समुत्सार्य ततः पश्चाद्द धृष्टद्युम्नो महारथः । भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरत्तद्द युधिष्ठिरम् ॥२७॥ त्वदीयानां परेषां च रथेषु विपुलान् ध्वजान् । अभिभूयार्जुनस्यैको रथे तस्थौ महाकपिः ॥२८॥ पदातास्त्वग्रतो गच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः । अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रत्तिणः ॥ २९ ॥ वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः । शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाचलाः ॥३० ॥ त्तरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः । राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः ॥३१॥

युधिष्ठिर सेनाके मध्यभाग में चलते थे उस समय मदमत्त बड़े २ पर्वतोंकी समान हाथियों से घिर कर खड़े हुए से प्रतीत होते थे मनस्वी पराक्रमी पांचालराज द्रुपद पाण्डवोंके लिये विराट राजा की एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पीछे २ चलता था ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इन राजाओंके रथों पर सूर्य और चन्द्रमाकी समान कांति वाली तथा सोनेके श्रेष्ठ गहनों से भूपित अनेक चिन्हों से चिन्हित ध्वजाएं चढ़ी हुई थीं ॥ २६ ॥ महारथी धृष्टद्युम्न उन सब राजाओंको पीछे छोड़ कर अपने बन्धु और पुत्रोंके साथ आगे आकर युधिष्ठिरके पिछले भागमें रत्ता करने लगा ॥ २७ ॥ तुम्हारे पुत्रोंके तथा शत्रुओंके रथों पर चढ़ाइ हुईं अनेकों ध्वजाओंका तिरस्कार करता हुआ एक महाकपि अर्जुनकी ध्वजा पर बैठा था ॥ २८ ॥ तलवार भाले ऋष्टि लेकर आगे चलते हुए सैंकड़ों राजे भीमसेनकी रत्ता करते थे ॥ २९ ॥ जिनके गण्डस्थलमें से मद टपका करता है ऐसे शूरवीर सुवर्णकी झूलोंवाले बड़े कीमती पर्वत की समान और जल बरसाने वाले मेघकी समान मदको टपकाते हुए कमलकी समान सुगन्धिवाले वर्षा कालके मेघोंकी समान दश सहस्र हाथी युधिष्ठिरके पीछे चलते थे ॥३०—३१॥

भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन् परिघोपमाम् । प्रचकर्ष, महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥ ३२ ॥ तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम् । न शेकुः सर्वयोधास्ते प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥ ३३ ॥ वज्रो नामैष स व्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः । चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥३४॥ यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् । अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ३५ सन्ध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति । प्रावात्सपृषतो वायुर्निरभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ ३६ ॥ विष्वग्वाताश्च . विववुर्नीचैः शर्करवर्षिणः । रजश्चोद्धयत महत्तम आच्छादयज्जगत् ॥ ३७ ॥ पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥ ३८ ॥ अथ संनह्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ । निष्प्रभो-

---

और उदारचित्त दुराधर्ष भीमसेन, परिघकी समान अपनी मोटी गदाको उठाकर रणभूमिमें चलता था, उस सेनाको तपाते हुए से और सूर्यकी समान दुष्प्रेक्ष्य भीमसेनको तुम्हारे सैनिक पासमें होनेपर आंख उठाकर भी नहीं देख सके ॥ ३२—३३ ॥ चारों दिशाकी ओर मुखवाले, निर्भय, धनुषोंरूपी विद्युद्ध्वजवाले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनसे रक्षित और भयंकर वज्र नाम वाले व्यूहको रचकर पाण्डव तुम्हारी सेनाके सामने आकर खड़े हुए, यह वज्रव्यूह मनुष्य-लोकमें अजित है-और पाण्डव उसकी रक्षा करते हैं ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ सूर्योदयके समय प्रातःकाल की संध्यामें दोनों सेनायें जब एक दूसरेके आमने सामने आकर खड़ी हुई थी उस समय विना बादलों के ही आकाशमेंसे वर्षा होने लगी, गर्जना होने लगी और शीतल पवन चलने लगा ॥३६॥ भयंकर वायु नीचेके भागमें कंकर बरसाता हुआ वेगसे चारों ओर चलने लगा पृथिवी पर बड़ी धूल उड़ने लगी संसार अंधेरेसे भर गया ३७ हे भरतर्षभ ! इस समय पूर्वाभिमुख होकर एक बड़ाभारी उल्कापात हुआ उससे उदय होता हुआ सूर्य ढकसा गया ॥ ३८ ॥ हे

ऽभ्युद्ययौ सूर्यः सघोषं भूश्चचाल च ॥ ३९ ॥ व्यशीर्यत सनादा च भूस्तदा भरतर्षभ । निर्घाता बहवो राजन् दिक्षु सर्वासु चाभवन् ॥ ४० ॥ प्रादुरासीद्रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किंचन । ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ॥४१॥ किंकिणीजालबद्धानां कांचनस्रग् वराम्बरैः । महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ॥ ४२ ॥ सर्वं झणझणीभूतमासीत्तालवनेष्विव । एवन्ते पुरुषव्याघ्राः पांडवा युद्धनन्दिनः ॥ ४३ ॥ व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् । ग्रसन्त इव मज्जानं नो योधानां भरतर्षभ ॥४४॥ दृष्ट्वाग्रतो भीमसेनं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि पांडवसैन्यव्यूह एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सूर्योदये संजय के नु पूर्वं युयुत्सवो हृष्यमाणा

भरतर्षभ ! जब दोनों सेनाएं युद्ध करनेके लिये तयार होगईं उस समय सूर्य कांतिरहित होगया और बड़े धड़ाकेके साथ पृथिवी चलायमान होकर फट गई सब दिशाओं में घोर शब्द होने लगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ धूलके ढेरके आकाशमें चढ़नेसे कुछ भी नहीं दीखता था घूंघरोंवाली सुवर्णकी मालाओंवाली रेशमी वस्त्रों वाली सूर्यकी समान तेजस्वी ध्वजाएं पवनसे उड़ने लगीं, उस समय तालवनमें पवनसे जैसे झनर होती है तैसे ही ध्वजाओंके झनझन शब्दसे सम्पूर्ण जगत् झनझन करने लगा । इस प्रकार युद्धसे प्रसन्न होने वाले पुरुषोंमें व्याघ्र समान पाण्डव तुम्हारे पुत्रके सामने व्यूहरचना करके हाथ में गदा धारण करने वाले भीमसेनको अगाड़ी करके युद्ध करनेके लिये चढ़ आये और हे भरतर्षभ वह तुम्हारी सेनाके योधाओंकी मज्जाको ग्रसते हुऐ सामने आकर खड़े होगये ॥ ४१—४५ ॥ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! जब सूर्योदय हुआ तब भीष्म

इवासन् । मामका वा भीष्मनेत्राः समीपे पांडवा वा भीमनेत्रास्तदानीम् ॥१॥ केषां जघन्या सोमसूर्यौ सवायू केषां सेनां श्वापदाश्चाभषन्त । केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः सर्वं मे त्वं ब्रूहि मेवं यथावत् ॥२॥ सञ्जय उवाच । उभे सेने तुल्यमिवोपयाते उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र । उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥३॥ उभे सेने बृहत्यौ भीमरूपे तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये । तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे तथैवोभे सत्पुरुषोपजुष्टे॥४॥पश्चान्मुखाः कुरवो धार्त्तराष्ट्राः स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः । दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥ ५ ॥ चक्रे वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां धार्त्तराष्ट्रान् श्वापदा व्याहरन्त । गजेन्द्राणां मदगन्धांश्चतीव्रान्न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः ॥६॥ दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं सुवर्ण-

---

जिनके नेत्र (नायक) थे वे मेरे पुत्र और भीम जिनका स्वामी था ऐसे पाण्डवोंमेंसे पहिले युद्ध करनेके लिये कौन आतुर होरहा था ॥ १ ॥ चंद्र और सूर्य किसको अरिष्टकारक (अशुभ सूचक) हुए थे, किसके पीछे कुत्ते भौंसे थे ? किस पक्षके युवा पुरुषोंके मुखका वर्ण प्रसन्न था ॥ २ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे नरेन्द्र! दोनों सेनाके व्यूह जब युद्धके लिये आमने सामने खड़े हुए उस समय दोनों सेना प्रसन्न तथा कमलवनकी समान दीखती थीं हाथी,घोड़े तथा रथोंसे युक्त और विचित्र थीं॥३॥ हे भारत! दोनों सेनाएं बड़ीभारी भयंकर जिनके सामने देखा भी न जा सके ऐसी स्वर्गको जीतनेके लिये ही रचीहुई सी और सत्पुरुषों से सेवित थीं ॥४॥ धृतराष्ट्रके पुत्र कौरव पश्चिमकी ओरको मुख करके खड़े हुए थे,और युद्ध चाहनेवाले पाण्डव पूर्वकी ओर मुख करके खड़े हुए थे,कौरवोंकी सेना दैत्योंके राजाकी सेनाकी समान और पाण्डवोंकी सेना देवराजकी सेनाकी समान शोभा पारही थी॥५॥ जब पांडवोंके पीछे वायु चलता था तब धृतराष्ट्रके पुत्रोंके पीछे कुत्ते आदि पशु रोते थे,पाण्डवोंके बड़े २ हाथियोंकी तीव्र मदकी गंधको तुम्हारे पुत्रोंके हाथी सह नहीं सके ॥ ६ ॥ कमलकी

कद्रं जालवन्तं प्रभिन्नम् । समास्थितो मध्यगतः कुरूणां संस्तूयमानो बन्दिभिर्मागधैश्च ॥ ७ ॥ चन्द्रप्रभं श्वेतमथातपत्रं सौवर्णस्रग् भ्राजति चोत्तमांगे । तं सर्वतः शकुनिः पार्वतीयैः सार्द्धं गान्धारैर्याति गान्धारराजः ॥ ८ ॥ भीष्मोग्रतः सर्वसैन्यस्य वृद्धः श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सखड्गः । श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशैः ॥ ९ ॥ तस्य सैन्ये धार्त्तराष्ट्राश्च सर्वे वाह्लीकानामेकदेशः शलश्च । ये चांवष्ठा क्षत्रिया ये च सिन्धोस्तथा सौवीराः पञ्चनदाश्च शूराः ॥ १० ॥ शोणैर्हयैरुक्मरथो महात्मा द्रोणो धनुष्पाणिरदीनसत्त्वः । आस्ते गुरुः प्रायशः सर्वराज्ञां पश्चाच्च भूमीन्द्र इवाभियाति ॥ ११ ॥ वार्द्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च । शाल्वा मत्स्याः केकयाश्चेति

समान वर्णवाले सोनेकी फूल पड़े हुए मोती की माला, पहिरे हुए और मदको टपकाने वाले हाथी पर बैठकर दुर्योधन कौरवसेना के बीचमें खड़ा था, वन्दीजन तथा मागध उसकी स्तुति करते थे चन्द्रमाकी समान श्वेत छत्र उसके शिर पर लग रहा था, उसके शरीर पर सुवर्णके आभूषण थे, उसके कण्ठमें सुवर्णकी माला लटक रही थी और गांधारराज शकुनि पर्वतवासी गांधारोंके साथ चारों ओर से उसकी रक्षा करता हुआ चलता था ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! श्वेत छत्रवाले श्वेत धनुषवाले, श्वेत टोपवाले, श्वेतशिलाका समान श्वेत वर्णके रथमें बैठे हुए खड्गधारी वृद्ध भीष्म अपनी सेनामें सबसे आगे थे ॥ ९ ॥ हमारी सेनामें तुम्हारे पुत्र वाह्लीक, शल्य, अंवष्ठ, सिंध, सौवीर और शूर पंजाबी क्षत्रिय थे ॥ १० ॥ उनके पीछे लाल घोड़ोंवाले सुवर्णके रथमें बैठे हुए धनुर्धारी अतीव पराक्रमी प्रायः सम्पूर्ण ही राजाओंके गुरु महात्मा द्रोणाचार्यजी पर्वतकी समान अचल होकर पीछे२ चलते थे ॥११॥ सकल सेनाके मध्यभागमें वृद्धक्षत्रिय भूरिश्रवा पुरुमित्र जयत्सेन शाल्व तथा मत्स्य देशके योधा और हाथीकी सेनावाले तथा

सर्वे गजानीकैर्भ्रातरो योत्स्यमानाः ॥ १२ ॥ शारद्वतश्चोत्तरधूर्महात्मा महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी । शकैः किरातैर्यवनैः पल्हवैश्च सार्धं चमूमुत्तरतोऽभियाति ॥१३॥ महारथैर्वृष्णिभोजैः सुगुप्तं सुराष्ट्रकैर्विदितैरात्तशस्त्रैः । बृहद्बलं कृतवर्माभिगुप्तं बलं त्वदीयं दक्षिणेनाभियाति ॥ १४ ॥ संशप्तकानामयुतं रथानां मृत्युर्जयो वार्जुनस्येति सृष्टाः । येनार्जुनस्तेन राजन् कृतास्त्राः प्रयातारस्ते त्रिगर्त्ताश्च शूराः ॥ १५ ॥ साग्रं शतसहस्रन्तु नागानां तव भारत । नागे नागे रथशतं शतमश्वा रथे रथे ॥ १६ ॥ अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः । एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत ॥ १७ ॥ संव्यूह्य मानुषं व्यूहं दैवं गांधर्वमासुरम् । दिवसे दिवसे

युद्धकी इच्छा वाले सब केकय राजकुमार चलते थे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! जिनके वाहनका अग्रभाग उत्तम था ऐसे गौतमवंशोत्पन्न महात्मा शरद्वानके पुत्र विचित्र युद्ध करनेवाले महा धनुर्धारी कृपाचार्य, शक, भिल्ल, यवन और पल्हवों (पारसियों) के साथ उत्तर विभागकी सेनाके साथ २ चलते थे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! महारथी वृष्णि और भोजवंशके यादवोंसे शस्त्रविद्यामें निपुण सुराष्ट्रोंसे तथा कृतवर्मासे रक्षित तुम्हारी बड़ी भारी सेना सब सेनाके दक्षिणभागकी ओर चलती थी ॥ १४ ॥ हे राजन् ! अर्जुनकी मृत्यु वा पराजयके लिये नियुक्त किये हुए दश हजार महारथी संशप्तकगण और शस्त्रविद्यामें शूरवीर त्रिगर्त देश के योधा अर्जुनके सामनेको धसे जाते थे ॥१५॥ हे भारत ! तुम्हारी सेनामें एक लाख मुख्य हाथीसवार योधा हैं, प्रत्येक हाथीके महावतके पास सौ २ रथी हैं, प्रत्येक रथियोंके पास सौ२ घुड़सवार हैं ॥ १६ ॥ और एक २ घुड़सवारोंके पास दश २ धनुर्धारी हैं और एक २ धनुर्धारीके पास सौ२ ढालवाले हैं इसप्रकार हे भारत ! भीष्मने तुम्हारी सेना के विभागोंको व्यूहमें खड़ा किया है ॥१७॥भीष्म किसी दिन मानुषव्यूह किसी दिन दैवव्यूह किसी दिन गांधर्वव्यूह और किसी दिन आसुरव्यूह रचते थे ।

प्राप्ते भीष्मः शांतनवोऽग्रणीः ॥ १८ ॥ महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान्। भीष्मेण धार्त्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि १९ अनन्तरूपा ध्वजिनी नरेन्द्र भीमा त्वदीया न तु पाण्डवानाम्। तां चैव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधर्षां यस्या नेता केशवश्चार्जुनश्च ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने विंशोऽध्याय ॥ २० ॥

सञ्जय उवाच। बृहतीं धार्त्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम्। विषादमगमद्राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१॥ व्यूहं भीष्मेण चाभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पांडवः। अभेद्यमिव संप्रेक्ष्य विवर्णोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २ ॥ धनञ्जय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे। धार्त्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः ॥ ३ ॥ अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणामित्रकर्षिणा। कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरिवर्चसा ॥ ४ ॥

भीष्मका रचा हुआ तुम्हारे पुत्रोंका व्यूह महारथियों से बढ़ा हुआ था और समुद्रकी समान गर्जना कर रहा था, वह युद्ध के समय पश्चिमकी ओरको मुख करके खड़ा हुआ था ॥१८॥१९॥ हे राजन्! तुम्हारी सेना असंख्य और भयंकर थी यद्यपि पाण्डवों की सेना ऐसी नहीं थी तो भी उस सेनाको बड़ा और अजेय मानता हूं क्योंकि—उस सेनाके नायक केशव और अर्जुन हैं ॥ २० ॥ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है कि—युद्ध करनेके लिये उद्यत हुई धृतराष्ट्र के पुत्रोंकी बड़ीभारी सेनाको देखकर कुन्तीके पुत्र राजा युधिष्ठिर को विषाद हुआ ॥ १ ॥ धर्मराजने भीष्मके रचेहुए अभेद्य व्यूह को देखा और यह व्यूह अभेद्य है ऐसा समझ कर पीले पड़ गए और अर्जुनसे कहने लगे कि-॥ २ ॥ हे धनञ्जय! हे महाबाहो जिनके पितामह योधा हैं ऐसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ हम किस प्रकार युद्ध कर सकेंगे ॥ ३ ॥ वास्तवमें शत्रुनाशी, महातेजस्वी भीष्मने यह अक्षोभ्य और अभेद्य व्यूहशास्त्रमें कही हुई विधिसे

ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्षण । कथमस्मान्महाव्यूहादुत्थानं नो भविष्यति ॥ ५ ॥ अथार्जुनोऽब्रवीत्पार्थं युधिष्ठिरममित्रहा । विषण्णमित्र संप्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम् ॥ ६ ॥ प्रज्ञयाभ्यधिकान् शूरान् गुणयुक्तान् बहूनपि । जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशाम्पते ॥ ७ ॥ तत्र ते कारणं राजन् प्रवक्ष्याम्यनसूयवे । नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव ॥ ८ ॥ एवमेवार्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत् । पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन् दिवौकसः ॥ ९ ॥ न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः । यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च ॥ १० ॥ ज्ञात्वा धर्ममधर्मञ्च लोभञ्चोत्तममास्थिताः । युध्यध्वमनहङ्कारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ११ ॥ एवं राजन् विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणे जयः ।

रचा है ॥ ४ ॥ हे शत्रुमर्दन ! इस व्यूहने तो हमें और हमारी सेनाको संशयमें डाल दिया है इस व्यूहके सामने हम किस प्रकार जय पासकेंगे ॥ ५ ॥ तदनन्तर शत्रुमर्दन अर्जुनने तुम्हारी सेना की ओर देख कर खिन्न हुए पृथापुत्र युधिष्ठिरसे कहा कि—हे राजन् ! थोड़ी सी सेना बुद्धि बलसे शूरोंवाली और गुणवान् महासैन्यको किस प्रकार जीत लेती है यह तुम सुनो ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तुम ईर्ष्याशून्य हो अतः मैं तुमसे उसके कारण कहता हूं उनको सुनो उन कारणोंको भीष्म द्रोण और नारद भी भली प्रकार जानते हैं ॥८॥ पहिले इन कारणों को देवासुरयुद्धके समय ब्रह्माजीने देवताओंको तथा इन्द्रको बताया था॥९॥ विजय चाहनेवाले बल और वीर्यसे नहीं जीतते हैं; किन्तु सत्य, सज्जनता और उत्साहसे ही जय पाते हैं॥१०॥उत्तम पुरुषोंके आश्रित धर्म, अधर्म और लोभके स्वरूपको जानने पर जो अहङ्काररहित होकर युद्ध करता है वह जीतता है क्योंकि जहां धर्म है तहां ही जय है११ हे राजन्! इस लिये तुम निश्चय ही यह जानो कि—युद्धमें हमारी ही विजय होगी और जैसा नारदजी कहते हैं कि-जहां कृष्ण हैं

यथा तु नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १२ ॥ गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम् । तथथा विजयश्चास्य सन्नतिश्चापरो गुणः ॥ १३ ॥ अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः । पुरुषः सनातनमयो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १४ ॥ पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठेऽकुण्ठसायकः । सुरासुरानवस्फूर्ज्जन्नब्रवीत् के जयन्त्विति ॥ १५ ॥ कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम् । तत् प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥ तस्य ते न व्यथां कांचिदिह पश्यामि भारत । यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

सञ्जय उवाच । ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत् ।

तहां ही जय है ॥ १२ ॥ विजय गुणरूपसे श्रीकृष्णमें रहती है, वह श्रीकृष्णके पीछे २ चलती है, जैसे जय उनका एक गुण है तैसे ही सन्नति (नमना) भी उनका दूसरा गुण है ॥ १३ ॥ गोविन्द अनन्त तेजवाले हैं और शत्रुओंके बीचमें भी यह पीड़ा-रहित होकर खड़े रहते हैं और यह ही सनातन-पुरुष हैं और जहां श्रीकृष्ण हैं तहां ही जय है ॥ १४ ॥ पहिले जिनका बाण खुट्ला नहीं हुआ है ऐसे इन हरिने अवतार धारण कर महास्वर से देवता और राक्षसोंसे कहा कि-तुममेंसे कौन जीतेगा ॥१५ ॥ उस समय जिन्होंने यह कहा कि-हे विष्णो ! हम किसप्रकार विजय पावें वह ही अन्तमें जीते इन हरिके प्रसादसे इन्द्रके सेनापतित्वमें देवताओंने तीनों लोकोंको जीता था ॥ १६ ॥ हे भारत ! तुम्हारे विषाद करनेका मैं कोई कारण नहीं देखता क्योंकि-तीनों लोकोंके स्वामी और विश्वके भोक्ता श्रीकृष्ण तुम्हारी जय चाहते हैं ॥ १७ ॥ इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

सञ्जय कहने लगा, कि—हे भरतर्षभ ! राजा युधिष्ठिरने

प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥१॥ यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः । स्वर्गं परमभिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥२॥ मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितः सव्यसाचिना । धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३ ॥ अनीकं दक्षिणं राजन् युयुधानेन पालितम् । श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥ ४ ॥ महेन्द्रयानप्रतिमं रथन्तु सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम् । युधिष्ठिरः कांचनभाण्डयोक्त्रं समास्थितो नागपुरस्य मध्ये ॥ ५ ॥ समुच्छ्रितं दन्तशलाकमस्य सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति । प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्तः महर्षयः संस्तुतिभिर्महेन्द्रम् ॥ ६ ॥ पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम् । जप्यैश्च मंत्रैश्च महौषधीभिः

अपनी सेनाको व्यूहरचनासे खड़ा करनेके पीछे भीष्मपितामहके सामने धावा करने की आज्ञा दी ॥ १ ॥ कुरुकुलोत्पन्न धर्म-युद्ध करके स्वर्गको जाना चाहने वाले पाण्डवोंने कौरवोंके सामने होकर समयानुकूल व्यूहरचना की थी ॥ २ ॥ पांडवोंकी सेनाके मध्यभागमें अर्जुनसे रक्षित शिखण्डी और उसकी सेना रहती थी और भीमसेनसे रक्षा किया हुआ शिखण्डी उसके आगे खड़ा था ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उस सेनाके दक्षिणभागमें धनुर्धर इन्द्रसे रक्षित देवसेनाकी समान श्रीमान् सात्वत्कुलके महायोधा युयुधानकी रक्षा (अधीनता) में सेना खड़ी थी ॥४॥ इन्द्रके विमान की समान युद्धकी सामग्री वाले सुवर्ण के गहने तथा रत्नों से जड़े हुए रथमें बैठे राजा युधिष्ठिर उस समय जैसे हस्तिना पुरमें ही बैठे हों ऐसी शोभा पाते थे ॥ ५ ॥ हाथीदांतके दण्डे वाला सुन्दर श्वेत छत्र उनके मस्तक पर बड़ी शोभा देता था ॥ ६ ॥ मानों इन्द्रकी स्तुति करते हों इस प्रकार महर्षि उनके आस पास खड़े होकर स्तुतियोंसे उनकी पूजा करते थे इतना ही नहीं किन्तु युधिष्ठिरके पुरोहित और महर्षि भी तुम्हारे शत्रु नष्ट हों ऐसे आशीर्वाद देते थे और सब ब्रह्मर्षि तथा सिद्ध पुरुष उन आशिर्वादों को सुनते थे तथा जप, मन्त्र और महौषधियों

समन्ततः स्वस्त्ययनं ब्रुवन्तः ॥ ७ ॥ ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान्। कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा कुर्वन् ययौ शक्र इवामरेशः॥ ८ ॥ सहस्रसूर्यःशतकिंकिणीकः परार्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः। रथोर्जुनस्याग्निरिवार्चिमाली विभ्राजते श्वेतहयः सुचक्रः॥ ९ ॥ तमास्थितः केशवसंगृहीतं कपिध्वजो गाण्डिवबाणपाणिः। धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां न विद्यते नो भविता कदाचित्॥ १० ॥ उद्वर्त्तयिष्यंस्तव पुत्रसेनामतीव रौद्रं स बिभर्त्ति रूपम्। अनायुधो यः सुभुजो भुजाभ्यां नराश्वनागान् युधि भस्म कुर्यात्॥ ११ ॥ स भीमसेनः सहितो यमाभ्यां वृकोदरो वीररथस्य गोप्ता। तं तत्र सिंहर्षभमत्तखेलं लोके महेन्द्रप्रतिमान-

---

द्वारा सब ओर से स्वस्तिवाचन करते थे ॥ ७ ॥ कुरुकुल में श्रेष्ठ महात्मा राजा युधिष्ठिर वस्त्र गौ फल पुष्प तथा सुवर्ण की मुहरें ब्राह्मणोंको देते हुए राजा इन्द्रकी समान रणभूमि मेंको धीरे२ प्रयाण करते थे॥८॥ हे राजन्! सहस्र सूर्योंके प्रकाश की समान सैंकड़ों घंटियोंवाला अमूल्य जाम्बूनद नामक सुवर्ण से विचित्र, श्वेत घोड़ों से युक्त और सुन्दर पहियों वाला अर्जुन का रथ ज्वाला वाले अग्निकी समान बड़ी ही शोभा पारहा था ॥ ९ ॥ और हे राजन! श्रीकृष्ण जिसके सारथी हैं और जिसके समान कोई धनुषधारी हुआ ही नहीं है और न आगेको ही होगा ऐसा गाण्डीव तथा बाणों को लेकर बैठाहुआ और जिसकी ध्वजामें हनुमानका चिन्ह है ऐसा अर्जुन इस सुन्दर रथमें सवार हुआ था ॥१० ॥ हे राजन! तुम्हारे पुत्रकी सेनाओंका नाश करनेके लिये ही जिसने अतीव भयंकर रूप धारण किया है ऐसा सुन्दर बाहुवाला,वीर घोड़े और हाथियोंका नाश करने वाला शूर रथी की रक्षा करनेवाला, मदमत्त सिंहकी समान क्रीड़ा करनेवाला, इंद्र की समान सेनाका पति, दुष्प्रेक्षय और गजराजकी समान गर्वीले भीमसेनके साथ में नकुल तथा सहदेवको देखकर, घबड़ाए हुए

कल्पम् ॥ १२ ॥ समीक्ष्य सेनाग्रगतं दुरासदं संविव्यथुः पंकगता यथा द्विपाः । वृकोदरं वारणराजदर्पं योधास्त्वदीया भयविग्नसत्त्वाः ॥ १३ ॥ अनीकमध्ये तिष्ठन्तं राजपुत्रं दुरासदम् । अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ गुडाकेशं जनार्दनः ॥ १४ ॥ वासुदेव उवाच । य एष रोषात् प्रतपन् बलस्थो यो नः सेनां सिंह इवेक्षते च । स एष भीष्मः कुरुवंशकेतुर्येनाहृतास्त्रिशतं वाजिमेधाः ॥ १५ ॥ एतान्यनीकानि महानुभाव गूहन्ति मेघा इव रश्मिमन्तम् । एतानि हत्वा पुरुषप्रवीर कांक्षस्व युद्धं भरतर्षभेण ॥ १६ ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥

सञ्जय उवाच । धार्त्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् । अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानु-

---

तुम्हारे योधा कींचड़में फँसेहुए हाथियोंकी समान अत्यन्त व्यथित हुए, उनका बल भयसे नष्ट होगया ॥ ११-१३ ॥ तदनन्तर हे भरतसत्तम ! सेनाके अग्रभागमें खड़े हुए, जिसके पास कष्टसे पहुंचा जासके उस राजपुत्र अर्जुनसे वासुदेवने कहा कि-॥१४॥ हे अर्जुन ! जो क्रोधके मारे लालताल होगए हैं और जो सेनाके अग्रभागमें खड़े होकर हमारी सेनाको सिंहकी समान देख रहेहैं यह तीनसौ अश्वमेध यज्ञ करने वाले कुरुवंशचूडामणि भीष्म ही हैं१५ मेघ जैसे महानुभाव सूर्यको ढक देता है तैसे ही शत्रुकी सेना आस पासमें इन महानुभावको घेर कर खड़ीहै अतः हे महावीर पुरुष ! तू इस सेनाका संहार करके भरतवंशमें श्रेष्ठ भीष्मके साथ युद्ध करनेकी इच्छा कर ॥ १६ ॥ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

सञ्जय कहता है, कि—युद्ध करनेके लिये धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाको तत्पर हुई देखकर अर्जुनके हितके लिये भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से फिर इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ भगवान्ने

वाच । शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः । पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्तोऽर्जुनः सङ्ख्ये वासुदेवेन धीमता । अवतीर्य्य रथात् पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥ अर्जुन उवाच । नमस्ते सिद्धसेनानि आर्य्ये मन्दिरवासिनि । कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥ ४ ॥ भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते । चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५ ॥ कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये । शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥६॥ अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि । गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्द-गोपकुलोद्भवे ॥ ७ ॥ महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि

कहा, कि—हे महाबाहो ! तू पवित्र होकर शत्रुओंका पराजय करने के लिये इस संग्रामके समय दुर्गास्तोत्रका पाठ करके दुर्गादेवी को प्रसन्न कर ॥ २ ॥ संजय कहता है कि—बुद्धिमान् वासुदेव के इस प्रकार सूचना देते ही अर्जुन रथमें से नीचे उतर पड़ा और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार दुर्गास्तोत्रका पाठ करने लगा ॥ ३ अर्जुन स्तुति करता है कि—हे आर्ये ! हे सिद्धसेनानि ! हे मन्दर पर्वत में वास करने वाली देवि ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं, हे कुमारी ! हे कालि ! हे कापालि ! हे कपिले ! हे कृष्णपिंगले! ॥४॥ हे भद्रकालि ! हे महाकालि ! हे चंडि ! हे चण्डे! हे तारिणि! हे वरवर्णिनि ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं ॥५॥ हे कात्यायनि ! हे महाभागे ! हे करालि ! हे विजया ! हे जया ! हे मयूरके पंख की ध्वजाको धारण करनेवाली ! हे नाना प्रकारके अलंकारोंसे भूषित ! ॥ ६॥ हे अट्टशूलरूप आयुधवाली ! हे खड्ग और खेटक नामक आयुधको धारण करनेवाली ! हे श्रीकृष्णकी छोटी बहिन ! हे ज्येष्ठे ! हे नन्दगोप कुलमें उत्पन्न हुई देवी! ॥७॥ हे महिषासुर-मर्दिनि ! हे कौशिकि ! हे नित्यपीतवसिनि ! हे अट्टहास करनेवाली

अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८ ॥ उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि । हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥ वेदश्रुतिमहापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि । जम्बू-कटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥ १० ॥ त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् । स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥ ११ ॥ स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती । सावित्री वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥ १२ ॥ स्तुतासि त्वं महादेवि विशुद्धेनान्तरात्मना । जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे ॥ १३ ॥ कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च । नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥ १४ ॥ त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च । सन्ध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥ १५ ॥ तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्द्धिनी । भूमि-

---

हे चक्रकी समान मुख वाली! हे रणप्रिये ! तुमको नमस्कार हो ८ हे उमे! हे शाकंभरि! हे श्वेते! हे कृष्णे! हे कैटभ दैत्यको मारने वाली! हे हिरण्याक्षि ! हे विरूपाक्षि ! हे सुन्दर धूम्राक्षि ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं ॥९॥ वेदोंमें जिनके महापुण्योंका श्रवण होता है ऐसी ब्रह्मण्ये ! हे भूतकाल को जानने वाली ! हे जम्बूद्वीपकी राज-धानीमें और मन्दिरोंमे निवास करनेवाली ! मेरा तुमको प्रणाम हो ॥ १० ॥ तुम विद्याओंमें ब्रह्मविद्या हो ! देहधारियोंकी महा-निद्रारूप हो,हे स्वामिकार्तिकेयकी माता हे दुर्गे! हे भगवति! हे वन-वासिनी ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं ॥ ११ ॥ तुम ही स्वाहा-कार हो, स्वधा हो, कला हो, काष्ठा हो, सरस्वती हो, वेदकी माता सावित्री हो, और तुम ही वेदान्तस्वरूप कहलाती हो ॥ १२ ॥ हे महादेवि ! मैंने शुद्धचित्तसे तुम्हारी स्तुति की है,हे देवि! तुम्हारे प्रसादसे युद्धभूमिमें मेरी सदा जय हो ॥ १३ ॥ जंभनी, मोहनी माया, ह्री तथा श्री भी तुमही हो,तुम ही संध्या प्रभावती,सावित्री, और जननी मा, तुम ही तुष्टि, पुष्टि, धृति, दीप्ति और चन्द्र तथा

मूर्तिमतां सञ्जये वीच्यसे सिद्धचारणैः ॥ १६ ॥ सञ्जय उवाच। ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला। अन्तरिक्षगतोवाचः गोविन्दस्याग्रतः स्थिता ॥ १७ ॥ देव्युवाच। स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रून् जेष्यसि पाण्डव। नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥ १८ ॥ अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम्। इत्येव-मुक्त्वा वरदा क्षणेनान्तरधीयत ॥ १९ ॥ लब्ध्वा वरन्तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः। आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मत- ॥ २० ॥ कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः। य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥ यक्षरक्षःपिशा-चेभ्यो न भयं विद्यते सदा। न चापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥ २२ ॥ न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि।

सूर्यको बढ़ानेवाली हो, हे देवि! तुम ही ऐश्वर्यवानों की भूति हो और सिद्ध तथा चारण संग्राममें तुम्हारा ही दर्शन करते हैं॥१४॥ ॥१६॥ संजय कहता है कि-अर्जुनकी ऐसी भक्ति को जानकर मानववत्सलादेवी श्रीकृष्णके सन्मुख आकाशमें प्रकट होकर बोलीं १७ देवीने कहा, कि-हे पाण्डव! थोड़े ही समयमें तू शत्रुको जीत लेगा, हे तेजस्वी! तू नारायणकी सहायता वाला नर है ॥१८॥ इसलिये यदि स्वयं इन्द्र आवे तो भी कोई शत्रु तुझे जीत नहीं सकेंगे, वरदान देनेवाली देवी ऐसा कह कर तुरन्त ही आकाश में फिर अन्तर्धान होगयी ॥ १९ ॥ ऐसा वरदान पानेसे कुन्ती-पुत्रने अपनेको विजयी माना और फिर परमसत्तम अर्जुन रथ पर चढ़ बैठा ॥ २० ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन एक ही दिव्य रथमें बैठकर दिव्य शङ्ख बजानेलगे, जो मनुष्य प्रातःकाल के समय उठकर इसको पाठ करताहै।२१। उसको यक्ष, राक्षस और पिशाचोंसे कभी भय नहीं होता है, उसके जो शत्रु हों उनसे तथा दाढ़ोंवाले जो सर्प आदि हैं उनसे भी भय नहीं होता है ॥२२॥ उसको राजकुलसे भी कभी भय नहीं होता है, वह झगड़ेमें विजय

विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्यति बन्धनात् ॥ २३ ॥ दुर्गं तरति चावश्यं तथा चौरैर्विमुच्यते । संग्रामविजयो नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ॥ २४ ॥ आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं तथा । एतद्दृष्टं प्रसादात्तु मया व्यासस्य धीमतः ॥ २५ ॥ मोहादेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी । तव पुत्रा दुरात्मानः सर्वे मोहवशानुगाः ॥ २६ ॥ प्राप्तकालमिदं वाक्यं कालपाशेन गुण्ठिताः । द्वैपायनो नारदश्च कण्वो रामस्तथानघः ॥ २७ ॥ अवारयंस्तव सुतं न चासौ तद् गृहीतवान् । यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः । यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः २८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्गास्तोत्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । केषां प्रहृष्टास्तत्राग्रे योधा युध्यन्ति सञ्जय ।

पाता है और बन्धनमें पड़ाहुआ (कैदी) बन्धनसे छूटजाता है २३ अवश्य ही सङ्कटके पार होजाता है, चोरोंके हाथसे छूटजाता है और संग्राम में विजय पाता है, इस स्तोत्रका पाठ करनेवालेको लक्ष्मी भी मिलती है ॥ २४ ॥ वह नीरोग और बलवान् होता है तथा सौ वर्ष तक जीता रहता है, बुद्धिमान् व्यासजीके प्रसाद से मैंने इस बातको जाना है ॥ २५ ॥ तुम्हारे सब पुत्र दुष्टात्मा और क्रोधके वशमें हैं, इस कारण वह मोहके वशमें होकर नर नारायणको नहीं जानते हैं ॥ २६ ॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्रको कृष्णद्वैपायन व्यासजीने, नारदजीने, कण्वऋषिने और निष्पाप परशुरामने समयके योग्य बातें समझाकर बहुत रोका, परन्तु उसने एक नहीं मानी ॥ २७ ॥ जहां धर्म है तहां ही द्युति, कांति, लज्जा लक्ष्मी और सुबुद्धि है और जहां धर्म है तहां ही श्रीकृष्ण हैं तथा जिसकी ओर श्रीकृष्ण हैं उसकी ओर ही विजय है ॥२८॥ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा कि—हे सञ्जय! रणमें किस पक्षके योधा बड़े हर्षके साथ युद्ध करते थे? किनके मन उदास होगये थे? और

उदग्रमनसः के वा के वा दीना विचेतसः ॥१॥ के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने । मामकाः पाण्डवेया वा तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २॥ कस्य सेनासमुद्रस्य गन्धमाल्यसमुद्भवः । वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्ज्जताम् ॥३॥ सञ्जय उवाच । उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे तदा । स्रजः समाः सुगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥ ४ ॥ संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ । संसर्गात् समुदीर्णानां विमर्द्दः सुमहानभूत् ॥५॥ वादित्रशब्दस्तुमुलः शङ्खभेरीविमिश्रितः । शूराणां रणशूराणां गर्ज्जतामितरेतरम्॥६॥ उभयोः सेनयो राजन् महान्व्यतिकरोऽभवत् । अन्योऽन्यं वीक्षमाणानां योधानां भरतर्षभ।कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम्॥७॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

कौन चित्तके व्यामोहसे दीनसे होगये थे ? ॥ १ ॥ इस रणभूमि पर हृदयको कम्पायमान करनेवाले युद्धमें मेरे या पांडुके पुत्रोंमेंसे किसने पहिले प्रहार किया था ? ॥२॥ किसके सेनादलमेंसे सुगंधित मालाओंवाला वायु चलता था ? किसके गरजते हुए योधा वीररसकी वातें करते थे ? ॥ ३ ॥ सञ्जय कहता है, कि—उस रणभूमिमें दोनों सेनाओंके योधा उस समय आनन्दमें मग्न दीखते थे तथा दोनों सेनाओंकी पुष्पमालायें और सुगन्धियें एकसी महक देती थीं ॥ ४ ॥ हे भरतसत्तम ! दोनों सेनाओंके व्यूहरचनासे (किला बांधकर) खड़ी होजाने पर उनका आपसमें भेंटा होते ही बड़ी भारी मार काट हुई थी,तहां शङ्ख और नगाड़ोंके शब्दोंके साथ मिला हुआ बाजेका घोर शब्द सुनायी आता था, आपसमें गरजते हुए रणशूर योधाओंका भी बड़ाभारी कोलाहल होरहा था५-६ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दोनों सेनाओंमें बड़ाभारी युद्ध होने लगा, योधा एक दूसरेकी ओरको देख २ कर लड़ने लगे, हाथी चिंघाड़नेलगे, योधा हर्षमें भरगये और उनमें युद्ध होनेलगा ७ चौवीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ छ ॥ ॥

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥

धृतराष्ट्र उवाच । धर्म्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा । आचार्य्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीश्चमूम् । व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥ अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि । युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥ धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्य्यवान् । पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुङ्गवः ॥५॥ युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान् । सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥ अस्माकन्तुविशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम । नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे सञ्जय ! धर्मके क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें मेरे पुत्रोंने तथा पाण्डुके पुत्रोंने युद्ध करनेकी इच्छासे इकट्ठे होकर क्या किया ? ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि—पाण्डवोंकी सेनाको व्यूहरचनामें खड़ीहुई देखकर उस समय राजा दुर्योधनने द्रोणाचार्यके पास जाकर यह बात कही, कि–॥ २ ॥हे आचार्य ! तुम पाण्डुके पुत्रोंकी इस बड़ी भारी सेनाको देखो, जिसको तुम्हारे शिष्य द्रुपदके पुत्र बुद्धिमान् धृष्टद्युम्नने व्यूहरचना से सजाया है ॥ ३ ॥ इस पाण्डवसेनामें बड़े २ धनुषोंको धारण करनेवाले युद्ध करनेमें भीम और अर्जुनकी समान वीर योधा हैं, जैसे कि—सात्यकि, विराट, महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान वीर्यवान् काशिराज, बहुतोंको जीतने वाला कुन्तिभोज, पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा शैव्य, पराक्रमी युधामन्यु, वीर्यवान् उत्तमौजा, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके प्रतिविंध्य आदि आठ पुत्र, ये सब ही महारथी हैं ॥ ४—६ ॥ हे द्विजवर ! बल आदिमें प्रसिद्ध हमारे जो योधा हैं, उनके नाम भी आप सुनिये, (मेरी सेनामें भी बड़े २ वीर हैं इस बातको जतानेके लिये) मेरी सेनामें जो नायक

ते ॥ ७ ॥ भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमत्तिर्जयद्रथः ॥८॥ अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्त-जीविताः नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥ अपर्य्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् । पर्य्याप्तं त्विदिमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥ अयनेषु च सर्वेषु यथाभावमवस्थिताः । भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥ तस्य सञ्जन-यन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः। सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रताप-वान् ॥१२ ॥ ततः शंखाश्च भेर्य्यश्च पणवानकगोमुखाः । सहसैवा-भ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥ ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते

हैं उनके नाम मैं तुम्हें गिनवाता हूं ॥ ७॥ आप और भीष्मजी, कर्ण, युद्धमें विजय पानेवाले कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा तथा और भी बहुत से मेरे लिये प्राण त्यागनेका निश्चय किये हुए वीर पुरुष इकट्ठे हैं वह सब अनेकों प्रकारके शस्त्र (तलवार आदि चीरने फाड़नेके हथियार) तथा प्रहरण (गदा आदि फेंककर मारनेके हथियार) वाले हैं और युद्ध करनेमें बड़े ही चतुर हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ भीष्मजी का रक्षा किया हुआ हमारा सेनादल ऐसा नहीं है कि-इसको पाण्डवोंकी सेना घेर सकै, परन्तु भीम आदि रक्षकोंके होते हुए भी पाण्डवोंके सेनादलको हमारी सेना घेर सकती है १० व्यूहरचनामें खड़ी हुई सेनामें घुसनेके मार्गोंमें तुम सब ही अपने२ स्थान पर खड़े होजाओ और चारों ओरसे भीष्मजीकी रक्षा करो ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर कुरुवंशमें वृद्ध तेजस्वी पितामहने दुर्योधनके युद्धके उत्साहको बढ़ाते हुए सिंहकी समान बड़ीभारी गर्जना करके शङ्ख बजाया ॥ १२ ॥ फिर शङ्ख, भेरी, ढोल, नगाड़े और नरसिंगे आदि रणके बाजे एक साथ बज उठे और उनकी घोर शब्द होनेलगा ॥ १३ ॥ इसके बाद सफेद घोड़ोंसे जुतेहुए

महति स्यन्दने स्थितौ । माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥ पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः । पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥ अनन्तविजयं राजा कुन्ती-पुत्रो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥ काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥ द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवी-पते । सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥ स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयन् । नभश्च पृथिवीञ्चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥ अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः । प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥ हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते । अर्जुन उवाच । सेनयो-

---

बड़ेभारी रथमें बैठे हुए कृष्ण और अर्जुन दिव्य शङ्खोंको बजाने लगे ॥ १४ ॥ कृष्णने पाञ्चजन्य नामके शङ्खको अर्जुनने देवदत्त नामके शङ्खको और भयानक पराक्रम करनेवाले भीमसेनने पौंड्र नामके महाशङ्खको बजाया ॥ १५ ॥ कुन्ती-नन्दन राजा युधिष्ठिरने अनंतविजय नामके शङ्खको तथा नकुल और सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक नामवाले शङ्खोंको बजाया ॥१६॥ हे राजन् ! बड़े भारी धनुषको धारण करनेवाले काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, न हारनेवाला सात्यकी, राजा द्रुपद, द्रौपदीके प्रतिविंध्य आदि पुत्र और महा-बाहु सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु ये सब अलग अलग अपने २ शङ्खों को बजानेलगे ॥१७-१८॥ उन शङ्खोंके घोर शब्दने तुम्हारे पुत्रोंके हृदयोंको चीरते हुए आकाश तथा पृथिवीको गुंजार दिया १९ फिर हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंको भय तथा घबड़ाहटसे इधर उधर खड़े हुए देखकर तथा शस्त्रोंकी मारामार होती हुई देखकर, जिस की ध्वजामें वानर विराज रहा है ऐसे अर्जुनने धनुष उठाकर उस समय हृषीकेश (इन्द्रियोंके प्रेरक श्रीकृष्ण) से यह बात

रुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥ यावदेतान् निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् । कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥२२॥ योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः । धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् । उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥ तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान । आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥ २६ ॥ श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि । तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥ कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् । अर्जुन उवाच । दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥

कहीं, अर्जुन बोला, कि—हे अच्युत ! मेरे रथको दोनों सेनाओं के बीचमें खड़ा करिये, कि—जिससे मैं लड़नेकी इच्छासे आकर खड़ेहुए इन कौरवोंको देखूं, कि इस रणके उद्योगमें मुझे किनर के साथ लड़ना पड़ेगा और कौन२ योधा मेरे साथ लड़नेवाले हैं, इस युद्धमें दुष्टबुद्धि दुर्योधनका प्रिय करनेकी इच्छावाले जो योधा लड़नेके लिये यहां इकट्ठे हुए हैं उनको मैं देखलूं २०-२३सञ्जय नेकहा, कि—हे भारत ! निद्राको जीतनेवाले अर्जुनने श्रीकृष्ण से ऐसा कहा तब उन्होंने अर्जुनके उत्तम रथको दोनों सेनाओं के बीचमें भीष्म द्रोण आदि सब राजाओंके सामने खड़ा करके कहा, कि-हे अर्जुन ! तू इन इकट्ठे हुए कौरवोंको देख२४-२५ उस समय अर्जुनने दोनों ही सेनाओंमें चाचा, ताऊ,दादा, गुरु, मामा,भाई,बेटे,पोते,मित्र,श्वसुर; संबन्धी तथा जातिभाइयोंको खड़े हुए देखा और उनको देखते ही कुन्तीपुत्र अर्जुनको बड़ा भारी कुटुम्बियोंकी स्नेह याद आगया तब उसने खेद मानते हुएइसप्रकार कहा, अर्जुन बोला, कि—हे कृष्ण ! लड़ने की इच्छासे सामने

सीदन्ति मम गात्राणि मुखञ्च परिशुष्यति । वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥ गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते । न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥ निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥ न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च । किन्नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥ येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगा सुखानि च । त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥ आचार्य्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः । मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥ एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते ॥ ३५ ॥ निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन । पापमेवाश्रयेद्

खड़ेहुए इन अपने संबन्धियोंको देखकर मेरे हाथ पैर आदि अङ्ग ढीले पड़गये हैं, मुख सूखाजाता है, शरीर कांपता है और रोंगटे खड़े हुए जाते हैं ॥ २६–२९ ॥ हाथमेंसे गाण्डीव धनुष गिरा पड़ता है, शरीरकी त्वचामें आगसी पड़ रही है, और मुझमें तो अब खड़े रहनेकी शक्ति भी नहीं रही और मेरा मन घूमसा रहा है ॥३०॥ और हे केशव ! मैं शकुन भी उलटे ही देखरहा हूं इस संग्राममें कुटुम्बियोंका सर्वनाश करकेमैं कल्याण नहीं देखता॥३१॥ हे कृष्ण ! मैं विजय,राज्य और सुखोंको नहीं चाहता,हे गोविंद ! हम जिनके लिये राज्य, ऐश्वर्यभोग और सुखोंको चाहते हैं वे ही ये गुरु, ताऊ, चाचा, बेटे, दादा, मामा, श्वसुर, पोते, साले तथा और २ सम्बन्धी प्राण और धनको त्यागकर इस युद्धमें आकर खड़े हैं इसलिये अब हमें राज्य भोग और जीवनका क्या करना है ॥ ३२—३४ ॥ हे मधुसूदन । ये यदि मुझे मारेंगे तो भी मैं इनको नहीं मारना चाहता त्रिलोकीके राज्यके लिये भी म इनको नहीं मारूंगा फिर भूमिके लिये इनका संहार करूँ यह तो हो ही कैसे सकता है.? हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारने से

स्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥ तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्त-राष्ट्रान् सबान्धवान् । स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥ यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः । कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥ कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापा-दस्मान्निवर्तितुम् । कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्ज्जनार्दन ॥ ३९ ॥ कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः । धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्न-मधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥ अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुल-स्त्रियः । स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥ सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च । पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डो-

---

मुझे क्या आनन्द मिल सकता है ? इन आततायियोंको मारनेसे तो मुझे उलटा पाप ही लगेगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसलिये अपने भाई दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारना हमे उचित नहीं है हे माधव ! हम अपने कुटुम्बियोंको मारकर कैसे सुखी होसकते हैं ॥ ३७ ॥ हे जनार्दन ! यद्यपि, इनका मन राज्यके लोभ से विवेकरहित होरहा है । इस कारण ही ये कुल का नाश करने से होने वाले पापको और मित्रोंके साथ द्रोह करनेसे होने वाले पाप को नहीं देखते हैं परन्तु कुलके नाशसे होनेवाले पापको जानने वाले हम इस पापोंमेंसे छूटनेका विचार क्यों न करें ? ॥३७-३९॥ कुलका नाश होने पर कुलके सनातन धर्म नष्ट होजाते हैं और सनातन धर्मके नष्ट होजाने पर अधर्म सब कुलको दबादेता है अर्थात् सब कुल अधर्मी बनजाता है ॥ ४० ॥ हे वृष्णिवंशी कृष्ण! अधर्मका दबाव पड़ जानेसे कुलकी स्त्रियें दुराचारिणी बन जाती हैं और जब स्त्रियें दुराचारिणी हो पुत्रोंके लिये परपुरुषों के पास पहुंचने लगती हैं तब वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न होने लगती है ॥ ४१ ॥ वर्णसङ्कर सन्तान कुलका नाश करने वालों को तथा कुलको नरकमें ही डालती है और कुलनाशकोंके पितर भी अपने पिण्डदानकी क्रियाएं तथा जलाञ्जलिकी क्रियाएं नष्ट

दकक्रियाः ॥ ४२ ॥ दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः । उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥ उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन । नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥ अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् । यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥ यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः । धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विषादयोगो नाम (प्रथमोऽध्यायः) पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

होजानेसे नरकमें पड़ते हैं ॥४२॥ कुलनाशकोंके इन वर्णसङ्करता करने वाले दोषोंके कारणसे जातिके सनातन धर्म, कुलके धर्म तथा आश्रमके धर्म भी नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥ हे जनार्दन ! जिन मनुष्योंके जातिधर्म, कुलधर्म और आश्रमधर्म नष्ट होजाते हैं, उन मनुष्योंका अवश्य ही नरकमें वास होता है, ऐसा हमारे सुननेमें आया है ॥ ४४ ॥ ओः ! बड़े दुःखकी बात है, कि-हम बड़ा भारी पापकर्म करनेको तयार होगये हैं, क्योंकि—राज्यसुख के लोभमें पड़कर हम अपने संबन्धियोंको मारनेके लिये तयार होगये हैं, यदि रणमें धृतराष्ट्रके पुत्र हाथमें हथियार लेकर मुझे मारें और उस समय मैं हथियार न उठाऊँ तथा अपना बचाव न करूँ तो यह ही मेरे लिये अच्छा है ॥४५॥४६॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! शोकसे जिस का मन घबड़ा रहा था उस अर्जुनने ऐसा कह कर बाणसहित धनुषको भूमिमें पटक दिया और रणभूमिमें रथके एक कोनेमेंको बैठ गया ॥४७॥ पचीसवां अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय उवाच । तन्तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् । विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच । कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् । अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्य-मकीर्त्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥ क्लव्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ ३ ॥ अर्जुन उवाच । कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणञ्च मधुसूदन । इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥ गुरून् हत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्षमपीह लोके। हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधि-रप्रदिग्धान् ॥५॥ न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः । यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे

सञ्जयने कहा कि—हे राजा धृतराष्ट्र! ऊपर कहे अनुसार जिसके हृदयमें प्रेम भर गया है, आंसू भर आनेके कारण जिस के नेत्र डबडबा रहे हैं तथा चित्तमें दुःख मानने वाले उस अर्जुन से श्रीकृष्णने यह बात कही ॥ १ ॥ भगवान् बोले कि—हे अर्जुन! इस युद्धके सङ्कटके समयमें अनार्य पुरुषोंका सेवन किया हुआ स्वर्ग न देनेवाला और अपजसका फैलानेवाला यह मोह तुझे कहांसे आगया! ॥ २ ॥ हे पार्थ! तू नपुंसकपनेको ग्रहण न कर,तुझ सरीखे वीर पुरुषको यह नपुंसकता शोभा नहीं देती, हे शत्रुतापन! तू हृदयकी क्षुद्र दुर्बलताको त्यागकर लड़नेके लिये खड़ा होजा ॥ ३ ॥ अर्जुनने कहा कि—हे मधुसूदन! हे शत्रु-सूदन! मैं पूजा करने योग्य द्रोणाचार्यके सामने तथा दादा भीष्म जाके सामने रणमें बाणोंसे कैसे युद्ध करूँगा॥४॥बड़े प्रभावशाली गुरुजनोंको न मार कर इसलोकमें भीख मांगकर खाऊँ तो भी अच्छा है, धनकी अभिलाषा वाले गुरुजनोंको मारकर परलोक में ही नहीं किन्तु इसलोकमें भी मुझे रुधिरसे सनेहुए भोग भोगने पड़ेंगे ॥ ५ ॥ भीख मांगना या ऐश्वर्य भोगना इन दोनों मेंसे मेरा कल्याण कौनसा काम करनेमें है,यह बात मेरी समझमें

धार्त्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥ कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः । यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वं प्रपन्नम् ७। न हि प्रपश्यामि ममापनुद्यात् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् । अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः । न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥ तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१० ॥ श्रीभगवानुवाच । अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञा-

नहीं आती और विजयके विषयमें या तो हमही शत्रुओंको जीत लेंगे अथवा शत्रुही हमें जीतलेंगे,परन्तु जिनको मारकर हम जीवित रहना नहीं चाहते वह धृतराष्ट्रके पुत्र तो युद्धके मुहाने पर आकर खड़े हैं ॥ ६ ॥ भाइयोंको मार कर हम कैसे जीसकेंगे ? इस कृपणतासे तथा कुलका नाश करनेसे दोष लगता है, ऐसी दोषदृष्टिसे जिसका शूरता आदि स्वभाव नष्ट होगया है तथा भीख मांगनेमें कल्याण है अथवा युद्ध करनेमें कल्याण है ऐसे धर्म विचारोंमें जिसका मन मूढ़ बनगया है ऐसा मैं अर्जुन आपसे पूछता हूं कि—इन दोनोमेंसे जो निःसन्देह कल्याणकारी हो उस को मुझे बता दीजिये, मैं आपका शिष्य हूं और आपकी शरण में आया हूं आप मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ७ ॥ शत्रुरहित तथा सम्पदावाली भूमिको राज्य तथा देवताओंके ऊपर प्रभुता मिलने पर भी मेरी इन्द्रियोंको सुखानेवाले शोकको दूर करै ऐसा कोई उपाय मैं नहीं देखता हूं ॥ ८ ॥ सञ्जयने कहा कि—शत्रुओंको संताप देनेवाला और जिसने निद्राको जीतलिया है ऐसा अर्जुन "मैं युद्ध नहीं करूँगा,, यह बात हृषीकेश गोविन्दसे कहकर चुप होगया ॥९॥ हे भारत! तब दोनों सेनाओंके बीचमें विषाद करते हुए अर्जुनसे भगवान्ने हँसतेर यह बात कही ॥१०॥ भगवान् बोले कि—हे अर्जुन ! जिसके निमित्त शोक करनेकी आव-

वादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥११॥ न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥१२॥ देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥ मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥ यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१५॥ नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

श्यकता नहीं है उसके निमित्त तू व्यर्थ ही शोक करके अविवेकीकेसा काम करता है, तू बातें तो पण्डितकेसी बनाता है परन्तु कार्यसे तो तुझको पण्डित नहीं कहा जासकता क्योंकि–पण्डित पुरुष चाहे किसीका मरण हो चाहे कोई जीवित रहै उस का कुछ शोक नहीं करते हैं॥ ११ ॥ हे अर्जुन! इस शरीर-धारणसे पहिले मैं नहीं था वा तू नहीं था, या यह राजे नहीं थे तथा शरीर त्यागनेके पीछे तू मैं या यह राजे नहीं होंगे ऐसा नहीं है किन्तु हम तुम और ये सब राजे शरीरधारणसे पहिले भी थे और मरनेपर भी रहेंगे १२ जिसप्रकार प्राणीकी,इस देहमें ही बालकपन, जवानी और बुढ़ापा यह तीन अवस्थाएं होती हैं, तिसी प्रकार दूसरे देहकी प्राप्ति भी एक अवस्था है, धीर पुरुष को इसमें मोह नहीं होता है ॥ १३ ॥ हे अर्जुन ! इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण वृत्तियोंके संसर्गसे शीत उष्ण और सुख दुःखादि का अनुभव होताहै परन्तु हे भारत! वे सुख दुःख आदि उत्पन्न और नष्ट होनेवाले तथा अनित्य हैं, सदा नहीं रहते हैं इसकारण जबतक सुख दुःखादिका भोग है, तबतक उन का हर्ष विषाद न मानकर धैर्य्यके साथ सहना ही चाहिये॥१४॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! जो धीर पुरुष सुख दुःखको एकसा मानताहै अर्थात् इंद्रियोंकी वृत्तियें तथा विषयोंका संसर्ग जिसको चलायमान नहीं करसक्ता वह ही धर्म और ज्ञानको प्राप्त होता हुआ मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जो पदार्थ असत् (नाशवान्) है उसकी सत्ता किसी

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥१६॥अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्त्तुमर्हति ॥१७॥ अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥ य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १६ न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥ वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् । कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥ वासांसि जीर्णानि

समय भी नहीं है और जो पदार्थ सत् है उसका अभाव भी किसी समय नहीं होता है,तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने इस प्रकार सत् और असत् (नित्य और अनित्य) दोनोंका यथार्थ निर्णय जाना है ॥ १६ ॥ जिससे यह सब विश्व व्यापा हुआ है, उसको तू अविनाशी जान और इस अविनाशीको कोई नाश नहीं करसकता ॥ १७ ॥ देहधारी, अविनाशी और जो प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं हो सकता ऐसे आत्माके पीछे लगे हुए ये देह नाशवान् हैं, इसलिये हे भारत ! तू युद्ध कर ॥ १८ ॥ जो इस आत्माको मारने वाला मानता है,तथा जो इस आत्माको मारा हुआ मानता है, ये दोनों ठीक २ समझे नहीं हैं, आत्मा तो न किसीको मारता है और न किसीसे मारा जाता है ॥ १६ ॥ आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होता और कभी मरता भी नहीं है तथा यह पहिले उत्पन्न होकर फिर दूसरी वार उत्पन्न होता हो यह वात भी नहीं है, क्योंकि—अजन्मा, नित्य सदा एक रूपमें रहनेवाला और यह पुराना है,इसकारण शरीरके मारेजाने पर भी यह नहीं मारा जाता है ॥२०॥ जो पुरुष आत्माको अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अविकारी जानता है,हे अर्जुन ! वह पुरुष किस लिये किसी को मरवावे या किसीको मारै ? ॥२१॥ जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों

यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥ अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते । तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥ अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् । तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥२६॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७॥ अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि

को उतार कर और नये कपड़े पहर लेता है, तैसे ही देहधारी आत्मा भी पुराने शरीरोंको त्याग कर और नये शरीर धारण कर लेता है ॥२२॥ तलवार आदि हथियार आत्माको काट नहीं सकते, अग्नि आत्माको जला नहीं सकता, पानी आत्माको गला सड़ा नहीं सकता और पवन आत्माको सुखा नहीं सकता २३ आत्मा किसीसे कट नहीं सकता, जल नहीं सकता, किसीसे भीग नहीं सकता और किसीसे सूख भी नहीं सकता, किन्तु यह आत्मा तो नित्य सब स्थानोंमें व्यापक, स्थिर स्वभाववाला, अचल और सनातन कहिये अनादि कालका है ॥ २४ ॥ यह आत्मा अव्यक्त (आकाररहित), अचिंत्य (चिन्तवनमें न आनेवाला) और विकाररहित कहलाता है, इसलिये आत्माको ऐसा जानकर इसका शोक करना तुझे उचित नहीं है ॥ २५ ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! यदि तू आत्मा नित्य उत्पन्न होनेवाला वा नित्य मरण पानेवाला मानता हो तो भी तुझे आत्माका शोक नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥ क्योंकि—जो जन्म लेता है उस प्राणीका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होजाता है उसका जन्म अवश्य ही होता है इसलिये जो बात टल नहीं सकती उसके विषयमें तुझे, शोक करना उचित नहीं है

भारत । अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८॥ आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः । आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥ देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत । तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥ स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि । धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते॥ ३१ ॥ यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् । सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥ अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥ अकीर्तिंचापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् । सम्भावितस्य

॥२७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यह प्राणी मात्र अव्यक्त (अज्ञान) से उत्पन्न होता है उत्पन्न होकर मध्यकालमें स्पष्टरूपसे देखने में आता है और अन्तमें उनका लय भी अव्यक्तमें ही होता है, फिर उनके विषयमें शोक काहेको करना ॥ २८ ॥ कोई इस को आश्चर्यकी समान देखता है, कोई दूसरा इसको आश्चर्यकी समान कहता है, कोई इसको आश्चर्यकी समान सुनता है और कोई इसको सुनने पर भी जान ही नहीं सकता ॥ २९ ॥ हे भारत ! देहधारी आत्मा सबोंके देहोंमें रहता है तो भी यह सदा अवध्य (न मारा जाने वाला) है इसलिये सकल प्राणियोंमेंसे किसीके भी शरीरनाशका तुझे शोक नहीं करना चाहिये ॥३०॥ युद्धमें होनेवाली मारकाटसे युक्त अपने क्षत्रियधर्मकी ओरको देख कर भी तुझे डिगना नहीं चाहिये, क्योंकि—क्षत्रियके लिये धर्मयुद्धसे बढ़कर (कल्याणकारी) दूसरी कोई बात ही नहीं है३१ हे अर्जुन ! विना मांगे अपने आप दैवेच्छासे आकर मिला हुआ और स्वर्गका खुला हुआ द्वाररूप ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियोंको ही मिलता है ॥ ३२ ॥ अब यदि तू इस धर्मयुद्धको नहीं करेगा तो तू अपने धर्म और यशका नाश करके पापका भागी होगा३३ इतना ही नहीं किन्तु लोग तेरी, जो टाली न टले ऐसी अकीर्त्ति

चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥ भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः । येषाञ्च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥ अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः । निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरन्नु किम् ॥ ३६ ॥ हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् । तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥ सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ । ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥ एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु । बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥ नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न

को भी गावेंगे और प्रतिष्ठित पुरुषकी अकीर्त्ति होती है तो वह उसको मरणसे भी अधिक दुःख देती है ॥ ३४ ॥ महारथी समझेंगे, कि—भयके मारे रणको छोड़ बैठा है और जिनके लिये तू बड़ा माननीय होरहा है, उनकी ही दृष्टिमें तू बहुत ही तुच्छ होजायगा ॥३५॥ और तेरे शत्रु तेरी सामर्थ्यकी निन्दा करते हुए तुझे न कहने योग्य दुर्वचन कहेंगे इससे अधिक दुःखकी और कौनसी बात होगी ? ॥ ३६ ॥ यदि तू रणमें मारा जायगा तो स्वर्ग पावेगा, और यदि जीतजायगा तो राजा बनकर पृथ्वीको भोगेगा, इसलिये हे कुन्तीनन्दन ! तू युद्धको लिये निश्चय करके खड़ा होजा ॥ ३७ ॥ सुख और दुःखको, लाभ और हानिको तथा जीत और हारको समान करके तू युद्ध करनेमें लगजा तो फिर तुझे पाप नहीं लगेगा ॥ ३८ ॥ यह तुझे उपनिषद्में कहा हुआ ब्रह्मज्ञान सुनाया, अब तु कर्मयोगसंबन्धी ज्ञानको सुन, हे अर्जुन ! इस ज्ञानको धारण कर लेगा तो कर्मके बन्धनको तोड़सकेगा ३९ कर्मके बन्धनको मिटानेके लिये किये जानेवाले निष्काम कर्मका दूसरे कर्मोंकी समान नाश नहीं होता है तथा इसको ठीक रीति से न कर सकने पर दोष भी नहीं लगता है, इस निष्काम कर्मरूप धर्मका थोड़ासा आचरण किया जाय तो भी वह बड़े

विद्यते । स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥ व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयो व्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥ यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥ कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् । क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥ भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् । व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥ त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥ यावानर्थ उदपाने सर्वतः

भारी भयसे रक्षा करता है ॥ ४० ॥ हे कुरुनन्दन ! इस लोक में तत्त्व का निश्चय करनेवाली बुद्धि (अंतःकरणकी वृत्ति) एकरूप ही होती है और अज्ञानी पुरुषोंकी बुद्धियें ओरछोर रहित और अनेकों शाखाओंवाली होती हैं ॥ ४१ ॥ हे अर्जुन ! वेदमें कहेहुए अर्थवादों पर (प्रशंसाके वाक्यों पर) श्रद्धा रखने वाले, कर्मके सिवाय और कुछ है ही नहीं ऐसा कहने वाले जो जन्म और कर्मके फलको देते हैं ,तथा विशेष क्रिया करनेसे विशेषफल देते हैं ऐसे भोग और ऐश्वर्यको पाने की इच्छा वाले तथा स्वर्गमें पहुंचनेकी लालसा वाले पुरुष, फूलों वाले वृक्षकी समान दूरसे ही चित्तको खेंचनेवाली मनोहर बातें कहा करते हैं ऐसे भोग और ऐश्वर्यमें आसक्ति रखने वाले तथा वेदमें कही हुई अथवादकी बातोंसे जिनका मन मोहित होरहा है ऐसे पुरुषोंकी बुद्धि समाधिमें भी स्थिर नहीं होती है ॥४२॥ ॥४४॥ हे अर्जुन ! तीन गुणों वाले अर्थात् सकाम कर्मोंका वर्णन करते हैं, इसलिये तू तीनों गुणोंसे रहित होजा, सुख दुःखके ऊपर समानबुद्धि रख, मनको जीतकर नित्य सत्वगुणमें निवास कर तथा अप्राप्त वस्तुके पानेकी इच्छारूप योगको और प्राप्तवस्तुकी रक्षारूप योगक्षेमको भी त्यागदे ॥ ४५ ॥ जैसे लबालब जलसे

संप्लुतोदके। तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥ योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय । सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥ दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय । बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४६॥ बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥ कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः । जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं

भरेहुए सरोवर आदिसे न्हाने पीने आदिको जितना काम सिद्ध होता है, उतना ही घड़ेके जलसे भी सिद्ध होता है तथा सब वेदोंमें कहे हुए कर्मकाण्डके करनेसे ज्ञानी पुरुषका जितना स्वार्थ सिद्ध होता है, उतना ही स्वार्थ वेदका एक भाग माने जाते हुए उपनिषद्को सुननेसे भी सिद्ध होता है, ॥ ४६ ॥ तुझे कर्म करनेका ही अधिकार है, कर्मोंके फलोंका अधिकार कदापि नहीं है, तू फलके लिये कर्म न कर तथा कर्मका त्याग भी न कर ४७ हे अर्जुन ! तू कर्मयोगमें स्थिति करके, फलकी तृष्णाको त्याग कर, ज्ञानके लिये कर्मकी सिद्धिको और असिद्धिको एक समान मानकर कर्म कर, कर्मके फलकी सिद्धिमें वा असिद्धिमें समानभाव से रहना ही योग कहलाता है॥४८॥ हे अर्जुन! बुद्धियोग कहिये निष्काम कर्म करनेकी अपेक्षा सकाम कर्म करना अत्यन्त ही तुच्छ गिना जाता है इसलिये तू बुद्धियोगके लिये ईश्वरकी शरण ले, कृपण पुरुष ही फलकी इच्छा रखते है ॥ ४६ ॥ बुद्धियुक्त कहिये निष्काम कर्मको करनेवाला पुरुष पुण्य और पाप दोनोंको इस लोकमें ही त्याग देता है, इसलिये तू कर्मयोग करनेका उद्योग कर, क्योंकि-बन्धन करनेवाले कर्म बन्धनमें न डालने पावें इसका ही नाम योग है ॥ ५० ॥ इसलिये सुख दुःख आदिमें समदृष्टि वाले बुद्धियोगसे युक्त, मनका निग्रह कर सकनेवाले पुरुष जन्म-

गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥ यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥ श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला । समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥ अर्जुन उवाच । स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव । स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥ श्रीभगवानुवाच । प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ५५ दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥ यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत् प्राप्य

बंधनमेंसे छूटकर उपद्रवरहित मोक्षपदको पाते हैं ॥ ५१ ॥ तेरी बुद्धि जब तेरे विषैं रहने वाले मोहरूपी मलके पार होजायगी तब सुनने योग्य और सुनेहुए शास्त्रका तेरी बुद्धिमें प्रकाश होगा और तुझे वैराग्य होगा ॥ ५२ ॥ अनेकों शास्त्रोंको सुननेसे सन्देहमें पड़ी हुई तेरी बुद्धि जब स्थिर होजायगी और समाधि में स्थिर होकर रहेगी तब तू विवेकबुद्धिरूप योगको पावेगा ५३ अर्जुनने पूछा, कि—हे केशव ! जिसकी विचारबुद्धि परमात्मा में स्थिर होगयी है ऐसे समाधिमें स्थित पुरुषकी भाषा कैसी होती है परमात्मामें स्थिर बुद्धिवाला पुरुष समाधिमेंसे जाग्रत् होनेके अनन्तर कैसा भाषण करता है, किसप्रकार बैठता है और किस प्रकार विषयोंको भोगता है ॥ ५४ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि—हे अर्जुन ! जब पुरुष मनमें रहने वाली सब कामनाओंको त्याग देता है और अपने आत्मामें आप ही सन्तुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता ॥ ५५ ॥ जिसका मन दुःखोंके पड़नेपर भी नहीं घबड़ाता है, तथा सुखोंकी भी अभिलाषा नहीं रखता है और जिसका राग, भय और क्रोध दूर होजाता है वह स्थितधी कहिये परमात्मामें स्थिर बुद्धिवाला मुनि कहलाता है ५६ जिसका किसी भी पदार्थ पर स्नेह नहीं होता है तथा जो अच्छी वस्तुको

शुभाशुभम् । नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥ यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य-स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥ विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः । रसवर्ज्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥५९॥ यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥ तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः । वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥ ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते । सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्

पाकर उसके प्राप्त कराने वाले की प्रशंसा नहीं करता है तथा अशुभ वस्तुको पाकर उसके प्राप्त कराने वालेसे द्वेष नहीं करता है उसकी ही बुद्धि प्रतिष्ठित कहिये स्थिर है ॥ ५७ ॥ जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको शरीरके भीतरको समेट लेता है ऐसे ही वह अपनी सब इन्द्रियोंको विषयोंमेंसे हटा लेय तब जानों कि उसकी प्रज्ञा स्थिर होगयी ॥ ५८ ॥ देहाभिमानी पुरुष जब विषयोंका उपभोग करना छोड़ देता है तब विषय अपने आपही इन्द्रियोंसे दूर हो जाते है, केवल एक रस (राग) ही रह जाता है और आत्माको साक्षात् दर्शन करलेने पर जीवका रस भी शान्त हो जाता है ॥ ५९ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! पुरुष विद्वान् हो और समाधिके लिये यत्न करता हो तब भी अत्यन्त मथने वाली इन्द्रियें बलात्कारसे उसके मनको खेंचती है ॥६०॥ उन सब इन्द्रियोंको अच्छे प्रकार वशमें करके साधनामें लगता हुआ मेरे परायण होजाय, इन्द्रियें जिसके वशमें होती है उसकी बुद्धि भी स्थिर होती है अर्थात् वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है ॥ ६१ ॥ पुरुष विषयोंका ध्यान करता है, इसलिये उसका विषयोंके साथ सङ्ग होता है, सङ्गसे काम उत्पन्न होता है और कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥ क्रोधसे संमोह कहिये

स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद्द बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ ६३ ॥ रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् । आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥ प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते । प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्य्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥ नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना । न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥ इन्द्रियाणां हि चरतां

हित अहितका विचार न रहने की दशा होती है, संमोहसे स्मृतिविभ्रम होता है अर्थात् सत्पुरुषोंके और शास्त्रके उपदेशको भूल जाता है, स्मृतिविभ्रमसे बुद्धिका नाश होजाता है और बुद्धिनाश से मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ ६३ ॥ मन को वशमें रखने वाला पुरुष, रागद्वेषसे रहित और मनके वशमें रहनेवाली इन्द्रियों से विषयोंका उपभोग करता है तो उसका मन विषयोंमें आसक्त न होकर निर्मल होता चलाजाता है ॥ ६४ ॥ मन स्वच्छ होजाने पर पुरुषके सब दुःखों का नाश होजाता है और स्वच्छ चित्तवाले पुरुषकी बुद्धि भी तुरंत परमात्मामें पूरी रीतिसे ठहर जाती है ॥ ६५ ॥ अयुक्त कहिये जिसका मन श्रवणमें तथा मननमें नहीं लगता है उस पुरुषकी बुद्धि भी नहीं होती है अर्थात् वह पुरुष आत्मा और ब्रह्मकी एकताका निर्णय नहीं कर सकता है तथा जिसका मन सावधान नहीं होता है उसको भावना कहिये ब्रह्माकार अन्तःकरणताकी वृत्तिका प्रवाह भी नहीं होता है, क्योंकि—मनके चञ्चल होने से बुद्धि भी चञ्चल रहती है और जो भावनाशून्य (ध्यान न करनेवाला) होता है उसके दुःखों की शांति नहीं होती है तथा जो पुरुष शांतिशून्य है उसको सुख कहांसे होसकता है ? ॥ ६६ ॥ मन विषयोंमें फिरनेवाली इन्द्रियों को लक्ष्यमें रखकर घुमा करता है तथा जैसे वायु जलमें नौका को खेंचकर लेजाता है तैसे ही मन भी साधक पुरुषकी आत्म-

यन्मनोऽनुविधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥६७॥ तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥ या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥ आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमेवापः प्रविशन्ति यद्वत् ।

तत्त्वका विचार करनेवाली बुद्धिको खेंचकर लेजाता है ॥ ६७ ॥ इसलिये हे महाबाहु अर्जुन ! जिस पुरुषकी इन्द्रियें (मनके सहित) इंद्रियोंके विषयोंमें जानेसे रुकी रहती हैं, उस पुरुषकी ही प्रज्ञा प्रतिष्ठित है ॥ ६८ ॥ सकल प्राणियोंकी जो रात्रि होती है उस रात्रिमें योगी जागता है और जिस कालमें सब प्राणी जागते हैं वह आत्मदर्शी मुनि की रात्रि है, तात्पर्य यह है, कि—अविवेकी की बुद्धि सदा अविद्या वा मायाके अन्धकारसे ढकी रहती है, इसकारण वह आत्मतत्त्वको नहीं देखसकता यही आत्मतत्त्व के विषयमें अविवेकियोंकी रात्रि है और विषयराज्य वास्तवमें स्वप्नको समान मिथ्या है तो भी अविद्यासे ढके अविवेकी उस को ही सत्यसा देखते हैं, यही उनका विषयराज्यमें जागते रहना है और जो अविद्या वा मायाके अन्धकारसे छूट गये है वे बाजीगरकी रचनाका समान इन मिथ्या विषयोंकी ओरको देखते ही नहीं, केवल आत्मतत्त्वको ही देखते है इसकारण वह विषयराज्य उनके लिये रात्रि है ॥ ६९ ॥ जल समुद्रमें पहुंचकर उसको चारों ओरसे भर देता है तो भी वह छलकता नहीं किन्तु स्थिर ही रहता है अथवा उसमेंसे जल निकल जाता है तो भी वह कम न होकर ज्योंका त्यों ही स्थिर रहता है तैसे ही तिस स्थिरप्रज्ञ पुरुषके पास सब विषय अपने आप आकर उपस्थित होते हैं तो भी वह उन विषयोंमें लिप्त न होकर निर्लेपभावसे स्थित रहता है, जरा भी चलायमान नहीं होता है और शान्ति कहिये मुक्तिको पाता है और जो पुरुष विषयोंकी इच्छा करता है उसको शान्ति नहीं

तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ७० विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहङ्कार स शान्तिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥ एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति । स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्म-निर्वाण-मृच्छति ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सांख्ययोगो नाम (द्वितीयोऽध्यायः) षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अर्जुन उवाच । ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन । तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥ व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच । लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता

मिलती है ॥ ७० ॥ जो पुरुष सकल कामनाओंको त्याग, इच्छा-रहित होकर विषयोंको भोगता है, तथा जो ममता और अहङ्कार से रहित है वह शान्तिको पाता है ॥ ७१ ॥ हे अर्जुन ! तुझे यह ब्रह्मज्ञानकी स्थिति सुनाई, ब्रह्मज्ञानीकी इस स्थितिको पाकर मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता हैं और अन्तकालमें भी इस ब्रह्मनिष्ठा का आश्रय लेता है तो निर्वाण कहिये जिसको प्राप्त करनेके लिय गतिरूप क्रिया नहीं करनी पड़ती है ऐसे ब्रह्मको पाता है अर्थात् ब्रह्ममें लीन होजाता है ॥ ७२ ॥ छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

अर्जुनने पूछा, कि—हे कृष्ण ! हे केशव ! तुम कर्मकी अपेक्षा ज्ञानको श्रेष्ठ मानते हो,फिर मुझे इस घोर कर्ममें क्यों जुटाते हो ? १ तुम घोलमेलसी बातें कहकर मेरी बुद्धिको मोहमें डाले देते हो; आप मुझसे एक बातका निश्चय करके कहिये, कि जिससे मुझे कल्याणकी प्राप्ति हो ॥ २ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे पाप-रहित अर्जुन ! इस लोकमें पहिले मैंने दो प्रकारकी निष्ठा कही है, ज्ञानियोंके लिये ज्ञाननिष्ठा और कर्मयोगियोंके लिये कर्मनिष्ठा

मयानघ । ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥ न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते । न च सन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छन्ति ॥ ४ ॥ न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् । कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥ कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥ यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन । कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥ नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥ यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः । तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥९॥सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच

है ॥ ३ ॥ पुरुष कर्मोंका आरम्भ किये विना निष्कर्मपनेको नहीं पाता है तथा केवल संन्यास कहिये सर्वथा कर्मोंके त्यागसे भी सिद्धि (ज्ञान) को नहीं पाता है ॥ ४ ॥ कोई प्राणी एक क्षण भरको भी कर्म किये विना नहीं रहसकता, सब ही प्राणी प्रकृति के गुणोंके वशमें होकर विवश हो कर्म किया करते है ।५ जो मूढ़ मनवाला पुरुष अपनी कर्मेंद्रियोंको नियममें रखकर एकांत स्थानमें बैठा २ मनमें इंद्रियोंके विषयोंको स्मरण किया करता है वह पुरुष मिथ्या आचरणवाला (पाखण्डी) कहलाता है ॥ ६ ॥ हे अर्जुन! जो पुरुष मनके साथ इंद्रियोंसे कर्मयोगका आरम्भ करता है परंतु कर्मके फलमें आसक्ति नहीं रखता है वह श्रेष्ठ मानाजाता है ७ इसलिये तू नियमके साथ कर्म कर, कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना अच्छा है, यदि तू कर्म नहीं करेगा तो तेरे शरीरका निर्वाह भी नहीं चल सकेगा ॥८॥ हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! यज्ञके निमित्त किये जाने वाले कर्मको छोड़कर और जो कर्म है वह लोकोंको बन्धनमें डालनेवाले है, इसलिये तू फलकी इच्छाको त्यागकर विष्णुभगवान्की प्रसन्नताके लिये कर्म कर ॥ ९ ॥ पहिले प्रजापतिने यज्ञोंके साथ प्रजाको रचकर कहा था, कि—तुम इन यज्ञों

प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥ देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥ इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ-भाविताः । तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥ यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः । भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥ अन्नाद्भ भवन्ति भूतानि पर्ज्ज-न्यादन्नसम्भवः । यज्ञाद्भ भवति पर्ज्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् । तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानावर्त्त-यतीह यः । अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

से वृद्धि पाओगे, यह यज्ञ तुम्हारी इच्छित कामनाओंको पूरी करै ॥ १० ॥ तुम इस यज्ञसे देवताओंको तृप्त करो और देवता (जलकी वर्षाके द्वारा) तुम्हें तृप्त करैं, तुम आपसमें एक दूसरे की कामनाओंको पूरी करोगे तो परम कल्याणको पाओगे ११ तुम्हारे यज्ञमें तृप्त किये हुए देवता तुम्हें इच्छित भोग, पशु (धन, धान्य) देंगे, उनके दिये हुए भोगोंको जो उन्हें विना दिये हुए खाता है वह चोर ही मानाजाता है ॥ १२ ॥ जो सत्पुरुष यज्ञ से बचेहुए अन्नका भोजन करते हैं वह सब पापोंसे छूट जाते हैं और जो केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं वह पापी पापका ही भोजन करते हैं ॥ १३ ॥ अन्नमेंसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, जल की वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है, यज्ञसे जलकी वर्षा होती है और कर्मसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ वह कर्म वेदमेंसे उत्पन्न होता है अर्थात् वह कर्म वेदमें दिखाया है और वेद अक्षर परमात्मासे प्रकट होता है, इसकारण ही सबमें रहने वाला ब्रह्म यज्ञ कर्ममें नित्य निवास कर रहा है १५ हे अर्जुन ! इसप्रकार नित्य जगत्के व्यवहारको चलानेवाले चक्रके अनुसार जो पुरुष नहीं चलता है, उस पापी जीवनवाले पुरुषको इन्द्रियाराम जानो

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मन्येव च सन्तुष्ट-स्तस्य कार्य्यं न विद्यते ॥ १७ ॥ नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ १८ ॥ तस्माद-सक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९॥ कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। लोक-संग्रहमेवापि संपश्यन् कर्त्तुमर्हसि ॥ २० ॥ यद्यदाचरति श्रेष्ठस्त-त्तदेवेतरो जनः। स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥ न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि॥२२॥ यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः

और वह व्यर्थ ही जीता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य आत्मा पर ही प्रेम करने वाला होता है और आत्मानन्दसे ही तृप्त रहता है तथा जो आत्मस्वरूपमें ही सन्तुष्ट रहता है, उसको कोई कर्म करनेको शेष नहीं रहता है ॥ १७ ॥ ऐसे मनुष्यको इसलोकमें कोई भी कर्म करनेको शेष नहीं रहता है और काम न करनेसे उसकी कुछ हानि भी नहीं होती है तथा उसको सब प्राणियोंसे किसी भी प्रकारका सुख भोगनारूप प्रयोजन नहीं रहता है १८ इसकारण तू भी फलकी आसक्तिको दूर करके नित्य अवश्य करने योग्य कर्म कर, पुरुष कर्मके फलकी इच्छा रक्खे बिना ही कर्म करता है तो वह मोक्ष पाता है ॥ १९ ॥ जनक आदि महात्माओंने कर्मसे ही सिद्धि पायी है तथा तुझे मनुष्योंको कर्ममें प्रवृत्त करनेके लिये भी कर्म करना चाहिये ॥ २० ॥ श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य उसके ही अनुसार चलते है तथा श्रेष्ठ पुरुष जिसको प्रमाण मानता है दूसरे मनुष्य भी उसको ही मानने लगते है ॥२१॥ हे अर्जुन ! मुझे तीनों लोकमें कोई भी कर्त्तव्य कर्म नहीं है और ऐसी भी कोई वस्तु नहीं है जो मुझे पहिले न मिली हो और अब मैं उसको लेना चाहता हूं तो भी मैं कर्म किया ही करता हूं ॥ २२ ॥ हे

मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥ उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्य्यां कर्म चेदहम् । सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥ सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्य्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥ न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् । जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥ प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥२७ ॥ तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः । गुणागुणेषु वर्त्तन्त इति मत्वा न सज्जते २८ प्रकृतेर्गुणसंमूढा सज्जन्ते गुणकर्मसु । तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्न-

कुन्तीनन्दन ! यदि मैं कर्म नहीं करूं तो सब मनुष्य मेरी ही नकल करने लगें अर्थात् कर्म करना छोड़ दें ॥२३॥ यदि मैं कर्म न करूं तो यह लोक भी कर्म न करे और मैं वर्णसङ्करता करने करनेवाला कहलाऊँ तथा इस सब प्रजाका नाश करनेवाला भी कहलाऊँ ॥ २४ ॥ हे भरतवंशी ! कर्मके फलमें आसक्तिवाले अविवेकी पुरुष जिसप्रकार कर्म करते हैं तिसप्रकार ही विवेकियों को भी कर्मके फलमें आसक्ति न रखकर लोकोंको कर्ममें प्रवृत्त करनेकी इच्छासे कर्म करना चाहिये ॥ २५ ॥ विद्वान् पुरुषको, कर्ममें आसक्ति रखनेवाले अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भेद नहीं डालना चाहिये, किन्तु स्वयं आदरके साथ अच्छे प्रकारसे आचारका पालन करके सब कर्म करने चाहियें ॥२६॥ यद्यपि प्रकृतिके गुण सब कर्मोंको करते हैं तो भी जिसका मन अहङ्कारसे मूढ़ होरहा है ऐसा पुरुष यह समझता है कि—मैं ही करता हूं ॥ २७ ॥ हे महाबाहु ! गुणोंके तथा कर्मके ठीक २ स्वरूपको जाननेवाला पुरुष गुण (इन्द्रियें) गुणोंमें (विषयोंमें) प्रवृत्त होते हैं, ऐसा मानकर बन्धनमें नहीं पड़ता है ॥ २८ ॥ प्रकृतिके गुणोंका अपने आत्मामें अध्यास होनेके कारणसे मूढ़ बने हुए पुरुष गुण कहिये देह आदिके विषें तथा हिरनाफिरनारूप कर्ममें बँधजाते हैं;

विन्न विचालयेत्२६मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥ ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥ ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्। सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥ सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥ इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ। तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥ श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥ अर्जुन उवाच। अथ केन प्रयुक्तोऽयं

ब्रह्मज्ञानी पुरुषको, आत्मज्ञानसे रहित उन मूढ़ पुरुषोंको कर्ममेंसे चलायमान नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥ सब कर्मोंको मेरे विषैं अर्पण करके अध्यात्मशास्त्रमें मग्न हुए चित्तसे आशा तथा ममता को छोड़कर शोकरहित होता हुआ युद्ध कर ३० जो मनुष्य डाह को त्यागकर और श्रद्धासे युद्धा युक्त होकर नित्य मेरे इस मत के अनुसार चलते हैं वह भी कर्मोंके बन्धनसे छूट जाते हैं॥३१॥ जो मेरे इस मतकी निन्दा करते हुए इसके अनुसारे नहीं चलते हैं उनको तू ईश्वरके ज्ञानसे रहित, मूढ़ परलोक तथा मोक्षसे भ्रष्ट हुए तथा विवेकरहित जान॥ ३२ ॥ ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार वर्त्ताव करता है, सब प्राणी अपनी २ प्रकृतिके अनुसार चलते हैं, उसमें निग्रह क्या कर सकता है ? ॥ ३३ ॥ हर एक इन्द्रियका अपने २ विषयमें राग और द्वेष होता है, परन्तु प्राणीको उन राग और द्वेषके वशमें नहीं होना चाहिये, क्योंकि- ये दोनों ही प्राणीके शत्रु हैं ॥ ३४ ॥ सब अङ्गोंके साथ अच्छे प्रकारसे आचरण किये हुए दूसरेके धर्मकी अपेक्षा अपना धर्म किसी अंश में न्यून भी हो तो अच्छा माना जाता है, अपने धर्ममें मरण होजाय तो अच्छा है और दूसरेका धर्म भयमें डालनेवाला है ॥ ३५ ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे भगवन् ! पुरुष अपनी

पापं चरति पूरुषः । अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥ भगवानुवाच । काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥ धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च । यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥ आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा । कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते । एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ । पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥ इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु

इच्छा न होनेपर भी मानो कोई उससे बलात्कारसे करा रहा है इस प्रकार किसकी प्रेरणासे पाप करता है ॥ ॥ ३६ ॥ श्रीभगवान्ने उत्तर दिया, कि—पुरुषको पापमें प्रेरणा करनेवाला काम तथा क्रोध है, वह क्रोध रजोगुणसे उत्पन्न होता है, यह बहुत ही अधिक भोजन करनेवाला और बड़ापापी है, इसलिये इसलोक में इसको अपना वैरी जान ॥ ३७ ॥ जैसे अग्नि धुएंसे घिरा हुआ होता है,दर्पण जैसे मैलसे ढकाहुआ होता है और गर्भ जैसे झिल्लीसे लिपटाहुआ होता है तैसे ही ज्ञान कामसे ढका रहता है ॥ ३८ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! जिसको पूरा करना कठिन है और जिसमें सन्तोष है ही नहीं ऐसे कामरूप नित्य वैरीसे ज्ञानीका ज्ञान घिरा रहता है ॥ ३९ ॥ इन्द्रियें, मन और बुद्धि यह काम के रहनेको स्थान हैं,इसकारण काम इन पदार्थोंके द्वारा ज्ञानको ढककर देहधारियोंको मोहमें डाल देता है ॥ ४० ॥ इसलिये हे भरतसत्तम ! तू आरम्भमें इन्द्रियोंको वशमें रखकर ज्ञानको और विज्ञानका नाश करनेवाले इस पापी कामका संहार कर ॥४१॥ इंद्रियें अपने कार्यरूप विषयों की अपेक्षा सूक्ष्म हैं, मन इंद्रयोंसे सूक्ष्म है, बुद्धि मनसे सूक्ष्म है और ज्ञानात्मा बुद्धि से भी सूक्ष्म

सः ॥ ४२ ॥ एवं बुद्धेः परं बुध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना । जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगोनाम (तृतीयोऽध्यायः) सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच । इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् । विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥ एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः । स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥२॥ स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः । भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥ अर्जुन उवाच । अपरं भवतो जन्म परञ्जन्म विवस्वतः । कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥४॥ श्रीभगवानुवाच । बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।

है ॥ ४२ ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! इसप्रकार बुद्धिसे मनको वशमें रखकर और बुद्धिसे पर जो परमात्मा तिसको जानकर, जिसका नाश बड़े ही दुःखसे होसकता है ऐसे कामरूपी शत्रुका तू नाश कर ॥ ४३ ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ छ

श्रीभगवान् कहते हैं कि—कर्मयोग जिसमें उपायरूप है ऐसा यह अविच्छिन्न योग (सांख्ययोग और ज्ञानयोग) संप्रदाय के अनुसार मैंने पहिले सूर्यसे कहा था, सूर्यने मनुसे कहा और मनुने इक्ष्वाकुसे कहा था॥१॥ इस प्रकार परम्परासे प्राप्त हुए कर्म योगको राजर्षि जानते थे,परन्तु हे परन्तप अर्जुन! बहुतसा काल बीतजाने के कारण इस लोकमेंसे कर्मयोगका लोप होगया है २ वही पुरातन कर्मयोग आज मैंने तुझसे कहा है, क्योंकि—तू मेरा भक्त और मित्र है, इसकारण यह उत्तम रहस्य तुझ से कहा है ॥ ३ ॥अर्जुन बोला, कि—हे भगवन् ! सूर्यका जन्म पहिले हुआ था और आपका जन्म तो उससे पीछे हुआ है, इसलिये आपने पहिले सूर्यको कर्मयोग सुनाया था, यह बात कैसे जानूँ ॥ ४ ॥ श्री भगवान्ने कहा, कि—हे सखे पर-

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ ५ ॥ अजोऽपि सन्न-व्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ ८ ॥ जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥ वीतराग-क्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः। बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भाव-मागताः ॥ १० ॥ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥ काङ्क्षन्तः

न्तप अर्जुन! मेरे जन्म और तेरे जन्म बहुतसे बीत गये, उन सब जन्मोंको मैं जानता हूं, परन्तु तू नहीं जानता है ॥५॥ मेरा कभी जन्म नही होता है और मैं अव्ययात्मा हूं, इसीसे भूतोंका ईश्वर भी हूं तथापि मैं अपनी प्रकृतिका आश्रय करके अपनी मायासे जन्म धारण करता हूं ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी अर्जुन! जब जब धर्मका नाश होता है और अधर्मकी वृद्धि होती है तब तब मैं जन्म धारण करता हूं ॥ ७ ॥ मैं साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये युग युगमें अवतार धारता हूं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य मेरे दिव्य जन्म और दिव्य कर्मोंको यथार्थ रीतिसे जानता है वह शरीरको त्याग कर फिर जन्म धारण नहीं करता है, किन्तु हे अर्जुन! वह मुझे प्राप्त होजाता है ॥ ९ ॥ प्रीति, भय और क्रोध से रहित तथा मेरा स्वरूप हुए और मेरा आश्रय करने वाले बहुतसे पुरुष ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको पाजाते हैं ॥ १० ॥ जो मनुष्य जिस प्रकार मेरी शरणमें आते हैं उनको मैं उस ही प्रकार स्वीकार करता हूं, हे अर्जुन! जो मनुष्य मेरे मार्गमेंको पैर धरते हैं उनके, मैं भी सब प्रकारसे अनुकूल रहता हूं ॥ ॥ ११ ॥ मनुष्य-

कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः। क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धि-र्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥ चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥१३ ॥ न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥ एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः। कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥ किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसे-ऽशुभात् ॥ १६ ॥ कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यञ्च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥ कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्न-

---

लोक में किसी कामना से किये हुए कर्मोंकी सिद्धि तुरत होती है इस लिये कर्मों की सिद्धिको चाहने वाले पुरुष इस लोकमें देवताओंका यजन करते हैं ॥ १२ ॥ मैंने ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके हितके लिये अग्निहोत्र आदि कर्म और द्रव्य देवता आदि गुण विभाग के अनुसार रचे हैं उनका मैं कर्त्ता भी हूं और अवि-कारी होने से अकर्त्ता भी हूं ॥ १३ ॥ कर्म मुझे सान नहीं सकते तथा मुझे कर्मके फलोंकी इच्छा भी नहीं है, जो मुझे ऐसा जानता है वह कर्मों में नही बँधता है॥ १४ ॥ ऐसा जानकर पहिले समय के मुमुक्षु पुरुषोंने भी कर्म किया था, इस लिये तू भी पहिले महा-पुरुषोंके किये हुए वेदोक्त कर्मको कर ॥ १५ ॥ कर्मका क्या स्वरूप है? अकर्मका क्या स्वरूप है? इस विषय में विद्वान् भी मोहित होगये हैं, उस कर्मका स्वरूप मैं तुझ से कहता हूं, जिस को जानकर तू अशुभ (संसार) से छूटजायगा ॥ १६ ॥ शास्त्र में कहे हुए कर्मका तत्त्व जानने योग्य है, शास्त्रविरुद्ध कर्मका तत्त्व भी जानने योग्य है और अकर्म का तत्त्व भी जानने योग्य है, क्योंकि—तीनों प्रकार के कर्मका यथार्थ स्वरूप बड़ा ही गहन है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य कर्मको अकर्म जानता है और अकर्मको

कर्मकृत् ॥ १८ ॥ यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥१९॥ त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः । कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः ॥२०॥ निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥ यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः । समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥ गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः । यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥ ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा

कर्म जानता है उसको मनुष्योंमें बुद्धिमान, योगी और सकल कर्मों का करने वाला जानो ॥ १८ ॥ जिस के सब कर्म कामनाओंसे तथा सङ्कल्पोंसे रहित होते हैं ऐसे ज्ञानरूप अग्निसे सकल कर्मोंको जला देनेवाले मनुष्यको विवेकी पुरुष पण्डित कहते हैं ॥ १९ ॥ नित्य तृप्त रहनेवाला तथा अहङ्कारशून्य रहनेवाला पुरुष कर्मके फलकी आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है इसलिये कर्ममें प्रवृत्ति करने पर भी मानो वह कुछ नहीं करता है ॥ २० ॥ जिसने सब परिग्रह (धन जन आदि) को त्याग दिया हो, सब आशाओंको दबा दिया हो और मन तथा इन्द्रियोंको वशमें कर लिया हो, ऐसा पुरुष समाधिमें से व्युत्थानके समय केवल शारीरिक कर्म करता हो तो भी उसको दोष नहीं लगता है २१. दैवकी इच्छासे होनेवाले लाभमें सन्तुष्ट रहनेवाला, सुख दुःख हानि लाभ आदि द्वन्द्वोंके पार हुआ मत्सररहित तथा कामकी सिद्धि और असिद्धिके समय विकाररहित रहनेवाला पुरुष कर्म करने पर भी उससे बन्धनमें नहीं पड़ता है ॥ २२ ॥ कर्मके संबन्धसे रहित मुक्त तथा जिसका चित्त ज्ञानमें है ऐसा पुरुष यज्ञके लिये कर्म करता है तो भी उसका कर्म समूल नष्ट होजाता है ॥ २३ ॥ हविको अर्पण करनेका साधन ब्रह्मरूप है, हवि भी ब्रह्मरूप है, जिसमें होमा जाता है वह भी अग्नि ब्रह्मरूप है, जिस

हुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥ दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते । ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति २५ श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति । शब्दादीन् विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥ सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे । आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥२७॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे । प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥ अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति । सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः

ने होम किया वह भी ब्रह्म रूप है, जिसके पास हवि पहुंचता है वह भी ब्रह्मरूप है, उस कर्मसे जो फल मिलता है वह भी ब्रह्मरूप है तथा यजमानका कर्म भी ब्रह्मरूप है, क्योंकि यजमानको समाधि से ब्रह्मका साक्षात्कार होता है ॥ २४ ॥ कितने ही कर्मयोगी जिस कर्ममें देवता मुख्य है ऐसे अमावास्य पौर्णमास आदि यज्ञोंकी उपासना करते हैं औरकितने ही ज्ञानी उपाधिवाले जीवका ब्रह्मरूप अग्निमें निरुपाधिक रूप से ही होम करते हैं ॥ २५ ॥ कितने ही श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका संयम रूप अग्निमें होम करते हैं और कितने ही शब्द आदि विषयोंका इन्द्रियरूप अग्निमें होम करते हैं ॥ २६ ॥ कितने ही योगी इन्द्रियोंके सब कर्मोंका तथा प्राणके सब कर्मोंका, ज्ञानसे प्रज्वलित हुए बुद्धि के संयमरूप योगाग्निमें होम करते हैं ॥ २७ ॥ उद्योगमें लगे हुए तथा तीक्ष्णव्रतधारी कितने ही पुरुष द्रव्यसे हो सकनेवाले यज्ञों को करते हैं कितने ही तपोयज्ञ करते हैं, कितने ही स्वाध्याययज्ञ करते हैं और कितने ही ज्ञानयज्ञ करते हैं ॥ २८ ॥ कितने ही प्राणकी वृत्तिको अपानमें होमते हैं और अपानकी वृत्तिको प्राण में होमते हैं तथा प्राण और अपानकी गतिको रोक कर प्राणायाममें लगे रहते हैं ॥ २९ ॥ विषयोंके भोगको नियममें रखने वाले कितने ही योगी प्राणोंको प्राणोंमें होमते हैं यह सब ही यज्ञों

॥ ३० ॥ यज्ञशिष्टाऽमृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् । नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥ एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे । कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥ श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप । सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥ यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव । येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥ अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः । सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥ यथैधांसि समि-

को जानने वाले हैं तथा इन यज्ञों से अपने पापोंका नाश करते हैं ॥ ३० ॥ जो पुरुष पांच महायज्ञोंसे शेष रहे हुए अमृतका भोजन करते हैं वह सनातन परब्रह्मको पाते हैं, कुरुकुलोत्तम ! ऊपर कहे हुए यज्ञ न करनेवाले पुरुषका यह लोक भी नहीं सुधरता फिर परलोककी तो बात ही क्या ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वेदने ही अनेकों यज्ञोंको विस्तार से कहा है और उन सब यज्ञों को तू शरीर वाणी और मनके कर्मों से होने वाला जान, ऐसा ज्ञान होजाने पर तू संसारबन्धन रूप अशुभ से छूट जायगा ॥ ३२ ॥ हे शत्रुओंको ताप देनेवाले अर्जुन ! द्रव्योंसे होने वाले यज्ञोंकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, क्योंकि—सकल अङ्गों सहित सब कर्म ज्ञानमें समाजाते हैं ॥ ३३ ॥ तू उस ज्ञानको, नम्रता से सेवा करता हुआ बार २ प्रश्न करके जान, तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष तुझे उस ज्ञानका उपदेश देंगे ॥ ३४ ॥ हे पाण्डव ! जिस चैतन्यमात्र परब्रह्मको जानकर इस समयकी समान तुझे फिर मोह नहीं होगा और जिस ज्ञानसे परमात्मस्वरूप जो मैं तिस मेरे विषैं सब प्राणियोंको रहते हुए देखेगा ॥ ३५ ॥ तू यदि सब पापियोंसे भी अधिक पापी होगा तो भी तू ज्ञानरूप नौकासे ही सकल पापरूप समुद्रको भलेप्रकार तरजायगा ॥ ३६ ॥ और हे अर्जुन ! जैसे अग्नि काष्ठोंको जलाकर भस्म करदेता है तैसे

द्धोग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ ३७ ॥ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ ३८ ॥ श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः । ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥ अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति । नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥ योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् । आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ ४१ ॥ तस्मादज्ञानसम्भूतंहृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः । छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीभगद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे यज्ञविभागयोगो नाम (चतुर्थोऽध्यायः) ॥ ४ ॥

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ही ज्ञानरूप अग्नि भी (प्रारब्धके सिवाय) सब कर्मोंको जला कर भस्म कर डालता है ॥ ३७ ॥ इस लोकमें ज्ञानकी समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है, उस ज्ञानको निष्काम कर्म करने से अथवा समाधियोंको साधने से सिद्ध हुआ पुरुष अवसर आने पर अपने आप पाजाता है ॥ ३८ ॥ ज्ञानमे श्रद्धावाला तथा उसके लिये तत्पर रहनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको पाता है और ज्ञानको पाकर वह थोड़े ही समयमें शान्तिको पाता है ॥ ३९ ॥ अज्ञानी श्रद्धारहित और मनमें सन्देह रखने वाला ये तीन नष्ट होजाते हैं, इनमें भी मनमें सदेह रखने वाले को यह लोक और परलोक नही मिलता है तथा सुख भी नहीं मिलता है ॥४० ॥ हे अर्जुन ! योगसे सब कर्मोंका त्याग करने वाला और ज्ञानसे जिसके सब सन्देह कट गये हैं ऐसे आत्मज्ञानी पुरुषको कर्म बन्धनमें नहीं डालते हैं ॥ ४१ ॥ इसलिये अज्ञानसे उत्पन्न हुए और हृदयमें रहने वाले सन्देहको आत्मज्ञानरूपी तलवार से काटकर योग (निष्काम कर्म) को कर और युद्ध करने के लिये खड़ा होजा ॥ ४२ ॥ अट्ठाइसवां अध्याय समाप्त ॥२८॥

अर्जुन उवाच । संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगञ्च शंससि । यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ । तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥ ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति । निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः । एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते । एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥ संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः । योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥ योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा

अर्जुनने पूछा, कि—हे कृष्ण ! आप मुझ से कर्मका संन्यास और फिर कर्मका योग ये दोनों किसलिये कहते हो ? इन दोनोंमे जो एक कल्याणकारी हो उसका यथार्थ निश्चय करके मुझ से कहो ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि–संन्यास और कर्म योग ये दोनों कल्याण करने वाले हैं, परन्तु इन दोनों में भी कर्मका त्याग करनेकी अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ गिनाजाता है ॥ २ ॥ जो किसी से द्वेष नहीं करता है, जो किसीकी वस्तुको नहीं चाहता है उस को नित्य संन्यासी जानना चाहिये, क्योंकि–हे महाबाहु अर्जुन ! राग और द्वेष से रहित पुरुष सुखके साथ संसारबन्धनमें से छूट जाता है ॥ ३ ॥ ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों अलग २ हैं ऐसा बालक (अज्ञानी) कहते हैं, पण्डित नहीं कहते हैं जो पुरुष इन दोनोंमें से एकका भी भले प्रकार अनुष्ठान करता है वह दोनोंके फलको पाता है ॥ ४ ॥ जो स्थान संन्यास से मिलता है, वही स्थान योग से भी मिलता है, इसलिये जो पुरुष संन्यास को तथा योगको एक ही जानता है वह विवेकी है ॥ ५ ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! कर्मयोगके विना संन्यासको पाना दुखदायक है, क्योंकि—योग से युक्त हुआ मुनि थोड़े ही समय में ब्रह्मको पाजाता है ॥ ६ ॥ योगयुक्त, सिद्ध और जिसने मन

जितेन्द्रियः । सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥ नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् । पश्यन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन्॥ प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥ ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥ कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥ युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीं । अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥ सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।

को जीत लिया है ऐसा जितेन्द्रिय और सकल भूत कहिये प्राणिमात्रका आत्मा ऐसा पुरुष कर्म करने पर भी कर्म से सनता नहीं है ॥ ७ योगयुक्त तत्त्ववेत्ता देखता है, सुनता है, स्पर्श करता है सूँघता है, खाता है, जाता है, सोता है, श्वास लेता है, बातचीत करता है, छोड़ता है,ग्रहण करता है, पलक मारता है और आँखें मीच लेता है,तो भी इन्द्रियोंके विषय इन्द्रियोंमें वर्त्तते हैं, ऐसा विचारकर मानता है. कि—मैं कुछ भी नहीं करता हूं ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ जो पुरुष कर्मोंको ब्रह्मके अर्पण करके, फलकी इच्छा न करता हुआ कर्म करता है वह पुरुष, जैसे कमलका पत्ता जलमें रहता हुआ भी भीगता नहीं है तैसे ही संसारमें रहता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता है ॥ १० ॥ योगीजन कर्मके फलकी आशाको छोड़कर आत्माकी शुद्धिके लिये केवल काया से केवल मन से केवल बुद्धि से अथवा केवल इन्द्रियों से कर्म करते हैं, ॥ ११ ॥ योगयुक्त पुरुष कर्मका फल ब्रह्मको अर्पण करके ब्रह्मनिष्ठाको देनेवाली शान्तिको पाता है परन्तु योगरहित पुरुष अपनी इच्छाके अनुसार फलमें आसक्त होनेके कारण बन्धनमें पड़ता है ॥ १२ ॥ चित्तको वशमें रखनेवाला देहधारी विद्वान् पुरुष मनके साथ सब कर्मोंको त्यागकर नौ दरवाजे वाले देहरूप नगर में सुख

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥ न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥ नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जन्तवः ॥१५॥ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् १६ तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः। गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥१७॥ विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥ इहैव तैर्जितः स्वर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥ न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्

से रहता है और अपने आप कर्म नहीं करता है तथा दूसरों से भी कर्म नहीं करवाता है ॥१३ ॥ प्रभु लोकोंके कर्त्तापनेको तथा कर्मोंको नही रचते हैं तथा कर्मोंके फलके संयोगको भी नहीं रचते हैं, किन्तु वह तो स्वभाव ही प्रवृत्त हुआ करता है ॥१४॥ व्यापक परमात्मा न किसीके पापको ग्रहण करता है, न किसीके पुण्य को ग्रहण करता है, अज्ञान से ज्ञान ढका हुआ है, इस कारण प्राणी मोहमें पड़जाते हैं ॥ १५ ॥ इस लिये जिनका अज्ञान ज्ञान से नष्ट होजाता है, उनका ज्ञान सूर्यकी समान, दीखने वाले पदार्थों को प्रकाशित करता है तथा परमार्थ वस्तु ब्रह्मको भी प्रकाशित करता है॥ १६ ॥एक परमात्मा ही है उसके सिवाय और कोई नही है ऐसी बुद्धिवाले उसको ही अपना आत्मा माननेवाले उसमें श्रद्धा रखनेवाले उसमें ही मग्न रहनेवाले तथा ज्ञान से जिनके पाप नष्ट होगये हैं वह पुरुष मोक्षको पाते हैं ॥ १७ ॥ पण्डित पुरुष विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मणमें हाथीमें गौमें, कुत्तेमें और चाण्डाल में एकसमान ब्रह्मदृष्टि रखते हैं॥ १८ ॥ जिनका मन परब्रह्ममें रहता है, उन्होंने इस लोकमें ही अपने जन्मको जीत लिया है,क्योंकि ब्रह्म सबजगह निर्दोषभाव से स्थित है और उस ब्रह्ममें वह रहते हैं ॥ १९ ॥ प्यारी वस्तुको पा

स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥ बाह्यस्पर्शे ष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् । स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥ ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते । आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥ शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् । कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥ योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः । स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥ लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः । छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥ कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेत-

---

कर प्रसन्न न होय, अप्रिय वस्तु को पाकर घबड़ावै नहीं, बुद्धि को स्थिर रखकर ध्यान से मोहका त्याग करे और ब्रह्मके स्वरूप को जानकर उसमें ही स्थिति करे ॥ २०॥ इन्द्रियोंके और विषयों के सम्बन्ध से होनेवाले सुखमें जिसका मन आसक्त नहीं हुआ है ऐसा पुरुष सुषुप्तिकालमें जो सुख पाता है, उस ही अक्षय सुख को जिसका मन ब्रह्मयोग से युक्त है वह पुरुष पाता है ॥ २१ ॥ जो विषयोंके सम्पर्क से न होने वाले भोग हैं वह दुःख प्राप्त होने का ही कारण हैं तथा आदि और अन्तवाले हैं, हे अर्जुन ! उन भोगोंमें विवेकी पुरुष नहीं रमता है ॥ २२ ॥ जो पुरुष शरीरको छोड़ने से पहिले इस लोकमें ही काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेगको सहन करसकता है, वही योगी है और वही सुखी है ॥ २३ ॥ जो सुख आराम और ज्योतिको अपने अन्तःकरणमें ही मानलेता है, वह योगी है और वही ब्रह्मरूप होने से निर्वाण ब्रह्मको पाता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार ब्रह्मका सम्यक् दर्शन होजाने पर जिनके सन्देह और पाप नष्ट होगये हैं ऐसे सकल प्राणीयों के हितमें तत्पर और मनको नियममें रखनेवाले पुरुष निर्वाण ब्रह्मको पाजाते हैं ॥ २५ ॥ काम और क्रोधसे रहित तथा मनको वशमें रखनेवाले और आत्मतत्त्वको जानने वाले

त्मनाम् । अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥ स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः । प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥ यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः । विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥ भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति ॥ २९ ॥　　छ　　॥　　छ　　॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि संन्यास योगोनाम [पंचमोऽध्यायः] एकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच । अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः । स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥ यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव । न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी

योगियोंको गतिसे आमाप्य ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ बाहरी स्पर्श कहिये इन्द्रियोंके विषयोंको बाहर करके दोनों नेत्रों को दोनों भ्रकुटियोंके मध्यमें रखकर नासिकामें फिरनेवाले प्राणवायु को तथा अपानवायुको एकसमान करदेय ॥२७॥ इन्द्रियें मन और बुद्धिको वशमें रखकर मोक्षमें परायण रहनेवाला जो मुनि इच्छा भय और क्रोधसे रहित होजाता है वह सदा ही मुक्त है ॥ २८ ॥ योगी पुरुष, यज्ञ और तपके भोक्ता सब लोकोंके महेश्वर और सब प्राणियोंके मित्र ऐसे मुझको जानकर शान्ति (मोक्ष) को पाता है ॥२९॥ उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥२९॥

श्री भगवान् कहते हैं, कि—हे सखे ! जो पुरुष कर्मके फल का आश्रय न लेकर अवश्य करने योग्य (नित्य) कर्मको करता है वही संन्यासी है और वही योगी है, परन्तु अग्निहोत्र तथा सकल क्रियाओंको त्यागने वाला संन्यासी वा योगी नहीं है' ॥ १ ॥ हे पाण्डव ! विद्वान् ! जिसको संन्यास इस नाम से कहते हैं, उसको ही तू योग जान जिसने सङ्कल्पका त्याग नहीं किया

भवति कश्चन ॥ २ ॥ आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥ यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते । सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥ बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः । अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥ जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः । शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः । युक्त

हो वह कोई भी पुरुष योगी नहीं होसकता ॥ २ ॥ योग मार्गमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखने वाले मुनिको योग प्राप्त करानेवाला कर्म कहलाता है और योगभूमिमें चढ़ेहुए पुरुषको ही शम कहिये कर्मोंका संन्यास करना कहा है ॥ ३ ॥ पुरुष जब शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध इन इन्द्रियोंके विषयोंमें तथा उन विषयोंको प्राप्त कराने वाले साधनोंमें बँधता नहीं है और सब प्रकारके सङ्कल्पोंको त्यागदेता है तब योगारूढ़ कहलाता है ॥ ४ ॥ आप ही अपने आत्माका उद्धार करै परन्तु आत्माको अधोगतिमें न पड़ने देय, क्योंकि–आत्मा ही अपना बन्धु है और आत्मा ही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥ जो पुरुष मनसे अपने मनको जीतता है उस पुरुषके लिये उसका मन ही बन्धुरूप होजाता है परन्तु जिसने अपने मन को नहीं जीता है उसका मन उसका ही शत्रुरूप होकर वर्त्ताव करता है ॥ ६ ॥ सरदी, धूप, सुख, दुःख तथा मान अपमान प्राप्त होनेपर भी जिसके मनमें विकार नहीं होता है तथा जो अत्यन्त शान्त रहता है ऐसे जितात्मा पुरुष का मन समाधिको प्राप्त करसकता है ॥ ७ ॥ जिस योगीका चित्त ज्ञान और विज्ञान से तृप्त होगया है, जो कूटस्थ जितेन्द्रिय तथा मट्टी और सोनेको समान मानने वाला है उस योगीको विद्वान युक्त अर्थात् योगको

इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ८ ॥ सुहृन्मित्रार्युदासीन-मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु । साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥६॥ योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः । एकाकी यतचितात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११ ॥ तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः । उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥ समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः । संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥ प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः । मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥ युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः । शान्ति

पानेवाला कहते हैं ॥ ८ ॥ सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ द्वेषपात्र, बन्धु, साधु, और असाधु इन सबोंमें जिसकी बुद्धि समान होती है वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ गिना जाता है ॥ ६ ॥ योगी एकान्त स्थान में बैठकर नित्य अपने मनको योगमें लगावे अर्थात् समाधियोग करै और उस समय आशा से रहित होजाय, मन और शरीरको नियममें रक्खे तथा परिग्रहको त्यागदेय ॥१०॥ पवित्र प्रदेशमें अपने लिये स्थिर आसन बिछावै,वह न अति ऊँचा हो, न अति नीचा हो, पहिले कुशा का आसन, उसके ऊपर मृगछाला और उसके ऊपर वस्त्र बिछावै ॥ ११ ॥ उस आसन पर बैठ कर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाको नियममें रख मनको एकाग्र करै और चित्तकी शुद्धिके लिये योगसाधना करै ॥१२॥ कायो, मस्तक तथा गरदनको समान और स्थिर रक्खै,आप भी स्थिर रहै और दिशाओंकी ओरको न देखकर अपनी नासिका के अग्रभागको देखता रहै ॥ १३ ॥ योगी ब्रह्मचारीके व्रतको धारण करै अर्थात् भिक्षा मांगकर निर्वाह करै, मनको नियममें रखकर मुझमें लगावै और मेरे परायण होकर योगसाधना करै, ऐसा करनेसे चित्तको शान्ति मिलती है और भयका नाश होता है ॥ १४ ॥ ऊपर कहे अनुसार नित्य मनको योगमें जुटाकर

निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥१५॥नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः । न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन १६ युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥ यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते । निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥ यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता । योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १६ ॥ यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया । यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥२०॥सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियं । वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥२१॥

नियममें रखनेवाला योगी, मेरे विषैं रहनेवाली तथा जिसकी परम निष्ठा मोक्ष है ऐसी शान्तिको पाता है ॥ १५ ॥ हे अर्जुन ! अधिक भोजन करनेवाला योग नहीं करसकता है तथा निराहार रहनेवाला भी योग नहीं करसकता है अधिक सोनेवाला भी योग नहीं करसकता है तथा सर्वथा न सोनेवाला भी योग नहीं करसकता है ॥ १६ ॥ परन्तु जो पुरुष आहार, विहार, कार्य, सोना और जागना नियमके साथ करता है वह पुरुष दुःखका नाश करनेवाले योगको साध सकता है ॥ १७ ॥ रोका हुआ मन जब एक परमात्माके विषैं ही ठहरा रहता है तब योगी सब कामनाओं की इच्छासे रहित होजाता है और योगयुक्त कहलाता है ॥ १८ ॥ जैसे वायुशून्य स्थानमें धरा हुआ दीपक हिलता डुलता नहीं है, किन्तु स्थिर रहता है ऐसे ही चित्तको नियमसे समाधिमें जोड़नेवाले योगीका मन भी स्थिर होजाता है ॥ १६॥ योगाभ्याससे रोकाहुआ चित्त जिस दशामें लयको पाता है और जिस अवस्थामें मनसे निर्विकल्प परमात्माका दर्शन होनेके कारण आत्माके विषैं सन्तोष प्राप्त होता है ॥ २० ॥ और जिस अवस्थामें इन्द्रियोंसे प्रतीत न होकर केवल बुद्धिसे प्रतीत होने वाला आत्यन्तिक सुख रहता है, जिस सुखमें रहनेवाला जीव किसी भी वस्तुको नहीं जानता है तथा तत्त्व वस्तु से चलायमान

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः । यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥ तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् । स निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥ सङ्कल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः । मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४ ॥ शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् २५ यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥ प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् । उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥ युञ्जन्नेवं सदात्मानं

भी नहीं होता है ॥ २१ ॥ जिसको पाजाने पर पुरुष दूसरे लाभको उससे अधिक नहीं मानता है तथा जिसमें स्थित होकर फिर बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं होता है ॥ २२ ॥ जिसमें दुःखका पाना छूटजाय उसको योगावस्था जानै और पुरुष प्रसन्नचित्त होकर उस योगका सेवन अवश्य ही करै।२३। सङ्कल्पसे उत्पन्न होनेवाले सब विषयोंको और उनकी वासनाओं का त्याग देय, मनसे इन्द्रियोंके समूहको सब विषयोंमेंसे पीछेको लौटा कर नियममें रक्खै और फिर धैर्यवाली सात्विकी बुद्धिसे धीरे २ सब विषयोंसे हटजाय और उपरामको प्राप्त हुए मन को आत्मामें लगाकर किसी भी वस्तुका चिन्तवन न करै ॥ २४ ॥ २५ ॥ चञ्चल और एक स्थान पर न ठहरनेवाला मन जिन २ विषयोंको ग्रहण करनेके लिये बाहर फिरता हो उन २ विषयोंसे मनको हटाकर एक आत्मामें ही ठहरावै ॥ २६ ॥ जिस योगीका मन विषयोंसे अत्यन्त हट जाता है, जिसका रजोगुण भी शान्त होगया होता है और जो ब्रह्मस्वरूप तथा पापरहित होता है ऐसे योगीको उत्तम सुखकी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥ योगी ऊपर कहे अनुसार

योगी विगतकल्मषः । सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥२८॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र
समदर्शनः ॥ २६ ॥ यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्त्तमानोपि
स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति
योऽर्जुन । सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन । एतस्याहं न पश्यामि
चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥ चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि

सदा परमात्मामें मनको जोड़नेसे पापरहित होता है और सुखसे, जिसमें परब्रह्मकी एकता रहती है ऐसे निर्विशेष सुखको पाता है॥ २८ ॥ जिसका मन योगसे समाधिनिष्ठ होजाता है ऐसा योगी अपनेको सब प्राणियोंमें रहता हुआ देखता है, सब प्राणियोंको अपनेमें रहते हुए देखता है तथा स्थावर जङ्गम आदिको ब्रह्मदृष्टिसे देखता है ॥ २९ ॥ जो योगी मुझे सब जगत् में देखता है और सब जगत्को मुझमें देखता है उस योगीको मेरा दर्शन छिपा नहीं रहता है तथा मुझे भी उस योगीका दर्शन छिपा नहीं रहता है ॥ ३० ॥ जीव और ब्रह्मकी एकतामें स्थिति करनेवाला योगी सत्तारूपसे तथा पुरुषरूपसे सब प्राणियोंमें रहने वाला परमात्मा जो मैं तिस मेरी समाधिके द्वारा सेवा करता है, वह योगी समाधिसे उठनेकी दशामें लौकिक व्यवहार करता है तब भी मेरे विषें ही रहता है अर्थात् मेरे स्वरूपसे विलग नहीं होता है ॥३१॥ हे अर्जुन ! सब प्राणियोंको सुख वा दुःख मेरी समान ही प्रिय वा अप्रिय लगते है,ऐसा जो योगी देखता है वह श्रेष्ठ माना जाता है॥३२॥अर्जुनने कहा,कि-हे मधुसूदन ! आपने साम्ययोग अर्थात् जिसमें अहिंसा मुख्य है और सब परिग्रह (धन जन आदि) का त्याग है ऐसा योग कहा,वह योग मैं देखता हूं, कि-मनके चञ्चल होनेके कारण स्थिरतासे नहीं होसकता ॥ ३३ ॥

बलवद्दृढम् । तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच । असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥ असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः । वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तु-मुपायतः ॥ ३६ ॥ अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः । अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७॥ कच्चिन्नो-भयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति । अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥ एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।

हे कृष्ण ! मन चञ्चल, इन्द्रियोंको मथ डालने वाला, बलवान् और दृढ़ है, इसकारण मैं इस मनको वशमें करना वायुको बन्द करके रोकनेकी समान बड़ा ही कठिन समझता हूं ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे महाबाहु अर्जुन ! चञ्चल मनको वशमें करनेमें बड़ाभारी दुःख उठाना पड़ता है, यह बात ठीक है, परन्तु अभ्यास और वैराग्यसे मन (सहजमें ही) वशमें होजाता है ॥ ३५ ॥ मनको वशमें न करनेवाले पुरुषको योगसिद्धि नहीं हो सकती, यह मेरा मत है, परन्तु मनको वशमें करनेवाला योगी उपाय करने पर योगसिद्धिको पासकता है ॥ ३६ ॥ अर्जुनने कहा, कि-हे कृष्ण ! जिसका मन कर्ममार्ग पर से उचाट होगया हो और वह पुरुष कर्मको त्याग कर योगमार्गमें प्रविष्ट होगया हो तथा योगमार्गमें श्रद्धा भी रखता हो, परन्तु अधिक प्रयत्न न करता हो ऐसे पुरुषका यदि योगसाधना करते २ योगका फल बिना पाये ही मरण होजाय तो वह कौनसी गति पाताहै ? ॥ ३७ ॥ हे महाबाहु कृष्ण ! जैसे मेघमण्डलमें से छूटा हुआ मेघ, पहिले तथा अगले मेघमण्डलमें न मिलकर बीचमें ही नष्ट होजाता है तैसे ही आधारशून्य और परब्रह्मको पानेके मार्गमें अत्यन्त मूढ़ पुरुष कर्ममार्ग और योगमार्ग दोनोंमेंसे भ्रष्ट होकर कहीं बीचमें ही तो नाशको नहीं प्राप्त होजाता है ?

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥ पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते । नहि कल्याणकृत्कश्चिद्द दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥ प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोभिजायते ॥ ४१ ॥ अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् । एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥ तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम् । यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥ पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः । जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥ प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः । अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो

॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! मेरा यह सन्देह आपको पूर्ण रीतिसे दूर कर देना चाहिये, आपके सिवाय दूसरा कोई भी इस सन्देहको काटनेवाला नहीं है ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि–हे कुन्तीनन्दन ! ऐसे योगीका इस लोकमें नाश नहीं होता है तथा परलोकमें भी नाश नहीं होता है, हे तात ! कल्याण (शुभकाम) करनेवाला कोई भी पुरुष दुर्गतिमें नहीं पड़ता है ॥ ४० ॥ योगभ्रष्ट पुरुष, पुण्य करनेवालोंके लोकोंमें जाकर तहां अनन्त वर्षोंतक रहता है और फिर पवित्र श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है ॥ ४१ ॥ अथवा वह बुद्धिमान योगियोंके ही कुलमें उत्पन्न होता है, इस जगत्में योगियोंके घरमें जन्म पाना, यह बड़ा ही दुर्लभ है ॥ ४२ ॥ हे कुरुनन्दन ! वह तिस जन्ममें पहिले देहमें पाये हुए बुद्धियोगको पाता है और फिर योगकी पूर्णसिद्धिके लिये यत्न करता है ॥ ४३ ॥ वह पराधीन होता है तो भी पहिले जन्मका अभ्यास हा उसको योगमार्ग की ओरको खेंचकर लेजाता है अधिक तो क्या, परन्तु योगका जिज्ञासु भी शब्दब्रह्म (कर्मकाण्ड) को लाँघजाता है ॥ ४४ ॥ जो योगी प्रयत्नसे योग साधनेका उद्योग करता है वह पापसे छूटजाता है और अनेकों

याति परां गतिम् ॥४५॥ तपस्विभ्योधिकोयोगी ज्ञानिभ्योपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥ योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥　　छ　　॥　　छ　　॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि संन्यासयोगोनाम [षष्ठोऽध्यायः] त्रिंशोध्यायः समाप्तः॥३०॥

श्रीभगवानुवाच। मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः। असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥ ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः। यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥ भूमिरापोऽनलो

जन्मोंके पीछे योगसे सिद्ध होकर परमगतिको पाता है ॥ ४५ ॥ हे अर्जुन ! योगी तपस्वियोंसे भी अधिक माना गया है, ज्ञानियों से भी अधिक माना गया है और कर्म करनेवालोंसे भी अधिक माना गया है इस लिये तू योगी बन ॥ ४६ ॥ सब योगियोंमें भी जो योगी चित्तको मेरे अर्पण करके श्रद्धाके साथ मुझको भजता है उसको मैं महायुक्त (महायोगी) मानता हूं ॥ ४७ ॥ तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥　　*　　॥　　*　　॥

श्रीभगवान् कहते हैं, कि—हे अर्जुन ! मुझमें मनको आसक्त करके और मेरा आश्रय लेकर यदि तू योगका साधन करेगा तो वास्तवमें मुझे पूर्णरीतिसे तू जिसप्रकार जानेगा, उसको तू सुन ॥ १ ॥ मैं तुझसे सकल साधन और विज्ञान सहित इस ज्ञानको कहता हूं जिसको जानकर तुझे इस लोकमें फिर जानने योग्य और कुछ भी बाकी नहीं रहेगा ॥ २ ॥ हजारों मनुष्योंमें कोई पुरुष ही सिद्धिके लिये यत्न करता है और प्रयत्न करने वाले सिद्ध पुरुषोंमें भी कोई विरला ही मुझे यथार्थ रीति से जानता है ॥ ३ ॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन,

वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥ अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् । जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥ एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणी-त्युपधारय । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥ मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥ रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः। प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥ पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ। जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ६ बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् । बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥ बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जि-

बुद्धि और अहङ्कार, इस रीतिसे मेरी आठ प्रकारकी प्रकृति मुझ से अभिन्न है ॥४॥ यह प्रकृति अपरा (साधारण) है और इससे दूसरी परा (श्रेष्ठ) मेरी जीव भूत प्रकृति है, ऐसा तू जान, कि-जो प्रकृति इस जगत्को धारण किये रहती है॥५॥ इस क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ प्रकृतिसे सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं ऐसा तू निश्चय रख तथा मैं सब जगत्की उत्पत्ति करनेवाला और प्रलय करनेवाला हूं, यह बात भी तू स्मरण रख ॥ ६ ॥ हे धनञ्जय ! मुझसे पर-तर (परमार्थ सत्य) और कोई भी वस्तु नहीं है, परन्तु जैसे डोरेमें बहुतसी मणिमें पुरी हुई होती हैं तैसे ही यह सब जगत् मुझ में पुरा हुआ है ॥ ७ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! मैं जलमें रसरूपसे रहता हूं, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रभारूपसे रहता हूं, सब वेदोंमें ॐकार रूपसे रहता हूं, आकाशमें शब्दरूपसे रहता हूं और मनुष्योंमें पुरुषार्थरूपसे रहता हूं ॥ ८ ॥ और मैं पृथिवीमें पवित्र गन्धरूप से रहता हूं. अग्निमें तेजरूपसे रहता हूं, सकल प्राणियोंमें जीव-नरूपसे रहता हूं और तपस्वियोंमें तपरूपसे रहता हूं ॥ ९ ॥ हे अर्जुन ! तू मुझे सब प्राणियोंका सनातन बीज जान और मैं बुद्धिमानोंमें बुद्धिरूप तथा तेजस्वियोंमें तेजरूप हूं ॥ १० ॥

तम् । धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥ ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये । मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥ त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् । मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥ दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥ न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ १६ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्य-

हे भरतसत्तम ! मैं बलवानों में काम तथा रागसे रहित बल हूं और प्राणियोंमें धर्ममें बाधा न डालनेवाला काम हूं ॥ ११ ॥ जो सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी भाव हैं वह सब मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, ऐसा जान, मैं उनमें नहीं रहता हूं परन्तु वह मुझमें रहते हैं ॥ १२ ॥ ऊपर कहे हुए त्रिगुणात्मक तीन पदार्थोंसे यह सब जगत् मोहित होरहा है, इसकारण इन भावों से पर मुझ अविनाशीको नहीं जानसकते हैं ॥ १३ ॥ मेरी यह दैवी माया तीन गुणोंवाली और दुरत्यया है अर्थात् इसको पार पाना बड़ा ही कठिन है, जो मेरी ही शरणमें आते हैं वह ही मेरी इस मायाको तरकर पार होते हैं ॥ १४ ॥ जो अधम पुरुष पापी और मूढ़ हैं वह मेरी शरणमें नहीं आते हैं अर्थात् मुझे नहीं जानते हैं, क्योंकि—उनके ज्ञानको मायाने छीन लिया है और वह असुरपने में पड़गये हैं ॥ १५ ॥ हे अर्जुन ! पुण्य कर्म करनेवाले चार प्रकारके पुरुष मुझे भजते हैं, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन ! वह आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी कहलाते हैं ॥ १६ ॥ उन चारोंमें नित्य मेरा योग करनेवाला और एक मेरी ही भक्ति करनेवाला ज्ञानी बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि— मैं ज्ञानीको बड़ा ही प्यारा होता हूं और वह मुझे बड़ा प्यारा

र्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतः। आस्थितः सहि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥ बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥१९॥ कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः। तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥ यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥ स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते। लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान् ॥ २२ ॥ अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्। देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥ अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।

होता है ॥ १७ ॥ ऊपर कहे चारों ही उदार होते हैं, तो भी ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है, ऐसा मैं मानता हूं. क्योंकि-वह मुझ में चित्तको जोड़कर सर्वोत्तम गतिरूप जो मैं तिस मेरा ही आश्रय लेता है ॥ १८ ॥ वासुदेव ही सकल प्रपञ्चरूप हैं, ऐसे ज्ञान-वाला ज्ञानी पुरुष, बहुतसे जन्म बीतजाने पर मुझे पाजाता है और ऐसा महात्मा मिलना बड़ा ही दुर्लभ है ॥ १९ ॥ जुदी २ कामनाओंसे जिनका ज्ञान नष्ट होगया है, ऐसे पुरुष अपनी २ प्रकृतिके वशमें होकर जुदे २ नियमोंको ग्रहण करते हुए जुदे २ देवताओंकी शरणमें जाते हैं ॥ २० ॥ जो २ भक्त पुरुष, जिस २ देवताकी मूर्त्तिकी श्रद्धाके साथ पूजा करना चाहता है, उस २ पुरुषकी तिस २ श्रद्धाको ही मैं अचल करदेता हूं ॥ २१ ॥ वह वह भक्त पुरुष अपनी श्रद्धासे युक्त होकर तिस२ देवताकी आरा-धना करता है और मेरी ही पूरी कीहुई हितकारक कामनाओंको वह २ भक्तजन तिन २ देवताओंसे पाता है ॥ २२ ॥ अल्पबुद्धि अर्थात् बाहरी पदार्थोंकी इच्छावाले पुरुषोंका वह फल नाशवान् होता है, देवताओंका यजन करनेवाले देवताओंको पाते हैं और मेरे भक्त मुझे पाते हैं ॥ २३ ॥ मैं अव्यक्त कहिये उपाधियों

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥ नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः । मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥ वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥ इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत । सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप२७ येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥ जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये । ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥ साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः । प्रयाणकालेऽपि च मां

से रहित हूं-तो भी अज्ञानी मुझे उपाधियोंको पाने वाला मानते हैं, क्योंकि—वह मेरे अविनाशी और सबसे उत्तम परम-भावको नहीं जानते हैं ॥ २४ ॥ मैं योगमायासे ढका रहता हूं, इसकारण सबोंके जाननेमें नहीं आता हूं और अज्ञानी पुरुष भी अजन्मा तथा अविनाशी मुझको जानते नहीं हैं ॥ २५ ॥ हे अर्जुन । मैं, जो प्राणी पहिले हो चुके हैं उनको, वर्त्तमान काल के प्राणियोंको और आगेको होनेवाले प्राणियों को भी जानता हूं, परन्तु मुझे कोई नहीं जानता ॥ २६ ॥ हे परन्तप भरतवंशी राजन् ! इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए द्वन्द्व तथा मोह से सब प्राणी संसारमें महामोहमें पड़जाते हैं ॥ २७ ॥ पुण्य कर्म करनेवाले जिन मनुष्योंका पाप नष्ट होगया है वह द्वन्द्व पदार्थोंके मोहसे छूटकर तथा शम दम आदि व्रतका दृढ़ रीतिसे पालन करके मुझे भजते हैं ॥ २८ ॥ और फिर जरा और मरणके प्रवाहसे आत्माको छुटानेके लिये मेरा आश्रय लेकर ज्ञानको पानेके लिये उद्योग करते हैं वह सकल वेदांतमें प्रसिद्ध परब्रह्मके स्वरूपको जानते हैं तथा उसके साधनरूप सब कर्मोंको भी जानते हैं ॥ २९ ॥ जो अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवरूप मुझको जानते हैं उनको स्थिर चित्त वाले जानो

ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो नाम (सप्तमोऽध्यायः) एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अर्जुन उवाच । किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम । अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥१॥अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन । प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसिनियतात्मभिः ।२। श्रीभगवानुवाच॥अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते। भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥ अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् । अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥ अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् । यः प्रयाति स मद्भावं

और वह मरणकालमें भी मुझको जानते हैं ॥ ॥ ३० ॥ इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुन कहने लगा, कि—हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या ? कर्म क्या है ? अधिभूत क्या है ? और अधिदैव क्या कहलाता है ? ॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! इस देहमें अधियज्ञ किस को कहते हैं ? उसकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये ? तथा मनको नियममें रखनेवाले पुरुष प्रयाणकालमें (मरणके समय) आपको किस प्रकार जानै ? ॥ २ ॥ श्री भगवान्ने कहा कि—उपाधिके सम्बन्धसे रहित आत्माका रूप ब्रह्म नामवाला है, स्वभाव कहिये अनागन्तुक स्वरूप अर्थात् शुद्ध त्वं पदका अर्थ अध्यात्म है, देवताओंके लिये जिसमें होमे हुए पदार्थ अर्पण किये जाते हैं ऐसा जो याग वह कर्म है और वह कर्म सात्विक आदि स्वभावको तथा प्राणीमात्रको उत्पन्न करनेवाला है ॥ ३॥ नाशवान् पदार्थ अधिभूत कहलाते हैं और हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! इस देहमें ही मैं अधियज्ञ कहिये यज्ञका अभिमानी हूं ॥ ४ ॥ जो पुरुष अन्तकालमें मेरा ही स्मरण करते २ शरीर का त्याग कर

याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥ यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥ अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना । परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥८॥ कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥ प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव । भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥ यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्र-

देता है वह पुरुष निःसन्देह मेरे भाव (रूप) को पाता है ॥५॥ हे कुन्तीनन्दन ! अन्तकालमें पुरुष जिस २ भावका स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागता है उस २ भावनासे युक्त होता हुआ उस २ ही भावको पाता है ॥ ६ ॥ इस लिये सब समय मेरा स्मरण कर और युद्ध कर, मन और बुद्धिको मेरे अर्पण कर देगा तो तू अवश्य मुझे ही प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ अभ्यास करके पाये हुए योगसे युक्त तथा ध्येय विषयके सिवाय और स्थानमें न जानेवाले चित्तसे हे अर्जुन ! दिव्य परम पुरुषका चिन्तवन करने पर मनुष्य परम पुरुषको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जो पुरुष प्राण छूटते समय भक्तियुक्त होकर अचल मनसे तथा योगके बल से दोनों भ्रकुटियोंके बीचमें प्राणको अच्छे प्रकारसे चढ़ाकर कवि, पुराण सबको शिक्षा देनेवाले, अणुसे भी अणु सबके विधाता अचिंत्यरूपधारी सूर्यकी समान प्रकाशवाले और तमसे पर अन्तर्यामीका स्मरण करता है वह दिव्य परमपुरुषको पाता है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ वेदके ज्ञाता जिस प्रणवको वेदके आरम्भमें पढ़ते हैं, रागरहित संन्यासी जिस प्रणवकी शरणमें जाते हैं और जिस प्रणवको पानेकी इच्छासे पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस

ग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥ सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥ अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥ मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥ सहस्रयुगपर्यन्त महर्यद्ब्रह्मणो विदुः । रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥ अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे। रात्र्यागमे

प्राप्त करने योग्य परम पदको मैं तुमसे संक्षेपमें कहूंगा ॥ ११ ॥ सब इन्द्रियोंको अच्छे प्रकार से नियममें रखकर मनको हृदयमें रोककर और अपने प्राणको दोनों भ्रकुटियोंके मध्यमें चढ़ाकर योगशास्त्रमें कहीहुई रीति से मनको स्थिर करनेवाली धारणा करै ॥ १२ ॥ धारणा करके ॐ इस एक अक्षर रूप ब्रह्मका नाम लेता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ जो पुरुष अपने शरीर को त्यागता है वह परमगतिको पाता है ॥ १३ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! जो पुरुष अनन्यचित्त होकर—दूसरी वस्तुमें चित्तको न लगा कर नित्य एक मेरा ही स्मरण करता है उस नित्य कर्ममें जुड़े हुए योगी को मैं सहजमें ही मिल जाता हूं ॥ १४ ॥ महात्मा पुरुष मुझे पाकर दुःखोंके घररूप और नाशवान् जन्मको फिर नहीं पाते हैं, क्यों कि—वह परमा सिद्धि मोक्षको प्राप्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकसे लेकर सब ही लोकोंसे लौट कर प्राणियोंको फिर मृत्युलोकमें जन्म धारण करना पड़ता है परन्तु हे कुन्तीनन्दन ! मेरे पास पहुंचजाने पर फिर जन्म नहीं होता है ॥ १६ ॥ जो ब्रह्माजीके चार हजार युगकी बराबर दिनको और चार हजार युगकी बराबर रात्रिको जानते हैं वह मनुष्य ही दिन और रातको जानने वाले हैं ॥ १७ ॥ जब ब्रह्माका दिन

प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥ भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते । राज्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥ परस्तस्मात्तु भावोन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः । यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् । यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम २१ पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया । यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥ यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः । प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥ अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् । तत्र प्रयाता गच्छन्ति

निकलता है तब अव्यक्तमें से सब व्यक्तियें उत्पन्न होती हैं और जब रात होने लगती है तब अव्यक्तमें ही वह व्यक्तियें लय होने लगती हैं ॥ १८ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! वही यह प्राणियोंका समूह अविद्याके वशमें होताहुआ वारम्वार जन्म ले २ कर प्रलय को पहुंचता रहता है, ब्रह्माकी रात होती है तब नाश पाता है और दिन निकलता है तब उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ जो सत्ताधारी परब्रह्म पहिले कहे अव्यक्तसे भिन्न अक्षर नामधारी है अथवा जो सत्ताधारी मन वाणी आदि इन्द्रियोंके अगोचर और सनातन है वह परमात्मा सकल भूतोंका नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता है ॥ २० ॥ अव्यक्तको अक्षर नामसे कहा जाता है और शास्त्रके जाननेवाले उसको परम गति कहते हैं, जिसको प्राप्त होकर प्राणी फिर लौटकर नहीं आते हैं वह मेरा परमधाम है ॥ २१ ॥ हे कुन्तीनंदन ! ऊपर कहेहुए ब्रह्म से भिन्न जगत्का उपादान कारण रूप ईश्वर अनन्य भक्ति से मिल सकता है, जिसके भीतर सब प्राणी स्थित हैं और जिससे यह सब विश्व व्याप्त है २२ जिस समय मरणको प्राप्त हुए योगी अनावृत्ति (फिर नहीं लौटना) को पाते हैं और जिस समय मरणको प्राप्त हुए योगी आवृत्ति(लौटना) को पाते हैं वह समय हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन मैं तुझे बताता हूं ॥२३॥ अग्नि और ज्योतिका अभिमानी देवता

ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥ धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् । तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५॥ शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते । एकया यात्यनावृत्ति-मन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥ २६ ॥ नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन । तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥ वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् । अत्येति तत्स-र्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽक्षरब्रह्मयोगोनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३२ ॥

अर्थात् अर्चिष का अभिमानी देवता दिनका अभिमानी देवता शुक्लपक्ष का अभिमानी देवता तथा उत्तरायण रूप छः महीनेका अभिमानी देवता है, इस उत्तरायणकालमें परब्रह्मकी उपासना करनेवाला पुरुष मरणको प्राप्त होकर क्रमसे इन देवताओंको प्राप्त होता हुआ परब्रह्मको पाजाता है २४॥ धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष और छः महीने का दक्षिणायन इन सबके अभिमानी देवता है, कर्म-योगी इस दक्षिणायनमें मरणको पाकर चन्द्रमाके लोकमें जाता है और वहां कर्मका फल भोगनेके अनन्तर फिर मृत्युलोकमें को लौट आता है ॥ २५ ॥ शुक्लगति और कृष्णगति ये दोनों गति सनातन कालसे मानी हुई हैं, इनमें शुक्लगतिसे मुक्ति मिलती है और कृष्णगतिसे फिर जन्म धारण करना पड़ता है ॥ २६ ॥ हे अर्जुन ! कोई भी योगी यदि इन दोनों मार्गोंको जानता है तो मोहमें नहीं पड़ता है (योगसे भ्रष्ट नहीं होता है) इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समय योगसे युक्त होकर रह ॥२७॥ वेद पढ़नेका, यज्ञका, तपका और दानका जो पुण्यफल कहा है, उस सब पुण्यके फलको पहिले कहे हुए उपासनारूप मार्गको जानकर योगी लांघ जाता है और आदि परम स्थान को पाता है ॥ २८ ॥ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ * ॥

श्रीभगवानुवाच । इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे । ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १॥ राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् । प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥ अश्रद्दधानाः पुरुषाः धर्मस्यास्य परंतप । अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥ मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना । मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥ न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् । भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूत-भावनः ॥५॥ यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान । तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥ सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजा-

---

श्रीभगवान् बोले, कि हे अर्जुन ! मैं तुझ ईर्ष्यारहितसे यह यह अत्यन्त गुप्त ज्ञान, विज्ञानके साथ कहूंगा, जिसको जानकर तू संसारबन्धनरूप अशुभसे छूट जायगा ॥१॥ यह ज्ञान विद्याओं का राजा है गुप्त वस्तुओंका राजा है, पवित्र है, उत्तम है, प्रत्यक्ष रीतिसे जाननेमें आता है, धर्मसे युक्त है, सुखसे होसकता है और अविनाशी है ॥२॥ हे परन्तप अर्जुन ! इस ज्ञानरूप धर्मके ऊपर लोगोंकी श्रद्धा नहीं होती है,इस कारण वह ज्ञानरूप धर्मको पानेका उद्योग नहीं करते हैं और मुझे प्राप्त नहीं होते हैं,किन्तु मरण और जन्मकी फेरीरूप मार्गमेंही भटकते रहते हैं ॥ ३ ॥ अव्यक्त है मूर्त्ति कहिये स्वरूप जिसका ऐसे मुझने यह सब जगत् व्याप्त होरहा है, सब प्राणी मुझमें रहते हैं, परन्तु मैं उनमें नहीं रहता हूं ॥ ४ ॥ प्राणी मुझमें नहीं रहते हैं, तो भी मायावी ईश्वरके किये हुए प्राणियोंके साथ मेरे सम्बन्धको तू देख मैं प्राणियों को धारण कर रहा हूं तो भी मैं स्वयं प्राणियोंमें नहीं रहता हूं और मेरा परमानन्दरूप आत्मा प्राणियोंकी वृद्धि करनेवाला है महान् वायु जैसे नित्य आकाशमें रहता है, तैसे ही सब प्राणी मेरे विषैं रहते हैं, ऐसा जान ॥ ६ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! जब सृष्टि का नाश होता है, तब सब प्राणी मेरी प्रकृतिमें लीन होजाते हैं

ऽव्ययम् ॥७॥ प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः । भूतग्राम-मिमंकृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥ न च मां तानि कर्माणि निब-ध्नन्ति धनञ्जय । उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥ मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते॥१०॥अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् । परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥ मोघाशा मोघक-र्माणो मोघज्ञाना विचेतसः । राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥ महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः । भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥ सततं कीर्त्त-

---

और कल्प के आरम्भमें मैं फिर उन प्राणियोंको रचता हूं ॥७॥ मैं अपनी प्रकृतिका आश्रय करके इन प्रकृतिके वशमें होनेके कारण पराधीन रहने वाले सकल प्राणियोंके समूहको बारम्बार रचता हूं ॥ ८ ॥ हे धनञ्जय ! मैं सृष्टि रचनेके कर्मोंमें बँधा हुआ नहीं हूं, किन्तु उदासीनके समान तटस्थ रहता हूं, इस कारण वह कर्म मुझे बन्धनमें नहीं डाल सकते ॥ ९ ॥ मैं तो अध्यक्षकी समान रहता हूं इस स्थावर जङ्गमरूप जगत्को तो मेरी प्रकृति उत्पन्न करती है, हे कुन्तीनन्दन ! इस अध्यक्षरूप हेतुसे यह जगत् जन्म आदिकी अवस्थाओंमें घूमा करता है ॥ १० ॥ मेरे परमभाव (स्वरूप) को न जानने वाले मूढ़ पुरुष, मनुष्य शरीरको धारण करनेवाले और प्राणियोंके महेश्वररूप मेरा अपमान करते हैं॥ ११ ॥ इस कारण ही उनकी आशायें निष्फल होती हैं उनके कर्म भी निष्फल होते हैं और उनका ज्ञान भी निष्फल होता है क्योंकि—वह विवेकहीन होते हैं और इसकारण ही वह मोहमें डालनेवाली राक्षसी वा आसुरी प्रकृतिका आश्रय लेते हैं ॥ १२ ॥ परन्तु हे अर्जुन महात्मा पुरुष तो दैवी प्रकृति का आश्रय लेकर मुझे प्राणियोंका आदिकारण तथा अविनाशी जान कर अनन्य मन से मेरी भक्ति करते हैं ॥ १३ ॥ महात्मा

यन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः । नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥ ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते । एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥ अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् । मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥ पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः । वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७ ॥ गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् । प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥ तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च । अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥ त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापाः यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते । ते पुण्यमासाद्य

पुरुष नित्य मेरे गुणोंका कीर्त्तन करते हैं, इन्द्रियोंको वशमें रखने के लिये यत्न करते हैं, दृढ़ताके साथ व्रतोंका पालन करते हैं, भक्तिके साथ मुझे प्रणाम करते हैं और नित्य सावधान होकर मेरी उपासना करते हैं, कितने ही ज्ञानयज्ञसे मेरा पूजन करके उपासना करते हैं, कितने ही अभेदरूपसे मेरी उपासना करते हैं, कितने ही भिन्न-रूपसे मेरी उपासना करते हैं और कितने ही सब प्रकारसे मुझे सर्वरूप मानकर मेरी उपासना करते हैं, ॥ १४ ॥ १५ ॥ मैं क्रतु हूं, मैं यज्ञ हूं, मैं स्वधा हूं, मैं औषध हूं, मैं मन्त्र हूं, मैं आज्य (घी) हूं, मैं अग्नि हूं और मैं हुतरूप हूं, ॥ १६ ॥ मैं इस जगत् का पिता, माता और पितामह हूं, कर्मके फल का दाता हूं, वेद्य ब्रह्म हूं, पवित्र तप आदि हूं, ओंकार हूं ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं ॥१७॥ गति, भर्त्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद्, प्रभव, प्रलय स्थान, निधान और अविनाशी बीज भी मैं ही हूं ॥ १८ ॥ और हे अर्जुन ! मैं सूर्य-रूप से तपता हूं, आठ महीने वर्षाको रोकता हूं, और चार मास तक जलको बरसाता हूं तथा मैं अमृत, मृत्यु, सत् असत्रूप हूं, ॥ १९ ॥ तीनों वेदोंको जानने वाले, पापरहित और सोमलताके

सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति । एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः । तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥ अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च । न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ २४ ॥ यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः । भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्

रसको पीनेवाले कर्मकाण्डी लोग यज्ञोंसे मेरा यजन करके स्वर्गमें पहुंचनेकी प्रार्थना करते हैं, और वह पुण्यके फलरूप इन्द्रलोकको पाकर स्वर्गमें दिव्य दुःखरहित देवताओंके भोगोंको भोगते हैं ॥ २० ॥ वह इस प्रकार विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य-क्षीण होनेपर फिर मर्त्यलोकमें आजाते हैं इसप्रकार वेदमें कहे हुए काम्य कर्मको करनेवाले तथा कामना करने वाले नित्य जन्म मरणको भोगा करते हैं ॥ २१ ॥ जो मनुष्य औरकी उपासना न करके एक मेरा ही चिन्तवन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य मेरी उपासना करनेवालोंके योग क्षेमका भार मैं अपने ऊपर लेता हूं ॥ २२ ॥ हे कुन्तीनन्दन अर्जुन ! जो दूसरे देवताओंके भक्त हैं वह भी यदि श्रद्धाके साथ यजन करते हैं तो मेरा ही यजन करते हैं, परन्तु वह उनका यजन विधिपूर्वक नहीं है ॥ २३ ॥ मैं ही सब यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु हूं, परन्तु वह मुझे यथार्थ रीतिसे नहीं जानते हैं इसलिये वह संसाररूप गढ़ेमेंको गिर पड़ते हैं ॥ २४ ॥ देवताओंकी आराधना करनेवाले देवताओंको पाते हैं पितरोंकी आराधना करनेवाले पितरोंको पाते हैं जो विनायक योगिनी आदि भूतगणोंके उपासक हैं वह उनके ही लोक को प्राप्त होते हैं और मेरी आराधना करनेवाले मुझे

॥ २५ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥ शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः । संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः । ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥ अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं नियच्छति । कौन्तेय प्रतिजानाहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥ मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः

पाते हैं ॥ २५ ॥ पत्र, फूल फल, जल इनमें से कुछ भी जो मुझे भक्तिके साथ अर्पण करता है, उस मनको वशमें रखने वाले पुरुषकी भक्तिके साथ अर्पण की हुई उस वस्तुको मैं ग्रहण करता हूं ॥ २६ ॥ हे अर्जुन ! तू जो काम करै जो खाय, जो होम करै जो दान करै और जो तप करै वह मुझे अर्पण कर ॥ २७ ॥ इस प्रकार कर्म करनेसे तू शुभ और अशुभ फल देने वाले कर्मोंके बन्धनसे छूट जायगा और जिसका आत्मा संन्यास योगसे युक्त है ऐसा तू भक्त होकर मेरे पास पहुंच जायगा ॥ २८ ॥ मैं सब प्राणियोंमें समान भावसे रहता हूं, न मैं किसी को द्वेष करने योग्य मानता हूं और न कोई मेरा प्यारा है जो मुझे भक्तिके साथ भजते हैं वह मुझमें हैं और मैं उनमें हूं । ॥ २९ ॥ पुरुष अत्यन्त दुराचारी होनेपर भी दूसरेमें मन न लगा कर यदि मुझे भजै तो उसको सत्पुरुष मानना चाहिये, क्यों कि—उसका व्यवसाय उत्तम है ॥ ३० ॥ उस उत्तम व्यवसाय से ही वह पुरुष तुरन्त धर्मात्मा होजाता है और नित्य शान्तिको पाता है, हे अर्जुन ! तू निःसन्देह प्रतिज्ञा कर लेना कि—मेरा भक्त (हरिभक्त) कभी दुर्गतिमें पड़कर नष्ट नहीं होता है ॥ ३१ ॥

पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति पराङ्गतिम्॥३२॥ किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा। अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥ मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योग-
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो
नाम(नवमोध्यायः) त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः। यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥ न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥ २॥ यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्। असंमूढः स मर्त्येषु सर्व-

---

हे अर्जुन! मेरा आश्रय लेनेवाला पुरुष पापयोनि हो, स्त्री हो वैश्य हो, चाहे शूद्र हो तो भी परमगतिको पाता है ॥ ३२ ॥ फिर पुण्ययोनि वाले ब्राह्मण भक्त तथा राजर्षि मेरा आश्रय लेकर परमगतिको पावेंगे इसमें तो कहना ही क्या है? इसलिये जिसमें लेशमात्र भी सुख नहीं है ऐसे नाशवान् इस लोकमें जन्म लेकर मेरा भजन कर ॥ ३३ ॥ तू मुझमें ही मनको लगाये रख, मेरा ही भक्त बनजा मेरा ही पूजन कर और मुझे ही प्रणाम कर, एक मेरी ही शरण लेकर ऊपर कहे अनुसार साधनामें लग जायगा तो मुझ आत्मस्वरूपको पाजायगा ॥३४॥ तेंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ ॐ ॥ ॐ

श्रीभगवान् ने कहा, कि-हे महाबाहु अर्जुन! फिर भी तू मेरे परम-वचनको सुन, क्यों कि-मेरा वचन सुनकर प्रसन्न होनेवाले तुझसे मैं तेरा हित करने की इच्छासे कहता हूं॥१॥ देवता और महर्षि भी मेरे प्रभावको नहीं जानते, क्यों कि-मैं सब देवताओंका और महर्षियोंका आदिपुरुष हूं ॥ २ ॥ मनुष्योंमें जो विवेकी होता है वह ही अजन्मा, अनादि और सब

पापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः। सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥ अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः। भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥ महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा। मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥ एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः। सोऽविकम्पेन योगेन

लोकोंके महेश्वर मुझको जानता है और वह पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३ ॥ बुद्धि (सूक्ष्म विषयोंको जाननेवाली अन्तः-करणकी शक्ति) ज्ञान (आत्मा अनात्मा आदि पदार्थोंका विवेक) असंमोह (जानने योग्य पदार्थोंका व्याकुलता न होकर विवेकके साथ ज्ञान) क्षमा (कोई अपराध करै तो भी चित्तमें विकार न होना) सत्य (जो बात प्रमाणके साथ जानली हो उसको ठीक वैसी ही कह देना) दम (बाहरी इन्द्रियोंको वशमें रखना) शम (मनको वशमें रखना) सुख (आनन्द) दुःख (सन्ताप) भव (उत्पत्ति) भाव (सत्ता-होना) अभाव (न होना) भय (त्रास) अभय (त्रास न होना) अहिंसा (प्राणियों को पीड़ा न देना) समता (शत्रु मित्र आदि सबके साथ समान व्यवहार करना) तुष्टि (जो कुछ मिलजाय उसमें ही सन्तोष रखना) तप (इन्द्रियों को वशमें रखकर व्रत उपवास आदि करना) दान (जो वस्तु अपनेको मिलै उसको शक्तिके अनुसार विभाग करके सुपात्रोंको देना) यश (धर्मके काम करके कीर्त्ति पाना) अपयश (अधर्मसे निन्दा पाना) ये भिन्न २ प्रकारके बुद्धि आदि पदार्थ मुझ से ही उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ भृगु आदि प्राचीन कालके सात महर्षि सनकादि चार महर्षि और चौदह मनु कि-जिनसे ये लोक और सब प्रजाएं उत्पन्न हुई हैं वह भी मेरे मनमेंसे उत्पन्न हुए हैं और उनकी भक्ति भी मुझमें ही है ॥ ६ ॥ जो पुरुष मेरी विभूति तथा योग

युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥ अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते । इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९ ॥ तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १० ॥ तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः । नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥ परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् । पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥ आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा । असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे

को यथार्थ रीतिसे जानता है अर्थात् मेरे ऐश्वर्यको जानकर मुझमें ही मनको लगाता है वह निःसन्देह निर्विकल्प समाधियोग को कर सकता है ॥७॥ मैं ही सब जगत्को उत्पन्न करने वाला हूं और बुद्धि आदि मेरे ही अनुग्रहको पाकर अपना २ काम करनेम लगते हैं ऐसा जानकर विद्वान् पुरुष भक्तिभावसे मेरी उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ मैं ही जिनके चित्तमें रम रहा हूं, मैं ही जिनकी इन्द्रियोंमें बस रहा हूं तथा जो नित्य आपसमें मेरे विषैंका ही उपदेश करते हैं, जो नित्य मेरी ही कथायें कहते हुए सन्तुष्ट रहते हैं और विहार करते हैं उन नित्य उत्साहवाले और प्रेमके साथ मेरा भजन करनेवाले पुरुषोंको मैं ऐसा ज्ञानयोग देता हूं कि—जिसके प्रभावसे वह मेरे पास पहुंच जाते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ अन्तःकरणरूप घरमें रहनेवाला मैं भक्तोंके ऊपर ही दया करनेके लिये प्रबलज्ञानरूप दीपकसे उनके अविवेक से उत्पन्न हुए अज्ञानरूप अन्धकारका नाश करता हूं ॥ ११ ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे भगवन्! आप परब्रह्म हैं परमधाम हैं परमपवित्र हैं प्रत्येक प्राणीमें आत्मारूपसे विराज रहे हैं सनातन, दिव्य, आदिदेव, अजन्मा और व्यापक हैं ऐसा सब ऋषि देवर्षि नारद, असित, देवल और व्यासजी कहते हैं तथा

॥ १३ ॥ सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव । न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥ स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम । भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥ वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः । याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥ कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् । केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥ विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन । भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥ हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः । प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे १९ अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः । अहमादिश्च मध्यं च

स्वयं आपने भी मुझसे कहा है ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे केशव ! तुम मुझसे जो बात कहते हो इस सब बातको मैं सत्य मानता हूं, हे भगवन् ! देवता तथा दानव आपके जन्मको नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥ हे सकल भूतों को उत्पन्न करने वाले भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगत्पते ! हे पुरुषोत्तम ! तुम स्वयं ही अपने आपेको जानते हो ॥ १५ ॥ आपको उचित है, कि-अपनी दिव्य विभूतियें मुझे पूर्णरूपसे सुनाइये, जिन विभूतियोंसे आप इन लोकों में व्याप रहे हो ॥ १६ ॥ हे ऐश्वर्योंवाले ! मैं सदा आपका चिन्तवन करता २ आपको कैसे जानूँ ? तथा हे भगवन् ! मुझे किन किन पदार्थोंमें आपका चिन्तवन करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे जनार्दन ! आप अपने योग, विभूति तथा मोक्षका साधन मुझे फिर विस्तारके साथ सुनाइये, आपके अमृतभरे उपदेशको सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन ! मैं तुमसे अपनी दिव्य विभूतियें कहूंगा परन्तु मेरी विभूतियोंके विस्तारका अंत नहीं है ॥ १९ ॥ हे गुडाकेश (निद्राको जीतनेवाले) अर्जुन मैं वासुदेव आत्मारूप हूं, इस लिये सब प्राणियोंके एक होनेका स्थान हूं और इस कारण

भूतानामन्त एव च ॥ २० ॥ आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् । मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥ वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः । इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् । वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥ पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् । सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥ महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् । यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः २५ अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः । गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥ उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् । ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

ही मैं प्राणियोंका आदि (जन्मका कारण) मध्य (पालनका कारण) तथा अंत (प्रलयका कारण) हूं ॥ २० ॥ मैं बारह आदित्योंमें विष्णु नामका आदित्य अथवा देवताओंमें मैं वामनावतार विष्णु हूं अग्नि आदि ज्योतियोंमें मैं तीव्र तापवाला सूर्य हूं उनश्चास पवनोंमे मैं मरीचि हूं और नक्षत्रगणोंमें मैं चन्द्रमा हूं ॥२१॥ वेदोंमें मैं सामवेद हूं, देवताओंमें मैं इंद्र हूं, इंद्रियोंमें मैं मन हूं और प्राणियोंमे मैं चेतना हूं ॥ २२ ॥ ग्यारह रुद्रोंमें मैं शङ्कर हूं यक्ष राक्षसोंमें मैं कुवेर हूं,आठ वसुओंमें मैं अग्नि हूं और पर्वतोंमें मैं सुमेरु हूं अर्थात् ये मेरी विभूतियें ह ॥२३॥ हे कुन्तीनंदन । पुरोहितों में मुझे मुख्य बृहस्पति जान, सेनापतियोंमें मैं स्वामिकार्त्तिकेय और जलाशयोंमें मैं सागर हूं॥२४॥महर्षियोंमें मैं भृगु हूं, वाणियों में मैं ॐकार हूं, यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थावर पदार्थोंमें मैं हिमालय हूं ॥ २५ ॥ सब वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष, देवर्षियोंमें नारद, गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें मैं कपिल मुनि हूं ॥ २६ ॥ मुझे घोड़ोंमें समुद्रको मथते समय उत्पन्न हुआ उच्चैःश्रवा घोड़ा, गजराजोंमें ऐरावत और मनुष्योंमें राजा जान ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् । प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥ अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् । पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥ प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् । मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥ पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् । झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥ सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन । अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च । अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ॥३३॥ मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् । कीर्त्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४ ॥ बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री

मैं आयुधोंमें वज्र और गौओंमें कामधेनु हूं, सन्तान उत्पन्न करने वालोंमें कामदेव और सर्पोंमें मैं वासुकि हूं ॥ २८ ॥ नागों में मैं अनन्त (शेष नाग) और जलचरोंमें मैं वरुण हूं,मैं पितरों में अर्यमा और दण्ड देनेवालोंमें मैं यम हूं ॥ २९ ॥ मैं दैत्योंमें प्रल्हाद और गिननेवालोंमें मैं काल हूं,पशुओंमें मैं मृगेन्द्र (सिंह) और पक्षियोंमें मैं गरुड़ हूं ॥ ३० ॥ मैं वेगवालोंमें वा पवित्र करने वालोंमें पवन और शस्त्रधारियोंमें राम हूं, मत्स्योंमें मगर और नदियोंमें गङ्गा हूं ॥ ३१ ॥ और हे अर्जुन ! मैं ही पांच भूत और भौतिक सृष्टिका आदि मध्य तथा अन्त हूं अर्थात् उत्पत्ति, पालन और प्रलयका कारण हूं, विद्याओंमें अध्यात्मविद्या और विवाद करनेवालोंमें मैं वाद हूं ॥ ३२ ॥ मैं अक्षरों में अकार, समासोंमें द्वन्द्व, अविनाशी काल और सब प्राणियों की तृप्तिसे तृप्त होनेवाला धाता कहिये कर्मफल देनेवाला भी मैं ही हूं ॥ ३३ ॥ मैं सब का हरनेवाला मृत्यु, होनहार कल्याणों का उत्पत्तिस्थान, कीर्त्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं ॥ ३४ ॥ सामवेदके मन्त्रोंमें मैं बृहत्साम हूं, छन्दोंमें

छन्दसामहम् । मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥ द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् । जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥ वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः । मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना: कविः ॥ ३७ ॥ दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् । मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८॥ यच्चापि सर्वभूतानां वीजं तदहमर्जुन । न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥ नान्तोस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप । एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम् ॥ ४१ ॥ अथवा बहुनैतेन किं

मैं गायत्री छन्द हूं, महीनोंमें मैं मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त हूं ॥ ३५ ॥ छल करनेवालोंमें मैं द्यूतरूप और तेजस्वी पदार्थोंमें तेजरूप हूं, मैं विजय करनेवालोंमें जयरूप, उद्योग करनेवालोंमें उद्यमरूप, और सत्त्वगुणियोंमें मैं धर्म ज्ञान वैराग्य आदि सत्त्वगुणी कार्यरूप हूं ॥ ३६ ॥ यादवोंमें मैं वासुदेव, पाण्डवोंमें अर्जुन मुनियोंमें व्यास और नीति जाननेवालोंमें मैं शुक्र कवि हूं ॥ ३७ ॥ दण्ड देनेवालोंमें मैं दण्डरूप, विजय चाहने वाले पुरुषोंमें नीतिरूप, गुह्य वस्तुओंमें मौन कहिये वाणीको नियममें रखनारूप और ज्ञानी पुरुषोंमें ज्ञानरूप हूं ॥ ३८ ॥ हे अर्जुन ! सब प्राणियोंमें जो बीज है वह भी मैं ही हूं, मेरे विना स्थावर तथा जङ्गम प्राणी उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ हे परन्तप अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है, इस लिये मैंने अपनी विभूतियोंके विस्तारका यह एकदेश कहा है ॥ ४० ॥ जो २ प्राणी ऐश्वर्यवान्, शोभावाला अथवा बल आदिसे युक्त हो वह २ मेरी चित् शक्तिके विशेष अंशसे उत्पन्न हुआ है ऐसा जान ॥ ४१ ॥ अथवा हे अर्जुन ! इन सब बातोंको जाननेसे तुझे क्या लाभ होना है ? तुझे तो केवल इतना ही

ज्ञातेन तवार्जुन । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ४२
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोनाम (दशमो-
ऽध्यायः) चतुस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३४ ॥

अर्जुन उवाच । मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् । यत्त्व-योक्तं वचस्तेन मोहोयं विगतो मम ॥ १ ॥ भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया । त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर । द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥३॥ मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो । योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोथ सहस्रशः । नानाविधानि दिव्यानि नाना-वर्णाकृतीनि च ॥५॥ पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।

जान लेना चाहिये, कि—मैं एक अंशसे इस सब जगत्में व्याप्त होकर स्थित हूं ॥ ४२ ॥ चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥

अर्जुनने कहा, कि—हे भगवन् ! आपने मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये परम गुप्त तथा जिसका नाम अध्यात्म है ऐसा वचन कहा, उससे मेरा यह मोह दूर होगया ॥ १ ॥ मैंने आपसे प्राणियोंके उत्पत्ति और विनाशको भी विस्तारके साथ सुना और हे कमलनयन ! आपका अविनाशी माहात्म्य भी सुना॥२॥ हे परमेश्वर ! आप अपने विषयमें जो कुछ कहते हैं यह ठीक ही है तो भी हे पुरुषोत्तम ! मैं आपके ऐश्वरी रूपको देखना चाहता हूं ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! हे योगेश्वर ! यदि आप समझें कि-मैं आपके उस रूपको देख सकूंगा तो आप मुझे उस अविनाशी मायावी स्वरूपको दिखला दीजिये ॥ ४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि—हे अर्जुन ! मेरे सैकड़ों और हजारों रूपोंको देख, वह सब अनेकों प्रकारके, अनेकों वर्णोंके, अनेकों आकारोंके तथा दिव्य हैं ॥५॥ हे भरतवंशी अर्जुन ! तू आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार

बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥ इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् । मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि ७ न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच ॥ एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥९॥ अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् । अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥१०दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्। सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥११॥दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता । यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२॥ तत्रैकस्थं

और मरुत्गणोंको देख, तथा दूसरे भी पहिले न देखे हुए आश्चर्यजनक रूपोंको देख ॥ ६ ॥ हे निद्राको जीतनेवाले अर्जुन! इस मेरे शरीरमें एक अवयवमें को सचराचर सब जगत् को तू अभी देख तथा और जो कुछ देखना चाहता हो वह भी देख ॥७॥ तू अपनी इस प्राकृत दृष्टिसे मुझे नहीं देख सकेगा,इस लिये मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूं,उससे तू मेरे सब विश्वकी आधाररूप ईश्वरी शक्तिको देख ॥८॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! महायोगेश्वर श्रीहरिने ऐसा कहकर अर्जुनको अपना मायामय परमस्वरूप दिखाया ॥९॥ परमात्मदेव श्रीकृष्णके उस विराटरूपमें अनेकों मुख और अनेकों नेत्र थे, उनके स्वरूपमें अनेकों देखने योग्य आश्चर्य समाये हुए थे, उनके स्वरूपमें अनेकों दिव्य आभूषण थे, उठे हुए अनेकों दिव्य आयुध थे, वह दिव्य पुष्प और दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे, दिव्य चन्दन आदि पदार्थोंका शरीर पर लेप होरहा था, वह सकल आश्चर्य्य पदार्थोंसे भरपूर थे, उनका कहीं ओर छोर नहीं दीखता था तथा एकपनेसे और अनेकपनेसे अनेकों प्रकारसे सर्वत्र व्याप्त होरहेथे॥१०॥११॥यदि आकाशमें एक साथ हजार सूर्योंकी कान्तिका उदय होजाय तो उन महात्मा परमात्मदेव की कान्तिकी समान हो, ऐसी उस दिव्यरूपकी कान्ति थी ॥ १२ ॥ और उस समय अर्जुनने देव

जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा । अपश्यद् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥ ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः । प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥ अर्जुन उवाच । पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान ॥ १५ ॥ अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोनन्तरूपम् । नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥१६॥ किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् । पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्ताऽनलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥ त्वम-

---

देव श्रीकृष्णजीके शरीरमें एकही ओरको अनेकों प्रकार से बटा हुआ सब जगत् देखा ॥१३॥ यह देख कर अर्जुन आश्चर्यमें पड़गया, उसके रोंगटे खड़े होगये और वह दोनों हाथ जोड़कर मस्तकसे श्रीकृष्णजीको प्रणाम करके कहनेलगा ॥ १४ ॥ अर्जुन बोला, कि—हे देव ! मैं आपके शरीरमें आदित्य नामवाले देवताओं को, जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज इन चार प्रकारके सकल प्राणियोंको, कमलके आसन पर विराजमान शक्तिमान् ब्रह्माजीको, ऋषियोंको तथा वासुकि आदि दिव्य सर्पोंको देख रहा हूं ॥ १५ ॥ मैं आपकी अनेकों भुजा, अनेकों पेट, अनेकों मुख और अनेकों नेत्रोंको देख रहा हूं, आपका स्वरूप चारों दिशाओंमें तथा ऊपर नीचे ऐसा दीखरहा है कि—इसका नाप हो नहीं हो सकता, हे विश्वेश्वर ! मुझे आपके स्वरूपका अन्त, मध्य और आदि दीखता ही नहीं, आपका यह रूप वास्तवमें विश्वरूप है ॥ १६ ॥ तुम मुकुट, गदा और चक्रको धारण कर रहे हो, तेजकी राशि हो, चारों ओर प्रकाशमान हो, चारों ओर धधकते हुए अग्नि और सूर्यकी समान कान्तिवाले हो, इसकारण ही प्रमाणसे भी जानने में न आने वाले आपको मैं दुर्निरीक्ष्य (जिनकी ओरको देखना कठिन है

क्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् । त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥ अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् । पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥ द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः । दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥ अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति । स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥ रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च । गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥ रूपं

ऐसे) जानता हूं ॥ १७ ॥ तुम परम अक्षर हो, जानने योग्य हो तुम इस विश्व के परम लयस्थान हो, अव्यय हो, सनातनधर्मके रक्षक हो और मैं आपको सनातन पुरुष मानता हूं ॥ १८ ॥ आप आदि, मध्य और अन्तसे रहित हो, आपकी वीरता अपार है, आपकी भुजा अनन्त हैं, चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र हैं, आपका मुख प्रज्वलित हुए अग्निकी समान है और आप अपने तेज से इस विश्वको तपा रहे हो, ऐसा मैं देख रहा हूं ॥ १९ ॥ हे महात्मन् ! अकेले आपने ही प्रत्यक्षरूपसे आकाश पृथिवीके मध्य भागको और सब दिशाओं को व्याप रक्खा है, इस लिये आपके इस अद्भुत रूपको देखकर तीनों लोक अत्यन्त पीड़ा पारहे हैं ॥ २० ॥ ये असुरोंके समूह मरणके लिये आपके भीतर प्रवेश कर रहे हैं, कितने ही भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपकी स्तुति कर रहे हैं और महर्षि तथा सिद्ध पुरुषों के समूह 'कल्याण हो' ऐसा कहकर अनेकों स्तोत्रोंसे आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥२१॥ रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितर, गन्धर्व, यक्ष, असुर तथा सिद्ध पुरुषोंके समूह यह सब आश्चर्यमें पड़कर आपकी ओरको देख रहे

महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्। बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम् ॥ २३ ॥ नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्। दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥ दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि। दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥ अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः। भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥ वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि। केचिद्विलग्ना

हैं ॥२२॥ हे महाबाहु कृष्ण! बहुतसे मुख और नेत्रोंवाले, बहुतसे बाहु, सांथल और चरणोंवाले, बहुतसे पेटों वाले तथा बहुतसी दाढ़ोंसे भयानक मालूम होनेवाले आपके महान् रूपको देखकर सकल लोक और मैं बड़ी भारी व्यथा पारहे हैं॥२३॥आकाश को स्पर्श करने वाले,अग्निकी समान जाज्वल्यमान,खुला है मुख जिसमें और लाल२ विशाल नेत्रों वाले आपको देखकर मेरा अन्तः करण बड़ाही डर रहा है,हे प्रभो! मुझे धीरज नहीं होता तथा मुझे शान्ति भी नहीं मिलती है ॥२४॥ प्रलयकालके अग्निकी समान और दाढोंके कारण भयानक तुम्हारे मुखोंको देखते क्षण ही हे देवेश्वर! हे जगत्के निवासस्थान ईश्वर! मैं दिशाओंको भूलगया हूं और मुझे शान्ति भी नहीं मिलती है, इसलिये आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये अर्थात् मुझे सुख दीजिये ॥ २५ ॥ ये धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदि राजाओंके समूहोंके सहित आपके मुखमें घुस रहे हैं, भीष्म द्रोणाचार्य और यह कर्ण हमारे मुख्य २ योधाओंके साथ शीघ्रतासे जो दाढ़ोंके कारण बड़े ही भयानक हैं ऐसे आपके भयानक मुखोंमें घुस रहे हैं, इनमेंसे कितनों ही के तो शिर कुचल गये हैं और वह आपकी दाढ़ोंमें उलझे हुए

दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥ यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति । तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥ यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः । तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥ लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः । तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥ आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद । विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच । कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः । ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

दीख रहे हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ जैसे नदियोंके बहुतसे वेग समुद्रकी ओरको ही दौड़ते हुए वेगसे चलेजाते हैं तैसे ही ये मृत्युलोकके वीरपुरुष आपके अग्निकी समान मुखमें प्रवेश कररहे हैं २८ पतङ्गे जैसे अपने नाशके लिये बड़े वेगके साथ, धकर बलते हुए अग्निमें प्रवेश करते हैं तैसे ही सब लोक भी बड़े वेगसे अपने मरणके लिये आपके मुखमें प्रवेश कररहे हैं ॥ २९ ॥ हे विष्णु देव ! आप अग्निकी समान प्रकाशमान मुखोंसे सब लोकोंको निगल रहे हो और जबाड़ोंको चाटरहे हो, आपकी न रुकनेवाली कान्तियें अपने तेजसे सब जगत्को भर कर अत्यन्त प्रकाशमान कररही हैं ॥ ३० ॥ ऐसे उग्ररूपको धारण करनेवाले आप कौन हैं ? यह मुझसे कहिये, मैं आपको प्रणाम करता हूं, हे देवश्रेष्ठ ! मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये, मैं आदिपुरुष आपको जानना चाहता हूं ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि—हे अर्जुन ! इस युद्धमें मैं लोकोंका संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूं, और मैं लोकोंका संहार करनेवाला महाकाल हूं, शत्रुओंकी सेनाओंमें जो योधा खड़े हैं, इन सबोंमें एक तेरे सिवाय कोई भी जीता नहीं बचेगा ३२

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यं समृद्धं। मयैवैते निहता पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥ द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान्। मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेताऽसि रणे सपत्नान्॥३४॥ संजय उवाच।एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी। नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥ अर्जुनउवाच। स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च। रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः३६ कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोप्यादिकर्त्रे। अनन्त-

इस लिये तू युद्ध करनेके लिये खड़ा होजा, यश प्राप्त कर और शत्रुओंको जीत कर समृद्धिवाले राज्यको भोग, हे अर्जुन ! इन सबोंको मारनेका काम तुझे नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि मैंने इनको पहिले ही मार दिया है, तू तो इस समय निमित्तमात्र बन जा ॥ ३३ ॥ तू मनमें खेद न कर, किन्तु द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण और दूसरे वीर योधा कि—जिनको मैंने मार दिया है उनको तू मार और युद्ध कर, तू रणमें शत्रुओंको जीतेगा॥३४॥ सञ्जय कहता है कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णकी इस बात को सुनकर अर्जुन कांपने लगा और दोनों हाथ जोड़े हुए श्री-कृष्णजीको प्रणाम करके अत्यन्त भयभीत हो फिर प्रणाम करके अड़खड़ाती हुई वाणीसे फिर कहने लगा ॥ ३५ ॥ अर्जुन बोला—हे हृषीकेश ! आपके नामका कीर्त्तन करनेसे तथा आपकी श्रेष्ठ कीर्त्तिसे जगत् अत्यन्त प्रसन्न होता है और अनुराग करता है सो ठीक ही है आपकी कीर्त्तिको सुन राक्षस भयभीत होकर दशों दिशाओंमेंको भाग जाते हैं, सो ठीक ही है और सब सिद्ध आपको प्रणाम करते हैं, यह भी ठीक ही है ॥ ३६ ॥ हे महात्मन् ! बड़ोंमें भी बड़े और ब्रह्माके भी

देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥ त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् । वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥ वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च । नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥ नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व । अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥ सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति । अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वाऽपि ॥ ४१ ॥ यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि वि-

आदिकर्त्ता आपको वह क्यों न प्रणाम करें ? हे अनन्त ! हे देवेश्वर ! हे जगत्‌के निवासभूत ! आप अक्षर हो, सत् (कारण) और असत् (कार्य) हो तथा इन दोनोंसे भी पर हो ॥ ३७ ॥ तुम आदिदेव पुराणपुरुष हो, इस विश्वके परम लयस्थान हो हे अनन्तमूर्त्ति ! तुम वेत्ता (ज्ञाता) और वेद्य (जानने योग्य) हो, वेत्ता और वेद्यसे पर हो चैतन्यमूर्त्ति हो और तुमने सत्ता तथा स्फूर्त्तिसे इस जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है ॥ ३८ ॥ तुम वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति तथा ब्रह्मरूप हो, आपको नमस्कार है, सहस्रवार नमस्कार है और फिर भी वार२ नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे सर्वरूप ! कर्मोंके आरम्भमें मैं आपको नमस्कार करता हूं, कर्मोंके अन्तमें मैं आपको नमस्कार करता हूं, कर्मोंके मध्यमें भी मैं आपको नमस्कार करता हूं, हे अनन्त-वीरता वाले भगवन् ! हे अपार पराक्रम वाले भगवन् ! आप एक रूपसे ही सकल पदार्थोंमें व्याप रहे हो, इसकारण ही आप का नाम सर्व है ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! यह तो मेरा मित्र है, ऐसा मानकर तुम्हारे ऐसे प्रभावको न जाननेके कारण मैंने किसी दिन प्रमादसे तथा किसी दिन प्रेमसे अपना बड़प्पन दिखाते हुए जो हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! ऐसा कहा है तथा विहारके

हारशय्यासनभोजनेषु । एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥ पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् । न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥४३॥ तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् । पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥ अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे । तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥ किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टु-

---

समय, सोते समय, उठते बैठते समय, भोजन करते समय तथा हास्यविनोदमें आपका जो कुछ अपकार किया हो, तैसे ही अकेलेमें अथवा और मित्रोंके सामने मुझसे आपका जो अपमान हुआ हो, उसके लिये हे अप्रमेय अच्युत ! मैं आपसे क्षमा मांगता हूं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम इस स्थावर जङ्गमरूप जगत्के पिता, पूज्य और परमगुरु हो, तीनों लोकमें तुम्हारी समान दूसरा कोई भी नहीं है, फिर तुमसे अधिक तो होगा ही कहांसे, तुम्हारे प्रभावकी उपमा तो है ही नहीं ॥ ४३ ॥ तुम पिता हो, इस कारण शरीरको भूमि पर लिटा कर अर्थात् दण्डवत् प्रणाम करके मैं स्तुति करने योग्य ईश्वररूप आपको प्रसन्न करता हूं, हे देव ! जैसे पिता पुत्रके अपराधको सह लेता है, और जैसे मित्र मित्रके अपराधको सह लेता है, तैसे ही मेरे प्यारे आपको मुझ प्यारेका अपराध सह लेना योग्य है ॥ ४४ ॥ हे देव ! आपके पहिले न देखे हुए रूपको देख कर मैं प्रसन्न होगया हूं और साथमें ही आपके विकराल स्वरूपको देखनेसे उत्पन्न हुए भयके कारण मेरे मनमें पीड़ा भी हुई है, इस कारण हे देवेश ! आप मुझे वही पहिला सौम्यरूप दिखाइये और हे जगत्के निवासभूत देव ! मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ४५ ॥ मैं आपके किरीटधारी, गदावाले और हाथमें चक्र धारण करनेवाले

महं तथव। तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ४६ मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्। तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥ न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः। एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥ मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम्। व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य॥ ४९ ॥ संजय उवाच। इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः। आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥ अर्जुन उवाच।

रूपको देखना चाहता हूं, हे सहस्रों भुजाओंवाले! हे विश्वरूप! आप उसही रूपसे प्रकट हूजिये ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपनी शक्तिसे तुझे तेजस्वी विश्वमूर्त्ति, अनन्त और अनादि अपना परमस्वरूप दिखाया है, मेरे इस स्वरूपको तेरे सिवाय दूसरेने पहिले नहीं देखा था ४७ हे कुरुवंशी वीर! वेदोंको पढ़नेसे, यज्ञोंके करनेसे, अनेकों दान देनेसे, धर्मशास्त्रमें कहे हुए बावड़ी, कूप, तालाव आदि बनवानेसे तथा कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत आदि उग्र तपस्याओंके करनेसे भी मनुष्य लोकमें तेरे सिवाय दूसरा कोई भी मेरा ऐसे विराट-रूपमें दर्शन नहीं पासकता ॥ ४८ ॥ मेरे ऐसे घोर रूपको देख कर तुझे व्यथा और मोह न हो और तू निर्भय तथा प्रसन्न मन होकर, जिस रूपको देखना चाहता है, मेरे उस सौम्य रूपको देख ॥ ४९ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र! वासुदेव ने अर्जुनसे ऐसा कहकर फिर अपना मनुष्यरूप दिखाया अर्थात् अर्जुनने जिसको देखना चाहा था उस धारणाके विषय चतुर्भुज रूपको भी अन्तर्धान कर दिया, श्रीकृष्णजी महात्मा कहिये सर्व-व्यापक थे तो भी वह सौम्य शरीर कहिये अनुग्रहरूप शरीर को धारण करके भयभीत हुए अर्जुनको आश्वासन देने लगे

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन । इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥४१॥ श्रीभगवानुवाच । सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम । देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन चेज्यया । शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥ भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ ५४ ॥ मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः । निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नाम (एकादशोऽध्यायः) पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

॥ ५० ॥ तब अर्जुनने कहा कि—हे जनार्दन ! आपके शान्त गुणवाले मानुषी शरीरको देखकर मैं स्वस्थ हुआ हूं और मुझे होश भी आया है ॥ ५१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि–हे अर्जुन ! तूने मेरे जिस स्वरूपको देखा है, इस स्वरूपका दर्शन होना बड़ा ही दुर्लभ है, देवता भी नित्य इस स्वरूपके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥ ५२ ॥ तूने मुझे जिसप्रकार देखा है इस प्रकार वेद का अध्ययन करनेसे, चान्द्रायण आदि तप करनेसे, दान देनेसे और यज्ञ याग करनेसे भी लोग मुझे नहीं देख सकते ॥ ५३ ॥ हे परन्तप अर्जुन ! अनन्य भक्ति करै तो कोई मेरे इस विराट रूपका दर्शन पा सकता है तत्त्वरूपसे इसमें प्रवेश करसकता है ॥ ५४ ॥ हे पाण्डव ! जो पुरुष मेरे लिये ही कर्म करता है, जो मुझ परम पुरुषको ही पाने योग्य मानता है, जो मेरा भक्त होता है, जो सब ओरसे आसक्तिको हटा लेता है तथा जो किसी भी प्राणीके साथ वैरभाव नहीं रखता है वह मुझे पाजाता है ५५ पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुन उवाच । एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते । ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥१॥ श्रीभगवान् उवाच । मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते । श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥ ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते । सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः । ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥ क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि

अर्जुनने कहा, कि—हे भगवन् ! इसप्रकार जो भक्त निरन्तर आपकी प्राप्तिके साधनमें लगे रहकर आपकी उपासना करते हैं तथा जो अक्षर और अव्यक्त परमात्माकी उपासना करते हैं इनमें उत्तम योगको जानने वाले कौन हैं? ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि—जो भक्त नित्य उद्यत हो मेरे विषैं मनको लगाकर मेरी उपासना करता है तथा बड़ी श्रद्धा वाला होता है उसको मैं उत्तम योगका जानने वाला मानता हूं ॥ २ ॥ जिनकी बुद्धि चञ्चलता रहित है ऐसे जो पुरुष, सदा इन्द्रियोंके समूहको नियममें रखकर अक्षर, जिसको वाणीसे नहीं कहा जासकै ऐसे, अव्यक्त, सर्वव्यापक,विचारमें न आनेवाले, कूटस्थ, अचल और ध्रुव परमात्माकी उपासना करते हैं वह सकल प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले पुरुष मुझको पाते हैं ॥ ३ ॥ जो सदा इन्द्रियोंके समूहको वशमें रखकर अपनी बुद्धिको चञ्चलतारहित करते हैं और सकल प्राणियोंके हितमें लगे रहते हैं वह पुरुष मुझे प्राप्त होते हैं अर्थात् मेरी ही उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ जिनका मन अव्यक्त परमात्माके विषैं आसक्त होता है उनको क्लेश होता है, क्योंकि—आलम्बशून्य पदकी प्राप्ति देहाभिमानियोंको बड़े दुःखसे होती है ॥ ५ ॥ जो सब कर्मोंको मेरे अर्पण करके मेरे ध्यानमें परायण हो अनन्ययोगसे मेरा ध्यान

संन्यस्य मत्पराः । अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥ तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥ मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥ अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् । अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ ९ ॥ अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव । मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥ अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः । सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥ श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते । ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२॥ अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहंकारः

करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन मेरे विषैं मनको पिरो देने वाले पुरुषोंका हे पार्थ ! मैं थोड़े ही समयमें जन्ममरणरूपी संसार सागरमेंसे उद्धार कर देता हूं ॥ ६ ॥ ७ ॥ तू मुझमें ही मनको लगा, मुझमें ही बुद्धिको लगा, ऐसा करनेसे शरीरपात होजाने पर निःसन्देह मुझमें ही निवास करेगा ॥ ८ ॥ और यदि तू अपने चित्तको मेरे विषैं स्थिरताके साथ स्थापन नहीं कर सकता तो हे अर्जुन ! अभ्यास योगसे मुझे पानेकी इच्छा कर ॥ ९ ॥ यदि तू अभ्यास करनेमें भी असमर्थ हो तो मेरे निमित्त कर्म करनेमें तत्पर हो, यदि तू मेरे निमित्तसे कर्म करेगा तो सिद्धिको पाजायगा ॥ १० ॥ और यदि ऐसा करनेमें भी असमर्थ हो तो मेरी कथा आदि श्रवण करनेमें निष्ठा रख और नियमोंको धारण करके तथा चित्तको जीतकर सब प्रकारके कर्मोंके फलको त्यागदे ॥ ११ ॥ अभ्यासकी अपेक्षा श्रवण मननसे प्राप्त हुआ ज्ञान श्रेष्ठ है और श्रवण मननसे उत्पन्न हुए ज्ञानकी अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यानसे कर्मके फलका त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि-त्यागके अनन्तर तुरन्त ही शान्ति मिलती है ॥ १२ ॥ सकल प्राणियोंसे द्वेष न करनेवाला, मित्रताके गुणों

समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥ सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥ यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥ अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः । सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥ यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति । शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥ समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥ तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येनकेचित् ।

वाला, दयालु, ममतारहित अहङ्कारशून्य, सुख दुःखको समान माननेवाला, क्षमावान्, सदासन्तोषी, योगी, मनको नियममें रखने वाला, दृढ़ निश्चयवाला, मन और बुद्धि मुझे अर्पण करनेवाला, ऐसा जो मेरा भक्त है वह मुझे प्यारा लगता है ॥१३ ॥ १४ ॥ जिससे लोग नहीं घवड़ाते हैं और जो लोगोंसे नहीं घवड़ाता है तथा जो हर्ष, शोक, भय और व्याकुलतासे मुक्त है वह मुझे प्यारा है ॥ १५ ॥ किसी प्रकारकी भी चाहना न करनेवाला, पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथारहित तथा किसी भी कामका आरम्भ न करनेवाला जो मेरा भक्त है वह मुझको प्यारा है ॥ १६ ॥ जो किसी वस्तुको पाकर हर्ष नहीं मनाता, किसीसे द्वेष नहीं करता है, किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता है, शुभ और अशुभ दोनों कर्मोंका त्याग करता है तथा भक्तिमान् है वह मुझे प्यारा है ॥ १७ ॥ जो शत्रु और मित्रके साथ एकसा वर्त्ताव करता है, मान और अपमानको समान गिनता है, शीत और गरमी तथा सुख और दुःखको भी समान मानता है, सङ्गसे वचता है, निन्दा और स्तुतिको समान मानता है, मुनिरूपसे रहता है जो कुछ मिल जाय उससे ही सन्तुष्ट रहता है, कहां घर करके नहीं रहता है, बुद्धिको स्थिर रखता है

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥ ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते । श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम (द्वादशोऽध्यायः) षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अर्जुन उवाच । प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च । एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव॥ १॥श्रीभगवानुवाच।इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥ १॥ क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥ तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् । स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥ ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् । ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्वि-

और भक्तिमान् है वह पुरुष मुझे प्रिय है ॥ १८ ॥ १९ ॥ जो भक्त शास्त्रमें कहे हुए इस धर्मरूप अमृतकी उपासना करते हैं और श्रद्धाके साथ मेरे ध्यान आदिमें ही लगे रहते हैं वह भक्त मुझे बड़े ही प्यारे हैं ॥ २० ॥ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥३६॥

अर्जुनने कहा, कि—हे केशव ! मैं प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञान और ज्ञेयको जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि हे कुन्तीनन्दन ! यह शरीर क्षेत्र नामसे कहा जाता है और जो इस क्षेत्रको जानता है उसको विद्वान् क्षेत्रज्ञ कहते हैं ॥ १ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सब क्षेत्रोंमें तू मुझे क्षेत्रज्ञ जान, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका जो ज्ञान है वह मेरे विषैका ज्ञानहै, ऐसा मेरा मत है ॥ २ ॥ उस क्षेत्रका स्वरूप, उसका प्रकार, उसके विकार और उस क्षेत्रके अवयवोंमेंसे जो उत्पन्न होता है उसको सुन, तथा वह क्षेत्र जो कुछ है और उसके स्वभावको भी तू संक्षेपमें मुझसे सुन ॥ ३ ॥ जिसको ऋषियोंने भी बहुत प्रकारसे

निश्चितैः ॥ ४ ॥ महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इन्द्रियाणि दशैकञ्च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥ इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः । एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ६ अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥ असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥ मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥ ज्ञेयं यत्तत्प्रव-

---

गाया है अनेकों वेदमंत्रोंने भी बहुत प्रकारसे गाया है तथा हेतुवाले और निश्चयवाले परब्रह्मके स्वरूपको दिखाने वाले वेदवचनोंके भी गाये हुए क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके स्वरूपको तू सुन ॥ ४ ॥ पांच महाभूत, अहङ्कार, बुद्धि, अव्यक्त, पांच ज्ञानेन्द्रियें, पांच कर्मेन्द्रियें तथा शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध ये पांच विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात, चेतना और धृति इतने विकारों वाला क्षेत्र है, यह बात मैंने तुझसे संक्षेपमें कही है ॥ ५ ॥ ६ ॥ अमानीपन, दम्भी न होना, अहिंसा, क्षमा, आर्जव (सरलता), आचार्यकी सेवा, शौच, स्थिरता, आत्मनिग्रह, इन्द्रियोंका विषयोंके ऊपर वैराग्य, निरहङ्कारीपना, जन्म, मृत्यु, जरा (बुढ़ापा), व्याधि, दुःख (और दीनता आदि) दोषोंको देखना अर्थात् इनमेंकी हर एक वस्तुके ऊपर अभाव, पुत्र स्त्री घर आदिके ऊपर ममत्व न होना, प्रिय तथा अप्रिय वस्तुके प्राप्त होने पर सदा चित्तकी समानता, मुझमें अनन्ययोग से अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्तस्थानमें निवास, मनुष्योंके समाज पर अरुचि, अध्यात्मज्ञानके ऊपर सदा निष्ठा, तत्त्वज्ञानके प्रयोजनके लिये शास्त्रको देखना, इतने ज्ञानके साधन हैं तथा इनके सिवाय और ज्ञानके विरोधी हैं ॥ ७-११ ॥ अब जो ज्ञेय वस्तु है उस

च्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते । अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥ सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥ बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च । सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १५ ॥ अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् । भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

को कहूंगा, मनुष्य जिस वस्तुको जानकर अमृत(मोक्ष)को भोगता है वह अनादिमान् ज्ञेय ब्रह्म सत् भी नहीं कहलाता है और असत् भी नहीं कहलाता है॥१२॥ज्ञेय परमात्माके हाथ और पैर, बाहर तथा भीतर सर्वत्र व्यापक हैं, उसके नेत्र, मस्तक और मुख भी सर्वत्र व्यापक हैं, उसके कान भी सर्वत्र व्यापक हैं तथा वह ज्ञेय सब जगत् भरको व्याप कर स्थित है॥१३॥परमात्मा बाहर तथा भीतर सकल इन्द्रियों रूपसे तथा उनके विषयरूपसे प्रकाशमान होने पर भी सकल इन्द्रियें और उनके विषयोंसे रहित है, सबके साथ सम्बन्धरहित होने पर भी सबको धारण करने वाला और गुणोंसे रहित होने पर भी गुणोंका भोक्ता है ॥ १४ ॥ प्राणियों की पांच ज्ञानेन्द्रियें, पांच कर्मेन्द्रियें और ग्यारहवां मन तथा पञ्च महाभूत ये बाहरी तत्त्व कहलाते हैं और महत्तत्त्व, अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्रा भीतरी तत्त्व कहलाते हैं और ये जाने जा सकते हैं, स्थावर तथा जङ्गमरूप यह जगत् भी जाननेमें आ सकता है परन्तु ब्रह्म ज्ञेय नहीं है अर्थात् जाननेमें नहीं आसकता वह विवेकी पुरुषोंके समीपमें है परन्तु अविवेकियोंसे दूर अर्थात् अविवेकी उसको नहीं जान सकते ॥ १५ ॥ ब्रह्म प्राणियोंके साथ अविभक्त (एकीभाव) रूपसे रहने पर भी मानो विभक्त (दूर रहता हो ऐसा) स्थित है तथा सब प्राणियोंका पोषण करने वाला, नाश करने वाला और उत्पन्न करने वाला है ॥ १६ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥ इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः। मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि। विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९॥ कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥ पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्। कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥ उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः। परमात्मेति चाप्युक्तं देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥ य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह। सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥ ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये सांख्येन

वह ब्रह्म तेजस्वी पदार्थोंका भी प्रकाशक और अज्ञानसे दूर है, ऐसा वेद आदि शास्त्रोंमें कहा है, वह ज्ञानरूप है, ज्ञेयरूप है और ज्ञानके साधनोंसे जाननेमें आता है तथा सबके हृदयोंमें वास करके रहता है ॥ १७ ॥ इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञेय तुझसे संक्षेपमें कहा, मेरा भक्त इसको जानकर मेरे स्वरूपको पाता है ॥१८ ॥ प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको ही अनादि जान और विकार तथा गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं यह भी जान ॥ १९ ॥ कार्य और कारणको उत्पन्न करनेमें प्रकृति हेतु कहलाती है और पुरुष सुख तथा दुःखको भोगनेमें हेतु कहलाता है ॥ २० ॥ पुरुष प्रकृतिमें रहता हुआ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणों को भोगता है, इसका उत्तम तथा अधम योनियोंमें जन्म होता है, इसका कारण गुणोंका सङ्ग है ॥ २१ ॥ इस देहमें उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्त्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा परमपुरुषको कहाजाता है ॥ २२ ॥ जो पुरुष इसप्रकार पुरुषको तथा गुणोंके साथ प्रकृतिको जानता है वह सब प्रकारसे कर्म करने पर भी फिर जन्म धारण नहीं करता है ॥ २३ ॥ कितने ही ध्यानसे

योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥ अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते। तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥ यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्। क्षेत्र क्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥ समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥ समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्। न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥ प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः। य पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥ यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति। तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा

अपने देहमें बुद्धिके द्वारा परमात्माको देखते हैं, कितने ही सांख्ययोगसे देहमें परमात्माका दर्शन करते हैं और कितने ही कर्मयोगसे देहमें परमत्माका दर्शन करते हैं॥२४॥ दूसरे, जो कि—ऊपर कहे उपायको नहीं जानते हैं वह दूसरोंसे सुनकर परमात्माकी उपासना करते हैं, वह श्रवण करनेमें लगे रहने वाले पुरुष भी मृत्युको तर जाते हैं ॥२५॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन! स्थावर जङ्गमरूप जो कोई भी जीव इस जगत्में जन्म लेते हैं वह क्षेत्र क्षेत्रज्ञके संयोजकके संयोगसे जन्म लेते हैं ऐसा जान ॥ २६ ॥ सब प्राणियोंमें समानरूपसे रहनेवाले तथा सबका नाश होने पर भी अविनाशीरूपसे परमेश्वरको जो देखता है वही देखनेवाला है ॥ २७ ॥ जो पुरुष सर्वत्र (देहमात्रमें) समानभावसे रहनेवाले ईश्वरको समभावसे देखता है वह पुरुष आत्मासे (देहसे) आत्माकी हिंसा नहीं करता है, किन्तु परमगतिको पाता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष ऐसा देखता है, कि—सब कर्म प्रकृति ही करती है वह पुरुष आत्माको अकर्त्ता देखता है ॥ २९ ॥ प्रलयके समय स्थावर जङ्गमरूप अनेकों प्रकारके प्राणी एक परमेश्वरमें ही रहते हैं और सृष्टिके समय फिर उसमेंसे ही निकल कर फैल जाते हैं, इस बातको जब पुरुष जान लेता है तब

॥३०॥ अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः । शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥ यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते । सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ३२ यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा । भूतप्रकृतिमोक्षञ्च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागो नाम
(त्रयोदशोध्यायः) सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

श्रीभगवान् उवाच । परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।

परब्रह्मके स्वरूपको प्राप्त होजाता है ॥ ३० ॥ जो वस्तु उत्पन्न होती है उसका नाश होता है और जिस वस्तुमें गुण रहता है वह गुणका नाश होने पर नष्ट होजाती है, परन्तु परमात्मा अनादि और गुणरहित होनेके कारण अविनाशी है, इसलिये हे कुन्तीनन्दन! आत्मा शरीरमें रहने पर भी न कुछ करता है न लेपायमान ही होता है ॥ ३१ ॥ जैसे सब जगह रहनेवाला आकाश सूक्ष्म और असङ्ग होनेके कारण लेपायमान नहीं होता है तैसे ही सबके देहोंमें रहता हुआ आत्मा भी लेपायमान नहीं होता है॥३२॥ जैसे एक सूर्य इस सब लोकको प्रकाशित करता है तैसे ही हे भारत! एक क्षेत्री सब क्षेत्रोंको प्रकाशित करता है ॥ ३३ ॥ जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके इसप्रकारके अन्तरको ज्ञानदृष्टि से जानते हैं और आकाश आदि भूतोंकी कारणरूप अविद्याके द्वारा मोक्ष करना जानते हैं वह पुरुष परब्रह्मको पाते हैं ॥ ३४ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ छ ॥

श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे सखे! मैं तुमसे ज्ञानोंमें उत्तम परम ज्ञान फिर कहूंगा, जिसको जानकर सब मुनि इस लोकमें

यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥ इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः । सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥ मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् । संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥ सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः । तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः । निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥ तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् । सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ ६ ॥ रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् । तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥ तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।

से परमसिद्धिको पागये हैं ॥ १ ॥ इस ज्ञानका आश्रय लेकर मेरी समानताको पागये हैं, इतना ही नहीं किन्तु वह सृष्टिके आरम्भ में जन्म धारण नहीं करते हैं तथा प्रलयकालमें पीड़ा नहीं पाते हैं मेरे प्रवेशके स्थान महत्तत्त्वरूप प्रथम कार्यका विस्तार करने वाली त्रिगुणमयी माया है, उसमें मैं गर्भ धारण करता हूं और हे भरतवंशी राजन् ! उससे महत्तत्त्व आदि सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! उपादान कारणरूप सब भूतों के विषे जो शरीर उत्पन्न होते हैं, उन शरीरोंका कारण महत्तत्त्वका विस्तार करनेवाली माया है और उसमें बीज रोपने वाला मैं हूं ॥ ४ ॥ सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं, हे महाबाहु अर्जुन ! वह गुण देहमें रहनेवाले अविनाशी जीवको बाँधते हैं ॥ ५ ॥ हे निर्दोष अर्जुन ! उन गुणोंमें सत्त्वगुण निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला है, और रजोगुण तथा तमोगुण उसका पराजय नहीं करसकते, वह जीवात्माको सुखके सङ्गसे तथा ज्ञानके सङ्गसे बांधता है ॥६॥ रजोगुणको तू रञ्जनरूप जान, वह तृष्णा और सङ्गसे उत्पन्न होता है, हे कुन्तीनन्दन ! वह रजोगुण कर्मके सङ्गसे देहाभिमानी जीवात्माको बाँधता है ॥ ७ ॥ तमोगुण अज्ञानसे उत्पन्न होता

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥ सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत । ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ ९ ॥ रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत । रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥ सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते । ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥ लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा । रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥ अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च । तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥ यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् । तदोत्तमविदां लोकान-

है और वह सब प्राणियोंको मोहित करने वाला है ऐसा जान, हे भरतवंशी राजन् ! वह तमोगुण प्रमाद, आलस्य और निद्रामें देहाभिमानी जीवको बाँधता है ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सत्त्वगुण विशेष होय तो वह देहाभिमानी जीवको सुखमें जोड़ता है, रजोगुण विशेष होय तो कर्ममें जोड़ता है, और तमोगुण अधिक होय तो वह ज्ञानको ढककर देहाभिमानी जीवको प्रमाद से जोड़देता है ॥ ९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! किसी समय सत्त्वगुण रजोगुणको दबाकर बढ़ जाता है, कभी रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुणको दबाकर बढ़जाता है और कभी तमोगुण सत्त्वगुण और रजोगुणको दबाकर बढ़जाता है, उस समय वे गुण अपना२ काम करते हैं॥१०॥जब इस शरीरमें बाहरी तथा भीतर के विषयोंको जाननेकी साधनरूप इन्द्रियोंमें प्रकाश और उससे ज्ञान होता हो उस समय सत्त्वगुणको बढ़ा हुआ जाने ॥ ११ ॥ हे भरतसत्तम ! जब रजोगुणकी वृद्धि होती है तब लोभ, प्रवृत्ति, कर्मोंका आरम्भ, एकके ऊपर एक काम करनेकी इच्छा और स्पृहा इतने विषयोंकी ओरको वृत्ति होती है ॥ १२ ॥ हे कुरुनन्दन ! जब तमोगुणकी वृद्धि होती है तब प्रकाशका अभाव, रजोगुणके कामकी प्रवृत्ति न होना, प्रमाद और मोह होता है १३. जिस समय सत्त्वगुण बढ़ रहा हो, उस समय यदि देहधारी

मलान् प्रतिपद्यते ॥१४॥ रजसि प्रलयं गत्वा कर्म सङ्गिषु जायते । तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥ कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् । रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥ सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च । प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥ ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥ नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति । गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥ गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् । जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतम-

आत्मा मरण पावे तो वह हिरण्यगर्भकी उपासना करने वाले देवताओंके निर्मल लोकमें जाता है ॥ १४ ॥ रजोगुणकी वृद्धिके समय यदि जीवात्मा मरण पावै तो वह श्रौत स्मार्त्त कर्म करने वाले मनुष्योंमें जन्म धारण करता है और तमोगुणकी वृद्धि के समय यदि जीवात्माका मरण होय तो वह पशु, पक्षी स्थावर अथवा चाण्डाल आदिमें जन्म धारण करता है।१५सात्त्विक कर्मका फल निर्मल कहिये दुःख और अज्ञानके मलसे रहित ज्ञान वैराग्य आदि है, रजोगुणी कर्मका फल दुःख है और तमोगुणी कर्मका फल अज्ञान है, ऐसा ऋषियोंने कहा है ॥१६॥ सत्त्वगुणी कर्मसे ज्ञान होता है,रजोगुणी कर्मसे लोभ होता है और तमोगुणी कर्मसे प्रमाद मोह तथा अज्ञान ही उत्पन्न होता है १७ सत्त्वगुणी पुरुष स्वर्गमें जाते हैं, रजोगुणी पुरुष मर्त्यलोकमें जाते हैं, और नीच गुणोंकी वृत्तिमें रहनेवाले तमोगुणी पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥१८॥ द्रष्टा जीवात्मा जब गुणोंको छोड़कर दूसरेको कर्त्तारूपसे नहीं देखता है (नहीं जानता है) और मुझे गुणोंसे पर जानता है वह पुरुष मेरे भावको (ब्रह्मभावको) प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ देहधारी आत्मा स्थूल देहको उत्पन्न करनेवाले इन सत्त्वादि तीन गुणोंके पार होजाता है और वह जन्म,मरण तथा वृद्धावस्था

श्नुते ॥ २० ॥ अर्जुन उवाच । कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो । किमाचारः कथञ्चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्त्तते ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच । प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव । न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२ ॥ उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते । गुणा वर्तन्त इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥ समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः । तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥२४॥मानापमानयोस्तुल्यो तुल्यो मित्रारिपक्षयोः । सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥ मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते । स गुणान्

के दुःखोंमें से छूटकर मोक्षको पाता है ॥ २० ॥ अर्जुनने कहा, हे प्रभो ! पुरुष किन चिन्होंसे इन तीनों गुणोंके पार हुआ माना जाता है ? उसका आचरण कैसा होना है? और जीवात्मा इन तीनों गुणोंके पार कैसे हो सकता है ? ॥ २१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि–हे पाण्डव ! जो पुरुष प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह इन तीनों प्रवृत्तियोंके कर्मोंसे द्वेष नहीं करता है तथा निवृत्तिके कर्मोंकी इच्छा भी नहीं रखता है वह गुणातीत कहिये तीनों गुणोंके पार हुआ मानाजाता है २२ जो उदासीनकी समान बैठा रहता है, जो गुणोंसे चलायमान नहीं होता है तथा गुण अपना काम करते हैं, ऐसा विचार कर स्तब्धसा (कीला हुआसा) बैठा रहता है अर्थात् विचलित नहीं होता है वह गुणातीत कहलाता है ।२३॥ जिसको सुख दुःख समान होते हैं, जो स्वस्थ होता है, जिसको मट्टीका ढला पत्थर और सोना समान होते हैं, प्रिय और अप्रिय समान होते हैं, जो धीर होता है,जो अपनी निन्दा और स्तुतिको समान मानता है वह गुणातीत कहलाता है ॥ २४ ॥ जो मान, अपमान, मित्र और शत्रुको समान मानता है और किसी प्रकार के भी कार्यका आरम्भ नहीं करता है वह गुणातीत कहलाता है ॥ २५ ॥ जो साधक पुरुष अटल भावसे मेरी सेवा करता हो

समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च। शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥२७॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम
(चतुर्दशोऽध्यायः) अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच। ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥ अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः। अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥ न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा। अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ॥ ३ ॥ ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं

वह इन गुणोंको लाँघकर परब्रह्मरूप होनेके योग्य होजाता है ॥ २६ ॥ अमृत और अव्ययरूप वेदकी प्रतिष्ठा भी मैं ही हूं और अवश्य ही सदा रहनेवाले ऐकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा भी मैं ही हूं ॥ २७ ॥ अड़तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ छ ॥

श्रीभगवान्ने कहा, कि—जिसकी मूल ऊपरको है, जिसकी शाखा नीचेको हैं तथा वेद जिसके पत्ते हैं ऐसे अश्वत्थ (पीपल) को अव्यय कहते हैं और जो उसको जानता है वह वेदवेत्ता है ॥ १ ॥ उस अश्वत्थ (सदा चलायमान रहने वाले संसाररूप) वृक्षकी शाखायें ऊपर तथा नीचे फैली हुई हैं, गुणोंके द्वारा अत्यन्त बढ़ी हुई हैं, उनमें विषयरूपी कोमल पत्ते लगे हुए हैं और जिनके पीछे कर्म लगे हुए हैं ऐसी उस वृक्षकी जड़ें मनुष्यलोकमें तथा नीचेके भागमें बराबर फैली हुई हैं ॥ २ ॥ इस लोकमें इस संसारवृक्षका रूप उसका अन्त तथा आदि और उसके लयका स्थान इनमेंका कोई भी जानने में नहीं आता है, इस अतिगहरी जड़वाले संसाररूपी अश्वत्थ वृक्षको असङ्गरूप दृढ़ शस्त्रसे काट डाल ॥ ३ ॥ संसाररूप वृक्षको काट डालने पर

यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः । तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥ निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः । द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥ न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः । यद्द गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्पति ॥ ७ ॥ शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः । गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८ ॥ श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं

जिस पदको प्राप्त हुए पुरुष फिर लौट कर नहीं आते हैं उस परमपदको खोजना चाहिये, मैं उस ही आदि पुरुषकी शरण लेता हूं, कि—जिस पुरुषसे पुराणी प्रवृत्ति (जगत्की उत्पत्ति) प्रवृत्त हुई है ॥ ४ ॥ मान और मोहरहित, सङ्ग और दोषको जीतनेवाले, सदा आत्माका विचार करनेवाले, जिनकी कामनायें निवृत्त होगयी हैं ऐसे सुख और दुःख नामके द्वन्द्वोंसे मुक्त तथा ब्रह्मविद्यासे अज्ञानका नाश करने वाले विवेकी पुरुष उस अविनाशी पदको पाते हैं ॥ ५ ॥ उस मेरे धामको सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाशित नहीं करसकते तथा जहां पहुंचकर पीछेको लौटना नहीं पड़ता है वह मेरा धाम है॥६॥इस जीवलोकमें सनातन जीव मेराही अंश है और जीवभूत वह ईश्वर,जिनमें छठा मन है और जो विषयोंमें वास करती हैं ऐसी पांच इंद्रियोंको खेंचता है ॥७॥ देह आदि समूहका स्वामी जीव नामक उपाधिवाला ईश्वर, जब शरीरमेंसे बाहर निकलता है तब वह जिनमें छठा मन है ऐसी पाँचों इन्द्रियोंको खेंचकर लेजाता है और वह जब दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है तब जैसे वायु फूलमेंसे सुगन्धको हर कर लेजाता है तैसे ही वह मन और पांचों ज्ञानेन्द्रियोंको साथ लेकर प्रवेश करता है ॥ ८ ॥ जीव श्रोत्र (कान) नेत्र, त्वचा जिव्हा और नासिका इन पाँच इन्द्रियोंको तथा छठे मनको व्यापार वाला

च रसनं घ्राणमेव च । अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥
उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् । विमूढा नानु-
पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥ यतन्तो योगिनश्चैनं पश्य-
न्त्यात्मन्यवस्थितम्। यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः११
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ
तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥ गामाविश्य च भूतानि धारया-
म्यहमोजसा । पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।

करके विषयोंको भोगता है ॥ ९ ॥ जिनमें छठा मन है ऐसी पाँच
ज्ञानेन्द्रियोंका तथा प्राणका अधिष्ठाता होकर, उनके निकलने पर
निकलने वाला, उनकी स्थिति पर स्थिति करने वाला, उनके
भोगसे भोग करने वाला, उनके सत्त्व आदि गुणोंके साथसे
गुणों वालासा प्रतीत होनेवाला और घड़ेके गमन आदिसे घड़ेमें
पड़ेहुए सूर्यके प्रतिबिम्बकी समान अथवा घड़ेमेंके आकाशकी
समान गतिवाला आदि प्रतीत होनेवाला, परन्तु वास्तवमें उत्क्र-
मण आदि (निकलना प्रवेश करना आदि) क्रियासे रहित
जीवात्माको मूढ पुरुष नहीं जानते हैं, ज्ञानदृष्टिवाले ही जानते हैं
अर्थात् उत्क्रमण आदि क्रियाएं उपाधिकी हैं, उपाधिवालेकी नहीं
हैं ॥ १० ॥ प्रयत्न करने वाले योगी, बुद्धिमें रहनेवाले विभु पर-
मात्माको उत्क्रमण आदिसे रहित जानते हैं, परन्तु प्रयत्न करते
रहने पर भी जिनका मन यज्ञ आदि कर्मोंसे शुद्ध नहीं हुआ है
तथा जिन्होंने मनको जीता नहीं है ऐसे पुरुष इस परमात्माके
स्वरूपको नहीं देख (जान) सकते ॥ ११ ॥ सूर्यमें रहनेवाला
जो तेज सब जगत्को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है
और जो तेज अग्निमें है वह तेज मेरा ही है, ऐसा जान ॥१२॥
मैं स्वयं पृथिवीमें घुसकर बलसे प्राणियोंको धारण करता हूं
और मैं ही जलात्मा चन्द्रमा होकर सब ओषधियोंका भी पोषण

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥ सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेद-विदेव चाहम् ॥ १५ ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥ यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत १९ इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ। एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान्

करता हूं ॥ १३ ॥ मैं वैश्वानर नामका अग्नि होकर प्राणियोंके देहोंके आश्रयसे रहता हूं और प्राण तथा अपानके साथ मिल कर चार प्रकारके अन्नको पचाता हूं१४ और मैं सब प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करके रहता हूं, इसलिये मुझसे प्राणियोंको स्मृति, ज्ञान तथा विस्मरण होता है,सब वेदोंके द्वारा जानने योग्य मैं हूं. वेदान्तमें कही हुई ब्रह्मविद्याका संप्रदाय चलानेवाला तथा वेदका अर्थ जाननेवाला मैं ही हूं १५ इस जगत्में क्षर और अक्षर ये दो पुरुष हैं, सब प्राणी क्षर हैं और कूटस्थ अक्षर कहलाता है ॥१६॥ कार्य तथा कारणरूप उपाधिसे भिन्न जो उत्तम पुरुष है उसको शास्त्रमें परमात्मा नामसे कहा है, जो ईश्वर तीनों लोकमें प्रवेश करके शरीरको धारण करता है तो भी अविनाशी है ॥ १७॥ क्योंकि--मैं क्षरके पार हूं तथा अक्षरसे भी उत्तम हूं, इसलिये लोक में तथा वेदमें मैं पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूं ॥ १८॥ हे भारत ! सन्देह तथा विपरीत ज्ञानसे रहित जो पुरुष ऊपर कहेहुए मेरे स्वरूपको जानता है उसको सर्वज्ञ जान और वह पूर्णभावसे मेरी भक्ति करता है ॥१९॥ हे निर्दोष अर्जुन ! यह अत्यन्त गुप्त शास्त्र

स्यात् कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम (पंचदशोऽध्यायः) एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच । अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः । दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥ अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् । दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता । भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥ दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च । अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ ४ ॥ दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता । मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥ द्वौ भूतसर्गौ लोके-

मैंने तुझसे कहा, हे भारत ! जिसको जानकर मनुष्य बुद्धिमान् और कृतार्थ होता है ।.२०॥ उनतालीसवां अध्याय समाप्त ॥३९॥

श्रीभगवान् कहते हैं, कि-हे अर्जुन ! अभय अन्तःकरणकी शुद्धि, ज्ञान और योगमें स्थिति, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, आर्जव, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपिशुनता, प्राणियोंके ऊपर दया, अलोभीपना, कोमलता, लज्जा, चपलता न होना, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, द्रोह न करना और निरभिमानीपना, इस दैवी सम्पत्तिके लिये जो जन्मा हो उसमें यह दैवी सम्पत्तियें स्वभावसे ही होती हैं ॥ १-३ ॥ हे पृथानन्दन ! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान ये आसुरी सम्पत्तियें भी जिसके लिये उत्पन्न हुई होती हैं उसको स्वभावसे ही प्राप्त होजाती हैं ॥ ४ ॥ दैवी सम्पत्ति मोक्षके लिये मानीगयी है और आसुरी सम्पत्ति बन्धनके लिये मानी गयी है, हे पाण्डव ! तू शोक न कर, क्योंकि- तू दैवी-सम्पत्ति के लिये उत्पन्न हुआ है ॥ ५ ॥ इस लोकमें प्राणियोंका दो

ऽस्मिन्दैव आसुर एव च । दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥ प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः । न शौचं नापि चाचारो न सत्यंतेषु विद्यते ॥ ७ ॥ असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् । अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥ एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः । प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥ काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः । मोहाद् गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥ चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः । कामोपभोगपरमा एता-

---

प्रकारका स्वभाव होता है, उसमें दैवी स्वभाववाले प्राणियोंके विषयमें विस्तारसे कह दिया, अब आसुरी सम्पत्तिवाले प्राणियोंके विषयमें मुझसे सुन ॥ ६ ॥ आसुरी सम्पत्तिवाले पुरुष प्रवृत्ति कहिये वेदमें कही हुई विधिको नहीं जानते हैं तथा निवृत्ति कहिये निषेधवाक्यको भी नहा जानते हैं तथा उनमें शौच, आचार वा सत्यभाषण भी नहीं होता है ॥ ७ ॥ वह जगत्की उत्पत्तिके विषयमें कहते हैं, कि–जगत् मिथ्या है, इसमें धर्माधर्मका आश्रय लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है तथा इसका नियन्ता कोई ईश्वर भी नहीं है, यह एक दूसरेकी क्रियासे बीज और अंकुरकी समान उत्पन्न होजाता है और इसकी उत्पत्ति स्त्री पुरुषोंके सहवाससे होती है, उसमें दूसरा और कोई भी कारण नहीं हैं, ऐसे विचारका आश्रय लेकर जिनका धीरज नष्ट होगया है ऐसे दीखनेवाले सुखको ही सत्य माननेवाले उग्र कर्म करनेवाले, जिसको पूरा न करसकें ऐसे कामका आश्रय लेकर दंभ, मान और मदमें भरे हुए, मोहके कारण नीच काम करनेकी हठ पकड़े हुए और उसके लिये अपवित्र व्रत करनेवाले, हिंसक आसुरी जीव जगत्का नाश करनेके लिये प्रवृत्ति किया करते हैं ॥ ८–१० ॥ मरणकाल तक बड़ी भारी चिंता करनेवाले काम (इच्छित वस्तु)

इतीति निश्चिताः॥११॥ आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः। ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥ १२ ॥ इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् । इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥ असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि । ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥ १४ ॥ आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया । यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥ अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥ आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च

के भोगको ही पुरुषार्थ माननेवाले, शरीर और कामभोगके सिवाय और कुछ है ही नहीं' ऐसा निश्चय कर बैठनेवाले, सैंकड़ों आशाओं की फांसीमें बँधेहुए, काम क्रोधमें सने हुए आसुरी जीव, कामभोग के लिये अन्यायसे धनके ढेर इकट्ठे करना चाहते हैं॥ ११ ॥ १२॥ आज मुझे यह वस्तु मिली, अब मेरा यह मनोरथ सिद्ध होगा, मेरे पास इतना धन तो है, अब मुझे और धन भी मिलेगा, ॥ १३ ॥ इस शत्रुको तो मैंने मारडाला अब दूसरे शत्रुओंको भी मारडालूंगा, मैं ईश्वर (समर्थ) हूं, मैं भोगी हूं, मैं सिद्ध हूं, मैं बलवान् हूं, और मैं सुखी हूं ॥ १४ ॥ मैं धनाढ्य हूं और मैं कुलीन हूं, मेरी समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूंगा और आनन्दमें रहूंगा ऐसे अज्ञानसे मोहित हुए ॥ १५ ॥ और अनेकों विषयोंमें आसक्त होनेके कारण भ्रान्त चित्तवाले, मोहरूपी जालसे अच्छे प्रकार लिपटे हुए और कामनाओंके उपभोगमें बँधे हुए आसुरी जीव अपवित्र नरकमें पड़ते हैं ॥ १६ ॥ आप ही अपनेको बड़ा मानने वाले किसीको भी न नमनेवाले, धनके अभिमानी तथा मदमें भरेहुए पुरुष दंभसे बिना विधिके नाममात्रके यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करते हैं॥ १७॥ वह अहङ्कार

संश्रिताः । मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥ तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् । क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥ आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥ त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥ एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः । आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥ यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या-

---

बल, दर्प काम और क्रोधका आश्रय लेनेवाले होते हैं, अपने तथा दूसरोंके देहमें रहनेवाले मुझसे द्वेष करते हैं तथा गुणोंमें दोष लगाते हैं॥ १८ ॥ ऐसा अपनेसे और दूसरोंसे द्वेष करने वाले क्रूर, मनुष्योंमें अधम और अशुभ मनुष्योंको मैं वारम्वार आसुरी योनियोंमें ही जन्म दिया करता हूं ॥ १९ ॥ हे कुन्ती-नन्दन ! आसुरी योनियोंको प्राप्त हुए मूढ़पुरुष जन्म जन्ममें मुझे नहीं पाते हैं और इसकारणसे ही नरकसमान कष्टप्रद पशु पक्षी, स्थावर आदि योनिरूप अधम गतिको पाते हैं ॥ २० ॥ काम, क्रोध और लोभ ये तीनों आत्माका नाश करनेवाले नरक के द्वार हैं, इस कारण इन तीनोंको त्याग देना चाहिये ॥ २१ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! नरकके द्वाररूप इन तीनोंसे मुक्त होकर जो पुरुष अपना कल्याणसाधन करता है वह परमगतिको पाता हैं ॥२२॥ जो पुरुष शास्त्रमें बतायी हुई विधिको छोड़कर अपनी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करता है वह सिद्धिको नहीं पाता है, सुखको नहीं पाता है तथा परमगतिको भी नहीं पाता है ॥ २३ ॥ इसलिये करने योग्य तथा न करनेयोग्य कर्मकी व्यवस्थामें तुझे शास्त्रको प्रमाण मानना चाहिये और शास्त्रमें तथा विधिमें कहेहुए कर्मको

कार्येण्यवस्थितो ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥२४॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभाग-
योगो नाम (षोडशोऽध्यायः) चत्वारिंशोऽध्यायः ४०

अर्जुन उवाच । ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥ त्रिविधा
भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा । सात्त्विकी राजसी चैव
तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥ सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति
भारत । श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥
यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः । प्रेतान् भूतगणां-
श्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥ अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते

जानकर वह कर्म अवश्य ही करना चाहिये ॥ २४ ॥ चालीसवां
अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ छ ॥ छ ॥

अर्जुनने पूछा, कि—हे कृष्ण ! जो शास्त्रमें कही हुई विधि
को त्यागकर श्रद्धाके साथ आपका यजन करते हैं उनकी उस
निष्ठाको सत्त्वगुणी वा रजोगुणी कौनसी जानूँ ? ॥ १ ॥ श्री-
भगवान्ने कहा, कि—हे सखे ! स्वभावसे उत्पन्न हुई देहधारियों
की श्रद्धा सत्त्वगुणी रजोगुणी और तमोगुणी ऐसी तीन प्रकार
का होती है, उस श्रद्धाको अब तू सुन ॥२॥ हे भरतवंशी अर्जुन!
पूर्वजन्मके संस्कारसे उत्पन्न हुई बुद्धिके अनुसार होती है, यह
पुरुष भी श्रद्धारूप ही है और जिसमें जैसी श्रद्धा हो उसको
तैसा ही जानो ॥ ३ ॥ सत्त्वगुणी पुरुष देवताओंका यजन करते
हैं, रजोगुणी पुरुष यक्ष और राक्षसोंका यजन करते हैं और जो
तमोगुणी पुरुष होते हैं वह प्रेतोंका और भूतगणोंका यजन करते
है ॥ ४ ॥ जो पुरुष वेदविरुद्ध असत् ग्रन्थोंमें कहेहुए घोर तप
को तपते हैं, जो दम्भी, अहङ्कारी पुरुष, काम तथा रागके उत्साही

ग तपो जनाः । दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥ कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः । मां चैवान्तःशरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥ आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः । यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥ आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः । रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्ण-रूक्षविदाहिनः । आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥ यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥ अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते । यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥ अभिसंधाय तु

होते हैं ॥ ५ ॥ और जो मूढ़ बुद्धिवाले पुरुष शरीरमें रहनेवाले पञ्चमहाभूतके भागको खेंचतेहुए अन्तःकरणमें रहनेवाले मेरी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं उनको आसुरी निश्चयवाला जानो ॥ ६ ॥ आहार भी सबोंको तीन प्रकारका प्यारा होता है तथा यज्ञ तप और दान भी तीन प्रकारके हैं, उनके इन भेदोंको सुन ॥ ७ ॥ आयु, सत्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ाने वाले, रसीले, चिकने, स्थिर, और हृदयको अच्छे लगनेवाले आहार सत्त्वगुणी पुरुषोंको प्रिय होते हैं ॥ ८ ॥ तीखे, खट्टे, खारे, अत्यन्त गरम, अतितीखे और अतिदाह करनेवाले तथा दुःख शोक और रोग करने वाले आहार रजोगुणी मनुष्योंको प्यारे होते हैं ॥ ९ ॥ जिसको बने एक पहरसे अधिक समय बीत गया हो, जिसमें रस न हो दुर्गन्धि आती हो और जो रातका बासी हो तथा झूंटा और अपवित्र भोजन तमोगुणी मनुष्योंको प्यारा लगता है ॥ १० ॥ यज्ञ अवश्य करना ही है, ऐसा मनमें निश्चय करके फलकी इच्छा न रखनेवाले मनुष्य शास्त्रमें कही हुई विधिसे जिस यज्ञको करते हैं वह यज्ञ सात्विक कहलाता है॥११॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन ! फलकी इच्छा रखकर तथा दम्भके

फलं दम्भार्थमपि चैव यत् । इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥ विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥ देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् । ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् । स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥ मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः । भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥ श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः । अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥ सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् । क्रियते तदिह

लिये भी, जो यज्ञ किया जाता है उसको राजस यज्ञ जान ॥ १२ ॥ शास्त्रमें कहीहुई विधिसे रहित जिस यज्ञमें अन्नका दान नहीं दिया जाता है, वेदके मंत्र नहीं पढ़ेजाते हैं, तथा दक्षिणा नहीं दीजाती है उसको तामस-यज्ञ कहते हैं ॥ १३ ॥ विष्णु आदि देवता ब्राह्मण माता पिता आचार्य आदि गुरु तथा ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंका पूजन करना, बाहरी तथा भीतरी पवित्रता रखना, सरलता रखना ब्रह्मचर्य और अहिंसाका पालन करना यह शरीरका तप कहलाता है ॥ १४ ॥ घबड़ाहटमें न डालनेवाला सत्य, सुननेमें प्यारा लगनेवाला और परिणाममें हित करनेवाला वाक्य तथा स्वाध्यायका अभ्यास यह वाङ्मय तप कहलाता है ॥ १५ ॥ मनःप्रसाद कहिये रागद्वेषसे रहितपना सौम्यता कहिये दूसरोंका हितैषीपना, मौन रहना, मनका निरोध तथा दूसरों के साथ व्यवहार करते समय निष्कपट होकर शुद्धभावका व्यवहार यह मानसिक तप कहलाता है ॥ १६ ॥ पुरुष सावधान हो कर फलकी इच्छा न रखते हुए परमश्रद्धाके साथ जो तीन प्रकार का तप करते हैं उसको सात्त्विक तप कहते हैं ॥ १७ ॥ सत्कार के लिये अर्थात् अपनी उत्तमता दिखाकर पूजा करनेके लिये तथा मानके लिये अर्थात् अपना सन्मान करानेके लिये

प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥ मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः । परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥ दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥ यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः । दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥ ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥ तस्मादोमित्युदा-

---

वा अपने शरीरकी पूजा करानेके लिये दम्भसे जो तप किया जाता है वह राजसी, विनाशी, थोड़े समय रहने वाला और अनिश्चित फलवाला कहलाता है ॥ १८ ॥ मूढ़ता भरे आग्रहसे अपने शरीरको पीड़ा देकर जो तप किया जाता है अथवा शत्रुका नाश करनेके लिये जो तप कियाजाता है वह तामसी तप कहलाता है ॥ १९ ॥ दान अवश्य करना चाहिये ऐसी बुद्धिसे पवित्र देशमें पवित्र समयमें तथा उपकार करनेमें असमर्थ सुपात्र ब्राह्मणको जो दान दियाजाता है उस दानको सात्विक कहा है ॥ २० ॥ परन्तु जो दान बदलेमें अपना उपकार करानेके लिये अथवा किसी फलको पानेकी इच्छासे, इतने अधिक धनका खर्च क्यों कियाजाय ? इसप्रकार चित्तमें क्लेश पातेहुए जो दान दियाजाता है उसको राजसी दान कहा है ॥ २१ ॥ देश तथा कालका विचार किये बिना कुपात्रोंको जो दान दियाजाता है और जो बिना सत्कारके, अपमान करके दियाजाता है तो वह तामसी दान कहलाता है ॥ २२ ॥ ॐ, तत् और सत् ऐसा तीन प्रकारका ब्रह्मके नामका निर्देश शास्त्रोंमें कहा है और पहिले उसमें से ब्राह्मणोंको, वेदोंको तथा यज्ञोंको उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ सृष्टिके आरंभमें इन तीन नामोंमेंसे सबकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये

इत्य यज्ञदानतपःक्रियाः । प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपक्रियाः । दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥ सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते । प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥ यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते । कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥ अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् । असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम (सप्तदशोऽध्यायः) एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अर्जुन उवाच । संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् । त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥ श्रीभगवा-

ॐकारका उच्चारण करके ब्रह्मवादियोंकी वेदमें कही हुई यज्ञ, दान और तपकी क्रियाएं नित्य चला करती हैं ॥ २४ ॥ मोक्ष चाहने वाले पुरुष फलकी इच्छाको त्यागकर तत् शब्द कहिये ब्रह्मके उद्देशसे यज्ञ, दान तथा तपकी अनेकों क्रियाएं करते हैं ॥२५॥ अस्तित्वमें तथा साधुभावमें अर्थात् श्रेष्ठपनेमें सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! श्रेष्ठ कर्ममें भी सत् शब्द का प्रयोग कियाजाता है ॥ २६ ॥ यज्ञमें, तपमें और दानमें जो स्थिति (निष्ठा करना) है वह भी सत् कहलाता है तथा उस सत् (ब्रह्म) के लिये किये जानेवाला कर्म भी सत् कहलाता है ॥ २७ ॥ हे पार्थ ! अश्रद्धासे जो होम, दान वा तप किया हो वह असत् कहलाता है और उसका फल इस लोकमें तथा मरने के अनन्तर परलोकमें भी नहीं मिलता है ॥ २८ ॥ इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥

अर्जुनने कहा, कि—हे महाबाहु हृषीकेश ! (इन्द्रियोंके प्रेरक) हे केशि दैत्यका नाश करनेवाले ! मैं संन्यासका और त्यागका अलग २ स्वरूप जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा,

उवाच । काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः । सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥ त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः । यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥ निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम । त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥ यज्ञो दानं तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥ एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥ नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते । मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥ दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् । स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥ कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन । सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव ;

कि--काम्य कर्मोंके त्यागको विद्वान् संन्यास कहते हैं और सब कर्मोंके फलके त्यागको चतुर पुरुष त्याग कहते हैं ॥ २ ॥ कितने ही विद्वान् कहते हैं, कि--दोषकी समान कर्मका त्याग कर देय और कितने ही विद्वान् कहते हैं, कि-यज्ञ, दान और तपका त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे भरतसत्तम ! तू त्याग और अत्यागके विषयमें मेरा निश्चय सुन, हे पुरुषसिंह ! त्याग तीन प्रकारका कहा है ॥४॥ यज्ञ,दान तथा तपरूप कर्मका त्याग न करे उसको तो कर्म करना ही चाहिये, मनको नियममें रखनेवालोंको यज्ञ दान तथा तप पवित्र करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ हे पार्थ ! इन यज्ञ आदि कर्मोंको भी अभिमान तथा फलका त्याग करके करे ऐसा मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है ॥ ६ ॥ नित्य कर्मका त्याग करना उचित नहीं माना जाता है यदि कोई मोहसे उसका त्याग करदेय तो वह तामस त्याग कहलाता है ॥ ७ ॥ यह कर्म तो दुःखरूप है, ऐसा विचार कर जो पुरुष कायाको क्लेश पहुंचनेके भयसे कर्मको त्याग देता है, वह पुरुष राजसी-त्याग करनेसे त्यागके फलको नहीं पाता है ॥ ८ ॥ हे अर्जुन !

स त्यागः सात्विको मतः ॥ ९ ॥ न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते । त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥ न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः । यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११॥ अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् । भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥ पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे । सांख्ये कृतानि प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥ अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १४ ॥ शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः । न्याय्यं वा

नित्य कर्म अवश्य करना चाहिये,ऐसा विचार कर जो नित्यकर्म को करता है परन्तु उसमें आसक्ति नहीं रखता है और उसके फलको भी नहीं चाहता है वह त्याग सात्विक–त्याग कहलाता है॥ ९॥ जिसमें सत्त्वगुणका आवेश है ऐसा मेधावी (बुद्धिमान्) और जिसका सन्देह कटगया है ऐसा सत्त्वगुणी त्यागी अकुशल कर्मसे द्वेष नहीं करता है और कुशल कर्ममें बँधता नहीं है १० देहधारी प्राणी कर्मोंका सर्वथा त्याग नहीं करसकता, इसलिये जो कर्मोंके फलका त्याग करता है वह त्यागी कहलाता है ११ अनिष्ट (अप्रिय), इष्ट (प्रिय) और अप्रियभाव तथा प्रिय-भावसे मिला हुआ, ऐसे तीन प्रकारके फल होते हैं, यह फल मरनेके अनन्तर परलोकमें अत्यागियोंको मिलता है त्यागियों को कभी नहीं मिलता ॥ १२ ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! जिसमें कर्ममात्रका समाप्ति है ऐसे वेदान्तशास्त्रमें सब कर्मोंकी सिद्धिके लिये इस रीतिसे पांच कारण कहे हैं, उनको तू मुझसे सुन ॥ १३ ॥ अधिष्ठान, कर्त्ता, भिन्न२ प्रकारके शब्द आदि विषयों को पानेकी साधनभूत इन्द्रियें, भिन्न २ प्रकारकी प्राणचेष्टायें और पांचवां दैव ये पांच कर्मके कारण हैं ॥ १४ ॥ पुरुष शरीर से, वाणीसे और मनसे न्याययुक्त वा अन्याययुक्त जिस कर्मका

विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥ तत्रैवं सति कर्तार-मात्मानं केवलं तु यः । पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिंप्यते । हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥ ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना । करणं कर्म च कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥ ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः । प्रोच्यते गुण-संख्याते यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥ सर्वभूतेषु येनैकं भाव-मव्ययमीक्षते । अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ।२०। पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् । वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥ यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये

आरम्भ करता उसके ये पांच हेतु हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार पांच कारणोंसे कर्म किया जा सकता है तो भी जो पुरुष बुद्धिकी मलिनताके कारणसे केवल आत्माको ही कर्त्ता मानता है वह विवेकहीन बुद्धिवाला होनेके कारण नहीं देखता है अर्थात् अन्धा है ॥ १६ ॥ जिसको 'मैं कर्त्ता हूं' ऐसा अहङ्कारका भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती है वह इन लोकोंकी हिंसा करता हुआ भी हिंसाके दोषसे नहीं बंधता है ॥ १७ ॥ ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता ऐसी तीन प्रकारकी कर्मकी प्रेरणा है और करण; कर्म तथा कर्त्ता ऐसे तीन प्रकारका कर्मका संग्रह है ॥ १८ ॥ ज्ञान, कर्म और कर्त्ता ये गुणोंके भेदसे तीन प्रकारके ही हैं, ऐसा सांख्यशास्त्रमें कहा है, उन ज्ञान आदिके भेदोंको भी तू मुझसे यथावत् सुन ॥ १९ ॥ जिस ज्ञानके द्वारा सकल विभागवाले प्राणियोंके विषैं विभागरहित एक अविनाशी भाव जाननेमें आता है उस ज्ञानको सात्त्विक जान ॥ २० ॥ सकल प्राणी अनेकों जातिके हैं और उस प्रत्येक जातिमें भी वह फिर अनेकों प्रकारके हैं ऐसा भेदज्ञान जिस ज्ञानसे होता है उसको राजसी ज्ञान जान ॥ २१ ॥ जो ज्ञान हरएक कार्यको परिपूर्ण

सक्तमहैतुकम् । अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्
नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् । अफलप्रेप्सुना
तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥ यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥ अनुबन्धं क्षयं
हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् । मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते
॥ २५ ॥ मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः । सिद्ध्यसिद्ध्यो-
र्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥ रागी कर्मफलप्रेप्सु-
र्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः । हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकी-
र्तितः ॥ २७ ॥ अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।

मानने वाला तथा उसमें अभिनिवेश (आग्रह) वाला हो, युक्ति-
शून्य, परमार्थसे रहित, अल्प फलवाला तथा तुच्छ विषयोंवाला
हो वह ज्ञान तामसी ज्ञान कहलाता है ॥ २२ ॥ जो कर्म नित्य
रहनेवाला हो, सङ्ग कहिये अभिमानसे रहित हो तथा फलकी
इच्छा न करनेवाले रागद्वेषरहित पुरुषका किया हुआ हो वह
कर्म सात्त्विक कर्म कहलाता है ॥ २३ ॥ कामकी इच्छावाला
पुरुष जिस कर्मको अहङ्कारसे करता है और जिसमें बड़ाभारी
परिश्रम पड़ता है वह कर्म राजसी कहलाता है ॥२४ ॥ फलका
शक्तिका, धननाशका, हिंसाका और अपने पुरुषार्थका विचार
किये विना केवल मोह (अविवेक) से जिस कर्मका आरम्भ
किया जाता है वह तामसी कहलाता है ॥ २५ ॥ संसारके सङ्ग
का त्यागनेवाला, अहङ्कारसे रहित धीरज और उत्साहवाला,
कार्य सिद्ध होने पर हर्ष न करनेवाला और कार्य सिद्ध न होने
पर विषाद न करनेवाला कर्त्ता सात्त्विक कहलाता है ॥ २६ ॥
विषयोंमें आसक्त होनेवाला, कर्मोंके फलकी इच्छावाला, पराये
धनका लोभी, अथवा तीर्थ आदि पर दान आदि न करने वाला,
दूसरोंका चित्त दुखाने वाला, भीतरसे अपवित्र, प्रिय तथा अप्रिय
वस्तुका लाभ होने पर हर्ष वा शोक करनेवाला कर्त्ता राजस
कहलाता है ॥ २७ ॥ असावधान, अतिक्षुद्रबुद्धि, काठकी समान

विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥ बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु । प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ २९ ॥ प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये । बन्धं मोक्षञ्च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३० ॥ यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च । अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥ अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता । सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥ धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः । योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥ यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या

किसीको भी न नमनेवाला, शठ (शक्तिको छुपानेवाला), धोखेबाजी करनेवाला, आलसी, विषाद करनेवाला तथा दीर्घसूत्री (जो काम एक दिनमें होसकै उसको एक महीनेमें भी न करने वाला) कर्त्ता तामसी कहलाता है ॥ २८ ॥ हे धनञ्जय ! मैं अब तुझसे बुद्धिके धीरजके गुणोंके अनुसार अलग २ तीन भेद पूरे २ कहता हूं उनको तू सुन ॥ २९ ॥ हे पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य, भय, अभय, बन्धन और मोक्ष को जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी कहलाती है ॥ ३० ॥ धर्म तथा अधर्ममें और कार्य तथा अकार्यमें सन्देह होने पर जिस बुद्धिसे वह ठीक २ जाननेमें नहीं आते वह बुद्धि राजसी कहलाती है ॥ ३१ ॥ तथा तमोगुणसे ढकीहुई जिस बुद्धिके द्वारा अधर्म धर्मरूप मालूम होता है तथा सब विषय उलटे ही प्रतीत होते हैं हे धनञ्जय ! वह बुद्धि तामसी कहलाती है ॥३२॥ समाधिमें साथही रहने वाली जिस धृति (धीरज) के द्वारा पुरुष योगसे मन प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको धारण किये रहता है, हे पार्थ ! वह धृति सात्त्विकी कहलाती है ॥३३॥ हे धनञ्जय ! जिस धृतिसे धर्म, अर्थ और कामका निश्चय हो सकता है और प्रसङ्गवश फलकी इच्छा होती है, हे पार्थ ! वह

धारयतेऽर्जुन । प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ।३४। यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च । न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥ सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ । अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्त-मात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥ विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोप-मम् । परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः । निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामस-मुदाहृतम् ॥ ३९ ॥ न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः । सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥ ब्राह्मण-

---

धृति राजसी कहलाती है ॥ ३४ ॥ दुष्टबुद्धिवाला पुरुष, जिस धृतिसे निद्रा, भय, शोक, विषाद और मद (शास्त्रविरुद्ध विषयोंके सेवनसे हुई चित्त की पराधीनता) को धारण करता है हे कुन्तीनन्दन ! वह धृति तामसी कहलाती है ॥ ३५॥ हे भरत-सत्तम ! अभ्यासके कारण सात्त्विक आदि जिस सुखमें प्राणी रमण करता है और दुःखके अन्तको पाता है उस तीन प्रकारके सुखको अब तू मुझसे सुन ॥ ३६ ॥ जो सुख आरम्भमें विषकी समान लगता हो परन्तु परिणाममें अमृतकी समान हो और जो अपनी बुद्धिकी निर्मलतासे उत्पन्न हुआ हो वह सुख सात्त्विक कहलाता है ॥ ३७ ॥ जो विषय तथा इन्द्रियोंके समागमसे आरम्भमें तो अमृतकी समान होता है, परन्तु परिणाममें विषकी समान होता है उस सुखको राजसी सुख कहा है ॥ ३८ ॥ जो सुख आरम्भमें तथा परिणाममें बुद्धिको मोहमें डालनेवाला होता है तथा निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न होता है उस सुखको तामसी सुख कहा है ॥ ३९ ॥ पृथिवी पर अथवा स्वर्गमें देवताओंमें ऐसा कोई भी स्थावर वा जङ्गम प्राणी नहीं है कि जो पहले जन्मके धर्माधर्मरूप संस्कारसे होनेवाले सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंसे रहित हो ॥ ४० ॥ हे शत्रुनाशन ! प्रकृति

क्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप । कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥ शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥ शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥ कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥ स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः । स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥४५॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवः ॥ ४६ ॥ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥ ४७ ॥ सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।

से उत्पन्न हुए गुणोंके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंके कर्म भिन्न २ हैं ॥ ४१ ॥ शम, दम, तप, शौच, शान्ति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता इतनी बातें ब्राह्मणमें स्वाभाविक होती हैं ॥ ४२ ॥ शूरता, तेज, धीरज, चतुरता, युद्धमें पीठ न दिखाना, दान और ईश्वरीभाव, इतनी बातें क्षत्रियमें स्वभावसे होती हैं ॥ ४३ ॥ खेती, गोरक्षा और वनिज ये बातें वैश्यमें स्वाभाविक होती हैं और सेवा करनेका काम शूद्रमें स्वाभाविक होता है ॥ ४४ ॥ जो पुरुष अपना २ काम करने में लगा रहता है वह उत्तम सिद्धिको पाता है, अब अपने २ काममें लगा रहनेसे जिसप्रकार नैष्कर्म्य सिद्धिको पाता है वह तू सुन ॥ ४५ ॥ जिस परमात्मासे प्राणियोंकी प्रवृत्ति होती है और जो परमात्मा इस सब जगत्में व्याप्त होरहा है, उस परमात्मा का अपने २ कर्मसे पूजन करके मनुष्य सिद्धिको पाता है ॥४६॥ दूसरेके धर्मको भलेप्रकार पालन करनेकी अपेक्षा अपने विगुण (कुछ अङ्गोंसे रहित) धर्मका पालन करना अच्छा है, स्वभाव से नियत हुए कर्मको करनेसे पुरुषको पाप नहीं लगता है॥४७॥

सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता ॥ ४८ ॥ असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः । नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥ सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे । समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥ बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च । शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१ ॥ विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः । ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ५२ अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् । विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति

हे कुन्तीनन्दन ! स्वाभाविक कर्म दोषवाला हो तव भी उसका त्याग न करै, क्योंकि-जैसे धुएँसे अग्नि ढकाहुआ होता है तैसे ही सब आरम्भ दोषसे ढकेहुए हैं ॥ ४८ ॥ संन्याससे जिसकी बुद्धि पुत्र आदि सकल वस्तुओंके ऊपर आसक्त हुई नहीं है तथा जिसने चित्तको जीत लिया है और जो इच्छारहित है वह पुरुष परम-नैष्कर्म्य-सिद्धिको पाता है ॥ ४९ ॥ नैष्कर्म्य सिद्धिको पाया हुआ पुरुष परब्रह्मको किस प्रकार पाता है, इस बातको तू मुझसे संक्षेपमें ही सुन, हे कुन्तीनन्दन ! यह ज्ञानकी परानिष्ठा मानीजाती है अर्थात् इसके सिवाय और कुछभी आन्तरिक वस्तु जाननेके योग्य नहीं है ५०परमशुद्ध बुद्धिसे तथा धीरजवाला जो पुरुष,मनको नियममें रखकर,शब्दादि विषयोंको त्यागकर तथा राग और द्वेषको भी छोड़कर ॥५१॥ नित्य एकान्तमें बैठा रहता हो; परिमाणका आहार करता हो, शरीर, वाणी और मनको वशमें रखता हो, नित्य ध्यानयोगमें लगा रहता हो, वैराग्यका आश्रय करनेवाला हो ॥ ५२ ॥ अहङ्कार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह (कुटुम्ब आदि) का त्याग करके ममतारहित तथा शान्त होगया हो वह पुरुष परब्रह्मरूप होसकता है ॥ ५३ ॥ ब्रह्मीभूत योगीका मन नित्य प्रसन्न रहता है, वह किसीका

न कांक्षति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥ भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥ सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः । मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥ चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः । बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥ मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि । अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥ यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे । मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥ स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः

शोक नहीं करता है तथा किसी वस्तुकी इच्छा भी नहीं करता है, सकल प्राणियोंको ब्रह्मरूपसे देखता है और वह मेरी परम भक्तिको पाता है ॥ ५४ ॥ मैं जितना हूं तथा जो हूं तिसको ब्रह्मरूप हुआ पुरुष ऊपर कही हुई रीतिसे यथार्थ रूपसे जानता है और मुझे यथार्थ रीतिसे जानकर देहपात होनेके अनन्तर परब्रह्मको पाता है ॥ ५५ ॥ मेरा आश्रय लेनेवाला पुरुष सदा सब कर्मोंको किया करता है तो भी वह मेरे प्रभावसे सनातन अविनाशी पदको पाता है ॥ ५६ ॥ सब कर्म मनसे मुझे अर्पण करके एक मेरे परायण होजा और ज्ञानयोगका आश्रय लेकर सदा मनको मुझमें ही लगाये रख ॥ ५७ ॥ यदि तू मुझमें ही चित्तको लगाये रहेगा तो मेरे अनुग्रहसे सब प्रकारके दुःखोंसे तरजायगा, परन्तु यदि तू अहङ्कारके कारणसे नहीं सुनेगा तो नष्ट होजायगा ॥ ५८ ॥ तू यदि अहङ्कारका आश्रय लेकर समझता हो, कि—मैं नहीं लडूंगा तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है, प्रकृति तुझे लड़नेके लिये विवश करेगी ॥ ५९ ॥ हे कुन्तीनन्दन! तू अपने क्षत्रियजातिके अपने शूरता आदि कर्मसे बँधाहुआ है और मोह कहिये अज्ञानसे जिस कामको करना नहीं चाहता

स्वेन कर्मणा । कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ६० ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥ तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत । तत्प्रसादात्परां शांति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥ इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया । विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥ सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः । इष्टोऽसि मे दृढमतिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥ मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥ सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥ इदं ते

है उस कामको तू पराधीन होकर करेगा ॥ ६० ॥ हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयदेशमें विराजमान रहता है, वह यंत्र की समान लिङ्गशरीरके ऊपर चढ़े हुए सब प्राणियोंको अपनी मायासे घुमाया करता है ॥ ६१ ॥ हे भरतवंशी ! तू सब भावसे उसही परमात्माकी शरण ले, क्योंकि—उसके प्रभावसे तू परमशान्तिको तथा सनातन स्थानको पावेगा ॥ ६२ ॥ इस प्रकार मैंने तुझसे गुह्यसे भी परमगुह्य ज्ञान कहा है, इस ज्ञानका पूरा २ विचार करने पर तेरी इच्छामें जैसा आवे तैसा करना ॥ ६३ ॥ तू फिर भी सकल गुह्य वचनोंमें भी गुह्य मेरे परम वचन को सुन, तू मुझे प्यारा है, ऐसा मानकर मैं तेरा परम-हित करने वाली बात तुझसे कहता हूं ॥ ६४ ॥ मुझमें मनको लगाये रख, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन कर अथवा मुझे नमस्कार कर ऐसा करनेसे तू मुझे ही पावेगा, मैं तुझसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं, कि तू मुझे प्यारा है ॥ ६५ ॥ आश्रम आदि के तथा देह इन्द्रियादि सकल धर्मोंको त्यागकर एक मेरी शरण ले, मैं तुझे सब पापोंसे छुटा दूंगा, तू शोक न कर ॥ ६६ ॥

नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन । न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥ य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति । भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥ न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः । भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥ अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं सम्वादमावयोः । ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥ श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः । सोऽपि मुक्तः शुभांल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥ कच्चिदेतत् श्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा । कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रणष्टस्ते धनञ्जय ॥७२॥ अर्जुन उवाच । नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत । स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥७३॥ सञ्जय उवाच । इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य

हे अर्जुन ! यह ज्ञान तू तपस्याहीनको, भक्तिशून्यको और सेवा न करने वाले पुरुषको न सुनाना तथा जो मेरी ईर्षा करता हो उससे भी न कहना ॥ ६७ ॥ जो पुरुष इस परमगुप्त मेरे ज्ञान को मेरे भक्तोंसे कहेगा वह निःसन्देह मुझमें परमभक्ति करके मुझको ही पाजायगा ॥ ६८ ॥ मनुष्योंमें गीताका प्रचार करने वाले मनुष्यकी अपेक्षा दूसरा कोई भी मेरा विशेष प्रिय करनेवाला नहीं है और पृथिवी पर दूसरा कोई उससे अधिक प्यारा होगा भी नहीं ॥ ६९ ॥ हम दोनोंके इस धर्म भरे संवादको जो कोई पढ़ेगा, वह ज्ञानयज्ञसे मेरा पूजन करलेगा ऐसा मैं मानता हूं ॥ ७० ॥ जो पुरुष श्रद्धा और ईर्षासे रहित होकर इसको सुन भी लेता है वह भी मुक्त होकर पुण्यात्माओंके शुभ लोकोंको पाता है ॥ ७१ ॥ हे पार्थ ! क्या तूने इसको एकाग्रचित्तसे सुना ? हे धनञ्जय ! क्या तेरा अज्ञानसे उत्पन्न होने वाला मिथ्याज्ञान दूर हुआ ? ॥ ७२ ॥ अर्जुनने कहा, कि हे अच्युत ! आपके अनुग्रहसे मेरा मोह नष्ट होगया, मुझे स्मृति होगयी, अब मैं निःसन्देह होकर खड़ा हूं और आपका कहना करूंगा ॥ ७३ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! इस

च महात्मनः । संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमं गुह्यतमं परम् । योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५ ॥ राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् । केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥ तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः । विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥ यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे मोक्षयोगो नाम
(अष्टादशोऽध्यायः) द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥
समाप्तं च भगवद्-गीता-पर्व.

प्रकार महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनके रोमाञ्च खड़े करनेवाले इस अद्भुत संवादको मैंने सुना था ॥ ७४ ॥ वेदव्यासजी की कृपासे, कहने वाले साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्णजीके मुखसे मैंने इस परमगुह्य गीताशास्त्रको सुना है ॥ ७५ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस अद्भुत और पवित्र संवादको याद कर २ के मैं वारंवार हर्ष पाता हूं ॥ ७६ ॥ तथा श्रीहरिके उस अद्भुत विराट रूपको भी याद कर २ के हे राजन ! मुझे बड़ा विस्मय होता है और मैं वारंवार हर्ष पाता हूं ॥ ७७ ॥ जिस पक्षमें योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जिस पक्षमें धनुषधारी अर्जुन है उस पक्षमें अटल श्री, अटल विजय, अटल ऐश्वर्य और अटल नीति है, यह मेरा मत है ॥ ७८ ॥ बयालीसवां अध्याय समाप्त

॥ भगवद्गीता-पर्व समाप्त ॥

अथ भीष्मवधपर्व

वैशम्पायन उवाच ॥ गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः । या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ १ ॥ सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः । सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥ २ ॥ गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते । चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३ ॥ षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः । अर्जुनः सप्तपञ्चाशत्सप्तषष्टिं तु संजयः । धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ॥ ४ ॥ भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च । सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥ ५ ॥ सञ्जय उवाच । ततो धनञ्जयं दृष्ट्वा बाणगाण्डीवधारिणम् । पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥ ६ ॥ पाण्डवाः सोमका-

---

वैशम्पायन कहते हैं, कि—जो साक्षात् कृष्णके मुखकमलमेंसे निकली है, उस गीताको अच्छे प्रकारसे पढ़ना चाहिये (यदि ऐसा कर लिया तो) फिर दूसरे शास्त्रोंको पढ़नेका क्या प्रयोजन है ? ॥ १ ॥ जैसे मनुजी सकल वेदमय हैं, गङ्गा सकल तीर्थमयी है और श्रीहरि सर्वदेवमय हैं ॥ २ ॥ तैसे ही गीता सकल शास्त्रमयी है, गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द, ये चार गकारों से युक्त नाम जिस हृदयमें हों तो फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥३॥ गीतामें छः सौ बीस श्लोक श्रीकृष्णजीके मुखारविन्दसे निकले हुए हैं, सत्तावन अर्जुनके, सड़सठ सञ्जयके और एक धृतराष्ट्रके मुखसे निकला हुआ है, ये सब श्लोक कहलाते हैं॥ ४ ॥ भारतरूप अमृतके सर्वस्वरूप गीताको विलोकर तथा उसमेंसे सार निकाल कर श्रीकृष्ण भगवान्ने अर्जुनके मुखमें उसका होम किया है ॥ ५ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन्! फिर बाण और गाण्डीव धनुष धारण किये हुए अर्जुनको देखकर महारथियों ने बड़ाभारी कोलाहल किया ॥ ६ ॥ तथा पाण्डव, सोमक

श्चैव ये चैषामनुयायिनः । दध्मुश्च मुदिताः शंखान् वीराः सागर-सम्भवान् ॥ ७ ॥ ततो भेर्यश्च पेश्यश्च क्रकचा गोविषाणिकाः । सहसैवाभ्यहन्यत ततः शब्दो महानभूत् ॥ ८ ॥ तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरश्च जनाधिप । सिद्धचारणसंघाश्च समीयुस्ते दिदृक्षया ॥ ९ ॥ ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् । समायुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद्वैशसं महत् ॥ १० ॥ ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थितं । ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥ ११ ॥ विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम् । अवरुह्य रथात्तिप्रं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥ पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः । वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ १३ ॥ तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥ १४ ॥ वासुदेवश्च भगवान्

राजे और उनके सब साथी जो बड़े २ वीर पुरुष थे वह आनन्द में भरकर समुद्रमेंसे उत्पन्न हुए शंखोंको बजाने लगे ॥ ७ ॥ और एकायकी भेरी, पेशी, क्रकच और सींगोंके आकारके बनाये हुए विगुल बजनेसे महाशब्द हो उठा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! गन्धर्वों के साथ देवता पितर और चारणोंके समूह उस संग्रामको देखने की इच्छासे तहां इकट्ठे होने लगे ॥ ९ ॥ और उस महासंग्राम को देखनेके लिये महाभाग ऋषि भी इन्द्रको आगे करके तहां आये ॥ १० ॥ हे राजन् ! फिर धर्मराज युधिष्ठिरने सागरकी समान वारंवार चलायमान होती हुई उन दोनों सेनाओंको युद्ध करनेके लिये तयार हुई देखकर कवच और उत्तम शस्त्रोंको उतार डाला और रथमेंसे नीचे उतर कर झट चुपचाप दोनों हाथ जोड़े पूर्वकी ओरको जहां शत्रुकी सेना खड़ी थी तहां पितामहकी ओरको देखकर पैदल ही सीधे चले गये ॥ ११–१३ ॥ इसप्रकार उनको जाते हुए देख कर कुन्तीका पुत्र धनञ्जय भी रथमेंसे नीचे उतरपड़ा और तुरन्त ही अपने भाइयोंके साथ उनके पीछे२ चलने लगा॥१४॥और भगवान्

पृष्ठतोऽनुजगाम तम् । तथा मुख्याश्च राजानस्तच्चित्ता जग्मुरुत्सुकाः ॥ १५ ॥ अर्जुन उवाच । किन्ते व्यवसितं राजन् यदस्मानपहाय व । पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥१६॥ भीमसेन उवाच । क्व गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः । दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातॄनुत्सृज्य पार्थिव ॥ १७ ॥ नकुल उवाच । एवं गते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत । भीमे दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान् क्व नु ॥ १८ ॥ सहदेव उवाच । अस्मिन् रणसमूहे वै वर्त्तमाने महाभये । उत्सृज्य क्व नु गन्तासि शत्रूनभिमुखो नृप ॥ १९ ॥ सञ्जय उवाच । एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दनः । नोवाच वाग्यतः किञ्चिद् गच्छत्येव युधिष्ठिरः ॥२०॥ तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः । अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव ॥ २१ ॥ एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्य-

---

कृष्णभी उनके पीछे २ चलदिये तब तो उनके मुख्य २ राजे भी उत्कण्ठित चित्तसे उनके पीछे २ चलने लगे ॥ १५ ॥ अर्जुनने कहा—हे राजन्! आप यह क्या करते हैं ? हमको छोड़कर पैदल चलते हुए आप पूर्वमें शत्रुकी सेनाकी ओर कहां जाते हैं ॥१६॥ भीमसेनने कहा, कि—हे राजेन्द्र ! कवच और शस्त्रोंको उतार कर भाइयोंको छोड़कर कवचधारी शत्रु सेनाओंमें क्यों जाते हो? १७ नकुलने कहा, कि—हे भारत! इसप्रकार हमारे बड़े भाई आप जो जारहे हैं, सो भयसे हमारा हृदय कांपता है, इसलिये कहिये आप कहां जायँगे ? ॥ १८ ॥ सहदेवने कहा, कि इस भयावने, दोनों सेनाओंके कटाकटीके समयमें, हे राजन् ! हमको छोड़ कर आप शत्रुकी सेनाके सामनेको कहां जाते हैं ? ॥ १९ ॥ सञ्जय कहता है, कि हे राजन् ! भाइयोंके ऐसा कहने पर भी कुरुनन्दन युधिष्ठिर मौन धारण किये हुए कुछ भी उत्तर न देकर आगेको ही बढ़े जाने लगे ॥ २० ॥ परन्तु परमचतुर महात्मा श्रीकृष्णने हँसते २ उनसे कहा, कि—इनके अभिप्रायको मैं जानता हूं ॥ २१ ॥ यह राजा, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और

मेव च । अनुमान्य गुरून् सर्वान् योत्स्यते पार्थिवारिभिः ॥२२॥ श्रूयते हि पुरा कल्पे गुरूननुमान्य यः । युध्यते स भवेद् व्यक्त-मपध्यातो महत्तरैः ॥ २३ ॥ अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युध्येत् महत्तरैः । ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम ॥ २४ ॥ एवं ब्रुवति कृष्णेऽत्र धार्त्तराष्ट्रचमूं प्रति । हाहाकारो महानासी-न्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन् ॥ २५॥ दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद्धार्त्तराष्ट्रस्य सैनिकाः । मिथः संकथयाञ्चक्रुर्नेशो हि कुलपांसनः ॥ २६ ॥ व्यक्तं भीत इवाभ्येति राजासौ भीष्ममन्तिकम् । युधिष्ठिरः स-सोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः ॥२७॥ धनञ्जये कथं नाथे पांडवे च वृकोदरे । नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम् ॥ २८ ॥ न नूनं क्षत्रियकुले जातः संप्रथिते भुवि । यथास्य हृदयं भीतमल्प-

---

शल्य आदि सब गुरुजनोंको प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे ॥ २२ ॥ पहिले कल्पसे यह सुननेमें आता है, कि-जो अपने गुरुजनोंकी आज्ञा लिये विना युद्धका आरम्भ करता है उसको महात्मा पुरुष स्पष्ट रूपसे शाप देते हैं ॥ २३ ॥ और जो महासंग्रामके समय भी शास्त्रकी आज्ञा के अनुसार गुरुजनोंको प्रणाम करके और उनकी आज्ञा लेकर लड़ता है, उसकी युद्धमें अवश्य जय होती है, ऐसा मेरा विचार है ॥ २४ ॥ इधर श्रीकृष्णजी ऐसा कह रहे थें, कि-इतनेमें ही दूसरी ओर धृतराष्ट्रके पुत्रकी सेनामें हाहाकारका तथा धिक्कार का बड़ाभारी कोलाहल होने लगा ॥ २५ ॥ परन्तु धृतराष्ट्रकी सेनाके लोग, दूरसे ही युधिष्ठिरको देखकर ओ हो हो ! आहाहा! यही कुलाङ्गार है, इसप्रकार आपसमें बातें करने लगे ॥ २६ ॥ वह कहनेलगे, कि-राजा युधिष्ठिर डरजानेके कारण प्रत्यक्षरूपमें अपने भाइयोंके सहित भीष्म पितामहके पास शरण लेनेको आरहा है, धनञ्जय, पाण्डुका पुत्र भीमसेन और नकुल सहदेव सरीखे वीर रक्षा करनेके लिये होने पर भी न जाने युधिष्ठिरको क्यों भय लग गया ? ॥ २७ ॥ २८ ॥ भूमण्डल पर प्रसिद्ध पाये

सत्वस्य संयुगे ॥ २९ ॥ ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रशंसन्ति स्म कौरवान्। हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुश्च ह ॥ ३० ॥ व्यनिन्दंश्च ततः सर्वे योधास्तव विशाम्पते। युधिष्ठिरं ससोदर्यं सहितं केशवेन हि ॥ ३१ ॥ ततस्तत्कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम्। निःशब्दमभवत् तूर्णं पुनरेव विशाम्पते ॥ ३२ ॥ किं नु वक्ष्यति राजासौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति। किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति ॥ ३३ ॥ विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत्। उभयोः सेनयो राजन् युधिष्ठिरकृते तदा ॥३४॥ सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम्। भीष्ममेवाभ्यगात् तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३५ ॥ तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पांडवः। भीष्मं शान्तनवं राजा

हुए क्षत्रियके कुलमें ऐसे डरपोक पुरुषका जन्म नहीं होना चाहिये था, क्योंकि-थोड़े बल वाले इस राजाका हृदय युद्धसे डरता है, ऐसा कहते हुए वह सब सैनिक, कौरवोंकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्न होकर अपने झण्डोंको उड़ाने लगे, हे राजन्! इसप्रकार तुम्हारे पक्षके योधा श्रीकृष्णकी और भाइयों सहित युधिष्ठिरकी निन्दा करने लगे ॥ २९-३१॥ कौरवसेना इसप्रकार युधिष्ठिरको धिक्कार देनेके पीछे, हे राजन! फिर चुप होकर शान्त होगई ॥३२॥ राजा युधिष्ठिर क्या कहेंगे और भीष्मजी क्या उत्तर देंगे, संग्राम की डींग मारनेवाला भीम तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन भी क्या कहेंगे ? ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं ? इस विषयमें तथा युधिष्ठिरके लिये हे राजन्! दोनों सेनादल बड़े सन्देहमें पड़ गये ॥ ३४ ॥ इतनेमें ही भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिर, बाण और शक्तिसे सजकर खड़ी हुई शत्रु की सेनाके बीचमें को होकर शीघ्र ही भीष्मजीके पास आपहुंचे ॥ ३५ ॥ फिर युद्धके लिये तैयार होकर खड़े हुए शन्तनुनन्दन भीष्मजीके दोनों चरणोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर राजा युधिष्ठिर यह वचन

युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिर उवाच । आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह । अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय ॥ ३७ ॥ भीष्म उवाच । यदित्वं नाभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते । शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत ॥ ३८ ॥ प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयं माप्नुहि पांडव । यत्तेऽभिलषितं चान्यत् तदवाप्नुहि संयुगे ॥ ३९ ॥ व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकांक्षसि । एवं गते महाराज न तवास्ति पराजयः ॥ ४० ॥ अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ४१ ॥ अतस्त्वां क्लीववद्वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन । भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ ४२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ मन्त्रयस्व महाबाहो हितैषी मम

बोले ॥३६॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे दुर्धर्ष ! मैं आपको प्रणाम करता हूं, आपके साथ हमें युद्ध करना है, इस कारण हे तात ! हमैं आज्ञा और आशीर्वाद दीजिये ॥३७॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन् ! यदि तुम इस संग्रामके समय मेरे पास नहीं आये होते तो मैं तुमको हे राजन् ! 'तुम्हारा तिरस्कार हो' ऐसा शाप दे देता, परन्तु हे पुत्र ! अब मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूं,हे पाण्डव! तेरी जय हो और इस संग्राममें जो तेरी इच्छा हो वह भी पूरी हो ॥३८॥३९॥ हे कुन्तीनन्दन ! मुझसे तुम्हें जो वरदान मांगना हो उसको भी मांगलो, क्योंकि-ऐसा होजाने पर हे महाराज ! तुम्हारा पराजय नहीं होगा॥४०॥पुरुष धनका दास है,परंतु धन किसीका दास नहीं है, हे महाराज ! यही सत्य है,कौरवोंने मुझे धनसे बांध लिया है ॥४१॥ और इसी कारण हे कुरुनन्दन ! मैं नपुंसककी समान यह बात कहता हूं क्योंकि—कौरवोंने धनके कारणसे मुझे बांध-रक्खा है,ऐसा बँधा हुआ हूं इस कारण ही हे कुरुनन्दन ! युद्धके सिवाय तेरी इच्छामें आवेसो वरदान माँगले ॥ ४२ ॥ युधिष्ठिर ने कहा, कि—हे महाबाहु ! आप सदा मेरे हितैषी हैं, इसकारण

नित्यशः । युध्यस्व कौरवस्यार्थे ममैष सततं वरः ॥ ४३ ॥ भीष्म उवाच । राजन् किमत्र साह्यन्ते करोमि कुरुनन्दन । कामं योत्स्ये परस्यार्थे ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ४४ ॥ युधिष्ठिर उवाच । कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम् । एतन्मे मन्त्रय हितं यदि श्रेयः प्रपश्यसि ॥ ४५ ॥ भीष्म उवाच ॥ नैनं पश्यामि कौन्तेय यो मां युध्यन्तमाहवे । विजयेत पुमान् कश्चित् साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिर उवाच । हन्त पृच्छामि तस्मात्त्वां पितामह नमोऽस्तु ते । वधोपायं ब्रवीहि त्वमात्मनः समरे परैः ॥ ४७॥ भीष्म उवाच। न स्म तं तात पश्यामि समरे यो जयेत मां। न तावन्मृत्यु-कालोपि पुनरागमनं कुरु ॥ ४८ ॥ संजय उवाच ॥ ततो युधि-

---

इस युद्धमें मुझे संमति दीजिये, फिर भले ही आप कौरवोंके लिये युद्ध करैं, बस यही मेरी प्रार्थना है॥४३॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे कुरुनन्दन राजन्! इसमें मैं तुम्हारी क्या सहायता करसकता हूं ?, बेटा! मुझे तो तुम्हारे शत्रुओंकी ओरसे ही लड़ना होगा इसके सिवाय और जो कुछ तेरी इच्छा हो सो माँगले ॥ ४४ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे तात! इसलिये ही मैं आपसे संमति पूछता हूं, कि-यदि मेरा कल्याण चाहते हो तो मुझे बताओ, कि—संग्राममें किसीसे न जीते जानेवाले आपको हम कैसे जीत सकेंगे ? ॥ ४५ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे कुन्तीनन्दन! यदि मैं रणभूमिमें युद्ध करता होऊँ तो मुझे साक्षात् इन्द्र भी नहीं जीतसकता, फिर कोई दूसरा पुरुष मुझे जीतसकै ऐसा तो मैं किसीको देखता ही नहीं ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-हे पिता-मह! मैं आपको प्रणाम करके यही बात पूछता हूं कि-संग्राममें दूसरेके हाथसे किस उपायसे आपका मरण होसकेगा, वह उपाय बतादीजिये ॥ ४७ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे बेटा! मुझे संग्राम में जीत लेय,ऐसा तो मैं किसीको देखता ही नहीं तथा अभी मेरे मरनेका समय भी नहीं है, इसलिये तुम फिर किसी समय मुझसे मिलना ॥ ४८ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे कुरुवंशी राजा

ष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन । शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तम-
भिवाद्य च ॥ ४६ ॥ प्रायात् पुनर्महाबाहुराचार्य्यस्य रथं प्रति ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां मध्येन भ्रातृभिः सह ॥५० ॥ स द्रोणमभि-
वाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् । उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं
वचः ॥ ५१ ॥ आमन्त्रये त्वां भगवन् योत्स्ये विगतकल्मषः ।
कथं जये रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज ॥ ५२ ॥ द्रोण उवाच ॥
यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः । शपेयं त्वां महाराज
पराभावाय सर्वशः ॥५३॥ तद्युधिष्ठिर तुष्टोऽस्मि पूजितश्च त्वयाऽ-
नघ । अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि ॥ ५४ ॥ करवाणि
च ते कामं ब्रूहि त्वमभिकांक्षितम् । एवं गते महाराज युद्धादन्यत्
किमिच्छसि ॥ ५५ ॥ अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्य-

धृतराष्ट्र ! युधिष्ठिरने भीष्मजीकी इस बातको शिर पर चढ़ाया
और वार २ उनको प्रणाम करके वह महाबाहु अपने भाइयोंके
साथ, सब सेनाके देखते हुए द्रोणाचार्यजीके रथके पास आ
पहुंचे फिर परमतेजस्वी द्रोणाचार्यजीको प्रणाम करके उनकी परि-
क्रमा की राजा युधिष्ठिर अपने मङ्गलके लिये इसप्रकार कहनेलगे
॥ ४६—५१ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि— हे भगवन् ! मैं आपसे
पूछता हूं, कि—किस रीतिसे युद्ध करूँ कि—जिसमें मुझे पाप
न लगै ? और हे गुरुदेव ! आपकी आज्ञासे किसप्रकार मैं अपने
सब शत्रुओंको जीतूँ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ द्रोणाचार्यने कहा, कि
हे राजन् ! युद्धका निश्चय करनेवाले तुम यदि इसप्रकार मेरे पास
नहीं आये होते तो मैं 'तुम्हारा पराजय हो, ऐसा शाप देदेता, हे
निष्पाप युधिष्ठिर ! तुम्हारे विनयसे मैं प्रसन्न हूं. और तुमने
मेरी पूजा की है, इसलिये मैं तुम्हे आज्ञा देता हूं, कि—तुम लड़ो
और विजय पाओ ॥ ५४ ॥ मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा,
बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है ? हे महाराज ! इस समय युद्धके
सिवाय चाहे सो माँगलो ॥ ५५ ॥ पुरुष अर्थका दास है परन्तु

चित् । इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ५६ ॥ ब्रवीम्येतत् क्लीववत्त्वां युद्धादन्यत् किमिच्छसि । योत्स्येहं कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मया ॥ ५७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ जयमाशास्व मे ब्रह्मन् मन्त्रयस्व च मद्धितम् । युध्यस्व कौरवस्यार्थे वर एष वृतो मया ॥ ५८ ॥ द्रोण उवाच । ध्रुवस्ते विजयो राजन् यस्य मन्त्री हरिस्तवं । अहं त्वामभिजानामि रणे शत्रून् विमोक्ष्यसे ५९ यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः॥ युध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते ॥ ६० ॥ युधिष्ठिर उवाच । पृच्छामि त्वां द्विजश्रेष्ठ शृणु यन्मेऽभिकांक्षितम् । कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम् ॥ ६१ ॥ द्रोण उवाच । न तेऽस्ति विजयस्तावद्या-

अर्थ किसीका दास नहीं है, हे महाराज ! यही सत्य है, कौरवों ने मुझे अर्थ (धन) से बांध लिया है ॥५६॥ और इसकारण ही हे कुरुनन्दन ! मैं नपुंसककी समान बातें कर रहा हूं, इस युद्धके सिवाय और जो कुछ तेरी इच्छा हो सो माँगले, हे राजन! मैं युद्ध तो कौरवोंके लिये ही करूँगा परन्तु विजय तुम्हारी ही चाहूंगा ॥ ५७ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि–हे ब्रह्मन् ! तुम मेरी विजय चाहो और जिसमें मेरा कल्याण हो वह बताओ, फिर तुम भले ही कौरवोंके पक्षमें रहकर युद्ध करो बस यही मेरी प्रार्थना है ॥५८॥ द्रोणने कहा, कि–हे राजन् ! जब श्रीकृष्ण सरीखे तुम्हारे मंत्री हैं तो तुम्हारी विजय होना निःसन्देह है, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, कि—तुम इस युद्धमें शत्रुओंका संहार करोगे ॥ ५९ ॥ जहाँ धर्म है तहाँ कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण है तहाँ विजय है, इसलिये हे कुन्तीनन्दन ! जा और सुखसे संग्राम कर तथा मैं तुझे और क्या संमति दूं बता ॥ ६० ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि–हे द्विजवर ! मेरी जो कुछ इच्छा है वह मैं आपसे कहता हूं सुनिये, आप किसीके जीतनेमें आनेवाले नहीं हैं, ऐसे आपको मैं किसप्रकार जीत सकूँगा, यह बतलाइये ॥ ६१ ॥ द्रोणाचार्य बोले, कि–हे राजन्

वधयुद्ध्याम्यहं रणे। ममाशु निधने राजन् यतस्व सह सोदरैः ॥ ६२ ॥ युधिष्ठिर उवाच। हन्त तस्मान्महाबाहो वधोपायं वदात्मनः। आचार्य्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते ॥६३॥ द्रोण उवाच। न शत्रुं तात पश्यामि यो मां हन्याद्रणे स्थितम्। युध्यमानं सुसंरब्धं शरवर्षौघवर्षिणम् ॥६४॥ ऋते प्रायगतं राजन् न्यस्तशस्त्रमचेतनम्। हन्यान्मां युधि योधानां सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥६५॥ शस्त्रञ्चाहं रणे जह्यां श्रुत्वा सुमहदप्रियम्। श्रद्धेयवाक्यात् पुरुषादेतत् सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६६ ॥ सञ्जय उवाच। एतच्छ्रुत्वा महाराज भारद्वाजस्य धीमतः। अनुमान्य तमाचार्य्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति ॥ ६७ ॥ सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।

जबतक मैं युद्ध करता रहूंगा, तबतक तुम विजय पाजाओ ऐसा नहीं होसकता, इसलिये तुम अपने भाइयोंको साथमें लेकर मेरे नाशका उद्योग करना ॥ ६२ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि—हे महाबाहो ! हे आचार्य ! मैं आपको प्रणाम और नमस्कार करके पूछता हूं, कि आपका वध किसप्रकार होसकेगा वह उपाय मुझे बताइये ॥ ६३ ॥ द्रोणाचार्यने कहा, कि-हे तात ! रथ पर चढ़कर बाणोंकी वर्षा करते हुए मुझको मार डाले, ऐसा तो मैं किसी शत्रुको देखता नहीं ॥ ६४ ॥ परन्तु हे राजन् ! जिस समय मैं शस्त्रोंको छोड़ अचेतसा होकर रणमें खड़ा होऊँ उस समय ही योधा मुझे मार सकेंगे यह बात मैं सत्य कहता हूं, और हे राजन् ! सत्य बोलनेवाले पुरुषके मुखसे बड़ी अप्रिय बातको सुनकर मैं युद्धमें शस्त्रको त्याग देता हूं इस बातको भी भी तुम सत्य ही समझना॥६५॥ ॥ ६६ ॥ सञ्जयने कहा, कि हे महाराज ! बुद्धिमान् भारद्वाज द्रोणाचार्यकी इस बातको सुन कर युधिष्ठिरने उनको प्रणाम किया और फिर वह कृपाचार्यके पास गये॥६७॥ बोलने वालोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर तेजस्वी कृपाचार्यको प्रणाम तथा प्रदक्षिणा

उवाचऽदुर्धर्षतमं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥ ६८ ॥ अनुमानये त्वां योत्स्येहं गुरो विगतकल्मषः । जयेयञ्च रिपून् सर्वानुनुज्ञातस्त्वयाऽनघ ॥ ६९ ॥ कृप उवाच । यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः । शपेयं त्वां महाराज परीभावाय सर्वशः ॥७० ॥ अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ७१ ॥ तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः अतस्त्वां क्लीववद्ब्रूयां युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ ७२ ॥ युधिष्ठिर उवाच । हन्त पृच्छामि ते तस्मादाचार्य शृणु मे वचः । इत्युक्त्वा व्यथितो राजा नोवाच गतचेतनः ॥ ७३ ॥ सञ्जय उवाच । तं गौतमः प्रत्युवाच विज्ञायास्य विवक्षितम् । अवध्योऽहं महीपाल युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥७४॥ प्रीतस्तेऽभिगमेनाहं त्रिजयन्तव नरा-

करके इसप्रकार कहने लगे कि–॥ ६८॥ हे निर्दोष गुरुजी ! युद्ध करने के लिये मैं आपकी आज्ञा मांगता हूं, क्योंकि–आपकी आज्ञा पाकर मैं सब शत्रुओं को जीत लूंगा ॥६९ ॥ कृपाचार्यने कहा–हे महाराज! युद्ध करनेकी इच्छावाले तुम मेरे पास न आये होते तो मैं प्रायः तुम्हारे पराजयका तुम्हें शाप दे देता ॥ ७० ॥ पुरुष धनका दास है, परन्तु धन किसीका दास नहीं है, हे महाराज ! यही सत्य है, कौरवोंने मुझे अर्थसे बांध लिया है ।७१। इसलिये हे कुरुनन्दन ! तुम युद्ध करो, इसके लिये मेरी सम्मति है और नपुंसककी समान मुझे भी औरोंकी तुल्य कहना पड़ता है, कि युद्धके सिवाय तुम मुझसे चाहे सो मांगलो ॥७२॥ युधिष्ठिरने कहा, कि–हे महाराज ! इसलिये ही मैं आपसे पूछता हूं, आप मेरी बात सुनिये, दुःखी तथा अचेत हुए राजा युधिष्ठिर इतना कहकर आगे को कुछ न बोल सके ॥७३॥सञ्जय कहता है कि–हे धृतराष्ट्र ! इसप्रकार धर्मराजकी इच्छाको जानकर कृपाचार्य बोले, कि हे राजन् ! युद्धमें तो मैं कभी मर ही नहीं सकता, परन्तु तुम्हारे आनेसे प्रसन्न होकर मैं कहता, हूं, कि–तुम युद्ध करके विजय पाओ ॥ ७४ ॥ मैं निरन्तर तुम्हारे विजय

भिप । आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७५ ॥ एतच्छ्रुत्वा महाराज गौतमस्य विशाम्पते । अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट् ॥ ७६ ॥ स शल्यमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् । उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ७७ ॥ अनुमानये त्वां दुर्धर्ष योत्स्ये विगतकल्मषः । जयेयन्तु परान् राजन्ननुज्ञातस्त्वया रिपून् ॥ ७८ ॥ शल्य उवाच । यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः । शपेयं त्वां महाराज पराभावाय वै रणे ॥७९॥ तुष्टोऽस्मि पूजितश्चास्मि यत्त् कांक्षसि तदस्तु ते । अनुजानामि चैव त्वां युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥८० ॥ ब्रूहि चैव परं वीर केनार्थः किं ददामि ते । एवं गते महाराज युद्धादन्यत् किमिच्छसि

की ही चिन्ता करूँगा, यह बात मैं सत्य कहता हूं ॥ ७५ ॥ हे महाराज ! कृपाचार्यकी इस बातको सुन कर और उनकी आज्ञा लेकर राजा युधिष्ठिर जहां मद्रदेशका राजा था तहां आये ॥७६॥ और उनको प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके अपने कल्याण के लिये मद्रराज शल्यसे कहने लगे, कि—॥ ७७ ॥ हे तेजस्वी! मुझे पाप न लगे इस प्रकार आपके साथ युद्ध करनेके लिये मैं आपकी आज्ञा लेनेको आया हूं, क्योंकि—आपकी आज्ञा मिलजाने पर ही मैं शत्रुओंका पराजय कर सकूँगा ॥ ७८ ॥ इस पर मद्रदेशके राजा शल्यने उनसे कहा, कि—हे महाराज ! युद्धके लिये निश्चय करनेवाले तुम यदि इस समय मेरे पास नहीं आये होते तो मैं तुम्हारे नाशके लिये संग्राममें तुम्हें शाप देदेता ॥ ७९ ॥ परन्तु तुमने यहां आकर मेरा सत्कार किया है इसकारण मैं पूरा प्रसन्न हूं और कहता हूं कि—तुम्हारी इच्छायें सफल हों तथा तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, कि तुम युद्ध करोगे तो विजय पाओगे ॥ ८० ॥ और हे वीर ! हे महाराज ! तुम्हें मुझसे और भी जो कुछ कहना हो सो मुखसे कहो, बताओ तुम्हें युद्धके सिवाय क्या चाहिये, मैं क्या दूँ ?

॥ ८१ ॥ अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ८२ ॥ करिष्यामि हि ते कामं भागिनेय यथेप्सितम् ॥ ब्रवीम्यतः क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ ८३ ॥ युधिष्ठिर उवाच । मन्त्रयस्व महाराज नित्यं मद्धितमुत्तमम् । कामं युद्ध्यपरस्यार्थे वरमेतं वृणोऽम्यहम् ॥ ८४ ॥ शल्य उवाच । किमत्र ब्रूहि साह्यन्ते करोमि नृपसत्तम । कामं योत्स्ये परस्यार्थे बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥८५ ॥ युधिष्ठिर उवाच । स एव मे वरः शल्य उद्योगे यस्त्वया कृतः। सूतपुत्रस्य संग्रामे कार्यस्तेजोवधस्त्वया ॥ ८६ ॥ शल्य उवाच । सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितम् । गच्छ युध्यस्व विश्रब्धः प्रतिजाने वचस्तव ॥८७॥ सञ्जय उवाच । अनुमान्याथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम् ।

॥ ८१ ॥ पुरुष अर्थका दास है परन्तु अर्थ किसीका दास नहीं है, यही सत्य है, कौरवोंने मुझे अर्थसे बाँधलिया है ॥ ८२ ॥ इसलिये ही हे कुरुनन्दन ! मैं नपुंसककी समान ऐसा कह रहा हूं युद्धके सिवाय तुम्हें चाहिये सो माँगलो, हे भानजे ! मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा ॥ ८३ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे महाराज! आप नित्य मेरा उत्तम हित चाहते रहो और शत्रुके लिये युद्ध करो, यही मैं माँगता हूं ॥ ८४ ॥ शल्यने कहा कि-हेराजेन्द्र ! धनसे मैं कौरवोंके पक्षमें रहनेके लिये बँध गया हूं अर्थात् मैं उन के लिये इच्छानुसार युद्ध करूँगा. इसके सिवाय कहो मैं तुम्हारी और क्या सहायता करूँ ॥८५॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया, कि-हे शल्य ! वही मेरा वर है, कि-तुमने जो सहायता उद्योगमें दी थी, तैसे ही अब सूतपुत्र (कर्ण) के संग्राममें तुम उसके तेज (उत्साह) का नाश करना ॥ ८६ ॥ शल्यने कहा, कि-हे कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा जैसा विचार है उसके अनुसार ही तुम्हारी आशा पूरी होगी और तुमने जो वचन मांगा है उसको भी मैं पूरा करूँगा ॥ ८७ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे धृतराष्ट्र ! मद्रदेश

निर्जगाम महासैन्याद् भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ८८ ॥ वासुदेवस्तु राधेयमाहवेऽभिजगाम वै । तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे गदाग्रजः ॥ ८६ ॥ श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात् किल न योत्स्यसे । अस्मान् वरय राधेय यावद् भीष्मो न हन्यते ॥ ९० ॥ हते तु भीष्मे राधेय पुनरेष्यसि संयुगम् । धार्त्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत् समम् ॥ ६१ ॥ कर्ण उवाच । न विप्रियं करिष्यामि धार्त्तराष्ट्रस्य केशव । त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्य्योधनहितैषिणम् ॥ ९२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्त्तत भारत । युधिष्ठिर-पुरोगैश्च पाण्डवैः सह सङ्गतः॥९३॥ संजय उवाच॥ अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत् पाण्डवाग्रजः । योऽस्मान् वृणोति तमहं वरये साहाय्यकारणात् ॥ ६४ ॥ अथ तान् समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्र-

के राजा अपने मामा शल्यका इसप्रकार सन्मान करके कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ अपने महासेनादलमेंको लौट दिये ॥ ८८ ॥ दूसरी ओर पाण्डवोंके लिये गदके बड़े भाई कृष्ण भी महासंग्राममें कर्णके पास जाकर उससे कहनेलगे कि—॥ ८९ ॥ हे कर्ण ! मैंने सुना है, कि भीष्म जीके द्वेषके कारण तू युद्ध नहीं करेगा, यदि ऐसा हो तो हे राधाके पुत्र ! तू हमको वर दे कि–जबतक भीष्म नहीं मारेजायँगे तबतक मैं नहीं लडूंगा, (हमारे पक्षमें आजा) और भीष्मजीके मारजाने पर यदि तेरा चित्त चाहे तो तू धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सहायता करनेके लिये युद्ध करना ॥ ९० ॥ ९१ ॥ कर्णने कहा, कि–हे केशव ! मैं दुर्योधनका हितैषी हूं, इसकारण चाहे प्राण जाते रहें मैं उसका अप्रिय काम नहीं करूँगा, इस बात को आप समझे रहिये, ॥ ९२ ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे भारत ! इस बातको सुनकर श्रीकृष्ण लौट आये और युधिष्ठिर सहित पाण्डवोंसे आमिले ॥ ९३ ॥ तदनन्तर युधिष्ठिरने सेनाके मध्यमें पुकार कर सबसे कहा, कि–जो हमें चाहता होगा, उसको सहाय ताके लिये हम भी चाहेंगे ॥ ९४ ॥ यह बात सुनकर प्रसन्न

वीत् । प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ९५ ॥ अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान् । युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥ ९६ ॥ युधिष्ठिर उवाच । एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान् । युयुत्सो वासुदेवश्च वयञ्च ब्रूम सर्वशः ॥ ९७ ॥ वृणोमि त्वां महाबाहो युद्ध्यस्व मम कारणात् । त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥ ९८ ॥ भजस्वास्मान् राजपुत्र भजमानान् महाद्युते । न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ९९ ॥ सञ्जय उवाच । ततो युयुत्सुः कौरव्यान् परित्यज्य सुतांस्तव । जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम् ॥ १०० ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा संप्रहृष्टः सहानुजः । जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत् कनकोज्ज्वलम् ॥ १०१ ॥ प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे स्वरथान् पुरुषर्षभाः

हुआ। युयुत्सु कुन्तीके पुत्र धर्मराज युधिष्ठिरसे कहने लगा, कि–॥ ९५ ॥ हे महाराज ! मुझ निर्दोषको आप यदि प्रेमभावसे चाहते हों तो मैं आपकी ओरसे दुर्योधनादिके साथ लडूंगा ॥ ९६ ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया, कि–हे महाबाहु युयुत्सु ! हमारी ओर चला आ, हम सब, यह श्रीकृष्ण तथा दूसरे लोग भी मिलकर तेरे मूर्ख भाइयोंके साथ युद्ध करेंगे, मैं तुझे चाहता हूं, इसलिये तू मेरी ओरसे युद्धकर, प्रतीत होता है, कि–धृतराष्ट्रको भी तुझ से ही पिण्ड मिलेगा और वंश चलेगा, हे परमकान्ति वाले राजकुमार ! तू हममें आमिल, अपने भाइयोंकी समान दुष्ट बुद्धि वा अधर्मी न बन ॥ ९७—९९ ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे महाराज ! तदनन्तर तुम्हारे पुत्रोंको त्यागकर युयुत्सु नगाड़ा बजवाता हुआ पाण्डवोंके पक्षमें चला गया ॥ १०० ॥ फिर युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ सोनेकी समान चमकदार कवच पहरा, सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ योधा भी अपने अपने रथोंपर चढ़ गये तथा पहिलेकी समान सेनाको व्यूहरचना

ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥ १०२ ॥ अवादयन् दुन्दुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान् । सिंहनादांश्च विविधान् विनेदुः पुरुषर्षभाः ॥ १०३ ॥ रथस्थान् पुरुषव्याघ्रान् पाण्डवान् प्रेक्ष्य पार्थिवाः । धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे तदा ॥ १०४ ॥ गौरवं पाण्डपुत्राणां मान्यान् मानयताञ्च तान् । दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ॥ १०५ ॥ सौहृदञ्च कृपाञ्चैव प्राप्तकालं महात्मनाम् । दयाञ्च ज्ञातिषु परां कथयांचक्रिरे नृपाः ॥ १०६ ॥ साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षणाः ॥ १०७ ॥ म्लेच्छाश्चार्य्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा । वृत्तं तत् पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ १०८ ॥ ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्च सहस्रशः । शंखांश्च गोक्षीरनिभान् दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः ॥ १०९ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मादि-संमानने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

में खड़ी करके सब सैंकड़ों नगाड़े और सहनाइयें बजाने लगे, तथा बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे, पुरुषोंमें सिंहसमान पाण्डवों को रथमें बैठे हुए देखकर धृष्टद्युम्न आदि राजे बड़े आनन्दमें भरगये ॥ १०१ ॥१०४॥ मान्यपुरुषोंका मान करने वाले पांडवों के गौरवको देखकर सब लोग उनकी वारंवार पूजा करने लगे और सौहृद, कृपा और दयाको चाहतेहुए साधु २ कहकर उन की स्तुति करने लगे रणभूमिमें इकट्ठे हुए म्लेच्छ और आर्यपुरुष कीर्त्तिवाले पांडवोंकी मन और हृदयको हर्ष देनेवाली वाणियें सुनकर आनन्दित हुए तथा उनके दुःख भरे चरित्रको सुनकर गद्गद होकर रोनेलगे ॥ १०५ ॥१०८॥ फिर उदारचित्त पांडव-पक्षके योधा आनन्दमें भरगये तथा और सैंकड़ों तथा हजारों बड़ी २ भेरिये तथा गौके दूधकी समान गौरवर्णके शङ्खोंको बजाने लगे ॥ १०९ ॥ तैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । एवं व्यूढेष्वनीपु मामकेष्वितरेपु च । के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवा नु किम् ॥१॥ संजय उवाच । भ्रातृभिः सहितो राजन् पुत्रो दुःशासनस्तव । भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥२॥ तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः । भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ ३ ॥ क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविपाणिकाः । भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिःस्वनाः ४ उभयोः सेनयोर्ह्यासंस्ततस्तेऽस्मान् समाद्रवन् । वयं तान् प्रति नर्दन्तस्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ५ ॥ महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये समागमे पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः । चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ ६ ॥ नरेन्द्रनागाश्वरथाकुलानाम-

---

धृतराष्ट्र कहते हैं, कि–हे सञ्जय ! इसप्रकार जब मेरी और शत्रुओंकी सेनाकी व्यूहरचना होगयी तब कौरव और पांडवोंमेंसे पहिले किसने प्रहार किया ॥ १ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि–हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुःशासन भाइयोंको साथ लेकर भीष्मजी को आगे किये हुए सेनासहित (पहिले) आगे बढ़ा ॥ २ ॥ इसी प्रकार भीमसेनको आगे करके प्रसन्न मनवाले सब पांडव भी भीष्मजीके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे आगेको बढ़े ॥ ३ ॥ उस समय योधाओंके सिंहनाद, किलर शब्द ककच, सींग, भेरी, मृदङ्ग, घोड़े तथा हाथियोंके शब्द दोनों सेनाओंमें होरहे थे, फिर पाण्डवोंने हमारी सेनापर धावा किया, तब हमने भी सिंहनाद करते हुए उनके ऊपर धावा किया और दोनोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ जैसे वन पवनसे कम्पायमान होता है तैसे ही आमने सामने आकर उग्र प्रहार करने वाले कौरव और पांडवोंके बड़े बड़े सेनादल शङ्ख और मृदङ्गोंके शब्दोंसे कम्पायमान होरहे थे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! अशुभ मुहूर्त्तमें परस्पर आमने सामने जुटे हुए और रथ, घोड़े तथा हाथियोंसे भरे हुए दोनों सेना-

भ्यागतानामशिवे मुहूर्त्ते । बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धुताना-
मिव सागराणाम् ॥७॥ तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद्द गोवृषो यथा ॥ ८ ॥ शंखदुन्दुभि-
निर्घोषं वारणानां च बृंहितम् । सिंहनादश्च सैन्यानां भीमसेन-
रवोऽभ्यभूत् ॥६॥ हयानां हेषमाणानामनीकेषु सहस्रशः । सर्वा-
नभ्यभवच्छब्दान् भीमस्य नदतः स्वनः ॥ १० ॥ तं श्रुत्वा निनदं
तस्य सैन्यास्तव वितत्रसुः । जीमूतस्येव नदतः शक्राशनिसमस्वनम्
॥ ११ ॥ वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः । शब्देन तस्य
वीरस्य सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ १२ ॥ दर्शयन् घोरमात्मानं महा-
भ्रमिव नादयन् । विभीषयंस्तव सुतान् भीमसेनः समभ्ययात् १३
तमायान्तं महेष्वासं सोदर्य्याः पर्य्यवारयन् । छादयन्तः शरव्रातै-

दलोंका शब्द वायुसे उछलते हुए समुद्रकी गर्जनाकी समान होने
लगा ॥ ७ ॥ और रोमाञ्च खड़े करने वाले इस सेनाओंका घोर
शब्द होनेके समय महाबाहु भीमसेन वृषभकी समान गरजता
था ॥ ८ ॥ शंख, दुन्दभियोंके शब्द, हाथियोंकी चिंघाड़ें और
सेनाओंके सिंहनाद ये सब भीमके सिंहनादसे हार मानने
लगे ॥ ६ ॥ और गरजते हुए भीमसेनका शब्द सेनाओंमें हींसते
हुए हजारों घोड़ोंके शब्दको दबा रहा था ॥ १० ॥ इन्द्रके वज्र
की समान शब्द वाले मेघकी तुल्य गरजते हुए भीमसेनकी दहाड़
को सुनकर तुम्हारी सेनाके योधा डरने लगे ॥ ११ ॥ जैसे सिंह
की दहाड़को सुनकर हिरन मल मूत्र करने लगते हैं तैसे ही उस
वीरकी दहाड़से तुम्हारी सेनाके हाथी घोड़े आदि वाहन मल
मूत्रका त्याग करने लगे ॥१२॥ अपने घोर स्वरूपको प्रकट करता
हुआ महामेघकी समान गर्जना करता हुआ तथा तुम्हारे पुत्रोंको
भयभीत करता हुआ भीमसेन आगेको बढ़नेलगा ॥ १३ ॥ और
बड़ाभारी धनुष लेकर आते हुए भीमसेनको जैसे मेघ सूर्यको

मेघा इव दिवाकरम् ॥ १४ ॥ दुर्योधनश्च पुत्रास्ते दुर्मुखो दुःसहः शल्यः । दुःशासनश्चातिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृपः ॥१५॥ विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः । पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥ महाचापानि धुन्वन्तो मेघा इव सविद्युतः । आददानाश्च नाराचान्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ १७ ॥ अथ ते द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः । नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १८ ॥ धार्त्तराष्ट्रान् प्रति ययुरर्दयन्तः शितैः शरैः । वज्रैरिव महावेगैः शिखराणि धराभृताम् ॥ १९ ॥ तस्मिन् प्रथमसंग्रामे भीमज्यातलनिःस्वने । तावकानां परेषां च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ॥ २० ॥ लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ । निमित्तवेधिनां चैव शरानुत्सृजतां भृशम् ॥ २१ ॥ नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा । विनिश्चेरुः शरा दीप्ता ज्योतींषीव

ढक देता है तैसे ही तुम्हारे पुत्रोंने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया॥१४॥ तुम्हारे पुत्र दुर्योधन, दुर्मुख, दुःसह, शल्य, अतिरथी दुःशासन, राजा दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, महारथी विकर्षण, पुरुमित्र, जय, भोज, वीर्यवान् सोमदत्तका पुत्र आदि ये सब बिजली सहित मेघोंकी समान बड़े २ धनुषोंको चढ़ा कर कैंचुलीरहित विषधर सर्पोंकी समान बाणोंको छोड़ने लगे ॥ १५-१७ इसीप्रकार द्रौपदीके पुत्र, सुभद्राका पुत्र महारथी अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न तथा पार्षत आदि जैसे वज्रसे पहाड़ोंके शिखरोंपर प्रहार करते हों तैसे तुम्हारे पुत्रोंके ऊपर प्रहार करते हुए सामने आकर खड़े होगये॥ १८ ॥ १९ ॥ इसप्रकार भयानक प्रत्यञ्चाओं (तांतों)के शब्दसे यह प्रथम संग्राम हुआ, उस समय तुम्हारी तथा पांडवोंकी सेनामेंके किसी वीरने पीछेको पैर नहीं रक्खा ॥ २० ॥ हे भरतसत्तम ! वारम्वार बाण छोड़कर निशानोंको बींधनेवाले द्रोणाचार्यके शिष्योंकी बाण छोड़नेकी चतुराई मैंने देखी है ! टंकार करनेवाले धनुषोंका शब्द एक सा चलरहा था और आकाशमेंसे जैसे तारे गिरें तैसे चलते हुए बाण गिरते थे

नभस्तलात् ॥ २२ ॥ सर्वे त्वन्ये महीपालाः प्रेक्षका इव भारत । ददृशुर्दर्शनीयं तं भीमं ज्ञातिसमागमम् । ॥ २३ ॥ ततस्ते जात-संरम्भाः परस्परकृतागसः । अन्योन्यस्पर्धया राजन् व्यायच्छन्त महारथाः ॥२४॥ कुरुपाण्डवसेने ते हस्त्यश्वरथसंकुले । शुशुभाते रणेऽतीव पटे चित्रार्पिते इव ॥२५॥ ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रगृहीत-शरासनाः । सहसैन्याः समापेतुः पुत्रस्य तव शासनात् ॥ २६ ॥ युधिष्ठिरेण चादिष्टाः पार्थिवास्ते सहस्रशः । विनर्दंतः समापेतुः पुत्रस्य तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥ उभयोः सेनयोस्तीव्रः सैन्यानां स समागमः । अंतर्धीयत चादित्यः सैन्येन रजसा वृतः ॥ २८ ॥ प्रयुद्धानां प्रभग्नानां पुनरावर्त्तिनामपि । नात्र स्वेषां परेषां वा विशेषः समदृश्यत ॥२९॥ तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्त्तमाने महाभयें ।

॥ २१ ॥ २२ ॥ हे भारत ! उस समय और राजे तो दर्शकों (तमाशाइयों) की समान संबन्धियोंके आपसमें होनेवाले इस देखने योग्य भयानक युद्धको केवल देखते ही थे ॥ २३ ॥ परन्तु जिनके हृदयोंमें क्रोधाग्नि सुलग रही थी वह परस्परके अपराधी सब महारथी डाहके साथ आपसमें युद्ध कररहे थे ॥ २४ ॥ हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई कौरव और पांडवोंकी सेना मानो वस्त्र पर चित्रत की हुई सी रणभूमिमें शोभा पारही थी २५ फिर तुम्हारे पुत्रोंकी आज्ञासे सब राजे हाथमें धनुष लेकर अपनी सेनासहित पांडवोंके ऊपर टूट पड़े ॥ २६ ॥ तैसे ही युधिष्ठिरकी आज्ञासे उनके पक्षके हजारों राजे भी गर्जना करते हुए तुम्हारे पुत्रोंकी सेना पर टूट पड़े ॥ २७ ॥ दोनों सेनाओंके योधाओंका समागम बड़ा तीव्र होगया दोनों सेनाओंमें वारम्वार उड़ीहुई रजसे सूर्य भी ढकगया ॥ २८ ॥ युद्ध करके घायल हुए और आगे पीछे हुए योधाओंमें अपना कौन और पराया कौन है यह पहिचान नहीं रही थी ॥ २९ ॥ इस महाभयङ्कर घोर युद्धमें सब सेनाको लांघते हुए तुम्हारे पिता भीष्मजी अद्वितीय शूरताके

अतिसर्वाण्यनीकानि पिता तेऽभिव्यरोचत ॥ ३० ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि युद्धारम्भे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सञ्जय उवाच । पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो विशाम्पते । प्रावर्त्तत महाघोरं राज्ञां देहावकर्त्तनम् ॥ १ ॥ कुरूणां सृञ्जयानां च जिगीषूणां परस्परम् । सिंहानामिव संह्रादो दिवमुर्वीञ्च नादयन् ॥ २ ॥ आसीत् किलकिलाशब्दस्तलशङ्खरवैः सह । जज्ञिरे सिंहनादाश्च शूराणां प्रतिगर्ज्जताम् । तलत्राभिहताश्चैव ज्याशब्दा भरतर्षभ । पत्तीनां पादशब्दश्च वाजिनां च महास्वनः ॥ ४ ॥ तोत्राङ्कुशनिपातश्च आयुधानां च निःस्वनः । घण्टाशब्दश्च नागानामन्योऽन्यमभिधावताम् ॥५॥ तस्मिन् समुदिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे । बभूव रथनिर्घोषः पर्ज्जन्यनिनदोपमः ॥ ६ ॥ ते मनः

तेजसे शोभा पारहे थे ॥३०॥ चौवालीसवां अध्याय समाप्त ४४

सञ्जय कहता है, कि–हे राजन् ! उस भयङ्कर दिनके पहिले भागमें महाघोर युद्ध होने लगा और उसमें राजाओंके शरीर कटने लगे ॥ १ ॥ उस समय परस्पर विजयकी इच्छावाले कौरव सृञ्जय तथा अन्य राजाओंके सिंहकी दहाड़की समान शब्द पृथिवी और आकाशमे भर कर गूँजने लगे ॥ २ ॥ शंखोंके शब्दों के साथ मिले हुए किल किल शब्द, धनुषोंकी प्रत्यञ्चाओंके शब्द और गरजने वाले वीर पुरुषोंके सिंहनाद होरहेथे ॥ ३ ॥ हे भरतसत्तम ! हाथोंमें पहरे हुए चमड़ेके मोजोंमें टकराते हुए धनुषोंके रोदोंके शब्द, पैदलोंके पैरोंके शब्द, घोड़ोंकी हिनहिनाहटके शब्द ॥४॥ लकड़ी और अंकुशोंके प्रहारके तथा आयुधोंके शब्द तथा आमने सामने दौड़ते हुए हाथियोंके घंटोंके शब्द होरहे थे ॥ ५ ॥ जिसको सुनकर रोमाञ्च खड़े होजायँ ऐसे इस मिले हुए घोर शब्दके साथ मेघोंके गरजनेके समान रथोंके पहियों का घरघराहट भी होरही थी ॥ ६ ॥ ऊँची २ ध्वजाओंवाले

क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः । पांडवानभ्यवर्त्तन्त सर्वे एवो-च्छ्रितध्वजाः ॥७॥ अथ शान्तनवो राजन्नभ्यधावद्धनञ्जयम् । प्रगृह्य कार्मुकं घोरं कालदण्डोपमं रणे ॥८॥ अर्जुनोऽपि धनुर्गृह्य गांडीवं लोकविश्रुतम् । अभ्यधावत तेजस्वी गाङ्गेयं रणमूर्धनि ॥६॥ तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ । गांगेयस्तु रणे पार्थं विध्वा नाकम्प-यद्बली ॥ १० ॥ तथैव पांडवो राजन् भीष्मं नाकम्पयद्युधि । सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ११ ॥ तयोः सम-भवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम् ॥ १२ ॥ आनर्च्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम् । तौ शराचितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ ॥१३॥ वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ । अभिमन्युर्महेष्वासं बृहद्बलमयोधयत्

तुम्हारे पक्षके राजे मनको बड़ा कठोर करके जीनेकी आशाको छोड़ते हुए पाण्डवोंके ऊपर टूट पड़े ॥७॥ हे राजन् ! उस समय कालके दण्डकी समान घोर धनुषको हाथमें लेकर भीष्मपिता-मह अर्जुनके ऊपरको झपटे ॥ ८ ॥ और तेजस्वी अर्जुन भी रणमें अपने प्रसिद्ध गांडीव धनुषको लेकर भीष्मजीके ऊपरको दौड़ा ॥ ६ ॥ इसप्रकार कुरुकुलमें सिंहसमान भीष्म और अर्जुन एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे लड़ने लगे बलवान् भीष्म जीने अर्जुनको बींध डाला तो भी वह जरा भी नहीं डिगा १०· तथा हे राजन् ! अर्जुनने भीष्मजीको बींध डाला तो भी भीष्मजी युद्धमें कम्पायमान नहीं हुए सात्यकी प्रचंड धनुष बाण लेकर कृतवर्माके साथ लड़नेको चढ़ आया ॥११॥ उन दोनोंका महाघोर युद्ध होने लगा सात्यकीने कृतवर्माको और कृतवर्माने सात्यकी को इसप्रकार दोनों एक दूसरेको बाणोंसे बींधे डालते थे ॥१२॥ महाबली सात्यकी और कृतवर्मा बाणोंसे बिंधे हुए देहसे वसन्त ऋतुमें फूलोंसे लाल २ दीखते हुए ढाकके वृक्षकी समान शोभा पारहे थे, बड़ाभारी धनुष धारण करके खड़े हुए बृहद्बलके साथ

॥ १४ ॥ ततः कोसलराजासावभिमन्योर्विशाम्पते। ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिञ्च व्यपातयत् ॥ १५ ॥ सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथी। बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः ॥ १६ ॥ अथापराभ्यां भल्लाभ्यां शिताभ्यामरिमर्दनः। ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम् ॥ १७ ॥ अन्योऽन्यञ्च शरैः क्रुद्धौ ततक्षाते परस्परम्। मानिनं समरे दृप्तं कृतवैरं महारथम् ॥ १८ ॥ भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत्। तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ ॥ १९ ॥ अन्योऽन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे तौ वीक्ष्य तु महात्मानौ कृतिनौ चित्रयोधिनौ ॥ २० ॥ विस्मयः सर्वभूतानां समपद्यत भारत। दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महाबलम् ॥ २१ ॥ अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः। तस्य माद्री-

---

अभिमन्यु लड़ रहा था ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इस झपाझपीमें कोसलराजने युद्धमें अभिमन्युकी ध्वजाको काट डाला तथा सारथीको मारडाला ॥ १५ ॥ इस प्रकार अपनी ध्वजा और सारथीका नाश हुआ देखकर अभिमन्यु क्रोधमें भरगया और राजा बृहद्बलको नौ बाणोंसे बींधडाला ॥ १६ ॥ और शत्रुओंको मसल डालने वाले उस वीरने तीखे भल्ल नामके दो बाणोंको लेकर एकसे ध्वजाको और एकसे सारथि तथा रथके पहियोंकी रक्षा करने वालेको मार डाला ॥ १७ ॥ इसप्रकार अभिमानी, बड़ेभारी ऐश्वर्यवाले तथा घमण्डमें भरे हुए ये दोनों महारथी तीखे बाणोंसे रणमें परस्पर एक दूसरेको दुर्बल कर रहे थे ॥ १८ ॥ भीमसेन तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके साथ युद्ध कर रहा था, कुरुकुलमें मुख्य तथा मनुष्योंमें सिंहकी समान यह दोनों बली वीर ॥ १९ ॥ रणमें एक दूसरेके ऊपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे और हे भारत ! सब प्रकारके युद्धमें चतुर इन महात्माओंको देख कर प्राणीमात्रको आश्चर्य हुआ, दुःशासन महाबली नकुलके सामने होकर लड़ने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥

सुतः केतुं सशरञ्च शरासनम् ॥ २२ ॥ चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत । अथैनं पंचविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् २३ पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे । तुरङ्गांश्चिच्छिदे बाणैर्ध्वज-ञ्चैवाभ्यपातयत् ॥२४॥ दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम् । विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे ॥ २५ ॥ सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महारणे । शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम् ॥ २६ ॥ तावन्योऽन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ । त्रासयेतां शरै-र्घोरैः कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ ॥ २७ ॥ युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्र-राजानमभ्ययात् । तस्य मद्राधिपश्चापं द्विधा चिच्छेद मारिष २८ तदपास्य धनुश्छिन्नं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । अन्यत् कार्मुकमादाय

और मर्मस्थानोंको फोड़नेवाले अनेकों बाणोंसे उसको बींध डाला तब हे भारत! माद्रीकुमारने हँसते २ में उसकी ध्वजाको और बाणसहित धनुष आदिको अपना बाण छोड़कर काट डाला और फिर छोटे २ पचीस बाण मारे ॥ २२ ॥ २३ ॥ यह देखते ही किसीसे हार न माननेवाले तुम्हारे पुत्रने बाण छोड़कर नकुलके घोड़ोंको मारडाला और उसकी ध्वजाको भी काट डाला ॥ २४ ॥ और दुर्मुख, महाबली तथा युद्धमें बड़ा उद्योग करने वाले सहदेवके ऊपरको झपटा और बाणोंकी वर्षा करके उसको बींधडाला ॥ २५ ॥ ऐसा होने पर महावीर सहदेव ने दुर्मुखके सारथीको अति तीखे बाणसे मारडाला ॥ २६ ॥ युद्धमें पीछेको न हटने वाले और बदला लेनेकी इच्छा वाले और तथा एक दूसरेके ऊपर चढ़ आने वाले ये दोनों आपसमें घोर बाणोंसे त्रास देने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन्! राजा युधिष्ठिर स्वयं मद्रदेशके राजाके साथ युद्ध करनेमें गुथ गये और मद्रराज ने बाणसे उनके धनुषके दो टुकड़े कर डाले ॥२८॥ इस टूटे हुए धनुषको फेंककर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने दूसरे मजबूत और

वेगवद् बलवत्तरम्॥२६॥ततो मद्रेश्वरं राजा शरैः सन्नतपर्वभिः। छादयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ३०॥ धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणमभ्यद्रवत भारत। तस्य द्रोणः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ॥३१॥ त्रिधा चिच्छेद समरे पांचाल्यस्य तु कार्मुकम्। शरञ्चैव महाघोरं कालदण्डमिवापरम्॥ ३२॥ प्रेषयामास समरे सोऽस्य काये न्यमज्जत। अथान्यद्धनुरादाय सायकांश्च चतुर्दश॥ ३३॥ द्रोणं द्रुपदपुत्रस्तु प्रतिविव्याध संयुगे। तावन्योऽन्यं सुसंक्रुद्धौ चक्रतुः सुभृशं रणम्॥ ३४॥ सौमदत्तिं रणे शङ्खो रभसं रभसो युधि। प्रत्युद्ययौ महाराज तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ३५॥ तस्य वै दक्षिणं वीरो निर्बिभेद रणे भुजम्। सौमदत्तिस्ततः शङ्खं जत्रुदेशे समाहनत्॥ ३६॥ तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं विशाम्पते।

सर सर बाण छोड़नेवाले धनुषको हाथमें लेकर॥ २६॥ खड़ा रह, खड़ा रह, ऐसा कह कर मद्रराजको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया॥ ३०॥ हे भारत! धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करने को आया, तब क्रोधमें भरेहुए द्रोणाचार्यने शत्रुओंके प्राण लेने वाला तथा अति दृढ़॥ ३१॥ पाञ्चालराजका धनुष काट डाला और कालदण्डकी समान एक महाघोर बाण मारा, जो उसके शरीरमें घुसगया और तुरतही उस टूटे हुए धनुषको फेंक कर द्रुपदपुत्रने नया धनुष लेकर उस पर चौदह बाण चढ़ाये॥३२॥ ॥ ३३॥ उनसे द्रोणको संग्राममें बींध डाला, इसप्रकार क्रोधमें भरे हुए वह दोनोंजने महादारुण युद्ध कररहे थे॥ ३४॥ हे महाराज! महावेगवान् सौमदत्तिके सामने युद्ध करनेको शंख बड़े वेग से आया तथा खड़ा रह खड़ा रह ऐसा कहने लगा॥३५॥ इस रणमें वीर शङ्खने सौमदत्तिकी दाहिनी भुजा काट डाली और सौमदत्तिने भी अपने शत्रुकी कण्ठकी हँसली पर प्रहार किया॥ ३६॥ हे राजन्! पहिले जैसा इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध हुआ था, तैसा ही संग्राममें उन्मत्त हुए इन दोनों वीरोंका दारुण

दस्मयोः समरे पूर्वं वृत्रवासवयोरिव ॥ ३७ ॥ वाल्हीकन्तु रणे क्रुद्धं क्रुद्धरूपो विशाम्पते । अभ्यद्रवदमेयात्मा धृष्टकेतुर्महारथः ॥ ३८ ॥ वाल्हीकस्तु रणे राजन् धृष्टकेतुममर्षणः । शरैर्बहुभिरानर्च्छत् सिंहनादमथानदत् ॥३९॥ चेदिराजस्तु संक्रुद्धो वाल्हीकं नवभिः शरैः । विव्याध समरे तूर्णं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ४०॥ तौ तत्र समरे क्रुद्धौ नर्दन्तौ च पुनः पुनः । समीयतुः सुसंक्रुद्धावङ्गारकवुधाविव ॥ ४१ ॥ राक्षसं रौद्रकर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः । अलम्बुषं प्रत्युदियाद् वलं शक्र इवाहवे ॥४२॥ घटोत्कचस्ततः क्रुद्धो राक्षसं तं महावलम् । नवत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्दारयामास भारत ॥ ४३ ॥ अलम्बुषस्तु समरे भैमसेनिं महावलम् । वहुधा दारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४४॥ व्यभ्राजेतां ततस्तौ तु संयुगे शरविक्षतौ । यथा देवासुरे युद्धे वलशक्रौ महावलौ॥४५॥

युद्ध होने लगा ॥ ३७ ॥ वाल्हीकको संग्राममें कोपायमान हुआ देख वड़ा साहसी धृष्टकेतु कोपमें भरकर उसके ऊपर चढ़ आया ॥३८॥ हे राजन् ! फिर शत्रुके तेजको न सह सकनेवाला धृष्टकेतु सिंहकी समान गरजकर उनके ऊपर वाण छोड़ने लगा ॥३९॥ उन्मत्त हुआ एक हाथी जैसे दूसरे हाथीको दांतोंसे घायल कर डालता है तैसे ही चेदीके राजाने वाल्हीकको नौ वाणोंसे युद्धमें वींध डाला, संग्राममें इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए और गरजते हुए ये दोनों जने मङ्गल और वुधकी समान एक दूसरेके ऊपर धावा करने लगे ॥ ४० ॥४१ ॥ जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके साथ युद्ध किया था तैसे ही घोर पराक्रमी घटोत्कच राक्षसराज अलंवुषके साथ युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥ हे भारत ! क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने महावली राक्षसराजको नव्वे वाण मारकर चीरडाला ॥४३॥ तव अलंवुषने भी युद्धमें भीमसेनके वली पुत्रको अच्छे प्रकारसे नमे हुए फलकेवाले वाणोंसे वींध डाला ॥ ४४ ॥ इस प्रकार वाणोंसे विंधे हुए दोनों जने देवता और असुरोंके युद्धमें शोभा

शिखण्डी समरे राजन् द्रौणिमभ्युद्ययौ बली । अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः शिखण्डिनमुपस्थितम् ॥ ४६ ॥ नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं विध्वा ह्यकंपयत् । शिखंड्यपि ततो राजन् द्रोणपुत्रमताडयत् ॥ ४७ ॥ सायकेन सपीतेन तीक्ष्णेन निशितेन च । तौ जघ्नतुस्तदान्योऽन्यं शरैर्बहुविधैर्मृधे ॥ ४८ ॥ भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः । अभ्ययात्त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ४९ ॥ विराटो भगदत्तन्तु शरवर्षेण भारत । अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाचलम् ॥ ५० ॥ भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम् छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥ ५१ ॥ बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ । तं कृपः शरवर्षेण छादयामास भारत ॥ ५२ ॥ गौतमं कैकयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याभ्यपूरयत् । तावन्योऽन्यं हयान्

पाने वाले वृत्रासुर और इन्द्रकी समान शोभा पाने लगे ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! बलवान् शिखण्डी द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाके साथ युद्ध करनेको गया, तब कोप करके पास आये हुए शिखण्डीको ॥ ४६ ॥ तीखे बाण छोड़कर अश्वत्थामाने बींध डाला और हे राजन् ! शिखण्डी भी अति तीखे बाणोंसे ॥ ४७ ॥ द्रोणकुमारके ऊपर प्रहार करने लगा और इस प्रकार वह दोनों योधा आपसमें बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ ४८ ॥ बड़ीभारी सेनाका अधिपति राजा विराट रणमें भगदत्तके सामने आकर खड़ा होगया, हे राजन् ! उन दोनोंका बड़ा घोर युद्ध हुआ था ॥ ४९ ॥ हे भारत जैसें मेघ पहाड़के ऊपर वर्षा करता है, तैसे कोपमें भरे हुए राजा विराटने भगदत्तके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया ॥ ५० ॥ और जैसे उदय हुए सूर्यको मेघमण्डल ढक लेता है तैसे ही भगदत्तने राजा विराटको बाणों के जालसे ढकदिया ॥ ५१ ॥ शारद्वतके पुत्र कृप राजा कैकेय बृहत्क्षत्रके सामने आए तब हे भारत ! कृपाचार्यने उसको बाणों की वर्षासे ढक दिया ॥ ५२ ॥ और कैकेय राजाने भी क्रोधमें

हत्वा धनुश्छित्वा च भारत ॥ ५३ ॥ विरथावसियुद्धाय समीयतु-रमर्षणौ । तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ॥ ५४ ॥ द्रुपदस्तु ततो राजन् सैन्धवं वै जयद्रथम् । अभ्युद्ययौ हृष्टरूपो हृष्टरूपं परन्तपः ॥ ५५ ॥ ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं त्रिभिराशुगैः । ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत ॥ ५६ ॥ तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् । ईक्षणप्रीतिजननं शुक्राङ्गारकयोरिव ॥ ५७ ॥ विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम् । अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ५८ ॥ विकर्णः श्रुतसोमन्तु विध्वा नाकम्पयच्छरैः । श्रुतसोमो विकर्णश्च तदद्भुतमिवाभवत् ॥५९॥ सुशर्माणं नरव्याघ्र-श्चेकितानो महारथः । अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धः पाण्डवार्थे पराक्रमी

आकर कृपाचार्यके ऊपर बाणोंकी वर्षा बरसा डाली, हे भारत ! इस परस्परकी उन्नतिको न सहने वाले ये दोनों राजे आपस के घोड़े और धनुषोंको काट कर रथहीन होगये और अन्तमें तलवारोंका युद्ध करनेके लिये आमने सामने खड़े होगए वह उनका युद्ध बड़ा भयानक हुआ था ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ राजा द्रुपद सिंधुराज जयद्रथके सामने चढ़ आया तब शत्रुओंको सन्ताप देने वाले तथा युद्धके लिये अति उत्साह वाले सिन्धुराज जयद्रथने तीन बाण राजा द्रुपदके ऊपर छोड़े और द्रुपदने भी तैसे ही युद्धमें जयद्रथको बाणोंसे घायल करडाला ॥५५-५६॥ शुक्र और मङ्गल नामके दो ग्रहोंकी समान उन दोनों राजाओंका युद्ध बड़ा भयानक और देखनेकी उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाला हुआ था ॥ ५७ ॥ और हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र विकर्ण, वेगवान् घोड़ोंसे जुड़े हुए रथमें बैठकर महाबली सुतसोमके सामने युद्ध करनेको गया, तब उन दोनोंमें भी युद्धका आरम्भ होगया ॥५८॥ विकर्ण और सुतसोम इन दोनों जनोंने एक दूसरेको बाणोंसे घायल करडाला, परन्तु दोनोंमेंसे एक भी डिगा नहीं यह देख कर सबोंको अचरज हुआ ॥ ५९ ॥ और पांडवोंका पक्ष लेकर

॥ ६० ॥ सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम् । महता शर-वर्षेण वारयामास संयुगे ॥६१ ॥ चेकितानेऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे । प्राच्छादयत्तमिषुभिर्महामेघ इवाचलम् ॥ ६२ ॥ शकुनिः प्रतिविन्ध्यन्तु पराक्रान्तं पराक्रमी । अभ्यद्रवत राजेंद्र मत्तः सिंह इव द्विपम् ॥ ६३ ॥ यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः । व्यदारयत संग्रामे मघवानिव दानवम् ॥ ६४ ॥ शकुनिः प्रति-विन्ध्यन्तु प्रतिविंध्यस्तमाहवे । व्यदारयन् महाप्राज्ञः शरैः सन्नत-पर्वभिः॥६५॥ सुदक्षिणन्तु राजेंद्र काम्बोजानां महारथम् । श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे ॥६६॥सुदक्षिणस्तु समरे साहदेवं महा-रथम् । विध्वा नाकम्पयत वै मैनाकमिव पर्वतम्।६७। श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम्। शरैर्बहुभिरानर्च्छदारयन्निव सर्वशः

बलवान् चेकितान नामका महारथी राजा कोपमें भरकर राजा सुशर्माके सामने चढ़ आया ॥६०॥ और हे महाराज ! सुशर्माने महारथी राजा चेकितानको रणमें बाणोंकी वर्षासे आगेको बढ़ने से रोक दिया ॥ ६१ ॥ और फिर जैसे महामेघ वर्षासे पहाड़को छादेता है तैसे ही कोपमें भरे हुए राजा चेकितानने बाणोंकी वर्षा करके सुशर्माको ढकदिया ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! जैसे उन्मत्त हुआ सिंह हाथीके ऊपरको चढ़ा चला आता है तैसे ही पराक्रमी शकुनि प्रसिद्ध पराक्रम वाले प्रतिविन्ध्यके सामने आकर खड़ा हो गया ॥ ६३ ॥ तथा जैसे इन्द्र दानवोंको काटडालता है तैसे ही युधिष्ठिरके पुत्रने शकुनिको बाण मार कर घायल करडाला ६४ परन्तु महाबुद्धिमान् शकुनिने अपने ऊपर बाण छोड़ते हुए राजा प्रतिविन्ध्यको नमे हुए फलक वाले बाण मार कर घायल कर दिया ॥ ६५ ॥ हे राजेन्द्र ! कंबोजके महारथी राजा सुदक्षिणके सामने पराक्रमी श्रुतकर्मा आकर डट गया ॥ ६६ ॥ सुदक्षिणने बाणसे सहदेवके महारथी पुत्रको पीड़ित किया, परन्तु वह मैनाक पर्वतकी समान दृढ़तासे खड़ा ही रहा, जरा भी कम्पायमान नहीं हुआ ॥६७॥ किन्तु कोपमें भरा हुआ श्रुतकर्मा कांबोजके महा-

॥ ६८ ॥ इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषमरिंदमम् । प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परन्तपः ॥ ६९ ॥ आर्जुनिस्तस्य समरे हयान् हत्वा महारथः । ननाद बलवान् नादं तत् [illegible] न्यपूरयत् ॥ ७० ॥ श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान् । [illegible] गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥ ७१ ॥ विंदानुविन्दावावन्त्यौ कुन्ति[illegible] महा-रथम् । ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥ ७२ । तत्राद्भुत मपश्याम तयोर्वीरं पराक्रमम् । अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह ॥ ७३ ॥ अनुविंदस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत् । कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥ ७४ ॥ कुन्तिभोजसुत-श्चापि विंदं विव्याध सायकैः । स च तं प्रति विव्याध तदद्भुतमिवा-

---

रथी राजाको अनेकों बाण मार कर उसके सब शरीरको फाड़ता हुआसा युद्ध करनेलगा ॥ ६८ ॥ और शत्रुको संताप देनेवाला तथा रणभूमिमें सावधानीके साथ शत्रुके संग युद्ध करनेवाला इरावान्, अपने समान पराक्रमवाले श्रुतायुके सामने लड़ने को गया, महारथी अर्जुनके पुत्रने श्रुतायुके घोड़ोंको मारडाला और सिंहकी समान दहाड़ कर सब सेनाको शब्दसे भरदिया, तब श्रुतायुने कोप करके गदासे अर्जुनके पुत्रके घोड़ोंको मार डाला और दोनोंमें बड़ा भयानक युद्ध होने लगा ॥६९-७१॥ रणमें अपने पुत्र आदिके साथ आकर खड़े हुए महारथी राजा कुन्तीभोजके सामने अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द आकर खड़े होगये ॥ ७२ ॥ वह दृढ़तासे खड़े रहे, भिड़ गये और फिर सेनाको साथमें लेकर युद्ध करने लगे, इन दोनों राजकुमारोंका पराक्रम मैंने बड़ा घोर और अचरजमें डालने वाला देखा ॥ ७३ ॥ अनुविन्दने गदा लेकर कुन्तीभोजके ऊपर प्रहार किया तब तुरन्त ही कुन्तीभोजने उसको बाणोंसे ढक दिया ॥ ७४ ॥ और कुन्तीभोजके पुत्रने विन्दको बाणोंसे बींध दिया तब उसनेभी कुन्तीभोजके पुत्रके ऊपर तैसे ही बाण छोड़े, इस

भवत् ॥ ७५ ॥ केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान् पञ्च मारिष । ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥ ७६ ॥ वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम् । उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः॥७७॥ उत्तरश्चापि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः । चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ॥ ७८ ॥ तथैव शरवर्षेण उलूकं समविद्धयत । उलूकश्चापि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥७९॥ तयोर्युद्धं समभवद् घोररूपं विशाम्पते । दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योऽन्यमपराजितौ ॥ ८० ॥ एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम् । पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥८१॥ मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् । तत उन्मत्तवद्राजन् न प्राज्ञायत

प्रकार इन दोनोंका बड़ा अद्भुत युद्ध हुआ और हे राजन् ! केकयराजके पांच पुत्र, गान्धारराजके पांचों पुत्रोंके साथ, अपनी सेनाको लेकर युद्ध करने लगे ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ और तुम्हारा पुत्र वीरबाहु, उत्तर नाम वाले महारथी विराटकुमारके साथ युद्ध करनेको आया और उसके ऊपर तीखे बाण छोड़ने लगा, ॥ ७७ ॥ तब विराटका पुत्र भी उसके ऊपर बाण छोड़ने लगा, हे राजन् ! चेदिराज उलूकके साथ युद्ध करनेको आया और उसके बाण मारने लगा, यह देखकर उलूक भी उसके ऊपर सुन्दर परोंसे बँधेहुए बाण छोड़ने लगा, हे राजन् ! इस प्रकार उनका महाभयानक युद्ध होने लगा और आपसमें न जीतनेसे क्रोधमें भर कर वे एक दूसरेको चीरे डालते थे ॥ ७७—८० ॥ हे राजन् ! इसप्रकार रणभूमिमें तुम्हारी और शत्रुओंकी सेनाके हाथियोंके साथ हाथियोंके, घोड़ोंके साथ घोड़ोंके और पैदलोंके साथ पैदलोंके हजारों द्वन्द्वयुद्ध होने लगे, कितनी ही देरतक देखनेमें मीठा मालूम होने वाला यह मिलाहुआ युद्ध बड़ी भयानकता के साथ होता रहा और सबोंके ही उन्मत्त होजानेके कारण

किंचन ॥ ८२ ॥ गजो गजेन समरे रथिनश्च रथी ययौ। अश्वोऽश्वं समभिनायात् पदातिश्च पदातिनम् ॥ ८३ ॥ ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत। शूराणां समरे तत्र समासाद्येतरेतरम् ॥ ८४ ॥ तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः। मैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुरसमं भुवि ॥ ८५ ॥ ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चापि मारिष। अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥ ८६ ॥ तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते रथवारणपत्तयः। सादिनश्च नरव्याघ्र युध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ८७ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

सञ्जय उवाच। राजन् शतसहस्राणि तत्र तत्र पदातिनाम्। निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत्ते वक्ष्यामि भारत॥१॥न पुत्रः पितरं जज्ञे न पिता

कोई किसीको पहिचान नहीं सकता था ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ हाथी हाथीके साथ, रथी रथीके साथ, घुड़सवार घुड़सवारके साथ, और पैदल पैदलोंके साथ लड़ते थे ॥ ८३ ॥ इसप्रकार अपने२ शत्रुओंके सामने आये हुए शूरोंका बड़ा ही घोलमेल और भयानक युद्ध होनेलगा ॥ ८४ ॥ देवता और दैत्योंके युद्धकी समान पृथिवीपर होते हुए इस दारुण युद्धको आकाशमें इकट्ठेहुए देवर्षि सिद्ध और चारण आदि देखते थे ॥ ८५ ॥ हे राजन्! इसप्रकार युद्ध चलनेसे हजारों हाथी, हजारों रथ, हजारों घोड़े और हजारों पैदल आदिका युद्ध बड़ी ही उलटी रीतिसे होने लगा, अर्थात् रथी पैदलोंके साथ,पैदल हाथियोंके साथ और हाथीसवार घुड़सवारोंके साथ भिड़गये और हे नरेन्द्र! रथ, हाथी, पैदल और घोड़े उस ही स्थान पर खड़े रहकर वारम्वार युद्ध करते थे ८६। ॥ ८७ ॥ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे भारत! तहां लाखों पैदलोंने मर्यादा को छोड़कर युद्ध किया, उसका वर्णन अब मैं तुम्हें सुनाता हूं ॥ १ ॥ तहां पिताने पुत्रको नहीं गिना, पुत्रने पिताको नहीं

पुत्रमौरसमून भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलम् ।२।न मातुलश्च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा । आविष्टा इव युध्यन्ते पांडवाः कुरुभिः सह ॥ ३ ॥ रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन् रथैः । अभञ्जयन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ ॥ ४ ॥ रथेपाश्च रथेपाभि· कूबरा रथकूबरैः । सङ्गतः सहिता केचित् परस्परजिघांसवः ॥५॥ न शेकुश्चलितुं केचित् सन्निपत्य रथा रथैः। प्रभिन्नास्तु महाकायाः सन्निपत्य गजा गजैः ॥ ६॥ बहुधा दारयन् क्रुद्धा विषाणैरितरे- तरम् । स तोरणपताकैश्च वारणा वरवारणैः ॥ ७ ॥ अभिसृत्य महाराज वेगवद्भिर्महागजैः । दन्तैरभिहतास्तत्र चुक्रुशुः परमातुराः ॥ ८ ॥ अपिनीनाश्च शिक्षाभिस्तोत्रांकुशसमाहताः । अनभिन्नाः

गिना, भाईने भाईको नहीं गिना, मामाने भानजेको नहीं गिना और भानजेने मामाको नहीं गिना तथा मित्रने मित्रको नहीं गिना पाण्डव कुरुओंके साथ ऐसे लड़ रहे थे, कि—मानो इनके ऊपर भूतका आवेश चढ़ रहा है ॥ २ ॥ ३ ॥ हे भरतसत्तम ! रथ ले कर रथियोंकी सेनाके ऊपर चढ़ाई करनेवाले कितने ही नरवीरों ने रथोंके धुरे तोड़ डाले ॥ ४ ॥ आमने सामने आये हुए रथोंके जुओंसे जुए और कूबरोंसे कूबर अटक२ कर टूट रहे थे,परस्परके प्राण लेनेकी इच्छासे दौड़तेहुए योधा बहुत ही पास आजाते थे और आमने सामने आयेहुए रथ भी न आगेको ही बढ़सकते थे और न पीछेको ही हट सकते थे, मद टपकाने वाले बड़े२ हाथी भी अपने सामने आये हुए हाथियोंको मूसलकी समान दांतोंसे [illegible] अनेकों स्थानोंमें चीररहे थे और अंबारी तथा पताका वाले [illegible] हाथी, महावेगवाले उन्मत्त हाथियोंके दांतोंकी मारसे दुःख [illegible] [illegible]जनकरूपसे चिंघाड़ रहे थे तथा रणकी शिक्षा देकर चतुर किये हुए अनेकों छोटे२विना मदके हाथी मस्तकों पर भाले और अंकुशोंका प्रहार होने पर मद टपकानेवाले बड़े२

प्रभिन्नानां सन्मुखाभिमुखा ययुः ९ प्रभिन्नैरपि संसक्ताः केचित्तत्र महागजाः । क्रौञ्चवन्निनदं कृत्वा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ १० ॥ सम्यक् प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः । ऋष्टितोमरनाराचै-र्निरुद्धा वरवारणाः॥११॥ प्रणेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः । प्राद्रवंत दिशः केचिन् नदन्तो भैरवान् रवान्१२गजानां पादरक्षा-स्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः। ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥१३॥ गदाभिमुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः । आयसैः परि-घैश्चापि निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः ॥ १४ ॥ प्रगृहीतैः सुसंरब्धा द्रव-माणास्ततस्ततः । व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥ राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः । प्रत्यदृश्यन्त शूरा-णामन्योऽन्यमभिधावताम् ॥ १६॥ अवक्षिप्तावधूतानामसीनां वीर-

हाथियोंके सामने आकर डटे रहते थे ॥ ८–९ ॥ और मद टप-काने वाले कितने ही हाथियोंके साथ लड़ते हुए बड़े२ हाथी घायल होजानेके कारण क्रौंचपक्षीकी समान चिंघाड़ते हुए चारों ओरको भागते थे ॥ १० ॥ इसप्रकार शिक्षा दिये हुए तथा कपोल और मुखमेंसे मद टपकानेवाले कितने ही हाथी, छोटे२ भाले तोमर और बाण मर्मस्थानोंमें लगनेसे भूमिपर गिरकर प्राण त्यागते थे और कितने ही चिंघाड़ें मारकर इधर उधरको भागते थे ॥११-१२॥ हाथियोंकी रक्षा करनेवाले और जिनका विशाल वक्षःस्थल है ऐसे दृढ़ प्रहार करनेवाले पैदल क्रोधमें भरकर हाथों में ऋष्टि, धनुष, चमचमाते हुए फरसे, गदा, मूसल, भिंदिपाल, तोमर, लोहेके दंडे तथा तीखी और चमकती हुई तलवारें लेकर परस्परके प्राण लेनेकी इच्छासे टूट पड़े ॥ १३–१५ ॥ इन आपस में भिड़े हुए शूरोंकी मनुष्योंके खूनसे रङ्गी हुई तलवार बड़ी शोभा पारही थीं ॥ १६ ॥ वीर पुरुषोंके हाथोंसे खिंचकर हिलतीं तथा शत्रुओंके मर्मस्थानोंमें पड़ती हुई तलवारोंकी बड़ी डरावनी

बाहुभिः । सञ्जज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥ १७ ॥ गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः। दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः ॥ १८ ॥ तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम् शुश्रुवुर्दारुणा वाचः प्रेतानामिव भारत ॥ १९॥ हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः। हंसैरिव महावेगैरन्योऽन्यमभिविद्रुताः २० तैर्विमुक्तामहाभासा जम्बूनदविभूषणाः। आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः संपेतुर्भुजगोपमाः ॥ २१ ॥ अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान्। शिरांस्याददिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः॥ २२ ॥ बहूनपि हयारोहान् भल्लैः सन्नतपर्वभिः। रथी जघान सम्प्राप्य बाणगोचरमागतान्॥ २३ ॥ नवमेघप्रतीकाशांश्चाक्षिप्य तुरगान् गजाः। पादैरेव विमृद्नन्ति मत्ता कनकभूषणाः ॥ २४॥ पाट्यमानेषु कुम्भेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः । प्रासैर्विनिहताः केचिद्

झनझनाहट होरही थी ॥१७॥ हे भारत ! गदा मूसल आदिसे तोड़े हुए तलवारोंके प्रहारसे कटे हुए, दांतोंकी मारसे घायल हुए, हाथियोंके कुचले हुए और आपसमें एक दूसरेको पुकारते हुए जहां तहां सहस्रों मनुष्योंके प्रेतोंकी समान डकरानेके दारुण शब्द सुनाई आते थे ॥ १८—१९ ॥ चँवर और कलगी वाले वेगवान् घोड़ों पर बैठे हुए सवार अपने हंसोंकी समान घोड़ोंको एक दूसरेके सामनेको दौड़ाते थे ॥ २० ॥ सुवर्णसे जड़े, चमचमातेहुए तथा अतितीखे उनके छोड़े हुए बाण आदि आयुध जहरी सांपोंकी समान बड़े वेगसे जाकर गिरते थे ॥ २१ ॥ बड़े वेगवाले घोड़ों पर चढ़े हुए कितने ही वीर घुड़सवार बड़े२ रथियोंके ऊपरको उछलकर उनके शिर काटते थे ॥ २२ ॥ एक बाणकी समान समीप आयेहुए बहुतसे घुड़सवार और रथी नमीहुई नोकवाले भल्ल नामके बाणोंसे एक दूसरेको काटते थे ॥ २३ ॥ गहने पहरे, नवीन मेघोंकी समान सोनेके मतवाले हाथी घोड़ोंको गिरा कर पैरोंसे कुचलते थे ॥ २४ ॥ और गण्डस्थलों

विनेदुः परमातुराः ॥ २५ ॥ साश्वारोहान् हयान् कांश्चिदुन्मथ्य वरवारणाः । सहसा चिक्षिपुस्तत्र संकुले भैरवे सति ॥ २६ ॥ साश्वारोहान् विषाणाग्रैरुत्क्षिप्य तुरगान् गजाः । रथौघानभिमृद्नन्तः सध्वजानभिचक्रमुः॥२७॥ पुंस्त्वादतिबलत्वाच्च केचित्तत्र महागजाः । साश्वारोहान् हयान् जघ्नुः करैः सचरणैस्तथा ॥२८॥ अश्वारोहैश्च संमरे हस्तिसादिभिरेव च । प्रतिमानेषु गात्रेषु पार्श्वेष्वभि च वारणान् । आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः संपेतुर्भुजगोपमाः ॥ २९ ॥ नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च । निपेतुर्विमलाः शक्त्यो वीरबाहुभिरर्पिताः ॥ ३०॥ महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशाम्पते । द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मच्छदैरपि ॥३१॥ विकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजघ्नुः परान् रणे । अभिप्लुतमभिक्रु-

पर तथा दूसरे अंगों पर भास पड़ने से अनेकों हाथी चिंघाड़ रहे थे ॥ २५ ॥ थोड़ी ही देरमें युद्ध बड़ा भयानक होउठा, बड़े२ हाथी एकसाथ घुड़सवारोंको उनके घोड़ों सहित पकड़कर भूमि पर पटकने लगे ॥ २६ ॥ घोड़ोंको और घुड़सवारोंको अपने दांतोंके अग्रभागसे गिरा कर उनके ऊपर दौड़ते हुए हाथी ध्वजाओं सहित रथोंका भी चूरा करने लगे ॥ २७ ॥ मद टपकाने वाले कितने ही हाथी सवारों सहित घोड़ोंको दांतोंसे चीरकर सूंड और पैरोंके तले दबाकर कुचल रहे थे ॥ २८ ॥ हाथी और घोड़ों पर बैठे हुए योधाओंके छोड़े हुए तेजस्वी तीखे और सर्पों की समान सर सर करते हुए बाण हाथी और घोड़ोंके मस्तकोंमें तथा दूसरे अङ्गोंमें खचाखच भोंकने लगे ॥ २९ ॥ वीर पुरुषों की छोड़ी हुई शक्तियें योधाओंके और घोड़ोंके शरीरोंपरके लोहेके कवचोंको तथा उनके शरीरोंको फोड़कर धूमकेतुकी समान जिधर तिधर गिरने लगीं, बाघ और चीतेके चमड़ेसे मढ़े हुए म्यानोंमें से चमचमाती हुई तलवारोंको खेंचकर योधा अपने सामनेवालोंको काटनेमें जुट गये जिनकी एक२ भुजा शस्त्रोंसे कट

द्रुमेकपार्श्वविदारितम् ॥३२॥ विदर्शयन्तः सम्पेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः । केचिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपि रथान् करैः ॥ ३३ ॥ विकर्षन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः सर्वशब्दगाः । शंकुभिर्दारिताः केचित् संभिन्नाश्च परश्वधैः ॥ ३४ ॥ हस्तिभिर्मृदिताः केचित् चुण्णाश्चान्ये तुरङ्गमैः । रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ताश्च परश्वधैः ३५ व्याक्रोशन्त नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान । पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄंश्च सह बन्धुभिः ॥३६ ॥ मातुलान् भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे । विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत ॥ ३७ ॥ बाहुभिश्चापरे छिन्नैः पार्श्वेषु च विदारिताः । क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः ॥ ४८ ॥ तृषापरिगताः केचिदल्पसत्त्वा विशाम्पते । भूमौ निपतिताः संख्ये मृगयाञ्चक्रिरे जलम् ॥ ३९॥

गई है ऐसे योधा अपने सामने आते हुए योधाओंके ऊपर क्रोध करके ढाल तलवार और फरसे आदि लेकर झपटने लगे, कितने ही हाथी अपनी सूँढोंकी झपेटोंसे गिराकर घोड़ों और रथों को घसीटने लगे तथा पीछे पड़कर आक्षेप करनेवावाले योधाओं के शब्दोंको सुनकर चारों ओरको दौड़ भाग करने लगे, हे राजन्! कोई शंकु फरसे आदिसे घायल हुए ॥ ३०—३४ ॥ और कोई हाथियोंके मसलेहुए, कोई घोड़ोंके कुचलेहुए, रथोंके पहियों से और फरसोंसे कटे हुए मनुष्य हे राजन्! अपने बन्धुसमान सेवकोंको पुकारने लगे, कोई पुत्रोंको पुकारने लगे कोई पिताओं को पुकारने लगे, कोई कुटुम्बियों और भाइयोंको पुकारने लगे ॥ ३५—३६ ॥ उस संग्राममें कोई मामाओंको, कोई भानजोंको तथा कोई शत्रुओंको ही पुकारने लगे, हे भारत! कितनों ही की आतें निकलकर बिखर गयीं कितनों ही की जांघे टूट गयीं ॥३७ ॥ किन्हींका भुजायें कट गयीं किन्हीके खभे चिर गये, वह व्याकुल तथा प्यासे होकर जीनेकी आशासे डकराते हुए दीखने लगे ॥ ३८ ॥ और हे राजन्! कितने ही अधमरे हुए योधा रणभूमिमें पड़े२ बड़ोभारी पिवास लगने से जल२

रुधिरौघपरिक्लिन्नाः । क्लिश्यमानाश्च भारत । व्यनिन्दन् भृश-मात्मानं तव पुत्रांश्च सङ्गतान् ॥ ४० ॥ अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम् । नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष ॥ ४१ ॥ तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम् । आदश्य दशनैश्चापि क्रोधात् स्वरदनच्छदम् ॥ ४२ ॥ भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ति च परस्परम् । अपरे क्लिश्यमानास्तु शरार्त्ता व्रणपीडिताः ॥४३ ॥निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्त्वा महाबलाः । अन्ये च विरथाः शूरा रथमन्यस्य संयुगे ॥ ४४ ॥ प्रार्थयन्तो निपतिताः संक्षुण्णा वरवारणैः । अशोभन्त महाराज सपुष्पा इव किंशुकाः ॥ ४५ ॥ सम्बभूवुरनीकेषु बहवो भैरवस्वनाः । वर्त्तमाने महाभीमे तस्मिन् वीरवरक्षये ॥ ४६ ॥ निजघान पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।

पुकारने लगे ॥ ३९ ॥ हे भारत ! रुधिरकी कीचमें पड़े पीड़ा पातेहुए कितने ही योधा अपनी जातिकी और रणमें इकट्ठे हुए तुम्हारे पुत्रोंकी निन्दा करने लगे ॥ ४० ॥ और हे राजन् ! दूसरे कितने ही शूर क्षत्रिय आपसमें एक दूसरेको घायल करके हथि-यार नहीं छोड़ते थे तथा विलाप भी नहीं करते थे ॥ ४१ ॥ किन्तु जहां गिरे थे तहांके तहां ही पड़े हुए हर्षके साथ परस्परका तिरस्कार कर रहे थे और क्रोधके मारे दांतोंसे होठोंको चावरहे थे ॥ ४२ ॥ और त्यौरी चढ़ाकर एक दूसरेके मुखकी ओरको देखते थे तथा लगे हुए बाण और घावोंसे पीड़ा पाते हुए कितने ही दृढ़ और महाबली योधा कुछ भी न कह कर शान्तभावसे पड़े थे, युद्धमें रथों परसे गिरेहुए और हाथियोंके पैरोंतले कुचले हुए कितने ही योधा अपने रथोंमें उठा कर डाल देनेके लिये दूसरोंसे प्रार्थना करते थे, हे महाराज ! इसप्रकार गिरेहुए योधा फूलोंसे लाल २ दीखते हुए ढाकके वृक्षोंकी समान दीखते थे ॥ ४३ ॥ ॥ ४५ ॥ इसप्रकार दोनों सेनाओंमें बड़े भयानक शब्द होरहे थे ज्यों२ समय बीतता गया, त्यों२ वह संग्राम बड़ा भयानक होने

स्वस्रीयो मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलः॥४७॥ सखा सखायं च तथा सम्बन्धी बान्धवं तथा। एवं युयुधिरे तत्र कुरवः पाण्डवैः सह ॥४८॥ वर्त्तमाने तथा तस्मिन् निर्मर्य्यादे भयानके। भीष्ममासाद्य पार्थानां वाहिनी समकम्पत ॥ ४९॥ केतुना पञ्चतारेण तालेन भरतर्षभ। राजतेन महाबाहुरुच्छ्रितेन महारथे। बभौ भीष्मस्तदा राजंश्चन्द्रमा इव मेरुणा ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सञ्जय उवाच। गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे। वर्त्तमाने तथा रौद्रे महावीरवरक्षये ॥ १ ॥ दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः। भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः ॥ २ ॥ एतैरतिरथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभः। पाण्डवानामनीकानि

लगा सहस्रों वीर योधाओंका नाश होने लगा, पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, मामा भानजेको, भानजा मामाको, मित्र मित्रको और संबन्धी संबन्धियोंको मारने लगे, हे महाराज ! इसप्रकार कौरव और पाण्डव आपसमें युद्ध कर रहे थे ॥ ४६–४८ ॥ इसप्रकार जब युद्ध भयानक और मर्यादाहीन होगया तब भीष्मजीके सामने खड़ी हुई पाण्डवोंकी सेना कांपने लगी ॥ ४९ ॥ हे भरतसत्तम ! पांच ताराओंके चिन्हवाली, चांदीकी बनीहुई, रथकी ऊँची ध्वजासे भीष्म पितामह ऐसी शोभा पाने लगे जैसे मेरु पहाड़से चन्द्रमा शोभा पाता है ॥ ५० ॥ छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि–इस दारुण दिनका पहिला भाग अनेकों वीरोंका नाश करने वाले युद्धमें बीत गया तब आपके पुत्र दुर्योधन की आज्ञासे दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविंशति ये सब भीष्मजीके पास जाकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ इन पांच अतिरथियोंसे रक्षा किये हुए महारथी भीष्म

विजगाहे महारथः ॥ ३ ॥ चेदिकाशिकरूपेषु पञ्चालेषु च भारत । भीष्मस्य बहुधा तालश्चलत्केतुरदृश्यत ॥ ४ ॥ स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान् । निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५ ॥ नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ । भृशमार्त्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्मणि ताडिताः ॥ ६ ॥ अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद् भीष्मरथं प्रति ॥७॥ जाम्बूनदविचित्रेण कर्णिकारेण केतुना । अभ्यवर्त्तत भीष्मञ्च तांश्चैव रथसत्तमान् ॥ ८ ॥ स तालकेतोस्तीक्ष्णेन केतुमाहत्य पत्रिणा । भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चानुरथैः सह ॥ ९ ॥ कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः । विध्वा नवभिरानर्च्छच्छिताग्रैः

पितामहने धीरे२ पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करना आरम्भ किया ॥ ३ ॥ हे भारत ! भीष्मजीकी फहराती हुई तालकेतु ध्वजा चेदी, काशी, करूष और पाञ्चालोंकी सेनामें फड़कने लगी ॥४॥ फिर भीष्मजी शत्रुओंके शिर ध्वजा और घोड़ों सहित रथोंको भल्ल नामके बाण छोड़कर काटने लगे ॥ ५ ॥ और हे भरतसत्तम ! रथपर मानो नृत्य कर रहे हों ऐसी चंचलतासे युद्ध करते हुए भीष्मजीके बाणोंसे घायल हुए अनेकों हाथी भयानक चीखें मारने लगे ॥ ६ ॥ इसप्रकार युद्ध होरहा था, कि-इतनेमें ही कोपमें भराहुआ अभिमन्यु पीले रङ्गके घोड़ोंसे जुतेहुए रथमें बैठकर भीष्मजीके सामने आया ॥ ७ ॥ सुवर्णसे चित्र विचित्र मालूम होनेवाले और कनेरके वृत्तकी समान शोभायमान केतु वाले रथमें बैठकर अभिमन्यु भीष्मजी और उन पांच महारथियों के सामने आकर खड़ा होगया ॥ ८ ॥ और जिनके रथपर ताड़ के चिन्हवाली ध्वजा फहरा रही थी उनकी ध्वजाको बाणसे काट कर अभिमन्यु भीष्मजी और उनकी रक्षा करनेवाले पांच महारथीयोंके साथ युद्ध करने लगा ॥ ९ ॥ उसने कृतवर्माके एक,

प्रपितामहम् ॥ १० ॥ पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक् प्रणिहितेन च ।
ध्वजमेकेन विव्याध जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ११ ॥ दुर्मुखस्य तु
भल्लेन सर्वावरणभेदिना । जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नत-
पर्वणा ॥ १२ ॥ धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्त्तस्वरविभूषितम् । कृपस्य
निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः ॥ १३ ॥ जघान परमक्रुद्धो
नृत्यन्निव महारथः । तस्य लाघवमुद्वीक्ष्य तुतुषुर्देवता अपि ॥१४॥
लब्धलक्ष्यतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्म मुखारथाः । मूर्तिमन्तममन्यन्त
साक्षादिव धनञ्जयम् ॥ १५ ॥ तस्य लाघवमार्गस्थमलातसदृश-
प्रभम् । दिशः पर्य्यपतच्चापं गाण्डीवमिव घोषवत् ॥ १६ ॥ तमा-
साद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः । विव्याध समरे तूर्णमार्ज्जुनिं
परवीरहा ॥ १७ ॥ ध्वजञ्चास्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः ।

शल्यके पांच और पितामहके नौ तीखे बाण मारे ॥ १० ॥ तथा
कान तक धनुषको खेंचकर जोरके साथ छोड़ेहुए बाणसे
सुवर्णसे मढ़ी हुई उनकी ध्वजाको काटडाला ॥ ११ ॥ और
चाहे तैसे कवचको तोड़डालनेवाले भल्ल नामके बाणसे
दुर्मुखके सारथीका शिर धड़से जुदा कर दिया ॥ १२ ॥
सुवर्णसे मढ़ाहुआ कृपाचार्यका धनुष काटडाला और महा-
रथी अभिमन्यु अत्यन्त कोपमें भरकर तीखे बाणोंसे उन सबोंके
ऊपर प्रहार करनेलगा, उसकी इस रणचातुरीको देखकर
देवताभी प्रसन्न होनेलगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसकी लक्ष्यको
वींध डालनेकी चालाकीको देखकर भीष्म आदि महारथी उसको
साक्षात् अर्जुनकी समानहीं मानने लगे ॥ १५ ॥ गांडीवकी
समान टङ्कारशब्द करने वाला उसका धनुष जब २ खेंचा और
छोड़ा जाता था तब तब बलती हुई बरेंटीकी समान वह चारों
दिशाओंमें फिरता था ॥ १६ ॥ जब अभिमन्यु इसप्रकार युद्ध
करने लगा तब शत्रुकी सेनाके वीरोंको मारने वाले भीष्मजीने
नौ बाण मार कर उसको घायल करदिया ॥१७॥ तथा व्रतधारी

सारथिश्च त्रिभिर्बाणैराजघान यतव्रतः ॥ १८ ॥ तथैव कृतवर्मा च कृपः शल्यश्च मारिष । विध्वा नाकम्पयत् कार्ष्णिं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १९ ॥ स तैः परिवृतः शूरो धार्त्तराष्ट्रैर्महारथैः । ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्चरथान् प्रति ॥२०॥ ततस्तेषां सहस्राणि निवार्य्य शरवृष्टिभिः । ननाद बलवान् कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजन् शरान् ॥ २१ ॥ तत्रास्य सुमहद्राजन् बाह्वोर्बलमदृश्यत । यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥२२॥ पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोऽपि प्राहिणोच्छरान् । स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युतान् शरान् ॥ २३ ॥ ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः । चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २४ ॥ स राजतो महास्कन्ध-

---

भीष्मजीने भल्ल नामके तीन बाणोंसे उसकी ध्वजाको काटडाला तथा और तीन बाण छोड़कर उसके सारथीको काटडाला ॥१८॥ तथा मैनाक पर्वतकी समान स्थिर अर्जुनके पुत्र अभिमन्युको, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य आदि बड़े २ बाण मारकर कंपायमान कररहे थे ॥ १९ ॥ परन्तु कौरवोंके महारथी योधाओंसे घिरे हुए अर्जुनके पुत्र वीर अभिमन्युने इन पांचों रथियोंके ऊपर बाण छोडना आरम्भ कर दिये ॥ २० ॥ और अपने बाणोंकी वर्षासे सामने वालोंके हजारों बाणोंको पीछे लौटाकर अभिमन्युने गरज कर भीष्म पितामहके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया ॥ २१॥ इसप्रकार युद्धमें प्रयत्न करनेवाले तथा भीष्म जीको बाणोंकी वर्षासे अकुला देने वाले अभिमन्युका बाहुबल वास्तवमें विशेषरूप प्रकाशित होने लगा ॥ २२ ॥ अभिमन्युको ऐसा पराक्रम करते हुए देखकर भीष्मजीने उसके ऊपर बाण छोडना आरम्भ किया और भीष्मजीके धनुषमेंसे छूटे हुए बाणोंको काट डाला ॥ २३ ॥ जिसका एकभी बाण खाली नहीं जाता था ऐसे वीर अभिमन्युने जब नौ बाण मार कर भीष्मजीकी ध्वजाको काट डाला तब सेनामें हाहाकार मच गया ॥ २४ ॥ हे भारत ! सुवर्णसे मँढीहुई भीष्मजीकी ताडके

स्तालो हेमविभूषितः । सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत ॥ २५ ॥ तं तु सौभद्रविशिखैः पातितं भरतर्षभ । दृष्ट्वा भीमो ननादोच्चैः सौभद्रमभिहर्षयन् ॥ २६ ॥ अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च । प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन् महाबलः ॥२७॥ ततः शरसहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः । अवाकिरदमेयात्मा तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २८ ॥ ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः । रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः ॥२९॥ विराटः सह पुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशाम्पते ॥ ३० ॥ तेषां जवेन पततां भीष्मः शान्तनवो रणे । पाञ्चाल्यं त्रिभिरानच्छेत् सात्यकिं नवभिः शरैः ॥ ३१ ॥ पूर्णायतविसृष्टेन क्षुरेण निशितेन च । ध्वजमेकेन चिच्छेद भीमसेनस्य पत्रिणा ॥ ३२ ॥ जाम्बूनदमयः श्रीमान् केसरी स नरोत्तमः ।

चिन्हवाली चांदीकी ध्वजा अभिमन्युके बाणसे कटकर पृथिवीपर टूट पड़ी ॥२५॥ और इसप्रकार अभिमन्युने भीष्मजीकी ध्वजाको काटडाला यह देख हे भरतसत्तम ! भीमसेन प्रसन्न होकर गरजता हुआ उसके ऊपर कलाई चढ़ाने लगा, परन्तु फिर महाबली भीष्मजीने महाभयानक रणमें बहुतसे दिव्य अस्त्र प्रकट किये ॥ २६—२७ ॥ और हजारों बाणोंके जालसे पितामहने अभिमन्युको ढक दिया यह काम बड़ा ही अद्भुत मालूम होता था ॥ २८ ॥ अभिमन्युकी यह दशा देखकर पाण्डवोंकी ओरके दश महारथी रथोंमें बैठकर उसकी रक्षा करनेको दौड़े ॥ २९ ॥ इनमें अपने पुत्रसहित राजा विराट धृष्टद्युम्न राजा द्रुपद, भीम, केकय देशके पांच कुमार और सात्यकी यह मुख्य थे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जब इन योधाओंने धावा किया तब शन्तनुके पुत्र भीष्मजीने पाञ्चालराजके तीन और सात्यकीके नौ बाण मारे और कान तक खेंचकर छोड़े हुए अतितेज एक बाणसे भीमसेनके रथकी ध्वजाको उड़ा दिया ॥३१॥ ३२ ॥ ज्योंही भीष्म

पपात भीमसेनस्य भीष्मेण मथितो रथात् ॥ ३३ ॥ ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा भीष्मं शान्तनवं रणे । कृपमेकेन विव्याध कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥ प्रगृहीताग्रहस्तेन वैराटिरपि दन्तिना । अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः ॥ ३५ ॥ तस्य वारणराजस्य जवेनापततो रथे । शल्यो निवारयामास वेगमप्रतिमं शरैः ॥ ३६ ॥ तस्य क्रुद्धः स नागेन्द्रो बृहतः साधुवाहिनः । पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरो हयान् ॥ ३७ ॥ स हताश्वे रथे तिष्ठन् मद्राधिपतिरायसीम् । उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमाम् ॥ ३८ ॥ तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः । स पपात गजस्कन्धात् प्रमुक्तांकुशतोमरः ॥ ३९ ॥ असिमादाय शल्योऽपि अवप्लुत्य रथोत्तमात् । तस्य वारणराजस्य चिच्छेदाथ महाकरम् ॥ ४० ॥ भिन्नमर्मा शरशतैश्छिन्नहस्तः स वारणः । भीममार्त्तस्वरं कृत्वा

जीकी काटीहुई सिंहके चिन्हवाली सोनेकी ध्वजा पृथिवी पर गिरी, कि—भीमसेनने शन्तनुनन्दन भीष्मजीको तीन बाणोंसे कृपाचार्यको एक बाणसे और कृतवर्माको आठ बाणोंसे बींध दिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ राजा विराटका कुमार उत्तर भी सूँड ऊपरको उठाकर दौड़तेहुए वेगवाले हाथीपर बैठकर मद्रराजके सामने चढ़ आया ॥ ३५ ॥ तब रथके ऊपरको भिड़े आते हुए इस मतवाले हाथीको देख शल्यने एक बाण मारकर उसको आनेसे रोकदिया ॥३६॥ तो भी क्रोधमें भरा हुआ वह हाथी पीछेको न हटा और उसने अपना पैर रथके अग्रभाग पर रखकर उसके चारों घोड़ों को मार डाला ॥ ३७ ॥ इसप्रकार विना घोड़ोंके रथमें बैठेहुए राजा शल्यने सर्पकी समान विषैली शक्ति उत्तरके माण लेनेके लिये छोड़ी ॥ ३८ ॥ इस शक्तिसे उत्तरका कवच कटगया और उसके बड़ाभारी घाव आया तथा वह अचेत होकर हाथी परसे नीचे गिर पड़ा और हाथमेंसे अंकुश तथा तोमर भी छूटगया ॥ ३९ ॥ फिर राजा शल्य रथमेंसे उतर पड़ा और तुरन्त ही तलवार लेकर उत्तरके हाथीकी सूँड काटडाली ॥ ४० ॥ मर्मस्थान

पपात च ममार च ॥४१॥ एतदीदृशकं कृत्वा मद्रराजो नराधिप । आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ ४२ ॥ उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा । कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥ ४३ ॥ श्वेतः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव । स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ ४४ ॥ अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं बली । महता रथवंशेन समंतात्परिवारितः ॥ ४५ ॥ मुञ्चन्बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति । तमापतंतं संप्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ ४६ ॥ तावकानां रथाः सप्त समंतात्पर्यवारयन् । मद्रराजमभीप्संतो मृत्योर्दंष्ट्रांतरं गतम् ॥४७॥ बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः । तथा रुक्मरथो राजन् शल्यपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४८ ॥ विंदानुविंदावावंत्यौ कांबोजश्च सुदक्षिणः । बृहत्क्षत्रस्य

में घाव होनेसे कटीहुई सूंडवाला वह हाथी चीखें मारता २ मर गया ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! ऐसा पराक्रम करके राजा शल्य तुरन्त कृतवर्माके रथमें चढ़ बैठा ॥ ४२॥ अपने भाई उत्तरको मरा देख कर तथा मद्रराज शल्यको कृतवर्माके साथ बैठाहुआ देखकर विराटके पुत्र श्वेतको क्रोध आगया और वह आहुति दियेहुए अग्निकी समान जल उठा, बली विराटकुमार इन्द्रके धनुषकी समान प्रबल धनुषको खेंचकर मद्रराजको मारडालनेके लिये दौड़ा और उसके साथ अनेकों योधा भी रथोंको लेकर उसको घेरतेहुए दौड़े ॥ ४३ ॥ ४५ ॥ और श्वेतकुमार राजा शल्यके रथपर बाणोंकी वर्षा करता२आगेको चला गया, मतवाले हाथीकी समान बलवाले इस कुमारको आता हुआ देखकर तुम्हारी ओरके सात रथी राजा शल्यको कालकी डाढ़में पड़ाहुआ देखकर उसकी रक्षा करनेके लिये उसके आगे पीछे रथोंको लेकर आखड़े हुए ४६ ॥ ४७॥ कौशलराज, बृहद्बल, मगधका राजा जयत्सेन, शल्यका पुत्र प्रतापी रुक्मरथ ॥ ४८ ॥ अवन्तीके कुमार विंद और अनुविंद, कांबोजका राजा सुदक्षिण और बृहत्क्षत्रका संबन्धी सिंधदेश

दायादः सैंधवश्च जयद्रथः ॥ ४९ ॥ नानावर्णविचित्राणि धनूंषि च महात्मनाम् । विस्फारितानि दृश्यंते तोयदेष्विव विद्युतः ॥ ५० ॥ ते तु बाणमयं वर्षं श्वेतमूर्धन्यपातयन् । निदाघांतेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगे जलम् ॥ ५१ ॥ ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्त भल्लैः सुतेजनैः । धनूंषि तेषामाच्छिद्य ममर्द पृतनापतिः ॥ ५२ ॥ निकृत्तान्येव तानि स्म समदृश्यन्त भारत । ततस्ते तु निमेषार्धात् प्रत्यपद्यन् धनूंषि च ॥ ५३ ॥ सप्त चैव पृषत्कांश्च श्वेतस्योपर्य्यपातयन् । ततः पुनरमेयात्मा भल्लैः सप्तभिराशुगैः । निचकर्त्त महाबाहुस्तेषां चापानि धन्विनाम् ॥ ५४ ॥ ते निकृत्तमहाचापास्त्वरमाणा महारथाः । रथशक्तीः परामृश्य विनेदुर्भैरवान् रवान् ॥ ५५ ॥ अन्वयुर्भरतश्रेष्ठ सप्त श्वेतरथं प्रति । ततस्ता ज्वलिताः सप्त महेंद्राशनिनिःस्वनाः ॥ ५६ ॥ अप्राप्ता सप्तभिर्भल्लैश्चिच्छेद

का राजा जयद्रथ ये सात योधा घनघटामें चमकतीहुई बिजलीकी समान धनुषोंको खेंचकर खड़े होगये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ और वर्षा कालमें मेघ जैसे पर्वतपर जल बरसाता है तैसे ही श्वेतकुमार पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५१ ॥ यह देखकर सेनापति श्वेतकुमारने भल्ल नामके सात बाणोंसे उनके धनुष काट डाले और उनको पीड़ा देनेलगा, हे भारत ! वह धनुष हमारी आंखोंके सामनेही कटे थे परन्तु एक आधे निमेषमात्रमें वे दूसरे धनुष लेकर श्वेत पर बाण छोड़ने लगे, परन्तु अप्रमेयात्मा श्वेतने भल्ल नाम के सात बाण छोड़कर उनके धनुष फिर काट डाले ॥ ५२-५४ ॥ अपने बाण कटजानेके कारणसे उन महारथियोंने हाथमें शक्तियें लेकर गर्जनाकी और वह शक्तियें श्वेतके ऊपर फेंकीं, परन्तु हे भरतसत्तम ! परम अस्त्रविद्याको जाननेवाले श्वेतकुमारने इन्द्रके वज्रकी समान सुसकारियें भरकर आती हुई उन शक्तियोंको सात बाण मारकर चूर २ करदिया और सब शरीरको फोड़

परमास्त्रवित् । ततः समादाय शरं सर्वकायविदारणम् ॥ ५७ ॥
माहिणोद्रथश्रेष्ठ श्वेतो रुक्मरथं प्रति । तस्य देहं निपतितो बाणो
वज्रातिगो महान् ॥ ५८ ॥ ततो रुक्मरथो राजन् सायकेन दृढा-
हतः । निषसाद रथोपस्थे कश्मलञ्चाविशन्महत् ॥ ५९ ॥ तं
विसंज्ञं विमनसं त्वरमाणस्तु सारथिः । अपोवाह न संभ्रान्तः सर्व-
लोकस्य पश्यतः ॥ ६० ॥ ततोन्यान् षट् समादाय श्वेतो हेम-
विभूषितान् । तेषां षण्णां महाबाहुर्ध्वजशीर्षाण्यपातयत् ॥ ६१ ॥
हयांश्च तेषां निर्भिद्य सारथींश्च परन्तप । शरैश्चैतान् समाकीर्य
प्रायाच्छल्यरथं प्रति ॥ ६२ ॥ ततो हलहलाशब्दस्तत्र सैन्येषु
भारत । दृष्ट्वा सेनापतिं तूर्णं यान्तं शल्यरथं प्रति ॥ ६३ ॥ ततो
भीष्मं पुरस्कृत्य तव पुत्रो महाबलः । वृतस्तु सर्वसैन्येन प्राया-
च्छ्वेतरथं प्रति ॥ ६४ ॥ मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मद्रराजममोचयत्

डालनेवाले एक बाणको धनुष पर चढ़ाकर रुक्मरथके मारा,
वज्रसे भी अधिक वेगवाला यह बाण आकर रुक्मरथके लगा
॥ ५६-५८ ॥ इसकारण वह रथसे नीचे गिर पड़ा और मूर्छा
आजानेसे अचेत होगया ॥ ५९ ॥ परन्तु उसी समय उसका
चालाक सारथी जरा भी न डरकर उस अचेत अवस्थामें ही
उसको रथमें डालकर दूर लेगया ॥ ६० ॥ फिर श्वेतकुमारने
और छः बाण लेकर शेष रहेहुए छः योधाओंकी ध्वजाओंके
अग्रभागोंको काटडाला ॥ ६१ ॥ और उनके घोड़ोंको तथा
सारथियोंको भी मारडाला और फिर छहोंजनोको बाणोंसे घेर
लिया, इस समय श्वेतकुमार राजा शल्यके रथकी ओरको आया
॥ ६२ ॥ हे भारत ! इस सेनापतिको शल्यके रथकी ओरको
आता हुआ देखकर तुम्हारी सेनामें हाहाकार मचगया ॥ ६३ ॥
हे भारत ! उस समय महाबल वाला तुम्हारा पुत्र, सब सेनाको
लेकर भीष्मजीको आगे कियेहुए श्वेतकुमारके रथके सामनेको
झपटा ॥ ६४ ॥ और मृत्युके मुखमें पड़ेहुए मद्रराजको छुटाने

ततो युद्धं समभवत् तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ६५ ॥ तावकानां परेषां च व्यतिपक्तरथद्विपम् । सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ॥६६॥ कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते । एतेषु नरसिंहेषु चेदिमत्स्येषु चैव ह । ववर्ष शरवर्षाणि कुरुवृद्धः पितामहः ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वण्युत्तरवधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । एवं श्वेते महेष्वासे प्राप्ते शल्यरथं प्रति । कुरवः पाण्डवेयाश्च किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥ भीष्मः शांतनवः किं वा तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः । सञ्जय उवाच । राजन् शतसहस्राणि ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥२॥ श्वेते सेनापतिं शूरं पुरस्कृत्य महारथाः । राज्ञो बलं दर्शयन्तस्तव पुत्रस्य भारत ॥३॥ शिखण्डिनं पुरस्कृत्य

का उद्योग करनेलगा, तुरन्त ही जिसको देखनेसे रोमाञ्च खड़े होजायँ ऐसा महादारुण युद्ध होनेलगा ॥ ६५ ॥ तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाके रथ और हाथी घोलमेल होगये और कुरुवंश में वृद्ध भीष्मपितामह पुरुषोंमें सिंहकी समान योधा, सुभद्राका पुत्र, भीमसेन, महारथी सात्यकी, केकयराज, राजा विराट, धृष्टद्युम्न, चेदी और मत्स्यदेशके राजा आदिके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ,६६ ॥ ६७ ॥ सैंतालीसवा अध्याय समाप्त ॥४७॥

धृतराष्ट्र पूछते हैं, कि—हे सञ्जय ! जब बड़ाभारी धनुषधारी श्वेतकुमार शल्यके रथके सामने आकर खड़ा हुआ तब कौरव और पाण्डवोंके पुत्र क्या करनेलगे ? यह मुझे सुना और शन्तनुनन्दन भीष्मने क्या किया, यह भी मुझसे कह ॥ १ ॥ २ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! उस समय लाखों महारथी क्षत्रिय योधा सेनापति श्वेतकुमार तथा शिखण्डी को आगे करके तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनको अपना बल दिखाते हुए श्वेतकुमार की रक्षा करने लगे और योधाओंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामह जो पाण्डवोंकी सेनाका नाशकर रहे थे, उनके, सोनेसे मँढेहुए रथको

न्वतुर्वैच्छन् महारथाः । अभ्यवर्तन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ४ ॥ जिघांसन्त युधां श्रेष्ठं तदासीत् तुमुलं महत् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि महावैशसमच्युत ॥ ५ ॥ तावकानां परेषां च यथा युद्धमवर्तत । तत्राकरोद्रथोपस्थान् शून्यान् शांतनवो बहून् ॥ ६ ॥ तत्राद्भुतं महच्चक्रे शरैरार्द्दरथोत्तमान् । समाहणोच्छरैरर्कमर्कतुल्य-प्रतापवान् ॥ ७ ॥ नुदन् समन्तात् समरे रविरुद्यन् यथा तमः । तेनाजौ प्रेषिता राजन् शराः शतसहस्रशः ॥ ८ ॥ क्षत्रियांतकराः संख्ये महावेगा महाबलाः । शिरांसि पातयामासुर्वीराणां शतशो रणे ॥ ६ ॥ गजान् कण्टकसन्नाहान् वज्रेणेव शिलोच्चयान् । रथा रथेषु संसक्ता व्यदृश्यन्त विशाम्पते ॥ १० ॥ एके रथं

घेरलिया ॥ २ ॥ ३ ॥ इस समय महादारुण युद्ध होनेलगा, तुम्हारे पुत्र और पाण्डवोंमें जो दारुण युद्ध हुआ उसका वृत्तान्त मैं तुम से कहता हूं, उसको सुनो, शन्तनुके पुत्र भीष्मजीने रथोंमें बैठे हुए हजारों योधाओंको मारकर रथोंको सूने करदिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ और असंख्यों बाण छोड़कर बड़ेर श्रेष्ठ रथियोंके शिर उड़ाकर बड़ा आश्चर्य उत्पन्न किया और अनेकों बाण बरसाकर सूर्यके समान पराक्रमवाले भीष्मजीने सूर्यमंडलको ढकदिया ॥ ७ ॥ और जैसे सूर्य उदय होकर अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है तेसे ही भीष्मजीने युद्धमें लाखों बाण छोड़ना आरम्भ करदिये ॥ ८ ॥ हे राजन् ! भीष्मजीके छोड़े हुए महावेगवाले हजारों बाणों से संग्राममें खड़े हुए असंख्यों क्षत्रियोंका नाश होगया. जैसे वज्रसे पहाड़के शिखर कट पड़ते हैं तैसे ही भीष्मजीके सैंकड़ों बाणोंसे वीर क्षत्रियोंके शिर और लोहेके काँटेदार बखतरोंवाले हाथी कट२ कर पृथिवीपर गिरनेलगे और हे राजन् ! रथोंके साथ रथ अटकने लगे तथा कितने ही रथोंमें जोड़े हुए घोड़े रथोंमे अटके हुए दूसरे रथोंके घोड़ों के साथ खिंचनेलगे, मस्तक कटजाने से लटकते हुए और

पर्यवहंस्तुरगाः सतुरङ्गगम् । युवानं निहितं वीरं लम्बमानं सकार्मुकम् ॥ ११ ॥ उदीर्णाश्च हया राजन् वहंतस्तत्र तत्र ह । बद्धखड्गनिषङ्गाश्च विध्वस्तशिरसो हताः ॥ १२ ॥ शतशः पतिता भूमौ वीरशय्यासु शेरते । परस्परेण धावन्तः पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ १३ ॥ उत्थाय च प्रधावन्तो द्वन्द्वयुद्धमवाप्नुवन् । पीडिताः पुनरन्योन्यं लुण्ठंतो रणमूर्धनि ॥ १४ ॥ सचापाः सनिषङ्गाश्च जातरूपपरिष्कृताः । निस्त्रिंशहतवीराश्च शतशः परिपीडिताः ॥१५॥ तेन तेनाभ्यधावंत विसृजंतश्च भारत । मत्तो गजः पर्यवर्तद्धयांश्च हतसादिनः ॥ १६ ॥ सरथा रथिनश्चापि विमृद्नंतः समंततः । स्यंदनादपतत्कश्चिन्निहतोऽन्येन सायकैः ॥ १७ ॥ हतसारथिरप्युच्चैः पपात काष्ठवद्धयः । युध्यमानस्य संग्रामे व्यूढे रजसि चोत्थिते ॥ १८ ॥ धनुःकूजितविज्ञानं तत्रासीत्प्रतियुध्यतः ।

जिनके हाथोंमें धनुष रहगये हैं ऐसे कितने ही युवा क्षत्रियोंको लेकर घोड़े इधर उधरको भागने लगे, तलवार और भाथों सहित कितने ही शूर क्षत्रियोंके धड़ रणभूमिमें (वीर शय्यापर) जहां तहां पड़े हुए थे, और घाव लगनेके कारण मूर्छित होकर पीछे उठेहुए कितने ही योधा एक दूसरेके सामनेको दौड़कर द्वन्द्वयुद्ध कररहे थे और परस्पर घायल करके पीड़ा पातेहुए कितने ही योधा रणमें भूमिपर लुढ़करहे थे ॥ ९-१४ ॥ धनुष तथा भाथों वाले और सुवर्णके गहनोंसे भूषित कितने ही योधा दोनों ओरके वीरोंको मारकर बड़ी पीड़ा पारहे थे ॥ १५ ॥ मतवाले हुए हाथी हाथियोंको जिनके सवार मरगये हैं ऐसे घोड़े घोड़ोंको ॥१६॥ और रथी रथियोंको सन्मुख दौड़कर मारकाट कररहे थे, किसीका बाण लगनेसे कितने ही योधा रथोंमें से नीचे गिररहे थे ॥१७॥ तथा सारथियोंके मरजानेसे भागेहुए रथ ईंधन होकर भूमिपर पड़े थे, अत्यन्त धूलि उड़ने से सब रणभूमि अन्धकारमयी हो रही थी; केवल धनुषकी टङ्कार से भी योधा समझते थे, कि—

गात्रस्पर्शेन योधानां व्यज्ञायन् परिपंथिनम् ॥ १६ ॥ शुद्धयमानं शरैराजन् सिंजिनीध्वजिनीरवात् । अन्योन्यं वीरसंशब्दो नाश्रूयत भटैः कृतः ॥ २० ॥ शब्दायमाने संग्रामे पटहे कर्णदारिणि । युध्यमानस्य संग्रामे कुर्वतः पौरुषं स्वकम् ॥ २१ ॥ नाश्रौषं नामगोत्राणि कीर्तनं च परस्परम् । भीष्मचापच्युतैर्बाणैरार्तानां युध्यतां मृधे ॥ २२ ॥ परस्परेर्दां वीराणां मनांसि समकंपयन् । तस्मिन्नत्याकुले युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ २३ ॥ पिता पुत्रं च समरे नाभिजानाति कश्चन । चक्रे भग्ने युगेच्छिन्ने एकधुर्ये हये हते ॥ २४ ॥ आक्षिप्तः स्यंदनाद्वीरः ससारथिरजिह्मगैः । एवं च समरे सर्वे वीराश्च विरथीकृताः ॥ २५ ॥ तेन तेन स्म दृश्यंते धावमानाः समंततः । गजो हतः शिरश्छिन्नं मर्म भिन्नं हयो हतः

हमारे सामने शत्रु हैं, और शरीर से शरीर भिड़ता था तब उन को यह मालूम होता था, कि—शत्रु हमारे पास आगया है ॥ १८—१९ ॥ अपने सामने धनुषके टङ्कारको सुनकर ही योधा बाण छोड़ते थे, कानोंके परदे फाडने वाले रणके बाजेके शब्द से रणभूमिपर अपना२ पराक्रम दिखानेवाले योधा अपना२ नाम और गोत्र कहरहे थे, परन्तु किसीको किसीका बोलना सुनायी नहीं आता था ॥ २० ॥ २१ ॥ भीष्मजीके धनुषमें से छूटेहुए बाणोंसे पीड़ा पानेवाले और सन्मुख शत्रुके साथ युद्ध करतेहुए योधाओंके कलेजे कांपनेलगे और जिसको देखनेमें रोंगटे खड़े हों ऐसे इस दारुण युद्धमें पिता पुत्रको न गिनकर युद्ध करता था, टूटे हुए पहियोंवाले और जिनकी एक धुरी कटगयी है तथा जिनके घोड़े मरगये हैं ऐसे रथोंमेंसे वीर पुरुष तथा अनेकों सारथी सीधे आनेवाले बाण लगते ही भूमि पर लुढ़कजाते थे ॥ २२—२५ ॥ इस समय, जिनको भीष्मजीने संग्राममें रथहीन करदिया था, वह वीर इधर उधरको भागतेहुए दीखते थे, इस प्रकार भीष्मजी जब शत्रुओंका संहार करने लगे, उस समय कोई

॥ २६ ॥ अहतः कोऽपि नैवासीद्योष्मे निघ्नति शात्रवान् । श्वेतः कुरूणामकरोत्क्षयं तस्मिन् महाहवे ॥ २७ ॥ राजपुत्रान् रथोदारानवधीच्छतसंघशः । चिच्छेद रथिनां बाणैः शिरांसि भरतर्षभ ॥ २८ ॥ साङ्गदा बाहवश्चैव धनूंषि च समंततः । रथेषां रथचक्राणि तूणीराणि युगानि च ॥ २९ ॥ छत्राणि च महार्हाणि पताकाश्च विशाम्पते । हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्चैव भारत ॥ ३० ॥ वारणाः शतशश्चैव हताः श्वेतेन भारत । वयं श्वेतभयाद्भीता विहाय रथसत्तमम् ॥ ३१ ॥ अपयातास्तथा पश्चाद्विभुं पश्याम धृष्णवे । शरपातमतिक्रम्य कुरवः कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥ भीष्मं शान्तनवं युद्धे स्थिताःपश्याम सर्वशः । अदीनो दीनसमये भीष्मोऽस्माकं महाहवे ॥ ३३ ॥ एकस्तस्थौ नरव्याघ्रो गिरि-

भी घायल हुए विना नहीं बचा, हजारों हाथी कटगये, अनेकों माथे कटगये, किन्हींके मर्मस्थान छिन्न भिन्न होगये और कहीं रणमें घोड़े पड़ थे, इसप्रकार श्वेतकुमारने भी रणमें कौरवोंका महाक्षय करडाला ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे भरतसत्तम ! श्वेतकुमार ने बाण मारकर हजारों राजपुत्रोंको मारडाला, सैकड़ों महारथियों को मारडाला और सैंकड़ों रथियोंके शिर काटडाले ॥ २८ ॥ पहुंचियोंसे शोभायमान हजारों हाथ काटडाले, हजारों धनुष, रथियोंके रथोंके पहिये, माथे, रथोंकी धुरियें, बड़े मूल्यके छत्र पताकायें, हजारों घोड़, रथ, मनुष्य ॥ २९ ॥ ३० ॥ और हाथियों का नाश करडाला और मैं (सञ्जय) श्वेतकुमार से भयभीत हो अपनें उत्तम रथको छोड़कर भाग आया, इसकारण ही जीता बचगया और आपसे मिलसका हूं, हे कुरुनन्दन ! भीष्मजीको छोड़कर कहीं बाण न लगजायं, इसलिये एक ओरको खड़े हो कर हम सब कुरुयुद्धमें उपस्थित रहे और चारों ओर से शन्तनु नन्दन भीष्मजीको देखते रहे, परन्तु उस भयङ्कर समयमें अकेले एक भीष्मजी ही मेरु पहाड़की समान अचल खड़े रहकर युद्ध

मेरुरिवाचलः । अददान इव प्राणान् सविता शिशिरात्यये ।३४। गभस्तिभिरिवादित्यस्तस्थौ शरमरीचिमान् । स मुमोच महेष्वासं शरसंघाननेकशः ॥ ३५ ॥ निघ्नन्नमित्रान् समरे वज्रपाणिरिवासुरान् । ते वध्यमाना भीष्मेण प्रजहुस्तं महाबलम् ॥ ३६ ॥ स्वयूथादिव ते यूथान्मुक्तं भूमिषु दारुणम् । तमेव युपलचयैको हृष्टः पुष्टः परन्तप ॥ ३७ ॥ दुर्योधनप्रिये युक्तः पाडवान्परि शोचयन् जीवितं दुस्त्यजं त्यक्त्वा भयं च सुमहाहवे ॥ ३८ ॥ पातयामास सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते । प्रहरंतमनीकानि पिता देवव्रतस्तत्र ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा सेनापतिं भीष्मस्त्वरितः श्वेतमभ्ययात् । स भीष्मं शरजालेन महता समवाकिरत् ॥ ४० ॥ श्वेतं चापि

करते थे और वसन्त ऋतुके सूर्यकी समान योधाओंके प्राण हरते हुए अटल खड़े हुए थे ॥ ३१—३४ ॥ और अनेकों बाण छोड़तेहुए महाधनुषधारी भीष्मजी बाणोंके समूहसे सहस्रों किरणों वाले सूर्यकी समान दीखते थे ॥३५॥ और जैसे चक्रपाणि विष्णु अपने सुदर्शन चक्र से असुरोंका नाश करते हैं तैसे ही असंख्यों बाण छोड़कर ॥ ३६ ॥ महाधनुषधारी भीष्मजी शत्रुओंके प्राण लेरहे थे, इस लिये हे परन्तप! भीष्मजीसे नष्ट होतेहुए वह योधा इस भयानक संग्राममें महाबली भीष्मजीको छोड़कर, जैसे अग्नि मेंसे चिनगारियें उड़ती हैं, तैसे ही अपनी टोलियों (कम्पनियों) में से अलग होकर भागने लगे,उस समय सब सेनामें एक भीष्म जी ही रणभूमिमेंसे भयानक रीतिसे भागते हुए योधाओंमें हृष्ट-पुष्ट (आनन्दी) प्रतीत होते थे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दुर्योधनका प्रिय करनेमें लगे हुए वह भीष्मजी पांडवोंकी सेनाका संहार कर रहे थे हे राजन्! अपने दुस्त्यज जीवनको और भयको न गिनकर भीष्मजी पाण्डवोंकी सेनाका नाश कररहे थे फिरकौरवोंकी सेनाके ऊपर प्रहार करते हुए श्वेतकेतुको देखकर तुम्हारे पितामह देवव्रत भीष्मजी उसके ऊपरको झपटे, श्वेतकुमारने उनको बाणों की बड़ीभारी वर्षा से घेरलिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ भीष्मजीने भी

तथा भीष्मः शरौघैः समवाकिरत् । तौ वृषाविव नर्दंतौ मत्ता-विव महाद्विपौ ॥ ४१ ॥ व्याघ्राविव सुसंरब्धावन्योऽन्यमजिघ्नतुः । अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य ततस्तौ पुरुषर्षभौ ॥ ४२ ॥ भीष्मः श्वेतश्च युयुधे परस्परवधैषिणौ । एकान्हा निर्दहेद्भीष्मः पांडवानामनीकिनीम् ॥ ४३ ॥ शरैः परमसंक्रुद्धो यदि श्वेतो न पालयेत् । पितामहं ततो दृष्ट्वा श्वेतेन विमुखीकृतं ॥ ४४ ॥ प्रहर्षं पांडवा जग्मुः पुत्रस्ते विमनाभवत् । ततो दुर्योधनः क्रुद्धः पार्थिवैः परिवारितः ॥ ४५ ॥ ससैन्यः पांडवानीकमभ्यद्रवत संयुगे । दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विशांपतिः ॥४६॥ भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण नोदिताः । दृष्ट्वा तु पार्थिवैः सर्वैर्दुर्योधनपुरोगमैः ॥ ४७॥ पांडवानामनीकानि वध्यमानानि संयुगे । श्वेतो गांगेयमुत्सृज्य तव पुत्रस्य

उसी प्रकार श्वेतकुमारको बाणोंसे छादिया,गरजते हुए दो वृषभों की समान वा मतवाले दो हाथियोंकी समान अथवा क्रोधमें भरे हुए दो वाघोंकी समान वह श्वेतकुमार और भीष्मजी परस्पर युद्ध करने लगे, वह दोनों श्रेष्ठपुरुष परस्परके अस्त्रोंको अस्त्रोंसे लौटानेलगे ॥४१॥४२॥ वह श्वेतकुमार और भीष्मजी एक दूसरे को मार डालनेकी इच्छासे लड़ने लगे यदि इस समय श्वेतकुमारने पाण्डवोंकी सेनाकी रक्षा न की होती तो कोपमें भरेहुए भीष्म पितामहने बाण छोड़२ कर पाण्डवोंकी सेनाका एक दिनमे ही संहार करडाला होता, परन्तु श्वेतकेतुने भीष्मपितामहको पीछेको हटा दिया, यह देखकर पाण्डव बड़ा हर्ष मनाने लगे और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनका मन उदास होगया, फिर अनेकों राजाओंको अपनी सहायतामें रखकर क्रोधमें भरा हुआ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन ॥ ४३—४५ ॥ भीष्मजीकी सहायता करनेको गया और पांड-वोंकी सेनाके ऊपर टूट पड़ा, दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य आदि योधा, तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके कहनेसे भीष्मजीकी रक्षा कर रहे थे. दुर्योधनके साथ आये हुए ये राजे पाण्डवोंकी सेना

वाहिनीम् ॥ ४८ ॥ नाशयामास वेगेन वायुर्वृक्षानिवौजसा । द्राव-यित्वा चमूं राजन् वैराटिः क्रोधमूर्छितः ॥ ४९ ॥ आगतस्सहसा भूयो यत्र भीष्मो व्यवस्थितः । तौ तत्रोपगतौ राजन् शरदीप्तौ महाबलौ ॥ ५० ॥ अयुध्येतां महात्मानौ यथोभौ वृत्रवासवौ । अन्योन्यं तु महाराज परस्परवधैषिणौ ॥ ५१ ॥ निगृह्य कार्मुकं श्वेतो भीष्मं विव्याध सप्तभिः । पराक्रमं ततस्तस्य पराक्रम्य पराक्रमी ॥ ५२ ॥ तरसा वारयामास मत्तो मत्तमिव द्विपम् । श्वेतः शांतनवं भूयः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५३ ॥ विव्याध पंचविंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् । तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शांतनवस्तदा ॥५४॥ स विद्धस्तेन बलवान्नाकंपत यथाऽचलः । वैराटिः समरे क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ॥ ५५॥ आजघान ततो भीष्मं श्वेतः क्षत्रि-

---

का नाश कर रहे थे, यह देख श्वेतकेतुने भीष्मजीके सामनेसे खसक कर जैसे वायु वृक्षोंका नाश करता है तैसे ही तुम्हारे पुत्रों की सेनाका संहार करना आरम्भ कर दिया और क्रोधमें भरा हुआ राजा विराटका पुत्र श्वेत, तुम्हारे पुत्रकी सेनामें भागड़ डाल कर फिर तुरन्त भीष्मपितामहके सामने आकर खड़ा होगया, हे राजन् ! महाबली तथा बाणोंके समूहसे दिपते हुए भीष्म और श्वेतकेतु एक दूसरेके प्राण लेनेका निश्चय करके इन्द्र और वृत्रासुरकी समान आपसमें लड़ने लगे ॥ ४६—५१ ॥ श्वेतने हाथ में धनुप ले, भीष्मजीको सात बाण मार कर बींधदिया, तब भीष्म जीने भी जैसे एक हाथी दूसरे हाथीके बलको रोकता है तैसे ही उसके बाणोंके वेगको रोक दिया, यह देखकर श्वेतने नमे हुए फलकवाले और पचीस बाण छोड़कर भीष्मजीको बींधडाला इस से सबोंको बड़ा अचरज हुआ, तब भीष्मजीने भी दश बाण छोड़कर श्वेतकेतुको बींध डाला ॥ ५२—५४ ॥ भीष्मजीने बड़े जोरसे बाण मारे तो भी पहाड़की समान अचल क्षत्रियका पुत्र श्वेतकुमार जरा नहीं डिगा, किन्तु धनुषको खेंचकर ॥ ५५ ॥

थनंदनः । संप्रहस्य ततः श्वेतः सृक्किणी परिसंलिहन ॥ ५६ ॥ धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य नवभिर्दशधा शरैः । संधाय विशिखं चैव शरं लोमप्रवाहिनम् ॥ ५७ ॥ उन्ममाथ ततस्तालं ध्वजशीर्षं महात्मनः । केतुं निपतितं दृष्ट्वा भीष्मस्य तनयास्तव ॥ ५८ ॥ हतं भीष्ममन्यंत श्वेतस्य वशमागतम् । पाण्डवाश्चापि संहृष्टा दध्मुः शंखान्मुदा युताः ॥ ५९ ॥ भीष्मस्य पतितं केतुं दृष्ट्वा तालं महात्मनः । ततो दुर्योधनः क्रोधात्स्वमनीकमनोदयत् ॥६०॥ यत्ता भीष्मं परीप्सध्वं रक्षमाणाः समंततः । मा नः प्रपश्यमानानां श्वेतान्मृत्युमवाप्स्यति ॥ ६१ ॥ भीष्मः शांतनवः शूरस्तथा सत्यं ब्रवीमि वः । राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ॥ ६२ ॥ बलेन चतुरंगेण गांगेयमन्वपालयन् । बाल्हीकः कृतवर्मा च शलः शल्यश्च भारत ॥ ६३ ॥ जलसंधो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः

भीष्मजीके ऊपर बाण छोड़ने लगा और फिर श्वेतकेतुने खिल खिलाके हँसकर होठ चाबते हुए नौ बाण छोड़कर भीष्मजी के धनुषके दश टुकड़े करदिये और फिर श्वेतने, बाँधे हुए एक बाण से महात्मा भीष्मपितामह की ताड़के वृक्षकी चिन्हवाली ध्वजाको काट दिया, भीष्मजीकी ध्वजाको गिरते हुए देखकर तुम्हारे पुत्र समझने लगे, कि—अब भीष्मजी मारे जायँगे अथवा श्वेत इनको पकड़ लेगा, उस समय पाण्डव प्रसन्न होकर शङ्ख बजाने लगे ॥५६-५९॥ भीष्मकी ध्वजाको कटी हुई देखकर तुम्हारे अन्य पुत्र तथा दुर्योधन आदि अपनी सेनाको पुकार कर कहने लगे कि-॥६०॥ अरे योधाओं ! शन्तनुनन्दन वीर भीष्मजी हमारे देखते हुए श्वेत के हाथोंसे न मारेजायँ ! इसलिये तुम सब सावधान होकर चारों ओरसे भीष्मजीकी रक्षा करो, या तो आज श्वेत ही मारा जायगा नहीं तो भीष्म ही मारे जायँगे यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूं, जब दुर्योधनने ऐसा कहा, तब चतुरङ्ग सेनाको लेकर बलवान् महारथी भीष्मजीकी रक्षा करनेके लिये झपटे, बाल्हीक, कृतवर्मा शल और हे भारत ! शल्य ॥६१-६३॥ जलसन्ध, विकर्ण, चित्र-

त्वरमाणास्त्वराकाले परिवार्य समंततः ॥ ६४ ॥ शस्त्रवृष्टिं सुतुमुलां श्वेतस्योपर्यपातयन् । तान् क्रुद्धो निशितैर्बाणैस्त्वरमाणो महारथः ॥ ६५ ॥ अवारयदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् । स निवार्य तु तान् सर्वान् केसरी कुंजरानिव ॥६६॥ महता शरवर्षेण भीष्मस्य धनुराच्छिनत् । ततोऽन्यद्धनुरादाय भीष्मः शांतनवो युधि श्वेतं विव्याध राजेंद्र कंकपत्रैः शितैः शरैः । ततः सेनापतिः क्रुद्धो भीष्मं बहुभिरायसैः ॥ ६८ ॥ विव्याध समरे राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः । ततः प्रव्यथितो राजा भीष्मं दृष्ट्वा निवारितम् ॥६९॥ प्रवीरं सर्वलोकस्य श्वेतेन युधि वै तदा । निष्ठानकश्च सुमहांस्तव सैन्यस्य चाभवत् ॥ ७० ॥ तं वीरं वारितं दृष्ट्वा श्वेतेन शरविक्षतम् । हतं श्वेतेन मन्यंते श्वेतस्य वशमागतम् ॥ ७१ ॥ ततः क्रोधवशं प्राप्तः पिता देवव्रतस्तव । ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा तां च

सेन, विविंशति आदि महारथी शीघ्र ही भीष्मजीको घेरकर खड़े होगये और श्वेतके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, यह देखकर कोपमें भरेहुए महारथी श्वेतकुमारने अपने हाथोंकी फुरती दिखायी और बाण मारकर उनके सब अस्त्र पीछेको लौटादिये और सिंह जैसे हाथियोंको पीछेको हटा देता है तैसे ही उसने सब योधाओं को पीछेको हटा बाण छोड़कर भीष्मजीका धनुष काट डाला, हे नरेन्द्र ! तब रणमें भीष्मजीने दूसरा धनुष लेकर कंक पक्षीके परोंवाले तीखे बाणसे श्वेतको बींध डाला, हे राजन् ! इससे और अधिक कोपमें भरकर सेनापति श्वेतकुमारने सबके देखते हुए बाण मारकर भीष्मजीको बींधदिया इसप्रकार श्वेतकुमारके हाथसे उत्तमवीर भीष्मको बिंधाहुआ देखकर तुम्हारे पुत्रने मनमें बड़ा खेद पाया और तुम्हारी सेनामें बड़ा हाहाकार मचगया ॥ ६४–७० ॥ श्वेतके बाणसे घायल होकर भीष्मजी जब पीछेको हटे तब सब यह समझने लगे, कि—श्वेतने भीष्मजीको अपने वशमें करके मार डाला ॥७१॥ परन्तु तुम्हारे पितामह देव-

सेनां निवारिताम् ॥ ७२ ॥ श्वेतं प्रति महाराज व्यसृजत्सायका-न्बहून्। तानावार्य रणे श्वेतो भीष्मस्य रथिनां वरः ॥ ७३ ॥ धनुश्चिच्छेद भल्लेन पुनरेव पितुस्तव । उत्सृज्य कार्मुकं राजन् गांगेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७४ ॥ अन्यत् कार्मुकमादाय विपुलं बलवत्तरम् । तत्र संधाय विपुलान् भल्लान् सप्त शिलाशितान् ॥ ७५ ॥ चतुर्भिश्च जघानाश्वान् श्वेतस्य पृतनापतेः ; ध्वजं द्वाभ्यां तु चिच्छेद सप्तमेन च सारथेः ॥ ७६ ॥ शिरश्चिच्छेद भल्लेन सं क्रुद्धोऽलघुविक्रमः । हताश्वसूतात् स रथादवप्लुत्य महाबलः ॥ ७७ ॥ अमर्षवशमापन्नो व्याकुलः समपद्यत । विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पितामहः ॥ ७८॥ ताडयामास निशितैः शरसंघैः समंततः । स ताड्यमानः समरे भीष्मचापच्युतैः शरैः ॥ ७९ ॥ स्वरथे धनुरुत्सृज्य शक्तिं जग्राह कांचनीं । ततः शक्तिं रणे श्वेतो

तब भीष्मजीने अपनी ध्वजाको कटीहुई तथा अपनी सेनाको पीछेको हटीहुई देखकर श्वेतके ऊपर अनेकों बाण छोड़े, परन्तु श्वेतने उन बाणोंको पीछेको लौटाकर भल्ल नामके बाणसे फिर तुम्हारे पितामह भीष्मजीका धनुष काट डाला इसकारण अत्यन्त क्रोधमें भरकर तुम्हारे पितामह गङ्गापुत्र भीष्मने दूसरा मजबूत धनुष हाथमें लिया और भल्ल नामके तीखे सात बाण चढ़ाकर ॥ ७२—७५ ॥ चार बाणोंसे श्वेतके चार घोड़ोंको मारडाला दो बाणोंसे ध्वजा काटडाली और सातवें बाणसे उसके सारथी का शिर काट लिया ॥ ७६ ॥ इसप्रकार भल्ल नामके बाणसे भीष्मजीने सहजमें ही पराक्रम करके सारथीका शिर काट दिया तब घोड़े और सारथीहीन रथमेंसे महाबली श्वेत कूद पड़ा और बड़े क्रोधमें भरगया, इसप्रकार श्वेतकुमारको विना रथका देखकर पितामह भीष्म चारों ओरसे उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, भीष्मजीके धनुषमेंसे छूटकर बाण जब उसके लगने लगे तब श्वेतने अपना धनुष रथमें ही छोड़कर सोनेकी शक्ति

जग्राहोग्रां महाभयाम् ॥ ८० ॥ कालदंडोपमां घोरां मृत्योर्जिह्वा-मिव श्वसन् । अब्रवीच्च तदा श्वेतो भीष्मं शांतनवं रणे ॥ ८१ ॥ तिष्ठेदानीं सुसंरब्धः पश्य मां पुरुषो भव । एवमुक्त्वा महेष्वासो भीष्मं युधि पराक्रमी ॥ ८२ ॥ ततः शक्तिममेयात्मा चिक्षेप भुज-गोपमाम् । पाण्डवार्थे पराक्रांतस्तवानर्थं चिकीर्षुकः ॥ ८३ ॥ हाहाकारो महानासीत् पुत्राणां ते विशांपते । दृष्ट्वा शक्तिं महाघोरां मृत्योर्दंडसमप्रभाम् ॥ ८४ ॥ श्वेतस्य करनिर्मुक्तां निर्मुक्तोरगस-न्निभाम् । अपतत् सहसा राजन् महोल्केव नभस्तलात् ॥ ८५ ॥ ज्वलंतीमंतरिक्षे तां ज्वालाभिरिव संवृताम् । असंभ्रांतस्तदा राजन् पिता देवव्रतस्तव ॥ ८६ ॥ अष्टभिर्नवभिर्भीष्मः शक्तिं चिच्छेद पत्रिभिः । उत्कृष्टहेमविकृतां निकृतां निशितैः शरैः ॥ ८७ ॥ उच्चुक्रुशुस्ततः सर्वे तावका भरतर्षभ । शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा

उठा ली इसप्रकार महाउग्र महाभयानक मृत्युकी जीभकी समान तथा कालके दण्डकी समान शक्ति हाथमें लेकर श्वेतकुमार शन्तनुके पुत्र भीष्मजीसे कहने लगा, कि—॥ ८० ॥ ८१ ॥ हे भीष्म! खड़े रहो,पुरुष बनो और अब मेरे पराक्रमको भी देखो, ऐसा कहकर बड़े धनुषवाले अमेयात्मा श्वेतने सांपकी समान वह शक्ति भीष्मजीके मारी॥८२॥ पाण्डवोंके लिये पराक्रम करते और तुम्हारी हार चाहनेवाले श्वेतने जब भीष्मजीके ऊपर इस प्रकार प्रहार किया तब मृत्युके दण्डकी समान घोर उस शक्तिको आती हुई देखकर तुम्हारे पुत्र बड़ा हाहाकार करने लगे ॥८३॥८४॥ हे राजन्! श्वेतके हाथमेंसे छूटीहुई कैंचुलीमेंसे छूटेहुए सर्पकी समान वह शक्ति जैसे आकाशमेंसे बिजली गिर रही हो इसप्रकार सायँ२ करतीहुई भीष्मजीकी ओरको आयी ॥ ८५ ॥ लपटोंसे घिरीहुई हो इस प्रकार भकभकाती हुई इस शक्तिको आतीहुई देखकर जरा भी न घबड़ा कर पितामह भीष्मजीने तीक्ष्ण बाण मारकर उसको काट डाला, तब तुम्हारे पक्षके सब लोग जय जय पुकारने

वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ८८ ॥ कालोपहतचेतास्तु कर्तव्यं नाभ्य-जानत । क्रोधसंमूर्च्छितो राजन् वैराटिः प्रहसन्निव ॥ ८६ ॥ गदां जग्राह संहृष्टो भीष्मस्य निधनं प्रति । क्रोधेन रक्तनयनो दंडपाणिरिवांतकः ॥९०॥ भीष्मं समभिदुद्राव जलौघ इव पर्वतम् । तस्य वेगमसंवार्यं मत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥९१॥प्रहारविप्रमोक्षार्थं सहसा धरणीं गतः ।श्वेतः क्रोधसमाविष्टो भ्रामयित्वा तु तां गदाम् ॥९२॥रथे भीष्मस्य चिक्षेप यथा देवो धनेश्वरः । तया भीष्मनिपातिन्या स रथो भस्मसात्कृतः ॥९३॥ सध्वजः सह सूतेन साश्वः सयुगबंधुरः । विरथं रथिनां श्रेष्ठं भीष्मं दृष्ट्वा रथोत्तमाः ॥९४॥ अभ्यधावन्त सहिताः शल्यप्रभृतयो रथाः । ततोऽन्यं रथमास्थाय धनुर्विस्फार्य दुर्मनाः ॥ ९५ ॥ शनकैरभ्ययाच्छ्वेतं गांगेयः प्रह-

---

लगे और मेरी शक्तिको भीष्मजीने काट डाला यह देखकर राजा विराटका पुत्र बड़े क्रोधमें भर गया ॥ ८६—८८॥ और मानो उसको कालने अन्धा कर दिया हो इसप्रकार वह अब क्या करना चाहिये इस बातको नहीं समझसका तथा हे राजन्! फिर क्रोध में भरे हुए विराटकुमार श्वेतने भीष्मजीका प्राणान्त करनेके लिये कुछ एक मुसकुरातेहुए हाथमें गदा ली और जैसे जलका प्रवाह पहाड़के ऊपरको झपटता हो तैसे ही उसने दण्डधारी कालकी समान गदा सम्हाली॥८९-९०॥भीष्मजीके ऊपरको चढ़आया.तब इसके वेगको रोकना कठिन है ऐसा विचारकर दांव चुकानेके लिये भीष्मजी भूमि पर लेटगये, श्वेतने साक्षात् कुबेरकी समान गदा घुमाकर भीष्मजीके रथके ऊपर मारी, वह मारी हुई गदा उनके न लगकर रथमें लगी उससे वह रथ भस्म होगया॥९१-९३॥ ध्वजा टूटगयी, सारथी मरगया, घोड़े घायल होगये और रथका धुरा भी टूटगया,रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मजीको रथहीन हुआ देखकर शल्य आदि अपने २ रथोंको लेकर भीष्मजीके पासको दौड़े, तब दूसरे रथमें बैठकर गङ्गानन्दन भीष्मजी धनुष खेंच खिलखिलाकर

सन्निव । एतस्मिन्नंतरे भीष्मः शुश्राव विपुलां गिरम् ॥ ९६ ॥ आकाशादीरितां दिव्यामात्मनो हितसंभवाम् । भीष्म भीष्म महाबाहो शीघ्रं यत्नं कुरुष्व वै ॥ ९७ ॥ एष ह्यस्य जये कालो निर्दिष्टो विश्वयोनिना । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदूतेन भाषितम् ॥९८॥ संप्रहृष्टमना भूत्वा वधे तस्य मनो दधे । विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पदातिनम् ॥ ९९ ॥ सहितास्त्वभ्यवर्त्तंत परीप्सन्तो महारथाः । सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥१००॥कैकेयो धृष्टकेतुश्च अभिमन्युश्च वीर्यवान् । एतानापततः सर्वान् द्रोणशल्यकृपैः सह ॥ १०१ ॥ अवारयदमेयात्मा वारिवेगानिवाचलः । संनिरुद्धेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १०२ ॥ श्वेतः खड्गमथाकृष्य भीष्मस्य धनुराच्छिनत् । तदपास्य धनुश्छिन्नं त्वरमाणः पितामहः ॥१०३॥ देवदूतवचः श्रुत्वा वधे तस्य मनो दधे । ततः

हँसते हुए धीरे २ श्वेतके सामनेको बढ़ने लगे, उस समय भीष्म जी ने अपने हितके वचनों वाली आकाशवाणीको सुना, कि— हे भीष्म ! हे भीष्म ! हे महाबाहो ! अब तू शीघ्र ही उद्योग कर ॥९४–९७॥ ब्रह्माने इसको जीतनेका, यही काल रचा है, देवदूतके इस वचनको सुनकर ॥ ९८ ॥ भीष्मजी प्रसन्न हुए और श्वेतका वध करनेका निश्चय किया, रथियोंमें श्रेष्ठ श्वेतकुमार को पैदल होकर लड़नेको खड़ा हुआ देखकर पाण्डवोंके पक्षके सात्यकी, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, केकयराजकुमार धृष्टकेतु और अभिमन्यु आदि वीर योधा उसके पासको दौड़े, इन सब योधाओं को आगे बढ़ते देखकर कृपाचार्य और द्रोणाचार्य शल्यके साथ, भीष्मजीने जैसे पहाड़ जलके वेगको रोकलेता है तैसे असीमबली उन योधाओंको रोकलिया और महात्मा पाण्डवोंके योधाओंको इस प्रकार रोकेहुए देख ॥९९–१०२॥ श्वेतकुमारने तलवार खेंच कर भीष्मजीके धनुषको काटडाला, तब फाटेहुए धनुषको फेंककर भीष्मजीने आकाशवाणीमें सुननेके अनुसार उसको मारडालने

प्रचरमाणस्तु पिता देवव्रतस्तव ॥ १०४ ॥ अन्यत् कार्मुकमादाय त्वरमाणो महारथः । क्षणेन सज्यमकरोच्छक्रचापसमप्रभम् ॥ १०५ ॥ पिता ते भरतश्रेष्ठ श्वेतं दृष्ट्वा महारथैः । वृतं तं मनुजव्याघ्रैर्भीमसेनपुरोगमैः ॥ १०६ ॥ अभ्यवर्त्तत गांगेयः श्वेतं सेनापतिं द्रुतम् । आपतंतं ततो भीष्मो भीमसेनं प्रतापवान् ॥ १०७ ॥ आजघ्ने विशिखैः षष्ट्या सेनान्यं स महारथः । अभिमन्युं च समरे पिता देवव्रतस्तव ॥ १०८ ॥ आजघ्ने भरतश्रेष्ठस्त्रिभिः सन्नतपर्वभिः । सात्यकिं च शतेनाजौ भरतानां पितामहः ॥ १०९ ॥ धृष्टद्युम्नं च विंशत्या कैकेयं चापि पञ्चभिः । तांश्च सर्वान् महेष्वासान् पिता देवव्रतस्तव ॥ ११० ॥ वारयित्वा शरैर्घोरैः श्वेतमेवाभिदुद्रुवे । ततः शरं मृत्युसमं भारसाधनमुत्तमम् ॥ १११ ॥ विकृष्य बलवान् भीष्मः समाधत्त दुरासदम् । ब्रह्मा-

का विचार किया, हे राजन्! फिर तुम्हारे पितामह भीष्मजीने शीघ्रतासे दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और एक ही क्षणमें चढ़ा कर उसको इन्द्रके धनुषकी समान बना लिया॥१०३-१०५॥ हे भरतसत्तम! मनुष्योंमें सिंहसमान भीमसेन आदि योधाओंसे घिरे हुए श्वेतकुमारको देखकर तुम्हारे पितामह भीष्मजी उसके ऊपरको झपटे, यह देखकर भीमसेन सामनेको आया, परन्तु भीष्मजी ने उसके आठ बाण मारे और श्वेत तथा अभिमन्यु के ऊपर नमेहुए फलक वाले और तीन बाण छोड़े, और हे राजन्! भरतके पितामहने सात्यकीको सौ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको तीस बाणों से, कैकेयको पाँच बाणोंसे और इनके सिवाय और जो बड़े२ धनुषधारी थे, उनको घोर बाणोंसे रोककर केवल श्वेतकुमार की ओरको ही बढ़े चलेगये फिर मृत्युकी समान तथा बलको सह लेनेवाला एक घोर बाण भीष्मजीने धनुष पर चढाया और परों वाले उस बाणके ऊपर ब्रह्मास्त्र मंत्रका प्रयोग किया, उस समय

ङ्गेण सुसंयुक्तं तं शरं लोमवाहिनम् ॥ ११२ ॥ ददृशुर्देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः । स तस्य कवचं भित्वा हृदयं चामितौजसः ॥ ११३ ॥ जगाम धरणीं बाणो महाशनिरिव ज्वलन् । अस्तं गच्छन्यथादित्यः प्रभामादाय सत्वरः ॥ ११४ ॥ एवं जीवितमादाय श्वेतदेहाज्जगाम ह । तं भीष्मेण नरव्याघ्रं तथा विनिहतं युधि ॥ ११५ ॥ प्रपतंतमपश्याम गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् । अशोचन्पाण्डवास्तत्र क्षत्रियाश्च महारथाः ॥ ११६ ॥ प्रहृष्टाश्च सुतास्तुभ्यं कुरवश्चापि सर्वशः । ततो दुःशासनो राजन् श्वेतं दृष्ट्वा निपातितम् ॥ ११७ ॥ वादित्रनिनदैर्घोरैर्नृत्यति स्म समंततः । तस्मिन् हते महेष्वासे भीष्मेणाहवशोभिना ॥ ११८ ॥ प्रावेपंत महेष्वासाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः । ततो धनञ्जयो राजन् वार्ष्णे-

हे राजन् ! देवता, गन्धर्व, पिशाच, सर्प और राक्षस आकाशमेंसे देख रहे थे, बड़ाभारी बिजलीकी समान उजाला करता हुआ वह बाण श्वेतके कवचको फोड़कर छातीमेंको निकल पृथिवीमें घुस गया और जैसे सूर्य अपनी प्रभाको खेंचकर अस्त होजाता है, तैसे ही वह बाण श्वेतके प्राण लेकर भूमिमें घुसगया ॥१०६॥ ॥ ११४॥ जब भीष्मजीने इस सिंहसमान वीरको मार डाला उस समय जैसे पहाड़का शिखर गिरता है तैसे ही हमने उसको पृथिवी पर गिरते हुए देखा था, श्वेतके मारेजानेसे पाण्डव और उनकी ओरके क्षत्रिय शोक करनेलगे तथा तुम्हारे पुत्र और सब कुरु बड़े प्रसन्न हुए और हे राजन् ! श्वेतको मरा हुआ देखकर दुःशासन बाजा बजाता हुआ इधर उधर नाचनेलगा, संग्राममें भूषणरूप भीष्मजीने जब महाधनुषधारी श्वेतको मार डाला उस समय शिखण्डी आदि महारथी काँप उठे ॥ ११५-११८ ॥ हे राजन् ! जब सेनापति श्वेतकुमार मारा गया तब धनञ्जय और यादवकुलके योधाओंने धीरे २ रात होनेके कारण अपनी सेना को लौटा लिया और उस समय दोनों सेनाओंमें कोलाहल मच

यश्चापि सर्वशः ॥ ११६ ॥ अवहारं शनैश्चक्रुर्निहते वाहिनीपतौ । ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ॥ १२० ॥ तावकानां परेषां च नर्दतांच मुहुर्मुहुः । पार्था विमनसो भूत्वा न्यवर्तंत महारथाः । चिंतयन्तो वधं घोरं द्वैरथेन परन्तपाः ॥ १२१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेत-
वधेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । श्वेते सेनापतौ तात संग्रामे निहते परैः । किमकुर्वन्महेष्वासाः पश्चालाः पाण्डवैः सह ॥ १ ॥ सेनापतिं समाकर्ण्य श्वेतं युधि निपातितम् । तदर्थं यततां चापि परेषां मपलायिनाम् ॥२॥ मनः प्रीणाति मे वाक्यं जयं सञ्जय शृण्वतः । प्रत्युपायं चिंतयन्तः सज्जनाः प्रस्रवंति मे ॥ ३ ॥ स हि वीरोऽनुरक्तश्च वृद्धः कुरुपतिस्तदा । कृतं वैरं सदा तेन पितुः पुत्रेण धीमता ॥ ४ ॥ तस्योद्वेगभयाच्चापि संश्रितः पाण्डवान् पुरा । सर्वं

रहा था, पाण्डव खिन्न होकर द्वन्द्वयुद्धमें श्वेतके भयानक वध का विचार करते हुए अपनी छावनीकी ओरको चलेगये ॥११६॥ ॥ १२१ ॥ अड़तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्र पूछते हैं, कि-जब शत्रुओंने सेनापति श्वेतको मार डाला तब बड़े धनुषधारी पाश्चाल और पाण्डवोंने क्या क्या किया जब सेनापति श्वेतको युद्धमें मारा गया सुना तब उसके लिये उद्योग करनेवाले और भागते हुए योधाओंका क्या हुआ ?, हे सञ्जय ! हमारी विजय हुई है, इस बातको तेरे मुखसे सुनते ही मेरा मन बड़ा ही प्रसन्न होरहा है और हमारी ओरसे जो अत्याचार वा अपराध हुए हैं, उनके कारणसे मुझे लज्जा नहीं आती है, वीर वृद्ध और कौरवोंके सेनापति भीष्मजी प्रतीत होता है हमसे सदा प्रेम करते हैं, दुर्योधन अपने बुद्धिमान् चचेरे भाइयोंके साथ सदा ही वैर करता रहा है ॥ १—४ ॥ वस दुर्योधनसे भयभीत होनेके कारण ही श्वेतने पाण्डवोंका पक्ष लिया

बलं परित्यज्य दुर्गं संश्रित्य तिष्ठति ॥ ५ ॥ पाण्डवानां प्रतापेन दुर्गं देशं निवेश्य च । सपत्नान् सततं बाधन्नार्यवृत्तिमनुष्ठितः ॥ ६ ॥ आश्चर्यं वै सदा तेषां पुरा राज्ञां सुदुर्मतिः । ततो युधिष्ठिरे भक्तः कथं सञ्जय सूदितः ॥ ७ ॥ प्रक्षिप्तः संमतः क्षुद्रः पुत्रो मे पुरुषाधमः । न युद्धं रोचयेद्भीष्मो न चाचार्यः कथञ्चन ॥८॥ न कृपो न च गान्धारी नाहं सञ्जय रोचये । न वासुदेवो वार्ष्णेयो धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ ९ ॥ न भीमो नार्जुनश्चैव न यमौ पुरुषर्षभौ । वार्यमाणो मया नित्यं गांधार्या विदुरेण च ॥ १० ॥ जामदग्न्येन रामेण व्यासेन च महात्मना । दुर्योधनो युध्यमानो नित्यमेव हि सञ्जय ॥ ११ ॥

था और सब सेनाको त्याग कर एक किलेमें रहता था ॥ ५ ॥ वह पाण्डवोंके प्रतापसे किलेमें रहकर अपने शत्रुओंको नित्य पीड़ा देता था और सदाचारसे रहता था ॥ ६ ॥ यह दुष्ट पाण्डवोंके पक्षमें रहता था इसकारण ही युधिष्ठिरकी ओरसे युद्ध करनेको आया था ऐसे युधिष्ठिरके भक्त श्वेतको हे सञ्जय ! भीष्म जीने कैसे मारदिया ? अर्थात् भीष्मजीको तो पाण्डव प्यारे थे फिर उन्होंने श्वेतको मारकर पाण्डवोंका चित्त क्यों दुखाया ? ॥७॥ राजकुमार दुर्योधन मनुष्योंमें अधम क्षुद्र तथा सद्बुद्धिसे डिगा हुआ है, इस बातमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है, भीष्मजी और द्रोणाचार्य किसी प्रकार भी युद्धको अच्छा नहीं मानते।८। कृपाचार्य अच्छा नहीं मानते गान्धारी अच्छा नहीं समझती, हे सञ्जय ! मैं भी युद्धको अच्छा नहीं समझता वृष्णिवंशी कृष्ण भी अच्छा नहीं समझते, और पाण्डुनंदन धर्मराज भी अच्छा नहीं समझते ।९। न भीमसेन, न अर्जुन, और न पुरुषश्रेष्ठ नकुल सहदेव ही युद्ध को अच्छा मानते हैं, मैंने, गान्धारीने तथा विदुरने सदा ही रोका ॥ १० ॥ जमदग्निकुमार परशुरामने, और महात्मा व्यासजीने भी बहुत समझाया, परन्तु दुर्योधन हमारी एक न मानकर सदा

कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च पापकृत् । दुःशासनस्य च तथा पांडवान्नान्वचिंतयत् ॥ १२ ॥ तस्याहं व्यसनं घोरं मन्ये प्राप्तं तु सञ्जय । श्वेतस्य च विनाशेन भीष्मस्य विजयेन च ॥ १३ ॥ संक्रुद्धः कृष्णसहितः पार्थः किमकरोद्युधि । अर्जुनाद्धि भयं भूयस्तन्मे तात न शाम्यति ॥ १४ ॥ स हि शूरश्च कौंतेयः क्षिप्रकारी धनंजयः । मन्ये शरैः शरीराणि शत्रूणां ममथिष्यति ॥ १५ ॥ ऐंद्रिमिंद्रानुजसमं महेंद्रसदृशं बले । अमोघक्रोधसंकल्पं दृष्ट्वा वः किमभून्मनः ॥ १६ ॥ तथैव वेदविच्छूरो ज्वलनार्कसमद्युतिः । इन्द्रास्त्रविदमेयात्मा प्रपतन् समितिंजयः ॥ १७ ॥ वज्रसंस्पर्शरूपाणामस्त्राणां च प्रयोजकः । सखड्गाक्षेपहस्तस्तु घोषं चक्रे महारथः ॥ १८ ॥ स संजय महाप्राज्ञो द्रुपदस्यात्मजे।

युद्धके लिये ही उद्यत रहा ॥ ११ ॥ यह पापी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासनकी संमति मानकर पाण्डवोंको कुछ समझता ही नहीं था ॥ १२ ॥ हे सञ्जय ! श्वेत मारा गया और भीष्मजी की विजय हुई इससे तो पाण्डव और भी कोपमें भर जायँगे इस लिये मेरी समझमें दुर्योधनके ऊपर अब और भी अधिक कष्ट आपड़ेगा ॥ १३ ॥ कोपमें भरेहुए कृष्णसहित अर्जुनने युद्धमें क्या किया ? यह मुझे सुना, अर्जुनसे मुझे बड़ा भय लगता है, और हे तात ! वह मनमेंसे दूर नहीं होसकता है ॥ १४ ॥ यह अर्जुन शूर और शीघ्र बाण छोड़नेवाला है, इसकारण शत्रुओंके शरीर बाणोंसे बींधडालेगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है ॥ १५ ॥ विष्णुकी समान बली, जिसका क्रोध निष्फल नहीं जाता तथा सत्यसङ्कल्प इस इन्द्रके पुत्रको देखकर तुम्हारे मनमें क्या बात आती थी ? ॥ १६ ॥ तथा हे सञ्जय ! वेदको पढ़े, शूर, अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी, इन्द्रास्त्रको जाननेवाले, बड़े साहसी, शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले संग्राममें विजय पानेवाले, जो वज्रकी समान लगें ऐसे अस्त्रोंको छोड़नेवाले, खड्गधारी और शीघ्रतासे

बली । धृष्टद्युम्नः किमकरोच्छ्वेते युधि निपातिते ॥ १६ ॥ पुरा चैवापराधेन वधेन च चमूपतेः । मन्ये मनः प्रजज्वाल पांडवानां महात्मनाम् ॥ २० ॥ तेषां क्रोधं चिंतयंस्तु अहःसु च निशासु च । न शांतिमधिगच्छामि दुर्योधनकृतेन हि । कथं चाभून्महायुद्धं सर्वमाचक्ष्व सञ्जय ॥ २१ ॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा तवापनयनो महान् । न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ २२ ॥ गतोदके सेतुबंधो यादृक्तादृङ्मतिस्तव संदीप्ते भवने यद्वत्कूपस्य खननं तथा ॥ २३ ॥ गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे । तावकानां परेषां च पुनर्युद्धमवर्तत ॥२४॥ श्वेतं तु निहतं दृष्ट्वा विराटस्य चमूपतिम् । कृतवर्मणा च सहितं

बाण छोड़नेवाले जिसने रणभूमिमें कोलाहल मचा डाला था, उस महाबुद्धिमान्, महारथी, बलवान् द्रुपदनन्दनने, श्वेतको मारा गया सुनकर क्या किया यह भी मुझे सुना ! ॥ १७-१६ ॥ पहिले जो हमने अपराध किये थे उनके कारणसे और अब उन का सेनापति श्वेत मारा गया इसकारणसे मेरी समझमें महात्मा पाण्डवोंका मन जल उठा होगा ॥ २० ॥ दुर्योधनके कारणसे उनके कोपका ध्यान आने पर मुझे रात दिन शान्ति नहीं मिलती है, हे सञ्जय ! यह महायुद्ध किसप्रकार हुआ, यह सब मुझे सुना ॥ २१ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! तुम स्थिर होकर सुनो, यह दोष आपको दुर्योधनके ऊपर नहीं लगाना चाहिये आपने भी इसमें बडाभारी अन्याय किया है ॥ २२ ॥ तुम्हारी बुद्धि, जल निकल जाने पर पुल बाँधनेकी समान है, अब ऐसी बातें करना तो घर जलने लगने पर कुआ खोदनेकी समान है ॥ २३ ॥ जब मध्यान्हसे आगेको कितना ही समय बीतगया तब उस दारुण दिनमें तुम्हारे और पाण्डुके पुत्रोंमें फिर युद्ध होने लगा ॥ २४॥ विराटका सेनापति श्वेत मारा गया, यह

दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥ २५ ॥ शङ्खः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव । स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ २६ ॥ अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं युधि । महता रथसंघेन समंतात् परिरक्षितः ॥ २७ ॥ सृजन् बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति । तमापतंतं संप्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ २८ ॥ तावकानां रथाः सप्त समंतात् पर्यवारयन् । मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रांतरं-गतम् ॥ २९ ॥ बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः । तथा रुक्मरथो राजन् पुत्रः शल्यस्य मानितः ॥ ३० ॥ विन्दानुविन्दा-वावंत्यौ कांबोजश्च सुदक्षिणः । बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैंधवश्च जय-द्रथः ॥ ३१ ॥ नानाधातुविचित्राणि कार्मुकाणि महात्मनाम् । विस्फारितान्यदृश्यंत तोयदेष्विव विद्युतः ॥३२॥ ते तु बाणमयं

देख कर तथा कृतवर्माके साथ शल्यको खड़ा हुआ देखकर २५ जैसे घी छोड़नेसे अग्नि प्रज्वलित होता है तैसे ही शंख अति क्रोधमें भर गया और महाबली शंख इन्द्रधनुष की समान अपने धनुषको चढ़ाकर मद्रराज शल्यको मारने के लिये आगेको बढ़ा, उस समय बहुतसे रथोंका समूह चारों ओरसे शंखकी रक्षा कर रहा था ॥ २६ ॥ २७ ॥ वह बाणोंकी वर्षा करता हुआ शल्यके रथ पर आपहुंचा, उस मतवाले हाथी की समान पराक्रमीको ऊपरको आते हुए देख ॥ २८ ॥ अब शल्य मौतके मुखमें आपड़ा, ऐसा विचार कर तुम्हारे सात रथी उसके आस पास आडटे ॥ २९ ॥ कौशलदेशका बृहद्बल, मगध-देशका जयत्सेन, हे राजन् ! शल्यका प्यारा पुत्र रुक्मरथ ॥३०॥ विंद और अनुविंद ये दोनों उज्जैनके राजकुमार, कांबोजदेशका राजा सुदक्षिण, बृहत्क्षेमका पुत्र सिंधुदेशका राजा जयद्रथ ३१ इन सब योधाओंके नाना प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्र दीखने वाले खिंचतेहुए धनुष मेघमण्डलमें चमकती हुई बिजलियोंकी समान दीखते थे ॥ ३२ ॥ जैसे चौमासेके आरम्भमें वायुके

वर्षं शंखमूर्ध्नि न्यपातयन् । निदाघेतेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगे जलम् ॥ ३३ ॥ ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्त भल्लैः सुतेजनैः । धनूंषि तेषामाच्छिद्य ननर्द पृतनापतिः ॥ ३४ ॥ ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा । तालमात्रं धनुर्गृह्य शंखमभ्यद्रवद्रणे ॥३५॥ तमुद्यन्तमुदीक्ष्याथ महेष्वासं महाबलम् । संत्रस्ता पाण्डवी-सेना वातवेगहतेव नौः ॥ ३६ ॥ ततोऽर्जुनः सत्वरितः शंखस्या-सीत् पुरःसरः । भीष्माद्रक्ष्योऽयमद्येति ततो युद्धमवर्तत ॥३७॥ हाहाकारो महानासीद्योधानां युधि युध्यताम् । तेजस्तेजसि संपृक्त-मित्येवं विस्मयं ययुः ॥ ३८॥ अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महा-रथात् । शङ्खस्य चतुरो वाहानहनद्भरतर्षभ ३९ स हताश्वाद्रथात्तूर्णं खड्गमादाय विद्रुतः । बीभत्सोश्च रथं प्राप्य पुनः शांतिमविन्दत४०

प्रेरणा किये हुए मेघ पहाड़के ऊपर वर्षा करते हैं तैसे ही ये सब योधा शंखके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥ इससे कोपमें भरकर सेनापति शङ्ख सात बाणोंसे सातोंके धनुष काट कर गरजनेलगा, यह देख ताड़की समान धनुषको हाथमें लेकर गरजते हुए महाबाहु भीष्मजी शङ्खके ऊपर चढ़ आये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ भीष्मजीको आतेहुए देखकर पाण्डवोंकी सेना ऐसे काँपनेलगी कि—जैसे पवनसे नौका डगमगाने लगती है ॥ ३६ ॥ अब इस की भीष्मजीसे रक्षा करनी चाहिये, ऐसा विचार कर अर्जुन शंखके आगे आकर खड़ा होगया और तुरन्त ही युद्ध करना आरम्भ कर दिया ॥३७॥ रणभूमिमें लड़ते हुए योधाओंमें बड़ा हाहाकार होरहा था और एक तेज दूसरे तेजसे आकर मिलगया, यह देखकर सबोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ३८ ॥ हे भरतसत्तम ! फिर शल्यने अपने रथमेंसे नीचे उतर हाथमें गदा लेकर शङ्खके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ३९ ॥ जिसके घोड़े मर गये हैं, ऐसे रथमेंसे उतर कर शंख हाथमें तलवार लिये हुए अर्जुनके रथमें जा बैठा तब उसको कुछ शान्ति मिली ॥ ४० ॥

ततो भीष्मरथात्तूर्णमुत्पतन्ति पतत्रिणः । यैरन्तरिक्षं भूमिश्च सर्वतः समवस्तृता ॥ ४१ ॥ पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च प्रभद्रकान् । भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः ॥४२॥ उत्सृज्य समरे राजन् पांडवं सव्यसाचिनम् । अभ्यद्रवत पांचाल्यं द्रुपदं सेनया वृतम् ॥ ४३ ॥ प्रियं संबंधिनं राजन् शरानवकिरन्बहून् । अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये ॥ ४४ ॥ शरदग्धान्यदृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह । अत्यतिष्ठद्रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ४५ मध्यंदिने यथादित्यं तपंतमिव तेजसा । न शेकुः पाण्डवेयस्य योधा भीष्मं निरीक्षितुम् ॥ ४६ ॥ वीक्षांचक्रुः समंतात्ते पांडवा भयपीडिताः । त्रातारं नाध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥ ४७ ॥ सा तु यौधिष्ठिरी सेना गांगेयशरपीडिता । सिंहेनेव विनिर्भिन्ना शुक्ला गौरिव गोपतेः॥४८॥ हतो विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते

फिर भीष्मजीके रथमेंसे बाणोंकी वर्षा होने लगी और उससे आकाश तथा रणभूमि छागयी ॥ ४१ ॥ इस समय प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ भीष्मजीने बाणोंसे, पाञ्चाल, मत्स्य, केकय, प्रभद्रक आदि योधाओंका संहार करना आरम्भ कर दिया ॥४२ ॥ हे राजन् ! रणमें पाण्डुपुत्र अर्जुनको छोड़कर वह सेनासे घिरे हुए पाञ्चालराज द्रुपदके सामने आये,।४३। इसप्रकार अपने प्यारे संबंधी के सामने आकर भीष्मजीने बाणोंकी वर्षा कर जैसे उष्णकाल में अग्नि वनको जला डालता है तैसे ही राजा द्रुपदकी सेनाका नाश कर डाला ॥ ४४ ॥ और द्रुपदकी सेनाको जलाकर धकधकाते हुए अग्निकी समान भीष्मजी रणमें खड़े होगये ॥ ४५॥ मध्यान्हमें तपते हुए सूर्यकी समान, भीष्मजीकी ओरको पाण्डवों के योधा देख भी नहीं सके, शीतसे पीड़ा पाते हुए बैलोंकी समान पाण्डवोंके योधा किसी रक्षकके न मिलनेसे भयभीत होकर चारों ओरको देखने लगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सिंहका पञ्जा लगतेही ग्वालेकी सफेद गौकी जैसी दशा होती है,तैसी ही दशा भीष्मजीके बाण लगनेसे युधिष्ठिरकी सेनाकी होगयी॥४८॥

हाहाकारो महानसीत् पांडुसैन्येषु भारत ॥ ४६ ॥ ततो भीष्मः शांतनवो नित्यंमंडलकार्मुकः । मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ ५० ॥ शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वायतव्रतः । जघान पांडवरथानादिश्यादिश्य भारत ॥ ५१ ॥ ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः। प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन ॥ ५२ ॥ भीष्मं च समुदीर्यंत दृष्ट्वा पार्था महाहवे । अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि शङ्खयुद्धे प्रथमदिवसावहार एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सञ्जय उवाच । कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ । भीष्मे च युद्धसंरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा ॥ १ ॥ धर्मराजस्ततस्तूर्णमभिगम्य जनार्दनम् । भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः ॥ २ ॥ शुचा परमया युक्तश्चिन्तयानः पराजयम् । वार्ष्णेयमब्रवी-

---

इसप्रकार कोई मर गये, किन्हींका उत्साह टूटगया, और कोई भाग निकले तब पाण्डवोंकी सेनामें हाहाकार मचगया तो भी भीष्म उग्र सांपकी समान बाण अपने धनुषमेंसे छोड़े ही चलेगये ॥ ॥ ४६ ॥ ५० ॥ हे भारत ! बाणोंसे सब दिशाओंको ढककर भीष्मजी पाण्डवोंके योधाओंका बुलार कर संहार करने लगे ॥ ५१ ॥ इसप्रकार जब कितनी ही सेनां कटगयी और कितनी ही भागगयी और सूर्य अस्त होगया उस समय कुछ भी नहीं दीखता था ॥ ५२ ॥ हे भरतसत्तम ! इसप्रकार भीष्मजीको महासंग्राममें लगे हुए देखकर पाण्डवोंने अपनी सेना पीछेको हटा ली ॥ ५३ ॥ उनञ्चासवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—पहिले दिन जब पाण्डवोंने अपनी सेना पीछेको हटायी उस समय भीष्मजी युद्धमें बड़े कुपित होरहे थे और दुर्योधन बड़ा हर्ष मना रहा था, उस समय राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके तथा अन्य राजाओंके साथ श्रीकृष्णजीके

द्राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ॥ ३॥ कृष्ण पश्य महेश्वासं भीष्मं भीमपराक्रमम् । शरैर्दहन्तं सैन्यं मे ग्रीष्मे कक्षमिवानलम् ॥ ४ ॥ कथमेनं महात्मानं शक्ष्यामः प्रतिवीक्षितुम् । लेलिह्यमानं सैन्यं मे हविष्मन्तमिवानलम् ॥ ५ ॥ एतं हि पुरुषव्याघ्रं धनुष्मन्तं महाबलम् । दृष्ट्वा विप्रद्रुतं सैन्यं समरे मार्गणाहतम् ॥ ६ ॥ शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च संयुगे । वरुणः पाशभृद्वापि कुवेरो वा गदाधरः ॥७॥ न तु भीष्मो महातेजाः शक्यो जेतुं महाबलः। सोऽहमेवं गते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवे ॥ ८ ॥ आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य केशव । वनं यास्यामि वार्ष्णेय श्रेयो मे तत्र जीवितुम् ॥ ९ ॥ न त्वेतान् पृथिवीपालान् दातुं भीष्माय

पास गये और अपने पराजयकी चिन्तासे बड़े शोकमग्न होकर उनसे कहने लगे, कि—॥ १—३ ॥ हे कृष्ण ! इन महाभयानक कर्म करनेवाले महाधनुषधारी भीष्मजीको आप देखते हैं ? जैसे ग्रीष्ममें अग्नि घासके ढेरको जलाकर भस्म कर डालता है तैसे ही यह अपने बाणोंसे मेरी सेनाका संहार कर रहे हैं ॥४ ॥ घी छोड़ने से प्रचण्ड हुए अग्निकी समान मेरी सेनाको भस्म करतेहुए इन भीष्मजीके सामनेको हम कैसे देखसकेंगे ? ॥५॥ संग्राममें बाणोंसे घायल हुई मेरी सेना इन महाबली पुरुषसिंह धनुषधारी भीष्मजी को देखकर भागने लगी थी ॥६॥ कोपमें भरेहुए यमको, वज्रधारी इन्द्रको पाशधारी वरुणको या गदाधारी कुवेरको कदाचित् युद्ध में जीतना संभव हो ॥ ७ ॥ परन्तु इन महाबली और तेजस्वी भीष्मजीको जीतना तो असंभव ही है, इसकारण मैं भीष्मरूप अगाध जलमें विना नावके डूबा जाता हूं ॥ ८ ॥ हे वृष्णिवंशी केशव ! मैं अपनी दुर्बलताके कारण भीष्मजीके लड़नेके लिये सामने आनेपर वनमें चला जाऊँगा ऐसा करनेमें प्राणोंकी रक्षा होगी और मेरा कल्याण भी होगा ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! इन राजाओं

मृत्यवे । क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित् ॥ १० ॥ यथाऽनलं गज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः । विनाशायोपगच्छन्ति तथा मे सैनिको जनः ॥११॥ अयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी । भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः ॥ १२ ॥ मत्कृते भ्रातृहार्देन राज्याद् भ्रष्टास्तथा सुखात् । जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ॥ १३ ॥ जीवितस्य च शेषेण तपस्तप्स्यामि दुष्करम् । न घातयिष्यामि रणे मित्राणीमानि केशव ॥ १४ ॥ रथान् मे बहुसाहस्रान् दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः । घातयत्यनिशं भीष्मः प्रवराणां प्रहारिणाम् ॥१५॥ किं नु कृत्वा हितं मे स्याद् ब्रूहि माधव मा चिरम् । मध्यस्थमिव पश्यामि समरे सव्यसाचिनम् ॥ १६ ॥ एको भीमः परं शक्त्या युध्यत्येव महाभुजः ।

को मैं भीष्मरूप कालके मुखमें नहीं डालना चाहता, यह बड़ी भारी अस्त्रविद्याको जाननेवाले भीष्म तो मेरी सब सेनाका संहार करडालेंगे ॥ १० ॥ क्योंकि-जैसे अग्निके ऊपर गिरनेवाले पतंगे नष्ट होजाते हैं, तैसे ही भीष्मजीके ऊपर चढ़ाई करनेवाले मेरे सैनिक नष्ट होजायँगे ॥ ११ ॥ हे यादव ! राज्यके लिये मेरे पराक्रमी संबंधियोंका नाश होगया है, मेरे वीर भाई भी बाणों से पीड़ा पाकर दुबले होगये हैं ॥ १२ ॥ भ्रातृप्रेमके कारण मेरे भाई मेरे लिये राज्यको तथा सुखको खोचुके हैं मैं जिस जीवनकी बड़ी आशा रखता रखता हूं, वह जीवन आज मुझे दुर्लभ हो रहा है ॥ १३ ॥ अब मेरा जो कुछ जीवन बचेगा, उसमें मैं कठोर तपस्या करूँगा, हे केशव ! मैं रणमें इन अपने मित्रोंको नहीं मरवाऊँगा ॥ १४ ॥ यह महाबली भीष्मजी नित्य दिव्य अस्त्रोंसे मेरे हजारों रथी और दिव्य योधाओंका नाश करते हैं ॥ १५ ॥ हे माधव ! शीघ्र बताइये क्या काम करनेसे मेरा भला होगा, इस अर्जुनको तो मैं युद्धमें मध्यस्थकी समान देखता हूं ॥ १६ ॥ महाबाहु भीमसेन अकेला ही अपनी शक्तिके अनुसार शुद्ध मन

केवलं बाहुवीर्येण क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ १७ ॥ गदया वीरघातिन्या यथोत्साहं महामनाः । करोत्यसुकरं कर्म रथाश्वनरदं त्रिषु ॥१८॥ नालमेष क्षयं कर्तुं परसैन्यस्य मारिष । आर्जवेनैव युद्धेन वीर वर्षशतैरपि ॥ १६ ॥ एकोऽस्त्रवित् सखा तेऽयं सोऽप्यस्मान् समुपेक्षते । निर्दह्यमानान् भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २० ॥ दिव्यान्यस्त्राणि भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः । धक्ष्यंति क्षत्रियान् सर्वान् प्रयुक्तानि पुनः पुनः ॥ २१ ॥ कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्वपार्थिवैः । क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः ॥ २२ ॥ स त्वं पश्य महाभाग योगेश्वर महारथम् । भीष्मं यः शमयेत् संख्ये दावाग्निं जलदो यथा ॥ २३ ॥ तव प्रसादाद्ग गोविन्द पांडवा निहतद्विषः । स्वराज्यमनुसंप्राप्ता

से युद्ध करता है। यह क्षत्रियके धर्मको स्मरण करके अपने बाहुबलसे घूमा करता है ॥ १७ ॥ रथ, घोड़े और हाथियोंकी सेना में बड़े उत्साहके साथ यह महामना अकेला ही वीरोंका नाश करनेवाली गदासे असह्य पराक्रम दिखाता है ॥१८॥ हे कृष्ण ! यह अकेला यदि सौ वर्ष तक भी सरलतासे युद्ध करता रहे तो भी शत्रुकी सेनाका नाश नहीं कर सकता ॥ १६ ॥ हमारी ओर यह एक आपका मित्र ही अस्त्रविद्याको उत्तमरूपसे जानता है, परन्तु यह भी हमारी रक्षाका कुछ ध्यान नहीं रखता, देखिये भीष्म और महात्मा द्रोण हमको भस्म किये डालते हैं; परन्तु इसको कुछ चिन्ता नहीं है ॥ २० ॥ भीष्म और महात्मा द्रोणके वारवार छोड़े हुए दिव्य अस्त्र सब क्षत्रियोंको भस्म कर डालेंगे ॥२१ ॥ हे कृष्ण ! इन भीष्मजीका जैसा पराक्रम है इस दशामें तो यह निःसन्देह अति क्रोधमें भरनेपर सकल राजाओं सहित हमारा नाश कर डालेंगे ॥ २२ ॥ हे महाभाग ! हे योगेश्वर कृष्ण ! आप किसी ऐसे महारथीको तो देखकर बताइये, कि-जो रणमें भीष्मजीको इसप्रकार शान्त करदेय कि-जैसे मेघ दौका अग्नि को शान्त करदेता है ॥२३ ॥ हे गोविन्द ! आपही अनुग्रह करेंगे

मोदिष्यंते सबान्धवाः ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा ततः पार्थो ध्याय-न्नास्ते महामनाः । चिरमंतर्मना भूत्वा शोकोपहतचेतनः । शोकार्त तमथो ज्ञात्वा दुःखोपहतचेतसम् ॥ २५ ॥ अब्रवीत्तत्र गोविन्दो हर्षयन् सर्वपाण्डवान् । मा शुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचतुमर्हसि २६ यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्वलोकेषु धन्विनः । अहं च प्रियकृद्राजन् सात्यकिश्च महायशाः ॥ २७ ॥ विराटद्रुपदौ चेमौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । तथैव सबलाश्चेमे राजानो राजसत्तम ॥ २८ ॥ त्वत्-प्रसादं प्रतीक्षन्ते त्वद्भक्ताश्च विशाम्पते । एष ते पार्षतो नित्यं हितकामः प्रिये रतः ॥ २९ ॥ सैनापत्यमनुप्राप्तो धृष्टद्युम्नो महा-बलः । शिखंडी च महाबाहो भीष्मस्य निधनं किल ॥ ३० ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो धर्मो धृष्टद्युम्नं महारथम् । अब्रवीत् समितौ

तो पाण्डवोंके शत्रुओंका नाश होगा, और यह राज्य पाकर बान्धवों सहित आनन्द भोगेंगे ॥२४॥ इतना कहकर फिर शोक से अचेतसे हुए महामना युधिष्ठिर चुप होकर बहुत देरतक मन ही मनमें न जाने क्या विचारने लगे, उनको शोकसे आतुर तथा दुःख और मोहमें डूबाहुआ देखकर उस समय भगवान् कृष्ण सब पाण्डवोंको प्रसन्न करते हुए बोले, कि-हे भरतश्रेष्ठ! शोक न करो, शोक करना तुम्हें शोभा नहीं देता॥ २५ ॥ २६ ॥ हे राजन्! जिन आपके, शूर भाई सब लोकोंमें प्रसिद्ध धनुषधारी हैं मैं आपका प्रिय काम करने वाला हूं तथा बड़ीकीर्त्तिवाला सात्यकी ये दोनों विराट और द्रुपद, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न तथा हे राजसत्तम! अपनी२ सेनाओं सहित ये राजे॥ २७ ॥ २८ ॥ आपका अनुग्रह चाहते हैं तथा तुम्हारे भक्त हैं महाबली धृष्टद्युम्न तुम्हारा सेनापति बना है और यह तुम्हारा हित और प्रिय करनेमें तत्पर है और यह महाबाहु शिखण्डी तो निःसन्देह भीष्मजीका काल ही है ॥२६॥ ॥ ३० ॥ यह बात सुनकर तदनन्तर युधिष्ठिर उस सभामें कृष्ण

तस्यां वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३१ ॥ धृष्टद्युम्न निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि मारिष । नातिक्रम्य भवेत्तच्च वचनं मम भाषितम् ॥३२॥ भवान् सेनापतिर्मह्यं वासुदेवेन संमितः । कार्त्तिकेयो यथा नित्यं देवानामभवत् पुरा ॥ ३३ ॥ तथा त्वमपि पांडूनां सेनानीः पुरुषर्षभ । स त्वं पुरुषशार्दूल विक्रम्य जहि कौरवान् ॥ ३४ ॥ अहं च तेऽनुयास्यामि भीमः कृष्णश्च मारिष । माद्रीपुत्रौ च सहितौ द्रौपदेयाश्च दंशिताः ॥ ३५ ॥ ये चान्ये पृथिवीपालाः प्रधानाः पुरुषर्षभ । तत उद्धर्षयन् सर्वान् धृष्टद्युम्नोऽभ्यभाषत ॥ ३६ ॥ अहं द्रोणांतकः पार्थ विहितः शम्भुना पुरा । रणे भीष्मं कृपं द्रोणं तथा शल्यं जयद्रथम् ॥ ३७ ॥ सर्वानद्य रणे दृप्तान् प्रतियोत्स्यामि पार्थिव । अथोत्कुष्टं महेष्वासैः पांडवैर्युद्धदुर्मदैः ॥३८॥

के सुनते हुए महारथी धृष्टद्युम्नसे कहने लगे कि-॥ ३१ ॥ हे राजकुमार धृष्टद्युम्न ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूं उसको सुनो मैं जो कुछ कहता हूं उस बातको तुम पलटना नहीं ॥ ३२ ॥ इस समय श्रीकृष्णने तुम्हें मेरे लिये सेनापति चुना है जैसे पहिले कार्त्तिकेय देवताओंके सेनापति हुए थे तैसे ही हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम पाण्डवोंके सेनापति हो हे पुरुषसिंह ! तुम पराक्रम दिखाकर कौरवोंका संहार करो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! मैं भीम, अर्जुन परस्पर प्रेम रखनेवाले नकुल सहदेव कवच पहरेहुए द्रौपदी के सब पुत्र तथा और भी जो प्रधान२ राजे हैं सब आपके पीछे पीछे चलेंगे यह सुन सबको परम हर्ष देताहुआ धृष्टद्युम्न बोला, कि-॥ ३५ ॥ ३६ ॥ शिवजीने मुझे पहिले हीं द्रोणका कालरूप बनाया है तो भी मैं रणमें भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य तथा जयद्रथके साथ लडूंगा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! आज सब अभिमानियोंके साथ रणभूमिमें लडूंगा, शत्रुनाशी धृष्टद्युम्नके इस प्रकार कहनेपर युद्धके मतवाले महाधनुषधारी पाण्डव आनन्द में आकर जयजयकारका कोलाहल करने लगे ॥ ३८ ॥

समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने। तमब्रवीत्ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिम् ॥३९॥ व्यूहः क्रौंचारुणो नाम सर्वशत्रुनिवर्हणः। यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत् ॥४०॥ तं यथावत् प्रतिव्यूहं परानीकविनाशनम्। अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह ॥ ४१ ॥ यथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता तथा। प्रभाते सर्वसैन्यनामग्रे चक्रे धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥ आदित्यपथगः केतुस्तस्याद्भुतमनोरमः। शासनात् पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ ४३ ॥ इन्द्रायुधसवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतः। आकाशग इवाकाशे गन्धर्वनगरोपमः ॥ ४४ ॥ नृत्यमान इवाभाति रथचर्यासु मारिष। तेन रत्नवता पार्थः स च गांडीवधन्वना ॥ ४५ ॥ बभूव परमोपेतः सुमेरुरिव भानुना। शिरो-

---

अपना सेनापति शत्रुनाशक राजेन्द्र धृष्टद्युम्न सेनापतिका पद लेने को उद्यत हुआ तब उस सेनापति धृष्टद्युम्नसे युधिष्ठिरने कहा कि-॥ ३९ ॥ देवता और असुरोंके युद्धके समय बृहस्पतिने इन्द्रको शत्रुओंका नाश करनेवाला क्रौंचारुण, नामका व्यूह रचना बताया था ॥ ४० ॥ शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाले व्यूहको मैं यथावत् रचता हूं उसको पहले किसीने नहीं देखा होगा, अब सब राजे और कौरव देखैं ॥४१॥ इन्द्रकी आज्ञा पाये हुए विष्णु की समान धृष्टद्युम्न ने राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे दूसरे दिन प्रातः-कालके समय अर्जुनको सब सेनाके आगे किया ॥ ४२ ॥ जिसको इन्द्रकी आज्ञासे विश्वकर्माने बनाया था ऐसा सूर्यके मार्गतक पहुंचा हुआ अर्जुनकी ध्वजाका दण्डा बड़ा ही अद्भुत तथा सुन्दर मालूम होता था ॥ ४३ ॥ आकाशमें दूर तक पहुंचा हुआ और इन्द्रधनुषकी समान रङ्गबिरङ्गी पताकाओंसे शोभायमान हुआ वह ध्वजदण्ड रथमार्गमें नृत्य करता हुआ सा और आकाश में गन्धर्वनगरसा मालूम होता था, उस रत्न जड़ी ध्वजासे और गाण्डीव धनुषसे अर्जुन सूर्ययुक्त मेरुपर्वतकी समान शोभा पारहा

ऽभूद्द्रुपदो राजा महत्या सेनया वृतः ॥ ४६ ॥ कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्ष्यां तौ जनेश्वरौ । दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशार्णक-गणैः सह ॥ ४७ ॥ अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ । पटच्चरैश्च पौंड्रैश्च राजन् पौरवकैस्तथा ॥४८॥ निषादैः सहित-श्चापि पृष्ठमासीद्युधिष्ठिरः । पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४९ ॥ द्रौपदेयोभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः । पिशाचा दरदाश्चैव पुड्राः कुंडीविषैः सह ॥ ५० ॥ मारुता धेनुकाश्चैव तंगणाः परतङ्गणाः । वाह्लिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पांड्याश्च भारत ॥ ५१ ॥ एते जनपदा राजन् दक्षिणं पक्षमाश्रिताः । अग्निवेश्यास्तु हुंडाश्च मालवा दानभारयः ॥ ५२ ॥ शवरा उद्भ-साश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः । नकुलः सहदेवश्च वामं पक्षं समा-श्रिताः ॥ ५३ ॥ रथानामयुतं पक्षौ शिरस्तु नियुतं तथा । पृष्ठम-

---

था, राजा द्रुपद बड़ीभारी सेनाको लिये हुए आकर व्यूहके शिरो-भागमें खड़ा होगया ॥ ४४ ॥ ४६ ॥ राजा कुन्तीभोज तथा चेदिराज दोनों नेत्रोंके स्थानपर आकर खड़े होगये, सेवकगणों के साथ दाशार्णक और प्रभद्रक ॥ ४७ ॥ अनूपक और किरात हे भरतसत्तम ! उस व्यूहकी ग्रीवाके स्थानपर खड़े होगये हे राजन् ! पटच्चर, पौंड्र, पौरवक तथा निषादोंको साथ लेकर राजा युधिष्ठिर उसका पृष्ठभाग बन गये, भीमसेन और पृषत्कुमार धृष्टद्युम्न उसके दोनों करवट बनगये ॥ ४८ ॥४९ ॥ द्रुपदका पुत्र अभिमन्यु महारथी सात्यकी तथा पिशाच, दरद, पुण्ड्र, कुण्डविष, मारुत, धेनुक, तङ्गण परतङ्गण, वाह्लीक, तित्तिर, चोल और पाण्ड्य इन देशोंके राजे हे राजन् ! दक्षिण भागकी रक्षा करने लगे, अग्निवेश, हुण्ड, मालव, दानभारी, शवर, उद्भास, वत्स और नाकुल देशके राजे तथा नकुल सहदेव वामभागकी रक्षा करने लगे ॥ ५० ॥ ५३ ॥ दोनों करवटोंमें दश हजार रथ खड़े

र्दुर्दमेत्रासीत् सहस्राणि च विंशतिः ॥५४॥ ग्रीवायां नियुतं चापि सहस्राणि च सप्ततिः। पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षांतेषु च वारणाः ॥५५॥ जग्मुः परिवृता राजंश्चलंत इव पर्वताः। जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ॥ ५६ ॥ काशिराजश्च शैव्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः। एवमेनं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ॥ ५७ ॥ सूर्योदयं त इच्छंतः स्थिता युद्धाय दंशिताः। तेषामादित्यवर्णानि विमलानि महांति च। श्वेतच्छत्राण्यशोभंत वारणेषु रथेषु च ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौंच-
व्यूहनिर्माणे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सञ्जय उवाच। क्रौंचं दृष्ट्वा ततो व्यूहमभेद्यं तनयस्तव। रक्ष्यमाणं महाघोरं पार्थेनामिततेजसा ॥ १ ॥ आचार्यमुपसंगम्य कृपं शल्यं च पार्थिव। सौमदत्तिं विकर्णं च सोऽश्वत्थामानमेव च ॥२॥

किये गये, शिरोभागमें एक लाख रथ पृष्ठभागमें एक अब्ज और वीस हजार रथ, ग्रीवाके स्थानपर एक लाख और सत्तर हजार रथ खड़े किये गये, करवटकी अनीके आगे तथा अन्तमें चलते हुए पहाड़ोंकी समान असंख्यों हाथी खड़े कियेगये थे, उस व्यूह के जंघास्थानकी रक्षा राजा विराट, केकय, काशिराज, चेदिराज तथा शैव्य तीस हजार रथोंको साथ लेकर करते थे, हे भारत ! इसप्रकार व्यूहरचना करके पाण्डव युद्धके लिये तयार हो सूर्योदयकी वाट देखते हुए खड़े थे, उस समय हाथी और रथोंके ऊपर लगेहुए सूर्यकी समान वर्णवाले निर्मल स्वेत छत्र बड़े शोभायमान दीखते थे ॥ ॥ ५४—५८ ॥ पञ्चासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥   छ   ॥   छ   ॥   छ

सञ्जय कहता है, कि— अभेद्य क्रौंचव्यूहकी रचनाको देख कर तथा अपार तेजस्वी अर्जुनको उसकी रक्षा करते हुए देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन द्रोणाचार्यके पास जाकर कृपाचार्य, शल्य, सौमदत्ति, विकर्ण, अश्वत्थामा, दुःशासन आदि अपने भाइयोंको

दुःशासनादीन् भ्रातॄंश्च सर्वानेव च भारत। अन्यांश्च सुबहून् शूरान् युद्धाय समुपागतान् ॥ ३ ॥ प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव। नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥ एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः। पांडुपुत्रान् रणे हंतुं ससैन्यान् किमु संहताः ॥ ५ ॥ अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्। पर्याप्तमिदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्। संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकुरास्तथा। आरोचकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥ ७ ॥ शत्रुञ्जयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च। विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ॥ ८ ॥ चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पारिभद्रकैः भीष्ममेवाभिरक्षन्तु सह सैन्यपुरस्कृताः॥९॥ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष। अव्यूहंत महाव्यूहं पांडूनां प्रतिबाधकम्॥१०॥ भीष्मः सैन्येन महता समंतात्परिवारितः। ययौ प्रकर्षन्महतीं वाहिनीं सुरराडिव॥११॥ तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान्।कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशांपते१२ विदर्भैर्मेकलैश्चैव

तथा युद्ध करनेके लिये आयेहुए और अनेकों शूर राजाओंको भी हर्ष देताहुआ कहने लगा, कि—हे राजाओं! नाना प्रकार के शस्त्र और प्रहरणों वाले तथा युद्धमें चतुर तुममेंका हरएक पाण्डवोंको और उनकी सेनाको मार सकता है, फिर यदि तुम सब इकट्ठे होजाओ तब तो कहना ही क्या है? ॥१॥५॥ भीष्मजी से रक्षित यह हमारा बल अपूर्ण है तथा भीमसेनसे रक्षा किया हुआ इनका बल परिपूर्ण है।६॥ इसलिये संस्थान,शूरसेन,वेत्रिक, कुकुर, अरोचक, त्रिगर्त, मद्रक, यवन, शत्रुञ्जय तथा दुःशासन, विकर्ण, नन्द, उपनन्द,चित्रसेन तथा परिभद्रक सेनाओंको लेकर भीष्मजीकी रक्षा करो ॥ ७ ॥ ९ ॥ हे राजन्! इस प्रकार आज्ञा देनेके अनन्तर तुम्हारे पुत्र तथा द्रोण और भीष्म पाण्डवोंके सामने महाव्यूह रचने लगे ॥ १० ॥ बडीभारी सेनासे चारों ओरसे घिरेहुए भीष्मजीके पीछे कुन्तल, दशार्ण, मागध, विदर्भ, मेकल,

कर्णप्रावरणैरपि। सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ।१३। गांधाराः सिंधुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः । शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥ १४ ॥ ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः । अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा चांबष्ठकोसलैः ॥ १५ ॥ दरदैश्च शकैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः । अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम् ॥ १६ ॥ भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष । विंदानुविंदावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन ॥१७॥ सोमदत्तिः सुशर्मा च कांबोजश्च सुदक्षिणः । श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च दक्षिणं पक्षमास्थिताः ॥ १८ ॥ अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः । महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥ पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् नानादेश्या जनेश्वराः । केतुमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ॥ २० ॥ ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत । दध्मुः शंखान् मुदा युक्ताः सिंहनादांस्तथाऽनदन्

कर्णप्रावरण तथा उनकी सेनाओंके साथ प्रतापी द्रोणाचार्य चले ॥ १२ ॥ १३ ॥ गान्धार, सिन्ध, सौवीर शिवी, वसाती और अपनी सेना सहित शकुनि,द्रोणाचार्यकी रक्षा करता हुआ चला ॥ १४ ॥ और दुर्योधन अपने सहोदर भाइयोंको साथ ले कर अश्वातक, विकर्ण, अंबष्ठ, कोसल ॥ १५ ॥ दरद, शक, क्षुद्रक और मालव आदिके साथ शकुनिकी सेनाकी रक्षा करता था ॥ १६ ॥ भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त, उज्जैनके विंद और अनुविंद बायें भागकी रक्षा करते थे ॥ १७ ॥ सोमदत्ति, सुशर्मा काम्बोजराज सुदक्षिण श्रुतायु और अच्युतायु दाहिने भागकी रक्षा करते थे॥१८॥अश्वत्थामा,कृपाचार्य कृतवर्मा आदि बड़ीभारी सेनाको लेकर व्यूहके पृष्ठ भागकी रक्षा करते थे ॥ १९ ॥ दूसरे देशोंके राजे केतुमान्, वसुदान तथा काशिराजका पुत्र ये इनके पीछे खड़े होकर रक्षा करते थे ।२०। इसप्रकार नियमसे खड़े हुए तुम्हारी ओरके योधा युद्धके लिये तयार होगये और शङ्खों

॥ २१ ॥ तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां वृद्धः कुरुपितामहः । सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २२ ॥ ततः शंखाश्च भेर्यश्च पेशयश्च विविधाः परैः । आनकाश्चाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ २३ ॥ ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ । प्रदध्मतुः शंखवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ ॥ २४ ॥ पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः । पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः २५ अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ २६ ॥ काशिराजश्च शैब्यश्च शिखण्डी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २७ ॥ पांचालाश्च महेष्वासा द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः । सर्वे दध्मुर्महाशंखान् सिंहानादांश्च नेदिरे ॥ २८ ॥ स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः । नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत्

की ध्वनि तथा सिंहोंकी समान गर्जना करने लगे॥२१॥ इन सब प्रसन्न हुओंके शब्दको सुनकर कुरुओंमें वृद्ध पितामह प्रतापी भीष्मजीने सिंहकी समान दहाड़कर जोरसे शङ्ख बजाया ॥२२॥ यह सुनकर शत्रु पक्षवालोंने अनेकों प्रकारके शङ्ख भेरी पेशी तथा आनकोंको बजाना आरम्भ करदिया, रणभूमिमें बड़ा घोर शब्द सुनाई आने लगा ॥ २३ ॥ फिर सफेद घोड़ोंसे जुते रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन सुवर्ण तथा रत्नोंसे शोभायमान पाञ्चजन्य तथा देवदत्त नामके शङ्खोंको बजाने लगे॥२४॥भयानक कर्म करनेवाले भीमसेनने पौंड्र नामका शङ्ख बजाया ॥ २५ ॥ कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने अनन्तविजय नामके शङ्खको बजाया नकुल और सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक नामके शङ्खको बजाया ॥ २६ ॥ काशिराज, शैब्य महारथी शिखण्डी धृष्टद्युम्न विराट महारथी सात्यकी ॥ २७ ॥ पाञ्चाल, महाधनुषधारी द्रौपदीके पांच पुत्र ये सब बड़े२ शङ्खोंको बजाते हुए सिंहोंकी समान गरजने लगे ॥ २८ ॥ उन वीर योधाओंका किया हुआ वह बड़ाभारी घोर शब्द पृथिवी और आकाशके मध्यमें भरकर गूंजने लगा

॥ २९ ॥ एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः । पुनर्युद्धाय सञ्जग्मुस्तापयानाः परस्परम् ॥ ३० ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि कौरवव्यूहरचनायां एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च । कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । समं व्यूढेष्वनीकेषु सन्नद्धरुचिरध्वजम् । अपारमिव संदृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥२॥ तेषां मध्ये स्थितो राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव । अब्रवीत् तावकान् सर्वान् युद्ध्यध्वमिति दंशिताः ॥ ३ ॥ ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः । पाण्डवानभ्यवर्त्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ४ ॥ ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ।

॥ २९॥ हे महाराज ! इस प्रकार अत्यन्त हर्षमें भरे हुए कौरव तथा पाण्डव परस्पर एक दूसरेको सन्ताप देते हुए फिर युद्धके लिये आकर सन्मुख खड़े होगये ॥ ३० ॥ इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—जब मेरी और शत्रुओंकी सेनाकी इस प्रकार व्यूहरचना होगई तब प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ योधाओं ने किस प्रकार प्रहार किया ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि—इस प्रकार व्यूहरचनासे सेनाके खड़ी होजानेपर बख्तर पहिरे और बांधीहुई सुन्दर ध्वजाओं वाली सागरकी समान अपार सेनाको देखकर ॥ २॥ हे राजन् ! उनके मध्यमें खड़ा हुआ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन उन तुम्हारे योधाओंसे कहने लगा, कि—तुम सब मनमें वैरभाव रखकर युद्ध करो ॥३॥ उसकी इस बातको सुनते ही वह सब ध्वजाओंको चढ़ा और मनको अति क्रूर करके तथा अपने प्राणोंको गये हुए समझकर पाण्डवोंको घेरनेके लिये दौड़ पड़े ॥ ४ ॥ तब तो तुम्हारे पुत्रोंका और पाण्डवोंका ऐसा घोर युद्ध हुआ, कि—देखने वालोंके रोमाञ्च खड़े होते थे, रथोंसे

तावकानां परेषाञ्च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५ ॥ मुक्तास्तु रथिभि-र्बाणाश्चारुपुंखाः सुतेजसः । सन्निपेतुरकुण्ठाग्रा नागेषु च हयेषु च ॥ ६ ॥ तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः । अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥७॥ सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे । कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८ ॥ एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाभिभूः । ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरु-पितामहः ॥ ९ ॥ अभिद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन् वीरसमागमे । सर्वेषामेव सैन्यानामसीद्व्यतिकरो महान् ॥ १० ॥ सादिनो ध्वजिनश्चैव हतप्रवरवाजिनः । विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पांडवाः ॥ ११ ॥ अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् । वार्ष्णेयमब्रवीत् क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥ १२ ॥ एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् । नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधन-

रथ और हाथियोंसे हाथी जुट गये ॥ ५ ॥ रथियोंके छोड़ हुए तेज और सुन्दर पङ्खोंवाले नुकीले बाण हाथी और घोड़ोंके शरीरों में खचाखच घुसने लगे ॥ ६ ॥ इसप्रकार युद्धका आरम्भ होने पर मनमें वैर रखकर हाथमें धनुष लियेहुए भयानक पराक्रम वाले महाबाहु भीष्म पितामह,सौभद्र,भीमसेन,महारथी सात्यकी, कैकेय, विराट, धृष्टद्युम्न आदि नरवीरोंके ऊपर तथा चेदी और मत्स्यदेशके राजाओंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, कुरुओंमें वृद्ध पितामह भीष्मजीने जब युद्ध आरम्भ किया तब पाण्डवों की सेनाकी व्यूहरचना टूट गयी और सब सेना घोलमेल होगई ॥ ७-१० ॥ सवार, ध्वजावाले तथा उत्तमोत्तम घोड़े टपाटप मरने लगे, पाण्डवोंकी सेनामें रथ आदिका नाश होनेसे भागड़ पड़ गई ॥११॥ परन्तु मनुष्योंमें सिंहसमान अर्जुन महारथी भीष्म जीको देखकर कोपमें भरगया और श्रीकृष्णसे कहनेलगा, कि-जिधर पितामह हों उधरको ही मेरा रथ बढ़ाओ ॥१२॥ हे कृष्ण ! कोपमें भरे तथा दुर्योधनके हितमें तत्पर यह भीष्मजी निःसन्देह

हिते रतः ॥ १३ ॥ एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्द्दन । धार्त्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः१४ पांचालान्निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्विना । सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्ज्जनार्द्दन१५ तमब्रवीद्वासुदेवो यत्तो भव धनञ्जय । एष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम् । प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वरः ॥ १७ ॥ चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना । समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥१८॥ महता मेघनादेन रथेनामिततेजसा । विनिघ्नन् कौरवानीकं शूरसेनांश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥ आयाच्छरणदः शीघ्रं सुहृदां हर्षवर्द्धनः । तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ॥२०॥ त्रासयन्तं रणे शूरान् मर्द्दयन्तश्च सायकैः । सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः

मेरी सेनाका संहार कर डालेंगे ॥ १३ ॥ और हे जनार्दन ! यह द्रोण, कृप, शल्य, तथा विकर्ण आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंको साथमें लिये और दुर्योधनको आगे करके दृढ़ धनुषधारियोंसे रक्षित होनेके कारण पाञ्चालोंका नाश करडालेंगे इसलिये हे कृष्ण ! सेनाका हित करनेके निमित्त मैं भीष्मजीका वध करूँगा ॥१४॥ ॥ १५ ॥ अर्जुनकी इस बातको सुनकर श्रीकृष्णने उससे कहा, कि–हे धनञ्जय ! अब तू सावधान होजा, मैं तुझे अब पितामहके रथके पास लिये चलता हूं,हे महाराज ! ऐसा कहकर श्रीकृष्णने अर्जुनके जगत्प्रसिद्ध रथको भीष्मजीके रथके सामनेको हांक दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ फहराती हुई अनेकों पताकाओंवाले,बगलियोंके वर्णकी समान सफेद घोड़ोंसे जुतेहुए जिसकी ऊँची ध्वजामें बैठा हुआ वानर भयानक गर्जना कर रहा है तथा बड़ी भारी घनघटाकी समान घरघराहट वाले और बड़े तेजवाले रथ में बैठकर मित्रोंके हर्षको बढ़ानेवाला पाण्डुपुत्र अर्जुन, कौरवोंका तथा उनकी सेनाका संहार करता हुआ आगेको बढ़ता चला गया, मद टपकाने वाले हाथीकी समान वेगसे बढ चले आते हुए,रणमें शूरोंको त्रास देते हुए तथा बाण छोड़ कर उन

प्राच्यसौवीरकैकयैः ॥ २१॥ सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् । कोहि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् ॥ २२ ॥ द्रोणवैकर्त्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति । ततो भीष्मो महाराज सर्वलोकमहारथः ॥ २३ ॥ अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पिनोद् । द्रोणश्च पञ्चविंशत्या कृपः पञ्चाशता शरैः ॥ २४ ॥ दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः । सैन्धवो नवभिश्चैव शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ २५ ॥ विकर्णो दशभिर्भल्लै राजन् विव्याध पाण्डवम् । स तैर्विद्धो महेष्वासः समन्तान्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥ न विव्यथे महाबाहुर्भिद्यमान इवाचलः । स भीष्मं पञ्चविंशत्या कृपञ्च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥ द्रोणं षष्ट्या नरव्याघ्रो विकर्णञ्च त्रिभिः शरैः । शल्यं चैव त्रिभिर्बाणै राजनञ्चैव पञ्चभिः ॥ २८ ॥ प्रत्यविध्यदमेयात्मा किरीटी भरतर्षभ । तं सात्यकि-

---

का नाश करते हुए अर्जुनको आते देखकर सैंधव आदि प्राच्य, सौवीर, कैकेय आदिसे रक्षित शन्तनुनन्दन भीष्मजी उसके सामने गये और यह योग्य ही था, क्योंकि—भीष्मपितामहके सिवाय तथा द्रोण और कर्णके सिवाय दूसरा कौन गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनके सामने खड़ा रह सकता है ॥१८-२२॥ इसके अनन्तर हे महाराज ! सब लोकोंमें प्रसिद्ध महारथी भीष्मजीने सतत्तर, द्रोणाचार्यने पचीस, कृपाचार्यने पचास, दुर्योधनने चौंसठ, शल्यने नौ, सैंधवने नौ, शकुनिने पांच और विकर्णने दश भल्ल नामके बाण छोड़ कर अर्जुनको बींधडाला, इतने अधिक तेज बाणों से चारों ओरसे बिंधजाने पर भी ॥ २३-२६ ॥ महाबाहु और महाधनुषधारी अर्जुन पहाड़की समान जरा भी क्षोभ न पाकर अटल खड़ा रहा किन्तु उस महामना अर्जुनने भीष्मजीके पचीस, कृपाचार्य के नौ ॥ २७ ॥ द्रोणाचार्यके साठ, विकर्ण और शल्यके तीन २ और राजा दुर्योधनके पांच ॥ २८ ॥ इसप्रकार बाण

विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २६ ॥ द्रौपदेयाभिमन्युश्च परिव-
व्रुर्धनञ्जयम् । ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम् ॥ ३० ॥
अभ्यवर्त्तत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः । भीष्मस्तु रथिनां
श्रेष्ठो राजन् विव्याध पाण्डवम् ॥ ३१ ॥ अशीत्या निशितैर्बा-
णैस्ततोऽक्रोशन्त तावकाः । तेषान्तु निनदं श्रुत्वा सहितानां प्रहृष्ट-
वत् ॥ ३२ ॥ प्रविवेश ततो मध्यं नरसिंहः प्रतापवान् । तेषां
महारथानां तु मध्यं प्राप्य धनञ्जयः ॥३३॥ चिक्रीड धनुषा राजँ-
ल्लक्ष्यं कृत्वा महारथान् । ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः
॥ ३४ ॥ पीड्यमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे । एष पाण्डु-
सुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ॥ ३५ ॥ यततां सर्वसैन्यानां
मूलं नः परिकृन्तति । त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे
॥३६॥ त्वत्कृते चैव कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो विशाम्पते । न युध्यति

छोड़ कर उनको बाँधडाला और फिर हे भरतसत्तम ! सात्यकी,
विराट, पृषत्का पुत्र धृष्टद्युम्न ॥ २९ ॥ द्रौपदीके पांचों पुत्र,
अभिमन्यु ये सब अर्जुनके चारों ओर आकर खड़े होगये, सोमकों
को साथ लेकर पाञ्चालराज, भीष्मजीके हितमें लगे रहनेवाले
महाधनुषधारी द्रोणके सामने गये और रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मपिता-
महने अस्सी तीखे बाणोंसे अर्जुनको बींधदिया, तब तुम्हारे पक्ष
के योधा जयजयका दुन्द मचाने लगे, इस प्रकार प्रसन्न हुए
योधाओंके हर्षनादको सुनकर पुरुषोंमें सिंहरूप अर्जुन, अत्यन्त
प्रसन्न होता हुआ सा उनके मध्यमें पहुंचा, हे राजन् ! धनञ्जय
उनके बीचमें घुसकर ॥ ३०-३३ ॥ ताक २ कर महारथियोंके
बाण मार रहा था, धञ्जय इस प्रकार कौरवोंकी सेनाको पीड़ा दे
रहा है, यह देखकर राजा दुर्योधन भीष्मजीसे कहने लगा, कि-
यह कृष्णको साथमें लिये हुए बलवान् पाण्डुनन्दन ॥३४॥३५॥
हमारे यत्न करने पर भी हमारी सब सेनाओंकी जड़ काटे देता
है और हे गङ्गानन्दन ! महारथी आप और द्रोणाचार्यके जीते
हुए ऐसा होरहा हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! सदा मेरा हित चाहने

रणे पार्थं हितकामः सदा मम ॥ ३७ ॥ स तथा कुरु गांगेय यथा हन्येत फाल्गुनः । एवमुक्तस्ततो राजन् पिता देवव्रतस्तव ॥३८॥ धिक् क्षात्रं धर्ममित्युक्त्वा प्रायात् पार्थरथं प्रति । उभौ श्वेतहयौ राजन् संसक्तौ प्रेक्षय पार्थिवाः ॥ ३९ ॥ सिंहनादान् भृशं चक्रुः शंखान् दध्मुश्च मारिष । द्रौणिदुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः ॥ ४० ॥ परिवार्य्य रणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष । तथैव पांडवाः सर्वे परिवार्य्य धनञ्जयम्॥४१॥ स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्त्तत । गांगेयस्तु रणे पार्थमानर्च्छन्नवभिः शरैः ॥ ४२ ॥ तमर्जुनः प्रत्यविध्यत् दशभिर्मर्मभेदिभिः । ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पांडवः ॥ ४३ ॥ अर्जुनः समरश्लाघी भीष्मस्यावारयद्दिशः । शरजालं ततस्तत्तु शरजालेन मारिष ॥ ४४ ॥ वारया-

वाला भी कर्ण आपके कारणसे हो, शस्त्र त्याग कर रणमें अर्जुनके साथ युद्ध नहीं करता है ॥ ३७ ॥ हे गङ्गानन्दन ! आप ऐसा करिये, कि-जिसमें अर्जुन मारा जाय, हे राजन् ! जब दुर्योधनने तुम्हारे पिता भीष्मजीसे इस प्रकार कहा, तब ॥३८॥ "क्षत्रियके धर्मको धिक्कार है" ऐसा कहकर वह अर्जुनके रथकी ओरको चल दिये, हे राजन् ! सफेद घोड़ों वाले ये दोनों योधा जब आकर आमने सामने खड़े होगये, उस समय और राजे सिंहकी समान गरज कर शङ्ख बजाने लगे और हे राजन् ! अश्वत्थामा, दुर्योधन तथा तुम्हारा पुत्र विकर्ण ये भीष्मजीके चारों ओर युद्धके लिये तयार होकर खड़े होगये, इसी प्रकार पाण्डव भी अर्जुनके चारों ओर बड़ाभारी युद्ध करनेके लिये खड़े होगये, फिर युद्ध होने लगा और गङ्गाके पुत्र भीष्मजीने रण में अर्जुनके नौ बाण मारे ॥ ३९ ॥ ४२ ॥ और अर्जुनने भी मर्मस्थानको घायल करने वाले दश बाण उनके ऊपर छोड़े और फिर संग्राममें चतुर धनञ्जयने ताक२कर हजारों बाण छोड़ शन्तनुनन्दन भीष्मजीको चारों ओरसे घेर लिया, परन्तु हे राजन् !

यास पार्थस्य भीष्मः शान्तनवस्तदा । उभौ परमसंहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ ॥ ४५ ॥ निर्विशेषमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ । भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि संघशः ॥ ४६ ॥ शीर्यमाणान्यदृश्यन्त भिन्नान्यर्जुनसायकैः । तथैवार्जुनमुक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥ ४७ ॥ गांगेयशरनुन्नानि प्रापतन्त महीतले । अर्जुनः पञ्चविंशत्या भीष्ममार्च्छन्निशितैः शरैः ॥ ४८ ॥ भीष्मोऽपि समरे पार्थं विव्याध निशितैः शरैः । अन्योऽन्यस्य हयान् विध्वा ध्वजौ च सुमहाबलौ ॥ ४९ ॥ रथेषां रथचक्रे च चिक्रीडतुररिन्दमौ । ततः क्रुद्धो महाराज भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ५० ॥ वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे । भीष्मचापच्युतैस्तैस्तु निर्विद्धो मधुसूदनः ॥ ५१ ॥ विरराज रणे राजन् सपुष्प इव किंशुकः । ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम् ॥ ५२ ॥ सारथिं कुरुवृद्धस्य

भीष्मजीने उनके ही बाणोंके समूहसे अर्जुनके बाण तोड डाले, इसप्रकार अत्यन्त प्रसन्न हुए और युद्धमें आनन्द माननेवाले वह दोनों जने परस्परके दांव चुकाते हुए एकसा युद्धकरते थे, भीष्मजीके धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंके ढेर अर्जुनके बाणोंसे कटते हुए दीखते थे और धनञ्जयके धनुषमेंसे छूटेहुए असंख्यों बाण भीष्मजीके बाणोंसे कटकर पृथिवीपर गिरते थे, अर्जुनने पचीस तेज बाण छोड़कर भीष्मजीको बींध दिया ॥ ४३ ॥ ४८ ॥ तब भीष्मजीने भी रणमें धनञ्जयके और तेज बाण मारे शत्रुको दबानेवाले दोनों महाबली योधा परस्परके घोड़े, ध्वजा, रथकी ईषा और पहियोंका नाश करते हुए युद्ध कर रहे थे ॥४६॥ ५० ॥ हे महाराज ! कोपमें भरे हुए तथा प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीष्म पितामहने श्रीकृष्णजीकी छातीमें तीन बाण मारे और भीष्मजीके धनुषमें से छूटेहुए बाणोंसे विंधे हुए श्रीकृष्ण फूल लगे हुए ढाकके वृक्षकी समान शोभा पारहे थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ कृष्णको

निर्बिभेद शितैः शरैः। यतमानौ तु तौ वीरावन्योऽन्यस्य वधं प्रति ॥ ५३ ॥ न शक्नुतां तदान्योऽन्यमभिसंधातुमाहवे। तौ मंडलानि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ ५४ ॥ आदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात्। अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ परस्परम् ॥५५॥ राजन्नंतरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः। उभौ सिंहरवोन्मिश्रं शंखशब्दं च चक्रतुः ॥ ५६ ॥ तथैव चापनिर्घोषं चक्रतुस्तौ महारथौ। तयोः शंखनिनादेन रथनेमिस्वनेन च ॥ ५७ ॥ दारिता सहसा भूमिश्चकंपे च ननाद च। नोभयोरन्तरं कश्चिद्ददृशे भरतर्षभ ॥ ५८॥ बलिनौ युद्धदुर्धर्षावन्योऽन्यसदृशावुभौ। चिह्नमात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः ॥ ५९ ॥ तथा पांडुसुताः पार्थं

इसप्रकार घायल हुआ देखकर अत्यन्त कोपमें भरेहुए अर्जुनने कुरुओंमें वृद्ध गङ्गानन्दन भीष्मजीके सारथिको तीन तेज बाणों से घायल कर दिया और दोनों वीर परस्परके प्राण लेनेका उद्योग करने लगे ॥ ५३ ॥ तो भी युद्धमें कोई किसीको अपने दांवमें नहीं लासका, अपने२ सारथीकी चालाकी और बलके कारणसे वह दोनोंजने अनेकों प्रकारके मण्डल, आगेको दौड़ना, पीछेको हटना आदि अनेकों प्रकारकी युद्धकी चालाकी दिखा रहे थे और एक दूसरेके ऊपर प्रहार करनेका अवसर देखते थे ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ तथा परस्परके छिद्र देखनेवाले वह दोनों वारम्वार अपना स्थान बदलते थे, ये दोनों महारथी अपने धनुषोंपर एक सी ही टङ्कार देते थे तथा सिंहनादोंके साथ सिंहनाद भी करते थे उनके शंखोंकी ध्वनिसे रथोंके पहियोंकी घरघराहटसे फटती हुई भूमि कांपती तथा शब्द करती थी, हे भरतसत्तम ! इन दोनों योधाओंमें किसीको किसीमें जरा भी भेद नहीं मालूम होता था ॥ ५६ ॥ ५८ ॥ दोनों जने बलवान् और युद्धमें अजेय होनेके कारण एक दूसरेके योग्य ही थे, भीष्मजीको कौरव उनकी ध्वजा देखकर ही पहचानते थे तथा अर्जुनकी ध्वजा देखकर ही पाण्डव

चिह्नमात्रेण जज्ञिरे । तयोर्नृवरयोर्दृष्ट्वा तादृशं तं पराक्रमम् ॥६०॥ विस्मयं सर्वभूतानि जग्मुर्भारत संयुगे । न तयोर्विवरं कश्चिद्रणे पश्यति भारत ॥ ६१ ॥ धर्मो स्थितस्य हि यथा न कश्चिद्वृजिनं क्वचित् । उभौ च शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः ॥६२॥ प्रकाशौ च पुनस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे । तत्र देवाः सगन्धर्वाश्चारणाश्चर्षिभिः सह ॥६३॥ अन्योऽन्यं प्रत्यभाषन्त तयोर्दृष्ट्वा पराक्रमम् । न शक्यौ युधि संरब्धौ जेतुमेतौ कथञ्चन ॥ ६४ ॥ सदेवासुरगंधर्वैर्लोकैरपि महारथौ । आश्चर्यभूतं लोकेषु युद्धमेतन्महाद्भुतम् ॥ ६५ ॥ नैतादृशानि युद्धानि भविष्यन्ति कथञ्चन । न हि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता ॥ ६६ ॥ सधनुः सरथः साश्वः प्रवपन् सायकान् रणे । तथैव पांडवं युद्धे देवैरपि दुरासदम् ॥ ६७ ॥ न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरम् । आलो-

अर्जुनको पहिचान सकते थे, हे भारत ! युद्धमें उन नरवीरोंके ऐसे पराक्रमको देखकर सकल प्राणी मात्र बड़े अचरजमें होरहे थे, हे भारत ! जैसे धर्ममें रहकर वर्त्ताव करनेवाले पुरुषका दोष कोई भी दुष्ट पुरुष नहीं निकाल सकता,तैसे ही इन दोनोंकी रणचातुरीमें किसीको कुछ भी कमी नहीं दीखती थी ॥ ५६ ॥६१॥ दोनोंजने रणमें बाणजालसे छिपजाते थे और फिर क्षणभरमें शीघ्र ही दीखने भी लगते थे, उनके ऐसे पराक्रमको देखकर, देवता, गन्धर्व, चारण और ऋषि आदि आपसमें कहने लगे, कि-क्रोधमें भरेहुए इन दोनों महारथियोंको देवता, असुर, गन्धर्व वा सब लोक भी नहीं जीत सकते इनका यह युद्ध लोकमें बड़ा अचरज करने वाला है ॥ ६२-६५ ॥ ऐसे युद्ध कभी नहीं होंगे, बुद्धिमान् धनञ्जय भीष्मजीको नहीं जीत सकता ॥६६॥ क्योंकि-धनुष, रथ, और घोड़ों सहित होनेके कारण भीष्मजी बड़ी शीघ्रता से बाण छोड़ सकते हैं, और हाथमें धनुष लेकर खड़ेहुए तेजस्वी अर्जुनको भी भीष्मजी नहीं जीतसकते, प्रतीत होता है कि-सब

कादपि युद्धं हि समगेतद्भविष्यति ॥६८॥ इति स्म वाचोऽश्रूयन्त प्रोच्चरंत्यस्ततस्ततः । गांगेयार्जुनयोः संख्ये स्तवयुक्ता विशांपते ॥ ६६ ॥ त्वदीयास्तु तदा योधाः पांडवेयाश्च भारत । अन्योऽन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ७० ॥ शितधारैस्तथा खड्गैर्विमलैश्च परश्वधैः । शरैरन्यैश्च बहुभिः शस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥७१॥ उभयोः सेनयोः शूरा न्यकृन्तन्त परस्परम् । वर्तमाने तथा घोरे तस्मिन् युद्धे सुदारुणे । द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन् महानासीत् समागमः ॥ ७२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । कथं द्रोणो महेष्वासः पाञ्चाल्यश्चापि पार्षतः। उभौ समीयतुर्यत्तौ तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥ दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषादिति मे मतिः । अत्र शांतनवो भीष्मो नातरद्युधि पांडवम्

लोकोंका नाश होने तक यह युद्ध बराबर ऐसा ही होता रहेगा ॥६७॥६८॥हे राजन् ! इस प्रकार भीष्म और अर्जुनकी स्तुतिसे भरी जहां तहां कही जाती हुईं बातें सुनायी आता थीं ॥६० ॥ हे भारत ! तुम्हारे पक्षके तथा पाण्डवोंके पक्षके योधा उन दोनों के पराक्रम वाले उस युद्धमें परस्पर एक दूसरेका प्राणनाश करते थे ॥ ७० ॥ तीखी धारवाली तलवार, झमझमाते हुए फरसे, बांण तथा और अनेक प्रकारके बहुतसे शस्त्रोंसे दोनों सेनाओं के शूर आपसमें मार काट करने लगे और जब भीष्म अर्जुनका ऐसा घोर संग्राम होरहा था उसी समय द्रोण और पांचालका भी बड़ाभारी युद्ध आरम्भ होगया था ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सञ्जय ! अपनी शक्तिभर सावधान रहकर द्रोण तथा पृषत्के पुत्र पाञ्चालने किसप्रकारसे युद्ध किया था यह मुझे सुना ॥ १ ॥ हे सञ्जय ! रणमें भीष्म जो अर्जुनको नहीं जीतसके इसमें मेरी समझमें पराक्रमकी अपेक्षा दैव अधिक

॥ २ ॥ भीष्मो हि समरे क्रुद्धो हन्यांल्लोकांश्चराचरान् । स कथं पांडवं युद्धे नातरत् सञ्जयौजसा ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा युद्धमेतत्सुदारुणम् । न शक्याः पांडवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥४॥ द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमविध्यत । सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥ तथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः । पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥६॥ धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः । विव्याध प्रहसन्वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।७। ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान् शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ८ ॥ आददे च शरं घोरं पार्षतांतचिकीर्षया । शक्राशनिसमस्पर्शं कालदंडमिवापरम् ॥ ९ ॥ हाहाकारो महानासीत् सर्वसैन्येषु भारत । तमिषुं संधितं दृष्ट्वा भारद्वाजेन संयुगे ॥ १० ॥ तत्रा-

---

बलवान् हैं ॥ २ ॥ हे सञ्जय ! भीष्म यदि कुपित होजायँ तो निःसन्देह चराचरका नाश कर सकते हैं, वह पराक्रम करने पर भी रणमें अर्जुनको क्यों नहीं जीतसके ॥ ३ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! आप दारुण युद्धका वृत्तान्त स्थिर होकर सुनिये इन्द्रसहित देवता भी पाण्डवोंको नहीं जीतसकते ॥ ४ ॥ द्रोण ने तेज बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बींध दिया और भल्ल बाणसे उसके सारथीको रथकी बैठक परसे गिरादिया ॥ ५ ॥ तथा हे महा-राज ! क्रोधमें भरेहुए द्रोणाचार्यने चार उत्तम बाणोंसे इस धृष्ट-द्युम्नके चारों घोड़ोंको घायल करदिया ॥ ६ ॥ तब वीर धृष्टद्युम्न ने नब्बै तेज बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींधदिया और हँसताहुआ बोला, कि–खड़े रहो, खड़े रहो ॥ ७ ॥ तब परम साहसी प्रतापी द्रोणने फिर चिड़ दे धृष्टद्युम्नको बाणोंसे ढकदिया ॥ ८ ॥ और पृषत्कुमारका नाश करनेकी इच्छासे छूनेमें इन्द्रके वज्रकी समान और दूसरे कालदण्ड सरीखे घोर बाणको हाथमें लिया ॥ ९ ॥ हे भारत ! रणमें द्रोणाचार्यको वह बाण धनुष पर चढ़ाते हुए देखकर सब सेनाओंमें बड़ाभारी हाहाकार मचगया ॥ १० ॥

द्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम् । यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥११॥ तं च दीप्तं शरं घोरमायांतं मृत्युमात्मनः । चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह ॥ १२ ॥ तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पश्चालाः पांडवैः सह । धृष्टद्युम्नेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ १३ ॥ ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषिताम् । द्रोणस्य निधनाकांक्षी चिक्षेप स पराक्रमी ॥ १४ ॥ तामापतंतीं सहसा शक्तिं कनकभूषिताम् । त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव ॥ १५ ॥ शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् । ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर ॥ १६ ॥ शरवर्षं ततस्तत्तु सन्निवार्य महायशाः । द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १७ ॥ स छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वीं महायशाः । द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली ॥ १८ ॥ स गदा वेग-

उस समय हमने धृष्टद्युम्नका अद्भुत साहस देखा, कि—वह अकेला ही रणभूमिमें पहाड़की समान अटल खड़ा रहा ॥११॥ उसने अपनी मृत्युरूप जलते हुए घोर बाणको आतेहुए ही काट डाला और द्रोणके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १२ ॥ धृष्टद्युम्नने यह बड़ा दुष्कर काम कर डाला यह देखकर पाण्डव और सब पाश्चाल जयजयका दुन्द मचाने लगे ॥१३॥ फिर उस पराक्रमीने द्रोणके प्राण लेनेकी इच्छासे एक बड़े वेगवाली सुवर्ण और वैदूर्यसे शोभित शक्ति फेंकी ॥ १४ ॥ उस बड़े वेग से आती हुई सुवर्णसे भूषित शक्तिको द्रोणाचार्यने हँसतेर काट कर तीन टुकड़े कर डाले ॥१५॥ हे महाराज ! प्रतापी धृष्टद्युम्न ने उस शक्तिको नष्ट हुई देखकर द्रोणके ऊपर बाणोंकी वर्षा करडाली ॥ १६ ॥ बड़े यशवाले द्रोणाचार्यने उस बाणोंकी वर्षा को दूर करके द्रुपदकुमारके बाणको बीचमेंसे काटडाला ॥१७॥ धनुष कट जाने पर उस महायशवाले बलीने पर्वतकी समान भारी गदा द्रोणके ऊपरको फेंकी ॥ १८ ॥ द्रोणाचार्यको मारडालनेके

चन्मुक्ता प्रायाद् द्रोणजिघांसया । तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ॥ १९ ॥ लाघवाद् व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम् । व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षतम् ॥ २० ॥ भल्लान् सुनिशितान पीतान् रुक्मपुंखान् सुदारुणान् । ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २१ ॥ अथान्यद्धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महारथाः । द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २२ ॥ रुधिराक्तौ ततस्तौतु शुशुभाते नरर्षभौ । वसन्तसमये राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २३ ॥ अमर्षितस्ततो राजन् पराक्रम्य चमूमुखे । द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य पुनश्चिच्छेदकार्मुकम् ॥ २४ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः सन्नतपर्वभिः । अभ्यवर्षदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाचलम् ॥ २५ ॥ सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् । अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥ पातयामास

लिये फेंकी हुई वह गदा जब चली, उस समय उन भरद्वाज-कुमारका बड़ा पुरुषार्थ देखा ॥ १९ ॥ वह उस सोनेसे जड़ी गदा को फुरतीसे बचागये और वह फिर लौटा कर धृष्टद्युम्न के ही ऊपरको फेंकदी॥२०॥तथा अतितीक्ष्ण, पानी पिलाये हुए भल्ल नामके दारुण बाण भी छोड़े, जिन बाणोंने कवचको फोड़ कर उसका रुधिर पीलिया२१इसके बाद महारथी धृष्टद्युम्नने और धनुष लेकर रणमें पराक्रम करके द्रोणको पांच बाणोंसे बींध दिया॥२२॥ इस समय हे राजन् ! लोहूलुहान हुए वह नरश्रेष्ठ वसन्तऋतु में फूले हुए ढाकके वृक्षकी समान प्रतीत होते थे ॥ २३ ॥ तद-नन्तर ! हे राजन् ! न सहनेवाले द्रोणने फिर द्रुपदकुमारका धनुष काटकर रणमें अपना पराक्रम दिखाया ॥२४॥ फिर परम-साहसी द्रोणने उसको बिना धनुषका देखकर, उसके ऊपर दृढ़ गांठवाले बाणोंसे ऐसे वर्षा करना आरम्भ कर दिया जैसे मेघ पहाड़के ऊपर वर्षा करता है ॥ २५ ॥ और फिर बाण मारकर उसके सारथीको रथमेंसे नीचे गिरा दिया तथा चार तीखे बाणों से उसके चार घोड़ोंको मारडाला ॥२६॥ और वह द्रोण सिंहकी

समरे सिंहनादं ननाद च । ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चापमथा-च्छिनत् ॥ २७ ॥ सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । गदापाणिरवारोहत् ख्यापयन् पौरुषं महत् ॥ २८ ॥ तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत । रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥ ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत् । खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥ ३० ॥ अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकांक्षया । आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम् ३१ तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् । लाघवं चास्त्रयोगं च बलं-बाह्वोश्च भारत ॥ ३२ ॥ यदैनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम् । नशशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥ ३३ ॥ निवारितस्तु द्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः । न्यवारयच्छरौघांस्तांश्चर्मणा कृतहस्त-

---

समान दहाड़े तथा तुरन्त ही भल्ल बाणसे उसके हाथमेंके चमड़े के मोजेको काट डाला ॥२७॥ धनुष कटगया, घोड़े मरगये तथा रथ भी अस्तव्यस्त होगया, यह देख पाञ्चालनन्दन रथ परसे उतरा और हाथमें गदा लेकर बड़ाभारी पुरुषार्थ दिखाने लगा ॥ २८ ॥ परन्तु हे भारत ! वह गदा छोड़नेको था उससे पहिले ही द्रोणाचार्यने तेज बाण मारकर उसके हाथमेंसे गदा गिरा दी इससे सबने बड़ा अचरज माना ॥ २९ ॥ फिर दृढ़ भुजावाले बली धृष्टद्युम्नने हाथमें सौ फुल्लियोंसे शोभित बड़ी ढाल और दिव्य विशाल तलवार ली ॥ ३० ॥ और मांस चाहनेवाला सिंह जैसे मतवाले हाथीके ऊपर झपटे तैसे द्रोणका वध करनेको शीघ्रतासे उनके ऊपर झपटा ॥ ३१ ॥ उस समय हमने द्रोणका बड़ाभारी पराक्रम देखा, हे भारत ! वास्तवमें उनकी बड़ीभारी चातुरी चालाकी और भुजबल तब ही प्रकट हुआ था ॥ ३२ ॥ उन्होंने धृष्टद्युम्नको बाणोंसे घेर लिया तब वह बलवान् होनेपर भी रणमें आगेको न बढ़सका ॥ ३३ ॥ जब द्रोणने महारथी धृष्टद्युम्नको इसप्रकार रोक दिया तब उसने बड़ी फुरतीसे सब

वत् ॥ ३४ ॥ ततो भीमो महाबाहुः सहसाभ्यपतद्बली । साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥ ३५ ॥ स द्रोणं निशितैर्बाणैः राजन् विव्याध सप्तभिः । पार्षतं च रथं तूर्णं स्वकमारोहयत्तदा ३६। ततो दुर्योधनो राजन् भानुमंतमचोदयत् । सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥ ३७ ॥ ततः सा महती सेना कलिंगानां जनेश्वर । भीममभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ३८ पाञ्चाल्यमथ संत्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः । विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे ॥३९॥ धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्ययात् । ततः प्रववृतं युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ४० ॥ कलिंगानां च समरे भीमस्य च महात्मनः । जगतः प्रक्षयकरं घोररूपं भयावहम् ॥ ४१ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृष्टद्युम्नद्रोणयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

बाण ढालसे पीछेको हटा दिये ॥ ३४ ॥ तब तो महाबाहु बली भीमसेन महात्मा धृष्टद्युम्नकी सहायता करनेके लिये एकसाथ आटूटा ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! उसने तीखे सात बाणोंसे से द्रोण को बींध दिया और उस समय शीघ्रतासे धृष्टद्युम्नको अपने रथमें बैठाला ॥ ३६ ॥ हे राजन ! उस समय द्रोणकी रक्षा करने के लिये तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने कलिङ्गराज भानुमानको बड़ी सेना लेकर भेजा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! तब वह कलिङ्गोंकी बड़ी भारी सेना तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे भीमसेनके ऊपर चढ़ गई ३८ और रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण भी पाञ्चालनन्दनको छोड़कर वृद्ध विराट और द्रुपदके सामने जा डटे ॥ ३९ ॥ धृष्टद्युम्न तहांसे रणमें युधिष्ठिरकी सहायता करने को गया, तब तो देखने वालों के रोंगटे खड़े करने वाला घोर युद्ध होने लगा ॥ ४० ॥ उस समय कलिङ्गोंका, महात्मा भीमसेनके साथ जगत्का क्षय करने वाला और भयदायक बड़ा ही घोर युद्ध हुआ ॥४१॥ तरेपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा प्रतिसमादिष्टः कालिंगो वाहिनीपतिः । कथमद्भुतकर्माणं भीमसेनं महाबलम् ॥ १ ॥ चरन्तं गदया वीरं दण्डहस्तमिवांतकम् । योधयामास समरे कालिंगः सह सेनया ॥२॥ सञ्जय उवाच । पुत्रेण तव राजेन्द्र स तथोक्तो महाबलः । महत्या सेनया गुप्तः प्रायाद्भीमरथं प्रति ॥ ३ ॥ तामापतन्तीं महतीं कलिंगानां महाचमूम् । रथाश्वनागकलितां प्रगृहीतमहायुधाम् ॥ ४ ॥ भीमसेनः कलिंगानामाच्छद्भारत वाहिनीम् । केतुमंतं च नैषादिमायांतं सह चेदिभिः ॥ ५ ॥ ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राज्ञा केतुमता सह । आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु ॥६॥ रथैरनेकसाहस्रैः कलिङ्गानां नराधिपः । अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान् ॥ ७ ॥ भीमसेनं रणे राजन् समन्तात् पर्यवारयत् । चेदिमत्स्यकरूषाश्च भीमसेनपदानुगाः ॥ ८ ॥ अभ्य-

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! इसप्रकार दुर्योधनके आज्ञा देने पर अपना सेनासहित महाबली कलिङ्गराजने गदा लेकर, मानों हाथमें दण्ड लेकर, साक्षात् काल आगया हो, ऐसे अद्भुतपराक्रमी महाबली भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया था ? ॥ १ ॥ २ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी आज्ञा मिली कि—तुरन्त महाबली कलिङ्गराज बड़ी भारी सेना लेकर भीमसेनके रथ पर पहुंचा ॥ ३ ॥ रथ घोड़े और हाथियोंसे भरी हुई, बड़े २ आयुधधारी योधाओंकी बड़ी भारी कलिङ्गसेनाको आती हुई देखकर भीमसेन चेदियोंको साथ लिये हुए उस सेनाके तथा निषादपति केतुमानके सामने गया ॥ ४ ॥ ५ ॥ तब कोपमें भरा हुआ श्रुतायु केतुमानको साथ लेकर, जहां चेदिदेश वाले व्यूहकी रचना करके भीमसेन के साथ खड़े थे तहां आया ॥ ६ ॥ कलिङ्गनाथ अनेकों सहस्र रथोंको लेकर तथा केतुमान् लाख हाथी और निषादोंको लेकर भीमसेनको चारों ओरसे रणमें घेरने लगे, चेदि, मत्स्य और करूप देशके राजे जो भीमसेनकी सरदारीके अधीन थे ॥ ७ ॥

धावन्त समरे निषादान् सह राजभिः । ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ ९ ॥ न प्राजानन्त योधाः स्वान् परस्परजिघांसया । घोरमासीत्ततो युद्धं भीमस्य सहसा परैः ॥ १० ॥ यथेंद्रस्य महाराज महत्या दैत्यसेनया । तस्य सैन्यस्य संग्रामे युध्यमानस्य भारत ॥ ११ ॥ बभूव सुमहान् शब्दः सागरस्येव गर्जतः । अन्योऽन्यं स्म तदा योधा विकर्षन्तो विशाम्पते ॥ १२॥ महीश्चक्रुश्चितां सर्वां मांसलोहितसन्निभाम् । योधांश्च स्वान् परान्वापि नाभ्यजानन् जिघांसया ॥ १३ ॥ स्वानप्याददते स्वाश्च शूराः परमदुर्जयाः । विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह । कलिङ्गैः सह चेदीनां निषादैश्च विशाम्पते ॥ १४ ॥ कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः । भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त

॥ ८ ॥ वह और कितने ही राजाओंके सहित रणमें निषादोंके ऊपर टूट पड़े तब महाघोर तथा भयानक युद्ध होने लगा ॥९॥ परस्परको मार डालनेके अभिलाषी योधा, यह अपना है या पराया है यह भी नहीं जानते थे, उस समय भीमसेनका शत्रुओं के साथ एकसाथ घोर युद्ध होने लगा था ॥ १० ॥ हे महाराज! उस समय भीमसेनका और बड़ी भारी सेनाका वह युद्ध बड़ी भारी दैत्य सेना के साथ इन्द्रके युद्धकी समान हुआ था ॥ ११ ॥ उस समय सेनामें समुद्रके गरजनेकी समान बड़ा भारी कोलाहल हो रहा था और हे राजन् ! योधा परस्पर इधर उधरको खेंचते थे ॥ १२ ॥ योधाओंने सब रणभूमिको मांस और रुधिरसे छा दिया था, और वह एक दूसरेको मारडालनेकी इच्छासे अपने और दूसरेको पहिचानते भी नहीं थे ॥१३॥ बड़ी कठिनसे जीतने में आनेवाले शूर आपही अपनोंको पकड़ लेते थे, हे राजन् ! एक ओरके थोड़े चेदियोंका दूसरी ओरके बहुतसे कलिङ्ग और निषादोंके साथ जो संग्राम हुआ वह बड़ा ही भयानक था ॥१४॥ इसप्रकार यथाशक्ति पुरुषार्थ करके महाबली चेदी योधा भीमसेन

चेदयः ॥ १५ ॥ सर्वैः कलिंगैरासन्नः सन्निवृत्तेषु चेदिषु । स्वबाहुबलमास्थाय संन्यवर्तत पाण्डवः । न चचाल रथोपस्थाद्भीमसेनो महाबलः ॥ १६ ॥ शितैरवाकिरद्बाणैः कलिङ्गानां वरूथिनीम् । कालिङ्गस्तु महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः । शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः ॥ १७ ॥ ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन् रुचिरं धनुः । योधयामास कालिङ्गं स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १८ ॥ शक्रदेवस्तु समरे विसृजन् सायकान् बहून् । अश्वान् जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः ॥१९॥ तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भीमसेनमरिन्दमम् । शक्रदेवोऽभिदुद्राव शरैरवकिरन् शितैः ॥ २० ॥ भीमस्योपरि राजेंद्र शक्रदेवो महाबलः । ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा ॥ २१ ॥ हताश्वे तु रथे तिष्ठन् भीमसेनो महाबलः । शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।२२।

को छोड़कर पीछेको लौटे ॥१५॥ चेदियोंके पीछेको लौट जाने पर भीमसेन सब कलिङ्गोंके पास आकर खड़ा होगया और अपने भुजबलके भरोसे पर दृढ़तासे डटा रहा तथा महाबली भीमसेन रथकी बैठक परसे हिला भी नहीं ॥ १६ ॥ और कलिङ्गोंकी सेनाको तेज बाणोंसे छादिया तब महाधनुषधारी कलिङ्गराज तथा शक्रदेव नामसे प्रसिद्ध महारथी उसका पुत्र ये दोनों भीमसेनके बाण मारने लगे ॥ १७ ॥ तब तो महाबाहु भीमसेन अपने सुन्दर धनुषको खेंचकर अपने भुजबलके भरोसे पर कलिङ्गराज के साथ युद्ध करने लगा ॥ १८ ॥ शक्रदेव संग्राममें अनेकों बाण छोड़ता था, उसने रणमें बाणोंसे भीमसेनके घोड़ोंको मारडाला ॥ १९ ॥ शत्रुओंको दबानेवाले भीमसेनको बिना रथका देखकर महाबली शक्रदेव तीखे बाण छोड़ता हुआ भीमसेनके ऊपरको दौड़ा ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र ! जैसे ग्रीष्मके अन्तमें मेघ जलकी वर्षा करता है तैसे ही महाबली शक्रदेव भीमसेनके ऊपर बाण बरसाने लगा ॥ २१ ॥ जिसके घोड़े मरगये हैं ऐसे रथमें बैठे हुए भीमसेनने शक्रदेवके लोहेकी बनी एक गदा मारी ॥ २२ ॥

स तया निहतो राजन् कालिङ्गतनयो रथात् । विरथः सह सूतेन जगाम धरणीतलम् ॥ २३ ॥ हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कलिङ्गानां जनाधिपः । रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद्दिशः ॥ २४ ॥ ततो भीमो महावेगां त्यक्त्वा गुर्वीं महागदाम् । निस्त्रिंशमाददे घोरं चिकीर्षुः कर्म दारुणम् ॥२५॥ चर्म चाप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ । नक्षत्रैरर्द्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम् ॥ २६ ॥ कालिङ्गस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवसृज्य च । प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम् ॥२७॥ प्राहिणोद्भीमसेनाय वधाकाङ्क्षी जनेश्वरः ॥२८॥ तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम् । भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ॥ २९ ॥ उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम् ॥ ३० ॥ कालिङ्गोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे । तोमरान् प्राहिणो-

---

हे राजन् ! उस गदाके लगनेसे कलिङ्गराजका पुत्र मूर्छित होकर अपने रथमेंसे गिरपड़ा और उसके सारथीकीभी यही दशा हुई ।२३।मेरा पुत्र मारागया, यह देखकर कलिङ्ग देशोंके राजाने अनेकों सहस्र रथोंके द्वारा भीमसेनको चारों ओरसे घेरलिया ॥ २४ ॥ तब भीमसेनने महादारुण कर्म करनेकी इच्छासे लोहेकी बनीहुई महावेगवाली गदा फेंककर महाभयानक तलवार उठायी ॥ २५ ॥ और हे राजन् ! अर्धचन्द्राकार सोनेकी फुल्लियोंसे शोभायमान गेंडेके चमड़ेकी ढाल भी हाथमें ली॥२६॥ यह देखकर कोपमें भरे हुए कलिङ्गराजने भीमसेनको मारडालनेकी इच्छासे धनुषकी डोरी पर टङ्कार देकर सर्पके विषकी समान जहरीला एक बाण ले भीमसेनके ऊपर छोड़ा ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे राजन् ! उसके छोड़े हुए इस तेज बाणको वेगसे आते हुए देखकर, भीमसेनने अपनी विशाल तलवारसे उसके दो टुकड़े कर दिये२९ और उसकी सेनाको त्रास देताहुआ बडे हर्षके साथ जोरसे गरजनेलगा ॥ ३० ॥ तब क्रोधमें भरेहुए कलिङ्गराजने शीघ्र ही उस रणमें भीमसेनके ऊपर शिलासे तेज किये हुए चौदह तोमर

च्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ॥ ३१ ॥ तानप्राप्तान् महाबाहुः खगनानेव पाण्डवः । चिच्छेद सहसा राजन्नसंभ्रांतो वरासिना ॥३२॥ निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान्वै चतुर्दश । भानुमन्तं ततो भीमः प्राद्रवत् पुरुषर्षभः ॥ ३३ ॥ भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण छादयन् । ननाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम् ॥३४॥ न च तं ममृषे भीमः सिंहनादं महाहवे । ततः शब्देन महता विननाद महास्वनः ॥ ३५ ॥ तेन नादेन वित्रस्ता कलिङ्गानां वरूथिनी । न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ ॥ ३६ ॥ ततो भीमो महाबाहुर्नर्दित्वा विपुलं स्वनम् । सासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम् ॥ ३७ ॥ आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष ॥ ३८ ॥ ततो मुमोच कालिङ्गः शक्तिं तामकरोद् द्विधा । खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमथाच्छिनत् ॥ ३९ ॥ सोऽन्तरा युधि तं हत्वा

फेंके ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! भीमसेनने जरा न घबड़ा कर उनको पास पहुंचनेसे पहिले तुरन्त आकाशमें ही अपनी सुन्दर तलवार से काट डाला ॥३२ ॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीमसेनने उन चौदह तोमरों को काट डाला तब वह भानुमान्के ऊपर टूट पड़ा॥३३॥तब भानुमान्ने बाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको ढक दिया और जोरसे आकाशको भी गुंजार देने वाली गर्जनायें करने लगा ॥ ३४ ॥ महारणमें उस सिंहनादको भीमसेन नहीं सह सका और बड़े स्वरवाले भीमसेनने भी बड़े जोरसे गर्जना करी ॥ ३५ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! उस शब्दसे डरी हुई कलिङ्गसेनाने डर कर समझा कि—भीमसेन मनुष्य नहीं है कोई देवता है ॥ ३६॥ फिर महाघोर गर्जना कर हाथमें तलवार लिये हुए महाबाहु भीमसेन कूदा और हे राजन् ! दोनों दांत पकड़ कर भानुमान्के हाथीके ऊपर चढ़ गया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यह देख भानुमान्ने एक शक्ति मारी परन्तु भीमसेनने उसको काट कर दो टुकड़े कर दिये और फिर तलवारसे भानुमान्की भी कमर काट कर दो टुकड़े कर दिये, ॥ ३९ ॥ हाथीपर चढ़कर युद्ध करने वाले राजकुमार भानुमान्

गज पुत्रमरिन्दमः । गुरुं भारसहं स्कन्धे नागस्यासिमपातयत् ४०
छिन्नस्कन्धः स विनदन् पपात गजयूथपः । आरुग्णः सिंधुवेगेन सानुमानिव पर्वतः ॥ ४१ ॥ ततस्तस्मादपप्लुत्य गजाद्भारत भारतः ! खड्गपाणिरदीनात्मा तस्थौ भूमौ सुदंशितः ॥ ४२ ॥ स चचार बहून् मार्गानभितः पातयन् गजान् । अग्निचक्रमिवाविद्धं सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ ४३ ॥ अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः । पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन् शोणितोक्षितः ॥ ४४ ॥ श्येनवद्व्यचरद्भीमो रणेऽरिषु बलोत्कटः । छिन्दंस्तेषां शरीराणि शिरांसि च महाबलः ॥ ४५ ॥ खड्गेन शितधारेण संयुगे गजयोधिनाम् । पदातिरेकः संक्रुद्धः शत्रूणां भयवर्द्धनः ॥ ४६ ॥

को मारकर भीमसेनने बड़ाभारी बल सहनेवाली अपनी तलवार उसके हाथीकी गरदनमें मारी ॥ ४० ॥ उससे हाथीकी गरदन चिर गयी और वह हाथी चीखें मारता २ इस प्रकार भूमिपर ढह पड़ा जैसे समुद्रके वेगसे शिखरों सहित पर्वत ढह पड़ता है ॥४१॥ हे भारत ! फिर हाथीके ऊपरसे कूदकर साहसी भीमसेन मनमें दंश रखकर तलवार लिये हुए पृथिवी पर खड़ा होगया ॥४२॥ और चारों ओरसे हजारों हाथियोंको मारता और मार्ग छुड़ाता हुआ वह इधर उधर घूमने लगा और रुधिरसे भीगा हुआ भीमसेन जैसे अग्निका चक्र इधर उधरको घूमता हुआ सबका संहार करता है तैसे ही वह घोड़ोंके समूहोंमें, हाथियोंमें, रथसेनामें तथा पैदलोंकी टोलियोंमें फिर रहा था ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बलसे उत्कट महाबली भीमसेन रणभूमिमें शत्रुदलमें उनके शरीरोंको और शिरों को काटता हुआ बाज पक्षीकी समान फुरतीसे घूमता था ॥४५॥ और तीखी धारवाली तलवारसे उन हाथियों पर चढ़ कर युद्ध करनेवाले महाबली योधाओंके मस्तक तथा शरीरोंको काट २ कर गिराने लगा, उस समय वह अकेला और पैदल ही था तो भी अत्यन्त क्रोधमें भर जानेके कारण प्रलयकालमें यमराजकी समान सब शत्रुओंके भयको बढ़ा रहा था, उस महासंग्राममें हाथ

सम्मोहयामास स तान् कालांतकयमोपमः । मूढाश्च ते तमेवाजौ विनदन्तः समाद्रवन् ॥ ४७ ॥ सोऽसिमुत्तमवेगेन विचरन्तं महारणे । निकृत्य रथिनां चाजौ रथेषाश्च युगानि च ॥४८॥ जघान रथिनश्चापि बलवान् रिपुमर्दनः । भीमसेनश्चरन् मार्गान् सुबहून् प्रत्यदृश्यत ॥४९॥ भ्रान्तमाविद्धमुद्भ्रांतमाप्लुतं प्रसृतं प्लुतम् । सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पाण्डवः ॥ ५० ॥ केचिदग्रासिनाच्छिन्नाः पाण्डवेन महात्मना । विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ ५१ ॥ छिन्नदन्ताग्रहस्ताश्च भिन्नकुम्भास्तथा परे । वियोधाः स्वान्यनीकानि जघ्नुर्भारत वारणाः ॥ ५२ ॥ निपेतुरुर्व्यां च तथा विनदन्तो महारवान् । छिन्नांश्च तोमरान् राजन्

में तलवार लेकर इधर उधर दौड़ते हुए भीमसेनके सामने मूढ़ हुए शत्रु गरजते हुए आने लगे, परन्तु शत्रुओंका नाश करनेवाले बली भीमसेनने रणमें शत्रुओंके रथोंकी ईषाओंको और धुरियों को तोड़कर शत्रुओंका संहार किया, भीमसेन इस युद्धमें घूमता २ अनेकों प्रकारके पैंतरे बदलनेकी अपनी चतुराईको दिखाता था ॥ ४६–४९ ॥ घूमते चलेजाना, एक करवटसे शत्रुओंमें घुसजाना, ऊँचा कूदना, कतरा कर भागजाना, आगेको बढ़े चलेजाना, एक साथ छापा मारना, सब सेनाके ऊपर चढ़ाई करना, इत्यादि अनेकों प्रकारकी युद्धकी रीतियें भीमसेनने युद्ध के समय दिखाईं थीं ॥ ५० ॥ महात्मा पाण्डवोंके अगले भाग मेंसे काटे हुए कितने ही योधा मर्मस्थानोंके कटनेसे प्राणत्याग कर पृथिवी पर पड़े हुए हाय २ कर रहे थे ॥ ५१ ॥ और हे भारत ! जिनके दांत टूट गये हैं, सूंडें कटगई हैं, कनपटियें चिरगई हैं और महावत मरगये हैं ऐसे निरंकुश हुए हाथी अपनी सेनाके मनुष्योंको ही कुचले डालते थे ॥ ५२ ॥ और घड़ी २ चीखे मारते हुए वह पृथिवी पर गिरते थे और इसके सिवाय हे राजन् ! कट कर गिरते हुए घुड़सवारोंके साथ कटे

महामात्रशिरांसि च ॥ ५३ ॥ परिस्तोमान्विचित्रांश्च कद्‌याश्च कनकोज्ज्वलाः । ग्रैवेयाण्यथ शक्तीश्च पताकाः कणपांस्तथा ॥ ५४ ॥ तूणीरानथ यन्त्राणि विचित्राणि धनूंषि च । भिंदिपालानि शुभ्राणि तोत्राणि चांकुशैः सह ॥५५॥ घण्टाश्च विविधा राजन् हेमगर्भान् त्सरूनपि । पततः पातितांश्चैव पश्यामः सह सादिभिः ॥५६॥ छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चापि वारणैः । आसीद् भूमिः समास्तीर्णा पतितैर्भूधरैरिव ॥५७॥ विमृद्यैवं महानागान् ममर्दान्यान्महाबलः । अश्वारोहवरांश्चैव पातयामास संयुगे ॥ ५८ ॥ तद् घोरमभवद्युद्धं तस्य तेषां च भारत । खलीनान्यथ योक्त्राणि कद्‌याश्च कनकोज्ज्वलाः ॥५९॥ परिस्तोमाश्च प्रासाश्च ऋष्टयश्च महाधनाः । कवचान्यथ चर्माणि चित्राण्यास्तरणानि च ॥ ६० ॥ तत्र तत्रापविद्धानि व्यदृश्यन्त महाहवे । प्रासैर्वैत्रैर्विचि-

हुए तोमर, बड़े २ योधाओंके शिर, विचित्र झूलें, चमकती हुई सुनहरी रासे, कण्ठे, शक्ति, पताकायें, मुद्गर, भाथे, अनेकों प्रकारके युद्धके यंत्र, चित्र विचित्र धनुष, चमकते हुए भिन्दिपाल, अंकुश, नानाप्रकारके घंटे, तथा सोनेके म्यानोंवाली तलवारें घुड़सवारोंके साथ कट कर गिरी हुई या काट कर गिराई हुईं रणभूमिमें हमने देखीं ॥५३-५६॥ शरीर और सुन्दर सूँडें कट कर मरनेवाले हाथियोंके कारण रणभूमि पहाड़ोंसे छायी हुईसी दीखती थी ॥ ५७ ॥ इसप्रकार महासेनाका संहार करके महाबली भीमसेनने अनेकों घोड़ोंको और सवारोंको भी मारडाला था ॥५८॥ हे भारत ! इस प्रकार भीमसेनका और योधाओंका महाघोर युद्ध हुआ, कटी हुई मूठें, जोत, चमकती हुई हाथियोंकी पेटियें, बड़े मूल्यकी झूलें, प्रास, ऋष्टि, कवच, ढाल, चित्र विचित्र बिस्तर आदि पृथिवी पर बिखरे हुए दीखते थे, और काटे हुए प्रास, अनेकों प्रकारके यंत्र तथा चमकती हुई तलवारों आदिसे

नैश्च शस्त्रैश्च निमलैस्तथा ॥ ६१ ॥ स चक्रे वसुधां कीर्णां शबलैः कुसुमैरिव । आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ॥ ६२ ॥ पातयामास खड्गेन सध्वजानपि पाण्डवः । मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥ ६३ ॥ मार्गांश्च चरतश्चित्रं व्यस्मयन्त रणे जनाः । स जघान पदा कांश्चिद् व्याक्षिप्यान्यानपोथयत् ॥६४॥ खड्गे नान्यांश्च चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन् । ऊरुवेगेन चाप्य-न्यान्पातयामास भूतले ॥ ६५ ॥ अपरे चैनमालोक्य भयात् पञ्च-त्वमागताः । एवं सा बहुला सेना कलिङ्गानां तरस्विनाम् ॥६६॥ परिवार्य रणे भीष्मं भीमसेनमुपाद्रवत् । ततः कालिङ्गसैन्यानां

छाई हुई वह पृथिवी ऐसी प्रतीत होती थी कि–मानो भीमसेनने इस पृथिवी पर अनेकों प्रकारके फूल बखेर दिये हैं, महाबली पाण्डुनन्दन भीमसेन बारंबार कूद २ कर तथा कुचल २ कर ध्वजाओं सहित कितने हीं रथियोंको पृथिवी पर गिरा रहा था और इसप्रकार उसको बारंबार कुलाँचें मारते, जिधर तिधरको दौड़ते और युद्धकी अनेकों रीतियोंसे काम लेता हुआ देखकर लोग बड़े ही आश्चर्यमें होते थे, उसने कितनों ही को पैरोंके तले कुचल डाला, कितनों ही को ऊँचा उठा भूमि पर पटक कर मारडाला, कितनों ही को तलवारसे काटडाला तथा कितनों ही को अपने भयानक शब्दसे डराकर भगा दिया और कितनों ही के पीछे बड़े वेगसे दौड़ कर झपटमें ही गिरा दिया ॥ ५९–६४ ॥ और कितने ही तो भीमसेनको देखते ही भयभीत होकर मर गये, परन्तु ऐसा होने पर वेगवान् कलिङ्गोंकी बड़ीभारी सेना रणमें भीमसेनके ऊपर चढ़ आई और उसको घेर लिया, कलिङ्गसेनाके मुहाने पर आकर खड़ेहुए श्रुतायुको देख कर भीमसेन उसके ऊपरको झपटा, उसको अपने ऊपरको आते हुए देखकर श्रुतायुने नौ बाण छोड़ कर भीमसेनकी छातीको

प्रमुखे भरतर्षभ ॥ ६७ ॥ श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य भीमसेनः समभ्ययात् । तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कालिङ्गो नवभिः शरैः ॥ ६८ ॥ भीमसेनममेयात्मा प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे । कालिङ्गबाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ६९ ॥ भीमसेनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवेन्धितः । अथाशोकः समादाय रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ७० ॥ भीमं सम्पादयामास रथेन रथसारथिः । तमारुह्य रथं तूर्णं कौन्तेयः शत्रुसूदनः ॥ ७१ ॥ कालिङ्गमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । ततः श्रुतायुर्बलवान् भीमाय निशितान् शरान् ॥ ७२ ॥ प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन् पाणिलाघवम् । स कार्मुकवरोत्सृष्टैर्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ ७३ ॥ समाहतो महाराज कालिङ्गेन महात्मना । सञ्चुक्रुशे भृशं भीमो दंडाहत इवोरगः ॥ ७४ ॥ क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद्बलिनां वरः । कालिङ्गमवधीत् पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ॥७५॥ क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कालिङ्गस्य महा-

---

घायल कर दिया, तब जैसे अंकुश लगनेसे हाथी खिजिआ जाता है तैसे ही इस घावके लगते हीं भीमसेन खिजियागया और अग्नि के जलनेकी समान क्रोधसे प्रदीप्त होगया, उस समय अशोकने सोनेसे शोभायमान एक रथ भीमसेनको बैठनेके लिये दिया, उसमें बैठकर शत्रुओंका संहार करनेवाला कुन्तीनन्दन कलिङ्गके सामने गया और 'खड़ा रह, खड़ा रह' इसप्रकार पुकारनेलगा, यह सुनकर बलवान् श्रुतायुने अपने हाथकी चतुराई दिखानेके लिये कोपमें भरकर भीमसेनके ऊपर बाण छोड़ना आरम्भ कर दिया, हे भारत ! जैसे लाठीकी चोट खाया हुआ साँप फुंकारें भरता है तैसे ही महात्मा कलिङ्गके तीखे नौ बाणोंसे घायल हुआ भीमसेन बड़ी गर्जना करने लगा ॥ ६५–७४ ॥ और उस कुन्तीनन्दन भीमने क्रोधके साथ हाथमें धनुष लेकर सात बाणोंसे श्रुतायुको बींधदिया तथा और दो बाण छोड़कर उसके पहियोंके रक्षकोंको

बली । सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ७६ ॥ ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः । केतुमन्तं रणे भीमो गमयद्यमसादनम् ॥ ७७ ॥ ततः कलिङ्गाः संक्रुद्धा भीमसेनममर्पणम् । अनीकैर्बहुसाहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥ ७८ ॥ ततः शक्तिगदाखड्गतोमरर्ष्टिपरश्वधैः । कलिङ्गाश्च ततो राजन् भीमसेनमवाकिरन् ॥ ७९ ॥ संनिवार्य स तां घोरां शरवृष्टिं समुत्थिताम् । गदामादाय तरसा संनिपत्य महाबलः ॥ ८० ॥ भीमः सप्तशतान् वीराननयद्यमसादनम् । पुनश्चैव द्विसाहस्रान् कलिंगानरिमर्दनः ॥ ८१ ॥ प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाभवत् । एवं स तान्यनीकानि कलिंगानां पुनः पुनः ॥ ८२ ॥ बिभेद समरे तूर्णं प्रेक्ष्य भीष्मं महारथम् । हतारोहाश्च मातङ्गाः पांडवेन

तथा सत्यदेव और सत्यको यमपुरीमें पहुंचा दिया ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ तथा परमसाहसी भीमसेनने और तीन बाण छोड़कर केतुमान्को भी यमलोकमें पहुँचा दिया, यह देखकर कलिङ्गदेश के सब राजे चौकन्ने होगये और क्रोधी भीमसेनको अपनी सेनाओंके द्वारा चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तथा उसके ऊपर शक्ति, तलवार, तोमर, ऋष्टि और फरसे आदिकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया ॥ ७९ ॥ परन्तु महाबली शत्रुनाशी भीमसेन इस बाण आदिकी महाभयानक वर्षाको दूर करके हाथ में गदा ले वेगके साथ आगेको बढ़ा और एक लड़ाकेमें सात सौ वीर योधाओंको यमपुरीमें पहुंचा दिया तथा फिर गदा उठा दो हजार कलिङ्गोंका संहार करके उनको भी यमलोकमें भेज दिया ॥८०॥८१॥ उसके ऐसे पराक्रमको देखकर आश्चर्यसा मालुम होता था, इसीप्रकार वारंवार भीमसेन कलिंगोंकी सेनाका संहार कर रहा था ॥ ८२ ॥ जिनके महावतोंको भीमसेनने घायल कर दिया है ऐसे हाथी महारथी भीमसेनको देखकर पवनके धकेले

कृता रणे ॥ ८३ ॥ विप्रजग्मुरनीकेषु मेघा वातहता इव। मृद्नंतः स्वान्यनीकानि विनदन्तः शरातुराः ॥ ८४ ॥ ततो भीमो महाबाहुः खड्गहस्तो महाभुजः। सम्प्रहृष्टो महाघोषं शङ्खं प्राध्मापयद्बली ॥ ८५ ॥ सर्वकालिंगसैन्यानां मनांसि समकम्पयत्। मोहश्चापि कलिंगानामाविवेश परन्तप ॥ ८६ ॥ प्राकम्पन्त च सैन्यानि वाहनानि च सर्वशः। भीमेन समरे राजन् गजेंद्रेणेव सर्वशः॥८७॥ मार्गान् बहून् विचरता धावता च यतस्ततः। मुहुरुत्पतता चैव सम्मोहः समपद्यतः ॥ ८८ ॥ भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत। क्षोभ्यमाणमसम्बाधं ग्राहेणेव महत्सरः ८९ त्रासितेषु च सर्वेषु भीमेनाद्भुतकर्मणा। पुनरावर्तमानेषु विद्रवत्सु च सङ्घशः ॥ ९० ॥ सर्वकालिंगयोधेषु पाण्डूनां ध्वजनीपतिः।

हुए मेघकी समान अपनी सेनामें गिरते पड़ते हुए भाग रहे थे और शरीरकी पीडासे चीखें मार कर भागते २ अपनी सेनाके अनेकों मनुष्योंको कुचल रहे थे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ फिर महाबाहु परमबली भीमसेनने बड़े हर्षमें भर हाथमें तलवार लेकर बड़ी भारी ध्वनिवाला अपना शङ्ख बजाया ॥ ८५ ॥ हे शत्रुतापन! उसको सुनकर कलिङ्गराजके सब योधाओंके मन काँप उठे, सब मोहमें पड़गये ॥८६॥ और सब सैनिक तथा वाहन थर २ काँपने लगे, हे राजन्! युद्ध करनेकी अनेकों रीतियोंका अवलम्ब लेकर इधर उधरको दौड़ते तथा वारंवार कूदतेहुए मतवाले गजराजकी समान भीमसेनको देखकर शत्रु मूढ़ होगये ॥ ८७ ॥ ॥ ८८ ॥ और नाकेके दौड़नेसे जैसे बड़ाभारी सरोवर खलभला उठता है तैसे ही भीमसेनके भयसे सब सेनामें खलबली पड़ गई और सब सेना काँप उठी ॥ ८९ ॥ अद्भुतपराक्रमी भीमसेनसे त्रास पाये हुए कलिंगराजके सब सैनिक टोलियें बना २ कर जिधर तिधरको भाग रहे थे, उस समय पाण्डवोंका सेनापति

अब्रवीत् स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः ॥ ६१ ॥ सेनापति-वचः श्रुत्वा शिखंडिप्रमुखा गणाः। भीममेवाभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः ॥ ६२ ॥ धर्मराजश्च तान् सर्वानुपजग्राह पांडवः। महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः ॥ ६३॥ एवं संनोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः। भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ ६४॥ न हि पञ्चालराजस्य लोके कश्चन विद्यते। भीमसात्यक-योरन्यः प्राणेभ्यः प्रियकृत्तमः ॥ ६५ ॥ सोऽपश्यच्च कलिंगेषु चरन्तमरिसूदनः। भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा ॥६६॥ ननर्द बहुधा राजन् हृष्टश्चासीत् परन्तपः। शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च ॥ ६७॥ स पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते। कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत् ॥ ६८ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु

धृष्टद्युम्न अपनी सेनाको धीरज देकर युद्ध करनेकी आज्ञा देरहा था ॥ ६० ॥ ६१ ॥ अपने सेनापतिकी इस आज्ञाको सुनकर शिखण्डी आदि अनेकों योधा भीमसेनके पास गये और प्रहार करनेमें चतुर दूसरी रथोंकी टकड़ियें भी उनको सहायता देनेके लिये उनके ही पीछे दौड़ीं ॥ ६२ ॥ और पाण्डुनन्दन धर्मराज मेघकी समान वर्ण वाले हाथियोंकी एक बड़ीभारी सेना लेकर उनके पीछे चले ॥ ६३ ॥ फिर अपनी सब सनाको इकट्ठी करके धृष्टद्युम्नने भीमसेनके करवटसे खड़े होकर उसकी रक्षा करनेका भार लिया और श्रेष्ठ योधाओंको अपने पास रक्खा ॥ ६४ ॥ पाञ्चालराजको भीमसेन और सात्यकीके सिवाय, प्राणोंसे भी परम प्यारा और कोई नहीं था ॥ ६५ ॥ भीमसेनके पास पहुँचते ही शत्रुके योधाओंका नाश करनेवाले धृष्टद्युम्नने, भीमसेनको कलिङ्गसेनामें युद्ध करते हुए घूमते देखा ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! वह परन्तप हर्षमें भरकर बड़ी २ गर्जनायें कर रहा था तथा सिंह की समान दहाड़ कर अपना शंख बजा रहा था ॥ ६७॥ इतनेमें ही सुवर्णसे शोभायमान कबूतरकी समान भूरे रंगके घोड़ोंसे जुते धृष्टद्युम्नके रथकी ध्वजाको देखकर भीमसेनको ढाढस मिला ६८

तं दृष्ट्वा कलिंगैः समभिद्रुतम् । भीमसेनममेयात्मा त्राणायार्जौ समभ्ययात् ॥ ९९ ॥ तौ दूरात् सात्यकिं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ । कलिंगान् समरे वीरौ योधयेतां मनस्विनौ ॥ १०० ॥ स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः । पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥ १०१ ॥ स कृत्वा दारुणं कर्मप्रगृहीतशरासनः । आस्थितो रौद्रमात्मानं कलिङ्गानन्ववैक्षत ॥१०२॥ कलिङ्गप्रभवां चैव मांसशोणितकर्दमां । रुधिरस्यंदिनीं तत्र भीमः प्रावर्तयन्नदीं ॥ १०३ ॥ अन्तरेण कलिङ्गानां पाण्डवानां च वाहिनीम् । तां सन्ततार दुस्तारां भीमसेनो महाबलः ॥ १०४ ॥ भीमसेनं यथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप । कालोऽयं भीमरूपेण कलिङ्गैः सह युद्धयते ॥ १०५ ॥ ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे । अभ्ययात्त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः

धृष्टद्युम्नने भीमसेनको कलिङ्गसेनासे घिराहुआ देखकर उसकी रक्षाके लिये आगेको धावा दिया ॥ ९९ ॥ भीमसेन और धृष्टद्युम्न इन दोनों वीरोंने दूरसे ही सात्यकीको आतेहुए देखकर कलिङ्गसेनाके साथ फिर युद्धका आरम्भ किया ॥१००॥ इतनेमें ही विजयपानेवालोंमें श्रेष्ठ और पुरुषोंमें पराक्रमी शिविका पोता सात्यकी वहां आपहुंचा और भीमसेन तथा धृष्टद्युम्न दोनोंके करवटोंकी रक्षा करनेलगा ॥ १०१ ॥ और हाथमें धनुष ले अति उग्ररूप धारण करके कलिङ्गोंको मारने लगा ॥ १०२ ॥ भीमसेन ने उन कलिङ्गके योधाओंके मांस और रुधिरकी नदियें बहादीं ॥ १०३ ॥ पांडवोंकी और कलिङ्गोंकी सेनामें बहतीहुई रुधिरकी दुस्तर नदीमें महाबली भीमसेन पार उतर गया था ॥ १०४ ॥ हे राजन् ! भीमसेनके ऐसे पराक्रमको देखकर तुम्हारे योधा 'यह तो काल भीमसेनका रूप धारण करके कलिङ्गोंके साथ युद्ध कररहा है' इस प्रकार पुकार रहे थे १०५ योधाओंकी ऐसा पुकार को सुनकर शन्तनुनन्दन भीष्मपितामह चारों ओरसे सेनाकी व्यूह

॥ १०६ ॥ तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । अभ्यद्रवन्त भीमस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ १०७ ॥ परिवार्य तु ते सर्वे गाङ्गेयं तरसा रणे । त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्च्छु रोजसा ॥ १०८ ॥ प्रत्यविध्यत तान् सर्वान् पिता देवव्रतस्तव । यतमानान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ १०९ ॥ ततः शरसहस्रेण सन्निवार्य महारथान् । हयान् काञ्चनसन्नाहान् भीमस्य न्यहनच्छरैः ॥ ११० ॥ हताश्वे स रथे तिष्ठन् भीमसेनः प्रतापवान् । शक्तिं चिक्षेप तरसा गांगेयस्य रथं प्रति ॥ १११ ॥ अप्राप्तामथ तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव । त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्यामशीर्यत ॥ ११२ ॥ ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवान् गदाम् । भीमसेनस्ततस्तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ ॥ ११३ ॥ सात्यक्यपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया । गांगेयसारथिं

रचना करके भीमसेनके सामने लड़नेको आये ॥ १०६ ॥ तब भीमसेन, सात्यकी और धृष्टद्युम्न ये तीनोंजने सोनेसे मढ़ेहुए भीष्मजीके रथके ऊपरको दौड़े और उन सबोंने रणमें वेगसे भीष्मजीको घेर तीन२ बाण छोड़कर उनको ढकदिया,हे राजन्! तब तुम्हारे पिता देवव्रतने सीधे जानेवाले तीन२ बाण छोड़कर उन बाणोंका नाश करदिया और इसीप्रकार हजारों बाण छोड़ कर भीष्मजीने उन आगे बढ़ते हुए महारथियोंको रोक दिया तथा दूसरे बाण छोड़कर सुनहरी साजवाले भीमसेनके घोड़ों को मारडाला ॥ १०७–११०॥ तब जिसके घोड़े मर गये हैं ऐसे रथमें बैठे हुए भीमसेनने भीष्मजीके रथके ऊपर एक शक्ति फेंकी ॥१११॥हे राजन्! वह शक्ति पास आकर पहुंची नहीं थी कि-इतनेमें ही उन तुम्हारे पिता देवव्रतने उसके तीन टुकड़े करडाले तब वह कटकर भूमिपर गिर पड़ी ॥ ११२ ॥ हे मनुजेन्द्र! तब भीमसेन एक लोहेकी बड़ी गदा लेकर रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और भीमसेनका प्रिय करनेके लिये सात्यकिने बाण मारकर भीष्मजीके

तूर्णं पातयामास सायकैः ॥ ११४ ॥ भीष्मस्तु निहते तस्मिन् सारथौ रथिनां वरः । वातायमानैस्तैरश्वैरपनीतो रणाजिरात् ॥ ११५ ॥ भीमसेनस्ततो राजन्नपयाते महाव्रते । प्रजज्वाल यथा वह्निर्दहन् कक्षामिवैधितः ॥ ११६ ॥ स हत्वा सर्वकालिङ्गान् सेनामध्ये व्यतिष्ठत । नैनमभ्युत्सहन् केचित्तावका भरतर्षभ ॥ ११७ ॥ धृष्टद्युम्नस्तमारोप्य स्वरथे रथिनां वरः । पश्यतां सर्वसैन्यानामपोवाह यशस्विनम् ॥ ११८ ॥ सम्पूज्यमानः पाञ्चाल्यैर्मत्स्यैश्च भरतर्षभ । धृष्टद्युम्नं परिष्वज्य समेयादथ सात्यकि ॥ ११९ ॥ अथाब्रवीद्भीमसेनं सात्यकिः सत्यविक्रमः । प्रहर्षयन् यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ १२० ॥ दिष्ट्या कालिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान् । शक्रदेवश्च कालिङ्गः कलिङ्गाश्च मृधे हताः ॥ १२१ ॥ स्वबाहुबलवीर्येण नागाश्वरथसंकुलः । महापुरुष-

सारथीको मार डाला ॥ ११३-११४ ॥ सारथीके मारेजाने पर वायुकी समान वेगवाले घोड़े क्षणभरमें भीष्मजीके रथको रणभूमि से बाहर लेगये .तब भीमसेन घासके ढेरसे सुलगे हुए अग्निकी समान कोपमें भर गया, इस समय हे भरतसत्तम !.सबका संहार करके भीमसेन सेनामें खड़ा था, परन्तु तुममेंसे कोई भी उसके ऊपर धावा न करसका ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ फिर रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न यश वाले भीमसेनको अपने रथमें बैठालकर सब सेना के देखते हुए लेगया ॥ ११८ ॥ हे भरतसत्तम ! पाञ्चाल और मत्स्योंसे सत्कार पाता हुआ वह भीमसेन धृष्टद्युम्नसे मिला और फिर सात्यकीके पास चलागया ॥ ११९ ॥ और युद्धमें व्याघ्ररूप सात्यकी धृष्टद्युम्नके सामने भीमसेनसे कहने लगा, कि-धन्यभाग है जो आज कलिङ्गराज राजकुमार केतुमान,कलिङ्गदेशके शक्रदेव तथा सब कलिङ्गोंको हमने रणमें मारदिया ॥१२०॥ हाथी घोड़े, रथ, बड़े२ वीर योधाओं वाले तथा बहुतसे महापुरुषों वाले कलिङ्गोंकी सेनाके व्यूहको आज तूने अकेले ही अपने बाहु-

भूयिष्ठो धीरयोधनिषेवितः ॥ १२२ ॥ महाव्यूहः कलिङ्गानामेकेन मृदितस्त्वया । एवमुक्त्वा शिनेर्नप्ता दीर्घबाहुररिन्दम ॥ १२३ ॥ रथाद्रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम् । ततः स्वरथमास्थाय पुनरेव महारथः । तावकानवधीत्क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत् ॥१२४॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसे कलिङ्गराजवधे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

सञ्जय उवाच । गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत । रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये ॥ १ ॥ द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना । समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः ॥२॥ स लोकविदितानश्वान्निजघान महाबलः । द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः ॥ ३ ॥ ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः । द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः ॥ ४ ॥ धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत । सौभद्रोऽभ्यपतत्तूर्णं

बलसे मारडाला है, ऐसा कहकर शिवीका पोता अपने रथमेंसे उतरकर भीमसेनके रथकी ओरको दौड़ा और उसको प्रेमके साथ छातीसे लगाया, तदनन्तर फिर अपने रथमें बैठाकर भीमसेनके बलको बढ़ाताहुआ वह महारथी तुम्हारी सेनाके योधाओंको मारने लगा था॥१२१॥१२२॥ चौअनवां अध्याय समाप्त ॥५४॥

सञ्जय कहता है, कि—हे भरतवंशी ! जब दिनका पहिला भाग बहुत कुछ बीत गया और रथ, हाथी, घोड़े, पैदल तथा घुड़सवारोंका संहार होगया तब पाञ्चालकुमार, द्रोणकुमार अश्वत्थामा, शल्य और महात्मा कृपाचार्य इन तीन महारथियोंके साथ युद्ध करनेको आकर खड़ा होगया ॥ १ ॥ २ ॥ पाञ्चालनन्दनने द्रोणकुमारके जगत्प्रसिद्ध घोड़ोंको दश तेज बाण छोड़कर मारडाला ॥ ३ ॥ अपने वाहनका नाश होनेसे द्रोणनन्दन अश्वत्थामा शल्यके रथमें बैठकर पाँचालराजके पुत्रके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥ हे भारत ! इसप्रकार द्रोणके पुत्रके

विकिरन्निशितान् शरान् ॥ ५ ॥ स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः । अश्वत्थमानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभ ॥ ६ ॥ आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा । शल्योऽथ दशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥ लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितम् । अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ८ ॥ दौर्योधनिः सुसंक्रुद्धः सौभद्रं परवीरहा । विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥ अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ । शरैः पञ्चाशते राजन् क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत ॥ १० ॥ लक्ष्मणोऽपि पुनस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा । मुष्टिदेशे महाराज ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ ११ ॥ तद्विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा । अन्य-

---

साथ धृष्टद्युम्नको युद्ध करते देखकर सुभद्राका पुत्र तेज बाणों की वर्षा करता हुआ आगेको बढ़ा चला आया ॥ ५ ॥ और पुरुषोंमें श्रेष्ठ उस सुभद्रानन्दनने शल्यको पांच बाणोंसे, कृपाचार्य को नौ बाणोंसे और अश्वत्थामाको आठ बाणोंसे बींधडाला ६ और अश्वत्थामाने अभिमन्युको एक बाणसे बींधा था, शल्यने दश बाणोंसे और कृपाचार्यने उसको तीखे तीन बाणोंसे बींधा था ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा पोता लक्ष्मण अभिमन्युको युद्ध करते हुए देखकर उसके ऊपरको दौड़ा और उन दोनोंमें युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! शत्रुके वीरोंका संहार करनेवाले दुर्योधनके पुत्र लक्ष्मणने क्रोधमें भरकर अभिमन्युके ऊपर बाण छोड़ना आरम्भ कर दिये, उसका यह पराक्रम बड़ा अद्भुत था ॥ ९ ॥ हे भरतसत्तम ! इससे अतिकोपमें भरे हुए अभिमन्युने वास्तवमें हाथकी फुरतीसे काम लेकर अपने चचेरे भाईको पचास बाण मारकर बींध दिया ॥ १० ॥ हे महाराज ! तब लक्ष्मण ने भी एक बाण छोड़कर अपने शत्रुका धनुष मुट्ठीसे पकड़नेके स्थानपर ही काट दिया तब तुम्हारे पक्षके सेनानायकोंने बड़ा हर्ष-नाद किया ॥ ११ ॥ फिर शत्रुओंके वीरोंका नाश करनेवाले

दादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम् ॥ १२ ॥ तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रतिकृतैषिणौ । अन्योऽन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ १३ ॥ ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम् । पीडितं तव पौत्रेण प्रायात्तत्र प्रजेश्वरः ॥ १४ ॥ सन्निवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः । आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १५ ॥ स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः । न स्म प्रव्यथते राजन् कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ १६॥ सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनञ्जयः अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजम् ॥ १७ ॥ ततः सरथ-नागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः । अभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः सव्यसाचिनम् ॥१८॥ उद्धूतं सहसा भौमं नागाश्वरथपत्तिभिः । दिवाकररथं प्राप्य रजस्तीव्रमदृश्यत ॥ १९ ॥ तानि नागसह-

अभिमन्युने टूटेहुए धनुषको फेंककर और एक अति दृढ़ धनुष हाथमें लिया ॥ १२ ॥ इसप्रकार रणमें जूझतेहुए वह दोनों पुरुषसत्तम आपसका दाव चुकाते हुए एक दूसरेके ऊपर तीखे बाण मार रहे थे ॥ १३ ॥ मेरे महारथी पुत्रको आपके पोते अभिमन्युने संग्राममें बड़ी पीड़ा देना आरम्भ करदिया है, यह देखकर राजा दुर्योधन उसकी सहायता करनेको दौड़ आया ॥ १४ ॥ जब दुर्योधन तहां आपहुंचा तो पाण्डवोंके पक्षके सब राजे अपने रथ दौड़ाकर अभिमन्युके चारों ओर खड़ेहोकर उसकी रक्षा करनेलगे ।१५। हे राजन् ! कृष्णकी समान पराक्रमी शूर अभिमन्यु रणमें दुर्जय राजाओंसे घिराहुआ होने पर भी जरा नहीं डिगा ॥१६॥ सुभद्रानन्दन अभिमन्युको इस प्रकार युद्ध करते देखकर अर्जुन अपने उस पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्रतासे दौड़ा ॥ १७ ॥ उस समय रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेना लेकर भीष्म द्रोण आदि राजे अर्जुनके ऊपरको दौड़े ॥ १८ ॥ इस समय हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंके चलनेसे उड़ी हुई पृथिवीकी धूल सूर्यके रथ तक पहुंचकर आकाशमें छागयी थी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! ये

स्राणि भूमिपालशतानि च । तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ २० ॥ प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः । कुरूणां चानयस्तीव्रः समदृश्यतत दारुणः ॥ २१ ॥ नाप्यंतरिक्षं न दिशो न भूमिर्न च भास्करः । प्रजज्ञे भरतश्रेष्ठ शस्त्रसंघैः किरीटिनः ॥ २२ ॥ सादिता रथनागाश्च हताश्वा रथिनो रथे । विप्रद्रुतरथा केचिद्द दृश्यन्ते रथयूथपाः ॥ २३ ॥ विरथा रथिन-श्चान्ये धावमानाः समन्ततः । तत्र तत्रैव दृश्यन्ते सायुधाः सांगदै-र्भुजैः ॥ २४ ॥ हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजारोहाश्च दंतिनः । अर्जुनस्य भयाद्राजन् समंताद्विप्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥ रथेभ्यश्च गजे-भ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः । पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुन-सायकैः ॥ २६ ॥ सगदानुद्यतान् बाहून् सखड्गांश्च विशाम्पते ।

हजारों हाथी और सैंकड़ों राजे अर्जुनके बाणमार्गकी मर्यादा तक आपहुंचे और आगे पीछेको न हटसके ॥ २० ॥ हे राजन् ! उस समय सब प्राणी कोलाहल करने लगे, दिशाएं अंधेरेसे काली होगयीं और कौरवोंके अविनयने बड़ा दारुण तीव्र रूप धारण किया ॥ २१ ॥ अर्जुनके बाणोंके छाजानेसे अन्तरिक्ष, दिशायें, भूमि तथा सूर्य इनमेंका कोई नहीं दीखता था ॥२२॥ इस घमसानमें अनेकों हाथी मरगये, बहुतसे रथियोंके घोड़े कट गये तथा रथीसेनाके सेनापति रथोंको छोड़२ कर भागने लगे और कितने ही रथहीन हुए रथी,बाजूबन्दवाले हाथोंमें तलवारें लेरहे थे तो भी इधर उधरको भागते हुए दीखते थे ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ और हे राजन् ! अर्जुनके भयसे सवार घोड़ोंको और हाथीसवार योधा हाथियों को छोड़कर चारों दिशाओंको भाग रहे थे ॥ २५ ॥ अर्जुनके बाणोंसे रथ घोड़े, और हाथियों पर से योधा टपाटप नीचे गिरते दीखते थे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! रणमें अर्जुन बड़ा उग्र रूप धारण करके तीखे बाणोंसे, मास

समासांश्च सतूणीरान् सशरान् सशरासनान् ॥ २७ ॥ साङ्कुशान् सपताकांश्च तत्र तत्रार्जुनो नृणां। निचकर्त शरैरुग्रै रौद्रं वपुरधारयत् ॥२८॥ परिघाणां मदीप्तानां मुद्गराणां च मारिष। प्रासानां भिन्दिपालानां निस्त्रिंशानां च संयुगे ॥ २९ ॥ परश्वधानां तीक्ष्णानां तोमराणां च भारत। वर्मणां चापविद्धानां काञ्चनानां च भूमिप ॥ ३०॥ ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः। छत्राणां हेमदण्डानां तोमराणां च भारत ॥ ३१ ॥ प्रतोदानां च योक्त्राणां कशानां चैव मारिष। राशयः स्मात्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ॥ ३२ ॥ नासीत्तत्र पुमान् कश्चित्तव सैन्यस्य भारत। योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात्कथंचन ॥३३॥ यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशाम्पते। स संख्ये विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ॥ ३४ ॥ तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः। अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।३५।

तलवार और गदाओं सहित तथा बाण धनुष अंकुश पताका आदिसे युक्त राजाओंके ऊंचे किये हुए हाथोंको काट रहा था ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे राजन्! इस प्रकार अर्जुनके बाणोंसे कटे हुए चमकते हुए परिघ, मुद्गर,प्रास भिन्दिपाल, तलवार, तीखे फरसे, तोमर, सोनेके बखतरें, ध्वजा, ढाल, चँवर सोनेके दण्डों वाले छत्र, चाबुक, लोहेके अंकुश और रास आदिके समूह रण भूमिमें जिधर तिधर बिखरेहुए देखनेमें आते थे ॥ २९ ॥ ३२ ॥ हे राजन! रणमें अर्जुनके सामने प्रयत्न करके भी खड़ा रह सके ऐसा एक भी योधा तुम्हारी सेनामें नहीं दीखता था ॥ ३३ ॥ क्योंकि-हे राजन्! जो जो योधा रणमें अर्जुनका सामना करने को आते थे वह सब तीखे बाणोंसे घायल होकर यमपुरीमें पहुंच जाते थे ॥ ३४ ॥ और जब तुम्हारे योधा चारों दिशाओंमेंको भागने लगे तब अर्जुन और कृष्णने अपने उत्तम शंखोंको

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव । अब्रवीत्समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव ॥ ३६ ॥ एष पांडुसुतो वीरः कृष्णेन सहितो बली । तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद्धनञ्जयः ॥ ३७ ॥ न ह्येष समरे शक्यो विजेतुं हि कथञ्चन । यथास्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमं ॥ ३८ ॥ न निवर्तयितुं चापि शक्येयं महती चमूः । अन्योन्यमीक्षया पश्य द्रवतीयं वरूथिनी ॥ ३९ ॥ एष चास्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान् प्रतिपद्यते । चक्षूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा ॥ ४० ॥ तत्रोवहारं संप्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ । श्रांता भीताश्च नो योधा न योत्स्यंति कथञ्चन ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमं । अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः ॥ ४२ ॥ ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च

बजाया ॥ ३५ ॥ इसप्रकार तुम्हारी सब सेनाको भागते हुए देख कर तुम्हारे पिता देवव्रत मुसका कर द्रोणाचार्यसे कहने लगे कि—यह बलवान् पाण्डुकुमार धनञ्जय अकेला ही इससे जहांतक होसकता है इस सेनाका संहार कर रहा है ।३६॥३७। युगके अन्तसमयमें यमराजकी समान इसके इस रूपको देखकर यही प्रतीत होता है, कि—इसको संग्राममें जीतना तो असंभव ही है ॥ ३८ ॥ और आप देखरहे हैं, कि–परस्परके मुखको देख कर भागती हुई इस सेनाको पीछेको लौटाना भी अब असम्भव ही है ॥ ३९ ॥ और सब लोकोंके नेत्रोंको मानो छीन रहे हों ऐसे यह सूर्य नारायण भी उत्तम अस्ताचलको जारहे हैं ॥ ४० ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! इन कारणोंसे मेरी समझमें अपनी सेनाको पीछेको लौटा लेनेका अवसर आगया है और ये योधाभी भयभीत होरहे हैं और थककर लोथ पोथ होनेके कारण चाहे सो करोगे तो भी ये लड़ेंगे नहीं ॥४१॥ हे राजन् ! इसप्रकार महारथी भीष्मजीने आचार्योंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यजीसे कहकर तुम्हारी सेनाको पीछेको लौटाकर युद्ध बन्द कर दिया ॥४२॥ हे भारत !

भारत । अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत्संध्याकाले च वर्तति ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीय-
दिवसावहारे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

सञ्जय उवाच । प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा । अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत ॥ १ ॥ गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा । पुत्राणां ते जयाकांक्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥ २ ॥ गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव । चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३ ॥ अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ । त्रैगर्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्च संयुगे ॥ ४ ॥ भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष । मद्रकाः सिंधुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये ॥ ५ ॥ जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां

जब सन्ध्याका समय हुआ और सूर्य अस्त होगया तब तुम्हारी तथा पाण्डवोंकी सेना पीछेको लौट दी और युद्ध बन्द होगया ॥ ४३ ॥ पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ ॥

सञ्जय कहता है कि—जब रात बीत गयी और प्रातःकालका समय होनेको आया तब शत्रुदमन शन्तनुनन्दन भीष्मजीने कौरवों की सेनाको संग्राममें आनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ और हे भारत ! कुरुओंके वृद्ध पितामह शन्तनुके पुत्र भीष्मजीने अपनी सेनाका गरुड़व्यूह रचा, क्योंकि—वह तुम्हारे पुत्रोंकी विजय चाहते थे ॥ २ ॥ इस गरुड़व्यूहकी चोंचके अगले भागमें तुम्हारे पिता भीष्मजी अपने आप खड़े हुए, नेत्रोंके स्थानपर द्रोणाचार्य और यदुवंशी कृतवर्माको खड़ा किया ॥ ३ ॥ त्रैगर्त्त, कैकेय तथा वाटधानोंको साथ लेकर यशवाले अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यजी उस के मस्तकके स्थान पर खड़े हुए ॥ ४॥ और हे महाराज ! भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त, मद्रक तथा पञ्चनद नामोंसे प्रसिद्ध सिंधु, सौवीर आदिको जयद्रथके साथ उसके कण्ठस्थान पर

सन्निवेशिताः । पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ॥ ६ ॥ विन्दानुविंदावावंत्यौ काम्बोजश्च शकैः सह । पुच्छमासन्महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥ ७ ॥ मागधाश्च कलिङ्गाश्च दासेरकगणैः सह । दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ८ ॥ कारूषाश्च विकुञ्जाश्च मुण्डाः कुंडीवृषास्तथा । बृहद्बलेन सहिता वामं पार्श्वमवस्थिताः ॥ ९ ॥ व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं सव्यसाची परन्तपः । धृष्टद्युम्नेन सहितः प्रत्यव्यूहत संयुगे ॥ १० ॥ अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहन्तमतिदारुणं । दक्षिणं शृङ्गमास्थाय भीमसेनो व्यरोचत ॥ ११ ॥ नानाशस्त्रौघसम्पन्नैर्नानादेश्यैर्नृपैर्वृतः । तदन्वेव विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥१२॥ तदनन्तरमेवासीन्नीलो

खड़ा किया पीछेके भागमें अपने इर समयके साथियोंको तथा सगे भाइयोंको लेकर राजा दुर्योधन खड़ा हुआ और हे महाराज! उसकी पूछके स्थानमें उज्जैनके विंद और अनुविन्द अपने साथ में काम्बोज, शक और शूरसेनोंको लेकर खड़े हुए ॥ ५-७ ॥ और मगध देशके राजे चाकर और ऊँटोंको साथ लेकर व्यूहके दाहिने करवटकी रक्षा करनेको खड़े हुए ॥८॥ तथा बृहद्बल के साथ कारूप, विकुंज, मुण्ड तथा कुण्डिवृष उसकी बाईं करवटकी रक्षा करनेको खड़ेहुए ॥ ९ ॥ इसप्रकार कौरवोंकी सेना की व्यूहरचना हुई देखकर परन्तप अर्जुन धृष्टद्युम्नको साथ लेकर अपनी सेनाकी व्यूहरचना करने लगा ॥ १० ॥ तुम्हारीं सेनाकी व्यूहरचनाके सामने उन्होंने अपनी सेनाका अति दारुण अर्द्धचन्द्राकार व्यूह रचा उसके दक्षिणके अग्रभाग पर भीमसेन रक्षा करनेके लिये खड़ा हुआ ॥११॥ उसके आस पास अनेकों देशोंके अस्त्र शस्त्रोंको धारण करनेवाले राजे खड़े हुए, पीछे विराट तथा महारथी द्रुपद खड़े हुए ॥ १२ ॥ और उनके पीछे विषमें बुझेहुए शस्त्रोंको लेकर नील खड़ा हुआ था और उसके पीछे

नीलायुधैः सह । नीलादनंतरश्चैव धृष्टकेतुर्महाबलः ।१३। चेदिका-शिकरूपैश्च पौरवैरपि सम्वृतः ।धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥ १४ ॥ मध्ये सैन्यस्य महतः स्थिता युद्धाय भारत। तत्रैव धर्मराजोऽपि गजानीकेन सम्वृतः॥ १५ ॥ ततस्तु सात्यकीं राजन् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः । अभिमन्युस्ततः शूर इरावांश्च ततः परं ॥ १६ ॥ भैमसेनिस्ततो राजन् केकयाश्च महारथाः । ततोऽभूद्दि पदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः ॥ १७ ॥ सर्वस्य जगतो गोप्ता गोप्ता यस्य जनार्दनः । एवमेतं महाव्यूहं प्रत्यव्यूहंत पांडवाः ॥ १८ ॥ वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षं ये च सङ्गताः । ततः प्रववृते युद्धं व्यतिपक्तरथद्विपं ॥ १९ ॥ तावकानां परेषां च

महाबली धृष्टकेतु खड़ा हुआ था ॥ १३ ॥ और उसके आस पास चेदी, काशी, करूप और पौरव खड़े हुए थे तथा उस व्यूहके मध्यभागमें धृष्टद्युम्न शिखण्डी पाञ्चाल और प्रभद्रक आदि युद्ध करनेके लिये खड़े किये गये थे तथा हाथियोंकी सेनाको लेकर धर्मराज भी वहां ही खड़े हुए थे॥ १५-१६॥ हे राजन! उनके पीछें सात्यकी और द्रौपदीके पांचों पुत्र खड़े थे, उनके पीछे शूर अभिमन्यु और उसके पीछे इरावान् खड़ा. था ॥ १६ ॥ हे राजन्! उसके पीछे भीमसेनका पुत्र घटोत्कच महारथी कैकेयोंके साथ खड़ा था .और उसके पीछे अर्थात् अर्धचन्द्राकार व्यूहके वायें कोने पर पुरुषोंमें श्रेष्ठ तथा जिसके रक्षक जगत्पति श्रीकृष्ण हैं वह अर्जुन खड़ा था इसप्रकार तुम्हारे पुत्रोंका और उनका पक्ष लेनेवालोंका संहार करनेके लिये पाण्डवोंने व्यूह रचा था, और व्यूहकी रचना होते ही परस्पर प्रहार करते हुए आपके और पाण्डुके पुत्रोंमें युद्धका आरम्भ होगया और उनमें रथ तथा हाथी एकमएक होगये हे राजन्! इस समय परस्पर मार काट करते हुए रथ और घोड़ोंके समूह एक

निघ्नतामितरेतरं । हयौघाश्च रथौघाश्च तत्र तत्र विशाम्पते ॥२०॥ सम्पतंतो व्यदृश्यन्त निघ्नन्तस्ते परस्परं । धावतां च रथौघानां निघ्नताम् च पृथक् पृथक् ॥२१॥ बभूव तुमुलः शब्दो विमिश्रो दुन्दुभिस्वनैः । दिवस्पृङ्नरवीराणां निघ्नतामितरेतरं । सम्प्रहारे सुतुमुले तव तेषां च भारत ॥ २२ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीयदिवस युद्धे परस्परव्यूहरचनायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

सञ्जय उवाच । ततो व्यूढेष्वनीकेषु तावकेषु परेषु च । धनञ्जयो रथानीकमवधीत्तव भारत ॥ १ ॥ शरैरतिरथो युद्धे दारयन् रथयूथपान् । ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ॥ २ ॥ धार्तराष्ट्रा रणे यत्नात्पाण्डवान् प्रत्ययोधयन् । प्रार्थयाना यशो दीप्तं मृत्युं कृत्वा निवर्तनं ॥ ३ ॥ एकाग्रमनसो भूत्वा पाण्डवानां

दूसरेके ऊपरको दौड़ रहे थे, इसप्रकार दौड़ते तथा अलग २ युद्धमें एक दूसरेको मारनेके लिये जुटे हुए रथोंके पहियोंका दुन्दुभीके शब्दके साथ मिलाहुआ शब्द बड़ीभारी घरघराहट कररहा था और हे भारत ! इस समय अत्यन्त तुमुल प्रहार होनेलगा, इस समय एक दूसरेको मारते हुए तुम्हारे तथा पाण्डवोंके वीर योधाओंका कोलाहल स्वर्गतक पहुंच रहा था ॥ १७-२२ ॥ छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि-हे भारत ! दोनों सेनाओंकी व्यूह-रचना होजाने पर जब युद्धका आरम्भ हुआ तब धनञ्जय तुम्हारी रथोंकी सेनाका नाश करने लगा ॥ १ ॥ युगान्तके कालकी समान तुम्हारी सेनाका अर्जुन संहार कररहा था तो भी अति-रथियोंके तीखे बाणोंसे घायल होते हुए भी तुम्हारे सेनापतियोंने पाण्डवोंके साथ युद्ध जारी रक्खा ॥ २ ॥ प्राण चलेजायँ तो भी युद्ध करते रहना चाहिये, ऐसा निश्चय करके वह निर्मल यशके लिये युद्ध करते थे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे सेनापति एकाग्र

वरूथिनीं । बभञ्जुर्बहुशो राजंस्ते चासज्जन्त संयुगे ॥ ४ ॥ द्रवद्भिरथ भग्नैश्च परिवर्तद्भिरेव च । पाण्डवैः कौरवेयैश्च न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५ ॥ उदतिष्ठद्रजो भौमं छादयानं दिवाकरं । न दिशः प्रदिशो वापि तत्र हन्युः कथं नराः ॥ ६ ॥ अनुमानेन संज्ञाभिर्नामगोत्रैश्च संयुगे । वर्त्तते च तथा युद्धं तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ७ ॥ न व्यूहो भिद्यते तत्र कौरवाणां कथञ्चन । रक्षितः सत्यसन्धेन भारद्वाजेन संयुगे ॥ ८ ॥ तथैव पांडवानां च रक्षितः सव्यसाचिना । नाभिद्यत महाव्यूहो भीमेन च सुरक्षितः ॥ ९ ॥ सेनाग्रादपि निष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः । उभयोः सेनयो राजन् व्यतिषक्तरथद्विपाः ॥१०॥ हयारोहैर्हयारोहाः पात्यन्ते स्म

चित्तसे लड़ रहे थे इस कारण उन्होंने पाण्डवोंकी सेनामें बहुत समय तक घमसान मचाये रक्खा और भागड़ डालदी तथा अपने आप भी आवेशमें लड़तेहुए बिखर गये ॥ ४ ॥ तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाके बिखर कर दौड़नेके कारण कौन किसका है, यह पहिचाननेमें नहीं आता था ॥ ५ ॥ पृथिवी परसे उड़ीहुई धूलिसे सूर्यमण्डल छागया और दिशाओं तथा उपदिशाओंको पहिचानना भी कठिन होगया ऐसे समय मनुष्य आपसमें पहिचानकर मारैं यह तो संभव था ही नही, इसकारण योधा किसप्रकार एक दूसरेको मारें हे राजन् ! केवल अनुमानसे (पहिचानोंसे) तथा नाम और गोत्रसे ही जहां तहां एक दूसरेको पहिचानकर युद्ध करते थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ यहां तक होगया, तब भी सत्य प्रतिज्ञावाले द्रोणाचार्यसे रक्षित कौरवों का व्यूह टूट न सका ॥ ८ ॥ तथा भीमसेनके द्वारा उत्तमता से रक्षा किया हुआ और अर्जुन का रचा हुआ पाण्डवों का व्यूह भी नहीं टूट सका ॥ ९ ॥ हे राजन ! दोनों सेनाओंमें के रथ तथा हाथी एक दूसरेसे अड़े हुए खड़े थे तथा योधा सेनाके अग्रभागमेंसे (पंक्तिसे) बाहर निकल कर युद्ध कर रहे थे ॥१० ॥ उस महाभयानक युद्धमें सवार सवारोंको निर्मल ऋष्टि-

महाहवे। ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च प्रासैरपि च संयुगे ॥ ११ ॥ रथी रथिनमासाद्य शरैः कनकभूषणैः । पातयामास समरे तस्मिन्नतिभयङ्करे ॥ १२ ॥ गजारोहा गजारोहान्नाराचशरतोमरैः । संसक्तान्पातयामासुस्तव तेषां च सर्वशः ॥ १३ ॥ कश्चिदुत्पत्य समरे वरवारणमास्थितः । केशपक्षे परामृश्य जहार समरे शिरः ॥१४॥ अन्ये द्विरददन्ताग्रनिर्भिन्नहृदया रणे । वेमुश्च रुधिरं वीरा निःश्वसन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥ कश्चित्करिविषाणस्थो वीरो रणविशारदः । प्रावेपच्छक्तिनिर्भिन्नो गजशिक्षास्त्रवेदिना ॥ १६ ॥ पत्तिसंघा रणे पत्तीन् भिन्दिपालपरश्वधैः । न्यपातयन्त संहृष्टाः परस्परकृतागसः ॥ १७ ॥ रथी च समरे राजन्नासाद्य गजयूथपं । सगजं पातयामास गजी च रथिनां वरम् ॥ १८ ॥ रथिनं च

योंसे तथा प्रासोंसे आपसमें प्रहार करते थे ॥ ११ ॥ तथा रथी रथियोंको एक दूसरेके सामने आकर आपसमें सोनेसे शोभायमान बाणोंसे प्रहार करते थे ॥१२॥ और हाथी पर बैठकर युद्ध करने वाले शत्रुओंके बाण तोमर और नाराचोंसे मार रहे थे ॥ १३ ॥ कोई वीर कूदकर हाथीके शिरपर चढ़जाता था और चोटी पकड़कर शत्रुका शिर काट लेता था, कोई हाथीके दांतों से घायल हुए योधा रुधिर ओकते हुए अन्तके श्वास लेरहे थे ॥ १४-१५ ॥ कोई कूदकर हाथीके दांतों पर जाबैठते थे परन्तु गजशिक्षा और अस्त्रविद्याको जानने वाले अपने शत्रुकी शक्ति का प्रहार होने से तहांके तहां ही घायल होकर तड़फने लगते थे ॥ १६ ॥ और आपसमें वैरभाव रखकर आवेशमें भरेहुए पैदल हर्षमें आकर भिन्दिपाल और फरसोंसे एक दूसरे का संहार कररहे थे ॥ १७॥ तथा हे राजन् ! इस संग्राममें रथी हाथी वालोंके सामने आ हाथी वालोंको और हाथी वाले रथियोंको मारकर भूमि पर पटकते थे ॥ १८॥ और

हयारोहः प्रासेन भरतर्षभ । पातयामास समरे रथी च हयसादिनं ॥ १९ ॥ पदाती रथिनं संख्ये रथी चापि पदातिनं । न्यपातयच्छितैः शस्त्रैः सेनयोरुभयोरपि ॥ २० ॥ गजारोहा हयारोहान् पातयाञ्चक्रिरे तदा । हयारोहा गजस्थांश्च तदद्भुतमिवाभवत् ।२१। गजारोहवरैश्चापि तत्र तत्र पदातयः । पातिताः समदृश्यंत तैश्चापि गजयोधिनः ॥ २२ ॥ पत्तिसंघा हयारोहैः सादिसंघाश्च पत्तिभिः पात्यमाना व्यदृश्यंत शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २३ ॥ ध्वजैस्तत्रापविद्धैश्च कार्मुकैस्तोमरैस्तथा । प्रासैस्तथा गदाभिश्च परिघैः कंपनैस्तथा ॥ २४ ॥ शक्तिभिः कवचैश्चित्रैः कणपैरंकुशैरपि । निस्त्रिंशैर्विमलैश्चापि स्वर्णपुंखैः शरैस्तथा ॥ २५ ॥ परिस्तोमैः कुथाभिश्च कंबलैश्च महाधनैः । भूर्भाति भरतश्रेष्ठ स्रग्दामैरिव चित्रिता ॥ २६ ॥ नराश्वकायैः पतितैर्दंतिभिश्च महाहवे । अगम्य-

हे भरतसत्तम ! आपसमें अटकजानेके कारण रथी और सवार एक दूसरेको प्राससे मारते थे ॥ १९ ॥ तथा पैदल रथियों और रथी पैदलोंको तेज बाणोंसे मारते थे, हाथी पर चढ़नेवाले घुड़सवारोंको मारते थे तथा घुड़सवार हाथीपर बैठने वालोंको मारते थे इसप्रकार यह अद्भुत युद्ध बड़े ही अचरजमें डालनेवाला हुआ था ॥ २० ॥ २१ ॥ हाथियोंके महावतोंने पैदलोंके और पैदलोंने हाथियोंके महावतोंको मारडाला॥२२॥और पैदलोंने घुड़सवारोंको तथा घुड़सवारोंने सैंकड़ों और सहस्रों पैदलोंको रणभूमिमें मारडाला था ॥२३॥ हे भरतसत्तम ! तहां कटीहुई ध्वजायें धनुष, तोमर, प्रास, गदायें, परिघ, कंपन, शक्ति, चित्रविचित्र कवच, मुद्गर, अंकुश, चमकती हुई तलवारें, सुवर्णके परोंवाले बाण, परिलोम (हाथियोंके हौदे), झूलें बड़े मूल्यके कंबल आदि से छायी हुई भूमि मानो अनेकों प्रकारके फूलोंके हार पहर रही हो ऐसी शोभा पारही थी ॥ २४ ॥ २६ ॥ मनुष्योंके पड़े हुए

रुद्धा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २७ ॥ प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः । दिशश्च विमलाः सर्वाः संबभूवुर्जनेश्वर ॥ २८ ॥ उत्थितान्यगणेयानिक बंधानि समंततः ॥ चिह्नभूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत ॥ २९ ॥ तस्मिन् युद्धे महारौद्रे वर्तमाने सुदारुणे । प्रत्यदृश्यंत रथिनो धावमानाः समंततः ३० ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैंधवश्च जयद्रथः । पुरुमित्रो जयो भोजः शल्यश्चापि ससौवलः ॥ ३१ ॥ एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्य-पराक्रमाः । पांडवानामनीकानि बभंजुः स्म पुनः पुनः ॥ ३२ ॥ तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः । सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत॥३३॥ तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान् सर्वराजभिः । द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव ॥ ३४ ॥ तथा ते समरेऽ-

मुरदोंसे और मरेहुए हाथियोंसे रणभूमिमें चलनेको मार्ग भी नहीं मिलता था जहां तहां मांस और रुधिरकी कींच होरही थी २७ रणमें वरसे हुए रुधिरसे पृथिवीपरकी सब धूलि सनजानेके कारण वह उड़ना बन्द होगई थी और हे राजन् ! सब दिशाएं निर्मल (धूलिसे शून्य) होरही थी ॥२८॥ हे भारत ! असंख्यों बिना मस्तकके धड़ जिधर तिधर लुढ़क रहे थे, वह मानो जगत्के नाशकी सूचना देरहे हों, ऐसे प्रतीत होते थे ॥ २९ ॥ वह युद्ध बहुत ही दारुण होगया तब अनेकों रथी जिधर तिधर दौड़ते हुए दीखने लगे ॥ ३० ॥ और भीष्म, द्रोण, सिन्धु देशका राजा जयद्रथ, पुरुमित्र, जय, भोज, शल्य और शकुनि आदि रणमें दुर्धर्ष तथा सिंहका समान पराक्रमी योधा वारवार पाण्डवोंकी सेनामें भागड़ डालने लगे ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार भीमसेन, राक्षस घटोत्कच, सात्यकी, चेकितान तथा द्रौपदीके पुत्र जैसे दानवोंसे देवता न भागते हैं तैसे ही सब राजाओं सहित तुम्हारे पुत्रोंको रणमेंसे भगाने लगे ॥३२॥३४॥ इसप्रकार आपसमें मारकाट करते हुए और रुधिरसे रंगेहुए वह श्रेष्ठ क्षत्रिय दानवोंकी समान भयङ्कर

योन्यं निघ्नंतः क्षत्रियर्षभाः । रक्तोक्षिता घोररूपा विरेजुर्दानवा इव ॥ ३५ ॥ विनिर्जित्य रिपून् वीरः सेनयोरुभयोरपि । व्यदृश्यंत महामात्रा ग्रहा इव नभस्तले ॥ ३६ ॥ ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव । अभ्ययात् पांडवं युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम् ३७ तथैव पांडवाः सर्वे महत्या सेनया सह । द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ प्रत्युद्ययुररिंदमौ ॥ ३८ ॥ किरीटी च ययौ क्रुद्धः समंतात्पार्थिवोत्तमान् । आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं बलम् ॥ ३९ ॥ ततः प्रववृते भूयः संग्रामो लोमहर्षणः । तावकानां परेषां च समरे विजयैषिणाम् ॥ ४० ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे संकुलयुद्धे सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सञ्जय उवाच । ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धा फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे। रथैरनेकसाहस्रैः समंतात् पर्यवारयन् ॥ १ ॥ अथैनं रथवृंदेन

दीखते थे ॥ ३५ ॥ और दोनों सेनाओंके अपने शत्रुओंका तिरस्कार करके खड़े हुए वह क्षत्रिय आकाशमेंके ग्रहोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ३६ ॥ जिस समय इसप्रकार युद्ध होरहा था उस समय हजार रथ लेकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन पाण्डव और घटोत्कचके साथ युद्ध करनेके लिये उनके सामने आकर खड़ा होगया ॥ ३७ ॥ और इसीप्रकार सब पाण्डव भी बड़ीभारी सेनाको साथमें लेकर रणमें आ द्रोणाचार्य और भीष्मजीके सामने आकर खड़े होगये ॥ ३८ ॥ अत्यन्त कोपमें भराहुआ अर्जुन उत्तम राजाओंके सामने आया और उसका पुत्र अभिमन्यु तथा सात्यकी यह दोनो जने शकुनिकी सेनाके सामने आये ॥ ३९ ॥ इस समय विजयकी चाहना वाले तुम्हारे और पाण्डवोंके पुत्रोंमें जिसको देखनेसे कँपकँपी लगे ऐसा युद्ध फिर आरम्भ होगया ॥ ४० ॥ सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! क्रोधमें भरे हुए वह राजे रथ लेकर उसको चारों तरफसे घेरने लगे ॥१॥ और हे भारत !

कोष्ठकीकृत्य भारत । शरैः सुबहुसाहस्रैः समंतादभ्यवारयन् ॥२॥ शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह । प्रासान् परश्वधां-श्चैव मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३ ॥ चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गु-नस्य रथं प्रति । शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवायतिं ॥ ४ ॥ रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः । तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा वीभत्सोरतिमानुषम् ॥ ५ ॥ देवदानवगंधर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः साधु साध्विति राजेंद्र फाल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥ ६ ॥ सात्यकिश्चा-भिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ । गांधारान् समरे शूरान् जग्मतुः सहसौबलान् ॥७॥ तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम् । तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥ ८ ॥ सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयावहे । अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परं-तपः ॥ ९ ॥ तावेकरथसंयुक्तौ सौबलेयस्य वाहिनीं । व्यधमेतां

उसको रथोंसे घेरकर चारों ओरसे उसके ऊपर हजारों बाणोंकी वर्षा करने पर फैलपड़े ॥ २ ॥ क्रोधमें भरेहुए वह राजे तीखी शक्तियें, गदा, परिघ, प्रास, फरसे, मूसल आदि अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा अर्जुनके रथके ऊपर कर रहे थे ॥३॥ परन्तु जैसे असंख्यों टीड़ियोंका समूह हो ऐसी शस्त्रोंकी वर्षाको अर्जुनने सोनेसे शोभा-यमान बाणोंसे काटडाला हे राजेन्द्र! अर्जुनकी ऐसे अमानुषी युद्धचातुरीको देखकर देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प, राक्षस आदि धन्य है धन्य है ऐसा कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४–६ ॥ तथा सात्यकी और अभिमन्यु बड़ीभारी सेना लेकर कंधारी और सौबल योधाओंके साथ युद्ध करनेको आये ॥ ७ ॥ यह देखकर क्रोधमें भरेहुए सौबलोंने अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे सात्यकीके रथके तिल२ की समान टुकड़े करडाले ॥ ८ ॥ युद्ध दारुण होताजाता है, यह देखकर सात्यकी, अपने रथमेंसे तुरन्त कूदपड़ा और अभिमन्युके रथमें चढ़बैठा, एक ही रथमें बैठेहुए अभिमन्यु और सात्यकी, तदनन्यर सौबलकी सेनाका तीखे और

शितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१०॥ द्रोणभीष्मौ रथे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम् । नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कंकपत्रपरिच्छदैः ११ ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पांडवौ । मिषतां सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ १२ ॥ तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत्सुदारुणम् ॥ १३ ॥ कुर्वाणौ सुमहत्कर्म भीमसेनघटोत्कचौ। दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावप्यवारयत् ॥ १४ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम हैडिंबस्य पराक्रमम् । अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत ॥ १५ ॥ भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम् । हृद्यविध्यत्पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥१६॥ ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरपीडितः। निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥१७॥ तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः ।

सीधे बाणोंसे नाश करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ तथा द्रोणाचार्य और भीष्म संग्राममें कङ्कपक्षीके परोंवाले बाणोंकी वर्षा करके युधिष्ठिरकी सेनाका संहार करने लगे ॥ ११ ॥ यह देखकर धर्मराजका पुत्र तथा पाण्डुके माद्रीमें उत्पन्न हुए दोनों पुत्र सब योधाओंके सामने द्रोणाचार्यकी सेनाके ऊपर चढ़ गये ॥ १२ ॥ और पहिले जैसे देवता और दानवोंमें दारुण युद्ध हुआ था तैसे ही देखनेमें रोमाञ्च खड़े करनेवाला बड़ा दारुण युद्ध होनेलगा ॥ १३ ॥ दूसरी ओर भीमसेन और घटोत्कचको रणमें बड़ाभारी पराक्रम करतेहुए देखकर राजा दुर्योधन तहां आकर दोनोंको रोकता हुआ खड़ा होगया ॥ १४ ॥ इस समय सबोंको यह एक बड़ा अचरज मालूम हुआ, कि-हिडिंबाका पुत्र अपने पितासे भी अधिक पराक्रम दिखाकर युद्धमें घूम रहा था॥१५॥ अत्यन्त क्रोधमें भरेहुए भीमसेनने हँसतेर तीखा बाण छोड़कर वैरबुद्धि वाले दुर्योधनकी छातीमें प्रहार किया, भीमसेनका ऐसा घोर प्रहार होनेसे राजा दुर्योधन मूर्छा खाकर रथकी बैठकपर गिर पड़ा १६ ॥ १७ ॥ और सारथीने जब दुर्योधनको अचेत दशामें देखा तो

अपोवाह रणाद्राजंस्ततः सैन्यमभज्यत ॥ १८ ॥ ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समंततः । निघ्नन् भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः ॥ १९ ॥ पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः । द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गांगेयस्य च पश्यतः ॥ २० ॥ जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविनाशनैः । द्रवमाणं तु तत्सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे ॥ २१ ॥ नाशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ । वार्यमाणश्च भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २२ ॥ विद्रवत्येव तत् सैन्यं पश्यता द्रोणभीष्मयोः । ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः ॥ २३ ॥ तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ । सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः ॥ २४ ॥ शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ । अमावास्यां गतौ यद्वत् सोमसूर्यौ नभस्तले ॥ २५ ॥ अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तव सैन्यं विशाम्पते । ववर्ष शर-

---

वह अपने रथको रणभूमिमेंसे दौड़ाकर बाहर लेगया, इससे सेना में भागड़ पड़गयी ॥ १८ ॥ कौरवसेनाको भागती हुई देखकर भीमसेन तीखे बाण मारता हुआ उसके पीछे पड़गया ॥ १९ ॥ और रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न तथा युधिष्ठिर, द्रोणाचार्य और भीष्मके सामने शत्रुसेनाका नाश करने वाले अनेकों तीखे बाणों से उनकी सेनाका नाश करनेपर टूट पड़े, हे भारत ! संग्राममें भागती हुई यह तुम्हारे पुत्रोंकी सेना महारथी द्रोणाचार्यजीके रोके रुकने वाली नहीं थी ॥२०॥२२॥ भीष्म और द्रोण जैसे२ तुम्हारी सेनाको रोकते थे तैसे२ वह उनके देखते हुए भागती ही चली जाती थी, हे भारत ! जब इसप्रकार हजारों रथ संग्राममेंसे भाग रहे थे उस समय एक ही रथमें बैठेहुए अभिमन्यु और शिनिवंश में श्रेष्ठ सात्यकी सौबलकी सेनाका नाश कररहे थे ॥२३॥२४॥ और एक ही रथपर बैठे हुए अभिमन्यु तथा सात्यकी अमावस्याके दिन आकाशमें एक साथ हुए सूर्य और चन्द्रमाकी समान शोभा पारहे थे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर परमकोप

वर्षेण धाराभिरिव तोयदः ॥ २६ ॥ वध्यमानं ततस्तत्र शरैः पार्थस्य संयुगे । दुद्राव कौरवं सैन्यं विषादभयकम्पितम् ॥ २७ ॥ द्रवतस्तान् समालक्ष्य भीष्मद्रोणौ महारथौ । न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ ॥ २८ ॥ ततो दुर्योधनो राजा समाश्वास्य विशांपते । न्यवर्तयत तत् सैन्यं द्रवमाणं समन्ततः ॥ २९ ॥ यत्र यत्र सुतस्तुभ्यं यं यं पश्यति भारत । तत्र तत्र न्यवर्त्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः ॥ ३० ॥ तान्निवृत्तान् समीक्ष्यैव ततोऽन्येपीतरे जनाः । अन्योऽन्यस्पर्धया राजन् लज्जया चावतस्थिरे ॥ ३१ ॥ पुनरावर्त्ततां तेषां वेग आसीद् विशाम्पते । पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति ॥ ३२ ॥ सन्निवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः । अब्रवीत् त्वरितो गत्वा भीष्मं शांतनवं वचः ॥ ३३ ॥ पितामह

में भराहुआ अर्जुन तुम्हारी सेनाके ऊपर मेघकी समान बाणों की वर्षा करनेलगा ॥ २६ ॥ अर्जुनके बाणोंसे घायल होतीहुई कौरवोंकी सेना विषाद और भयसे काँपतीहुई जिधर तिधरको भागरही थी, तब सेनाको इसप्रकार भागते हुए देखकर क्रोधमें भरेहुए दुर्योधनके हितैषी भीष्म और द्रोणाचार्य उसको अलग२ रोकने लगे २७-२८ हे राजन् ! जब राजा दुर्योधनको चेत आया तब उसने उठकर अपनी भागती हुई सेनाको पीछेको लौटाया २९ और जहां२ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन दीखता था तहां२ जो महारथी क्षत्रिय योधा भाग रहे थे वह खड़े होगये और रणभूमिमेंको लौटकर आने लगे ॥ ३० ॥ इन योधाओंको पीछेको लौटते देखकर दूसरे भी कितने ही योधा लज्जाके मारे तथा आपसके डाहसे रणमें खड़े होगये ॥ ३१ ॥ हेराजन् ! इस प्रकार पीछेको लौटती हुई सेनाका वेग, चन्द्रमाके उदयके समय बढ़ते हुए समुद्रके वेगकी समान था ॥ ३२ ॥ सब सेनाके मनुष्योंको पीछेको लौटे हुए देखकर राजा दुर्योधन दौड़ा२ भीष्मजीके पास जाकर इस प्रकार कहने लगा, कि-॥ ३३ ॥ हे पितामह !

निबोधदं यत्त्वां वक्ष्यामि भारत । नानुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव ॥३४॥ द्रोणे चास्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने । कृपे चैव महेष्वासे द्रवते यद्व वरूथिनी ॥ ३५ ॥ न पाण्डवान् प्रतिबलां-स्तव मन्ये कथञ्चन ।। तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ ३६ ॥ अनुग्राह्याः पाण्डुसुतास्तव नूनं पितामह । यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम् ॥ ३७ ॥ सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन् पूर्वमेव समागमे । न योत्स्ये पांडवान् संख्ये नापि पार्षत-सात्यकी ॥ ३८ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च । कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि ॥ ३९ ॥ यदि नाहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे । विक्रमेणानुरूपेण युध्येतां पुरुष-र्षभौ ॥ ४० ॥ एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन् वै मुहुर्मुहुः ।

मेरी बात सुनो, जब तक आप, अस्त्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ द्रोणा-चार्य, उनका पुत्र तथा मित्रमण्डली और महा-धनुषधारी कृपा-चार्य जीवित हैं तबतक हमारी सेनाका यों भागना आपको जरा भी गौरव देने वाला नहीं है।॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे भारत ! मेरी समझमें पाण्डव तुम्हारे, द्रोणाचार्यके, अश्वत्थामा अथवा कृपा-चार्यके सामने संग्राममें खड़े रहकर युद्ध नहीं कर सकते, परन्तु हे पितामह ! मेरी समझमें आप पाण्डवोंकी ओरको कृपादृष्टिसे देखते हैं, क्योंकि-आपके देखते हुए यह मेरी सेनाका नाश होरहा है तो भी आप कुछ नहीं करते, ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! यदि यह बात थी तो आपको मुझसे पहिले ही कहदेना था, कि-मैं पाण्डव, धृष्टद्युम्न और सात्यकीके साथ नहीं लडूँगा, आप यह बात मुझसे पहिले ही कहदेते तो आपकी और कृपाचार्यकी बात सुनकर मुझे जो कुछ करना होतो उसका मैं उसीसमय कर्णके साथ विचार कर लेता॥३८॥३९॥ परन्तु अब युद्धके समय आप मुझे त्यागते हैं, यह आपको अनुचित मालूम होता हो तो हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपमें जितना भी बल हो उसको लगा कर युद्ध करो ॥ ४० ॥ दुर्योधनकी इस बातको सुनकर

अब्रवीत् तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी॥४१॥ बहुशोऽसि मया राजंस्तथ्यमुक्तो हितं वचः। अजेयाः पांडवा युद्धे देवैरपि सवासवैः॥४२॥ यत्तु शक्यं मया कर्त्तुं वृद्धेनाद्य नृपोत्तम। करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबांधवः॥ ४३ ॥ अद्य पाण्डुसुतानेकः ससैन्यान् सह बन्धुभिः। सोऽहं निवारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ४४ ॥ एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर। दध्मुः शंखान् मुदा युक्ता भेरीः संजघ्निरे भृशम् ॥ ४५ ॥ पांडवा हि ततो राजन् श्रुत्वा तं निनदं महत्। दध्मुः शंखांश्च भेरीश्च मुरजांश्चाप्यनादयन्॥ ४६ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे भीष्मदुर्योधनसम्वादेऽष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

धृतराष्ट्र उवाच। प्रतिज्ञाते ततस्तस्मिन् युद्धे भीष्मेण दारुणे। क्रोधितो मम पुत्रेण दुःखितेन विशेषतः॥ १ ॥ भीष्मः किमक-

---

वारंवार मूंछोंमें मुसकराते हुए भीष्मपितामह जरा आंख फेरकर तुम्हारे पुत्रसे कहने लगे, कि—हे राजा दुर्योधन! मैंने तुझसे अनेकों वार हितकी सत्य बात कही है, कि—इन्द्र सहित देवता आवें तो भी रणमें पाण्डवोंको जीतना कठिन है॥ ४१॥ ४२॥ हे राजसत्तम! मुझसरीखे बूढ़े मनुष्यसे जो कुछ होसकता है वह मैं शक्तिके अनुसार करके दिखाता हूं उसको बान्धवों सहित तू देख ॥ ४३ ॥ आज सब लोकोंके सामने मैं अकेला ही सब पाण्डवोंको उनके बन्धुजन और सेनासहित पीछेको हटादूँगा ॥ ४४ ॥ हे धृतराष्ट्र! जब भीष्म पितामहने इसप्रकार कहा, तब प्रसन्न हुए आपके सब पुत्र जोरसे शङ्ख तथा भेरियोंका शब्द करने लगे ॥ ४५ ॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्रोंकी इस बड़ी भारी शङ्खध्वनिको सुनकर पाण्डव भी शङ्ख, भेरी तथा मुरज बजाने लगे ॥ ४६ ॥ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय! जब अत्यंत दुःखित हुए

येऽत्तत्र पाण्डवेयेषु भारत । पितामहे वा पञ्चालास्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय॥२॥सञ्जय उवाच । गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत। पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते चापि दिवाकरे ॥ ३ ॥ जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु । सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ४ अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम् । महत्या सेनया गुप्त-स्तव पुत्रैश्च सर्वशः ॥ ५ ॥ प्रावर्त्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् अस्माकं पाण्डवैः सार्धमनयात्तव भारत ॥ ६ ॥ धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाभिहन्यताम् । महान् समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम् ॥७॥ तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्येनं निवर्त्तस्व स्थिरो भव स्थिरोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दो श्रूयति सर्वशः ॥ ८ ॥ काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च । शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूद्

मेरे पुत्रोंने भीष्म पितामहको उकसाकर तयार किया, तब उन्होंने पाण्डवोंके साथ किसप्रकार युद्ध किया ? तथा पाञ्चालोंने पिता-महके साथ किसप्रकार युद्ध किया ? यह मुझसे कहो ॥ १॥ २॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि—हे भारत ! दिनका पहिला भाग बहुत अच्छा वीत गया था, सूर्य विश्रामके लिये जिस समय पश्चिम दिशाकी ओरको उतर रहे थे, और पाण्डव जय पानेसे बड़ा हर्ष मना रहे थे,उस समय तुम्हारे पितामह भीष्मजीने, तुम्हारे पुत्रोंने बड़ीभारी सेनासे रक्षित करके जिसमें बड़े वेगवाले घोड़े जुतवाये थे उस रथमें वैठकर पाण्डवोंकी सेनाके ऊपर चढ़ाई की ।३-५। तुम्हारी अनीतिके कारणसे तुम्हारा और पाण्डवोंका कम्पायमान करनेवाला दारुण युद्ध होने लगो, तहां टङ्कार करते हुए धनुषों का और चमड़ेके मोजोंमें धनुषका डोरी पड़नेका फटते हुए पहाड़ोंके सा शब्द होने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ खड़ा रह, मैं यह खड़ा हूं, मुझे पहिचान, पीछेको लौट, खड़ा रह, यह खड़ा हूं, घावकर ऐसे शब्द रणमें जहां तहां सुनाई आरहे थे ॥ ८ ॥ सोनेके कवच, मुकुट, ध्वजा आदिके पथरीली भूमिमें

ध्वनिः ॥९॥ पतितान्युत्तमाङ्गानि बाहवश्च विभूषिताः । व्यचेष्टन्त मही प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥ हतोत्तमाङ्गाः केचित्तु तथैवोद्यतकार्मुकाः । प्रगृहीतायुधाश्चापि तस्थुः पुरुषसत्तमाः ११ प्रावर्त्तत महावेगा नदी रुधिरवाहिनी । मातङ्गाङ्गशिलारौद्रा मांस-शोणितकर्दमा ॥ १२ ॥ वराश्वनरनागानां शरीरप्रभवा तदा । परलोकार्णवमुखी गृध्रगोमायुमोदिनी ॥१३॥ न दृष्टं न श्रुतं वापि युद्धमेतादृशं नृप । यथा तव सुतानाञ्च पांडवानां च भारत ॥१४॥ नासीद्रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः । गजैश्च पतितैर्नीलैर्गिरि-शृङ्गैरिवावृतः ॥१५॥ विकीर्णैः कवचैश्चित्रैः शिरस्त्राणैश्च मारिष ।

गिरती हुई शिलाओंकेसे शब्द होने लगे ॥ ९ ॥ कटकर पृथिवी पर पड़े हुए शिर तथा आभूषणोंसे युक्त हजारों हाथ जहां तहां तड़फने लगे ॥ १० ॥ मस्तक कटजानेसे शेष रहे हुए धड़ हाथोंमें खेंचेहुए धनुष और आयुधोंको लेकर रणमें जिधर तिधर दौड़ने लगे ११ मांस और रुधिरकी कीच वाली तथा भीतर तैरते हुए हाथीरूप भयानक शिला वालीं रुधिरकी बड़ीर नदियें बड़े वेगसे बहने लगीं ॥ १२ ॥ सुन्दर घोड़े, योधा और हाथियोंके शरीरोंमेंसे बहतेहुए रुधिरकी यह नदी परलोक रूपी समुद्रकी ओरको बड़े वेगसे बहने लगी और गिद्ध गीदड़ आदि मांसाहारी जीव उसको देखकर आनन्द पाने लगे ॥ १३ ॥ हे भारत ! तुम्हारे पुत्र और पाण्डवोंमें हुए इस युद्धकी समान दूसरा युद्ध न देखनेमें आया है और न सुननेमें ही आया है ॥ १४ ॥ जिनको योधाओंने रणमें मार डाला था ऐसे योधा और हाथियोंके पड़े हुए शरीरोंसे,रणभूमिका मार्ग पहाड़के काले काले शिखरोंसे जैसे छागया हो तैसे छाजानेके कारण रणमें रथ हांकनेको भी मार्ग नहीं रहा था ॥ १५ ॥ तथा हे राजन् ! चित्र विचित्र कवच और मुकुटोंसे भरीहुई वह रणभूमि तारागणों

शुशुभे तद्रणस्थानं शरदीव नभस्तलम् ॥ १६ ॥ विनिर्भिन्नाः शरैः केचिदन्त्रापीडप्रकर्षिणः । अभीताः समरे शत्रूनभ्यधावन्त दर्पिताः ॥ १७ ॥ तात भ्रातः सखे बन्धो वयस्य मम मातुल । मा मां परित्यजेत्यन्ये चुक्रुशुः पतिता रणे ॥ १८ ॥ अथान्ये हि त्वमागच्छ किं भीतोऽसि क्व यास्यसि । स्थितोऽहं समरे माभैरिति चान्ये विचुक्रुशुः ॥ १९ ॥ तत्र भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः । मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ २० ॥ शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः । जघान पाण्डवरथानादिश्य भरतर्षभ ॥ २१ ॥ स नृत्यन्वै रथोपस्थे दर्शयन् पाणिलाघवम् । अलातचक्रवद्राजंस्तत्र तत्र स्म दृश्यते ॥ २२ ॥ तमेकं समरे शूरं पाण्डवाः सृञ्जयैः सह । अनेकशतसाहस्रं समपश्यन्त

से आये हुए शरद् ऋतु के आकाशकी समान शोभा पारही थी ॥ १६ ॥ बाण लगनेसे बहुत ही घायल होजाने पर भी कितने ही घमण्डी योधा जरा भी भयभीत न होकर दांतोंको कचकचा कर बड़े वेगके साथ रणमें अपने शत्रुओंके ऊपरको दौड़ते थे ॥ १७ ॥ रणभूमिमें पड़े हुए कितने ही योधा हे तात ! हे भ्राता हे मित्र ! हे मामा ! मुझे छोड़कर न जाओ, इस प्रकार पुकार रहे थे ॥१८॥ और इधर आ, तू आ, क्यों डरता है ?, कहां भागता है ? मैं यह खड़ा हूं, तू संग्राममें डरै मत, इसप्रकार कितने ही योधा पुकार मचारहे थे ॥ १९ ॥ इस समय शन्तनुनन्दन भीष्म जी; अपने धनुषको पूर्णरीति खेंचकर विषधर सांपकी समान अग्रभागमें बलते हुए बाणोंको बरसाने लगे॥२०॥हे भरतसत्तम ! बाणोंसे सब दिशाओंको भरदेने वाले तुम्हारे व्रतधारी भीष्मपितामह पाण्डवोंके रथियोंको बुलार कर मारने लगे ॥२१॥ तब हे राजन् ! अपने रथका बैठकपर नाचते हुएसे फुरतीसे घूमने वाले अपना बाण छोड़नेका हस्तलाघव दिखाते हुए भीष्म पितामह उल्मुक (बरेटी) से दीखते थे ॥ २२ ॥ रणमें बाण

लाघवात् ॥ २३ ॥ मायाकृतात्मानमिव भीष्मं तत्र स्म मेनिरे । पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः ॥ २४ ॥ उदीच्यां चैनमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो । एवं स समरे शूरो गाङ्गेयः प्रत्यदृश्यत ॥२५॥ न चैनं पाण्डवेयानां कश्चित् शक्नोति वीक्षितुम् । विशिखानेव पश्यंति भीष्मचापच्युतान् बहून् ॥ २६ ॥ कुर्वाणं समरे कर्म सूदयानञ्च वाहिनीम् । व्याक्रोशन्त रणे तत्र नरा बहुविधा बहु ॥२७ ॥ अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव । शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः ॥ २८ ॥ भीष्माग्निमभिसंक्रुद्धं विनाशाय सहस्रशः । न हि मोघः शरः कश्चिदासीद्धि भीष्मस्य संयुगे ॥२९॥ नरनागाश्वकायेषु बहुत्वाल्लघुयोधिनः । भिनत्त्येकेन बाणेन सुमुखेन पतत्रिणा ॥ ३० ॥ गजकण्टकसन्नद्धं

छोड़नेकी शीघ्रताके कारणसे अकेले ही शूर भीष्मजी सञ्जय और पाण्डवोंको सैंकड़ों सहस्रोंसे दीखे ॥ २३ ॥ उस समय लोगोंने भीष्मजीको मायासे अनेकों रूप धारनेवाला माना, क्योंकि—उनको पूर्व दिशामें देखकर दृष्टि फेरते ही पश्चिम दिशा में भी देखते थे ॥२४॥ और हे प्रभो ! वह क्षणमें उत्तरमें दीखते थे, तो क्षणमें दक्षिणमें दीखते थे, इस प्रकार भीष्मजी रणमें सब जगह दीखते थे ॥ २५ ॥ जहां तहां भीष्मजीके धनुषमेंसे छूटे हुए बहुत से बाण ही दीखते थे, पाण्डवोंके बाण तो किसीको दीख ही नहीं सकते थे ॥ २६ ॥ रणमें अत्यन्त पराक्रम करते हुए तथा पांडवोंकी सेनाका संहार करते हुए भीष्मजीको देखकर अनेकों पुरुष बड़ाभारी हाहाकार करने लगे ॥ २७ ॥ प्रारब्धके भेजे हुए अनेकों राजे अग्निमें गिरे हुए पतंगोंकी समान रणमें अमानुष रूपसे विचरने वाले तुम्हारे पितामहके सामने आपड़ते थे, युद्ध करनेकी अति चपलताके कारण तुम्हारे पिता भीष्मजीका मनुष्योंके, हाथियोंके अथवा घोड़ोंके ऊपर छोड़ा हुआ सुन्दर मुखवाला एक भी बाण खाली नहीं जाता था

वज्रेणेव शिलोच्चयम् । द्वौ त्रीनपि गजारोहान् पिण्डितान् वर्मितानपि । नाराचेन सुमुक्तेन निजघान पिता तव ॥ ३१ ॥ यो यो भीष्मं नरव्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन । मुहूर्त्तदृष्टः स मया पतितो युधि दृश्यते ॥३२॥ एवं सा धर्मराजस्य वध्यमाना महाचमूः भीष्मेणातुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा ॥३३॥ प्राकंपत महासेना शरवर्षेण तापिता । पश्यतो वासुदेवस्य पार्थस्याथ शिखण्डिनः ॥ ३४ ॥ यतमानापि ते वीरा द्रवमाणान् महारथान् । नाशक्नुवन् वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ॥ ३५ ॥ महेंद्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः । अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ॥३६॥ आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूवरम् । अनीकं पांडुपुत्राणां हाहा

॥ २८-३० ॥ जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको तोड़ डालता है तैसे ही वह एक ही बाणसे हाथियोंके अंगको वींध डालते थे, दो तीन वा अधिक कवचधारी हाथीको वह एकही बाणके सपाटे से वींध डालते थे, जो जो योधा तुम्हारे पिता नरव्याघ्र भीष्म जीके सामने रणमें आकर खड़े होते थे वह सब एक मुहूर्त्तमें ही पृथिवीके ऊपर पड़े हुए देखनेमें आते थे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस प्रकार अतुल पराक्रमी भीष्मजीके हाथसे नष्ट होती हुई धर्मराजकी बड़ीभारी सेना चारों दिशाओंमेंको भागनेलगी और अर्जुन, श्रीकृष्ण तथा शिखण्डीके सामने भीष्मजीके बाणोंकी वर्षासे सन्ताप पाई हुई पाण्डवोंकी सेना अत्यन्त कांपने लगी, पीछेको लौटानेके अनेकों उद्योग करने परभी भीष्मजीके बाणों से पीड़ित हुए महारथियोंको वह वीर पुरुष पीछेको नहीं लौटा सके ॥ ३३-३५ ॥ हे महाराज ! इन्द्रकी समान पराक्रमी भीष्म जीके हाथसे नष्ट होती हुई उस सेनामें ऐसी बड़ी भागड़ पड़ी, कि-दो योधा भी साथ २ नहीं भाग सके ॥ ३६ ॥ तहां देखा गया, कि-मनुष्य, हाथी और घोड़ोंका संहार होगया, रथके कूवड़ और ध्वजायें टूटगई, पाण्डवोंकी सेना अचेत होगई और

भूतमचेतनम् ॥ ३७ ॥ जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा । प्रियं सखायं चाक्रंदे सखा दैवबलात्कृतः ॥३८॥ विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः । विमुक्तकेशा धावंतः प्रत्यदृश्यंत भारत ॥ ३९ ॥ तद् गोकुलमिवोद्भ्रांतमुद्भ्रांतरथयूथपम् । ददृशे पांडुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ॥४०॥ प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः । उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ अयं स कालः संप्राप्तः पार्थ यस्तेऽभिकांक्षितः ॥ ४२ ॥ प्रहरस्व नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे । यत्त्वया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे ॥ ४३ ॥ भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् । सानुबंधान् हनिष्यामि ये मां योत्स्यंति संयुगे ॥ ४४ ॥ इति तत्कुरु कौंतेय सत्यं वाक्यमरिंदम । बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्य-

---

जहां तहां हाय २ होने लगी ॥ ३७ ॥ इस युद्धमें पिताने पुत्रको मार डाला और पुत्रने पिताको मार डाला तथा दैवके बलात्कार से प्रेरणा किये हुए मित्रने मित्रको मार दिया ॥ ३८ ॥ हे भारत ! पाण्डवोंके योधा अपने कवचोंको उतार कर खुले बालों रणमेंसे भागते हुए दीखते थे ॥३९॥ व्याकुलताके साथ हाय २ करके भागते हुए रथियोंके अधिपतियोंके कारणसे तथा सैनिकोंके कारण पाण्डवोंका सेना भड़क कर भागते हुए गौओं के झुण्डकी समान प्रतीत होती थी ॥ ४० ॥ पांडवोंकी सेना को इसप्रकार बिखरी हुई देखकर श्रीकृष्ण श्रेष्ठ रथको रोककर अर्जुनसे कहने लगे, कि-॥ ४१ ॥ हे पार्थ ! तू जिस समयको चाहता था वह अब आपहुंचा है ॥ ४२ ॥ हे नरव्याघ्र ! प्रहार कर, नहीं तो मोह आकर दबा लेगा, हे वीर ! पहिले तूने राजाओंके सामने कहा था, कि-॥ ४३ ॥ भीष्म द्रोण आदि योधाओं सहित धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे जो कोई भी मेरे साथ लड़ने को आवेंगे उन सबोंको मैं मार डालूँगा ॥ ४४ ॥ हे शत्रुदमन अर्जुन ! उस बातको आज तू सत्य करके दिखा, हे सखे !

मानं ततस्ततः ॥ ४५ ॥ इतश्चेतश्च महीपालान्पश्य यौधिष्ठिरे बले । दृष्ट्वा हि भीष्मं समरे व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ४६ ॥ भयार्ताः संपलायंते सिंहात् क्षुद्रमृगा इव । एवमुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनंजयः ॥ ४७ ॥ नोदयाश्वान् यतो भीष्मो विगाह्यैतद्बलार्णवम् । पातयिष्यामि दुर्धर्षं वृद्धं कुरुपितामहम् ॥ ४८ ॥ सञ्जय उवाच । ततोऽश्वान् रजतप्रख्यान्नोदयामास माधवः।यतो भीष्मरथो राजन् दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ॥ ४९ ॥ ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् । दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ॥ ५० ॥ ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः । धनंजयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५१ ॥ क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः । शरवर्षेण महता संछन्नो न प्रकाशते ॥ ५२ ॥ वासुदेवस्त्वसंभ्रांतो

इधर उधरको भागती हुई अपनी सेनाको तो देख ॥ ४५ ॥ मुख फैला कर खड़े हुए कालकी समान भीष्मजीको देखकर युधिष्ठिरकी सेनामेंसे राजे भागे जाते हैं इनको भी देख ॥ ४६ ॥ जैसे छोटे २ पशु सिंहसे घबड़ा कर भागने लगते हैं तैसे ही तुम्हारे योधा भाग रहे हैं, श्रीकृष्णके ऐसा कहने पर अर्जुनने उत्तर दिया. कि-॥ ४७ ॥ जिधर भीष्मजी हैं उधर को मेरे घोड़े हांक दीजिये, तथा शत्रुसेनारूप समुद्रमें घुस चलिये, हे तेजस्विन्! मैं आज बूढ़े कुरुपितामहको मारकर गिराऊंगा ॥ ४८ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! तदनन्तर सूर्यकी समान कठिनसे देखने योग्य भीष्मजीका रथ जहां था उधरको माधवने रुपहली रङ्गके घोड़ों को हांक दिया ॥४९॥ और महाबाहु धनञ्जयको, भीष्मजीके साथ युद्ध करनेके लिये जाते हुए देखकर युधिष्ठिरकी बड़ी भारी सेना भी पीछेको लौटी ॥ ५० ॥ हे राजन् ! सिंह की समान दहाड़ते हुए पितामहने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनके रथ को भी ढक दिया ॥ ५१ ॥ और क्षणभरमें वह घोड़े तथा सारथी सहित रथ बाणोंसे ढकजानेके कारण जरा भी नहीं दीखा ॥५२॥

धैर्यमास्थाय सत्त्ववान् । चोदयामास तानश्वान् विचितान् भीष्मसायकैः ॥ ५३ ॥ ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् । पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा त्रिभिः शरैः ॥ ५४ ॥ छिन्नधन्वा स कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः । निमिषांतरमात्रेण सज्जं चक्रे पिता तव ॥ ५५ ॥ विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् । अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ॥ ५६ ॥ तस्य तत्पूजयामास लाघवं शन्तनोः सुतः । साधु पार्थ महाबाहो साधु भो पाण्डुनन्दन ॥ ५७ ॥ त्वय्येवैतद्युक्तरूपं महत्कर्म धनंजय । प्रीतोऽस्मि सुभृशं पुत्र कुरु युद्धं मया सह ॥५८॥ इति पार्थं प्रशस्याथ प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः । मुमोच समरे वीरः शरान् पार्थरथं प्रति ५९ अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् । मोघान् कुर्वन् शरांस्तस्य

परन्तु श्रीकृष्ण जरा भी घबड़ाये बिना धीरज धरकर उस समय भीष्मजीके बाणोंसे घिरे हुए घोड़ोंको बराबर२ आगेको बढाये ही चले गये ॥ ५३ ॥ तब अर्जुनने मेघकी समान गरजते हुए धनुषको हाथमें ले तीन बाणोंसे भीष्मजीके धनुषको काटकर भूमिपर गिरा दिया ॥ ५४ ॥ अपने धनुषके कट जाने पर तुम्हारे पिताने पलभरमें और एक बड़ाभारी धनुष तयार कर लिया ५५ मेघकी समान गड़गड़ाहट करता हुआ यह धनुष भीष्मजीने दोनों हाथोंसे ज्योंही खैंचा, कि-अर्जुनने कोपमें भरकर उसको भी काट डाला ॥५६॥ शन्तनुनन्दनने अर्जुनके हाथकी इस शीघ्रता का धन्यवाद देते हुए कहा, हे महाबाहु कुन्तीनन्दन साधु ! हे पाण्डुकुमार साधु ! ॥ ५७ ॥ हे धनञ्जय ! ऐसा बड़ाभारी पराक्रम तेरे योग्य ही है, हे बेटा ! मैं तेरे ऊपर बड़ा प्रसन्न हुआ हूं, आ मेरे साथ युद्ध कर ॥ ५८ ॥ इसप्रकार अर्जुनको धन्यवाद देकर वीर भीष्मजीने और एक बड़ाभारी धनुष हाथमें लिया और रणमें अर्जुनके रथके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ ५९ ॥ अनेकों प्रकारके मण्डल आदिमें घोड़ोंको चला कर श्रीकृष्णने उन

मण्डलान्याचरल्लघु: ॥ ६० ॥ ततस्तु भीष्मःसुदृढं वासुदेवधनञ्जयौ । विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु भारत ॥ ६१ ॥ शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ । गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ६२ ॥ पुनश्चापि सुसंक्रुद्धः शरैः शतसहस्रशः । कृष्णयोर्युधि संरब्धो भीष्म आवारयद्दिशः ॥ ६३ ॥ वार्ष्णेयश्च शरैस्तीक्ष्णैः कम्पयामास रोषितः । मुहुरभ्युत्स्मयन् भीष्मः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ ६४ ॥ ततः कृष्णस्तु समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम् । सम्प्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ॥ ६५ ॥ तं भीष्मं शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि । प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ॥ ६६ ॥ वरान् वरान् विनिघ्नतं पांडुपुत्रस्य सैनिकान् । युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ॥ ६७ ॥ अमृष्यमाणो भगवान् केशवः परवीरहा । अचिंतयद-

---

के सब बाणोंको निष्फल कर दिया और अपनी सारथीपनेकी चातुरी दिखायी ॥ ६० ॥ हे भारत ! फिर भीष्मजीने बाण छोड़ कर श्रीकृष्ण और धनञ्जयके शरीरके सब अङ्गोंको तीक्ष्ण बाण मार कर बड़ा ही घायल कर दिया ॥ ६१ ॥ भीष्मजीके बाणोंसे घायल हुए वह नरव्याघ्र सींगोंसे घायल दो बैलोंकी समान दीखते थे ॥ ६२ ॥ फिर अति क्रोधके आवेश में आकर भीष्मजीने कृष्ण और अर्जुनको हजारों बाण मारकर चारों दिशाओंमें घेरलिया ॥ ६३ ॥ और कोपमें भरेहुए भीष्म जी तेज बाण छोड़कर यदुवंशी कृष्णको कम्पायमान करते थे और बारंबार खिलखिलाके हँसकर उनको खिजाते थे ॥६४॥ इसप्रकार संग्राममें भीष्मजीके अद्भुत पराक्रमको, रणमें अर्जुनके कोमलताभरे युद्धको तथा सेनामें आकर सूर्यकी समान तपते हुए और बाणोंकी वर्षा करते हुए भीष्मजीको प्रलयकालकी समान युधिष्ठिरकी सेनामेंके श्रेष्ठ २ वीरोंका संहार करते हुए देखकर, शत्रुओंके वीरोंका संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण उसको

मेयात्मा नास्ति यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ६८ ॥ एकाह्ना हि रणे भीष्मो नाशयेद्देवदानवान् । किन्तु पांडुसुतान् युद्धे सबलान् सपदानुगान् ॥ ६९ ॥ द्रवते च महासैन्यं पांडवस्य महात्मनः । एते च कौरवास्तूर्णं प्रभग्नान्वीक्ष्य सोमकान् ॥ ७० ॥ आद्रवन्ति रणे हृष्टा हर्षयन्तः पितामहम् । सोऽहं भीष्मं निहन्म्यद्य पांडवार्थाय दंशितः ॥ ७१ ॥ भारमेतं विनेष्यामि पांडवानां महात्मनाम् । अर्जुनो हि शरैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानोपि संयुगे ॥ ७२ ॥ कर्तव्यं नाभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात् । तथा चिन्तयतस्तस्य भूय एव पितामहः । प्रेषयामास संक्रुद्धः शरान् पार्थरथं प्रति ॥ ७३ ॥ तेषां बहुत्वात्तु भृशं शराणां दिशश्च सर्वाः पिहिता बभूवुः । न चान्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न भास्करोऽदृश्यत

सह न सके और मनमें विचारने लगे, कि–अब युधिष्ठिरकी सेना बचती नहीं मालूम होती ॥ ६५–६८ ॥ भीष्मजी स्वयं अकेले एक ही दिनमें देवता और दानवोंका नाश करसकते हैं तो फिर सेना और अपना पक्ष लेने वालोंके साथ युद्धमें आये हुए पांडव उनके सामने हैं ही क्या ? ॥ ६९ ॥ महात्मा पाण्डवोंकी बड़ी भारी सेना फिर भागने लगी है और सोमकोंका भागते हुए देख कौरव आनन्दमें भरे हुए पितामहके पासको दौड़े चले जारहे हैं, सो आज मैं पाण्डवोंका हित करनेके लिये दंश रखकर भीष्मजी का वध करूँगा ॥ ७० ॥ ७१ ॥ भीष्मजीको मारकर मैं महात्मा पाण्डवोंके शिरका बोझा हलका करूँगा, भीष्मजीके ऊपर परममान्य दृष्टि होनेके कारण अर्जुन तीखे बाणोंसे बिंधजाने पर भी मेरा क्या कर्त्तव्य है, इस बातको जरा नहीं समझता है, श्रीकृष्ण इसप्रकार विचार कर रहे थे, कि–इतनेमें ही भीष्मजी अर्जुनके रथ पर फिर बाण छोड़ने लगे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ भीष्मजीके इन बेगिनती बाणोंसे सब दिशायें ढकगयीं और अन्तरिक्ष, भूमि,

रश्मिमाली ॥ ७४ ॥ ववुश्च वातास्तुमुलाः सधूमा दिशश्च सर्वाः क्षुभिता बभूवुः । द्रोणो विकर्णोऽथ जयद्रथश्च भूरिश्रवाः कृतवर्मा कृपश्च ॥ ७५ ॥ श्रुतायुरंबष्ठपतिश्च राजा विन्दानुविन्दौ च सुदक्षिणश्च । प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे वसातयः क्षुद्रकमालवाश्च ॥ ७६ ॥ किरीटिनं त्वरमाणा विसस्रुर्न्निदेशगाः शान्तनवस्य राज्ञः । तं वाजिपादातरथौघजालैरनेकसाहस्रशतैर्ददर्श ॥ ७७ ॥ किरीटिनं संपरिवार्यमाणं शिनेर्नप्ता वारणयूथपैश्च । ततस्तु दृष्ट्वार्जुनवासुदेवौ पदातिनागाश्वरथैः समंतात् ॥ ७८ ॥ अभिद्रुतौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ शिनिप्रवीरोऽभिससार तूर्णम् । स तान्यनीकानि महाधनुष्मान् शिनिप्रवीरः सहसाभिपत्य ॥ ७९ ॥ चकार साहाय्यमथार्जुनस्य विष्णुर्यथा वृत्रनिषूदनस्य । विशीर्णनागाश्वरथध्वजौघं भीष्मेण वित्रासितसर्वयोधम् ॥ ८० ॥ युधिष्ठिरानीकमभिद्रवन्तं प्रोवाच संदृश्य शिनिप्रवीरः । क्व क्षत्रियाः

दिशा, तथा सूर्य इनमेंसे कुछ भी नहीं दीखता था ॥७४॥ धुएँसे मिले हुए उग्र पवन चलने लगे, दिशायें कांपने लगीं और भीष्मजी की आज्ञासे द्रोण, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, राजा अम्बष्ठपति, विंद, अनुविन्द, सुदक्षिण सौवीरक, वसाति, शूद्रक तथा मालव आदि राजे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ धनञ्जयके ऊपरको शीघ्रतासे दौड़ आये, घोड़ेसवार, पैदल, रथियोंके समूह तथा अनेकों हाथियोंसे अर्जुन घिरगया, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार घोड़े, हाथी और रथोंसे घिरे हुए देखकर शिनिवंशी वीर सात्यकी तत्काल उस स्थान पर आपहुँचा और जैसे विष्णु इन्द्रकी सहायताको दौड़ते हैं तैसे ही उस सेनाके ऊपरको दौड़कर वह वीर बड़ाभारी धनुष लेकर अर्जुनकी सहायताको दौड़ा और भीष्मजीके भयभीत किये हुए योधा तथा भागते हुए हाथी घोड़े और रथोंवाली युधिष्ठिरकी पीछेको भागती हुई सेनाको देखकर बोला, कि–

यास्यथ नैष धर्मः सतां पुरस्तात्कथितः पुराणैः ॥ ८१ ॥ मा स्वां प्रतिज्ञां त्यजत प्रवीराः स्वं वीरधर्मम् परिपालयध्वम् । तान्वा स वानंतरजो निशाम्य नरेन्द्रमुख्यान् द्रवतः समंतात् ॥ ८२ ॥ पार्थस्य दृष्ट्वा मृदुयुद्धतां च भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम् । अमृष्यमाणः स ततो महात्मा यशस्विनं सर्वदाशार्हभर्त्ता ॥ ८३ ॥ उवाच शैनेयमभिप्रशंसन् दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान् । ये यांति तेयां तु शिनिप्रवीर येऽपि स्थिताः सात्वत तेऽपि यान्तु ॥ ८४ ॥ भीष्मं रथात् पश्य निपात्यमानं द्रोणं च संख्ये सगणं मयाद्य । न मे रथी सात्वत कौरवाणां क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित् ॥ ८५ ॥ तस्मादहं गृह्य रथांगमुग्रं प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य । निहत्य भीष्मं सगणं तथाजौ द्रोणं च शैनेय रथ-

---

हे क्षत्रियो ! तुम कहां हो ? यह कुछ पूर्व पुरुषोंका दिखाया हुआ क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, हे वीरो ! अपनी युद्धकी प्रतिज्ञाका त्याग न करके आज वीरधर्मका पालन करो, मुख्य २ राजे रणभूमिमेंसे भागेजाते थे इस बातको तथा अर्जुनकी रणमें कोमलताको और भीष्मजीके संग्राममें बढ़ते हुए पराक्रमको देखकर यह बात सब यादवोंके स्वामी श्रीकृष्णसे नहीं सही गयी, इसकारण वह शिनिवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकीकी प्रशंसा करके तथा सब कुरुओंको अपने ऊपर चढ़ाई करके आते हुए देखकर बोले, कि-हे शिनिवंशी वीर ! जो भागते हों उनको तुम भले ही भागने दो और जो खड़े हों वह भी आनन्द से भाग जायँ॥७७-८४॥ मैं अब भीष्मजीको रथमेंसे गिराऊँगा और द्रोणाचार्यको उनके साथियों सहित मारूँगा, इसको तुम देखना, जिस समय मैं क्रोधमें भरकर युद्ध करूँगा उस समय कौरवोंमें ऐसा कोई भी योधा नहीं है कि-जो मेरे सामने से भागकर बच जाय ॥ ८५ ॥ अब मैं अपने उग्र चक्रको हाथ में लेकर महाव्रती भीष्मके प्राण लूंगा, हे सात्यकी ! इसप्रकार

प्रवीरौ ॥ ८६ ॥ प्रीतिं करिष्यामि धनञ्जयस्य राज्ञश्च भीमस्य तथाश्विनोश्च । निहत्य सर्वान् धृतराष्ट्रपुत्रांस्तत्पक्षिणो ये च नरेंद्र-मुख्याः ॥ ८७ ॥ राज्येन राजानमजातशत्रुं सम्पादयिष्याम्य-हमद्य हृष्टः । ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावम् ॥८८॥ क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान् । स कम्पयन् गां चरणैर्महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम् ॥८६॥ मदांधमाजौ समुदीर्णदर्पम् सिंहो जिघांसन्निव वारणेंद्रम् । सोऽभिद्रवन्भीष्ममनीकमध्ये क्रुद्धो महेंद्रावरजप्रमाथी ॥ ६० ॥ व्यालंबिपीतान्तपटश्चकाशे घनो यथा स्वे तडितावनद्धः । सुद-र्शनं चास्य रराज शौरेस्तच्चक्रपद्मं सुभुजोरुनालम् ॥ ६१ ॥ यथादिपद्मं तरुणार्कवर्णं रराज नारायणनाभिजातम् । तत्कृष्ण-

संग्राममें भीष्मको तथा साथियों सहित द्रोणको मारकर आज मैं इन दोनों रथियोंका ॥८६॥ नाश करके अर्जुन, राजा युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेवको प्रसन्न करूंगा इसीप्रकार धृतराष्ट्रके सकल पुत्रोंका तथा उनका पक्ष करने वाले जो २ मुख्य राजे हैं उन सबोंका ही नाश करके आज मैं प्रसन्न होऊँगा और अजात-शत्रुको राज्य दिलवाऊँगा, इतना कहकर श्रीकृष्ण घोड़ोंकी लगाम छोड़कर पृथिवी पर उतर पड़े और सुन्दर दांतोंवाले, सूर्य की समान तेजस्वी, वज्रकी समान प्रभावशाली तथा छुरेकी समान तेज धारवाले अपने चक्रको हाथमें लिया और जैसे मदांध होने के कारण अति दर्पवाले हाथीको मारनेके लिये सिंह आगेको बढ़ता है तैसे ही चरणोंकी धमकसे पृथिवीको कम्पायमान करते हुए महात्मा श्रीकृष्ण भीष्मजीके ऊपरको चढ़गये, वह कोपमें भरे हुए सेनाके बीचमें जाकर खड़े होगये, भीष्मजीके ऊपरको झपटते हुए इन्द्रानुज श्रीकृष्ण अपने लटकते हुए पीताम्बर के छोरसे,ऐसे शोभायमान होरहे थे जैसे बिजली वाला मेघ आकाशमें शोभाय-मान होता है, इनका सुदर्शन चक्र भी ऐसा मालूम होता था मानो भुजारूप नालवाला सूर्य की समान कान्तिमान् विष्णुका

कोपोदयसूर्यप्रबुद्धं क्षुरान्ततीक्ष्णाग्रसुजातपत्रम् ॥ ९२ ॥ तस्यैव देहोरुसरःप्ररूढं रराज नारायणबाहुनालम् । तमात्तचक्रं प्रण-दन्तमुच्चैः क्रुद्धं महेंद्रावरजं समीक्ष्य॥९३॥ सर्वाणि भूतानि भृशं विनेदुः क्षयं कुरूणामिव चिन्तयित्वा । स वासुदेवः प्रगृहीतचक्रः सम्वर्तयिष्यन्निव सर्वलोकम् ॥ ९४ ॥ अभ्युत्पतन् लोकगुरुर्व-भासे भूतानि धक्ष्यन्निव धूमकेतुः । तमाद्रवन्तं प्रगृहीतचक्रं दृष्ट्वा देवं शांतनवस्तदानीम् ॥ ९५ ॥ असम्भ्रमं तद्विचकर्ष दोर्भ्यां महाधनुर्गाण्डिवतुल्यघोषम् । उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं गोविन्द-माजावविमूढचेताः ॥ ९६ ॥ एह्येहि देवेश जगन्निवास नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे । प्रसह्य मां पातय लोकनाथ रथोत्तमात् सर्व-

नाभिकमल है, कृष्णके कोपरूप सूर्यसे वह चक्ररूप कमल खिला हुआ दीखता था, तेज दांते ही उसके पत्ते थे ॥ ८७-९२ ॥ वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो कृष्णके शरीररूप सरोवरमेंसे उगा है और उनका दाहिना हाथ उसकी नालसा मालूम होता था, इन्द्रानुज श्रीकृष्ण जब इस प्रकार हाथमें चक्र लेकर गरज रहे थे, उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि-मानो अब कुरुओं का क्षय ही होने वाला है, इस समय सकल भूतमात्र हाहाकार करने लगे, हाथमें चक्र लेकर खड़े हुए श्रीकृष्णजी, युगके अन्त में जगत्का प्रलय करनेको तत्पर हुए सम्वर्त्तक नामक अग्निकी समान मालूम होते थे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ और वह लोकगुरु श्रीकृष्णजी भूतमात्रका नाश करनेके लिये उदय हुए धूमकेतुसे मालूम होते थे, हाथमें चक्र लेकर आते हुए श्रीकृष्णजीको देखकर भीष्मजीने जराभी भयभीत न होकर गाण्डीवकी समान शब्द करने वाले अपने धनुषको दोनों हाथोंसे खेंचा और चित्तको स्थिर रखकर अनन्त पुरुषार्थ वाले गोविंद से कहने लगे, कि-॥ ९५ ॥ ९६ ॥ हे जगन्निवास ! हे माधव ! हे चक्रपाणे ! आइये आइये, मैं आपको प्रणाम करता हूं,

शरण्य संख्ये ॥ ९७ ॥ त्वया हतस्यापि ममाद्य कृष्ण श्रेयः पर-स्मिन्निह चैव लोके । सम्भावितोऽस्म्यंधकवृष्णिनाथ लोकैस्त्रिभि-र्वीर तवाभियानात् ॥ ९८ ॥ रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान् पार्थोऽ-प्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम् । जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं बाह्वोर्हरिम् व्यायतपीनबाहुः ॥ ९९ ॥ निगृह्यमाणश्च तदादिदेवो भृशं सरोषः किल वा स योगी । आदाय वेगेन जगाम विष्णुर्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम् ॥ १०० ॥ पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ भीष्मांतिकं तूर्णमभिद्रवंतम् । बलान्निजग्राह हरिम् किरीटी पदेऽथ राजन् दशमे कथञ्चित् ॥ १०१ ॥ अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली । उवाच कोपं प्रति संहरेति गति र्भवान् केशव पांडवानां ॥ १०२ ॥ न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं

हे सबको शरण देने वाले! आप मुझे इस सर्वोत्तम रथमेंसे पृथिवी पर गिराइये, हे कृष्ण! हे माधव! इस रणमें आपके हाथसे मारे जाने पर मेरा इस लोकमें तथा परलोकमें भी कल्याण होगा, हे अन्धक तथा वृष्णियोंके नाथ! आप जो मेरे सामने आकर खड़े हुए, इससे मेरी समझमें मेरा गौरव तीनों लोकोंमें बढ़ गया ॥ ९७॥ ९८ ॥ भीष्मजीकी इस बातको सुनकर तथा श्रीकृष्णजीको आगे बढ़ते हुए देखकर अर्जुन तत्काल रथमेंसे उतर पड़ा और यदुवीर महाबाहु श्रीकृष्णजी को पकड़ लिया, परन्तु अत्यन्त क्रोधमें भरे श्रीकृष्ण, जैसे वायु वृक्षको घसीटकर ले जाता है तैसे ही अर्जुनको घसीटते हुए आगेको बढ़ने लगे ॥ ९९ ॥ १०० ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णको इस प्रकार भीष्मजीके ऊपरको झपटते हुए देखकर अर्जुनने बलात्कारसे उनके पैर पकड़ लिये और अन्तको दशवें पगपर उनको आगे बढ़नेसे रोका ॥ १०१ ॥ जब श्रीकृष्ण खड़े हुए तब सुवर्णकी चित्र विचित्र मालासे शोभायमान अर्जुनने प्रसन्न होकर कहा कि—हे कृष्ण! अपने कोपको शान्त करिये, हे केशव! आप पाण्डवोंके आश्रय हैं ॥ १०२ ॥ हे केशव! मैं आज पुत्रों

पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च । अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां त्वयाहमिन्द्रानुजसम्प्रयुक्तः ॥ १०३ ॥ ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य जनार्दनः प्रीतमना निशम्य । स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं सचक्रः पुनरारुरोह ॥ १०४ ॥ स तानभीषून्पुनराददानः प्रगृह्य शंखं द्विषतां निहंता । विनादयामास ततो दिशश्च स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥ १०५ ॥ व्याविद्धनिष्कांगदकुण्डलं तं रजोविकीर्णांचितपद्मनेत्रम् । विशुद्धदंष्ट्रं प्रगृहीतशंख विचुक्रुशुः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीराः ॥ १०६ ॥ मृदङ्गभेरीपणवप्रणादा नेमिस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च । ते सिंहनादांश्च बभूवुरुग्राः सर्वेष्वनीकेषु ततः कुरूणां ॥ १०७ ॥ गांडीवघोषः स्तनयित्नुकल्पो जगाम पार्थस्य नभो दिशश्च । जग्मुश्च बाणा विमला प्रसन्नाः सर्वा दिशः

की और सगे भाइयोंकी शपथ खाकर कहता हूं, कि मैं रणमें पीछेको पैर नहीं धरूँगा, हे इन्द्रानुज ! आज आपकी आज्ञासे मैं कौरवोंका संहार करूँगा ॥ १०३ ॥ अर्जुनकी इस प्रतिज्ञा को सुनकर श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और वह निरन्तर अर्जुन का प्रिय करनेमें तत्पर रहते थे, इस कारण अपने सुदर्शनको हाथमें ही रखकर फिर रथ हांकने लगे ॥१०४॥ शत्रुनाशी श्रीकृष्णने फिर घोड़ोंकी लगाम हाथमें ली और अपने पाञ्चजन्य नामक शङ्खके शब्दसे सब दिशाओंको गुञ्जार दिया ॥ १०५ ॥ शुद्ध सोनेके बाजूबन्द तथा कुण्डलोंको धारण करनेवाले, धूलि से अटे नेत्रकमलों वाले और जिनके शुद्ध दाँत हैं ऐसे श्रीकृष्णने जब अपना शङ्ख हाथमें लेकर बजाया उस समय कौरवोंकी सेना में हाहाकार मचगया ॥१०६॥ मृदङ्ग, भेरी, पणव और दुन्दभियों के शब्द तथा चक्रकी घरघराहट और योधाओंके सिंहनाद कौरवों की सकल सेनामें गूंज गये ॥ १०७ ॥ अर्जुनके गाण्डीव धनुष का मेघके गरजनेकी समान टङ्कार शब्द सब दिशाओंमें और

पांडवचापमुक्ताः ॥ १०८ ॥ तं कौरवाणामधिपो जवेन भीष्मेण भूरिश्रवसा च सार्द्धम् । अभ्युद्ययावुद्यतबाणपाणिः कर्त्तं दिधत्तन्निव धूमकेतुः ॥ १०९ ॥ अथार्जुनाय प्रजिघाय भल्लान् भूरिश्रवाः सप्त सुवर्णपुङ्खान् । दुर्योधनस्तोमरमुग्रवेगं शल्यो गदां शांतनवश्च शक्तिं ॥ ११० ॥ स सप्तभिः सप्तशरप्रवेकान् सम्वार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान् । शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं क्षुरेण तत्तोमर-मुन्ममाथ ॥ १११ ॥ ततः शुभामापततीं स शक्तिं विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्तां । गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः ॥ ११२ ॥ ततो भुजाभ्यां बलवद्विकृष्य चित्रं धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् । माहेंद्रमस्त्रं विधिवत्सुघोरं प्रादुश्च-काराद्भुतमंतरिक्षे ॥ ११३ ॥ तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा सर्वा-ण्यनीकानि महाधनुष्मान् । शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णैर्निवारया-

---

आकाशमें गूंजने लगा तथा उसमेंसे छूटते हुए तीव्र और चमकते हुए बाणोंकी दशों दिशाओंमें वर्षा होने लगी ॥१०८॥ भीष्म भूरिश्रवाको साथ ले, कौरवराज दुर्योधन हाथमें बाण लिये हुए धूमकेतुके उदय होनेकी समान अर्जुनके सामने आकर खड़ा होगया ॥ १०९ ॥ भूरिश्रवाने अर्जुनके ऊपर सोनेके परों वाले भल्ल नाम वाले सात बाण छोड़े, दुर्योधनने तोमर छोड़ा, शल्यने गदा फेंकी और भीष्मने शक्तिका प्रहार किया ॥११०॥ अर्जुनने भी सात बाण छोड़कर भूरिश्रवाके सातों बाणोंको काट दिया, तीखी धारवाले और एक बाणसे दुर्योधनके तोमरको काट दिया तथा और दो बाण छोड़कर भीष्मजीकी शक्ति और शल्यकी छोड़ी हुई गदाके टुकड़े २ कर दिये ॥ १११ ॥ ११२ ॥ फिर अपने बलवान् और अप्रमेय गाण्डीव धनुषको चढ़ाकर अर्जुनने मंत्रसे माहेन्द्र नामके महाभयानक अद्भुत अस्त्रको आकाश में प्रकट किया ॥ ११३ ॥ बड़े धनुषधारी महात्मा अर्जुनने इस

मास किरीटमाली ॥ ११४ ॥ शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता रथान् ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून्। निकृत्य देहान् विविशुः परेषां नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्गमाणाम् ॥ १०५ ॥ ततो दिशः सोऽनुदिशश्च पार्थः शरैः सुधारैः समरे वितत्य। गांडीवशब्देन मनांसि तेषां किरीटमाली व्यथयांचकार ॥ ११६ ॥ तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते शंखस्वना दुन्दुभिनिस्वनाश्च। अन्तर्हिता गांडिवनिःस्वनेन बभूवुरुग्राश्वरथप्रणादाः ॥ ११७ ॥ गांडीवशब्दं तमथो विदित्वा विराटराजप्रमुखाः प्रवीराः। पाञ्चालराजो द्रुपदश्च वीरस्तं देश-माजग्मुरदीनसत्वाः ॥ ११८ ॥ सर्वाणि सैन्यानि तु तावकानि यतो यतो गांडिवजः प्रणादः। ततस्ततः सन्नतिमेव जग्मुर्न तं प्रतीपोऽभिससार कश्चित् ॥ ११९ ॥ तस्मिन् सुघोरे नृपसंप्रहारे हताः प्रवीराः सरथाश्वसूताः। गजाश्च नाराचनिपाततप्ता महा-

उत्तम अस्त्रके प्रभावसे अग्निकी समान तेजस्वी असंख्यों बाण छोड़कर कौरवोंको तथा उनकी सब सेनाको रोकदिया ॥११४॥ अर्जुनके धनुषमेंसे छूटे हुए बाण—रथ, ध्वजाओंके अग्रभाग, धनुष तथा भुजा आदिको काटकर शत्रुओंके, हाथियोंके तथा योधाओंके शरीरोंमें घुसरहे थे ॥११५॥ इसप्रकार तेजधार वाले बाणोंकी वर्षा करके दिशाओं और उपदिशाओंको ढकदिया और फिर अर्जुनने गाण्डीवके शब्दसे शत्रुओंके मन सन्तापमें डाल दिये ॥११६॥ बड़ा घोर युद्ध होने लगा, शङ्ख, दुन्दुभी तथा घोड़े और रथोंका भयानक शब्द गाण्डीवके शब्दसे दबगया ॥ ११७ ॥ यह गाण्डीवका शब्द है, ऐसा जानकर उदार बल वाला राजा विराट, पाञ्चालराज द्रुपद आदि वीर पुरुष तहाँ आपहुंचे, जहां २ गाण्डीवका शब्द कानमें पड़ा तहां २ तुम्हारी सेनाके सेनापतियोंके शरीर ढीले पड़ गये, कोई भी शत्रु योधा उसके सामने जानेका साहस न करसका ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ हे राजन्! इस महाभयानक संहारमें बड़े २ श्रेष्ठ वीर कटगये,

पताकाः शुभरुक्मकक्ष्याः ॥ १२० ॥ परीतसत्वाः सहसा निपेतुः किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः । दृढाहताः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन भल्लैर्विमलैः शिताग्रैः ॥१२१॥ निकृन्तयन्त्राणि इतेन्द्रकीला ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु । पदातिसंघाश्च रथाश्च संख्ये हयाश्च नागाश्च धनञ्जयेन ॥ १२२ ॥ बाणाहतास्तूर्णमपेतसत्वा विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्यां । ऐन्द्रेण तेनास्त्रवरेण राजन् महाहवे भिन्नतनुत्रदेहाः ॥ १२३ ॥ ततः शरौघैर्निशितैः किरीटिना नृदेहशस्त्रक्षतलोहितोदा । नदी सुघोरा नरमेदफेना प्रावर्तिता तत्र रणाजिरे वै ॥ १२४ ॥ वेगेन सातीव पृथुप्रवाहा परेतनागाश्वशरीररोधाः । नरेन्द्रमज्जोच्छ्रितमांसपंका प्रभूतरक्षोगणभूतसेविता ॥ १२५ ॥ शिरः कपालाकुलकेशशाद्वला शरीरसंघातसहस्र-

हजारों घोड़े रथों सहित सारथी मर गये, बड़ी२ पताकायें, सोने के हौदे और अंबारियोंवाले हाथी अर्जुनके बाणोंसे कवच तथा शरीरोंके विंधजानेके कारण प्राण छोड़-२ कर पृथिवी पर गिरने लगे, उग्रवेग तथा तीखी नोक वाले बाणोंसे कटती हुई सेनाओं के अग्रभागमें रक्खी हुई बड़ी २ ध्वजायें यंत्र टूटकर तथा इन्द्रकील नामके शस्त्र टुकड़े २ होकर गिर रहे थे, अर्जुनके बाणसे घायल हुए पैदल तथा कटेहुए रथ, घोड़े, हाथी प्राणहीन हो शरीरको टेक देकर टपाटप पृथिवी पर गिरने लगे॥ १२०—१२३॥ हे राजन् ! उस महासंग्राममें उत्तम अस्त्रसे हजारों योधाओंके शरीर और बख्तर कट गये, अर्जुनके तेज बाणोंके समूहके कारण रणमें मनुष्योंके शरीरोंमेंसे बहते हुए रुधिररूप जलवाली और उनकी चरबीरूप झागों वाली महाभयानक नदी बहने लगी १२४ बड़े प्रवाहवाली यह रुधिरकी नदी बड़े वेगसे बहरही थी, मरेहुए घोड़े और हाथियोंके शरीर उसके किनारेसे दीखते थे, मज्जा और मांसकी उसमें कीच होरही थी, उसके किनारों पर फिरते हुए भूत और राक्षस उसके तटके वृक्षसे लगते थे ॥ १२५ ॥

वाहिनी । विशीर्णनानाकवचोर्मिसंकुलाः नराश्वनागास्थिनिकृत्त-शर्करा ॥ ११६ ॥ श्वकङ्कशाला वृकगृध्रकाकैः क्रव्यादसंघैश्च तरक्षुभिश्च । उपेतकूलां ददृशुर्मनुष्याः क्रूरां महावैतरणीप्रकाशाम् ॥ १२७ ॥ प्रवर्त्तितामर्जुनवाणसंघैर्मेदोवसासृक्प्रवाहां सुभीमाम् । हतप्रवीरां च तथैव दृष्ट्वा सेनां कुरूणामथफाल्गुनेन १२८ ते चेदिपाञ्चालकरूषमत्स्याः पार्थाश्च सर्वे सहिताः प्रणेदुः । जयप्रगल्भाः पुरुषप्रवीराः संत्रासयन्तः कुरुवीरयोधान् ॥ १२९ ॥ हतप्रवीराणि बलानि दृष्ट्वा किरीटिना शत्रुभयावहेन । वित्रास्य सेनां ध्वजिनीपतीनां सिंहो मृगाणामिव यूथसंघान् ॥ १३० ॥ विनेदतुस्तावतिहर्षयुक्तौ गांडीवधन्वा च जनार्दनश्च । ततो रविं सम्भृतरश्मिजालं दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः ॥ १३१ ॥ तदैन्द्र-

वालोंसे भरे मनुष्योंके शिरोंके तैरनेसे वह सिवारसे भरी हुई मालूम होती थी, हजारों मुरदे उसमें उतराने लगे, हजारों कटे हुए बख्तर उसकी तरङ्गसी मामूम होने लगे और मनुष्य, हाथी तथा घोड़ोंकी हड्डियोंके टुकड़े उसमें कंकड़ियेंसे दीखते थे १२६ उसके किनारे पर कुत्ते, कङ्क, गीदड़, गिद्ध, कौए आदि प्राणी तथा राक्षस घूमने लगे, इसप्रकार अर्जुनके वाणोंसे उत्पन्न हुई मेद वसा रुधिर आदिके प्रवाह वाली, अति भयानक होनेके कारण महावैतरणी सी दीखती हुई उस नदीको शेष रहे हुए क्रूर अन्तः करणवाले मनुष्य देखरहे थे ॥१२७-१२८॥ अर्जुनने कुरुसेनाके वीरोंका संहार करडाला, यह देखकर भयसे व्याकुल हुए चेदी, पांचाल करूष तथा मत्स्य आदि देशोंके महावीर गरज२ कर कौरवोंके योधाओंके दिल दहला रहे थे ॥ १२९ ॥ शत्रुओं को भयभीत करने वाला अर्जुन, जैसे सिंह मृगसमूहको त्रास देता है तैसे बड़ी २ सेनाके अधिपतियोंकी सेनाओंको त्रास देरहा था ॥ १३० ॥ और गाण्डीवधारी अर्जुन तथा श्रीकृष्ण भी हर्ष मना रहे थे, जब सूर्यनारायण अपनी किरणोंको समेटने लगे तब शस्त्रसे घायल अङ्गोंवाले द्रोण

मस्त्रं विततं च घोरमसह्यमुद्वीक्ष्य युगान्तकल्पम् । अथापयानं कुरवः स भीष्मः सद्रोणदुर्योधनबाल्हिकाश्च ॥१३२॥ चक्रुर्निशां सन्धिगतां समीक्ष्य विभावसोर्लोहितरागयुक्ताम् । अवाप्य कीर्त्तिञ्च यशश्च लोके विजित्य शत्रूंश्च धनञ्जयोऽपि ॥ १३३ ॥ ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च समाप्तकर्मा शिबिरं निशायाम् । ततः प्रजज्ञे तुमुलः कुरूणां निशामुखे घोरतमः प्रणादः ॥ १३४ ॥ रणे रथानामयुतं निहत्य हता गजाः सप्तशतार्जुनेन । प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे निपातिताः क्षुद्रकमालवाश्च ॥१३५॥ महत्कृतं कर्म धनञ्जयेन कर्तुं यथा नार्हति कश्चिदन्यः । श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ॥ १३६ ॥ द्रोणः कृपः सैंधवबाल्हिकौ च भूरिश्रवाः शल्यशलौ च राजन् । अन्ये च योधा

दुर्योधन, बाल्हीक तथा भीष्म आदि कौरवोंने, सूर्यके लाल रङ्ग कीसी लाल २ सन्ध्या होगई, ऐसा विचार कर तथा प्रलय-कालकी समान इन्द्रास्त्रको सब जगह फैला हुआ देखकर आराम लेनेके लिये अपनी सेनाओंको पीछेको लौटाया, अर्जुनभी कीर्त्ति तथा यश पाकर ॥ १३१-१३३ ॥ शत्रुओंको जीत अपना काम पूरा करके रात होजानेके कारण अपने सम्बन्धी राजाओं के साथ अपनी छावनीमेंको चला आया, जब रात्रिका अन्धकार फैलने लगा तब कौरवोंमें बड़ी गुनगुनाहट होने लगी, सेनापति एक दूसरेसे बातें करने लगे, कि—आज अर्जुनने रणमें दश हजार रथियोंको मारा, सात सौ हाथियोंका नाश किया तथा पूर्वके राजाओंका, सौवीरोंका, क्षुद्रकोंका और मालवकोंका भी संहार कर डाला है, अहो ! धनञ्जयने आज बड़ा पराक्रम किया है, ऐसा कोई भी नहीं कर सकता, पृथिवी पर श्रेष्ठ महारथी पार्थ ने क्रोधमें भर कर अपने ही बाहुबलसे अम्बष्ठपति श्रुतायु, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोण, कृपाचार्य, सैंधव, बाल्हीक, भूरिश्रवा, शल्य, शल और भीष्म सहित अनेकों योधाओंको आज किरीटी

शतशः समेताः क्रुद्धेन पार्थेन रणस्य मध्ये ॥ १३७ ॥ स्वबाहुवीर्येण जिताः सभीष्माः किरीटिना लोकमहारथेन इति ब्रुवन्त शिविराणि जग्मुः सर्वे गणा भारत वै त्वदीयाः ॥ १३८ ॥ उल्कासहस्रैश्च सुसम्प्रदीप्तैर्विभ्राजमाना च तथा प्रदीपैः । किरीटिविनाशितसर्वयोधा चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम् ॥ १३९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीयदिवसावहार एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

सञ्जय उवाच । व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां स प्रमुखे महात्मा । ययौ सपत्नान् प्रतिजातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः ॥ १ ॥ तं द्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ । जयद्रथश्चातिबलो बलौघैर्नृपास्तथान्ये प्रययुः समन्तात् ॥२॥ स तैर्महद्भिश्च महारथैश्च तेजस्विभिर्वीर्यवद्भिश्च राजन् । रराज राजा स तु राजमुख्यैर्वृतः स देवैरिव वज्रपाणिः ॥ ३ ॥ तस्मिन्ननीकप्रमुखे विषक्ता दोधूयमानाश्च महापताकाः । सुरक्तपीता-

ने रणमें जीता है, हे भारत ! इसप्रकार बातें करते हुए तुम्हारे योधा अपने तम्बुओंमेंको जारहे थे ॥ १३४–१३८ ॥ अर्जुनसे भयभीत हुए कुरुसेनाके अनेकों योधा मशालों और दीवोंसे प्रकाशित अपने २ तंबुओंमें आये ॥ १३९ ॥ उनसठवा अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! जब रात बीतगयी और चौथे दिनका प्रभात हुआ तब भारतसेनाके अधिपति महात्मा भीष्मजी अतिकोपमें भरकर समग्र बलके साथ शत्रुओंके सामने आगये ॥ १ ॥ द्रोण, दुर्योधन, बाल्हीक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, महारथी जयद्रथ तथा और भी अनेकों राजे अपनी २ सेनाको लेकर उनके पीछे चले ॥ २ ॥ तेजस्वी, वीर मुख्य राजाओंसे घिरे हुए पितामह भीष्मजी उस समय देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी समान प्रतीत होते थे ॥ ३ ॥ उनकी सेनाके आगे बड़े २

सितपाण्डुराभा महागजस्कन्धगता विरेजुः ॥ ४ ॥ सा वाहिनी शान्तनवेन गुप्ता महारथैर्वारणवाजिभिश्च । बभौ सा विद्युत्स्तनयित्नुकल्पा जलागमे द्यौरिव जातमेघा ॥ ५ ॥ ततो रणायाभिमुखी प्रयाता प्रत्यर्जुनं शान्तनवाभिगुप्ता । सेना महोग्रा सहसा कुरूणां वेगो यथा भीम इवापगायाः ॥ ६ ॥ तं व्यालनानाविधगूढसारं गजाश्वपादातरथौघपक्षम् । व्यूहं महामेघसमं महात्मा ददर्श दूरात्कपिराजकेतुः ॥७॥ विनिर्ययौ केतुमता रथेन नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः ॥ वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा वधे धृतः सर्वसपत्नयूनाम् ॥ ८ ॥ सूपस्करं सोत्तरबन्धुरेषं यत्तं यदूनामृषभेण संख्ये । कपिध्वजं प्रेक्ष्य विषेदुराजौ सहैव पुत्रैस्तव कौरवेयाः ॥ ९ ॥

हाथियोंके कन्धों पर फहराती हुई लाल, पीली, धौली तथा भूरी पताकायें बड़ी सुन्दर मालूम होती थीं ॥ ४ ॥ शन्तनुनन्दन भीष्मजीकी रक्षाकी हुई सेना हजारों बड़े २ रथ और हाथियों से, वर्षाकालमें बिजली सहित मेघोंसे छाये हुए आकाशसी मालूम होती थी ॥ ५ ॥ युद्धके लिये तयार हुई तथा भीष्मजी से रक्षित यह महाउग्रसेना, जैसे उग्रवेगवाली गङ्गानदी समुद्रकी ओरको दौड़ती है तैसे ही अर्जुनकी ओरको दौड़ी ॥ ६ ॥ जिसकी ध्वजायें कपिराज हैं ऐसे अर्जुनने भिन्न २ सेनाके बलसे बलवान् हुई तथा जिसके दोनों करवटोंमें हाथी, घोड़े और पैदल हैं ऐसी उस सेनाको दूरसे आती हुई बड़ी भारी घनघटाकी समान देख ॥ ७ ॥ तुरन्त ही सफेद घोड़ोंसे जुते पताका वाले रथमें बैठकर अपनी सेनाको लिये हुए महात्मा अर्जुन अपने शत्रुओंको मार डालनेका निश्चय करके उनके सामनेको चलदिया ॥ ८ ॥ सुन्दर पहियोंवाले तथा जिसकी ईषा चमड़ेसे बँधी हुई है ऐसे रथमें यदुकुलशिरोमणि श्रीकृष्ण जीके साथ तयार होकर युद्धमें आते हुए अर्जुनको देखकर अपने पुत्रों सहित युद्धभूमिमें खड़े हुए तुम्हारे कौरव घबड़ाने

मकर्षता मुप्रमुदायुधेन किरीटिना लोकमहारथेन । तं व्यूहराजं दहशुस्त्वदीयाश्चतुश्चतुर्व्यालसहस्रकर्णम् ॥ १० ॥ यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराज्ञा व्यूहः कृतः कौरवसत्तमेन । तथा न भूतो भुवि मानवेषु न दृष्टपूर्वो न च संश्रुतश्च ॥ ११ ॥ ततो यथादेशमुपेत्य तस्थुः पाञ्चालमुख्याः सह चेदिमुख्यैः । ततः समादेशसमाहतानि भेरीसहस्राणि विनेदुराजौ ॥ १२ ॥ शंखस्वनास्तूर्यरथस्वनाश्च सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः । ततः स बाणानि महास्वनानि विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः ॥१३ ॥ क्षणेन भेरीपणवप्रणादानन्तर्दधुः शंखमहास्वनाश्च । तच्छंखशब्दावृतमन्तरिक्षमुद्धतभौमद्रुतरेणुजालम् ॥ १४ ॥ महावितानावततप्रकाशमालोक्य वीराः सहसाभिपेतुः । रथी रथेनाभिहतःससूतः पपात साश्वः

लगे ॥ ९ ॥ महारथी अर्जुनने तलवार घुमाकर, रक्षाकी हुई सेनाकी चारों ओर चार २ हजार हाथियोंके हार वाली व्यूह-रचनाकी थी, उसको तुम्हारे पुत्र देखने लगे ॥ १० ॥ कुरुसत्तम धर्मराजने पहिले दिन जो व्यूह रचा था ऐसा व्यूह पृथिवी पर मनुष्योंमें पहिले कभी देखनेमें या सुनने नहीं आया था ॥११॥ फिर पाञ्चाल सेनाके मुख्य २ योधा चेदियोंके साथ अपने २ स्थान पर आकर खड़े होगये और आज्ञा होने पर रणमें हजारों भेरी और दुंदुभियोंके शब्द होनेलगे ॥१२॥ शङ्ख और तुरहियोंके शब्द हुए तथा सब सेनाओंमेंसे रथके घरघराहटके साथ सिंहनाद सुनाई आनेलगे ॥ १३ ॥ बाण चढ़ाये और बड़ा टङ्कार शब्द करते हुए धनुषोंके रोदोंके शब्द तथा शङ्खोंके शब्दसे क्षणभरमें भेरी और पणवोंका शब्द दबगया, शङ्ख आदिके शब्दसे आकाश गूँज उठा, पृथिवी परसे उड़ी हुई धूलिसे आकाश छागया और मानो सर्वत्र बड़ा भारी चन्दोवा तन रहा हो ऐसा दीखने लगा, यह अवसर देखते ही वीर योधा एक दूसरेके ऊपर टूटपड़े, रथियोंसे घायल हुए रथी अपने सारथी, घोड़े रथ और

तरथः तरेतु. ॥ १५ ॥ गजो गजेनाभिहतः पपात पदातिना नाभिहतः पदातिः । आवर्तमानान्यभिवर्तमानैर्घोरीकृतान्यद्भुत- र्शनानि ॥ १६ ॥ मासैश्च खड्गैश्च समाहतानि सदश्ववृन्दानि दश्ववृन्दैः । सुवर्णतारागणभूषितानि सूर्यप्रभाभानि शराव- णाणि ॥ १७ ॥ विदार्यमाणानि परश्वधैश्च प्रासैश्च खड्गैश्च निपे- तुरुर्व्याम् । गजैर्विषाणवरहस्तरुग्णाः केचित्ससूता रथिनः प्रपेतुः ॥ १८ ॥ गजर्षभाश्चापि रथर्षभेण निपातिता बाणहताः पृथि- व्याम् । गजौघवेगाद्धतसादिनाम श्रुत्वा निपेतुः सहसा मनुष्याः ॥ १९ ॥ नार्तं स्वनं सादिपदातियूनां विषाणगात्रावरताडिता- नाम् । सम्भ्रान्तनागाश्वरथे मुहूर्ते महाक्षये सादिपदातियूनाम् ॥ २० ॥ महारथैः सपरिवार्यमाणो ददर्श भीष्मः कपिराजकेतुम् ।

पताकाओं के साथ रणमें गिरनेलगे, हाथियों के घायल किये हुए हाथी और पैदलोंके घायल किये हुए पैदल गिरनेलगे, दौड़ते हुए उत्तम घुड़सवारोंने जिनका मास और तलवारोंसे घायल किया था ऐसे सामनेको झपटते हुए घुड़सवार भयानक रूपसे रणमें गिरनेलगे, सुनहरी फुल्लियों से शोभायमान तथा सूर्यकी समान चमकती हुई ढाल फरसे तलवार और मासोंसे कटकर पृथिवी पर गिरती थीं, यह सब अचरजसा मालूम होता था, हाथियों के दांतोंसे घायल हुए कितने ही रथी अपने सारथियों के साथ गिरते थे और उनके हाथ कटकर टुकड़े२ होरहे थे ॥ १४-१८ ॥ महारथियोंने जिनको बाणोंसे बींधडाला था ऐसे बड़े२ हाथी भी पृथिवी पर ढहगये, और दौड़ते हुए हाथियोंकी झपटमें आकर उनके पैरोंसे कुचले हुए तथा दांत लगनेसे जिन के शरीरोंके कवच टूटगये हैं ऐसे घुड़सवार और पैदलोंकी चिल्ला हट को सुनकर साधारण मनुष्य भयभीत होते थे,जब हाथी और घोड़ों सहित रथ घबड़ा कर दौड़ने लगे, घुड़सवार और युवा पैदलोंका नाश होने लगा तथा महाक्षयका प्रारम्भ हुआ, उस समय अनेकों महारथियों से घिरेहुए भीष्मपितामह ने जिसकी ध्वजामें

तं पश्यतामोच्छ्रितताळकेतुः सदश्ववेगाद्भुतवीर्ययानः ॥ २१ ॥ महास्त्रबाणाशनिदीप्तिमन्तं किरीटिनं शान्तनवोऽभ्यधावत् । तथैव शक्रप्रतिमप्रभावमिन्द्रात्मजं द्रोणमुखा विसस्रुः ॥ २२ ॥ कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन् । ततो रथानां प्रमुखादुपेत्य स चास्त्रवित्काञ्चनचित्रवर्मा ॥ २३ ॥ जवेन शूरोऽभिससार सर्वांस्तानर्जुनस्यात्मसुतोऽभिमन्युः । तेषां महास्त्राणि महारथानामसह्यकर्मा विनिहत्य कार्ष्णिः ॥ २४ ॥ बभौ महामन्त्रहुतार्चिमाली सदोगतः सन् भगवानिवाग्निः । ततः स तूर्णं रुधिरोदफेनां कृत्वा नदीमाशु रणे रिपूणाम् ॥ २५ ॥ जगाम सौभद्रमतीत्य भीष्मो महारथं पार्थमदीनसत्त्वः । ततः प्रहस्याद्भुतविक्रमेण गाण्डीवमुक्तेन शिलाशितेन ॥ २६ ॥ विपाठजालेन महास्त्रजालं विनाशयामास किरीटमाली । तमुत्तमं

हनुमान् हैं ऐसे अर्जुन को देखा तथा पांच ताड़का चिन्हवाली ऊँची ध्वजा और रथमें जुड़े हुए घोड़ोंके वेगसे अद्भुत वीरता तथा गतिवाले भीष्मजीने बड़े२ शस्त्र और बाणोंसे प्रकाशवान् अर्जुन के ऊपर चढ़ाई की, इतनेमें ही इन्द्रके समान प्रभाववाले इन्द्रपुत्र अर्जुनके ऊपर द्रोणाचार्य आदि तथा कृपाचार्य,शल्य विविंशति, दुर्योधन और सोमदत्त भी चढ़ आये ॥ १९-२३ ॥ उसी समय रथकी पंक्तिमेंसे आगेको बढ़कर सब अस्त्रों को जानने वाला सोनेके कवचको पहिरे अर्जुनका शूर पुत्र अभिमन्यु सबोंके ऊपर चढ़ आया॥२४॥ असह्य पराक्रमी सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु सब महारथियोंके बड़े२अस्त्रोंको काट मंत्र पढ़कर आहुति देनेपर प्रज्वलित हुए भगवान् अग्नि की समान राजमण्डलमें दीखनेलगा और उसने युद्ध करके तुरन्त ही रणमें शत्रुके रुधिररूपी जलकी नदी बहादी,परन्तु उदार बलवाले भीष्मजी अभिमन्युको छोड़कर अर्जुनके सामने आये,अर्जुनने मुसकाकर अद्भुत बलवाले गांडीव धनुष पर विपाट जातिके बाणोंको चढ़ा भीष्मके छोड़े हुए बाणों

सर्वधनुर्धराणामसक्तकर्मा कपिराजकेतुः ॥ २७ ॥ भीष्मं महात्माभिववर्ष तूर्णं शरौघजालैर्विमलैश्च भल्लैः । तथैव भीष्माहतमन्तरिक्षे महास्त्रजालं कपिराजकेतोः । विशीर्यमाणं ददृशुस्त्वदीया दिवाकरेणेव तमोभिभूतम् ॥ २८ ॥ एवंविधं कार्मुकभीमनादमदीनवत्सत्पुरुषोत्तमाभ्याम् । ददर्श लोकः कुरुसृञ्जयाश्च तद्द्वैरथं भीष्मधनञ्जयाभ्याम् ॥ २९ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसयुद्धे भीष्मार्जुनद्वैरथे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

सञ्जय उवाच । द्रौणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिष । पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं पर्यवारयन् ॥१॥ संसक्तमतितेजाभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः । पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा ॥ २ ॥ नातिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे । बभूव सदृशः

का आवरण तोड़डाला और सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कपिराजकेतु महात्मा अर्जुनने चमकते हुए भल्ल नामके निर्मल बाणोंसे भीष्मजीके ऊपर एक साथ प्रहार करना आरम्भ कर दिया, जैसे सूर्यके तेजसे अन्धकारका नाश होजाता है तैसेही भीष्मजीके छोड़े हुए बाणोंसे कपिराजकेतु अर्जुनके बाणोंका आवरण कटगया, इस घटनाको तुम्हारे पुत्र बड़े आनन्दके साथ देखने लगे ॥ २५-२८ ॥ इसप्रकार पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीष्म और धनञ्जयका धनुषोंके भयानक शब्दसे गुञ्जारता हुआ द्वन्द्वयुद्ध कुरु और सृञ्जयोंने देखा था ॥ २९ ॥ साठवां अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! द्रोणका पुत्र, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और सांयमनि का पुत्र इन्होंने अभिमन्युको घेर लिया ॥ १ ॥ पांच पुरुषसिंहोंके साथ अकेले युद्ध करते हुए परमतेजस्वी अभिमन्युको, मानों पांच हाथियोंके साथ सिंहका बच्चा लड़ रहा है, ऐसा मनुष्य देखने लगे ॥२॥ निशाना ताक कर मारनेमें, शूरतामें, पराक्रममें तथा बाण चलाने की

कार्ष्णेर्नास्त्रे नापि च लाघवे ॥ ३ ॥ तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिन्दमम् । दृष्ट्वा पार्थः सुसंयत्तं सिंहनादमथानदत् ॥ ४ ॥ पीड्यमानं तु तत् सैन्यं पौत्रं तव विशाम्पते । दृष्ट्वा त्वदीया राजेंद्र समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ५ ॥ ध्वजिनीं धार्तराष्ट्राणां दीनशत्रुरदीनवत् । प्रत्युद्ययौ स सौभद्रस्तेजसा च बलेन च ॥ ६ ॥ तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम् । व्यदृश्यत महच्चापं समरे युध्यतः परैः ॥७॥ स द्रौणिमिषुणैकेन विध्वा शल्यं च पञ्चभिः । ध्वजं सांयमनेश्चैव सोऽष्टभिश्चिच्छिदे ततः ॥ ८ ॥ रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सोमदत्तिना । शितेनोरगसंकाशां पत्रिणापजहार ताम् ॥ ९ ॥ शल्यस्य च महावेगानस्यतः समरे शरान् । निवार्यार्जुनदायादो जघान चतुरो हयान् ॥ १० ॥ भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः । नाभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णे·

शीघ्रतामें, सुभद्रानन्दन अभिमन्युकी बराबरी कोई नहीं कर सकता था ॥ ३ ॥ अपने पुत्र अभिमन्युको इसप्रकार संग्राममें पराक्रम करते हुए देखकर अर्जुनने सिंहनाद किया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र अपनी सेनाको अभिमन्युसे पीड़ा पाती हुई देखकर उसको चारों ओरसे घेरने लगे।५।तब अपने तेज और बलके प्रतापसे जरा भी हिम्मत न हारकर अभिमन्यु दुर्योधनकी सेनाके सामने आया ॥ ६ ॥ अभिमन्यु युद्ध कर रहा था, उस समय बाण छोड़नेमें अत्यन्त तत्पर हुआ उसका धनुष सूर्यकी समान कान्तिमान दीखता था ॥ ७ ॥ उसने एक बाणसे अश्वत्थामाको बींध दिया,शल्यको पांच बाणोंसे बींधा और आठ बाण मारकर संयमनीके पुत्रकी ध्वजा काट दी ॥८॥ और सोने के दण्डवाली सोमदत्तकी छोड़ी हुई सूर्यकी समान चमकती महाशक्तिको आती देखकर उसको भी तेजबाणसे काटदिया ॥ ९ ॥ शल्य संग्राममें बड़े वेगसे बाण छोड़ता था परन्तु अर्जुननन्दन अभिमन्युने उन सबोंको काटकर उसके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥ १० ॥ अभिमन्युको इस प्रकार बाणोंकी मार करते हुए देखकर मूढ़से हुए

र्बाहुबलोदयम् ॥ ११ ॥ ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः । पञ्चविंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः॥१२॥धनुर्वेदविदां मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि । सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम् ॥ १३ ॥ तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ महारथौ । ददर्श राजन् पाञ्चाल्यः सेनापतिररिन्दम ॥ १४ ॥ सवारणरथौघानां सहस्रै-र्बहुभिर्वृतः । वाजिभिः पत्तिभिश्चैव वृतः शतसहस्रशः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फार्य संक्रुद्धो नोदयित्वा च वाहिनीम् । ययौ तं मद्रका-नीकं केकयांश्च परन्तप ॥ १६ ॥ तेन कीर्त्तिमता गुप्तमनीकं दृढ-धन्वना । संरब्धरथनागाश्वं योत्स्यमानमशोभत ॥१७॥ सोऽर्जुन-प्रमुखे यान्तं पाञ्चालकुलवर्धनः । त्रिभिः शारद्वतं बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १८ ॥ ततः स मद्रकान् हत्वा दशैव दशभिः

भूरिश्रवा,शल्य,अश्वत्थामा, सांयमनीका पुत्र और शल इनमें का एक भी उसके सामने न आसका ॥११॥ हे राजन ! तदनन्तर तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे त्रिगर्त्त, मद्र, कैकेय आदि पचीस हजार धनुर्वेदके पारङ्गत तथा किसीसे न हारनेवाले योधाओंने शत्रुओंका संहार करते हुए अर्जुन और अभिमन्युको आगे पीछेसे आकर घेरलिया ॥ १२ ॥१३॥ हे शत्रुदमन ! पाण्डवोंकी सेनाके नायक महारथी अर्जुन और अभिमन्युके रथको घिराहुआ देखकर पांचालराज ॥ १४ ॥ हजारों हाथीसवार, घुड़सवार और लाखों पैदलोंवाली अपनी सेनाको लेकर क्रोधके साथ अपने धनुषको चढ़ा मद्र तथा केकयोंकी सेनाके ऊपरको दौड़ा ॥ १५ ॥ १६ ॥ दृढ धनुषवाले पाञ्चालराजसे रक्षा की हुई तथा सवार और हाथियोंके दौड़नेसे क्षुभित हुई बड़ी भारी सेना युद्धके लिये प्रयाण करते समय बड़ी शोभायमान मालूम होती थी ॥ १७ ॥ पाञ्चालकुलकी वृद्धि करनेवाले उस राजाने, शारद्वतको अर्जुन के ऊपर चढ़कर आता हुआ देख तीन बाण मारकर उसके गले की हँसलीके भाग पर प्रहार किया ॥ १८ ॥ दश बाण मारकर

शरैः । पृष्ठरक्षं जघानाशु भल्लेन कृतवर्मणः ॥ १६ ॥ दमनं चापि दायादं पौरवस्य महात्मनः । जघान विमलाग्रेण नाराचेन परन्तप ॥ २० ॥ ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् । अविध्यत् त्रिंशता बाणैर्दशभिश्चास्य सारथिम् ॥ २१ ॥ सोतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् । भल्लेन भृशतीक्ष्णेन निचकर्त्तास्य कार्मुकम् ॥ २२ ॥ अथैनं पञ्चविंशत्या क्षिप्रमेव समार्पयत् । अश्वांश्चास्यावधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥ २३ ॥ स हताश्वे रथे तिष्ठन् ददर्श भरतर्षभ । पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥ २४ ॥ समगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् । पदातिस्तूर्णमानर्छद्रथस्थं पुरुषर्षभः ॥२५॥ तं महौघमिवायांतं खात्पतन्तमिवोरगं । भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं

मद्रकोंको मारडाला, भल्ल नामके बाणसे कृतवर्माके पृष्ठरक्षकको मार दिया ॥ १६ ॥ उस शत्रुतापी राजाने पौरववंशी दमनको तीखी नोंकवाले बाणसे घायल करडाला ॥ २० ॥ युद्धमें अति मतवाले हुए पाञ्चालनन्दनको सांयमनिके पुत्र ने तीस बाण छोड़कर तथा उसके सारथीको दश बाण छोडकर बींधदिया ॥ २१ ॥ तब घायल हुए पांचालराजने अपने जबाड़ोंको चाटकर अतितेज भल्ल नामके बाणोंसे अपने शत्रुका धनुष काटडाला ॥ २२ ॥ तथा तुरन्त ही और पचीस बाण छोड़ कर उसके घोड़ोंको तथा पास रहकर रक्षा करने वाले दो सारथियोंको भी मारडाला ॥ २३ ॥ और हे भरतसत्तम ! इस प्रकार मरे हुए घोड़ों वाले अपने रथ पर खड़ा होकर सांयमनीका पुत्र महात्मा पञ्चालराजके पुत्रको देख रहा था ॥ २४ ॥ फिर फौलादकी बनी हुई बड़ी भारी तलवार हाथमें लेकर सांयमनीका पुत्र पैदल ही एकसाथ, रथमें बैठे हुए अपने शत्रुके सामने आया ॥ २५ ॥ और समुद्रकी बड़ी भारी तरङ्गकी समान शीघ्रता से चढ़कर आये हुए तथा आकाशमेंसे गिरते हुए सूर्यकी समान

कालोत्सृष्टमिवांतकम् ॥ २६ ॥ दीप्यमानमिवादित्यं मत्तवारण-विक्रमम् । अपश्यन्पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥२७॥ तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः । शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरा-वरणधारिणः ॥२८॥ बाणवेगमतीतस्य तथाभ्यासमुपेयुषः । त्वरं सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥२९॥ तस्य राजन् सनिस्त्रिंशं सुप्रभञ्च शरावरम् । हतस्य पततो हस्ताद्वेगेन न्यपतद्भुवि ॥ ३० ॥ तं निहत्य गदाग्रेण स लेभे परमां मुदम् । पुत्रः पाञ्चाल-राजस्य महात्मा भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥ तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे । हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ ३२ ॥ ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम् । अभिदुद्राव वेगेन पांचाल्यं युद्धदुर्मदम् ॥ ३३ ॥ तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ

हाथमेंकी तलवारको उठाते हुए कालके प्रेरणा किये हुए यमकी समान प्रचण्ड, सूर्यकी समान प्रकाशवाले तथा मतवाले हाथीकी समान पराक्रमी सांयमनीके पुत्रको पांडवोंने तथा पृषत्वंशी धृष्टद्युम्नने आते हुए देखा, तब उस पाञ्चालवंशी राजकुमारने तेज तलवारको हाथमें ले, ढाल सहित चढ़कर आते हुए सांयमनीके पुत्रको, बाणकी मारको लांघकर पास आया हुआ देख क्रोधमें भरकर बड़ी भारी गदा मारी और उसका शिर फोड़ दिया ॥२६-२९॥ हे राजन् ! गदा लगते ही वेगके साथ हाथमें तलवार लिये हुए चढ़कर आते सांयमनीके पुत्रके हाथमेंसे चमकती हुई तलवार और ढाल उसके शरीरके साथ भूमि पर गिरगई ॥ ३० ॥ और भयङ्कर पराक्रम वाले महात्मा धृष्टद्युम्नको अपने शत्रुका वध करनेसे बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ३१॥ हे राजन् ! जब यह बड़ाभारी धनुष धारी महारथी राजकुमार रणमें मारा गया उस समय तुम्हारी सेनामें हाहाकार मचगया ॥ ३२ ॥ रणमें असह्य पराक्रमसे मत-वाले हुए द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने मेरे पुत्रको मारडाला यह देख

युद्धदुर्मदौ । ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पांडवास्तथा ॥ ३४ ॥ ततः सांयमनिः क्रुद्धः पार्षतं परवीरहा । आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३५॥ तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः । आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ३६ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थयुद्धदिवसे सांयमनिपुत्रवध एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय । यत्सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन बाध्यते ॥ १ ॥ नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि । अव्यग्रांश्च महृष्टांश्च नित्यं शंससि पांडवान् ॥ २ ॥ हीनान् पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय । पातितान् पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि ॥ ३ ॥ युध्यमानान् यथाशक्ति

कर सांयमनी क्रोधमें भराहुआ अपने आप उसके सामने आया और युद्धमें अति घमण्डमें भरे हुए ये दोनों वीर आमने सामने आकर युद्ध करने लगे और कौरव तथा पाण्डव दोनों पक्षके राजे उसको देखने लगे ॥३३॥३४॥जैसे महावत हाथीके अंकुश मारता है तैसे ही कोपमें भरे हुए सांयमनीने पृषत्वंशी धृष्टद्युम्न पर तीन बाणोंका प्रहार किया और रणके आभूषणरूप शल्यने भी क्रोधमें भर कर उसके ऊपर प्रहार किया तब फिर दारुण युद्ध होने लगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इकसठवां अध्याय समाप्त ॥६१ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! जब पाण्डवोंकी सेना मेरी सेनाका संहार करती है तबतो मुझे यही मालूम होता है, कि—पुरुषार्थसे दैव ही बलवान् है ॥ १ ॥ हे तात ! तू नित्य यह कहा करता है, कि—मेरे पुत्र मार खाते हैं और पाण्डव अक्षत रहते हैं और इससे तू प्रसन्न होता है ॥ २ ॥ हे सञ्जय ! वास्तवमें मेरे पुत्र अपनी शक्तिके अनुसार आवेशमें भरकर विजय पानेकी आशासे युद्ध करते हैं, तो भी तू मुझसे यही कहता है, कि—

घटमानान् जयं प्रति । पाण्डवा हि जयन्त्येव जीयंते चैव मामकाः ॥ ४ ॥ सोऽहं तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतानि च । श्रोष्यामि सततं तात दुःसहानि बहूनि च ॥ ५ ॥ तमुपायं न पश्यामि जीयेरन् येन पाण्डवाः । मामका विजयं युद्धे प्राप्नुयुर्येन सञ्जय ॥ ६ ॥ सञ्जय उवाच । क्षयं मनुष्यदेहानां गजवाजिरथक्षयम् । शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा तवैवापनयो महान् ॥ ७ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु शल्येन पीडितो नवभिः शरैः । पीडयामास संक्रुद्धो मद्राधिपतिमायसैः ॥ ८ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम पार्षतस्य पराक्रमम् । न्यवारयत यस्तूर्णं शल्यं समितिशोभनम् ॥ ९ ॥ नान्तरं दृश्यते तत्र तयोश्च रथिनोस्तदा । मुहूर्तमिव तद्युद्धं तयोः सममिवाभवत् ॥ १० ॥ ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे । धनुश्चिच्छेद भल्लेन

तुम्हारे पुत्र रणमें गिरते हैं और मार खाते हैं तथा पाण्डव जीतते हैं और तुम्हारे पुत्र हारते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे सञ्जय ! इसप्रकार मुझे दुर्योधनके कार्योंसे उत्पन्नहुए बहुतसे दुःखदायक और तीव्र वृत्तान्त सुनने पड़ने है, यह मुझे बड़ा ही दुःसह मालूम होता है ॥ ५ ॥ हे सञ्जय ! मुझे ऐसा एक भी उपाय नहीं सूझता, कि—जिससे पाण्डव रणमें हारें और मेरे पुत्रोंकी विजय होय ॥ ६ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! मनुष्योंका महासंहार होता है और हजारों हाथी, घोड़े तथा रथोंका नाश होता है, इस वृत्तान्तको तुम जरा स्वस्थ होकर सुनो, इस सबका कारण आपका ही बड़ा भारी अन्याय है ॥ ७ ॥ शल्यके नौ बाणोंसे पीड़ित हुआ धृष्टद्युम्न अत्यन्त कोपमें भरकर मद्रराजके ऊपर फौलादके बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ८ ॥ और उसमें उसका परम अचंरजमें डालने वाला पराक्रम हमने यह देखा, कि—संग्रामके आभूषणरूप शल्यके सब बाण उसने पीछेको लौटा दिये कुछ देरतक यह महारथियोंका युद्ध होता रहा, परन्तु उनमें न्यूनाधिकता जरा भी नहीं मालूम हुई ॥ ९ ॥ १० ॥ हे महाराज !

पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥ अथैनं शरवर्षेण छादयामास संयुगे गिरिं जलागते यद्वज्जलदा जलवृष्टिभिः ॥ १२ ॥ अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो धृष्टद्युम्ने च पीडिते । अभिदुद्राव वेगेन मद्रराजरथं प्रति ॥ १३ ॥ ततो मद्राधिपरथं फाल्गुणिः प्राप्यातिकोपनः । आर्तायनिममेयात्मा विव्याध निशितैः शरैः ॥ १४ ॥ ततस्तु तावका राजन् परीप्सन्तोऽर्जुनिं रणे । मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्यावतस्थिरे ॥ १५ ॥ दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती । दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः ॥ १६ ॥ सत्यव्रतश्च भद्रं वै पुरुमित्रश्च भारत । एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे ॥१७॥ तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । द्रौपदेयाभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पांडवौ ॥ १८ ॥ धार्तराष्ट्रान् दश रथान् दशैव प्रत्यवारयन् । नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजंतो विशाम्पते ॥१९॥ अभ्यवर्तन्त संहृष्टा परस्परवधैषिणः । ते वै समेयुः संग्रामे राजन्

संग्राममें शल्यने तीक्ष्ण और पानी पिलाये हुए भल्ल नामके बाण से धृष्टद्युम्नका धनुष काट डाला था तथा जैसे वर्षाकालमें मेघ पर्वतको छादेता है तैसे ही बाण छोड़कर उसको घेर लिया था ॥ ११ ॥ १२ ॥ शल्यने जब धृष्टद्युम्नको इसप्रकार पीड़ित किया तब कोपमें भरा हुआ अभिमन्यु मद्रराजके रथकी ओरको दौड़ा और शल्यके तेज बाण मारकर बींधने लगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यह देखकर अभिमन्युके साथ लड़नेकी इच्छा वाले तुम्हारे पुत्र दौड़ आये और शल्यके रथको घेरकर खड़े होगये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जब दुर्योधन विकर्ण, दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत तथा पुरुमित्र आदि योधा शल्यके रथकी रक्षा करनेके लिये रणमें आकर खड़े हो गये ॥ १६–१७ ॥ हे राजन् ! तब कोपमें भराहुआ भीमसेन धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाचों पुत्र अभिमन्यु तथा नकुल और सहदेव इन सबोंने अनेकों प्रकारके बाण छोड़कर तुम्हारे पक्षके दशों योधाओंको रोक दिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ और अत्यन्त प्रसन्न हो

दुर्मंत्रिते तव ॥ २० ॥ तस्मिन् दशरथे क्रुद्धे वर्तमाने महाभये । तावकानां परेषां वा प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ॥ २१ ॥ शस्त्राण्यनेकरूपाणि विसृजन्तो महारथाः । अन्योन्यमभिनर्दन्तः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ २२ ॥ ते तदा जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योन्यं जिघांसवः अन्योन्यमभिमर्दन्तः स्पर्धमानाः परस्परम् ॥ २३ ॥ अन्योऽन्यस्पर्धया राजन् ज्ञातयः सङ्गता मिथः । महास्त्राणि विमुञ्चंतः समापेतुरमर्षिणः ॥ २४ ॥ दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं महारणे । विव्याध निशितैर्बाणैश्चतुर्भिः समरे द्रुतम् ॥ २५ ॥ दुर्मर्षणश्च विंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः । दुर्मुखो नवभिर्बाणैर्दुःसहश्चापि सप्तभिः ॥ २६ ॥ विविंशतिः पञ्चभिश्च त्रिभिर्दुःशासनस्तथा । तान्प्रत्यविध्यद्राजेन्द्र पार्षतः शत्रुतापनः ॥ १७ ॥ एकैकं पञ्च-

बाण छोड़ते हुए आपसमें युद्ध करने लगे, हे राजन्! यह सब आपके खोटे विचारका ही परिणाम है ॥ २० ॥ जब पाण्डवोंके तथा तुम्हारे पक्षके दश दश रथी आमने सामने युद्ध करने लगते थे तब२ दोनों पक्षके दूसरे रथी दर्शक बनकर उनके महाभयानक युद्धको देखते हुए खड़े रहते थे॥२१॥अनेकों प्रकारके शस्त्र मारते हुए वह महारथी एक दूसरेके सामने गरज२कर प्रहार करने लगे ॥ २२ ॥ अत्यन्त कोपमें भरे हुए तथा परस्पर को मारनेकी इच्छा वाले वह महारथी डाहमें भरकर एक दूसरेको मारते थे ॥ २३ ॥ और हे राजन्! ऐसे एक दूसरेसे डाह करते हुए वह सब संबंधी एक एकके साथ युद्धमें गुँथ गये, बड़े२ अस्त्रोंका प्रहार करते हुए असहनशीलतासे एक दूसरेके ऊपरको झपटते थे ॥ २४ ॥ अत्यन्त कोपमें भरेहुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने इस महारणमें चार तीखे बाण मारकर धृष्टद्युम्नको वींध दिया ॥२५॥ और दुर्मर्षण ने बीस, चित्रसेनने पांच, दुर्मुखने नौ, दुःसहने सात, विविंशति ने पांच तथा दुःशासनने तीन बाण उसके मारे, परन्तु हे राजन्! फिर शत्रुतापी उस पृषतवंशके राजकुमारने अपने हाथकी शीघ्रता दिखाई, तुम्हारे योधाओंमें हर एकके पचीस२ बाण मारे और

विंशत्या दर्शयन् पाणिलाघवम् । सत्यव्रतं च समरे पुरुमित्रं च भारत ॥ २८ ॥ अभिमन्युरविध्यत्तु दशभिर्दशभिः शरैः । माद्रीपुत्रौ तु समरे मातुलं मातृनन्दनौ ॥ २९ ॥ अविध्येतां शरैस्तीक्ष्णैस्तदद्भुतमिवाभवत् । ततः शल्यो महाराज स्वस्रीयौ रथिनां वरौ ॥३०॥ शरैर्बहुभिरानर्च्छत्कृतप्रतिकृतैषिणौ । छाद्यमानौ ततस्तौ तु माद्रीपुत्रौ न चेलतुः ॥ ३१ ॥ अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः । विधित्सुः कलहस्यान्तं गदां जग्राह पाण्डवः ॥ ३२ ॥ तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् । भीमसेनं महाबाहुं पुत्रास्ते प्राद्रवन् भयात् ॥ ३३ ॥ दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो मागधं समचोदयत् । अनीकं दशसाहस्रं कुंजराणां तरस्विनां ॥ ३४ ॥ गजानीकेन सहितस्तेन राजा सुयोधनः । मागधं पुरतः कृत्वा भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ३५ ॥ आपतन्तञ्च तं दृष्ट्वा गजा-

---

अभिमन्युने भी युद्धमें दश२ बाण मारकर भाग्म और पुरुमित्र को बींध दिया ॥ २६-२८ ॥ तथा माताको आनन्द देनेवाले माद्रीके दोनों पुत्रोंने भी अपने मामाके ऊपर तेज बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया,जो सबोंको अचरजसा मालूम होता था और हे महाराज ! शल्यने रथियोंमें श्रेष्ठ तथा अपने ऊपर हुए प्रहारका बदला लेना चाहनेवाले दोनों भानजोंके ऊपर अनेकों बाण छोड़े शल्यके बाणोंसे घिर जानेपर भी माद्रीके पुत्र जरा भी डगमगाये नहीं ॥ २९-३१ ॥ महाबली भीमसेनने तो दुर्योधन को झपट कर आतेहुए देखकर,कलहका नाश करनेके लिये हाथ में एक बड़ी भारी गदा ली॥ ३२ ॥ तब शिखरयुक्त कैलास पर्वतकी समान भीमसेनको अपनी भुजामें गदा लेकर आते हुए देखकर हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र भयभीत होकर भाग ही गये ३३ तब क्रोधमें भरेहुए दुर्योधनने मगधराजकी वेगवाली हाथियोंकी दश हजार सेनाको ले और मगधराजको अपने आगे करके भीमसेनके ऊपर धावा किया ॥३४॥३५॥ मगधराजकी हाथियों

नीकं वृकोदरः । गदापाणिरवारोद्रथात् सिंह इवोन्नदन् ॥ ३६॥
अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदां । अभ्यधावद्गजानीकं
व्यादितास्य इवांतकः ॥ ३७ ॥ स गजान् गदया निघ्नन्
व्यचरत् समरे बली । भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः
॥ ३८ ॥ तस्य नादेन महता मनोहृदयकम्पिना । व्यत्यचेष्टत
संहत्य गजा भीमस्य गर्जतः ॥ ३९ ॥ ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभ-
द्रश्च महारथः । नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४० ॥
पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान् । अभ्यवर्षन्त धावन्तो
मेघा इव गिरीन् यथा ॥ ४१ ॥क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पीतैश्चांजलिकैः
शितैः। व्यहरन्नुत्तमाङ्गानि पाण्डवा गजयोधिनाम् ॥ ४२ ॥
शिरोभिः प्रपतद्भिश्च बाहुभिश्च विभूषितैः । अश्मवृष्टिरिवाभाति

की सेनाको पास आते हुए देख भीमसेन हाथमें गदा लेकर
रथमेंसे उतरपड़ा और सिंहकी समान गरजने लगा ॥ ३६ ॥
और बड़ीभारी गदा हाथमें ले मुख फैलाकर दौड़ते हुए कालकी
समान भीमसेन मगधराजकी हाथियोंकी सेनाके ऊपरको दौड़ा
॥३७ ॥ और जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंको काट डालता है तैसे
ही महाबाहु भीमसेन हाथमेंकी गदासे हाथियोंका संहार करता
हुआ बराबर आगेको ही बढ़ता चला गया॥३८॥मन और हृदयको
कँपादेनेवाली भीमसेनकी बड़ी भारी दहाड़को सुनकर हाथी इकट्ठे
होकर सुन्नसे होगये और कांपने लगे ॥ ३९ ॥ द्रौपदीके पांचों
पुत्र, महारथी अभिमन्यु, नकुल, सहदेव तथा धृष्टद्युम्न आदि
योधा भीमसेनके पीछे रहकर उसकी रक्षा कर रहे थे, वह जैसे
मेघ दौड़२कर पहाड़ोंके ऊपर वर्षा करते हैं तैसे ही हाथियोंके
ऊपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ४०-४१ ॥ तीखी धारवाले
तथा तयार किये हुए छुरे क्षुरप्र, भल्ल और अञ्जलिक
आदि शस्त्र मारकर पाण्डव तुम्हारी ओरके हाथियों पर बैठकर
लड़नेवाले योधाओंके शिर काटने लगे ॥ ४२ ॥ पाण्डवोंके हाथों

पाणिभिश्च सहाङ्कुशैः ॥ ४३ ॥ हृतोत्तमांगाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः । अदृश्यन्ताचलाग्रेषु द्रुमा भग्नशिखा इव ॥ ४४ ॥ धृष्टद्युम्नहतानन्यानपश्याम महागजान् । पततः पात्यमानाश्च पार्षतेन महात्मना ॥ ४५ ॥ मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमम् । प्रेषयामास समरे सौभद्रस्य रथं प्रति ॥४६॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मागधस्य महागजम् । जघानैकेषुणा वीरः सौभद्रः परवीरहा ४७ तस्यावर्जितनागस्य कार्ष्णिः परपुरञ्जयः । राज्ञो रजतपुङ्खेन भल्लेनापहरच्छिरः ॥ ४८ ॥ विगाह्य तद्गजानीकं भीमसेनोऽपि पाण्डवः । व्यचरत् समरे मृद्नन् गजानिन्द्रो गिरीनिव ॥ ४९ ॥ एकप्रहारनिहता भीमसेनेन दन्तिनः । अपश्याम रणे तस्मिन्

से कटेहुए शिर और अंकुशों सहित शृङ्गार किये हुए हाथी जिधर तिधर गिरने लगे इससे कुछ देरको तो ऐसा मालूम होनेलगा, कि—मानों आकाशमेंसे पत्थर वरस रहे हैं ॥ ४३ ॥ और जिनके शिर कटगये हैं ऐसे हाथियोंके कन्धों पर चढ़ेहुए योधा ऐसे मालूम होते थे मानो पहाड़ोंके ऊपर टूटीहुई शाखाओंवाले पेड़ हिलरहे हैं ॥ ४४ ॥ पृषत्वंशी महात्मा धृष्टद्युम्न जिनको मार मार कर गिरा रहा था ऐसे और बहुतसे हाथियोंको हमने गिरते हुए देखा ॥ ४५ ॥ यह देखकर मगधराजने अपने ऐरावतकी समान हाथी को रणभूमिमें दौड़ाकर अभिमन्युके रथके ऊपरको धावा किया ॥ ४६ ॥ परन्तु मगधराजके हाथीको आतेहुए देखकर, शत्रुके वीरोंका संहार करनेवाले अभिमन्युने एक ही बाणसे उस हाथी को मार डाला॥४७॥तथा शत्रुओंके नगर जीतनेवाले अभिमन्युने रुपहले परोंवाले और एक वाणको छोड़कर वाहनहीन हुए उस राजाका शिर काटडाला ॥४८॥ और पाण्डुनन्दन भीमसेन भी उस हाथियोंकी सेनामें घुसकर जैसे इन्द्र पर्वतोंका नाश करता है तैसे हाथियोंका नाश कर रहा था ॥ ४९ ॥ और जैसे वज्रका

गिरीन्वज्रहतानिव ॥ ५० ॥ भग्नदन्तान् भग्नकटान् भग्नसक्थांश्च वारणान् । भग्नपृष्ठत्रिकानन्यान्निहतान् पर्वतोपमान् ॥ ५१ ॥ नदतः सीदतश्चान्यान् विमुखान् समरे गतान् । विद्रुतान् भयसंविग्नांस्तथा विशकृतो परान् ॥ ५२ ॥ भीमसेनस्य मार्गेषु पतितान्पर्वतोपमान् । अपश्यं निहतान्नागान् राजन्निष्ठीवतो परान् ॥ ५३ ॥ वमन्तो रुधिरं चान्ये भिन्नकुम्भा महागजाः । विह्वलंतो गता भूमिं शैला इव धरातले ॥ ५४ ॥ मेदोरुधिरदिग्धाङ्गो वसामज्जासमुक्षितः । व्यचरत्समरे भीमो दण्डपाणिरिवांतकः ॥ ५५ ॥ गजानां रुधिरक्लिन्नां गदां बिभ्रद्वृकोदरः । घोरः प्रतिभयश्चासीत्पिनाकीव पिनाकधृक् ॥ ५६ ॥ संमथ्यमाना क्रुद्धेन

प्रहार होनेसे पहाड़का चूरा २ होजाता है तैसे भीमसेनके एकही प्रहारसे मरते हुए हजारों हाथी एमें दीखते थे ॥ ५० ॥ इस समय कितने ही हाथियोंके दाँत टूटगये, कितनों ही की कनपटियें फटगयीं, कितनों ही की गरदनोंकी हड्डियें चूरा२ होगईं इस प्रकार पहाड़ोंकेसे शरीरों वाले अनेकों हाथी मारे गये थे ॥ ५१ ॥ इसके सिवाय कितने ही हाथी चीखें मार रहे थे, कितने ही दब रहे थे, कितने ही दौड़ रहे थे, कितने ही भयभीत होकर रणमेंसे भाग रहे थे, कितने ही मर कर भीमसेनके मार्गमें पहाड़की समान रुकावट कर रहे थे और कितने ही हाथियोंके मुखोंमें झाग आगये थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ और गण्डस्थल फटजानेसे कितने ही हाथी तो रुधिर ओकते हुए पहाड़ों की समान पृथिवी पर गिर कर जहां तहां तड़फ रहे थे ॥ ५४ ॥ हाथियोंकी मेदा, रुधिर, वसा और मज्जा आदिसे सने हुए शरीर वाला भीमसेन, हाथमें दण्ड लेकर घूमते हुए यमराजकी समान और हाथियोंके रुधिरसे सनी हुई गदा हाथमें होनेके कारण पिनाक नामक धनुषसहित पिनाकधारी शङ्करकी समान महाभयानक दीखता था ॥ ५५ ॥ ५६ क्रोधमें भरेहुए भीमसेन

भीमसेनेन दंतिनः। सहसा प्राद्रवन् क्लिष्टा-मृद्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ५७ ॥ तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः। पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवामराः ॥ ५८ ॥ शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितां गजशोणितैः। कृतांत इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥ ५९ ॥ व्यायच्छमानं गदया दिक्षु सर्वासु भारत। अपश्याम रणे भीमं नृत्यन्तमिव शंकरम् ॥ ६० ॥ यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम्। अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥ ६१ ॥ विमिश्रां केशमज्जाभिः प्रदिग्धां रुधिरेण च। पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ ६२ ॥ यथा पशूनां सङ्घातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत्। तथा भीमो गजानीकं गदया समकालयत् ॥ ६३ ॥ गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समततः।

के हाथसे मरते हुए हाथी अचानक इधरसे उधरको भागते हुए तुम्हारी सेनाको कुचल रहे थे ॥ ५७ ॥ जैसे युद्धके समय देवता इन्द्रकी रक्षा करते हैं तैसे ही अभिमन्यु आदि महारथी युद्ध करते हुए भीमसेनकी रक्षा कर रहे थे॥ ५८॥ मारे हुए हाथियोंके रुधिरसे सनीहुई गदा हाथमें होनेके कारण भीमसेन कालकी समान बड़ा भयानक मालूम होता था॥ ५६॥ हाथमें गदा लेकर सब दिशाओंमें अपना बल दिखाता और घूमता हुआ भीमसेन ऐसा मालूम होता था, मानो प्रलयकालमें शङ्कर नाच रहे हैं और हे महाराज! यमराजके दण्डकी समान तथा इन्द्रके वज्रकी समान मारते समय शब्द करनेवाली, केश और मज्जासे लिपटी हुई तथा रुधिरमें सनी हुई उसकी भयानक गदा, प्राणीमात्रका विनाश करते हुए कोपमें भरे रुद्रके पिनाक धनुषसी दीखती थी ॥ ६०–६२ ॥ जैसे ग्वालिया लाठीसे अपने पशुओंको मार रहा हो, इसप्रकार ही भीमसेन अपनी गदासे हाथियोंकी सेनाको माररहा था ६३ भीमसेनकी गदासे तथा दूसरे योधाओंके बाणोंसे घायल होते

स्त्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन् कुञ्जरास्तव ॥ ६४ ॥ महावात इवाभ्राणि विधमित्वा स वारणान् । अतिष्ठत् तुमुले भीमः श्मशान इव शूलभृत् ॥ ६५ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थ-
दिवसे भीमयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

सञ्जय उवाच । हते तस्मिन् गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव । भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥ १ ॥ ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् । अभ्यद्रवन् भीमसेनं नर्दन्तं भैरवान् रवान् ॥ २ ॥ तं बलौघमपर्यन्तं देवैरपि सुदुःसहम् । आपतन्तं सुदुष्पारं समुद्रमिव पर्वणि ॥ ३ ॥ रथनागाश्वकलिलं शंख-दुन्दुभिनादितम् । अनन्तरथपादातं नरेन्द्रस्तिमितं ह्रदम् ॥ ४ ॥ तं भीमसेनः समरे महोदधिमिवापरम् । सेनासागरमक्षोभ्यं वेलेव

हुए हाथी तुम्हारी सेनाके रथोंको कुचलते हुए भागरहे थे ६४ जैसे उग्र पवन बादलोंको छिन्न भिन्न करडालता है तैसे ही भीमसेन तुम्हारे पक्षकी हाथियोंकी सेनामें मार काट करके जैसे त्रिशूलधारी शिव महा-श्मशानमें खड़े होते हैं तैसे ही महाघोर युद्धवाली रणभूमिमें खड़ा था ॥ ६५ ॥ बासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि–जब भीमसेनने उस हाथियोंकी सेनाका नाश करडाला तब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन पुकारकर सब सेनासे कहने लगा, कि–भीमसेनको मारडालो ॥ १ ॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे सब योधा भयङ्कर शब्द करते हुए भीमसेनके ऊपर टूटपड़े ॥२॥ जिसको देवता भी न सह सकें ऐसे पूर्णिमाके दिन उछलते हुए समुद्रके अपार प्रवाहकी समान, दूसरे महासागर की समान असंख्यों रथ, हाथी और घोड़ोंके समूहवाले शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्दसे गूँजते हुए अनन्त रथ और पैदलों वाले अक्षोभ्य सेनासागरको, किनारेकी समान भीमसेनने रोक

समवारयत् ॥५॥ तदाश्चर्यमपश्याम पाण्डवस्य महात्मनः । भीमसेनस्य समरे राजन् कर्मातिमानुषम् ॥ ६ ॥ उदीर्णान् पार्थिवान् सर्वान् साश्वान् सरथकुञ्जरान् । असम्भ्रमं भीमसेनो गदया समवारयत् ॥७। स सम्वार्य बलौघांस्तान् गदया रथिनां वरः । अतिष्ठत्तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाचलः ॥ ८ ॥ तस्मिन्सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे । भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ९ ॥ द्रौपदेयाभिमन्युश्च शिखण्डी चापराजितः । न प्राजहन् भीमसेनं भये जाते महाबलम् ॥ १० ॥ ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदां । अधावत्तावकान् भीमदण्डपाणिरिवान्तकः ॥११॥ पोथयगन् रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाभिभूः । कर्षयन् रथवृन्दानि बाहुवेगेन पांडवः ॥१२॥ विनिघ्नन् व्यचरत्संख्ये युगांते काल-

लिया ॥ ३-५ ॥ हे राजन् ! रणमें पाण्डुनन्दन महात्मा भीमसेनके उस अमानुषी पराक्रमको देखकर हमें तो बड़ा अचरज हुआ ॥ ६ ॥ घोड़े रथ और हाथियों सहित अपने ऊपर चढ़कर आते हुए सब राजाओंको भीमसेनने जरा न घबड़ाकर अपनी गदासे रोक दिया ॥ ७ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ वह भीमसेन उन सेनाके समूहोंको अपनी गदासे रोककर उस घोर संग्राममें मेरु पहाड़की समान खड़ा होगया ॥ ८ ॥ ऐसे तुमुल युद्धके महाघोर समयमें उसके भाई, बेटे, पृषत्वंशी धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु और किसीसे न हारनेवाला शिखण्डी आदि योधा भयके कारण उस महाबलीके पाससे न हटे ॥ ९ ॥ १० ॥ शैक्य जातिके लोहेकी बनायी हुई अतिभारी बड़ी गदाको लेकर भीमसेन, हाथमें दण्ड लेकर दौड़तेहुए यमराजकी समान तुम्हारी सेनाके ऊपरको फिर दौड़ा ॥ ११ ॥ और यह पाण्डुपुत्र भीमसेन अपने हाथके झपाटेसे सब रथोंके समूहोंको तोड़ता हुआ तथा घुड़सवारोंका नाश करताहुआ कितने ही रथोंको घसीटने लगा ॥१२॥ रणमें जहां तहां दीखनेवाला वह पांडुनन्दन अपनी जंघाओंके वेगसे

वद्रिशुः। ऊरुवेगेन सङ्कर्षन् रथजालानि पाण्डवः ॥ १३ ॥
वलानि स ममर्दाशु नड्वलानीव कुञ्जरः। मृद्नन् रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥ १४ ॥ सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः। गदया व्यधमंत्सर्वान् वातो वृक्षानिवौजसा ॥ १५ ॥ भीमसेनो महाबाहुस्तव पुत्रस्य वै बले। सापि मज्जावसामांसैः प्रदिग्धा रुधिरेण च ॥ १६ ॥ अदृश्यत महारौद्रा गदा नागाश्वपातनी। तत्र तत्र हतैश्चापि मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १७ ॥ रणाङ्गणं समभवन् मृत्योरावाससन्निभम्। पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ १८ ॥ यमदण्डोपमामुग्रामिंद्राशनिसमस्वनाम्। दद्दशुर्भीमसेनस्य रौद्रीं विशसनीं गदां ॥ १९ ॥ आविध्यतो गदां तस्य कौन्तेयस्य महात्मनः। वभौ रूपं महा-

---

वहुतसे रथोंकी पंक्तियोंको खेंचता हुआ तथा प्रलय केसमय कालकी समान मारकाट करता हुआ घूमने लगा ॥ १३ ॥ जैसे हाथी सेंटोंके वनको पैरोंसे कुचल डालता है तैसे ही वह तुम्हारे योधाओंको मसल रहा था, उसने रथमेंसे रथियोंको, हाथियोंपरसे हाथीसवारोंको घोड़ों परसे घुड़सवारोंको उतारकर तथा पैदलोंको तैसे ही पकड़कर मसल डाला और जैसे वायु वल से वृक्षोंको उखाड़ डालता है तैसे ही महावाहु भीमसेनने अपनी गदासे तुम्हारे पुत्रकी सेनामें सबका संहार करडाला, रुधिर, आंतें, चरवी और मांससे लिहसीहुई, हाथी और घोड़ोंका संहार करनेवाली उसकी गदा भी वड़ी भयानक दीखती थी, मारकाट होनेसे उलटे सीधे पड़े हुए मनुष्य हाथी और घोड़ोंसे रणभूमि मृत्युके निवासस्थानसी वनगई थी और कोपमें भरकर प्राणियोंका संहार करते हुए रुद्रके पिनाककी समान यमराजके दण्डकी समान अथवा इन्द्रके वज्रकी समान भीमसेनकी प्राणघातिनी उग्र गदाको सब लोग देखने लगे ॥ १४-१९ ॥ संहार करनेके लिये चारों ओर

घोरं कालस्येव युगक्षये ॥ २० ॥ तन्तथा महतीं सेनां द्रावयंतं पुनः पुनः । दृष्ट्वा मृत्युमिवायान्तं सर्वे विमनसोऽभवन् ॥२१॥ यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पांडवः । तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत ॥ २२ ॥ प्रदारयन्तं सैन्यानि बलेनामितविक्रमम् । ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवांतकम् ॥ २३ ॥ तन्तथा भीमकर्माणं प्रगृहीतमहागदम् । दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात् ॥ २४ ॥ महता रथघोषेण रथेनादित्यवर्चसा । छादयन् शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २५ ॥ तमायान्तं तथा दृष्ट्वा व्यात्ताननमिवान्तकम् । भीष्मं भीमो महाबाहुः प्रत्युदीयादमर्षितः ॥ २६ ॥ तस्मिन् क्षणे सात्यकिः सत्यसन्धः शिनिप्रवीरोऽभ्यपतत्पितामहम् । निघ्नन्नमित्रान् धनुषा

से गदाको घुमाते हुए महात्मा भीमसेनका उस समयका रूप युग के क्षयकालमें कोपेहुए कालकी समान दीखता था ॥ २० ॥ इस प्रकार उस बड़ीभारी सेनाको बार२ भगाते हुए मृत्युकी समान भीमसेनको सामने आता देखकर सब उदास होगये ॥ २१ ॥ हे भारत ! गदाको ऊँची करके भीमसेन जिधर जिधरको देखता था उस ही उस दिशाकी सेनायें भागने लगती थीं ॥२२॥ सब सेनाका संहार करते हुए तथा मुख बाये हुए, कालकी समान, और मानो सब सेनाको निगल ही जायगा ऐसे, हाथमें गदा लिये, भयङ्कर कर्म वाले तथा बलसे अपार पराक्रमी दीखतेहुए भीमसेनको देखकर भीष्मजी एकसाथ उसके ऊपर चढ़ आये ॥ २३ ॥ २४ ॥ "और वर्षा करता हुआ मेघ जैसे आगेको बढ़ा चला आता है तैसे ही सूर्यकी समान दमकते हुए रथमें बैठकर रथके शब्दके साथ बाणोंसे मुझे चारों ओरसे ढकते हुए भीष्मजी मेरे सामनेको चले आरहे हैं" ऐसा जानकर, फाड़ेहुए मुखवाले कालकी समान उन महात्माके सामनेको भीमसेन गर्वके साथ बढ़ा ॥ २५ ॥ २६॥ और उसी समय सत्य प्रतिज्ञावाला शिनि-

हढेन सङ्कम्पयंस्तव पुत्रस्य सैन्यम् ॥ २७ ॥ तं यांतमश्वै रजतप्रकाशैः शरान् वपन्तं निशितान् सुपुङ्खान् । नाशक्नुवन् धारयितुं तदानीं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥ २८ ॥ अविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुषो राक्षसोऽसौ तदानीं । शरैश्चतुर्भिःप्रतिविद्धय तञ्च नप्ता शिनेरभ्यपतद्रथेन ॥ २९ ॥ अन्वागतं वृष्णिवरं निशम्य तं शत्रुमध्ये परिवर्तमानम् । प्रद्रावयन्तं कुरुपुङ्गवांश्च पुनः पुनश्च प्रणदन्तमाजौ ॥ ३० ॥ योधास्त्वदीयाः शरवर्षैरवर्षन् मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः । तथापि तं धारयितुं न शेकुर्मध्यंदिने सूर्यमिवातपंतम् ॥ ३१ ॥ न तत्र कश्चिन्नविषण्ण आसीदृते राजन् सोमदत्तस्य पुत्रात् । स वै समादाय धनुर्महात्मा भूरिश्रवा

वंशी सात्यकी भी हाथमें मजबूत धनुष लेकर मार्गमें शत्रुओंको मारता तथा तुम्हारी सेनाको कम्पायमान करता हुआ पितामहके ऊपरको टूटपड़ा ॥ २७ ॥ हे भारत ! चांदीकी समान उज्वल वर्णवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर अति तीखे और सुन्दर परों वाले बाणोंको बरसाते हुए सात्यकीको तुम्हारे योधा नहीं रोक सके ॥ २८ ॥ परन्तु उस समय अलंबुष नामके राक्षसराजने दश बाण छोड़कर सात्यकीको बींधदिया, तब उसके बदलेमें चार बाण छोड़कर सात्यकीने भी उसके ऊपर प्रहार किया और अपना रथ आगेको बढाया, वृष्णिवंशका श्रेष्ठ पुरुष सात्यकी सेनामें हमारे सामने आपहुंचा है तथा कुरुवंशके बड़े योधाओंको भगाये देता है और बारम्बार रणमें गरजता हुआ आगेको बढ़ रहा है, यह जानकर जैसे मेघ पहाड़के ऊपर जोरसे जल बरसाना आरम्भ करदेते हैं तैसे ही तुम्हारे योधा उसके ऊपर बाण बरसाने लगे, परन्तु जैसे मध्यान्हके समय तपते हुए सूर्यको मेघ नहीं ढक सकता है तैसे ही वह योधा उसको सह नहीं सके २९ ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाके सिवाय तुम्हारी सेनामें ऐसा एक भी योधा नहीं था, कि-जो भयभीत न होगया

भारत सौमदत्तिः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वा रथान् स्वान्व्यपनीयमानान् प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धुमिच्छन् ॥ ३३ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सात्यकि-भूरिश्रवःसमागमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

सञ्जय उवाच। ततो भूरिश्रवा राजन् सात्यकिं नवभिः शरैः। प्राविध्यद्भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १ ॥ कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः अवारयदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २॥ ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः। सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ३ ॥ तं चैव पांडवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे। परिवार्य स्थिताः संख्ये समंतात् सुमहौजसः ॥ ४ ॥ भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत। दुर्योधनमुखान् सर्वान् पुत्रांस्ते पर्यवारयत् ॥ ५ ॥ रथैरनेकसा-

---

हे, हे राजन्! यह भूरिश्रवा हाथमें बड़ाभारी धनुष लेकर मेरे पक्षके रथ पीछेको हट रहे हैं ऐसा जानकर सात्यकीके साथ युद्ध करनेके लिये आगेको बढ़ा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तिरेसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि- हे राजन्! जैसे महावत अंकुशसे हाथीके ऊपर प्रहार करता है तैसे ही भूरिश्रवाने नौ बाण छोड़कर सात्यकीके ऊपर प्रहार किया ॥ १ ॥ और सात्यकीने भी सबके देखते हुए नौ बाण छोड़कर कौरवयोधा भूरिश्रवाके ऊपर प्रहार किया ॥ २ ॥ हे राजन्! अपने सगे भाइयोंसे घिरे हुए राजा दुर्योधनने युद्धमें तयार होकर इधर उधर घूमते हुए भूरिश्रवाको चारों ओरसे घेर लिया अर्थात् उसकी रक्षा करने लगा ॥३॥ और तेजस्वी पाण्डव भी तत्काल दौड़ आये तथा सात्यकीको घेरकर उसकी रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥ परन्तु हे राजन्! कोपमें भरेहुए भीमसेनने अपनी गदा उठाकर दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्रोंको पीछेको हटा दिया ॥ ५ ॥ तथा हजारों रथोंसे

दसैः क्रोधामर्षसमन्वितः । नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलम् ॥ ६ ॥ विव्याध विशिखैः षड्भिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः । दुर्योधनश्च समरे भीमसेनं महारथम् ॥ ७ ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्नवभिः शितैः । ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः ॥ ८ ॥ आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत् । एते महारथाः शूरा धार्त्तराष्ट्राः समागताः ॥ ९ ॥ मामेव भृशसंक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि । सोऽयं मनोरथोऽस्माकं चिन्तितो बहुवार्षिकः ॥१०॥ सफलः सूत चाद्येह योऽहं पश्यामि सोदरान् । यत्राशोकसमुत्क्षिप्ता रेणवो रथनेमिभिः ॥ ११ ॥ मयास्यंत्यन्तरिक्षं हि शरवृन्दैर्दिगंतरे । तत्र तिष्ठति सन्नद्धः स्वयं राजा सुयोधनः ॥ १२ ॥ भ्रातरश्चास्य सन्नद्धाः कुलपुत्रा मदोत्कटाः । एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः ॥ १३ ॥ तस्मात् ममाश्वान् संग्रामे यत्तः

घिरेहुए क्रोध और वैरमें भरेहुए तुम्हारे पुत्र नन्दकने महाबली भीमसेनके ऊपर अतितीखे कङ्कपत्तीके परोंवाले छः बाण छोड़कर प्रहार किया तथा कोपमें भरेहुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने दूसरी ओरसे सानपर धरेहुए नौ बाणोंसे भीमसेनकी छातीमें प्रहार किया, महाबाहु भीमसेन अपने श्रेष्ठ रथमें बैठा और अपने सारथी विशोकसे कहने लगा, कि--यह महारथी तथा शूर धृतराष्ट्रके पुत्र महाक्रोधमें भरकर मेरे प्राण लेनेके लिये युद्धमें आपहुंचे हैं ॥ ६-८ ॥ हे सूत ! मैं आप अपने भाइयोंको अपने सामने युद्ध करनेके लिये खड़े हुए देख रहा हूं इसकारण मैं बहुत दिनोंसे अपने अन्तःकरणमें जमे हुए मनोरथरूप वृक्षपर फल आये हुए समझता हूं ॥९॥१०॥ हे विशोक ! जहां रथके पहियोंकी धारोंसे उड़ी हुई धूल बाणोंके समूहोंके साथ दिशाओंमें फैल रही है तहां युद्धके लिये तयार हुआ राजा दुर्योधन तथा कमर कसे हुए उसके भाई तथा मतवाले कुलपुत्र खड़े हैं इन सबका आज तेरे देखते हुए निःसन्देह नाश कर दूंगा ॥११--१३॥ इसकारण हे सारथी ! सावधान

संयच्छ सारथे। एवमुक्त्वा ततः पार्थस्तव पुत्रं विशांपते ॥१४॥ विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः। नन्दकञ्च त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनांतरे ॥ १५ ॥ तन्तु दुर्योधनः षष्ट्या विध्वा भीमं महाबलम्। त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥ भीमस्य च रणे राजन् धनुश्चिच्छेद भास्वरम्। मुष्टिदेशे भृशं तीक्ष्णैस्त्रिभिर्भल्लैर्हसन्निव ॥ १७ ॥ समरे प्रेक्ष्य यन्तारं विशोकन्तु वृकोदरः। पीडितं विशिखैस्तीक्ष्णैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १८ ॥ अमृष्यमाणः संरब्धो धनुर्दिव्यं परामृशन्। पुत्रस्य ते महाराज वधार्थं भरतर्षभ ॥ १९ ॥ समादधत्सुसंक्रुद्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनम्। तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुकमुत्तमम् ॥ २० ॥ सोऽपविध्य धनुश्छिन्नं पुत्रस्ते क्रोधमूर्छितः।

होकर मेरे घोड़ोंको उधर रणमें ले चल, हे राजन् ! भीमसेनने ऐसा कहकर सोनेके बने और तेज किये हुए तीखे बाणोंको तुम्हारे पुत्रोंके ऊपर प्रहार करना आरम्भ कर दिया तथा तीन बाण छोड़कर नन्दककी छातीमें भी प्रहार किया ॥१४ ॥ १५ ॥ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने भी साठ बाण छोड़कर महाबली भीमसेन को और तीन बाण छोड़कर उसके सारथी विशोकको घायल करदिया ॥ १६ ॥ हे राजन ! तुम्हारे पुत्रने खेल ही खेलमें भल्ल नामके तीन बाण छोड़कर भीमसेनके तेजस्वी धनुषके पकड़नेसे आगेके भागको काटदिया ॥ १७ ॥ तुम्हारे धनुषधारी पुत्र दुर्योधनने बाण छोड़कर मेरे सारथी विशोकको घायल कर दिया है, इस बातको न सहसकनेके कारण कोपमें भरेहुए भीमसेनने तुम्हारे पुत्रका प्राणान्त करनेके लिये दूसरे दिव्य धनुष पर रोदा चढ़ाकर उसके ऊपर तेज धार और सुन्दर परोंवाला बाण चढ़ाया और दुर्योधनके धनुषको काट डाला ॥१८-२० ॥ परन्तु अपने कटेहुए धनुषको फेंककर कुपित हुए तुम्हारे पुत्रने बडे, वेगवाला

अन्यत्कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरम् ॥ २१ ॥ सन्दधे विशिखं घोरं कालमृत्युसमप्रभम् । तेनाजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनांतरे ॥ २२ ॥ स गाढविद्धो व्यथितः स्यन्दनोपस्थ आविशत् । स निषण्णो रथोपस्थे मूर्छामभिजगाम ह ॥ २३ ॥ तं दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः । नामृष्यन्त महेष्वासाः पांडवानां महारथाः ॥ २४ ॥ ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम् । पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि ॥ २५ ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः । दुर्योधनं त्रिभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २६ ॥ शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः । रुक्मपुंखैर्महेष्वासः स विद्धो व्यपयाद्रणात् ॥ २७ ॥ प्रत्युद्ययुस्ततो भीमं तव पुत्राश्चतुर्दश । सेनापतिः सुषेणश्च जलसंधः सुलोचनः ॥ २८ ॥ उग्रो भीमरथो भीमो वीरबाहुरलोलुपः ।

दूसरा धनुष हाथमें लिया ॥ २१ ॥ और कालके भी कालकी समान प्रभावाला घोर बाण चढ़ाकर क्रोधमें भरेहुए उसने वह बाण भीमसेनकी बीच छातीमें मारा ॥ २२ ॥ उस बाणसे बहुत ही घायल और पीड़ित हुआ भीमसेन रथकी बैठकपर बैठ गया और तहां ही बैठेहुए उसको मूर्छा आगयी ॥ २३ ॥ तिस भीमसेनको मूर्छित हुआ देखकर अभिमन्यु आदि पाण्डवोंके बड़े २ धनुषधारी महारथी इसको सह न सके ॥ २४ ॥ इसकारण वह सावधान होकर तुम्हारे पुत्रके शिरपर तीक्ष्ण तेजवाले शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥ परन्तु इतनेमें ही चेत होनेपर महाबली भीमसेनने दुर्योधनके तीन बाण मारकर फिर पांच बाण मारे॥२६॥ शल्यको महाधनुषधारी भीमसेनने सोनेके परोंवाले पचीस बाणों से घायल करदिया और वह शल्य घायल होते ही रणमेंसे भाग गया ॥ २७ ॥ तब सेनापति, सुषेण, जलसन्ध, सुलोचन, उग्र, भीमरथ, भीम, वीरबाहु, अलोलुप, दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विवित्सु, विकट तथा सम, ये तुम्हारे पुत्र, भीमसेनके ऊपर चढ़ गये ॥२८॥

दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ॥ २९ ॥ विसृजन्तो बहून् वाणान् क्रोधसंरक्तलोचनाः । भीमसेनमभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम् ॥ ३० ॥ पुत्रांस्तु तव सम्प्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः । सृक्किणी विलिहन्वीरः पशुमध्ये यथा वृकः ॥ ३१ ॥ अभिपत्य महाबाहुर्गरुत्मानिव वेगतः । सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पांडवः ॥ ३२ ॥ सम्प्रहस्य च हृष्टात्मा त्रिभिर्बाणैर्महाभुजः । जलसन्धं विनिर्भिद्य सोऽनयद्यमसादनम् ॥३३॥ सुषेणञ्च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे । उग्रस्य स शिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं शुचि ॥ ३४ ॥ पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम् । वीरबाहुञ्च सप्तत्या साश्वकेतुंससारथिम् ॥ ३५ ॥ निनाय समरे वीरः परलोकाय पांडवः । भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव ॥ ३६ ॥ पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद्यमसादनम् । ततः

॥ २९ ॥ क्रोधके मारे लाल२ आंखे निकाले हुए ये भीमसेनके ऊपर एक साथ धावा करके बहुतसे वाण छोड़ते हुए उसको बड़ा ही घायल करने लगे ॥ ३० ॥ तुम्हारे पुत्रोंको इसप्रकार प्रहार करते देखकर जबाड़ोंको चाटते हुए महाबली भीमसेनने, जैसे भेड़िया पशुओंके समूहपर टूट पड़ता है तैसे ही गरुड़की समान वेगसे तुम्हारी सेनाके ऊपर टूटकर तेज वाणसे सेनापतिका शिर काटलिया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और जराएक हँसकर महाबाहु वाले भीमसेनने तीन वाण छोड़कर जलसंधको बींधकर हँसते२ यमपुरीमें पहुंचा दिया ॥ ३३ ॥ फिर सुषेणको भी मारकर मृत्युके पास भेजदिया, उग्रका कुण्डलोंसे शोभायमान टोपसहित चन्द्रमा की समान शिर भल्ल नामके वाणसे काट कर मुकुटसहित नीचे गिरा दिया तथा सत्तर वाण छोड़कर उस वीर भीमसेनने रणमें वीरबाहुको घोड़े ध्वजा और सारथी सहित परलोकमें भेज दिया और हे राजन् ! भीमसेनने तुम्हारे भीम और भीमरथ नामके दो पुत्र, कि-जो बड़े ही दुर्मद थे उनको भी हँसते२ यमराजके दरवारमें

सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे ॥ ३७ ॥ मिषतां सर्वसैन्याना-
मनयद्यमसादनम् । पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम् ॥३८॥
शेषा येऽन्येऽभवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः । विप्रद्रुता दिशो
राजन् वध्यमाना महात्मना ॥३९॥ ततोऽब्रवीच्छान्तनवः सर्वानेव
महारथान् । एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥४०॥
यथाप्राग्र्यान् यथाज्येष्ठान् यथाशूरांश्च सङ्गतान् । निपातयत्यु-
ग्रधन्वा तं प्रगृह्णीत मा चिरम् ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वा ततः सर्वे
धार्त्तराष्ट्रस्य सैनिकाः । अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलं
॥ ४२ ॥ भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशाम्पते । अभ्ययात्स-
हसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ४३ ॥ आपतन्नेव च रणे
भीमसेनं शिलीमुखैः । अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम्
॥ ४४ ॥ अभिमन्युमुखास्तत्तु नामृष्यन्त महारथाः । भीमस्या-

पहुंचा दिया और घोड़ेके नालकेसे आकार वाले बाणसे इस
महारणमें सब सेनाके सामने सुलोचनको भी यमालयमें भेजदिया,
शेष रहेहुए तुम्हारे पुत्र भीमसेनके पराक्रमको देखकर उसके भय
से पीड़ापाते तथा उस महात्माके हाथकी मार खाते२ चारों ओर
को भाग निकले ॥ ३४–३९ ॥ तब तो शन्तनुनन्दन भीष्मजी
सब ही महारथियोंसे कहने लगे, कि—यह क्रोधमें भराहुआ उग्र
धनुषधारी भीमसेन रणमें शूर, अगुआ और बड़े धृतराष्ट्रके महा-
रथी पुत्रोंको मार२कर गिराये देता है, इसलिये इसको पकड़ो,
देर न करो, ॥ ४० ॥ ४१ ॥ भीष्मजीके इतना कहते ही धृतराष्ट्र
के सब योधा क्रोधमें भरे हुए महाबली भीमसेनके ऊपरको दौड़े
॥ ४२ ॥ हे राजन् ! मद टपकानेवाले अपने हाथी पर बैठकर
भगदत्त एकायकी जहां भीमसेन खड़ा था तहां आपहुंचा ॥४३॥
रणमें आते क्षण ही उसने, जैसे मेघ सूर्यको ढक देता है तैसे
बाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ॥४४॥ जिनको अपने
भुजबलका भरोसा था वह अभिमन्यु आदि महारथी इस रणमें

च्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः ॥ ४५ ॥ त एनं शरवर्षेण समंतात्पर्यदारयन् । गजं च शरवृष्टया तु विभिदुस्ते समन्ततः ॥ ४६ ॥ स शस्त्रवृष्ट्याभिहतः समस्तैस्तैर्महारथैः । प्राग्ज्योतिषगजो राजन् नानालिङ्गैः सुतेजनैः ॥ ४७ ॥ सञ्जातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद्रणे । गभस्तिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४८ ॥ सञ्चोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः । अभ्यधावत तान् सर्वान् कालोत्सृष्ट इवांतकः ॥ ४९ ॥ द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम् । तस्य तत्सुमहद्रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः ॥५०॥ असह्यं मन्यमानाश्च नातिप्रमनसोऽभवन् । ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनांतरे ॥५१॥ आजघान महाराज शरेणानतपर्वणा । सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः ॥ ५२ ॥ मूर्छयाभिपरीतात्मा ध्वजयष्टिं समाश्रयत् । तांस्तु भीतान्समालक्ष्य भीमसेन-

---

भीमसेनके ढकजानेको न सकसके ॥ ४५ ॥ उन्होंने भी बाणोंकी वर्षा करके भगदत्तको चारों ओरसे घेर लिया और उसके हाथी को भी चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके घायल कर दिया ॥ ४६ ॥ इन सब महारथियोंके अनेकों प्रकारके बाणोंसे घायल हुआ तथा जिसके देहमेंसे रुधिर टपक रहा था ऐसा भगदत्तका हाथी, सूर्यकी किरणोंसे रँगेहुए बड़े भारी मेघकी समान रणमें बड़ा ही सुन्दर दीखता था ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फिर भगदत्तने मद टपकानेवाले हाथीको हांका तो कालके प्रेरणा किये हुए यमराजकी समान वह हाथी महारथियोंकी ओरको दूने वेग से दौड़ा, उस समय उसके पैरोंसे भूमि दहली जाती थी, इस हाथीके ऐसे करालरूप और असह्य वेगको देखकर सब महारथियों के साहस ठण्डे पड़गये,हे महाराज! तब कोपमें भरेहुए उस राजाने नमेहुए फलक वाले एक बाणसे भीमसेनकी छातीमें प्रहार किया, महारथी और महाधनुषधारी होने पर भी वह भीमसेन राजा भगदत्तके बाणसे अत्यन्त घायल होगया ॥४९-५२॥ और मूर्छा

श्च मूर्छितम् ॥ ५३ ॥ ननाद बलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान् ततो घटोत्कचो राजन् प्रेक्ष्य भीमं तथागतम् ॥ ५४ ॥ संक्रुद्धो राक्षसो घोरस्तत्रैवांतरधीयत । स कृत्वा दारुणां मायां भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ ५५ ॥ अदृश्यत निमेषार्धाद् घोररूपं समास्थितः ऐरावणं समारूढः स वै मायाकृतं स्वयं ॥ ५६ ॥ तस्य चान्येऽपि दिङ्नागा बभूवुरनुयायिनः । अञ्जनो वामनश्चैव महापद्मश्च सुप्रभः ॥ ५७॥ त्रय एते महानागा राक्षसैः समधिष्ठिताः । महाकायास्त्रिधा राजन् प्रस्रवन्तो मदं बहु ॥ ५८ ॥ तेजोवीर्यबलोपेता महाबलपराक्रमाः । घटोत्कचस्तु स्वं नागं चोदयामास तं तदा ॥ ५९ ॥ सगजं भगदत्तन्तु हंतुकामः परन्तपः । ते चान्ये चोदिता नागा राक्षसैस्तैर्महाबलैः ॥ ६० ॥ परिपेतुः

आजानेके कारण अपने रथकी ध्वजाकी टेक लगा कर विश्राम लेने लगा उन महारथियोंको डरे हुए और भीमसेनको मूर्छित हुआ देखकर ॥ ५३ ॥ प्रतापी भगदत्तने बड़े जोरसे गरजकर शब्द किया, हे राजन्! तब भीमसेनको इस दशामें देखकर घटोत्कच ॥ ५४ ॥ घोर राक्षस क्रोधमें भरकर वहां ही अन्तर्धान होगया और उसने डरपोकोंको भयभीत करनेवाली दारुण माया रचीं ॥ ५५ ॥ आधे ही निमेष बाद वह घोररूप धारण कियेहुए दीखने लगा तथा अपनी मायासे ऐरावत हाथीको बनाकर उस के ऊपर चढ़ आया ॥ ५६ ॥ अन्य दिग्गज उसके पीछे २ चल रहे थे अञ्जन, वामन और सुन्दर कान्तिवाला महापद्म ५७ इन तीनों बड़े २ दिग्गजोंके ऊपर राक्षस बैठें हुए थे, हे राजन्! ये हाथी बड़े२ शरीरोंवाले और तीन स्थानोंमेंसे मदको टपका रहे थे ॥ ५८ ॥ तेज, वीर्य और बलवाले तथा महापराक्रमी थे, उस समय घटोत्कचने अपने उस हाथीको चलाया ॥ ५९ ॥ शत्रुतापी घटोत्कचने हाथीसहित भगदत्तको मारना चाहा, तब दूसरे महाबली राक्षसोंने भी उन और हाथियोंको बढ़ाया ॥ ६० ॥

सुसंरब्धाश्चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्दिशम् । भगदत्तस्य तं नागं विषाणैरभ्यपीडयन् ॥ ६१ ॥ स पीड्यमानस्तैर्नागैर्वेदनार्तः शराहतः । अनदत्सुमहानादमिंद्राशनिसमस्वनम् ॥ ६२ ॥ तस्य तं नदतो नादं सुघोरं भीमनिःस्वनम् । श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद् द्रोणं राजानं च सुयोधनम् ॥ ६३ ॥ एष युध्यति संग्रामे हैडिम्बेन दुरात्मना । भगदत्तो महेष्वासः कृच्छ्रे च परिवर्तते ॥ ६४ ॥ राक्षसश्च महाकायः स च राजातिकोपनः । एतौ समेतौ समरे कालमृत्युसमावुभौ ॥६५॥ श्रूयते चैव हृष्टानां पाण्डवानां महास्वनः । हस्तिनश्चैव सुमहान् भीतस्य रुदितध्वनिः ॥ ६६ ॥ तत्र गच्छाम भद्रं वो राजानं परिरक्षितुम् । अरक्ष्यमाणः समरे क्षिप्रं प्राणान् विमोक्ष्यति ॥ ६७ ॥ ते त्वरध्वं महावीर्याः किं चिरेण प्रया-

---

चार२ दांतोंवाले वह हाथी क्रोधमें भरकर चारों ओरको पीड़ा देने लगे ॥ ६१ ॥ उन हाथियोंके पीड़ा देनेपर बाणोंसे घायल हुआ वह हाथी व्यथासे आतुर होकर इन्द्रके वज्रपातके शब्दकी समान बड़ी जोरसें चिंघारने लगा ॥ ६२ ॥ अतिघोर भयानक रूपसे चिंघारते हुए उस हाथीके उस शब्दको सुनकर भीष्मजीने द्रोणाचार्यसे तथा राजा दुर्योधन से कहा, कि—॥ ६३ ॥ यह महाधनुषधारी भगदत्त रणमें हिडिंबाके पुत्र दुष्टात्मा घटोत्कचके साथ युद्ध कररहा है और बड़ी आपत्तिमें आपड़ा है ॥ ६४ ॥ यह राक्षस बड़े शरीर वाला है और यह राजा भी बड़ा क्रोधी है ये दोनों रणभूमिमें काल और मृत्युकी समान जुट गये हैं ६५ देखो प्रसन्न होते हुए पाण्डवोंका बड़ा भारी शब्द सुनायी आरहा है और भयभीत हुए हाथीके रोनेका बड़ाभारी शब्द भी सुनाई आरहा है ॥ ६६ ॥ अब इसमें ही तुम्हारा भला है, कि—चलो तहां ही उस राजाकी रक्षा करनेको चलें, यदि रणमें उसकी रक्षा न होगी तो वह शीघ्र ही अपने प्राणोंको छोड़ बैठेगा ॥ ६७ ॥ जिसको देखने पर रोमांच खड़े हों, ऐसा महाभयानक संग्राम हो

महे । महान् हि वर्तते रौद्रः संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ६८ ॥ भक्तश्च कुलपुत्रश्च शूरश्च पृतनापतिः । युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युत ॥ ६९ ॥ भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा सर्व एव महारथाः । द्रोणभीष्मौ पुरस्कृत्य भगदत्तपरीप्सया ॥ ७० ॥ उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत् । तान् प्रयातान् समालोक्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ७१ ॥ पञ्चालाः पांडवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान् । तान्यनीकान्यथालोक्य राक्षसेंद्रः प्रतापवान् ॥ ७२ ॥ ननाद सुमहानादं विस्फोटमशनेरिव । तस्य तं निनदं श्रुत्वा दृष्ट्वा नागांश्च युध्यतः ॥ ७३ ॥ भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाजमभाषत । न रोचते मे संग्रामो हैडिंबेन दुरात्मना ॥ ७४ ॥ बलवीर्यसमाविष्टः ससहायश्च साम्प्रतम् । नैष शक्यो युधा जेतुमपि वज्रभृता स्वयम् ॥ ७५ ॥ लब्धलक्ष्यः प्रहारी च वयं च श्रान्त-

रहा है,अतः हे महावीरों ! शीघ्रता करो, देर क्यों करते हो,आओ चलें ॥६८॥ हे अटल द्रोण ! यह राजा हमारा प्रेमी,कुलीन,शूर और सेनापति है अतः हमें इसकी रक्षा अवश्य ही करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ भीष्मजीकी इस बातको सुनकर कौरवोंके सब महारथी भगदत्तकी रक्षा करनेकी इच्छासे भीष्म और द्रोणको आगे करके ॥ ७० ॥ बड़ी शीघ्रतासे जहां राजा भगदत्त था उधरको चल दिये उनको जाते हुए देखकर युधिष्ठिर आदि ॥ ७१ ॥ पाण्डवों के साथ पंचाल योधा भी शत्रुओंके पीछे२ चल दिये,अब प्रतापी राक्षसराज उन सेनाओंको देखकर ॥ ७२ ॥ वज्रके टूटनेकी समान बड़ा गरज कर शब्द करने लगा, उसके शब्दको सुनकर तथा हाथियोंको युद्ध करते हुए देख कर ॥ ७३ ॥ शन्तनुनन्दन भीष्मजी द्रोणाचार्यसे फिर कहने लगे, कि-इस दुष्टात्मा घटोत्कच के साथ संग्राम करना मुझे अच्छा नहीं मालूम होता ॥ ७४ ॥ यह बड़े बल और वीरता में भरा हुआ है तथा सहायता भी पारहा है,इस समय वज्रधारी इन्द्र भी युद्ध करके इसको नहीं जीत सकता

वाहनाः । पञ्चालैः पाण्डवेयैश्च दिवसं क्षतविक्षताः ॥ ७६ ॥ तन्न मे रोचते युद्धं पांडवैर्जितकाशिभिः । घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ॥ ७७ ॥ पितामहवचः श्रुत्वा तथा चक्रुः स्म कौरवाः । उपायेनापयानं ते घटोत्कचभयार्दिताः ॥ ७८ ॥ कौरवेषु निवृत्तेषु पांडवा जितकाशिनः । सिंहनादान् भृशं चक्रुः शंखान् दध्मुश्च भारत ॥ ७९ ॥ एवं तदभवद्युद्धं दिवसं भरतर्षभ । पांडवानां कुरूणां च पुरस्कृत्य घटोत्कचम् ॥ ८० ॥ कौरवास्तु ततो राजन् प्रययुः शिविरं स्वकम् । व्रीडमाना निशाकाले पांडवेयैः पराजिता ॥ ८१ ॥ शरविक्षतगात्रास्तु पांडुपुत्रा महारथाः । युद्धे सुमनसो भूत्वा जग्मुः स्वशिविरं प्रति ॥ ८२ ॥ पुरस्कृत्य

॥ ७५ ॥ इस समय इसका निशाना नहीं चूकता है और वराबर प्रहार कर रहा है तथा हमारे वाहन थक गये हैं और दिनभर पञ्चाल तथा पाण्डवोंके द्वारा हम घायल हुए हैं ॥ ७६ ॥ इस लिये जिनकी विजय प्रत्यक्ष दीख रही है उन पाण्डवोंके साथ युद्ध करना मेरी समझमें ठीक नहीं है, इस समय सेनाओंको युद्ध बन्द करनेकी आज्ञा देदो, अब शत्रुओं के साथ कलको लड़ेंगे ॥ ७७ ॥ भीष्मजीकी बात सुनकर घटोत्कचके भयसे घवड़ाते हुए कौरवोंने दूसरे उपायका वहाना लेकर युद्धको वन्द कर दिया ॥ ७८ ॥ कौरवोंके लौटजाने पर प्रकट विजय पानेवाले पाण्डव, हे राजन् ! बड़े जोर से सिंहोंकी समान दहाड़ते हुए शङ्खोंको वजाने लगे ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार घटोत्कचको आगे करके वह पाण्डव और कौरवोंका युद्ध दिन भर हुआ ॥ ८० ॥ हे राजन् ! तदनन्तर सांझ होने पर पाण्डवोंसे हारे हुए कौरव लज्जित होते हुए अपने तंवुओंमें चले गये ॥ ८१ ॥ उधर जिनके शरीर बाणोंसे घायल होरहे हैं ऐसे महारथी पाण्डुनन्दन युद्धमें परम प्रसन्नचित्त होकर अपने तंवुओंमें चले आये ॥८२॥ भीमसेन और घटोत्कच

महाराज भीमसेनघटोत्कचौ । पूजयंतस्तदान्योऽन्यं मुदा परमया युताः ॥ ८३ ॥ नदन्तो विविधान्नादांस्तूर्यस्वनाविमिश्रितान् । सिंहनादांश्च कुर्वंतो विमिश्रान् शंखनिःस्वनैः ॥ ८४ ॥ विनदंतो महात्मानः कम्पयन्तश्च मेदिनीम् । घट्टयन्तश्च मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ॥ ८५ ॥ प्रयाताः शिबिरायैव निशाकाले परन्तप । दुर्योधनस्तु नृपतिर्दीनो भ्रातृवधेन च ॥ ८६ ॥ मुहूर्त्तं चिंतयामास बाष्पशोकसमाकुलः । ततः कृत्वा विधिं सर्वं शिबिरस्य यथाविधि प्रदध्यौ शोकसन्तप्तो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ ८७ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवासावहारे धृतराष्ट्रपुत्रवधे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । भयं मे सुमहज्जातं विस्मयश्चैव सञ्जय । श्रुत्वा पांडुकुमाराणां कर्म देवैः सुदुष्करम् ॥ १ ॥ पुत्राणां च पराभावं श्रुत्वा सञ्जय सर्वशः चिंता मे महती सूत भविष्यति कथमिति

को आगे करके परस्परका सन्मान करते अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए तूर्य आदि अनेकों बाजोंको बजाते शङ्खोंकी ध्वनियोंके साथ सिंहोंकी समान गरजते भूमिको कम्पायमान करते तथा तुम्हारे पुत्रोंके जी दुखाने वाली बातें कहते हुए सब पाण्डव सायंकाल होने पर प्रसन्न होते२ अपने तंबुओंमें गये, अपने भाइयोंके मारे जानेसे दीन हुआ राजा दुर्योधन, आंखोंमें आंसू भरकर शोकसे विकल हो क्षणभरको विचारमें पड़ गया, फिर अपने लश्करको अच्छे प्रकारसे देखभाल करके भाइयोंके दुःखसे दुःखित हुआ राजा दुर्योधन शोकमग्न होकर विचारकरने लगा ॥ ८३-८७ ॥ चौंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥ *

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! जो देवताओंसे भी होना महाकठिन है ऐसे पाण्डवोंके पराक्रमको सुनकर मुझे बड़ा भय और अचरज मालूम होता है ॥ १ ॥ हे सञ्जय ! चारों ओरसे मेरे पुत्रोंका तिरस्कार होता है, हे सूत ! यह सुनकर मुझे बड़ी चिन्ता

॥ २ ॥ ध्रुवं विदुरवाक्यानि धक्ष्यंति हृदयं मम । यथा हि दृश्यते सर्वं दैवयोगेन सञ्जय ॥ ३ ॥ यत्र भीष्ममुखान् सर्वान् शस्त्रज्ञान् योधसत्तमान् । पांडवानामनीकेषु योधयंति प्रहारिणः॥ ४ ॥ केनावध्या महात्मानः पांडुपुत्रा महाबलाः । केन दत्तवरास्तात किं वा ज्ञानं विदंति ते ॥ ५ ॥ येन क्षयं न गच्छंति दिवि तारागणा इव । पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं सैन्यं तु पांडवैः ॥ ६ ॥ मय्येव दंड पतति दैवात्परमदारुणः । यथाऽवध्याः पांडुसुता यथा वध्याश्च मे सुताः ॥ ७ ॥ एतन्मे सर्वमाचक्ष्व याथातथ्येन संजय । न हि पारं प्रपश्यामि दुःखस्यास्य कथंचन॥८॥ समुद्रस्येव महतो भुजाभ्यां प्रतरन्नरः । पुत्राणां व्यसनं मन्ये ध्रुवं प्राप्तं सुदारुणम्॥९॥

होती है, कि-अब क्या होगा ? ॥२॥ निःसन्देह विदुरके वचन मेरे हृदयको जलाकर भस्म कर डालेंगे, हे सञ्जय ! यह जो कुछ होता है, सब दैववश ही होता दीखता है ॥ ३ ॥ जो पाण्डवोंकी सेनाके योधा, जिनके भीष्मपितामह सेनापति हैं ऐसे शस्त्र चलाने में चतुर और योधाओंमें श्रेष्ठ सब पुरुषोंके साथ युद्ध करते हैं और उनका संहार करते हैं ॥ ४ ॥ महाबली महात्मा पाण्डव क्यों नहीं मारे जाते हैं ? हे तात ! उनको किसने वरदान दिया है ! अथवा वह किसी विद्याको जानते हैं ॥ ५ ॥ जिससे आकाश में के तारागणोंकी समान उनका जरा भी क्षय नहीं होता है पाण्डव बार २ मेरी सेनाका नाश करते हैं, यह मुझसे सहा नहीं जाता ॥ ६ ॥ वास्तवमें दैवका परम दारुण दण्ड मेरे ऊपर ही पड़ता है, जिसप्रकार पांडव अवध्य होरहे हैं और जिस कारण से मेरे पुत्र मारे जाते हैं ॥ ७ ॥ हे संजय ! यह सब बात मुझे यथावत् सुना, इस दुःखका पार मुझे किसी प्रकार भी नहीं दीखता ॥ ८ ॥ जैसे भुजाओंसे तैरते हुए पुरुषको समुद्रका पार नहीं दीखता है, इससे मैं समझता हूं, कि-अब मेरे पुत्रोंके ऊपर अति दारुण विपत्ति आनेवाली है ॥९॥ निःसन्देह भीमसेन मेरे,

घातयिष्यति मे सर्वान् पुत्रान् भीमो न संशयः । न हि पश्यामि तं वीरं यो मे रक्षेत्सुतान् रणे ॥ १० ॥ ध्रुवं विनाशः सम्प्राप्तः पुत्राणां मम संजय । तस्मान्मे कारणं सूत शक्तिं चैव विशेषतः ॥ ११ ॥ पृच्छतो वै यथा तत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि । दुर्योधनश्च यच्चक्रे दृष्ट्वा स्वान् विमुखान् रणे ॥ १२ ॥ भीष्मद्रोणौ कृपश्चैव सौबलश्च जयद्रथः । द्रौणिर्वापि महेष्वासो विकर्णो वा महाबलः ॥ १३ ॥ निश्चयो वापि कस्तेषां तदा ह्यासीन् महात्मनाम् । विमुखेषु महाप्राज्ञ मम पुत्रेषु संजय ॥ १४ ॥ संजय उवाच । शृणु राजन्नवहितः श्रुत्वा चैवावधारय । नैव मन्त्रकृतं किंचिन्नैव मायां तथाविधाम् ॥ १५ ॥ न वै विभीषिकां कांचिद्राजन् कुर्वंति पाण्डवाः । युध्यन्ति ते यथान्यायं शक्तिमंतश्च संयुगे ॥ १६ ॥

सब पुत्रोंको मार डालेगा, मैं ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, कि-जो रणमें मेरे पुत्रोंकी रक्षा करे ॥ १० ॥ हे सञ्जय ! निःसन्देह मेरे पुत्रोंके नाशका समय आपहुंचा है, इस कारण हे सूत ! मैं तुझसे पूछता हूं, कि-इसका क्या कारण है और पाण्डवोंमें विशेष शक्ति कहांसे आयी ? इसका सब तत्त्व मुझे ठीक२ बता और दुर्योधनने अपने योधाओंको रणमेंसे लौटते हुए देखकर क्या किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे संजय ! जब मेरे पुत्र युद्धमेंसे पीछेको लौट आये तब भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शकुनि, जयद्रथ बड़ा धनुषधारी अश्वत्थामा महाबली विकर्ण, इन सब महात्माओं का उस समय क्या निश्चय हुआ था ॥ १३ ॥ १४ ॥ संजय कहता है, कि-हे राजन् ! तुम सावधान होकर सुनो और सुनकर उस पर विचार करो, जो कुछ होता है इसमें कुछ मंत्रका प्रभाव भी नहीं है और न कुछ माया ही है ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! पाण्डव किसीसे कुछ डरते भी नहीं हैं वह स्वयं शक्तिमान् हैं और रणमें न्यायके अनुसार लड़ रहे हैं ॥ १६ ॥

धर्मेण सर्वकार्याणि जीवितादीनि भारत । आरभंते सदा पार्थाः प्रार्थयाना महद्यशः ॥ १७ ॥ न ते युद्धान्निवर्त्तंते धर्मोपेता महाबलाः । श्रियता परमया युक्ता यतो धर्म्मस्ततो जयः ॥ १८ ॥ तेनावध्या रणे पार्था जययुक्ताश्च पार्थिव । तव पुत्रा दुरात्मानः पापेष्वभिरताः सदा ॥ १९ ॥ निष्ठुराः हीनकर्माणस्तेन हीयन्ति संयुगे । सुबहूनि नृशंसानि पुत्रैस्तव जनेश्वर ॥ २० ॥ निकृतानीह पांडूनां नीचैरिव यथा नरैः । सर्वं च तदनादृत्य पुत्राणां तव किल्बिषम् ॥ २१ ॥ सापन्हवाः सदैवासन् पाण्डवाः पांडुपूर्वज । न चैतान् बहु मन्यंते पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ २२ ॥ तस्य पापस्य सततं क्रियमाणस्य कर्मणः । सांप्रतं सुमहद्‌ घोरं फलं प्राप्तं जनेश्वर ॥२३॥ स त्वं भुंक्ष्व महाराज सपुत्रः ससुहृज्जनः ।

हे राजन्! बड़े यशकी आशासे पांडव अपने भरण पोषण आदि सब काम धर्मके अनुसार ही करते हैं॥ १७ ॥ परम शोभावाले महाबली पाण्डव ऐसे धर्म पर चलते हैं कि-युद्धमेंसे कभी पीछे को नहीं हटते हैं और जहां धर्म होता है तहां ही विजय होती है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस कारण ही पाण्डव रणमें नहीं मरते हैं, विजय ही पाते हैं और तुम्हारे पुत्र दुष्टात्मा हैं और सदा पाप करनेमें ही लगे रहते हैं ॥ १६ ॥ और इस कारणसे ही इन दुष्कर्म करने वालोंका युद्धमें नाश होता है, हे राजन् ! नीच पुरुषोंकी समान तुम्हारे पुत्रोंने पाण्डवोंके ऊपर अनेकों कठोरताभरे धोखे के काम किये हैं, उस सबको कुछ भी न गिनकर पांडवोंने तुम्हारे पुत्रोंके पापको छुपा रक्खा है इसकारण हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र पाण्डवोंकी अपेक्षा बड़े नीच माने गये हैं॥२०॥२२॥ हे राजन ! निरन्तर किये हुए पापकर्मका महाघोर फल अब आपहुंचा है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! आपके हितू पुरुष आपको रोकते हैं परन्तु आप किसीकी बात समझते ही नहीं इसलिये हे महाराज! अब

नावबुध्यसि यद्राजन् वार्यमाणो सुहृज्जनैः ॥ २४ ॥ विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना । तथा मया चाप्यसकृद्वार्यमाणो न बुध्यसे ॥ २५ ॥ वाक्यं हितञ्च पथ्यञ्च मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् । पुत्राणां मतमाज्ञाय जितान् मन्यसि पांडवान् ॥२६॥ शृणु भूयो यथा तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । कारणं भरतश्रेष्ठ पाण्डवानां जयं प्रति॥२७॥तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाश्रुतमरिंदम । दुर्योधनेन सम्पृष्ट एतदर्थं पितामहः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा भ्रातन् रणे सर्वान् निर्जितांस्तु महारथान् । शोकसंमूढहृदयो निशाकाले स्म कौरवः ॥ २९ ॥ पितामहं महाप्राज्ञं विनयेनोपगम्य ह । यदब्रवीत्सुतस्तेऽसौ तन्मे शृणु जनेश्वर ॥ ३०॥ दुर्योधन उवाच । द्रोणश्च त्वं च शल्यश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च । कृतवर्मा च हार्दिक्यः कांबोजश्च सुदक्षिणः ॥ ३१ ॥ भूरिश्रवा विकर्णश्च भगदत्तश्च वीर्यवान्

तुम पुत्र और मित्रों सहित उसके फलको भोगो ॥ २४ ॥ विदुर, भीष्म, महात्मा द्रोण तथा मैं इन सबोंने आपको अनेकों वार रोका परन्तु आप समझते ही नहीं थे ॥२५॥ जैसे मरनेको पड़ा हुआ रोगी पुरुष औषधको बुरी मानता है तैसे ही तुम हितकी बातको बुरी समझते हो और अपने पुत्रोंकी वातमें आकर मान रहे हो कि—हमने पाण्डवोंको अब जीता ॥ २६ ॥ हे भरतसत्तम ! जब आप मुझसे पूछते हैं तो तुमसे पाण्डवोंकी विजयका वास्तविक कारण कहता हूं, उसको तुम सुनो ॥ २७ ॥ हे शत्रुदमन ! उसको मैंने जैसा सुना है तैसा ही तुम्हें सुनाता हूं, हे राजन् ! यही बात दुर्योधनने महाप्रतापी पितामहसे भी पूछी थी अपने सब महारथी भाइयोंको रणमें हारे हुए देखकर शोकसे मूढ़ होगया है चित्त जिसका ऐसे दुर्योधनने महाबुद्धिमान् भीष्म पितामहके पास जाकर रातमें नम्रताके साथ जो प्रश्न किया था उसको मैं तुमसे कहता हूं, सुनो ॥ २८॥ ३० ॥ दुर्योधनने पूछा कि-द्रोणाचार्य, आप, शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा कांबोजका राजा सुदक्षिण, भूरिश्रवा, विकर्ण और वीर्यवान्,

महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ३२ ॥ त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः। पांडवानां समस्ताश्च नातिष्ठन्त पराक्रमे ॥ ३३ ॥ तत्र मे संशयो जातस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः। यं समाश्रित्य कौंतेया जयंत्यस्मान् क्षणे क्षणे ॥ ३४ ॥ भीष्म उवाच। शृणु राजन् वचो मह्यं यथा वक्ष्यामि कौरव। बहुशश्च मयोक्तोऽसि न च मे तत्त्वया कृतम् ॥ ३५ ॥ क्रियतां पांडवैः सार्धं शमो भरतसत्तम। एतत्क्षेममहं मन्ये पृथिव्यास्तव वा विभो ॥ ३६ ॥ भुंक्ष्वेमां पृथिवीं राजन् भ्रातृभिः सहितः सुखी। दुर्हृदस्तापयन् सर्वान् नन्दयंश्चापि बांधवान् ३७। न च मे क्रोशतस्तात श्रुतवानसि वै पुरा। तदिदं समनुप्राप्तं यत्पांडूनवमन्यसे ॥ ३८ ॥ यश्च हेतुरवध्यत्वे तेषामक्लिष्टकर्मणाम्। तं शृणुष्व महाबाहो मम

भगदत्त,आदि महारथी और प्राण तक देनेका निश्चय करने वाले कुलीन क्षत्रिय मेरी समझमें त्रिलोकीके साथ युद्ध करसकते हैं, तो भी ये सब पांडवोंके पराक्रमके आगे नहीं टिक सकते, इस बातमें मुझे बड़ी शङ्का होगई है, उसको आप दूर करिये, पाण्डवोंमें ऐसा क्या रहताहै, कि–जिसके कारणसे हम क्षण२ में हारते हैं ॥ ३१ ॥३४॥ भीष्मजीने उत्तर दिया, कि-हे कौरव ! तू सुन मैंने तुझसे बारम्बार कहा है, तो भी तुमने इस बातपर ध्यान नहीं दिया, हे भरतसत्तम ! पांडवोंके साथ अब भी संधि कर लो हे राजन ! ऐसा करनेमें मेरी समझमें तुम्हारा और सारी पृथिवीका कल्याण है और हे राजन् ! अपने भाई बन्धुओं के साथ हिलमिलकर सब शत्रुओंको संताप और मित्रोंको आनन्द देते हुए इस पृथिवीको भोगो और सुखी होओ ॥ ३५ ॥ ३७ ॥ यह बात मैंने पहिले आपसे अनेकों बार कही है परन्तु आपने मेरी एक नहीं सुनी, तुमने पांडवोंका जो अपमान किया था यह उसका ही फल सामने आरहा है ॥ ३८ ॥ हे महाबाहु राजन् ! इन उदार कर्म वालोंके न मारे जानेमें जो कारण है उसको मैं

कीर्त्यतः प्रभो ॥ ३९ ॥ नास्ति लोकेषु तद्भूतं भविता न भविष्यति । यो जयेत्पांडवान् सर्वान् पालिताञ्छार्ङ्गधन्वना ॥४०॥ यत्तु मे कथितं तात मुनिभिर्भावितात्मभिः । पुराणगीतं धर्मज्ञ तच्छृणुष्व यथातथम् ॥ ४१ ॥ पुरा किल सुराः सर्वे ऋषयश्च समागताः । पितामहमुपासेदुः पर्वते गंधमादने ॥ ४२ ॥ तेषां मध्ये समासीनः प्रजापतिरपश्यत । विमानं प्रज्वलद्भासा स्थितं प्रवरमंबरे ॥ ४३ ॥ ध्यानेनावेद्य तद्ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम् । नमश्चकार हृष्टात्मा पुरुषं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥ ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वा ब्रह्माणमुत्थितम् । स्थिताः प्रांजलयः सर्वे पश्यन्तो महदद्भुतम्॥४५॥ यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः । जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ॥ ४६ ॥ विश्वावसुर्विश्वमूर्ति

कहता हूं तुम मुझसे सुनो ॥ ३९ ॥ सब लोकोंमें ऐसा कोई भी नहीं हुआ है और न कोई ऐसा आगेको होगा, कि-जो श्रीकृष्णकी रक्षामें रहनेवाले पांडवोंको जीत सकै॥४०॥ हे धर्मज्ञ! पवित्रात्मा मुनियोंने मुझे जो सुनाया है वह पुराणोंमें गाया हुआ इतिहास मैं आपको सुनाता हूं, उसको आप ज्योंका त्यों सुनिये ॥ ४१ ॥ पहिले एक समय गन्धमादन पर्वतपर देवता और मुनि पितामह ब्रह्माजीकी सेवा करते हुए बैठे थे ॥ ४२ ॥ उन सबोंके बीचमें बैठे हुए प्रजापतिने आकाशमें एक दमकता हुआ विमान देखा, उस समय, यह क्या है इस बातका ध्यान करके ब्रह्माजीने जान लिया तथा ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर प्रसन्न अन्तःकरणसे परमेश्वरको प्रणाम किया ॥ ४३ ॥४४ ॥ ब्रह्माजीको खड़े होते देखकर सब देवता और ऋषि भी हाथ जोड़कर खड़े होगये और यह क्या अचरज है ऐसा विचारते हुए देखने लगे ॥४५॥ ब्रह्मको जानने वालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उनका विधि विधानसे पूजन किया और परम धर्मज्ञ तथा जगत्‌को उत्पन्न करने वाले प्रजापति इसप्रकार स्तुति करने लगे ॥ ४६ ॥

विश्वेशो विष्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च। विश्वेश्वरो वासुदेवोऽसि तस्माद्योगात्मानं दैवतं त्वामुपैमि ॥४७॥ जय विश्व महादेव जय लोकहिते रत। जय योगीश्वर विभो जय योगपरावर ॥ ४८ ॥ पद्मगर्भ विशालाक्ष जय लोकेश्वरेश्वर। भूतभव्यभवन्नाथ जय सौम्यात्मजात्मज ॥ ४९ ॥ असंख्येयगुणाधार जय सर्वपरायण। नारायण सुदुष्पार जय शार्ङ्गधनुर्धर ॥ ५० ॥ जय सर्वगुणोपेत विश्वमूर्ते निरामय। विश्वेश्वर महाबाहो जय लोकार्थतत्पर ॥ ५१ ॥ महोरगवराहाद्य हरिकेश विभो जय। हरिवास दिशामीश विश्ववासामिताव्यय ॥ ५२ ॥ व्यक्ताव्यक्तामितस्थानं नियतेंद्रियसत्क्रिय। असंख्येयात्मभावज्ञ जय गंभीरकामद ॥५३॥

आप विश्वावसु, विश्वमूर्त्ति, विश्वेश, विष्वक्सेन, विश्वकर्मा, वशी, विश्वेश्वर तथा वासुदेव हो, इसकारण योगात्मा तथा सकल देवतारूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४७ ॥ हे विश्वरूप! हे महादेव! हे लोकहितमें तत्पर रहनेवाले! हे योगीश्वर! हे विभो! हे योगपारङ्गत! आपकी जय हो ॥४८॥ हे पद्मगर्भ! हे विशालाक्ष! हे लोकनाथोंके नाथ! हे भूत भविष्यत् और वर्त्तमानके नाथ! हे सौम्यरूप! आपकी जय हो ॥ ४९ ॥ असंख्य गुणोंके आधार सबको जाननेवाले नारायण! जिसका कोई पार न सके ऐसे शार्ङ्ग धनुषको धारण करनेवाले! आपकी जय हो ॥ ५० ॥ हे सर्वगुणाधार! हे विश्वमूर्त्ते! हे निरामय! हे विश्वके ईश्वर! हे महाबाहो! हे लोकके हितमें तत्पर! आपकी जय हो ॥ ५१ ॥ हे महोरग! हे महावराह! हे आदिकारण! हे हरिकेश! हे विभो! हे हरिवास! हे दिशाओंके अधिष्ठाता! हे विश्वके निवास! हे अमित! हे अव्यय! आपकी जय हो ॥ ५२ ॥ हे व्यक्त! हे अमितस्थान! हे जितेन्द्रिय! हे सत्क्रिय! हे असंख्येय! हे आत्मभावको जाननेवाले! हे गम्भीर! हे कामनायें पूरी करनेवाले! आपकी जय हो ॥५३॥

अनंतविदित ब्रह्मन् नित्यभूतविभावन । कृतकार्य कृतप्रज्ञ धर्मज्ञ विजयावह ॥ ५४ ॥ गुह्यात्मन् सर्वयोगात्मन् स्फुटं सम्भूत संभव । भूताद्य लोकतत्त्वेश जय भूतविभावन ॥ ५५ ॥ आत्मयोने महाभाग कल्पसंक्षेप तत् परम् । उद्भावनमनोभाव जय ब्रह्मजनप्रिय ॥ ५६ ॥ निसर्गसर्गनिरत कामेश परमेश्वर । अमृतोद्भव सद्भाव मुक्तात्मन् विजयप्रद ॥ ५७ ॥ प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल । आत्मभूत महाभूत सत्वात्मन् जय सर्वदा ॥ ५८ ॥ पादौ तव धरा देवी दिशो बाहू दिवं शिरः । मूर्तिस्तेऽहं सुराः कायश्चंद्रादित्यौ च चक्षुषी ॥ ५९ ॥ बलं तपश्च सत्यं च कर्म धर्मात्मजं तव । तेजोऽग्निः पवनः श्वासः आपस्ते स्वेदसंभवाः ॥ ६० ॥ अश्विनौ

हे अनन्त ! हे विदित ! हे ब्रह्मन् ! हे नित्य ! हे भूतमात्रको उत्पन्न करनेवाले ! हे कृतकार्य ! हे कृतप्रज्ञ ! हे धर्मको जानने वाले ! हे विजयदातः ! हे गुह्यात्मन् ! हे सकल योगके आत्मा ! हे स्फुट अवतारवाले ! हे सकल भूतोंके आदि ! हे लोक और तत्त्वोंके ईश ! हे भूतमात्रके उत्पादक ! आपकी जय हो ॥५४॥ ॥ ५५ ॥ हे आत्मयोने ! हे महाभाग ! हे कल्पान्तमें संहार करनेवाले ! हे सबके उत्पादक ! हे मनमेंसे उत्पन्न होनेवाले ! हे ब्रह्मकी विजय चाहनेवाले आपकी जय हो ॥ ५६ ॥ हे जगत् की रचनामें तत्पर ! हे कामेश ! हे परमेश्वर ! हे अमृतमेंसे उत्पन्न होनेवाले ! हे सद्भाव ! हे मुक्तात्मन् ! हे विजयदातः ! हे प्रजापतियोंके पति ! हे देव ! हे पद्मनाभ ! हे महाबल ! हे आत्मभूत ! हे महाभूत ! हे सत्त्वात्मन् ! आपकी जय हो ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ पृथिवी देवी आपका चरण, दिशायें हाथ, आकाश शिर, अहङ्कार आपकी मूर्त्ति, देवता शरीर तथा चंद्रमा और सूर्य आपके नेत्र हैं ॥ ५९ ॥ तप आपका बल, सत्य कर्म और धर्म आपका रूप है, अग्नि आपका तेज और पवन आपका श्वास है तथा जल आपके पसीनेमेंसे उत्पन्न हुआ है ॥ ६० ॥

श्रवणौ नित्यौ देवौ जिह्वा सरस्वती । वेदाः संस्कारनिष्ठा हि त्वदीयं जगदाश्रितम् ॥ ६१ ॥ न संख्या न परीमाणं न तेजो न पराक्रमम् । न बलं योगयोगीश जानीमस्ते न सम्भवम् ॥ ६२ ॥ त्वद्भक्तिनिरता देव नियमैस्त्वां समाश्रिताः । अर्चयामः सदा विष्णो परमेशं महेश्वरम् ॥६३॥ ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षराक्षस-पन्नगाः । पिशाचा मानुषाश्चैव मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ६४ ॥ एवमादि मया सृष्टं पृथिव्यां त्वत्प्रसादजम् । पद्मनाभ विशालाक्ष कृष्ण दुःखप्रणाशन ॥ ६५ ॥ त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वं नेता त्वं जगद्गुरुः । त्वत्प्रसादेन देवेश सुखिनो विबुधाः सदा ॥ ६६ ॥ पृथिवी निर्भया देव त्वत्प्रसादात्सदाभवत् । तस्माद्भव विशालाक्ष यदुवंशविवर्द्धनः॥६७॥ धर्मसंस्थापनार्थाय दैत्यानां च वधाय च ।

दो अश्विनी कुमार आपके कान और सरस्वती देवी सदा आप की जिह्वा है, वेद आपके ज्ञानरूप हैं और यह जगत् आपके आश्रय पर ठहरा हुआ है ॥ ६१ ॥ हे योगयोगेश ! आपकी संख्या आपके परिमाण, आपके बल, आपके पराक्रम तथा आप की उत्पत्ति को हम नहीं जानसकते ॥ ६२ ॥ हे देव ! आपकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले हम नियमके साथ आपकी शरणमें आये हैं, हे सर्वव्यापक ! हम महेश्वर परमेश्वर आपकी पूजा करते हैं ॥ ६३ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, मनुष्य तथा दूसरे पक्षी जीवजन्तु आदि सबको मैंने आपकी ही कृपासे इस पृथिवी पर उत्पन्न किया है, हे पद्मनाभ! हे विशालाक्ष ! हे कृष्ण ! हे दुःखनाशक ! ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ आप सकल भूतमात्रकी परमगति हैं, आप सबको नियममें रखनेवाले परम गुरु हो, हे देवेश ! आपकी कृपासे ही सब देवता सुखी हैं ॥ ६६ ॥ हे देव ! आपकी कृपासे पृथिवी सदा निर्भय रही है, इसलिये हे विशालाक्ष ! आप यदुवंशमें जन्म लीजिये ॥ ६७ ॥ हे विभो ! धर्मकी फिर स्थापना करनेके लिये

जगतो धारणार्थाय विज्ञाप्य कुरु मे विभो ॥६८॥ यत्तत् परमकं गुह्यं त्वत्प्रसादादिदं विभो। वासुदेव तदेतत्ते मयोद्गीतं यथातथम् ॥ ६९ ॥ सृष्ट्वा सङ्कर्षणं देवं स्वयमात्मानमात्मना। कृष्ण त्वमात्मनो साक्षी प्रद्युम्नं चात्मसम्भवम् ॥ ७० ॥ प्रद्युम्नादनिरुद्धं त्वं यं विदुर्विष्णुमव्ययम्। अनिरुद्धोऽसृजन्मां वै ब्रह्माणं लोकधारिणम् ॥ ७१॥ वासुदेवमयः सोऽहं त्वयैवास्मि विनिर्मितः विभज्य भागशोत्मानं व्रज मानुषतां विभो ॥ ७२ ॥ तत्रासुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै। धर्मं प्राप्य यशः प्राप्य योगं प्राप्स्यसि तत्त्वतः ॥ ७३ ॥ त्वां हि ब्रह्मर्षयो लोके देवाश्चामितविक्रम। तैस्तैर्हि नामभिर्युक्ता गायन्ति परमात्मकम् ॥ ७४ ॥ स्थिताश्च

दैत्योंका नाश करनेके लिये और जगत्को धारण करनेके लिये आप मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार करिये ॥ ६८ ॥ हे विभो! हे वासुदेव! यह जो आपका परम गुह्य स्तुतिरूप है इसका वर्णन मैंने आपकी कृपासे ही किया है ॥६९ ॥ आपने स्वयं ही अपनेमेंसे संकर्षणकी उत्पत्ति की, कृष्णरूप धारण किया, और अपने आत्मसंभव प्रद्युम्नको उत्पन्न किया ॥ ७० ॥ आपने प्रद्युम्नसे अनिरुद्धको उत्पन्न किया जिसको लोक अविनाशी विष्णु मानते हैं और अनिरुद्धने लोकोंको धारण करनेवाले मुझ ब्रह्माको उत्पन्न किया ॥ ७१ ॥ इसलिये मैं वासुदेवमय हूं और आपने ही मुझे उत्पन्न किया है, हे विभो! आप इसी प्रकार विभाग करके मनुष्यरूप धारिये ॥ ७२ ॥ और सब लोकोंके सुखके लिये असुरोंका नाश करके धर्म और यशको पाते हुए फिर तत्त्वयोगको पाओगे ॥ ७३ ॥ हे अमित पराक्रमवाले! ब्रह्मर्षि देवता आदि तुम्हारे इन नामोंसे ही तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ७४ ॥ सकल प्राणीमात्र आपके ही आश्रयसे ठहरे हुए हैं, और हे वरदेनेवाले! हे सुन्दर भुजाओंवाले! विप्र आपको आदि मध्य और अन्तसे रहित, लोकोंको संसार-

सर्वे त्वयि भूतसंघाः कृत्वाश्रयं त्वां वरदं सुबाहो। अनादिमध्यान्तमपारयोगं लोकस्य सेतुं प्रवदन्ति विप्राः ॥ ७९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

भीष्म उवाच । ततः स भगवान् देवो लोकानामीश्वरेश्वरः । ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥ विदितं तात योगान्मे सर्वमेतत्तवेप्सितम् । तथा तद्भवितेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ २ ॥ ततो देवर्षिगन्धर्वा विस्मयं परमं गताः । कौतूहलपराः सर्वे पितामहमथाब्रुवन् ॥ ३ ॥ को न्वयं यो भगवता प्रणम्य विनयाद्विभो । वाग्भिः स्तुतो वरिष्ठाभिः श्रोतुमिच्छाम तं वयम् ॥४॥ एवमुक्तस्तु भगवान् प्रत्युवाच पितामहः । देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान् सर्वान् मधुरया गिरा ॥ ५ ॥ यत्तत्परं भविष्यञ्च भवितव्यं च

सागरसे पार करनेवाला सेतु और अपार योगवाला मानते हैं पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ छ ॥ छ ॥

भीष्मजी कहते हैं, कि—तदनन्तर वह दिव्यरूपधारी भगवान् लोकनाथोंके भी ईश्वर स्निग्ध और गम्भीर वाणीमें ब्रह्माजीसे इसप्रकार कहने लगे कि-॥ १ ॥ तुम जो चाहते हो वह सब मैंने योगसे जान लिया है और वह सब ऐसा ही होगा, ऐसा कहकर वह वहां ही अन्तर्धान होगये ॥ २॥ यह देखकर देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि परम विस्मयमें हुए और बड़े ही कौतूहलसे होकर ब्रह्माजीसे बूझनेलगे, कि-॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपने जिनकी ऐसी श्रेष्ठ वाणीसे स्तुति करी है, वह कौन हैं ? हम उनको जानना चाहते हैं ॥ ४ ॥ देवताओंने ऐसा प्रश्न किया, तब भगवान् पितामह मधुर वाणीमें देवता, ऋषि और गन्धर्वोंसे कहनेलगे, कि—॥ ५ ॥ जो तत्स्वरूप और वर्त्तमान भूत भविष्यस्वरूप हैं, जो सब भूतोंकी आत्मा तथा परम

यत्परम् । भूतात्मा च प्रभुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम् ॥ ६ ॥ तेनास्मि कृतसम्वादः प्रणतेन सुरर्षभाः । जगतोऽनुग्रहार्थाय याचितो मे जगत्पतिः ॥७॥ मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः । असुराणां वधार्थाय सम्भवस्व महीतले ॥ ८ ॥ संग्रामे निहता ये ते दैत्य-दानवराक्षसाः । त इमे नृषु सम्भूता घोररूपा महाबलाः ॥ ९ ॥ तेषां वधार्थं भगवान् नरेण सहितो वशी । मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले ॥ १० ॥ नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषि-सत्तमौ । सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती ॥ ११॥ अजेयौ समरे यत्तौ सहितैरमरैरपि । मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणा-वृषी ॥ १२ ॥ तस्याहमग्रतः पुत्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः । वासु-देवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥१३॥ तथा मनुष्योऽयमिति

पदरूप हैं यह वही प्रभु थे ॥ ६ ॥ हे देववर ! मैंने उनके साथ बातें की और जगत्के कल्याणके लिये मैंने उन जगत्पतिकी प्रार्थना की थी ॥ ७ ॥ कि—आप वासुदेव नामसे मनुष्य देहको धारण करिये और भूतल पर राक्षसों का नाश करनेके लिये, अवतार धारण करिये ॥ ८ ॥ संग्राममें जिन२ राक्षसोंका आपने संहार किया था वह सब घोर रूपवाले महाबली राक्षस मनुष्य शरीरोंमें उत्पन्न होगये हैं ॥९॥ अतः हे भगवन्! आप उनके वधके लिये नरके साथ मनुष्ययोनि में उत्पन्न हूजिये ॥ १० ॥ जो अपार कान्तिवाले पुरातन श्रेष्ठ ऋषि नर और नारायण कहलाते हैं वह दोनों इस मनुष्यलोक में एक साथ उत्पन्न होंगे और सब देवता इकट्ठे होकर लडैं तो भी संग्राममें उनको नहीं जीत सकते, वह नर नारायण ऋषि जब इस लोकमें मनुष्यरूप धारण करेंगे तब मूढ़ पुरुष उनको नहीं जान सकेंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ सब जगत्का प्रभु मैं उनका पुत्र हूं वह वासुदेव सब लोकोंके महेश्वर और पूज्य हैं, वह महावीर्यवान् तथा शङ्ख चक्र और गदाको धारण करनेवाले मनुष्यरूपसे प्रकट

कदाचित् सुरसत्तमाः । नावज्ञेयो महावीर्यः शंखचक्रगदाधरः ॥१४॥एतत् परमकं गुह्यमेतत्परमकं पदम् । एतत् परमकं ब्रह्म एतत् परमकं यशः ॥ १५ ॥ एतदक्षरमव्यक्तमेतद्वै शाश्वतं महः । यत्तत् पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च ॥ १६ ॥ एतत् परमकं तेज एतत् परमकं सुखम् । एतत् परमकं सत्यं कीर्त्तितं विश्वकर्मणा ॥ १७॥ तस्मात् सेन्द्रैः सुरैः सर्वैर्लोकैश्चामितविक्रमः । नावज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः ॥ १८ ॥ यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात् स मन्दधीः । हृषीकेशमवज्ञानात्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥१६॥ योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम् । अवमन्येद्वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः॥२०॥देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्च्चसम् । पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं बुधाः ॥२१॥ किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयङ्करम् । अवजानन् महात्मानं घोरे तमसि

हुए हैं, उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ यही परम गुह्य हैं, यही परम पद हैं, यह परमब्रह्म हैं और यही परमयद हैं ॥ १५ ॥ यही अक्षर हैं, यही अव्यक्त हैं यही सनातन तेज हैं और जिनको पुरुष नामसे कहते और जानते हैं वह भी यही हैं ॥ १६ ॥ यही परम तेज हैं, यही परम सुख हैं और इनको ही विश्वकर्माने परमसत्य कहा है ॥ १७ ॥ इस लिये इन वसुदेवनंदन प्रभुको यह मनुष्य हैं ऐसा मानकर इन्द्रसहित देवताओं को और सकल लोकोंको इन अमितपराक्रमीका तिरस्कार नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ जो मूढ़बुद्धि इन हृषीकेशको, यह मनुष्यमात्र हैं ऐसा तिरस्कारके साथ कहै उसको अधमपुरुष कहना चाहिये ॥ १६ ॥ और मनुष्य देह धारण करनेवाले इन महात्मा वसुदेवनन्दन योगीको जो मनुष्य तिरस्कारके साथ देखे उसको पुरुष तामसी मनुष्य कहते हैं ॥ २० ॥ जो पुरुष चराचरके आत्मा लक्ष्मीके चिह्नवाले, सुन्दर तेजस्वी इन पद्मनाभ को नहीं पहिचानता है उसको विद्वान् तमोगुणी कहते हैं ॥२१॥ जो किरीट तथा कौस्तुभको धारण करनेवाले और मित्रोंको

मज्जति ॥ २२ ॥ एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः । वासुदेवो नमस्कार्य्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः ॥ २३ ॥ भीष्म उवाच । एवमुक्त्वा स भगवान् देवान्सर्षिगणान् पुरा । विसृज्य सर्वभूतात्मा जगाम भवनं स्वकम् ॥ २४ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽप्सरसोऽपि च । कथां तां ब्रह्मणा गीतां श्रुत्वा प्रीता दिवं ययुः ॥ २५ ॥ एतच्छ्रुतं मया तात ऋषीणां भावितात्मनाम् । वासुदेवं कथयतां समवाये पुरातनम् ॥२६॥ रामस्य जामदग्न्यस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः । व्यासनारदयोश्चापि सकाशाद्भरतर्षभ ॥ २७ ॥ एतमर्थञ्च विज्ञाय श्रुत्वा च प्रभुमव्ययम् । वासुदेवं महात्मानं लोकानामीश्वरेश्वरम् ॥ २८ ॥ यस्य चैवात्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता । कथं न वासुदेवोऽयमर्च्यश्चेज्यश्च मानवैः

अभय देनेवाले महात्मा वासुदेवका अपमान करेगा वह महाघोर अन्धकार (नरक) में पड़ेगा ॥ २२ ॥ हे देवताओं ! इसप्रकार तत्त्व अर्थको जानकर लोकेश्वरोंके भी ईश्वर सब लोकोंके प्रणाम करने योग्य हैं ॥ २३ ॥ भीष्मजी कहते है, कि—पहिले इसप्रकार देवताओंसे तथा सब ऋषियोंसे कहकर सकल भूतोंके आत्मा ब्रह्माजी उनको विदा करके अपने लोकको चले गये ॥ २४ ॥ और ब्रह्माजीकी इसप्रकार कहीहुई बातको सुन कर सब देवता, गन्धर्व, मुनि तथा अप्सरायें प्रसन्न होते हुए स्वर्गको चलेगये ॥ २५ ॥ हे तात ! पवित्रात्मा ऋषियोंके समाज में पुराणपुरुष वासुदेवके विषयमें इस प्रकारका वृत्तान्त मैंने सुना था ॥ २६ ॥ हे भरतसत्तम ! जमदग्निके पुत्र राम, बुद्धिमान् मार्कण्डेय, व्यास तथा नारद आदिसे भी मैंने ऐसा ही सुना है ॥ २७ ॥ ऐसा जानकर तथा सब जगत्‌का पिता जिसका पुत्र है ऐसे लोकेश्वरोंके भी ईश्वर महात्मा वासुदेव अविनाशी प्रभु हैं ऐसा सुनकर मनुष्योंको उनकी पूजा और यजन क्यों नहीं करना चाहिये ? अवश्य करनी चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

॥ २९ ॥ वारितोऽसि मया तात मुनिभिर्वेदपारगैः । मा गच्छ संयुगं तेन वासुदेवेन धन्विना ॥ ३० ॥ मा पाण्डवैः सार्द्धमिति तत्त्वं मोहान्न बुध्यसे । मन्ये त्वां राक्षसं क्रूरं तथा चासि तमोवृतः ॥३१॥ यस्मात् द्विषसि गोविन्दं पाण्डवन्तं धनञ्जयम् । नरनारायणौ देवौ कोऽन्यो द्विष्याद्धि मानवः ॥ ३२ ॥ तस्माद् ब्रवीमि ते राजन्नेष वै शाश्वतोऽव्ययः । सर्वलोकमयो नित्यं शास्ता धात्री धरो ध्रुवः ॥ ३३ ॥ यो धारयति लोकांस्त्रींश्चराचरगुरुः प्रभुः । योद्धा जयश्च जेता च सर्वप्रकृतिरीश्वरः ॥ ३४ ॥ राजन् सर्वमयो ह्येष तमोरागविवर्जितः । यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३५ ॥ तस्य माहात्म्ययोगेन योगेनात्ममयेन च । धृताः

मैंने तथा वेदके पारगामी मुनियोंने तुम्हें पहिले अनेकों वार समझाया था, कि–तुम धनुषधारी श्रीकृष्णके साथ तथा पाण्डवोंके साथ युद्ध न करो, परन्तु तुम मोहके कारण इस बातके तत्त्वको नहीं समझे और तुम गोविन्दको तथा पाण्डुके पुत्र धनञ्जयको धिक्कार देते हो, इसकारण मैं तुम्हें क्रूर राक्षसकी समान तथा अज्ञानसे घिरा हुआ मानता हूं ॥ ३०-३१ ॥ क्योंकि-तुम उन गोविंद और पाण्डुनन्दन अर्जुनके साथ द्वेष करते हो जो साक्षात् नर नारायण देवता हैं, भला ऐसा राक्षसके सिवाय कौनसा मनुष्य कर सकता है ? ॥३२॥ हे राजन ! इसलिये ही मैं कहता हूं, कि–यह सनातन, अविनाशी, सर्व लोकमय, नित्य, सबके प्रेरक, विश्वको धारण करने वाले और अविचल हैं ॥ ३३ ॥ जो चराचरके गुरु प्रभु तीनों लोकोंको धारण करते हैं ऐसे यह ही युद्ध करने वाले, विजयरूप, जीतने वाले तथा पूर्ण प्रकृतिमय ईश्वर हैं ॥३४॥ हे राजन् ! यह सर्वलोकमय नित्य तथा तम और रागसे रहित हैं,जहाँ यह कृष्ण हैं तहां ही धर्म है और जहां धर्म है तहां ही विजय है॥३५॥उनहीके प्रभावसे और उनहीके आत्मिक-

पाण्डुसुता राजन् जयश्चैषां भविष्यति॥३६॥श्रेयोयुक्तां सदा बुद्धिं पांडवानां दधाति यः। बलं चैव रणे नित्यं भयेभ्यश्चैव रक्षति ॥ ३७ ॥ स एष शाश्वतो देवः सर्वगुह्यमयः शिवः । वासुदेव इति ख्यातो यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियै-र्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः। सेव्यतेऽभ्यर्च्यते चैव नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ॥ ३९ ॥ द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च। सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन वै ॥ ४० ॥ स एष सर्वं सुरमर्त्यलोकं समुद्रकक्ष्यान्तरितां पुरीं च। युगे युगे मानुषश्चैव वासं पुनः पुनः सृजते वासुदेवः ॥ ४१ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दुर्योधन उवाच । वासुदेवो महद्भूतं सर्वलोकेषु कथ्यते।

बलसे पांडवोंकी रक्षा होती है और विजय भी इनकी ही होगी ३६ यह श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंको कल्याण करनेवाली संमति और बल देतेहैं, रणमें और भयमें यह ही उनकी रक्षा करते हैं ॥ ३७ ॥ हे भारत ! तुम जिनकी बात मुझसे बूझ रहे हो, वह यही सनातन, देव, सकल गुणमय और कल्याण करने वाले वासुदेव हैं ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अपने कर्त्तव्यसे पहिचानमें आने वाले शूद्र अपने२ कर्ममें तत्पर रहकर और दृढ़भक्ति रखकर उनकी अर्चा पूजा करते हैं ॥३९॥ भक्तोंकी कही हुई विधिके अनुसार द्वापरके अन्तमें और कलियुगके आरम्भमें संकर्षणके सहित इनकी स्तुति करते हैं और वही वासुदेव हरएक युगमें देवलोक और मृत्युलोकको तथा समुद्रसे घिरी हुई द्वारका नगरीको तथा मानुषी निवासको रचते है ॥ ४० ॥ ॥४१॥ छियासठवां अध्याय समाप्त ॥६६॥

दुर्योधनने कहा कि—हे पितामह ! इन सब लोकोंमें वासुदेव महातत्त्वरूप माने जाते हैं इस लिये उनकी उत्पत्ति और

तस्यागमं प्रतिष्ठाञ्च ज्ञातुमिच्छे पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । वासुदेवो महद्भूतं सर्वदैवतदैवतम् । न परं पुण्डरीकाक्षाद्दृश्यते भरतर्षभ ॥ २ ॥ मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यद्भुतं महत् । सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥ आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् । स सृष्ट्वा पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥ ४ ॥ अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः । सर्वतेजोमयो देवो योगात् सुष्वाप तत्र ह ॥५ ॥ मुखतः सोऽग्निमसृजत् प्राणाद्वायुमथापि च । सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः ॥ ६ ॥ एष लोकान् ससर्जादौ देवांश्च ऋषिभिः सह । निधनं चैव मृत्युञ्च प्रजानां प्रभवाप्ययौ ॥ ७ ॥ एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः । एष कर्त्ता च कार्य्यं च पूर्वदेवः स्वयं प्रभुः ॥ ८ ॥ भूतं भव्यं भविष्यच्च पूर्वमेतदकल्पयत् । उभे संध्ये

प्रतिष्ठाको मैं जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ भीष्मजी कहते हैं, कि—हे भरतसत्तम ! वासुदेव परमतत्त्व हैं और सब देवताओंके देवता हैं, इन पुण्डरकाक्षसे बड़ा तत्व कोई नहीं है ॥ २ ॥ मार्कण्डेयका कहना है, कि—इन गोविन्दके विषैं सकल भूतमात्रको आश्चर्य है,यह सब भूतोंके आत्मा और पुरुषोत्तम हैं॥३॥जल,वायु और तेज इन तीनोंको इन्होंनेही उत्पन्न किया है, और सब लोकों के ईश्वर इन प्रभुने ही पृथिवीको उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ महात्मा पुरुपोत्तमने जलमें शयन किया था और सर्वतेजोमय इन देवने जल में निद्रा भी ली थी ॥५॥ इन्होंने मुखमेंसे अग्नि,प्राण (श्वास)मेंसे वायु और मनमेंसे सरस्वती तथा वेदको उत्पन्न किया है ॥ ६ ॥ पहिले इन्होंने देवता, ऋषियों सहित सब लोक, मृत्यु, विनाश, प्रजाकी सृष्टि तथा प्रलयको उत्पन्न किया था ॥ ७ ॥ यही धर्मको जाननेवाले, वर देनेवाले और सब कामनाओंके देनेवाले हैं, यही कर्त्ता, कार्य, पूर्वदेव और स्वयंप्रभु हैं ॥ ८ ॥ भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानको भी पहिले इन्होंने ही रचा था, दोनों

दिशः स च नियमांश्च जनार्दनः ॥ ९ ॥ ऋषींश्चैव हि गोविंदस्तपश्चैवाभ्यकल्पयत् । स्रष्टारं जगतश्चापि महात्मा प्रभुरव्ययः ॥ १० ॥ अग्रजं सर्वभूतानां संकर्षणमकल्पयत् । तस्मान्नारायणो जज्ञे देवदेवः सनातनः ॥११॥ नाभौ पद्मं बभूवास्य सर्वलोकस्य संभवात् । तस्मात्पितामहो जातस्तस्माज्जातास्त्विमाः प्रजाः ॥ १२ ॥ शेषं चाकल्पयद्देवमनंतं विश्वरूपिणम् । यो धारयति भूतानि धरां चेमां सपर्वताम् ॥ १३ ॥ ध्यानयोगेन विप्राश्च तं विदन्ति महौजसम् । कर्णस्रोतोभवं चापि मधुं नाम महासुरम् ॥ १४ ॥ तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रां बुद्धिं समास्थितम् । ब्रह्मणोपचितिं यातुं जघान पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥ तस्य तात वधादेव

सन्ध्या, दिशा, आकाश और सब नियमोंको भी इन जनार्दनने ही रचा है ॥ ९ ॥ ऋषियोंको और तपको इन गोविन्दने ही रचा है तथा संसारकी रचना करने वाले ब्रह्माको भी इन महात्मा अविनाशी प्रभुने ही रचा है ॥ १० ॥ सब भूतोंके अग्रज संकर्षण को इन्होंने ही रचा है, तथा इनसे ही सब देवोंके देव स्वयं सनातन नारायण भी उत्पन्न हुए हैं ॥ ११ ॥ नारायणकी नाभिमेंसे कमल उत्पन्न हुआ है, सब लोकोंके उत्पत्तिस्थान उस कमलमें से पितामह उत्पन्न हुए और पितामहसे यह सब प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥ इन देवदेवने विश्वरूप अनन्त नामवाले शेषनाग को उत्पन्न किया, जो पहाड़ोंसहित इन सब पृथिवीको तथा सब भूतमात्रको धारण किये हुए हैं ॥ १३ ॥ इन महातेजस्वी प्रभुको केवल ध्यानयोगसे ही विप्र जान सकते हैं, ब्रह्माजीके कानके मैलमेंसे मधु नामका दैत्य उत्पन्न हुआ था और वह उग्र कर्मवाला दुष्टबुद्धि मधु दैत्य जब ब्रह्माजीको मारनेको आया तब ब्रह्माजीसे सत्कार पानेके लिये इन पुरुषोत्तमने उसको मारा था ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे तात ! मधु दैत्यको मारनेके कारणसे इन जनार्दन भगवान्‌को देवता, दानव मनुष्य और ऋषि मधुसूदन

देवदानवमानवाः । मधुसूदनमित्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ॥१६॥ वराहश्चैव सिंहश्च त्रिविक्रमगतिः प्रभु । एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ॥ १७ ॥ परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति । मुखतः सोऽसृजद्विप्रान् बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा॥१८॥ वैश्यांश्चाप्यूरुतो राजन् शूद्रान्वै पादतस्तथा । तपसा नियतो देवो निधानं सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च । योगभूतं परिचरन् केशवं महदाप्नुयात् ॥ २० ॥ केशवः परमं तेजः सर्वलोकपितामहः । एवमाहुर्हृषीकेशं मुनयो वै नराधिप ॥ २१ ॥ एवमेनं विजानीहि आचार्यं पितरं गुरुम् । कृष्णो यस्य प्रसीदेत लोकास्तेनाक्षया जिताः ॥ २२ ॥ यश्चैवैनं भयस्थाने केशवं शरणं व्रजेत् । सदा नरः पठंश्चेदं स्वस्तिमान्

नामसे पुकारने लगे हैं ॥ १६ ॥ यह ही महान् वराह अवतारी, यह ही महान् नृसिंह अवतारी और यह ही त्रिविक्रम (तीन पग से आकाश, पाताल और राजा बलिका शरीर नापनेवाले) वामन नाम वाले प्रभु हैं और यह हरि ही सब प्राणियोंके माता पिता हैं ॥ १७ ॥ सफेद् कमलकी समान नेत्रोंवाले इन भगवान्से श्रेष्ठ और कोई तत्त्व नहीं है, इन्होंने मुखमेंसे ब्राह्मणोंको और भुजाओंमेंसे क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है ॥ १८ ॥ वैश्योंको जङ्घा मेंसे और शूद्रोंको चरणोंमेंसे उत्पन्न किया है, तपस्याके द्वारा यह देव सब प्राणियोंको अवश्य ही आश्रय देते हैं ॥ १९ ॥ पूर्णिमा और अमावस्याके दिन जो इनकी पूजा करता है वह इस योगरूप ब्रह्मस्वरूप केशवके परम पदको पाता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! यह केशव परम तेजरूप हैं तथा सब लोकोंके पितामह हैं, मुनिजन इनको हृषीकेश (इन्द्रियोंका प्रेरक) कहते हैं ॥२१॥ यह ही आचार्य, पिता और गुरु हैं ऐसा तू मान और जिसके ऊपर कृष्ण प्रसन्न होते हैं उसने मानो अक्षय लोकोंको जीत लिया ऐसा समझ ॥ २२ ॥ भयके समय जो इन केशवकी शरणमें

स सुखी भवेत् ॥ २३ ॥ ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते ते न मुह्यन्ति मानवाः । भये महति मग्नांश्च पाति नित्यं जनार्दनः ॥ २४ ॥ स तं युधिष्ठिरो ज्ञात्वा याथातथ्येन भारत । सर्वात्मना महात्मानं केशवं जगदीश्वरम् । प्रपन्नः शरणं राजन् योगानां प्रभुमीश्वरम् ॥ २५ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

भीष्म उवाच । शृणु चेदं महाराज ब्रह्मभूतं स्तवं मम । ब्रह्मर्षिभिश्च देवैश्च यः पुरा कथितो भुवि ॥ १ ॥ साध्यानामपि देवानां देवदेवेश्वरः प्रभुः । लोकभावनभावज्ञ इति त्वां नारदोऽब्रवीत् ॥२ ॥ भूतं भव्यं भविष्यञ्च मार्कण्डेयोऽभ्युवाच ह । यज्ञं त्वां चैव देवानां तपश्च तपसामपि ॥ ३ ॥ देवानामपि देवश्च त्वामाह भगवान् भृगुः । पुराणञ्चैव परमं विष्णो रूपं तवेति च

जाता है, तथा इनकी स्तुति करता है वही मनुष्य सदा सुखी और कुशल रहता है ॥ २३ ॥ जो मनुष्य इन कृष्णकी शरणमें जाते हैं वह कभी मोहमें नहीं पड़ते हैं (धोखा नहीं खाते हैं) भयमें पड़े हुए मनुष्योंको यह जनार्दन भगवान् ही उबारते हैं ॥२४॥ हे राजन् ! यह महात्मा केशव जगत्के ईश्वर हैं तथा योगोंके स्वामी हैं, ऐसा जानकर ही युधिष्ठिर निश्चय इनकी शरणमें गये हैं ॥ २५ ॥ सड़सठवां अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ छ ॥

भीष्मजी कहते हैं, कि—हे राजन् ! मैं इन भगवान्की परब्रह्मरूप स्तुति कहता हूं, उसको तुम सुनो, पहिले ब्रह्मर्षियोंने और देवताओंने इसप्रकार स्तुति की थी ॥ १ ॥ कि—आप साध्योंके और देवताओंके भी ईश्वर हैं, लोकोंकी वृद्धि करनेवाले और सबके हृदयकी जाननेवाले भी आप ही हैं, ऐसा नारदजीने कहा है ॥ २ ॥ मार्कण्डेय आपको भूत, भविष्य और वर्त्तमानरूप कहते हैं, तुम यज्ञोंके यज्ञरूप और तपके तपःस्वरूप हो ॥३॥ देवताओंके भी देवता हो तथा विष्णुका जो पुरातन परमरूप है

॥४॥ वासुदेवो वसूनां त्वं शक्रः स्थापयिता तथा । देवदेवोऽसि देवानामिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ पूर्वे प्रजापतेः सर्गे दक्षमाहुः प्रजापतिम् । स्रष्टारं सर्वलोकानामङ्गिरास्त्वां तथाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥ अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तन्ते मनसि स्थितम् । देवास्त्वत्सम्भवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥ शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी तथा । जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥ ८ ॥ एवं त्वामभिजानन्ति तपसा भाविता नराः । आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चापि सत्तमः ॥ ९ ॥ राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्त्तिनाम् । सर्वधर्मप्रधानानां त्वङ्गतिर्मधुसूदन ॥ १० ॥ इति नित्यं योगविद्भिर्भगवान् पुरुषोत्तमः । सनत्कुमारप्रमुखैः स्तूयतेऽभ्यर्च्यते हरिः ॥ ११ ॥ एष ते विस्तरस्तात संक्षेपश्च मयो-

वह भी तुम ही हो, ऐसा भगवान् भृगु कहते हैं ॥४॥ तुम वसुओं के वासुदेव तथा इन्द्रको इन्द्रपद पर स्थापन करनेवाले हो तथा देवताओंके भी परम-देव हो, ऐसा द्वैपायनने कहा है ॥ ५ ॥ कहते हैं, कि—पहिले प्रजाकी सृष्टिके समय तुम दक्ष प्रजापति थे तथा अङ्गिराने आपको सब लोकोंका रचने वाला कहा है ॥ ६ ॥ अव्यक्त आपके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, व्यक्त आपके मनमें स्थित है और देवता भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, ऐसा देवल मुनिने कहा है और असित तो कहते हैं, कि—॥ ७ ॥ आपके शिरसे आकाश व्याप्त है, तथा भुजाओंसे पृथिवी व्याप्त है (ठहरी हुई है) तीनों लोक आपका पेट हैं, ऐसे तुम सनातन पुरुष हो ॥ ८ ॥ तपस्वी मनुष्य आपको ऐसा जानते हैं, आत्मदर्शनसे तृप्त हुए ऋषि आपको सत्का भी सत् मानते हैं ॥ ९ ॥ हे मधुसूदन ! उदार, रणमें पीछेको पग न रखने वाले सकल धर्मोंमें प्रधान राजर्षियोंकी तुम परमगति हो ॥ १० ॥ इसप्रकार निरन्तर योगको जाननेवाले सनत्कुमार आदि भगवान् पुरुषोत्तम श्रीहरि की स्तुति और पूजन करते हैं ॥ ११ ॥ हे तात ! इसप्रकार मैंने

र्तितः। केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भज केशवम् ॥१२॥ सञ्जय उवाच। पुण्यं श्रुत्वैतदाख्यानं महाराज सुतस्तव। केशवं बहु मेने स पाण्डवांश्च महारथान् ॥१३॥ तमब्रवीन्महाराज भीष्मः शान्तनवः पुनः। माहात्म्यन्ते श्रुतं राजन् केशवस्य महात्मनः ॥१४॥ नरस्य च यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसे। यदर्थं नृषु सम्भूतौ नरनारायणावृषी ॥ १५ ॥ अवध्यौ च यथा वीरौ संयुगेष्वपराजितौ। यथा च पांडवा राजन्नवध्या युधि कस्यचित् ॥ १६ ॥ प्रीतिमान् हि दृढं कृष्णः पांडवेषु यशस्विषु। तस्माद् ब्रवीमि राजेन्द्र शमो भवतु पांडवैः ॥ १७ ॥ पृथिवीं भुङ्क्ष्व सहितो भ्रातृभिर्बलिभिर्वशी। नरनारायणौ देवाववज्ञाय न शिष्यसि ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वा तव पिता तूष्णीमासीद्विशाम्पते।

तुम्हें केशवका विस्तार और संक्षेप कहकर सुना दिया इसकारण अब तुम प्रसन्न होकर इनको भजो ॥ १२ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे महाराज! इस पवित्र कथाको सुनकर तुम्हारा पुत्र, श्रीकृष्ण और पाण्डवोंकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगा ॥ १३ ॥ हे तात! फिर शन्तनुनन्दन भीष्मजी उससे कहने लगे, कि-हे राजन्! तुमने महात्मा केशवका माहात्म्य सुना ॥१४॥ इस नर (अर्जुन) का ठीक वृत्तान्त मैंने तुमसे बूझा और तुमने कहकर सुनादिया तथा नर और नारायण ऋषि मनुष्योंमें किसलिये उत्पन्न हुए इसका कारण भी मैंने तुमसे कहा, इन दोनों वीरोंको रणमें न कोई मारसकता है और न कोई जीतसकता है, क्योंकि-यशस्वी पाण्डवोंके ऊपर श्रीकृष्ण दृढ़ प्रीति रखते हैं इन सब कारणोंसे मैं आपसे कहता हूं कि-पाण्डवोंके साथ तुम्हारा मेल जोल रहै ॥१५-१७॥ मनके विकारको वशमें रखकर अपने बलवान् भाइयों के साथ इस पृथिवीके राज्यको भोगो. दिव्य नर और नारायण के साथ द्वेष करनेसे निश्चय तुम्हारा नाश होजायगा ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर तुम्हारे पिता भीष्मजीने चुप होकर उसको जानेकी

व्यसर्ज्जयच्च राजानं शयनञ्च विवेश ह ॥ १६ ॥ राजा च शिबिरं मायात् प्रणिपत्य महात्मने । शिश्ये च शयने शुभ्रे रात्रिं तां भरतर्षभ ॥ २० ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्व्वणि भीष्मवधपर्व्वणि विश्वो-
पाख्यानेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

सञ्जय उवाच । व्युषितायां तु शर्वर्य्यामुदिते च दिवाकरे । उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥ १ ॥ अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः परस्परजिगीषवः । ते सर्वे सहिता युद्धे समालोक्य परस्परम् ॥ २ ॥ पांडवा धार्त्तराष्ट्राश्च राजन् दुर्मन्त्रिते तव । व्यूहौ च व्यूह्य संरब्धाः सम्प्रहृष्टाः प्रहारिणः ॥ ३ ॥ अरक्षन् मकरव्यूहं भीष्मो राजन् समन्ततः । तथैव पांडवा राजन्नरक्षन् व्यूहमात्मनः ॥ ४ ॥ स निर्ययौ महाराज पिता देवव्रतस्तव ।

आज्ञा दी और आप भी शयन करनेको चले गये ॥ १६ ॥ और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दुर्योधन भी उन महात्माको प्रणाम करके अपने तंबूमें चला गया और सफेद गद्दे पर रात बितादी ॥ २० ॥ अड़सठवां अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि–रात बीतकर सूर्य नारायणका उदय होते ही दोनों ओरकी सेनायें युद्धके लिये तयार होकर आपने सामने आकर खड़ी होगयीं ॥ १ ॥ अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए तथा एक दूसरेको जीतना चाहनेवाले ये योधा परस्परको देख कर टुकड़ियें बाँध २ कर धावे करने लगे ॥ २ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी खोटी संमतिसे आवेशमें भरे हुए कौरव और पाण्डव व्यूहरचना कर प्रसन्न होते हुए परस्परमें प्रहार करने लगे ॥३॥ भीष्मजीने मकरव्यूह रचा और उसकी चारों ओरसे रक्षा करने लगे तैसे ही पाण्डवोंने भी अपनी सेनाका जो व्यूह रचा था उसकी रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥ हे महाराज ! फिर वह रथियोंमें

महता रथवंशेन सम्वृतो रथिनां वरः ॥ ५ ॥ इतरेतरमन्वीयुर्यथा भागमवस्थिताः । रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा ॥६॥ तान् दृष्ट्वाभ्युद्यतान् संख्ये पांडवा हि यशस्विनः । श्येनेन व्यूहराजेन तेनाजय्येन संयुगे ॥ ७ ॥ अशोभत मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः । नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ८ ॥ शीर्षे तस्याभवद्वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः । विधुन्वन् गांडिवं पार्थो ग्रीवायामभवत्तदा ॥ ९ ॥ अक्षौहिण्या समं तत्र वामपक्षोऽभवत्तदा । महात्मा द्रुपदः श्रीमान् सह पुत्रेण संयुगे ॥ १० ॥ दक्षिण श्चाभवत् पक्षः कैकेयोऽक्षौहिणीपतिः । पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चापि वीर्यवान् ॥ ११ ॥ पृष्ठे समभवच्छ्रीमान् स्वयं राजा

श्रेष्ठ तुम्हारे पिता भीष्मजी रथियोंकी बड़ी भारी सेना लेकर आगे को चले ॥ ५ ॥ बराबर पंक्तिमें खड़े हुए रथी, पैदल, हाथी तथा घुड़सवार एक दूसरेके ऊपर झपटने लगे ॥६ ॥ इनको इस प्रकार आगे बढ़ते हुए देखकर यशस्वी पाण्डवोंने अपनी सेना के लिये, उत्तम माना जानेवाला और जो जीतनेमें न आवे ऐसा श्येन नामका व्यूह रचा ॥ ७ ॥ उसकी चोंचके स्थानमें महाबली भीम खड़ा हुआ, उसके दोनों नेत्रोंके स्थान पर महाबली शिखण्डी और धृष्टद्युम्न खड़े हुए ॥ ८ ॥ उसके शिरके भागमें महापराक्रमी सात्यकी खड़ा हुआ और उसकी गरदनके स्थान पर हाथमें धनुष लेकर अर्जुन खड़ा हुआ ॥ ९ ॥ उस समय उसकी बायीं करवटमें अक्षौहिणी सहित श्रीमान् महात्मा राजा द्रुपद अपने पुत्रको साथ लेकर खड़ा हुआ ॥१०॥ और उसकी दाहिनी करवटमें अक्षौहिणी सेनाको लिये हुए राजा केकय खड़ा हुआ तथा पीठके भागमें द्रौपदीके पांचों पुत्र और सुभद्रानन्दन अभिमन्यु ये खड़े हुए ॥ ११ ॥ और सुन्दर पराक्रमवाले श्रीमान् राजा युधिष्ठिर स्वयं अपने नकुल और सहदेव नाम वाले भाइयों

युधिष्ठिरः । भ्रातृभ्यां सहितो वीरो यमाभ्यां चारुविक्रमः ॥१२॥ प्रविश्य तु रणे भीमो मकरं मुखतस्तथा । भीष्ममासाद्य संग्रामे छादयामास सायकैः ॥ १३ ॥ ततो भीष्मो महास्त्राणि छादयामास भारत । मोहयन् पांडुपुत्राणां व्यूढं सैन्यं महाहवे ॥ १४ ॥ संमुह्यति तदा सैन्ये त्वरमाणो धनञ्जयः । भीष्मं शरसहस्रेण विव्याध रणमूर्धनि ॥ १५ ॥ प्रतिसंवार्य चास्त्राणि भीष्ममुक्तानि संयुगे । स्वेनानीकेन हृष्टेन युद्धाय समुपस्थितः ॥ १६ ॥ ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजमभाषत । पूर्वं दृष्ट्वा वधं घोरं बलस्य बलिनां वरः ॥१७॥ भ्रातृणां च वधं युद्धे स्मरमाणो महारथः। आचार्य सततं हि त्वं हितकामो ममानघ ॥ १८ ॥ वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम् । देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः ॥ १९ ॥ किमु पांडुसुतान् युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।

के साथ पीठके स्थान पर खड़े हुए थे ॥ १२ ॥ फिर भीमसेनने मुखके भागमेंसे मकरव्यूहमें घुसकर भीष्मजीके सामने आ बाणों की वर्षासे उनको ढकना आरम्भ कर दिया ॥१३ ॥ हे भारत ! तब भीष्मजी बड भारी अस्त्र छोड़कर उस महारणमें पाण्डवोंकी व्यूहरचनामें खड़ी हुई सेनाको तितर वितर करने लगे ॥ १४॥ जब अपनी सेना बिखरने लगी तो अर्जुन आगेको बढ़कर शीघ्रता के साथ हजारों बाणोंसे भीष्मजीके ऊपर प्रहार करने लगा १५ और रणमें भीष्मजीके छोड़े हुए सब अस्त्र पीछेको लौटाकर प्रसन्न हुई अपनी सेनाको आगे लाकर युद्ध करनेको खड़ा हो गया ॥ १६ ॥ अपनी सेनाका जो पहिले महासंहार हुआ था उसको याद करके तथा अपने भाइयोंका जो युद्धमें घोर नाश हुआ था उसको याद करके बलियोंमें श्रेष्ठ महारथी दुर्योधन द्रोणाचार्यसे कहने लगा, कि–हे निर्दोष आचार्य ! आप निरन्तर मेरा हित चाहते हैं ॥ १७ ॥१८॥ और हम आपका तथा पितामह भीष्मजीका आश्रय लेकर रणमें देवताओंको भी जीतनेके लिये पुकार सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ फिर इन

स तथा कुरु भद्रन्ते यथा वध्यन्ति पांडवाः ॥२०॥ एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष । अभिनत् पांडवानीकं प्रेक्षमाणस्य सात्यकेः ॥ २१ ॥ सात्यकिस्तु ततो द्रोणं वारयामास भारत । तयोः प्रवृत्ते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ २२ ॥ शैनेयन्तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् । अविध्यन्निशितैर्बाणैर्जत्रुदेशे हसन्निव ॥ २३ ॥ भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत । संरक्षन् सात्यकिं राजन् द्रोणाच्छस्त्रभृतांवरात् ॥ २४ ॥ ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष । भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयाञ्चक्रिरे शरैः ॥ २५ ॥ तत्राभिमन्युः संक्रुद्धो द्रौपदेयाश्च मारिष । विव्यधुर्निशितैर्बाणैः सर्वांस्तानुद्यतायुधान् ॥ २६ ॥ द्रोणभीष्मौ तु संक्रुद्धावापतन्तौ महाहवे । प्रत्युद्ययौ शिखंडी तु महेष्वासो महाहवे ॥ २७ ॥ प्रगृह्य बलवद्वीरो धनुर्ज्जलदनिःस्वनम् । अभ्य-

---

निर्वीर्य और हीनपराक्रम पाण्डुके पुत्रोंको रणमें ललकारनेकी तो बात ही क्या है ! हे महाराज ! आपका कल्याण हो, आप ऐसा करिये जिसमें ये पाण्डव मारे जायं ॥२०॥ हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रने ऐसा कहा तब द्रोणाचार्य सात्यकीके देखते हुए पांडवोंके व्यूहको तोड़ने लगे॥२१॥ परन्तु हे भारत ! सात्यकी भी द्रोणाचार्यको रोकने लगा और उन दोनोंका भयदायक महाघोर युद्ध होने लगा॥२२॥ फिर जराएक हंसते हुए से प्रतापी द्रोणाचार्यने तीखे बाण छोड़कर सात्यकीके गलेकी हँसली पर प्रहार किया ॥ २३ ॥ फिर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे सात्यकीकी रक्षा करनेके लिये भीमसेन उनको बींधने लगा ॥ २४ ॥ हे महाराज ! तब भीष्म, द्रोण और शल्य ये तीनों जने क्रोधमें भर कर बाणोंकी वर्षासे भीमसेनको ढकने लगे ॥ २५॥ यह देखकर क्रोधमें भरा हुआ अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्र शस्त्र उठा कर खड़े हुए भीष्म आदिको बींधने लगे ॥ २६ ॥ अति क्रोध करके आगेको झपटते हुए भीष्म और द्रोणाचार्यको देखकर मेघ की समान शब्द करनेवाले अपने धनुषको हाथमें लेकर महाधनुष

वर्षच्छरैस्तूर्णं छादयानो दिवाकरम् ॥२८॥ शिखंडिनं समासाद्य भरतानां पितामहः । अवर्जयत संग्रामं स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मरन् ॥ २९ ॥ ततो द्रोणो महाराज अभ्यद्रवत तं रणे । रक्षमाणस्तदा भीष्मं तव पुत्रेण चोदितः ॥ ३० ॥ शिखंडी तु समासाद्य द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् । अवर्जयत सन्त्रस्तो युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ ३१॥ ततो बलेन महता पुत्रस्तव विशाम्पते । जुगोप भीष्ममासाद्य प्रार्थयानो महद्यशः ॥३२॥ तथैव पांडवा राजन् पुरस्कृत्य धनञ्जयम् । भीष्ममेवाभ्यवर्त्तन्त जये कृत्वा दृढां मतिम् ॥ ३३ ॥ तद्युद्धमभवद् घोरं देवानां दानवैरिव । जयमाकांक्षतां संख्ये यशश्च सुमहाद्भुतम् ॥ ३४ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धारम्भ ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

धारी शिखण्डी उनके सामनेको झपटा और असंख्यों बाण छोड़कर सूर्यको ढकने लगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ जब शिखण्डी सामने आया तब भरतवंशके पितामह भीष्मजीने यह शिखण्डी स्त्री है,ऐसा विचार कर उसके साथ युद्ध करना बंद कर दिया ॥ २९ ॥ हे महाराज ! फिर तुम्हारे पुत्रके कहनेसे भीष्मजीकी रक्षा करनेके लिये द्रोणाचार्य आगे बढे ॥ ३० ॥ धकधकातेहुए प्रलय कालके अग्निकी समान द्रोणाचार्य सामनेसे आरहे हैं, यह देखते ही भयभीत हुआ शिखण्डी उनके पाससे दूर चलाजानेका प्रयत्न करने लगा ॥३१॥ और बड़े यशको चाहने वाला तुम्हारा पुत्र बड़ीभारी सेनाको लेकर भीष्मजीकी रक्षा कर रहा था॥३२॥ दूसरी ओर विजयपानेकी अटल इच्छा रखकर पाण्डव भी अर्जुनको आगे करके भीमसेनकी रक्षा कर रहे थे ॥ ३३॥ उस समय बड़े अद्भुत यशको चाहते हुए दोनों ओरके योधाओंका देवता और दानवोंकी समान महाघोर युद्ध होनेलगा ॥ ३४ ॥ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । अकरोत्तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा । भीमसेनभयादिच्छन् पुत्रांस्तारयितुं तव ॥ १ ॥ पूर्वाह्णे तन्महारौद्रं राज्ञां युद्धमवर्तत । कुरूणां पांडवानां च मुख्यशूरविनाशनम् ॥ २ ॥ तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्त्तमाने महाभये । अभवत्तुमुलः शब्दः संस्पृशन् गगनं महत् ॥३॥ नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः । भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलं समपद्यत ॥ ४ ॥ युयुत्सवस्ते विक्रान्ता विजयाय महाबलाः । अन्योऽन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महर्षभाः ॥ ५ ॥ शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः । अश्मवृष्टिरिवाकाशे बभूव भरतर्षभ ॥ ६॥ कुण्डलोष्णीपधारीणि जातरूपोज्ज्वलानि च । पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि भरतर्षभ ॥ ७ ॥ विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! फिर तुम्हारे पुत्रोंको भयमें से छुटानेके लिये भीष्मजी उस समय महाभयानक युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ जब दिन चढ़ आया तब उन क्षत्रियोंका युद्ध महाभयानक होने लगा उसमें कौरव और पाण्डवोंके मुख्य २ शूरोंका नाश होनेलगा ॥ २ ॥ युद्धने बड़ा भयानक रूप धारण किया दोनों सेनाओंका घोलमेल होगया आकाश तक पहुंचने वाला बड़ा भयावना शब्द होने लगा ॥ ३ ॥ चिंघारते हुए बड़े २ हाथियोंका हिनहिनाते हुए घोडोंके और भेरी तथा शङ्खोंके शब्दोंसे कानोंको कुछ सुनायी भी नहीं आता था ॥ ४ ॥ विजय की इच्छासे घोर युद्ध करनेमें लगे हुए सब महाबली योधा गोठों में जैसे बड़े २ बैल शब्द करते हों तैसे परस्पर गरजनेलगे ॥५॥ हे भरतसत्तम ! बाणोंसे कटते हुए शिरोंके गिरनेसे ऐसा मालूम होता था मानो आकाशमेंसे पत्थरोंकी वर्षा गिर रही है ॥ ६ ॥ और हे भरतकुलमें श्रेष्ठ ! कुण्डल तथा शिरपेंचोंसे शोभायमान हजारों शिर जिधर तिधर पड़े हुए दीखते थे ॥ ७ ॥ बाणोंसे कटेहुए अङ्गोंसे तथा जिनकी मुट्ठियोंमें ही धनुष रहगये थे ऐसे

सहस्ताभरणैश्चान्यैरभवच्छादिता मही ॥ ८ ॥ कवचैरपहितैर्गात्रै-र्हस्तैश्च समलंकृतैः । मुखैश्च चन्द्रसंकाशै रक्तान्तनयनैः शुभैः॥९॥ गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैश्च भूपते । आसीत् सर्वा समास्तीर्णा मुहूर्त्तेन वसुन्धरा ॥ १० ॥ रजो मेघैश्च तुमुलैः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिभिः । आयुधानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥ ११ ॥ स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः । प्रावर्त्तत कुरूणां च पाण्डवानां च भारत ॥ १२ ॥ तस्मिन् महाभये घोरे तुमुले लोमहर्षणे । ववृषुः शरवर्षाणि क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ १३ ॥ आक्रोशन् कुञ्जरास्तत्र शरवर्षप्रतापिताः । तावकानां परेषां च संयुगे भरतर्षभ ॥ १४ ॥ संरब्धानां च वीराणां धीराणाममितौजसाम् । धनुर्ज्यातलशब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १५ ॥ उत्थितेषु कबंधेषु सर्वतः शोणितोदके । समरे पर्यधावन्त नृपा रिपुवधोद्यताः

गहनोंसे शोभायमान हाथोंसे रणभूमि छारही थी ॥८॥ जरा देर में ही कवच पहरे हुए शरीरोंसे गहने पहरे हुए भुजदण्डोंसे, लाल २ नेत्रोंवाले तथा चन्द्रमाकी समान शोभायमान मुखोंसे, हाथी घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंसे पृथिवी ढक गयी ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ धूलिरूप बादलके चारों ओर छाजाने पर शस्त्ररूप बिजलीकी चमकके साथ आयुधोंका चटाचट शब्द मेघोंके गरजने की समान मालूम होता था ॥११॥ हे भारत ! इस प्रकार कौरव और पाण्डवोंमें जलकी समान रुधिरको उछालता हुआ शस्त्रोंका प्रहार होरहा था ॥ १२ ॥ देखनेवालोंके रोमांच खड़े करने वाले इस घोर युद्धमें मत वाले हुए क्षत्रिय असंख्यों बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १३ ॥ हे भरतसत्तम ! बाणोंकी मारसे व्याकुल हुए तुम्हारे और शत्रु पक्षके हाथी उस रणमें चीखें मार रहे थे ॥ १४ ॥ धीर और अतुलबली कोपमें भरे हुए वीरोंके धनुषोंकी टङ्कारके कारण कुछ भी सुनायी नहीं आता था ॥१५॥ रुधिरका धारामें विना शिरोंके धड़ इधर उधर लुढ़क रहे थे और शत्रुओंका

॥ १६ ॥ शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः । निजघ्नुः समरेऽन्योऽन्यं शूराः परिघबाहवः ॥ १७ ॥ बभ्रमुः कुञ्जराश्चात्र शरैर्विद्धा निरंकुशाः । अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १८ ॥ उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरघातप्रपीडिताः । तावकानां परेषां च योधा भरतसत्तम ॥ १९ ॥ बाहूनामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत । गदानां परिघाणां च हस्तानां चोरुभिः सह ॥ २० ॥ पादानां भूषणानां च केयूराणां च संघशः । राशय-स्तत्र दृश्यन्ते भीष्मभीमसमागमे ॥ २१ ॥ अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां चानिवर्तिनाम् । संघाताः स्म प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र विशांपते ॥ २२ ॥ गदाभिरसिभिः प्रासैर्बाणैश्च नतपर्वभिः । जघ्नुः परस्परं तत्र क्षत्रियाः काल आगते ॥ २३ ॥ अपरे बाहुभिर्वीरा नियुद्धकुशला युधि । बहुधा समसज्जन्त आयसैः परिघैरिव

वध करनेमें लगेहुए राजे इधर उधर दौड़ रहे थे ॥ १६ ॥ और लोहेके दण्डोंकी समान दृढ़ भुजाओंवाले वे राजे बाण, शक्ति गदा और तलवार आदिसे संग्राममें अपने शत्रुओंका संहार कर रहे थे ॥ १७ ॥ बाणोंसे बिंधेहुए हाथी, निरंकुश होकर इधर उधर दौड़रहे थे तथा पीठोंमें घायल हुए घोड़े सब ओरको भाग रहे थे ॥ १८ ॥ हे भरतसत्तम ! बाणोंके घाव लगनेसे पीड़ा पाते हुए तुम्हारे और पाण्डवोंके योधा उठ२ कर पछाड़ें खाते थे ॥ १९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार भीष्म और भीममें होते हुए युद्धमें जहां तहां वाहनोंके, शिरोंके, गदा, परिघ, हाथ, जङ्घा, पैर, आभूषण तथा बाजूबन्दोंके ढेरके ढेर दीखते थे ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ और हे राजन् ! ऐसे ही घोड़ोंके, हाथियोंके, तथा पीछेको न हटने वाले रथियोंके जहां तहां बड़े २ ढेर दीखते थे २२ और समय आजानेसे क्षत्रिय गदा, प्रास, बाण आदिके द्वारा रणमें परस्परका संहार कर रहे थे ॥ २३ ॥ हाथोंहाथकी लड़ाई में चतुर क्षत्रिय जैसे लोहेके दण्डोंसे लड़ रहे हों इसप्रकार

॥ २४ ॥ मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव तलैश्चैव विशाम्पते । अन्योऽन्यं जघ्निरे वीरास्तावकाः पांडवैः सह ॥ २५ ॥ पतितैः पात्यमानैश्च विचेष्टद्भिश्च भूतले । घोरमायोधनं जज्ञे तत्र तत्र जनेश्वर ॥२६॥ विरथा रथिनश्चात्र निस्त्रिंशवरधारिणः । अन्योऽन्यमभिधावन्तः परस्परवधैषिणः ॥२७॥ततो दुर्योधनो राजा कलिङ्गैर्बहुभिर्वृतः । पुरस्कृत्य रणे भीष्मं पाण्डवानभ्यवर्त्तत ॥ २८ ॥ तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य्य वृकोदरम् । भीष्ममभ्यद्रवन् क्रुद्धास्ततो युद्धमवर्तत ॥ २९ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा भीष्मेण संसक्तान् भ्रातृनन्यांश्च पार्थिवान् । समभ्यधावद् गाङ्गेयमुद्यतास्त्रो धनञ्जयः ॥ १ ॥ पाञ्चजन्य-

---

हाथोंके प्रहार करके रणभूमिमें लड़ रहे थे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! पाण्डवोंके और तुम्हारे पक्षके वीर हथियारोंको छोड़ घूंसे घुटे-लियें और थप्पड़ मारकर आपसमें लड़ने लगे॥२५॥ हे राजन् ! गिरेहुए और गिरतेहुए तथा पृथिवी पर जिधर तिधर लुढ़कते हुए योधाओंके शरीरोंसे रणभूमि बड़ी ही घोर दीखती थी ॥ २६ ॥ और एक दूसरेको मारनेकी इच्छा वाले रथी रथोंको छोड़ हाथोंमें तलवारें लेकर एक दूसरेके सामनेको दौड़ते थे २७ इस समय राजा दुर्योधन कलिङ्गोंको साथ लेकर तथा भीष्मजी को आगे करके पाण्डवोंके सामने आकर खड़े होगये ॥ २८ ॥ तिसीप्रकार कोपमें भरेहुए सब पाण्डव भी भीमसेनको चारों ओर से घेरकर भीष्मजीके सामने आये और फिर युद्धका आरम्भ हो गया ॥ २९ ॥ सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—अपने भाइयोंको तथा दूसरे राजाओं को भी भीष्मजीसे लड़ते हुए देखकर अर्जुन तलवार उठाये हुए गङ्गानन्दन भीष्मजीके ऊपरको दौड़ा ॥ १ ॥ पाञ्चजन्य शङ्खके

स्य निर्घोषं धनुषो गाण्डिवस्य । ध्वजञ्च दृष्ट्वा पार्थस्य सर्वान्नो भयमाविशत् ॥ २ ॥ सिंहलांगूलमाकाशे ज्वलन्तमिव पर्वतम् । असज्जमानं वृक्षेषु धूमकेतुमिवोत्थितम् ॥ ३ ॥ बहुवर्णं विचित्रञ्च दिव्यं वानरलक्षणम् । अपश्याम महाराज ध्वजं गाण्डीवधन्वनः ॥ ४ ॥ विद्युतं मेघमध्यस्थां भ्राजमानामिवाम्बरे । ददृशुर्गाण्डिवं योधा रुक्मपृष्ठं महामृधे ॥ ५ ॥ अशुश्रुम भृशं चास्य शक्रस्येवाभि गर्जतः । सुघोरं तलयोः शब्दं निघ्नतस्तव वाहिनीम् ॥ ६ ॥ चण्डवातो यथा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् । दिशः संप्लावयन् सर्वाः शरवर्षैः समन्ततः ॥ ७ ॥ अभ्यधावत गांगेयं भैरवास्त्रो धनंजयः । दिशं प्राचीं प्रतीचीं च न जानीमोस्त्रमोऽहिताः

और गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर तथा अर्जुनकी ध्वजाको देखकर हम सबोंके चित्तमें भय उत्पन्न होगया ॥ २ ॥ हे महाराज ! उस समय सिंहकी पूँछकी समान ऊँची अनेकों रङ्गोंवाली दिव्य कारीगरीसे भरीहुई तथा वानरके चिह्नवाली अर्जुनकी विचित्र ध्वजाको आकाशमें बलते हुए पर्वतकी समान और वृक्षोंसे न रुकनेवाले उदय हुए धूमकेतुकी समान देखा ॥ ३ ॥ ४ ॥ और उस महासंग्राममें योधाओंको आकाशमें घनघटामें चमकती हुई बिजलीकी समान सोनेके पत्रोंवाला गाण्डीव धनुष भी दीखा ॥५॥ और जिस समय अर्जुनने तुम्हारी सेनाका संहार किया उस समय मेघके गरजनेकी समान उसका तालियें बजानेका महाघोर शब्द हमको सुनाई आता था ॥ ६ ॥ जैसे वायुके झपाटेके साथ गरजता हुआ और बिजलीके कौंदेके साथ बरसता हुआ मेघ दशों दिशाओंको भर देता है । तैसे ही अर्जुनने भी बाणोंसे दश दिशाओंको छादिया ॥ ७ ॥ जब अर्जुन भयानक अस्त्र लेकर भीष्मजीके ऊपरको झपटा तब इसके अस्त्रसे घबड़ाये हुए ह पूर्व पश्चिमको भी न पहिचान सके ॥ ८ ॥ हे भरतसत्तम ! उ

॥ ८ ॥ क्रान्दिग्भूताः श्रान्तपत्रा हताश्वा हतचेतसः । अन्योन्य-मभिसंश्लिष्य योधास्ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥ भीष्ममेवाभ्यलीयन्त सह सर्वैस्तवात्मजैः । तेषामार्त्तायनमभूद्भीष्मः शान्तनवो रणे १० समुत्पतन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा । सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः ॥ ११ ॥ श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जित-मिवाशनेः । सर्वसैन्यानि भीतानि व्यवालीयन्त भारत ॥ १२ ॥ अथ काम्बोजजैरश्वैर्महद्भिः शीघ्रगामिभिः । गोपानां बहुसाह-स्रैर्बलैर्गोपायनैर्वृतः ॥ १३ ॥ मद्रसौवीरगान्धारैस्त्रैगर्त्तैश्च विशा-म्पते । सर्वकालिङ्गमुख्यैश्च कलिङ्गाधिपतिर्वृतः ॥ १४ ॥ नाना-नरगणौघैश्च दुःशासनपुरःसरः । जयद्रथश्च नृपतिः सहितः सर्व-राजभिः ॥ १५ ॥ हयारोहवराश्चैव तव पुत्रेण चोदिताः । चतु-र्दशसहस्राणि सौबलं पर्य्यवारयन् ॥ १६ ॥ ततस्ते सहिताः सर्वे

समय थकेहुए वाहनोंवाले तथा मर गये हैं घोड़े जिनके ऐसे निराश हुए तुम्हारे योधा घबड़ाते हुए इकट्ठे हो होकर पुत्रों सहित भीष्म जीके आश्रयमें जाने लगे, क्योंकि ऐसे संग्राममें उस समय भीष्मजी ही घबड़ानेवालोंके रक्षक थे ॥ ९ ॥ १० ॥ उस समय डरके मारे रथी रथों परसे भूमिपर कूदने लगे, घुड़सवार घोड़ोंकी पीठ पर से गिरने लगे और पैदल भी भूमि पर पछाड़ें खाने लगे ॥११॥ और बिजलीके तड़ाकेकी समान गाण्डीवके टङ्कारको सुनकर डरीहुई सब सेनायें हे भारत! एक दूसरेकी बगलमेंको घुसने लगीं ॥ १२ ॥ कांबोज देशमें उत्पन्न हुए बड़े वेगवाले घोड़े सहस्रों गोप और गोपायनोंसे घिराहुआ तथा मद्र, सौवीर, गान्धार, त्रिगर्त्त और मुख्य २ कलिङ्ग देशके योधाओंसे घिरा हुआ कलिङ्गराजने उन सेनासमूहोंके साथ दुःशासनको आगे करके सब राजाओं के सहित, जयद्रथ और तुम्हारे पुत्रोंके कहनेसे घुड़सवार तथा और चौदह हजार सेनाको साथ लिया और सबजने शकुनिकी रक्षा करनेके लिये उसके आस पास आकर खड़े होगये ॥ १३-१६ ॥

विभक्तरथवाहना: । अर्जुनं समरे जघ्नुस्तावका भरतर्षभ ॥१७॥ रथिभिर्वारणैरश्वैः पादातैश्च समीरितम् । घोरमायोधनं चक्रे महाभ्रसदृशं रजः ॥ १८ ॥ तोमरप्रासनाराचगजाश्वरथयोधिनाम् । बलेन महता भीष्मः समसज्जत् किरीटिना ॥ १९ ॥ आवन्त्यः काशिराजेन भीमसेनेन सैन्धवः । अजातशत्रुर्मद्राणामृषभेण यशस्विना ॥ २० ॥ सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत । विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना ॥ २१ ॥ मत्स्या दुर्योधनं जग्मुः शकुनिश्च विशाम्पते । द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २१ ॥ द्रोणेन समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना । कृपश्च कृतवर्मा च धृष्टद्युम्नमभिद्रुतौ ॥ २३ ॥ एवं प्रव्राजिताश्वानि भ्रान्तनागरथानि च । सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः

और इन सबोंने अपने२ रथ और वाहनोंका बराबर विभाग करके अर्जुनके ऊपर प्रहार करना आरम्भ करदिया ॥ १७ ॥ रथियोंके रथोंसे, हाथियोंसे, घोड़े और पैदलोंसे घनघटाकी समान उठीहुई धूलिके छाजाने पर वह युद्ध बड़ा भयानक होगया ॥१८॥तोमर,प्रास तथा नाराचको धारण करने वाले तथा हाथी और घोड़ों पर बैठकर लड़ने वाले योधाओंकी बड़ीभारी सेनाको साथ लेकर भीष्मजी अर्जुनके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १९ ॥ उज्जैनके राजाका पुत्र काशिराजके साथ तथा सिन्धुराज भीमके साथ लड़ रहा था, पुत्र, परिवार और मन्त्रियों सहित युधिष्ठिर यशस्वी मद्रराज शल्यके साथ युद्ध कर रहे थे,विकर्ण सहदेवके सामने घूमरहा था और चित्रसेन शिखण्डीके साथ लड़ रहा था ॥ २० ॥ २१ ॥ मत्स्य देशके राजे दुर्योधन और शकुनिके साथ, द्रुपद चेकितानके साथ और महारथी सात्यकी पुत्रसहित महात्मा द्रोणाचार्यके साथ लड़ रहा था और कृपाचार्य तथा कृतवर्मा धृष्टद्युम्नके साथ लड़ रहे थे ॥ २२ ॥ २३ ॥ भागते हुए घोड़े भ्रममें पड़ेहुए हाथी और दौड़ते हुए रथोंके साथ लड़ते २ सेना

॥ २४ ॥ निरभ्रे विद्युतस्तीव्रा दिशश्च रजसा वृताः । प्रादुरास-न्महोल्काश्च सनिर्घाता विशाम्पते ॥ २५ ॥ प्रादुर्भूतो महावातः पांशुवर्षं पपात च । नभस्यन्तर्दधे सूर्य्यः सैन्येन रजसा वृतः २६ प्रमोहः सर्वसत्वानामतीव समपद्यत । रजसा चाभिभूतानामस्त्र-जालैश्च तुद्यताम् ॥२७॥ वीरबाहुविसृष्टानां सर्वावरणभेदिनाम् । संघातः शरजालानां तुमुलः समपद्यत ॥ २८ ॥ प्रकाशं चक्रुरा-काशमुद्यतानि भुजोत्तमैः । नक्षत्रविमलाभानि शस्त्राणि भरतर्षभ ॥२९॥ आर्षभाणि विचित्राणि रुक्मजालावृतानि च । सम्पेतुर्दिक्षु सर्वासु चर्माणि भरतर्षभ ॥ ३० ॥ सूर्यवर्णैश्च निस्त्रिंशैः पात्य-मानानि सर्वशः । दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त शरीराणि शिरांसि च ॥ ३१ ॥ भग्नचक्राक्षनीडाश्च निपातितमहाध्वजाः । हताश्वाः

घोलमेल होगई थी ॥ २४ ॥ हे राजन् ! आकाशमें बादल नहीं था तो भी बिजली कौंदे लेरही थी, दिशायें धूलिसे धुँधली होगयी थीं और बड़े कड़ाकेके साथ उल्कापात होता था ॥ २५ ॥ वायु बड़े वगेके साथ चलनेलगा और धूलिकी बरसा होरही ही थी, उस समय सेनासे उड़ी हुई धूलिसे सूर्य भी आकाशमें ढक गया था ॥ २६ ॥ अस्त्रोंके प्रहारोंसे पीड़ा पाते हुए तथा धूलिसे अन्धेहुए सब योधा वीरोंके हाथोंमेंसे छूटेहुए, बख्तरको फोड़ डालनेवाले बाणोंके जालोंकी बड़ी घनी मार काट होरही थी २७ ॥ २८ ॥ और हे भारत ! उत्तम भुजाओंसे ऊँचे नीचे होते तारा गणोंकी समान चमकते हुए अस्त्र आकाशमें उजाला करनेलगे ॥ २९ ॥ और हे भरतसत्तम ! गैंडेके चमड़ेकी बनायी हुई तथा सोनेसे मँढी हुईं विचित्र ढालें चारों दिशाओंमें गिरनेलगीं ॥ ३० ॥ और सूर्यकी समान चमकनेवालीं तलवारोंसे कटते हुए शरीर तथा शिर सब दिशाओंमें गिरते हुए दीखनेलगे ॥ ३१ ॥ पहिये, धुरी और ढाँचे टूटजानेसे तथा ध्वजा और

पृथिवीं जग्मुस्तत्र तत्र महारथाः ॥ ३२ ॥ परिपेतुर्हयाश्चात्र केचि-च्छस्त्रकृतव्रणाः । रथान् विपरिकर्षन्तो हतेषु रथयोधिषु ॥ ३३ ॥ शराहता भिन्नदेहा बद्धयोक्त्रा हयोत्तमाः । युगानि पर्य्यकर्षन्त तत्र तत्र स्म भारत ॥ ३४ ॥ अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथ-योधिनः । एकेन बलिना राजन् वारणेन विमर्दिताः ॥३५॥ गन्ध-हस्तिमदस्त्राव्रमाघ्राय बहवो रणे । सन्निपाते बलौघानां वीतमाददिरे गजाः ॥ ३६ ॥ स तोमरैर्महामात्रैर्निपतद्भिर्गतासुभिः । बभूवायो-धनं छन्नं नाराचाभिहतैर्गजैः ॥३७॥ सन्निपाते बलौघानां प्रेषितै-र्वरवारणैः । निपेतुर्युधि संभग्नाः सयोधाः सध्वजा गजाः॥३८॥ नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे । व्यदृश्यंत महाराज संभग्ना रथकूबराः ॥ ३९ ॥ विशीर्णरथसंघाश्च केशेष्वाक्षिप्य दंतिभिः ।

घोड़े कटजानेसे बड़े २ रथ जहाँ तहाँ भूमिमें ढेर होनेलगे ३२ रथियोंके मारे जानेसे कितने ही घोड़े रथोंको लेकर भागते २ घायल होजानेसे भूमि पर गिरते दीखे ॥ ३३ ॥ बाणोंसे बिंधे-हुए और कटेहुए शरीरोंवाले कितने ही श्रेष्ठ घोड़े जोतोंको खेंचते हुए इधर उधर घूमने लगे ॥ ३४ ॥ हे राजन्! कहीं २ बलवान् हाथियोंके कुचले हुए सारथी घोड़े और रथी नीचे पड़े दीखने लगे ॥ ३५ ॥ सेनाओंके ऐसे संग्राममें,मद टपकानेवाले सामनेके हाथियोंके मदकी गन्ध पाकर साधारण हाथी सूँडोंको लम्बी कर२ के सूँघ रहे थे ॥३६॥ नाराच तोमर आदिसे कटे हुए हाथियोंकी ल्हासोंसे रणभूमि भरगई थी ॥३७॥ सग्राममें महावतोंके दौड़ाये हुए हाथियोंसे कुचले हुए दूसरे अनेकों हाथी अपने महावतों सहित तथा टूटीहुई ध्वजाओं सहित भूमिपर ढह रहे थे ॥ ३८ ॥ नागराजकी समान हाथियोंकी सूंडोंके प्रहारसे इस युद्धमें हजारों रथोंके टूटे हुए ढचर दीखते थे ॥ ३९ ॥ जिनके रथ टूटगये थे ऐसे कितने ही रथियोंको हाथी चोटियें पकड़कर जड़ सहित उखाड़े हुए वृक्षोंकी समान पृथिवी पर पटकते

द्रुमशाखा इवाविध्य निष्पिष्टा रथिनो रणे ॥ ४० ॥ रथेषु च रथान् युद्धे संसक्तान् वरवारणाः । विकर्षन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः सर्वशब्दगाः ॥ ४१ ॥ तेषां तथा कर्षतां तु गजानां रूपमाबभौ । सरःसु नलिनीजालं विषक्तमिव कर्षताम् ॥४२॥ एवं संछादितं तत्र बभूवायोधनं महत् । सादिभिश्च पदातैश्च सध्वजैश्च महारथैः॥४३॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्ध एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

सञ्जय उवाच । शिखण्डी सह मत्स्येन विराटेन विशांपते । भीष्ममाशु महेष्वासमाससाद सुदुर्ज्जयम् ॥१॥ द्रोणं कृपं विकर्णं च महेष्वासं महाबलम् । राज्ञश्चान्यान् रणे शूरान् बहूनार्च्छद्धनञ्जयः ॥ २ ॥ सैंधवञ्च महेष्वासं सामात्यं सह बन्धुभिः । प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च भूमिपान् भूमिपर्षभ ॥ ३ ॥ पुत्रश्च ते महेष्वासं दुर्योधनममर्षणम् । दुःसहश्चैव समरे भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥ ४ ॥

थे ॥ ४० ॥ तथा इस युद्धमें आपने सामने आजाने पर आपस में भिड़े हुए रथोंको खेंचकर हाथी चीखें मारते हुए जिधर तिधर को भाग रहे थे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार रथोंको खेंचतेहुए हाथी, सरोवरोंके भीतर उगेहुए कमलोंको खेंचते हुए वनके हाथीसे दीखते थे ॥ ४२ ॥ घुड़सवार पैदल महारथी और ध्वजाओंसे वह रणभूमि छागई थी ॥ ४३ ॥ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ७१

सञ्जय कहने लगा, कि—हे राजन् ! मत्स्यराज तथा राजा विराटके सहित शिखण्डी बड़े धनुषधारी तथा तेजस्वी भीष्मजी के साथ युद्ध करनेको आकर खड़ा होगया ॥ १ ॥ धनञ्जय भी द्रोण कृपाचार्य विकर्ण आदि महाबली और बड़े धनुषधारी और भी अनेकों राजाओंके साथ युद्ध करनेको आया ॥ २ ॥ सिन्धु-राज जो बड़ा धनुषधारी था जो मंत्री और भाइयोंके साथ खड़ा हुआ था उसके साथ तथा पूर्वके राजे दक्षिणके राजे और तुम्हारे दुःसह पुत्र दुर्योधनके साथ भीमसेन युद्ध करने लगा ३

सहदेवस्तु शकुनिमुलूकञ्च महारथम् । पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यधावत दुर्जयौ ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरो महाराज गजानीकं महारथः । समवर्तत संग्रामे पुत्रेण निकृतस्तव ॥ ६ ॥ माद्रीपुत्रस्तु नकुलः शूरः संक्रंदनो युधि । त्रिगर्तानां बलैः सार्धं समसज्जत पांडवः ॥ ७ ॥ अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः समरे शाल्वकेकयान् । सात्यकिश्चेकितानश्च सौभद्रश्च महारथः ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुश्च समरे राक्षसश्च घटोत्कचः । पुत्राणां ते रथानीकं प्रत्युद्याताः सुदुर्जयाः ॥ ९ ॥ सेनापतिरमेयात्मा धृष्टद्युम्नो महाबलः । द्रौणिना समरे राजन् समीयायोग्रकर्मणा ॥ १० ॥ एवमेते महेष्वासास्तावकाः पांडवैः सह । समेत्य समरे शूराः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे॥११॥ मध्यन्दिनगते सूर्ये नभस्याकुलताङ्गते । कुरवः पांडवेयाश्च निजघ्नुरितरेतरम्॥१२॥

॥ ४ ॥ शकुनि और महारथी उलूक इन दोनों पिता पुत्रोंके साथ युद्ध करनेको सहदेव आया ॥ ५ ॥ और हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे तिरस्कार पायेहुए युधिष्ठिर तुम्हारी बड़ीभारी गजसेनाके साथ युद्ध करनेको आकर खड़े होगये ॥ ६ ॥ जो शूरोंके भी नेत्रोंमेंसे आँसू निकलवा सकता था ऐसा माद्रीका पुत्र नकुल त्रिगर्तोंकी सेनाके सामने लड़नेको आकर खड़ा हो गया ॥ ७ ॥ बड़े भारी कोपमें भरेहुए सात्यकी चेकितान और महारथी अभिमन्यु शल्य और केकयके सामने आकर खड़े हो गये ॥ ८ ॥ धृष्टकेतु और राक्षस घटोत्कच तुम्हारे पुत्रकी रथिया की सेनाके सामने तयार होकर खड़े होगये ॥ ९ ॥ और बड़ा उत्साही महाबली धृष्टद्युम्न उस संग्राममें उग्र पराक्रमी द्रोणाचार्य के सामने आकर खड़ा होगया ॥ १० ॥ बड़े धनुषधारी तुम्हारे और पाण्डवोंके पुत्र तथा योधा आमने सामने खड़े होकर शस्त्रों का प्रहार करने लगे ॥ ११ ॥ उस समय दुपहर होनेको आगया और सूर्य आकाशमें शिरपर आकर किरणें फैला रहा था तुम्हारे और पाण्डवोंके योधा आपसमें संहार कर रहे थे ॥ १२ ॥

ध्वजिनो हेमचित्राङ्गा विचरन्तो रणाजिरे। सपताका रथा रेजु-र्वैयाघ्रपरिवारणाः॥१३॥समेतानां च समरे जिगीषूणां परस्परम्। बभूव तुमुलः शब्दः सिंहानामिव नर्दताम्॥१४॥ तत्राद्भुत-मपश्याम सम्प्रहारं सुदारुणम्। यदकुर्वन् रणे शूराः सृञ्जयाः कुरुभिः सह॥१५॥ नैव खं न दिशो राजन्न सूर्यं शत्रुतापन। विदिशो वापि पश्यामः शरैर्मुक्तैः समन्ततः॥१६॥ शक्तीनां विमलाग्राणां तोमराणां तथास्यताम्। निस्त्रिंशानां च पीतानां नीलोत्पलनिभाः प्रभाः॥१७॥ कवचानां विचित्राणां भूषणानां प्रभास्तथा। खं दिशः प्रदिशश्चैव भासयामासुरोजसा॥१८॥ वपुर्भिश्च नरेन्द्राणां चन्द्रसूर्यसमप्रभैः। विरराज तदा राजंस्तत्र तत्र रणाङ्गनम्॥१९॥ रथसंघा नरव्याघ्राः समायाताश्च संयुगे।

ध्वजाओं वाले सोनेसे मँढेहुए तथा पताका और शेरके चमड़े के परदोंवाले बड़े २ रथ रणभूमिमें इधर उधरको दौड़ते हुए बड़ी शोभा पारहे थे॥१३॥ इस समय एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा वाले इकट्ठे योधाओंके दहाड़ते हुए सिंहोंकेसे घोर शब्द हो रहे थे॥१४॥ इस समय सृञ्जय कुरुओंके साथ लड़ते हुए जो प्रहार कर रहे थे, उसको देखकर तो हमें बड़ा ही अचरज मालूम होता था॥१५॥ चारों ओरको फेंके हुए उनके बाण जालनेसे आकाश दिशायें और उपदिशायें इनमेंसे कुछ भी नहीं दीखता था॥१६॥ निर्मल धार वाली शक्तियें, फेंके हुए तोमर, पानीदार, आसमानी रङ्गके कमलकी समान उठी हुई तलवारें तथा विचित्र कवच और आभूषणोंकी चमकसे आकाश, दिशायें और उपदिशायें दमक रही थीं॥१७॥१८॥ हे राजन्! चन्द्रमा और सूर्यकी समान कान्ति वाले राजाओंके शरीरोंसे रणभूमि जहां तहां शोभायमान होरही थी॥१९॥ आमने सामने खड़े हुए रथ और पुरुषोंमें सिंहसमान योधा आकाशमें आमने सामने आये हुए ग्रहोंकी

विरेजुः समरे राजन् ग्रहा इव नभस्तले ॥ २० ॥ भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनं महाबलम् । अवारयत संक्रुद्धः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥२१॥ ततो भीष्मविनिर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः । अभ्यघ्नन् समरे भीमं तैलधौताः सुतेजनाः ॥ २२ ॥ तस्य शक्तिं महावेगां भीमसेनो महाबलः । क्रुद्धाशीविषसंकाशां प्रेषयामास भारत॥२३॥ तामापतन्तीं सहसा रुक्मदण्डां दुरासदाम् । चिच्छेद समरे भीष्मः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २४ ॥ ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च । कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत ॥ २५ ॥ सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे । आकर्णमहितैस्तीक्ष्णै र्निशितैस्तिग्मतेजनैः ॥ २६ ॥ शरैर्बहुभिरानर्च्छत् पितरं ते जनेश्वर । ततः सन्धाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम् ॥२७॥ वार्ष्णेयस्य रथाद्भीष्मः पातयामास सारथिम् । तस्याश्वाः प्रद्रुता राजन्

समान शोभा पारहे थे ॥ २० ॥ और रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मजीने कोपमें भरकर सब सेनाके सामने बाण छोड़कर भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २१ ॥ भीष्मजीके धनुषमेंसे छूटेहुए सोनेके परों वाले सान पर लगा कर तेज किये तथा तेलसे धोये हुएवह तीखे बाण भीमसेनको घायल करने लगे ॥ २२ ॥ हे भारत ! उस समय महाबली भीमने महावेगवाली और क्रोधमें भरे हुए नाग की समान अपनी शक्ति भीष्मजीके ऊपर फेंकी ॥ २३ ॥ सोने के हत्थे वाली भीमकी दारुण शक्तिको अपनी ओरको आती हुई देखकर भीष्मजीने दृढ़ फलक वाले बाण मारकर उसको काट डाला ॥ २४ ॥ तथा हे भारत ! तीखे और बुझाये हुए भल्ल नामके दूसरे बाणसे उन्होंने भीमसेनके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥२५ ॥ यह देखकर सात्यकी शीघ्र ही अपने धनुषको कानतक खेंचकर तीखे और झलझलाते हुए अनेकों बाणोंसे तुम्हारे पिता भीष्मजीके ऊपर प्रहार करने लगा तब भीष्मजी ने भी अपने धनुषपर परम दारुण तीखा बाण चढ़ाकर इस वृष्णिवंशी राजाके सारथीको रथ परसे नीचे गिरा दिया और हे राजन्!

निहते रथसारथौ ॥ २८ ॥ तेन तेनैव धावन्ति मनोमारुतरंहसः । ततः सर्वस्य सैन्यस्य निःस्वनस्तुमुलोऽभवत् ॥ २९ ॥ हाहाकारश्च सञ्जज्ञे पांडवानां महात्मनाम् । अभिद्रवत गृहीत हयान् यच्छत धावत ॥ ३० ॥ इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युयुधानरथं प्रति । एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३१ ॥ न्यहनत् पांडवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा । ते वध्यमाना भीष्मेण पाञ्चालाः सोमकैः सह ॥ ३२ ॥ स्थिरां युद्धे मति कृत्वा भीष्ममेवाभिदुद्रुवुः । धृष्टद्युम्नमुखाश्चापि पार्थाः शान्तनवं रणे ॥ ३३ ॥ अभ्यधावन् जिगीषन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् । तथैव कौरवा राजन् भीष्मद्रोणपुरोगमाः ॥ ३४ ॥ अभ्यधावन्त वेगेन ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे

द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

वह सारथी मर गया तब उसके घोड़े भड़ककर मन और पवनकी समान वेगसे रथको लेकर भागने लगे, उस समय सब सेनाकी पुकारसे बड़ा कोलाहल होगया ॥२८॥२९॥ महात्मा पाण्डवोंकी सेनामें हाहाकार मच रहा था, और दौड़ो, पकड़ो, रोको ऐसे शब्द युयुधानके रथके आगे पीछे सुनाई आने लगे॥३०॥इस समय जैसे इन्द्र असुरोंका संहार करता हो तिसीप्रकार शन्तनुनन्दन भीष्मजी ने पाण्डवोंकी सेनाका संहार करना आरम्भ कर दिया, भीष्मजीके प्रहारको सहते हुए पांचाल और सोमक युद्धमें लड़नेका पक्का विचार करके भीष्मजीके सामनेको झपटे, तथा विजय पानेकी इच्छा वाले धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवोंके योधा भीष्मजीकी तथा तुम्हारे पुत्रकी सेनाके ऊपर टूट पड़े, इसीप्रकार तुम्हारे कौरव भी भीष्म और द्रोणाचार्यको आगे करके पाण्डवोंके ऊपर टूट पड़े और आवेशके साथ युद्ध होने लगा ॥ ३१-३५ ॥ बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय उवाच। विराटोऽथ त्रिभिर्बाणैर्भीष्ममार्च्छन्महारथम्। विव्याध तुरगांश्चास्य त्रिभिर्बाणैर्महारथः॥ १॥ तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शांतनवः शरैः। रुक्मपुंखैर्महेष्वासः कृतहस्तो महाबलः॥ २॥ द्रौणिर्गाण्डीवधन्वानं भीमधन्वा महारथः। अविध्यदिषुभिःषड्भिर्दृढहस्तः स्तनान्तरे॥३॥ कार्मुकं तस्य चिच्छेद फाल्गुनः परवीरहा। अविध्यच्च भृशं तीक्ष्णैः पत्रिभिः शत्रुकर्शनः॥४॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय वेगवान् क्रोधमूर्च्छितः। अमृष्यमाणः पार्थेन कार्मुकच्छेदमाहवे॥ ५॥ अविध्यत फाल्गुनं राजन् नवत्या निशितैः शरैः। वासुदेवञ्च सप्तत्या विव्याध परमेषुभिः॥ ६॥ ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कृष्णेन सह फाल्गुनः। दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य चिन्तयित्वा पुनः पुनः॥ ७॥ धनुः प्रपीड्य

सञ्जय कहता है, कि-महारथी विराटने महारथी भीष्मजीके ऊपर तीन बाण छोड़कर प्रहार किया और फिर तीन बाण छोड़ कर उनके घोड़ोंको घायल कर डाला॥ १॥ महाबली शन्तनुनन्दन भीष्मजीने अपने हाथकी चातुरी दिखाकर सोनेके परोंवाले दश बाण छोड़कर उसको बींध दिया॥२॥ और भयानक धनुष वाले महारथी अश्वत्थामाने अपने मजबूत हाथसे छः बाण छोड़ कर अर्जुनकी छातामें प्रहार किया॥ ३॥ तब शत्रुओंके वीरों का नाश करने वाले और शत्रुओंको जड़मूलसे उखाड़ डालने वाले अर्जुनने तीखे बाण छोड़ कर उसके धनुषके टुकड़े२ कर डाले४ अर्जुनने धनुष काट डाला इस बातका सहन न होने से क्रोधके मारे लाललाल हुए उस वेगवान्ने हाथमें दूसरा धनुष लेकर नब्बै तीखे बाण छोड़कर अर्जुनको तथा हे राजन्! बड़े२ सत्तर बाण छोड़ कर श्रीकृष्णको बींधदिया॥५-६॥ इससे क्रोध के कारण लाल २ आंखोंवाले बलवानोंमें श्रेष्ठ शत्रुनाशी अर्जुन ने गरम सांस छोड़कर तथा कृष्णके साथ बार २ सलाह करके क्रोधयुक्त हो बायें हाथमें धनुष लिया और प्राण लेने वाले घोर

वामेन करेणामित्रकर्शनः । गाण्डीवधन्वा संक्रुद्धः शितान् सन्नतपर्वणः ॥ ८ ॥ जीवितान्तकरान् घोरान् समादत्त शिलीमुखान् । तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद् द्रौणिं बलवतां वरः ॥ ९ ॥ तस्य ते कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे । न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना ॥ १० ॥ तथैव च शरान् द्रौणिः प्रविमुञ्चन्नविह्वलः । तस्थौ स समरे राजंस्त्रातुमिच्छन् महाव्रतम् ॥११॥ तस्य तद् सुमहत् कर्म शशंसुः कुरुसत्तमाः । यत् कृष्णाभ्यां समेताभ्यामभ्यापतत संयुगे ॥ १२ ॥ स हि नित्यमनीकेषु युध्यतेऽभयमास्थितः । अस्त्रग्रामं ससंहारं द्रोणात् प्राप्य सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥ ममैष आचार्यसुतो द्रोणस्यापि प्रियः सुतः । ब्राह्मणश्च विशेषेण माननीयो ममेति च ॥ १४ ॥ समास्थाय मतिं वीरो बीभत्सुः शत्रुतापनः । कृपां चक्रे रथश्रेष्ठो भारद्वाजसुतं प्रति ॥ १५ ॥

बाण धनुष पर चढ़ाये तथा ठीक निशाना ताककर शीघ्र ही अश्वत्थामाको बींध दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ उन बाणोंने अश्वत्थामा के कवचको फोड़कर उसका रुधिर पीलिया, परन्तु रणमें अर्जुन के घायल किए हुए अश्वत्थामाने जरा भी व्यथा नहीं मानी ॥ १० ॥ और हे राजन्! जरा न घबड़ाकर वैसे ही बाणोंको छोड़ता हुआ वह अश्वत्थामा भीष्मजीकी रक्षा करनेकी इच्छासे तैसा ही खड़ा रहा ॥ ११ ॥ रणमें कृष्ण और अर्जुन दोनोंके सामने वह बड़ी वीरता से लड़ रहा था यह देखकर कुरुवंशी श्रेष्ठ वीर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १२ ॥ उसने बाण छोड़ने की और फिर लौटानेकी अत्यन्त दुर्लभ विद्या द्रोणाचार्यसे सीखी थी, इसकारण वह अश्वत्थामा रणमें सदा निर्भय होकर लड़ा करता था ॥ १३ ॥ वह मेरे गुरुका बेटा है द्रोणाचार्यका प्यारा बेटा है तथा ब्राह्मण भी है, इस कारण मेरा विशेषकर माननीय है ॥१४॥ ऐसा विचार कर शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा रथियों में श्रेष्ठ वीर अर्जुनने अश्वत्थामाके ऊपर कृपा की ॥ १५ ॥

द्रौणिं त्यक्त्वा ततो युद्धे कौन्तेयः श्वेतवाहनः। युयुधे तावकान्नि-
घ्नंस्त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १६ ॥ दुर्य्योधनस्तु दशभिर्गार्ध्र पत्रैः
शिलाशितैः। भीमसेनं महेष्वासं रुक्मपुङ्खैः समर्पयत् ॥ १७ ॥
भीमसेनः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम्। चित्रं कार्मुकमादत्त शरांश्च
निशितान्दश ॥ १८ ॥ आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्वेगवद्भिरजिह्मगैः।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रः कुरुराजं महोरसि॥१९॥ तस्य काञ्चनसूत्रस्थः
शरैः संछादितो मणिः। रराजोरसि खे सूर्य्यो ग्रहैरिव समावृतः
॥ २० ॥ पुत्रस्तु तव तेजस्वी भीमसेनेन ताडितः। नामृष्यत यथा
नागस्तलशब्दं मदोत्कटः ॥ २१ ॥ ततः शरैर्महाराज रुक्मपुंखैः
शिलाशितैः। भीमं विव्याध संक्रुद्धस्त्रासयन्ते वरूथिनीम् ॥२२॥
तौ युध्यमानौ समरे भृशमन्योऽन्यविक्षतौ। पुत्रौ ते देवसङ्काशौ

इस कारण अश्वत्थामाको छोड़कर श्वेत घोड़ों वाला पराक्रमी अर्जुन तुम्हारे पुत्रोंकी ओरको दौड़ा और उनके प्राण लेनेकी इच्छासे युद्ध करने लगा ॥ १६ ॥ उस समय दुर्योधनने जिनमें गिद्धके पर बँध रहे थे ऐसे सानपर धरे हुए सोनेके परोंवाले दश बाण छोड़कर भीमसेनको बींध दिया ॥ १७॥ तब भीमसेनने भी कोपमें भरकर शत्रुओंका नाश करने वाले विचित्र धनुषको हाथ में लिया और उस पर दश बाण चढ़ाये ॥ १८ ॥ तथा जोरसे खेंच सीधे जानेवाले तीखे बाणको छोड़कर कुरुराज दुर्योधनकी विशाल छातीमें प्रहार किया ॥१९॥ दुर्योधनके कण्ठमेंका सोनेके सूत्रमें पिरोया हुआ मणि भीमसेनके बाणोंसे घिर जानेके कारण उसकी छाती पर, ग्रहोंसे घिरे हुए सूर्यकी समान शोभा पारहा था ॥ २०॥ मदोत्कट हाथी जैसे सामने किये हुए ताली बजाने के शब्दको नहीं सहसकता है तैसे ही तुम्हारा तेजस्वी पुत्र भीमसेनके प्रहारको नहीं सहसका ॥ २१ ॥ हे महाराज ! तदनन्तर क्रोधमें भरकर सेनाको त्रास देते हुए दुर्योधनने सानपर धरेहुए सोनेके परोंवाले बाणोंसे भीमसेनको बींधदिया ॥२२॥ इसप्रकार

व्यरोचेतां महाबला ॥ २३ ॥ चित्रसेनं नरव्याघ्रं सौभद्रः परवीरहा । अविध्यद्दशभिर्बाणैः पुरुमित्रं च सप्तभिः ॥२४॥ सत्यव्रतञ्च सप्तत्या विद्ध्वा शक्रसमो युधि । नृत्यन्निव रणे वीर आर्त्तिं नः समजीजनत् ॥२५॥ तं प्रत्यविध्यद्दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः । सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः ॥ २६ ॥ स विद्धो विक्षरन् रक्तं शत्रुसंवारणं महत् । चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः ॥ २७ ॥ भित्त्वा चास्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडत् । ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः ॥ २८ ॥ समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः । तांश्च सर्वान् शरैस्तीक्ष्णैर्जघान परमास्त्रवित् ॥ २९ ॥ तस्य दृष्ट्वा तु तत् कर्म परिवव्रुस्सुतास्तव ।

युद्ध करते और परस्परके प्रहारसे अत्यन्त घायल हुए तुम्हारे महाबली पुत्र भीमसेन और दुर्योधन रणमें देवताओंकी समान शोभा पारहे थे ॥ २३ ॥ शत्रुओंके वीरोंका नाश करने वाले पुरुषसिंह अभिमन्युने चित्रसेनको दश बाणोंसे और पुरुमित्रको सात बाणोंसे बींध दिया ॥ २४॥ और सत्यव्रत भीष्मजीको सत्तर बाणोंसे घायल करके इन्द्रकी समान पराक्रमी यह कुमार हे वीर! रणभूमिमें कूदने लगा, यह देखकर हमारे योधाओंके मनमें बड़ा क्रोध हुआ ॥ २५ ॥ तब चित्रसेनने दश बाणोंसे सत्यव्रत भीष्मं ने नौ बाणोंसे और पुरुमित्रने सात बाणोंसे उस अभिमन्युको घायल किया ॥ २६ ॥ बाणोंसे घायल होनेके कारण उसके शरीरमेंसे रुधिर टपकने लगा, परन्तु उस अर्जुनकुमारने चित्रसेनके शत्रुओंको रोकनेवाले,बड़े भारी धनुषको काट डाला॥२७॥ तथा उसके कवचको तोड़कर उसकी छातीमें प्रहार किया तब क्रोधमें भरे हुए तुम्हारे वीर पुत्र तथा दूसरे महारथी राजकुमार तीखे बाणोंसे उसको घायल करने लगे परन्तु परम अस्त्र विद्या को जानने वाले अभिमन्युने बाण छोड़कर उन सबोंको ही घायल किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ उसके इस पराक्रमको देखकर तुम्हारे

दहन्तं समरे सैन्यं वने कक्षं यथोल्वणम् ॥ ३० ॥ अपेतशिशिरे काले समिद्धमिव पावकम् । अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि नाशयन् ॥ ३१ ॥ तत्तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशाम्पते । लक्ष्मणोऽभ्यपतत्तूर्णं सात्वतीपुत्रमाहवे ॥ ३२ ॥ अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । विव्याध निशितैः षड्भिः सारथिञ्च त्रिभिः शरैः ॥३३॥ तथैव लक्ष्मणो राजन् सौभद्रं निशितैः शरैः । अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३४ ॥ तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिञ्च महाबलः । अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥ हताश्वे तु रथे तिष्ठन् लक्ष्मणः परवीरहा । शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ३६ ॥ तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदाम् । अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम् ॥ ३७ ॥ ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं

हुए चारों ओरसे वाह वाह करने लगे, उस समय जैसे शिशिर के अन्तमें वनमें लगा हुआ प्रचण्ड अग्नि वनको भस्म करता है तैसे ही तुम्हारी सेनाका नाश करता हुआ अभिमन्यु बड़ी ही शोभा पारहा था ॥३०॥३१॥ हे राजन् ! तुम्हारा पोता लक्ष्मण सुभद्रानन्दन अभिमन्युके रणमें ऐसे पराक्रमको देखकर उसके ऊपर टूट पड़ा ॥ ३२ ॥ अति कोपमें भरेहुए अभिमन्युने शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मणके छः तीखे बाण मारे और सारथीके तीन बाण मारे ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! ऐसे ही लक्ष्मणने भी तीखे बाण छोड़कर अभिमन्युके ऊपर प्रहार करना आरम्भ कर दिया यह सबको अचरजसा मालूम हुआ ॥ ३४ ॥ महाबली सुभद्रानन्दन तेज बाणोंसे लक्ष्मणके चारों घोड़ों और सारथीको मार कर उसके उसके ऊपरको झपटा ॥ ३५॥ जिसके घोड़े मर गये हैं ऐसे रथमें बैठेहुए शत्रुनाशी लक्ष्मणने बड़े कोपमें भरकर अभिमन्युके रथ पर एक शक्ति फेंकी ॥ ३६ ॥ सांपकी समान भयानक और घोररूप वाली उस शक्तिको एकायकी अपने ऊपर आती हुई देखकर अभिमन्युने तीखे बाणोंसे उसके टुकड़े २ कर डाले

गौतमस्तदा । अपोवाह रथेनाशौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३८ ॥ ततः समाकुले तस्मिन् वर्तमाने महाभये । अभ्यद्रवन् जिघांसन्तः परस्परवधैषिणः ॥ ३९ ॥ तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः । जुह्वतः समरे प्राणान् निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ४० ॥ मुक्ता केशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः । बाहुभिः समयुध्यन्त सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ ४१ ॥ ततो भीष्मो महाबाहुः पाण्डवानां महात्मनाम् । सेनां जघान संक्रुद्धो दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ ४२ ॥ हतेश्वरैर्गजैस्तत्र नरैरश्वैश्च पातितैः । रथिभिः सादिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ४३ ॥ छ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच । अथ राजन् महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।

॥ ३७ ॥ तब कृपाचार्य लक्ष्मणको अपने रथमें बैठाल कर सब सेनाके देखते हुए उसको रणमेंसे बाहर लेगये ॥३८॥ तदनन्तर वह महाघोर युद्ध बड़ा भयदायक हो उठा, परस्परको मारनेकी इच्छावाले तथा बड़े २ धनुषोंको धारण करनेवाले तुम्हारे तथा पाण्डुके पुत्र समराग्निमें प्राणोंको होमते हुए एक दूसरेके ऊपरको दौड़ने लगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जिनके बाल खुल गये हैं, कवच कटगये हैं ऐसे रथहीन हुए पाण्डव और सृञ्जय धनुष कट जानेपर हाथोंसे पटक२ कर लड़ने लगे ॥ ४१ ॥ तब महाबली भीष्म क्रोधमें भरकर महात्मा पाण्डवोंकी सेनाको दिव्य अस्त्रोंसे मारने लगे ॥४२॥ जिनके महावत मर गये हैं ऐसे हाथियों से मार गिराये हुए घोड़े और मनुष्योंसे तथा कटकर पड़ेहुए रथी और घुड़सवारोंसे रणभूमि छागयी ॥ ४३ ॥ तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजन्! इस पांचवें दिनके युद्धमें

विकृष्य चापं समरे भारसाहमनुत्तमम् ॥१॥ प्रासृजत् पुंखसंयुक्तान् शरानाशीविषोपमान् । प्रगाढं लघुचित्रञ्च दर्शयन् हस्तलाघवम् ॥ २ ॥ तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः । आददानस्य भूयश्च सन्दधानस्य चापरान् ॥ ३॥ क्षिपतश्चापरांस्तस्य रणे शत्रून् विनिघ्नतः । ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः ॥ ४ ॥ तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः । रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥ तांस्तु सर्वान्महेष्वासान् सात्यकिः सत्यविक्रमः । जघान परमेष्वासो दिव्येनास्त्रेण वीर्यवान् ॥६ ॥ स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः । आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे ॥ ७ ॥ स हि संदृश्य सेनांते युयुधानेन पातिताम् । अभ्यधा-

---

दूसरी ओर विशाल भुजावाले तथा युद्धमें अजेय सात्यकीने बड़े वेगको सहनेवाले अपने धनुषको खेंचकर सर्पकी समान विषैले तथा पूँछवाले बाण छोड़कर अपने हाथकी शीघ्रता (फुरती) दिखाना आरम्भ करदी ॥ १ ॥ २ ॥ वह बारम्बार धनुषको खेंचकर नानाप्रकारके बाण छोड़ता था और एक बाण छूटने नहीं पाता था, कि—दूसरेका सन्धान कर लेता था तथा वह छूटने नहीं पाता था, कि—इतनेमें ही तीसरा बाण चढ़ाकर शत्रुओंका संहार करता था, वह अपनी इस हथचालाकीसे ऐसा प्रतीत होता था मानो मेघ वर्षा कर रहा है ॥ ३ ॥४ ॥ हे भारत ! युद्धमें उसकी ऐसी बढ़ती कलाको देखकर राजा दुर्योधनने उस के सामने दश हजार रथ भेजे ॥ ५ ॥ इन रथोंमें बैठकर आने वाले बड़े २ धनुषधारी सत्यपराक्रमी योधा थे, इनको भी महाधनुषधारी सात्यकीने दिव्य अस्त्रसे मारना आरम्भ कर दिया ॥ ६ ॥ संग्राममें ऐसा दारुण काम करके हाथमें बड़ा धनुष लिये हुए यह वीर रणभूमिमें भूरिश्रवाके सामने आया ॥ ७ ॥ युद्धमें सात्यकीने तुम्हारी सेनाको तित्तर बित्तर करदिया, यह देखकर कुरुओं की कीर्त्ति बढ़ानेवाला भूरिश्रवा उस शत्रुके सामनेको

वत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्त्तिवर्द्धनः ॥८॥ इन्द्रायुधसवर्णं तु विस्फार्य सुमहद्धनुः । व्यसृजत् वज्रसङ्काशान् शरानाशीविषोपमान् ॥ ९ ॥ सहस्रशो महाराज दर्शयन् पाणिलाघवम् । शरांस्तान् मृत्युसंस्पर्शान् सात्यकेश्च पदानुगाः ॥ १० ॥ न विषेहुस्तदा राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः । विहाय सात्यकिं राजन् समरे युद्धदुर्मदम् ॥११॥ तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः महारथाः समाख्याताश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥ १२ ॥ समासाद्य महेष्वासं भूरिश्रवसमाहवे । ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणे ॥ १३ ॥ भो भो कौरवदायाद सहास्माभिर्महाबल । एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा ॥ १४ ॥ अस्मान् वा त्वम्पराजित्य यशः प्राप्स्यसि संयुगे । वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं धास्यामहे पितुः ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तदा शूरैस्तानुवाच महाबलः । वीर्य्यश्लाघी नरश्रेष्ठस्तान्

झपट गया ॥ ८ ॥ उसने इन्द्रके वज्रकी समान अपने धनुषको खेंचकर उस पर सांपकी समान जहरीले और वज्रकी समान कठोर बाण चढ़ाये ॥ ९ ॥ और अपनी हथचालाकी दिखानेके लिये सात्यकीके ऊपर मृत्युकी समान उग्र स्पर्शवाले बाण सरासर छोड़ने लगा ॥१०॥ इन बाणोंकी मार सहन न होनेसे युद्धदुर्मद सात्यकीके साथी उसको छोड़कर चारों ओरको भागने लगे ॥ ११ ॥ यह देखकर सात्यकीके महाबली तथा महारथी दश पुत्र कवच पहरकर तथा शस्त्र ध्वजा आदि लेकर रणमें भूरिश्रवाके सामने आये, वह बड़े क्रोधके साथ यूपकेतुसे कहने लगे, कि-॥ १२ ॥ १३ ॥ हे कुरुवंशी महाबली राजन् ! या तो तू हम सबोंके साथ युद्ध कर, नहीं तो हम सबोंमेंसे एक २ के साथ ही लड़ ॥ १४ ॥ और हम सबोंका पराजय करके तू इस रणमें यश प्राप्त कर या तेरा पराजय करके हम अपने पिताकी प्रसन्नता प्राप्त करें ॥ १५ ॥ उन नरश्रेष्ठ योधाओंकी इस बात को सुनकर महाबली और पराक्रम पर प्रेम करनेवाले भूरिश्रवा

दृष्ट्वा समवस्थितान् ॥ १६ ॥ साध्विदं कथ्यते वीरा यद्येवं मतिरद्य वः । युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे ॥ १७ ॥ एवमुक्ता महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः । महता शरवर्षेण अभ्यधावन्नरिन्दमम् ॥१८॥ सोपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत् । एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥ १९॥ तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरैस्ते समवाकिरन । प्रावृषीव यथा मेरुं सिषिचुर्जलदा नृप ॥ २० ॥ तैस्तु मुक्तान् शरान् घोरान् यमदण्डाशनिप्रभान् । असम्प्राप्तानसम्भ्रांतश्चिच्छेदाशु महारथः ॥२१॥ तत्राद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम् । यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत् ॥ २२ ॥ विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन्महारथाः । परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः ॥ २३ ॥ सौमदत्तिस्ततः

ने उनसे कहा, कि—हे वीरों ! तुम जो कुछ कहते हो यह सत्य है, मेरा भी ऐसा ही विचार है, तुम सब तयार होकर मेरे सामने आजाओ, आज मैं रणमें तुम्हारा नाश करूँगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ जब भूरिश्रवाने ऐसा कहा तब बड़े धनुषधारी वह वीर झटपट उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥ हे महाराज ! अकेले भूरिश्रवाका ही सात्यकीके दश पुत्रोंके साथ जिस समय बड़ा भयानक युद्ध होरहा था उस समय मध्याह्न होगया था १९ जैसे वर्षाकालमें सब मेघ अकेले मेरु पहाड़ पर जलकी धारें बरसाते हैं तैसे सब योधा अकेले भूरिश्रवाके ऊपर बाण बरसा रहे थे ॥ २० ॥ परन्तु उनके छोड़े हुए वह यमदण्डकी और वज्रकी समान बाण अपने पास तक आने भी नहीं पाये थे, कि–इतनेमें ही भूरिश्रवाने जरा न घबड़ाकर उनको काट डाला ॥ २१ ॥ सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा जरा न डरकर उन दशोंके साथ अकेला ही लड़ रहा था,उसके इस पराक्रमको देखकर हमें बड़ा ही अचरज मालूम होता था ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार बाणोंकी वर्षा करनेके अनन्तर वह दशों महारथी भूरिश्रवाको घेरकर उस को मार डालनेका आरम्भ करने लगे ॥२३॥ परन्तु हे भारत !

क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत । चिच्छेद समरे राजन् युध्यमानो महारथैः ॥ २४ ॥ अथैषां छिन्नधनुषां शरैः सन्नतपर्वभिः । चिच्छेद समरे राजन् शिरांसि भरतर्षभ ॥ २५ ॥ ते हता न्यपतन् राजन् वज्रभग्ना इव द्रुमाः । तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरो रणे पुत्रान्महाबलान् ॥ २६ ॥ वार्ष्णेयो विनदन् राजन् भूरिश्रवसमभ्ययात् । रथं रथेन समरे पीडयित्वा महाबलौ ॥२७॥ तावन्योऽन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः । विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥२८॥ प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ । शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥ २९ ॥ ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम् । भीमसेनस्त्वरा राजन् रथमारोपयत् तदा ॥ ३० ॥ तवापि तनयो राजन् भूरिश्रवसमा-

---

इन महारथियोंके साथ युद्ध करते हुए भूरिश्रवाने परम कोपमें भरकर झपाझपीमें उनके धनुष काट डाले ॥ २४ ॥ और फिर हे भरतसत्तम ! मजबूत गाठों वाले बाण छोड़कर उनके शिर भी उड़ा दिये ॥ २५ ॥ उन बाणोंसे कटेहुए वह योधा जैसे वज्रसे टूटेहुए वृक्ष गिर पड़ते हैं तैसे ही पृथिवी पर ढह गये, अपने महाबली पुत्रोंका इसप्रकार रणमें वध हुआ देखकर वृष्णिवंशी राजा सात्यकी गरज कर भूरिश्रवाके ऊपर चढ़आया और रथसे रथको अटका कर ये दोनों महाबली योधा युद्धमें एक दूसरेके रथ और घोड़ोंका संहार करने पर पिलपड़े, जब इन दोनोंके रथ टूटगये तब ये दोनों महारथी हाथमें तलवार लेकर बीचर में हुङ्कारें भरते हुए आमने सामने युद्ध करनेके लिये आकर खड़े होगये ॥२६॥ ॥ २८ ॥ और ये दोनों नरव्याघ्र हाथमें बड़ी तलवारें और ढाल लेकर युद्धके लिये आमने साहने आ खड़े हुए तब बड़े ही अच्छे मालूम होते थे ॥ २९ ॥ इतनेमें ही भीमसेनने अचानक आकर हाथमें उत्तम तलवार लिये खड़े हुए सात्यकीको अपने रथमें बैठाल दिया और तुम्हारे पुत्रने भी सब योधाओंके देखतेर भूरि-

हवे। आरोपयद्रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥३१॥ तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने रणे भीष्मं महारथम्। अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ३२ ॥ लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः। पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥३३॥ ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिबर्हणे। सम्प्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥३४॥ ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः। परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम्॥३५॥ एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति। सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥३६॥ अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव। सन्ध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः ॥ ३७ ॥ पाण्डवानां कुरूणाञ्च परस्परसमागमे। ते सेने भृशसंविग्ने ययतुः सन्निवेशनम्॥ ३८ ॥ ततः स्वशिवि-

---

श्वाको अपने रथमें बैठालदिया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसप्रकार यहां युद्ध होरहा था इसी समय अत्यन्त कोपमें भरेहुए पाण्डव भीष्मजीके साथ युद्ध कररहे थे ॥ ३२ ॥ और सन्ध्याका समय आनेपर जब सूर्य जरा२ लाल हुआ उस समय अर्जुनने बड़ी शीघ्रतासे पचीस हजार महारथियोंका संहार कर डाला ॥ ३३ ॥ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने पार्थका प्राणान्त करनेके लिये जिन योधाओंको भेजा था वह अर्जुनके सामने आते ही ऐसे नष्ट होगये थे जैसे अग्निमें पड़कर पतङ्ग नष्ट होजाते हैं ॥ ३४ ॥ धनुर्वेदको जानने वाले मत्स्य और केकय अर्जुनके तथा उसके महारथी पुत्र अभिमन्युके पीछे आकर इकट्ठे होगये ॥ ३५ ॥ इस समय सूर्य अस्त होनेको आगया था और सब सेनाएं अन्धी भीतसी होगयी थीं ॥ ३६ ॥ वाहन भी बहुत ही थकगये थे, इसकारण तुम्हारे पिता भीष्मजीने सेनाको रणभूमिमेंसे पीछेको लौटनेकी आज्ञा दी ॥ ३७ ॥ पाण्डवोंके और कौरवोंके ऐसे युद्धसे घबड़ायी हुई दोनों ओर की सेनायें अपनी२ छावनीकी ओरको लौट पड़ीं ॥ ३८ ॥ हे भारत ! सृंजयों सहित पाण्डव अपने तबुओंमें

गत्वा न्यविशंस्तत्र भारत । पांडवाः सृञ्जयैः सार्धं कुरवश्च यथाविधि ॥ ३९ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पंचमदिवसावहारे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

सञ्जय उवाच । ते विश्रम्य ततो राजन् सहिताः कुरुपाण्डवाः । व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥ तत्र शब्दो महानासीत्तव तेषां च भारत । युज्यतां रथमुख्यानां कल्पतां चैव दंतिनाम् ॥ २ ॥ सन्नह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत । शंखदुंदुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोभवत् ॥ ३ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत । व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनम् ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः । व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः ॥ ५ ॥ शिरोऽभवद् द्रुपदस्तस्य पांडवश्च धनंजयः । चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः ॥ ६ ॥ तुंडमासीन्महाराज

चलेगये तथा कौरवोंने भी अपने तंबुओंमें आकर विश्राम किया ॥ ३९ ॥ चौहत्तरवां अध्यायय समाप्त ॥ ७४ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! तदन्तर उन कौरव और पाण्डवों ने विश्राम किया और रात बीतजाने पर फिर इकट्ठे होकर युद्धके लिये निकल आये ॥ १ ॥ हे भारत ! इस समय तुम्हारे तथा पाण्डवोंके तयार होते हुए रथोंका, सिंगार किये जाते हुए हाथियों का, पंक्ति बाँधकर खड़े हुए पैदलोंका तथा तयार होते हुए घोड़ों का बड़ा शब्द हुआ तथा सब ओर शङ्ख और दुंदुभियोंका नाद भी बड़ा घोर हुआ ॥ २ ॥३॥ तदनन्तर राजा युद्धिष्ठिरने धृष्टद्युम्न से कहा, कि–हे महाबाहु ! शत्रुका नाश करने वाले मकर व्यूहको रचो ॥४॥ हे महाराज ! युद्धिष्ठिरके ऐसा कहने पर रथियों में श्रेष्ठ महारथी धृष्टद्युम्नने रथियोंको व्यूह रचनेकी आज्ञा दी ॥ ५ ॥ उस व्यूहके शिरके भागमें राजा द्रुपद और पाण्डुपुत्र धनञ्जय खड़े हुये, महारथी सहदेव और नकुल दोनों नेत्र बने

भीमसेनो महाबलः । सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ७ ॥ सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः । पृष्ठमासीन् महाराज विराटो वाहिनीपतिः ॥ ८ ॥ धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः । केकया भ्रातरः पंच वामपार्श्वसमाश्रिताः ॥ ९ ॥ धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान् । दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थितौ व्यूहस्य रक्षणे ॥ १० ॥ पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान् महारथः । कुंतिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः ॥ ११ ॥ शिखंडी तु महेष्वासः सोमकैः सहितो बली । इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ ॥ १२ ॥ एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पांडवाः । सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥ १३ ॥ कौरवानभ्ययुस्तूर्णं हस्त्यश्वरथपत्तिभिः । समुच्छ्रितैर्ध्वजैश्छत्रैः

॥ ६ ॥ हे महाराज ! महाबली भीमसेन चोंच बना, सुभद्राका पुत्र, द्रौपदीके पुत्र, राक्षस घटोतकच, सात्यकी और धर्मराज यह सब उसकी ग्रीवाके स्थान पर खड़े हुए और हे महाराज ! सेनापति विराट पीठके स्थान पर खड़ा हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ और उसकी सहायताके लिये बड़ी भारी सेनाको लेकर दृष्टद्युम्न खड़ा हुआ था, केकय राजकुमार पांचों भाई बायें करवटमें खड़े हुए ॥ ९ ॥ नरव्याघ्र धृष्टकेतु और वीर्यवान् चेकितान व्यूह की रक्षा करने के लिये दाहिने करवटको आश्रय लेकर खड़े हुयेथे ॥ १० ॥ हे महाराज ! महारथी श्रीमान् राजा कुन्तिभोज और बड़ी भारी सेना को साथमें लिये हुये शतानीक उसके दोनों चरणोंके स्थान पर खड़े हुये ॥ ११ ॥ बड़े धनुषवाला शिखण्डी सोमकों को साथ लेकर उसकीपूंछके स्थान पर खड़ा हुआ और इरावान् भी उसके साथ तहां ही खड़ा हुआ था ॥१२॥ हे महाराज ! पाण्डव इसप्रकार इस महाव्यूह की रचना करके सूर्योदय होने पर फिर युद्ध लिये दांव लगाकर खड़े होगये ॥ १३ ॥ वह हाथी, घोड़े रथ, पैदल ऊँची फहराती हुई ध्वजायें, छत्र और चमकते हुए

शस्त्रश्च विजलैः स्थितैः ॥ १४ ॥ व्यूढं दृष्ट्वा तु तत् सैन्यं पिता देवव्रतस्तव । क्रौंचेन महता राजन् प्रत्यव्यूहत वाहिनीम् ॥१५॥ तस्य तुंडे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत । अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरासीन्नरेश्वर ॥१६॥ कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरवाल्हिकैः । शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥१७॥ ग्रीवायां शूरसेनश्च तव पुत्रश्च मारिष । दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः । उरस्यभून्नरश्रेष्ठो महत्या सेनया वृतः ॥ १९॥ स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः । वामं पक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥२०॥ तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः। दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत ॥ २१ ॥ श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।

तीखे शस्त्रोंको लेकर शीघ्रतासे कौरवोंके सामने आनये ॥ १४ ॥ हे राजन् ! पाण्डवोंकी ऐसी व्यूहरचनाको देखकर तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्मजीने तुम्हारी सेनाका बड़ा भारी क्रौंचव्यूह रचा॥१५। उसकी चोंचके स्थानपर महा धनुषधारी भरद्वाजकुमार द्रोणाचार्य खड़े हुए और हे राजन् ! अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसके नेत्र बने ॥ १६ ॥ हे राजन् ! सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कृतवर्मा काम्बोज तथा चुनेहुए वाल्हीकोंके साथ उसके शिरोभागमें खड़ा हुआ ॥ १७ ॥ शूरसेन तथा अनेकों राजाओंसे घिरा हुआ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन ग्रीवाके स्थान पर खड़ा हुआ ॥१८॥ हे राजन् ! मद्र सौवीर तथा केकयोंके साथ प्राग्ज्योतिषपुरका राजा बड़ी भारी सेनाको लेकर उसकी छातीके स्थान पर खड़ा हुआ था ॥ १९ ॥ प्रस्थलका राजा सुशर्मा अपनी बड़ीभारी सेनाको लेकर कौंच पक्षी व्यूहके बायें करवटमें खड़ा हुआ था ॥२०॥ हे भारत ! तुषार, यवन, शक, देशके राजे चूचुपोंके साथ दाहिनी करवटमें आकर खड़े हुए थे ॥ २१ ॥ हे महाराज ! श्रुतायु, शतायु और भूरिश्रवा आपसमेंएक दूसरेकी रक्षा कर सकें इस प्रकार

व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम्॥२२॥ततो युद्धाय संजग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह । सूर्योदये महाराज सति युद्धमभून्महत् ॥ २३ ॥ प्रतीयू रथिनो नागा नागांश्च रथिनो ययुः । हयारोहान् रथारोहा रथिनश्चापि सादिनः ॥ २४ ॥ सादिनश्च हयान् राजन् रथिनश्च महारणे । हस्त्यारोहान् हयारोहा रथिनः सादिनस्तथा ॥२५॥ रथिनः पत्तिभिः सार्द्धं सादिनश्चापि पत्तिभिः। अन्योऽन्यं समरे राजन् प्रत्यधावन्नमर्षिताः ॥ २६ ॥ भीमसेनार्जुनयमैर्गुप्ता गुप्ता चान्यैर्महारथैः। शुशुभे पांडवी सेना नक्षत्रैरिव शर्वरी ॥२७॥ तथा भीष्मकृपद्रोणशल्यदुर्योधनादिभिः । तवापि च बभौ सेना ग्रहैर्द्यौरिव संवृता ॥ २८ ॥ भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी । अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम् ॥ २९ ॥

व्यूहकी जाँघके स्थान पर खड़े हुए थे ॥ २२ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार सेनाको क्रमसे खड़ी करके पाण्डव और कौरवोंने युद्ध के लिये धावा किया था और सूर्योदय होते ही घोर युद्ध आरम्भ होगया ॥ २३॥ हाथी पर बैठकर लड़नेवाले रथियोंके साथ और रथी हाथीसवारोंके साथ लड़ने लगे घोड़ेसवारोंके साथ रथी और रथियोंके साथ घोड़ेसवार लड़ने लगे ॥ २४ ॥ तैसे ही हे राजन् ! उस महारणमें रथी हाथियों पर हाथी सवार, घुड़ सवारों पर और रथी घुड़सवार तथा पैदलोंके साथ और घुड़-सवार पैदलोंके साथ द्वेषसे युद्ध करनेको आमने सामने झपट आये ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस समय भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सह-देव तथा दूसरे महारथियोंसे रक्षा कीहुई पाण्डवोंकी सेना तारा-गणोंसे शोभायमान रात्रिसरीखी दीखती थी ॥ २७ ॥ तैसे ही भीष्म, कृपाचार्य, द्रोण, शल्य और दुर्योधन आदिसे रक्षा कीहुई तुम्हारी सेना भी ग्रहोंवाले आकाशसी दीखती थी ॥ २८ ॥ द्रोणाचार्यको देखकर पराक्रमी भीमसेन अपने वेगवान् घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर उनकी सेनाके ऊपर चढ़ आया ॥ २९ ॥

द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिराशुगैः। विव्याध समरश्लाघी ममाण्युद्दिश्य वीर्यवान् ॥ ३० ॥ दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे। सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ३१ ॥ स संगृह्य स्वयं वाहान् भारद्वाजः प्रतापवान्। व्यधमत् पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवानलः ॥ ३२ ॥ ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तमाः। सृञ्जयाः केकयैः सार्द्धं पलायनपराभवन् ॥ ३३ ॥ तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम्। मुह्यते तत्र तत्रैव समदेव वराङ्गना ॥ ३४ ॥ अभिद्येतां ततो व्यूहौ तस्मिन् वीरवरक्षये। आसीद्व्यतिकरो घोरस्तव तेषां च भारत ॥ ३५ ॥ तदद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह। एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत ॥ ३६ ॥ प्रतिसंवार्य चास्त्राणि तेऽन्योऽन्यस्य विशाम्पते। युयुधुः पाण्डवा

वीर्यवान् और युद्धमें प्रतिष्ठा पानेवाले द्रोणाचार्यने कोपके साथ ताक कर नौ बाणोंसे भीमसेनको मर्मस्थानमें घायल किया ॥३०॥ तब द्रोणाचार्यके बाणसे घोर घायल हुए भीमसेनने उनके सारथी को यमराजके घर पहुँचा दिया ॥ ३१ ॥ तब अपने घोड़ोंकी लगाम अपने हाथमें लेकर प्रतापी द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी सेना का इसप्रकार नाश करडाला जैसे अग्नि रुईको भस्म कर डालता है ॥ ३२ ॥ भीष्म तथा द्रोणाचार्यकी मार खानेसे नरश्रेष्ठ सृञ्जय और केकय भागने लगे ॥ ३३ ॥ ऐसे ही भीमसेन और अर्जुन के हाथसे घायल हुई तुम्हारी सेना भी मदमें भरी सुन्दर युवती की समान जहाँ तहाँ मोहित (मूर्छित) होने लगीं थी ॥३४ ॥ दोनों ओरसे बड़े २ वीरोंका नाश होनेलगा और उस समय व्यूह भी टूटनेलगा तथा तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेना भयानक रूपसे घोलमेल होगयी ॥ ३५ ॥ हे भारत ! उस समय तुम्हारे योधा प्राण देनेका निश्चय करके पाण्डवोंके साथ लड़ रहे थे इस घटनाको हम बड़े ही अचरजमें होकर देखरहे थे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! महाबली पाण्डव और कौरव परस्परके अस्त्रोंपर अस्त्र

श्चैव कौरवाश्च महाबलाः ॥ ३७ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवस-
युद्धारम्भे पंचःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। एवं बहुगुणं सैन्यमेवं बहुविधं पुरा। व्यूढमेवं यथा-शास्त्रममोघञ्चैव सञ्जय॥ १॥ हृष्टमस्माकमत्यन्तमभिकामञ्च नः सदा। प्रह्वमव्यसनोपेतं पुरस्ताद्दृष्टविक्रमम्॥ २॥ नातिवृद्धमबालञ्च न कृशं न च पीवरम्। लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम्॥३॥ आत्त-सन्नाहशस्त्रं च बहु शस्त्रपरिग्रहम्। असियुद्धे नियुद्धे च गदायुद्धे च कोविदम्॥४॥ प्रासर्ष्टितोमरेष्वाजौ परिघेष्वायसेषु च। भिन्दिपालेषु शक्तीषु मुसलेषु च सर्वशः॥५॥ कंपनेषु च चापेषु कणपेषु च सर्वशः।

मारकर पीछेको हटाते हुए रणभूमिमें घूम रहे थे ॥ ३७ ॥ पिछत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा कि—हे सञ्जय हमारा बड़ाभारी सेनादल है, अनेकों प्रकारके योधा हैं, शास्त्रके अनुसार व्यूहरचना कीगई है और कामको सिद्ध करनेवाला है ॥ १ ॥ हमारे योधा बड़े ही प्रसन्न हैं और सदा हमसे प्रेम करते हैं, सब नम्र हैं, इनमें कोई दुर्व्यसन नहीं है और पहिले इनका पराक्रम देखा भी गया है ॥ २ ॥ हमारी सेनामें न बहुतसे बूढ़े हैं, न बालक हैं, कोई दुबले वा बहुत मोटे भी नहीं हैं, किन्तु सब फुरतीसे काम करने वाले, ऊँचे २ शरीरोंवाले, बलवान् और नीरोग हैं ॥ ३ ॥ उन के पास कवचे और युद्धकी सामान पूरा २ है अनेकों प्रकारके शस्त्र भी चाहिये जितने हैं तलवार चलानेमें, कुश्ती लड़नेमें और गदायुद्धमें भी सब चतुर हैं ॥ ४ ॥ प्रास, ऋष्टि, तोमर, परिघ, गदा, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल आदि के द्वारा रणमें लड़नेमें सब प्रकारसे चतुर हैं ॥ ५ ॥ कंपन चाप कणप, क्षेपणीय (गोफन) और घूंसोंके युद्ध आदिमें भी

त्सेपरणीयेषु चित्रेषु मुष्टियुद्धेषु च क्षमम् ॥ ६ ॥ अपरोक्षं च विद्यासु व्यायामे च कृतश्रमम् । शस्त्रग्रहणविद्यासु सर्वासु परिनिष्ठितम् ॥ ७ ॥ आरोहे पर्यवस्कंदे सरणे सान्तरप्लुते । सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ८ ॥ नागाश्वरथयानेषु बहुशः सुपरीक्षितम् । परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ९ ॥ न गोष्ठ्या नोपकारेण न च बंधुनिमित्ततः । न सौहृदबलैर्वापि नाकुलीनपरिग्रहैः ॥ १० ॥ समृद्धजनमार्यं च तुष्टसंबंधिबांधवम् । कृतोपकारभूयिष्ठं यशस्वि च मनस्वि च ॥ ११ ॥ स्वजनैस्तु नरैर्मुख्यैर्बहुशो दृष्टकर्मभिः । लोकपालोपमैस्तात पालितं लोकविश्रुतम् ॥ १२ ॥ बहुभिः क्षत्रियैर्गुप्तं पृथिव्यां लोकसंमतैः ।

पीछेको हटनेवाले नहीं हैं ॥ ६ ॥ सब प्रकारकी युद्ध विद्याओंमें तथा कसरत आदिमें अच्छा परिश्रम किया है तथा उन सबको सब शस्त्रविद्याओंमें भी पूरा २ ज्ञान है ॥ ७ ॥ वाहनों पर चढ़नेमें, उतरनेमें, आगे बढ़नेमें, पीछेको हटनेमें तथा प्रहार करनेमें भी बड़े चतुर हैं ॥ ८ ॥ हाथी, घोड़े और रथोंको हाँकनेमें उनकी अनेकों बार परीक्षा हुई है, और अच्छे प्रकारसे परीक्षा करके उन्हें नौकरी पर रक्खा है ॥ ९ ॥ किसीके कहनेसे या किसीके ऊपर उपकार करनेके लिये या संबन्धी समझकर अथवा मित्रोंके आग्रहसे या विना अच्छे कुलको परखाले हुए किसीको नौकर नहीं रक्खा है ॥ १० ॥ वह सब विश्वासपात्र और प्रतिष्ठित भी हैं, इनके सगे संबन्धियोंको हम सन्तुष्ट रखकर पालते हैं, इनके ऊपर हमने बड़े उपकार किये हैं तथा ये सब यश पाये हुए और स्वतन्त्र विचारके हैं ॥ ११ ॥ इनके मुखिया भी हमारे अपने मनुष्य हैं तथा जो सब प्रसिद्ध पराक्रमवाले हैं और हे तात ! लोकपालोंकी समान पराक्रमी हैं, ऐसे मनुष्योंके हाथमें हमारी सेनाकी रक्षाका काम है और इन्होंने सब ही जगह प्रसिद्धि पाई है ॥ १२ ॥ हमारी सेना भूमंडल पर अच्छी

असमानभिगतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥ १३ ॥ महोदधि-मिवापूर्णमापगाभिः समंततः । अपक्षैः पक्षिसंकाशै रथैर्नागैश्च संवृतम्॥१४॥नानायोधजलं भीमं वाहनोर्मितरंगिणम्।क्षेपण्यसि-गदाशक्तिशरप्रासमाकुलम् ॥ १५ ॥ ध्वजभूषणसंबाधं रत्न-पट्टसुसंचितम् । परिधावद्भिरश्वैश्च वायुवेगविकंपितम् ॥ १६ ॥ अपारमिव गर्जंतं सागरप्रतिमं महत् । द्रोणभीष्माभिसंगुप्तं गुप्तं च कृतवर्मणा ॥ १७ ॥ कृपदुःशासनाभ्यां च जयद्रथमुखैस्तथा । भगदत्तविकर्णाभ्यां द्रौणिसौबलबाल्हिकैः ॥ १८ ॥ गुप्तं प्रवीरै-र्लोकैश्च सारवद्भिर्महात्मभिः । यदहन्यत संग्रामे दैवमत्र पुरातनम् ॥ १९ ॥ नैतादृशं समुद्योगं दृष्टवंतो हि मानुषाः । ऋषयो वा

प्रतिष्ठा पाये हुए क्षत्रियोंके अधिकारमें हैं और यह क्षत्रिय भी अपनी इच्छासे ही अपनी सेना और मांडलिकों (अपने अधीन रहनेवाले जिमीन्दारों) के साथ हमारा साथ देनेको आये हैं ॥ १३ ॥ हमारा यह सेनादल वास्तवमें चारों ओरकी नदियोंसे भरपूर महासागरकी समान है, यह पंखोंसे रहित होने पर भी गतिमें फिरते हुए पक्षियोंकी समान रथोंमें और हाथियों से भरपूर है ॥ १४ ॥ नाना प्रकारके योधारूप जलसे पूर्ण तथा वाहनरूप तरङ्गोंसे रातदिन तरङ्गित सा दीखता है, गोफन, तल-वार, गदा, शक्ति, बाण और प्रासोंसे भरा हुआ ॥१५॥ ध्वजा आभूषण, रत्नजड़ी पेटियें तथा दौड़तेहुए घोड़ेरूप वायुसे यह वारंवार हिलोरें लेरहा है ॥१६॥ हमारा सेनादल विना किनारों के गर्जना करते हुए अपार महासागरकी समान प्रतीत होता है, द्रोणाचार्य, भीष्म और कृतवर्मा इसके रक्षक हैं॥१७॥तथा कृपा-चार्य,दुःशासन तथा जयद्रथ आदि बहुतसे योधा और भगदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि, वाल्हीक आदि बड़े २ बलवान् महात्मा वीर पुरुषोंसे रक्षा किया हुआ है, इतना होते हुए भी जो संग्राममें हमारी सेना मारी जाती है यह तो हमारे पूर्व जन्मोंके कर्मों का ही दोष है॥१८॥१९॥पहिले मनुष्योंने वा महाभाग ऋषियों-

महाभागाः पुराणा भुवि सञ्जय ॥ २० ॥ ईदृशोऽपि बलौघस्तु संयुक्तः शस्त्रसंपदा । वध्यते यत्र संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥२१॥ विपरीतमिदं सर्वं प्रतिभाति हि सञ्जय । यत्रेदृशं बलं घोरं पांडवा न्नातरद्रणे ॥ २२ ॥ पाण्डवार्थाय नियतं देवास्तत्र समागताः । युध्यंते मामकं सैन्यं यथा वध्यन्ति संजय ॥२३॥ उक्तो हि विदुरेणाहं हितं पथ्यं च नित्यशः । न च जग्राह तन्मंदः पुत्रो दुर्योधनो मम॥२४॥तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः । आसीद्यथागत तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥ २५ ॥ अथवा भाव्यमेवं हि संजयैतेन सर्वथा । पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत्तथा नैतदन्यथा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृतराष्ट्रचिंतायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

ने भी ऐसे बड़ेभारी युद्धका उद्योग कभी नहीं देखा होगा ॥२०॥ अस्त्र शस्त्रोंसे सजाहुआ हमारा इतना बड़ा सेनादल है और यह धनसे हमारे वशमें होरहा है, तो भी यह संग्राममें मार खाता है तो इसको भाग्यके सिवाय और किसका दोष कहें ? ॥ २१ ॥ हे सञ्जय ! हमारा ऐसा घोर सेनादल भी रणमें पांडवोंको नहीं जीत सकता, यह सब तो मुझे दैवकी प्रतिकूलता ही मालूम होती है ॥ २२ ॥ निःसन्देह पांडवोंकी सहायता करनेको सब देवता इकट्ठा होगये हैं और उनके साथ लड़नेमें मेरी सेनाका नाश होता है ॥ २३ ॥ विदुरने अनेकों वार मुझसे नित्य ही गुण भरे हितके वचन कहे, परन्तु मन्दबुद्धि मेरे पुत्र दुर्योधनने उनको सुना ही नहीं ॥ २४ ॥ उस महात्मा सर्वज्ञ मुनिने 'ऐसा होगा' यह बात जानली होगी, तभी तो मुझे ऐसी शिक्षा दी थी ॥ २५ ॥ अथवा हे सञ्जय ! ऐसा अवश्य होना ही होगा, निःसन्देह विधाताने जैसी हानी रची होगी वह तो होगी ही, उसके प्रतिकूल तो कभी हो ही नहीं सकता ॥ २६ ॥ छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ ॥ ॥

सञ्जय उवाच । आत्मदोषात्त्वया राजन् प्राप्तं व्यसनमीदृशम् । न हि दुर्योधनस्तानि पश्य ते भरतर्षभ ॥ १ ॥ यानि त्वं दृष्टवान् राजन् धर्मसङ्करकारितं । तव दोषात् पुरा वृत्तं द्यूतमेव विशाम्पते ॥ २ ॥ तव दोषेण युद्धञ्च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः । त्वमेवाद्य फलं भुंक्ष्व कृत्वा किल्विषमात्मना ॥ ३ ॥ आत्मनैव कृतं कर्म ह्यात्मनैवोपभुज्यते । इह च प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथा तथम् ॥ ४ ॥ तस्माद्राजन् स्थिरो भूत्वा प्राप्येदं व्यसनं महत् । शृणु युद्धं यथावृत्तं शंसतो मे नराधिप ॥ ५ ॥ भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्वा महाचमूम् । आससाद ततो वीरः सर्वान् दुर्योधनानुजान् ॥ ६ ॥ दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम् । जयत्सेनं विकर्णञ्च चित्रसेनं

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! ऐसी आपत्ति आपने अपने ही दोषसे पाई है, हे राजन् ! और आपने जो अधर्मकी चौकडियें भरी थीं इनके परिणामको आप जानते थे, दुर्योधनको इनका कुछ समझ नहीं थी, हे राजन् ! पहिले जुआ जो खेलागया था, उसमें आपका ही दोष है ॥ १ ॥ २ ॥ और इन पांडवोंके साथ जो युद्ध मँचा है, इसमें भी आपका ही दोष है, तुमने स्वयं अपराध किया है अब इसके फलको भी तुम ही पाओ ॥ ३ ॥ अपने किये हुए कर्मका फल इस लोकमें अथवा मरणके अनन्तर परलोकमें अपनेको हीं भोगना पड़ता है, सो तुमने भी यह फल उचित ही पाया है ॥ ४ ॥ सो हे राजन् ! इस महाकष्टको पाकर भी आप धीरज रखिये और जैसे २ युद्ध हुआ है उसके वृत्तान्तको कहता हूं, सुनिये ॥ ५ ॥ वीर भीमसेनने तीखे बाण छोड़कर तुम्हारी सेनाके व्यूह को तोड़ डाला और दुर्योधनके सब छोटे भाइयोंके सामने आया ॥६॥ दुःशासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण चित्रसेन, सुदर्शन, चारुमित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण, कर्ण आदि कौरवों

सुदर्शनम् ॥७॥ चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च । एतांश्चान्यांश्च सुबहून् समीपस्थान् महारथान् ॥८॥ धार्त्तराष्ट्रान् सुसंक्रुद्धान दृष्ट्वा भीमो महारथः । भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम् ॥९॥ अथाजोऽस्य प्रविष्टन्तमूचुस्ते सर्व एव तुजीवग्राहं निग्रहणीमो वयमेनं नराधिपाः॥१०॥ स तैः परिवृतः पार्थो भ्रातृभिः कृतनिश्चयैः । प्रजासंहरणे सूर्यः क्रूरैरिव महाग्रहैः ॥११॥ सम्प्राप्य मध्यं सैन्यस्य न भीः पाण्डवमाविशत् । यथा देवासुरे युद्धे महेन्द्रं प्राप्य दानवान् ॥ १२ ॥ ततः शतसहस्राणि रथिनां सर्वशः प्रभो । छादयानि शरैस्तानैस्तमेकं परिवव्रिरे ॥ १३ ॥ स तेषां प्रवरान् योधान् हस्त्यश्वरथसादिनः । जघान समरे शूरो धार्त्तराष्ट्रानचिंतयन् ॥ १४ ॥ तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम् । समस्तानां वधे राजन् मतिं चक्रे महामनाः ॥ १५ ॥ ततो रथं समुत्सृज्य

के अनेकों क्रोधी महारथी तहाँ खड़े थे, तो भी महारथी भीम भीष्मजीकी रक्षा कीहुई तुम्हारी सेनामें घुस गया ॥ ७ ॥ ८ ॥ जब भीम तुम्हारी सेनामें घुसा उस समय ये सब योधा उससे कहने लगे, कि-हम तेरे प्राण लेकर तुझे शिक्षा देंगे ॥ १० ॥ परन्तु प्रजाका नाश करनेके लिये उपग्रहोंके साथ तपते हुए सूर्यकी समान दृढ़ निश्चय वाला तथा अपने भाइयोंसे घिरा हुआ भीमसेन कौरवोंकी सेनाके मध्यभागमें पहुँच गया, पहिले देवदानवों के युद्धमें दानवोंसे घिरेहुए इन्द्रकी समान भीमसेन कौरवोंसे घिर गया था तो भी उसके मनमें जरा भी भय नहीं व्यापा ११ ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! फिर चारों ओरसे हजारों रथी चढ़ आये और उन्होंने अकेलेको तीव्र बाणोंसे घेर लिया ॥ १३ ॥ परन्तु तुम्हारी सेनाको कुछ भी न गिनकर भीमने हाथी घोड़े और रथों पर बैठकर लड़नेवाले तुम्हारे बड़े बड़े योधाओंको मारडाला १४ बड़े उत्साहवाले भीमसेनने भी जब जाना, कि—यह सब अब मुझे पकड़ कर मार डालना चाहते हैं तब उसने उनका नाश करनेका निश्चय किया ॥ १५ ॥ वह हाथमें गदा लेकर अपने

गदामादाय पाण्डवः । जघान धार्त्तराष्ट्राणां तं बलौघमहार्णवम् ॥ १६ ॥ भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः । द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥ १७ ॥ निवार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः । आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम् । धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः ॥ १९ ॥ अपृच्छद्बाष्पसंरुद्धो निःश्वसन् वाचमीरयन् । मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः ॥ २० ॥ विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृतांजलिः । संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः पराक्रमी ॥ २१ ॥ प्रविष्टो धार्त्तराष्ट्राणामेतद्बलमहार्णवम् । मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्तमिदं वचः ॥ २२ ॥ प्रतिपालय मां सूत नियम्याश्वान् मुहूर्त्तकम् । यावदेतान्निहन्म्यद्य य इमे मद्वधोद्यताः ॥ २३ ॥ ततो दृष्ट्वा प्रधावन्तं

रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और तुम्हारे पुत्रोंके महासागर समान सेना दलको मारने लगा ॥ १६ ॥ जब भीमसेन सेनामें घुसा उस समय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामनेका युद्ध छोड़कर शकुनिके सामने आया और तहां खड़ी हुई तुम्हारी बड़ी भारी सेनाको हटाकर जहाँ भीमसेनका खाली रथ था तहां आपहुँचा ॥ १७ ॥ १८ ॥ रणमें भीमसेनके सारथी विशोकको खाली रथ लेकर खड़ा हुआ देखते ही धृष्टद्युम्न घबड़ागया ॥ १९ ॥ उसने सांस भरा और आंसुओंको रोककर सारथीसे कहनेलगा, कि–हे विशोक ! मेरा प्राणोंसे भी अधिक प्यारा भीमसेन कहाँ है ? उसको न देखनेसे मुझे बड़ा दुःख होता है ॥ २० ॥ तब विशोकने हाथ जोड़कर कहा, कि–पराक्रमी और बलवान् पांडुपुत्र भीमसेन मुझे यहां खड़ा करके ॥ २१ ॥ कौरवोंके इस महासागररूप सेनादलमें घुसगया है, और वह नरव्याघ्र मुझसे प्रीति के साथ यह बात कहगया है, कि–हे सारथी !, घोड़ोंको जरा देर यहाँ खड़े रख कर मेरी बाट देख, जब तक मेरा प्राण लेनेको आये हुए इन कौरवोंका संहार करके मैं आऊं ॥ २२ ॥ २३ ॥ हाथमें

गदाहस्तं महाबलम् । सर्वेषामेव सैन्यानां संहर्षः समजायत ॥ २४ ॥ तस्मिन् तुमुले युद्धे वर्त्तमाने भयानके । भित्वा राजन् महाव्यूहं प्रविवेश वृकोदरः ॥ २५ ॥ विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः । प्रत्युवाच ततः सूत रणमध्ये महाबलः ॥२६॥ नहि मे जीवितेनापि विद्यतेऽद्य प्रयोजनम् । भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः ॥ २७ ॥ यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति । एकायनगते भीमे मयि चावस्थिते युधि ॥२८॥ अस्वस्ति तस्य कुर्वंति देवाः शक्रपुरोगमाः । यः सहायान् परित्यज्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥ २६ ॥ मम भीमः सखा चैव संबंधी च महाबलः । भक्तोऽस्मान् भक्तिमांश्चाहं तमप्यरिनिषूदनम् ॥ ३० ॥ सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः । निघ्नंतं मां

गदा लेकर दौड़ते हुए महाबली भीमसेनको देखकर हमारे सब सैनिकोंको बड़ा ही हर्ष हुआ ॥ २४ ॥ हे राजकुमार ! जब युद्ध बड़ा ही भयानक हो उठा तब तुम्हारा मित्र भीमसेन उनकी व्यूह-रचनाको तोड़कर सेनामें घुसगया है ॥ २५ ॥ विशोककी इस बातको सुनकर धृष्टद्युम्न उससे कहने लगा, कि-पाण्डवोंके साथके स्नेहको भूलकर आज संग्राममें भीमसेनकी सहायता देनेके लिये मैं न पहुंच सका तो यह जीवन निष्फल है ॥२६॥२७॥ मैं यहां रहूं और भीमसेन अकेला कौरवोंकी सेनामें घूमता रहे तो सब क्षत्रिय-मण्डल मुझसे क्या कहेगा ॥२८॥ जो मनुष्य अपने साथियोंको छोड़कर कुशलक्षेमसे अपने घरमें जा घुसता है, इन्द्रादि देवता उसका अमङ्गल करते हैं ॥२६॥ महाबली भीमसेन मेरा मित्र है और संबन्धी भी है तथा सदा मुझसे प्रेम रखता है तो मुझे उस शत्रुनाशी भीमके साथ वैसा ही वर्त्ताव करना चाहिये इसलिये जहां भीमसेन गया है मैं भी तहां ही जाऊंगा और जैसे इन्द्र दानवोंका संहार करता है वैसे ही मैं इन सबोंका संहार करूंगा

रिपून्पश्य दानवानिव वासवम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत । भीमसेनस्य मार्गेषु गदामथितैर्गजैः ॥ ३२ ॥ स ददर्श तदा भीमं दहंतं रिपुवाहिनीम् । वातो वृक्षानिव बलात् प्रभजतं रणे रिपून् ॥ ३३ ॥ ते वध्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा । पादाता दंतिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत् ॥ ३४ ॥ हाहाकारश्च संजज्ञे तव सैन्यस्य मारिष । वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना ॥ ३५ ॥ ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम् । अभीताः समवर्तंत शस्त्रवृष्ट्या परंतप ॥ ३६ ॥ अभिद्रुतं शस्त्रभृतां वरिष्ठं समंततः पाण्डवलोकवीरः । सैन्येन घोरेण सुसंहितेन दृष्ट्वा बली पार्षतो भीमसेनम् ॥ ३७ ॥ अथोपगच्छच्छरविक्षतांगं पदातिनं क्रोधविषं वमंतम् । आश्वासयन् पार्षतो भीमसेनं गदा-

---

तु देखना ॥३०॥३१॥ हे भारत ! ऐसा कहकर वीर धृष्टद्युम्न, भीमसेनने गदासे हाथियोंका कुचला करके जो मार्ग कर दिया था उस मार्गमें होकर कौरवों की सेनामें घुसगया ॥ ३२ ॥ और जैसे वायु वृक्षोंको तोड़ डालता है तैसे ही भीमसेनको क्षत्रिय योधाओंका संहार करते हुए कौरवोंकी सेनामें घूमता देखा भीमसेनके प्रहारसे घबड़ाकर रथी घुड़सवार पैदल और घोड़े बड़ा आर्त्तस्वर कर रहे थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हर एक प्रकारके युद्धमें चतुर और विचित्र प्रकारसे युद्ध करने वाले भीमसेनसे नष्ट होती हुई तुम्हारी सेनामें चारों ओर हाहाकारका शब्द गूंज गया ॥ ३५ ॥ परन्तु हे परन्तप ! तुम्हारी ओरके शस्त्रविद्यामें प्रवीण राजे निर्भयपनेके साथ भीमसेनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३६ ॥ लोकवीर बलवान् धृष्टद्युम्न अस्त्र शस्त्रों से तयार और एकमत हुई तुम्हारी सेनासे भीमसेनको चारों ओरसे घिराहुआ देखकर उसके पास पहुंचगया, बाण लगनेसे भीमसेनके अङ्ग घायल होगये थे, रथहीन होकर पैदल घूम रहा था, क्रोधरूप विषको वमन कर रहा था तथा प्रलयके समय

हस्तं कालमिवांतकाले ॥ ३८ ॥ विशल्यमेनं च चकार तूर्णमारोपयच्चात्मरथे महात्मा । भृशं परिष्वज्य च भीमसेन आश्वासयामास स शत्रुमध्ये ॥३९॥ भ्रातनथोपेत्य तत्रापि पुनस्तस्मिन् विमर्दे महति प्रवृत्ते । अयं दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्रः समागतो भीमसेनेन सार्धम् ॥४०॥ तं याम सर्वे महता बलेन मा वो रिपुः प्रार्थयतामनीकम् । श्रुत्वा तु वाक्यं तममृष्यमाणा ज्येष्ठाज्ञया नोदिता धार्त्तराष्ट्राः ॥ ४१ ॥ वधाय निष्पेतुरुदायुधास्ते युगक्षये केतवो यद्वदुग्राः प्रगृह्य चास्त्राणि धनूंषि वीरा ज्यानेमिघोषैः प्रविकंपयन्तः ॥४२॥ शरैरवर्षं द्रुपदस्य पुत्रं यथाम्बुदा भूधरं वारिजालैः । निहत्य तांश्चापि

कालकी समान हाथमें गदा लेकर युद्धमें घूमरहा था, उसके पास जाकर धृष्टद्युम्नने उसको आश्वासन दिया ॥ ३७ ॥३८॥ उसके शरीरमेंसे बाणोंको खेंचकर उसको अपने रथमें बैठाला और अच्छे प्रकारसे उसको छातीसे लगा कर धीरज दिया ॥ ३९ ॥ यह महायुद्ध होने लगा उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने अपने भाइयोंके पास जाकर कहा, कि-ये दुष्ट द्रुपदका पुत्र भीमसेनके पास आपहुंचा ॥ ४० ॥ इसलिये अब तुम सब बड़ीभारी सेनाको लेकर इसके ऊपर झपटो और इस शत्रुको अपनी सेनाके ऊपर न आने दो, बड़े भाईकी इस बातको सुन कर धृतराष्ट्रके सब पुत्र आवेशमें भरगये ॥ ४१ ॥ और हाथोंमें बड़े बड़े आयुधोंको लेकर, जैसे युगके अन्तमें बड़े भारी धूमकेतु जगत्का नाश करनेके लिये उदय होते हैं तैसे ही तुम्हारे पुत्र उनको नाश करनेके लिये उद्यत हो कर आगेको चलदिये, वे वीर हाथोंमें अस्त्र तथा धनुष लेकर रोदे तथा रथके पहियोंके शब्दसे दिशाओंको कम्पायमान कर रहे थे ॥ ४२ ॥ जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पहाड़को ढक देता है तैसे ही तुम्हारे पुत्र द्रुपदके पुत्रको बाणोंसे ढकने लगे, परन्तु अनेकों प्रकारका युद्ध करनेमें चतुर द्रुपदपुत्र जरा भी न डिगा और उनके ऊपर अत्यन्त तीखे बाण छोड़कर उनके बाणोंका चूरा कर

शरैः सुतीक्ष्णैर्न बिव्यथे समरे चित्रयोधी ॥४३॥ समभ्युदीर्णाश्च तवात्मजांस्तथा निशम्य वीरानभितः स्थितान् रणे । जर्घासुरुग्रः द्रुपदात्मजो युवा प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथः ॥ ४४ ॥ क्रुद्धो भृशं तव पुत्रेषु राजन् दैत्येषु यद्वत्समरे महेन्द्रः । ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीराः प्रमोहनास्त्राहतबुद्धिसत्त्वाः ॥ ४५ ॥ प्रदुद्रुवुः कुरवश्चैव सर्वे सवाजिनागाः सरथाः समंतात् । परीतकालानि विनष्टसंज्ञान् मोहोपेतांस्तव पुत्रान्निशम्य ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः । द्रुपदं त्रिभिरासाद्य शरैर्विव्याध दारुणैः ॥ ४७॥ सोऽतिविद्धस्ततो राजन् रणे द्रोणेन पार्थिवः । अपायाद्द्रुपदो राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥४८॥ जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शंखं दध्मौ प्रतापवान् । तस्य शंखस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः ॥ ४९ ॥ अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतांवरः । प्रमोहनास्त्रेण रणे

डाला ॥ ४३ ॥ और तुम्हारे पुत्रोंको तथा दूसरे वीरोंको अपने आस पास तयार हो खड़े हुए देखकर उनका नाश करनेकी इच्छासे महारथी द्रुपदकुमारने रणभूमिमें प्रमोहन नामका अस्त्र छोड़ा ॥ ४४ ॥ हे राजन्! जैसे इन्द्र दानवोंके ऊपर कुपित होता है तैसे ही वह राजा तुम्हारे पुत्रोंके ऊपर अत्यन्त कोपमें भर गया, उसके प्रमोहन अस्त्रके प्रतापसे तुम्हारी सेनाके वीर निर्बल तथा मूर्छित होगये ॥ ४५ ॥ और कौरव हाथी, घोड़े तथा रथोंको लेकर चारों ओरको भागने लगे, परन्तु तुम्हारे पुत्रोंको मानो मृत्युने घेर लिया हो इसप्रकार संज्ञाहीन तथा मूर्छित हुए जानकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने तीन दारुण बाण छोड़कर राजा द्रुपदको बींध डाला ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे राजन्! रणमें द्रोणका बींधाहुआ वह राजा द्रोणके साथके अपने पहिले वैरको याद करके रणमेंसे पीछेको हटगया ॥४८॥ राजा द्रुपदको जीतकर प्रतापी द्रोणने शङ्ख बजाया, उसके शङ्खके शब्दको सुनकर सब सोमक डरगये ॥ ४९ ॥ इसके

मोहितानात्मजांस्तव ॥ ५० ॥ ततो द्रोणो महाराज त्वरितोभ्याययौ रणात् । तत्रापश्यन् महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥५१॥ धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च विचरन्तौ महारणे । मोहाविष्टांश्च ते पुत्रानपश्यत्स महारथः ॥ ५२ ॥ ततः प्रज्ञास्त्रमादाय मोहनास्त्रं व्यनाशयत् । अथ प्रत्यागतप्राणास्तव पुत्रा महारथाः ॥ ५३ ॥ पुनर्युद्धाय समरे प्रययुर्भीमपार्षतौ । ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान् ॥ ५४ ॥ गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि । सौभद्रप्रमुखा वीरा रथा द्वादश दंशिताः ॥ ५५ ॥ प्रवृत्तिमधिगच्छन्तु नहि शुद्ध्यति मे मनः । त एवं समनुज्ञाता शूरा विक्रांतयोधिनः ॥ ५६ ॥ बाढमित्येवमुक्त्वा तु सर्वे पुरुषमानिनः । मध्यंदिनगते सूर्ये प्रययुः सर्व एव हि ॥ ५७ ॥ केकया द्रौपदेयाश्च

अनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी द्रोणने सुना कि-तुम्हारे पुत्र रणमें प्रमोहन अस्त्रसे मूर्छित होगये हैं ॥ ५० ॥ हे महाराज! तब तो द्रोण बड़ी शीघ्रताके साथ रणमेंसे लौट पड़े और जहां तुम्हारे पुत्र पड़े थे तहां आकर बड़े धनुषधारी प्रतापी द्रोणाचार्य ने देखा, कि—रणमें धृष्टद्युम्न और भीमसेन घूमरहे हैं और उन महारथीने तुम्हारे पुत्रोंको अचेत पड़ेहुए देखा ॥५१॥५२॥ तब तो इन्होंने प्रज्ञास्त्रको लेकर मोहनास्त्रका नाश करडाला उसी समय तुम्हारे महारथी पुत्रोंमें मानो हुलसाकर प्राण आगये ॥ ५३ ॥ और वह सब फिर युद्ध करनेके लिये भीमसेन और द्रुपदके सामने गये, इस समय युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंको बुला कर आज्ञा दी, कि—॥ ५४ ॥ अभिमन्युको आगे करके बारह बड़े रथी, शस्त्र लेकर और कवच पहरकर पराक्रमके साथ भीम और द्रुपदके पीछे २ जाओ ॥ ५५ ॥ तथा उनका समाचार लाओ, क्योंकि-यह जाने बिना मेरा मन स्थिर नहीं रहसकता युधिष्ठिरकी इस आज्ञाको सुनते ही युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले तथा अपने पुरुषार्थके घमण्डी ये सब योधा 'बहुत अच्छा' कह कर ठीक दुपहरके सूर्यकी धूपमें रणमेंको गये ॥५६॥५७॥ उनमें

धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् । अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः ॥ ५८ ॥ ते कृत्वा समरे व्यूहं सूचीमुखमरिंदमाः । बिभिदुर्धार्तराष्ट्राणां तद्रथानीकमाहवे ॥ ५९ ॥ तान्प्रयातान्महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् । भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता ॥६०॥ न संवारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप । मदमूर्च्छान्वितात्मा वै प्रमदेवाध्वनि स्थिता ॥ ६१ ॥ तेऽभिजाता महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः । परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ॥६२॥ तौ च दृष्ट्वा महेष्वासावभिमन्युपुरोगमान् । बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा तु सहसायांतं पाञ्चाल्यो गुरुमात्मनः । नाशंसत वधं वीरः पुत्राणां तव भारत ॥ ६४ ॥ ततो रथं समारोप्य कैकेयस्य वृकोदरम् । अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो द्रोण-

---

अभिमन्युको आगे करके बड़ीभारी सेनासे घिरेहुए केकय द्रौपदी के पुत्र तथा वीर धृष्टकेतु आदि योधा थे ॥ ५८ ॥ इन सबोंने आगे जाकर सूचीमुख नामका व्यूह बनाया और संग्राममें कौरवों की रथसेनाको तित्तर वित्तर करडाला ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे सैनिक पहिले भीमसेनसे भयभीत और धृष्टद्युम्नके हाथ से मूर्छित हो चुके थे इसकारण इस समय वह अभिमन्युको आगे करके चढ़कर आयेहुए उन महा धनुषधारियोंको रोक नहीं सके, क्योंकि-मार्गमें भटकती हुई स्त्रीकी समान उनका मन मदकी मूर्छामें था ॥ ६० ॥ ६१ ॥ बड़े धनुषधारी तथा उच्चकुल में उत्पन्न हुए वह योधा सुवर्णसे चित्र विचित्र ध्वजाओंको फहराते हुए भीमसेन और धृष्टद्युम्नको खोजते हुए आगेको बढ़ने लगे ॥ ६२ ॥ तुम्हारी सेनाका संहार करते हुए उन भीमसेन और धृष्टद्युम्न आदि योधाओंको अपने पास आते हुए देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ६३ ॥ हे भारत ! पञ्चालदेशी धृष्टद्युम्नने अपने गुरुको सामनेसे आते हुए देखकर तुम्हारे पुत्रोंका वध करना बन्द करदिया ॥ ६४ ॥ और भीमसेनको केकयके रथमें

मिष्वस्त्रपारगम् ॥६५॥ तस्याभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान् । क्रुद्धश्चिच्छेद बाणेन धनुः शत्रुनिबर्हणः ॥ ६६ ॥ अन्यांश्च शतशो बाणान् प्रेषयामास पार्षते । दुर्योधनहितार्थाय भर्तृ-पिंडमनुस्मरन् ॥ ६७ ॥ अथान्यद्धनुरादाय पार्षतः परवीरहा । द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ६८ ॥ तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदामित्रकर्शनः हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६९ ॥ वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास भारत । सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ७० ॥ हताश्वात्स रथात्तूर्णमवाप्लुत्य महारथः । आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम् ॥ ७१ ॥ ततः सरथनागाश्वा समकंपत वाहिनी । पश्यतो भीम-सेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ७२ ॥ तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणे-नामिततेजसा । नाशक्नुवन् वारयितुं समस्तास्ते महारथाः ७३

बैठाल कर वह बाणविद्याके आवेशमें भरकर अपनी ओरको आताहुआ देखते ही शत्रुओंका नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने एक बाण मारकर उसका धनुष काटडाला ॥ ६६ ॥ अपने स्वामीके अन्नका स्मरण करते हुए दुर्योधनका हित करनेके लिये धृष्टद्युम्न के ऊपर और भी सैंकड़ों बाण छोड़े ॥ ६७॥ धृष्टद्युम्नने हाथमें दूसरा धनुष लेकर सानपर धरेहुए तथा सुवर्णके पंखोंवाले बीस बाण छोड़कर द्रोणको बींध डाला ॥ ६८ ॥ परन्तु शत्रुका नाश करने वाले द्रोणाचार्यने उसका धनुष फिर काटडाला और चार बड़े बाण छोड़कर उसके चार घोड़ोंको मारडाला तथा भल्ल नामका बाण छोड़कर उसके सारथीको भी मारडाला ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ महाबाहु धृष्टद्युम्न जिसके घोड़े मरगये हैं ऐसे रथमेंसे कूदपड़ा और अभिमन्युवाले रथमें जाबैठा ॥ ७१ ॥ द्रोणाचार्य के ऐसे पराक्रमसे धृष्टद्युम्न और भीमसेनके देखते हुए पाण्डवों की सब रथ, घोड़े और हाथियोंवाली सेना कांपनेलगी ॥७२॥ और अपार तेजवाले द्रोणाचार्यकी भगाई हुई इस सेनाको

वध्यमानं तु तत् सैन्यं द्रोणेन निशितैःशरैः । व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव चोभ्यमाण इवार्णवः ॥ ७४ ॥ तथा दृष्ट्वा च तत्सैन्यं जहृषे तावकं बलम् । दृष्ट्वाचार्यं सुसंक्रुद्धं पतंतं रिपुवाहिनीम् । चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत ॥ ७५ ॥　छ　॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे द्रोणपराक्रमे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच । ततो दुर्य्योधनो राजा मोहात् प्रत्यागतस्तदा शरवर्षैः पुनर्भीमं प्रत्यवारयदच्युतम् ॥ १ ॥ एकीभूतास्ततश्चैव तव पुत्रा महारथाः । समेत्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः ॥२॥ भीमसेनोऽपि समरे सम्प्राप्य स्वरथं पुनः । समारुह्य महाबाहुर्ययौ येन तवात्मजः ॥ ३ ॥ प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम् ।

पाण्डवोंके महारथी योधा रोक भी नहीं सके ॥ ७३ ॥ द्रोणाचार्यने बाण मारकर जिसको बखेर दिया था ऐसा पाण्डवोंका सेनादल खलभलाये हुए समुद्रकी समान जिधर तिधरको घूमने लगा ॥ ७४ ॥ हे भारत ! इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनाको भागते हुए देखकर तथा द्रोणाचार्यको उसका संहार करते हुए देखकर तुम्हारी सेनाने बड़ा आनन्द माना और बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया इसप्रकार सब ओरसे योधा चिल्लाने लगे ॥ ७५ ॥ सतत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥　छ　॥

सञ्जय कहता है, कि—मूर्छासे छूटकर सचेत हुआ राजा दुर्योधन भीमसेनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके हठी भीमको आगे बढ़नेसे रोकने लगा ॥ १ ॥ और इकट्ठे हुए तुम्हारे महारथी पुत्र भी तत्पर होकर रणमें अकेले भीमसेनके साथ ही युद्ध कररहे थे ॥ २ ॥ महाबाहु भीमसेन भी फिर अपने रथमें बैठकर जहां तुम्हारा पुत्र खड़ा था तहांको बढ़कर आया ॥ ३ ॥ और शत्रुओं के प्राण लेनेवाले अपने दृढ़ धनुषको चढ़ाकर तुम्हारे पुत्रको रण

सज्जं शरासनं सङ्ख्ये शरैर्विव्याध ते सुतम् ॥ ४ ॥ ततो दुर्य्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम् । नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत् ॥५॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना । क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनाक्षिप्य कार्मुकम् ॥६॥ दुर्य्योधनं त्रिभिर्बाणै-र्बाह्वोरुरसि चार्पयत् । स तत्र शुशुभे राजा शिखरैर्गिरिराडिव ७ तौ दृष्ट्वा समरे क्रुद्धौ विनिघ्नन्तौ परस्परम् । दुर्य्योधनानुजाः सर्वे शूरा सन्त्यक्तजीविताः ॥ ८ ॥ संस्मृत्य मन्त्रितं पूर्वं निग्रहे भीमकर्म्मणः । निश्चय परमं कृत्वा निगृहीतुं प्रचक्रमुः ॥ ९ ॥ तानापतत एवाजौ भीमसेनो महाबलः । प्रत्युद्ययौ महाराज गजः प्रति गजानिव ॥ १०॥ भृशं क्रुद्धश्च तेजस्वी नाराचेन समार्पयत् । चित्रसेनं महाराज तव पुत्रं महायशाः ॥ ११ ॥ तथेतरांस्तव

में बाणोंसे बींधडाला ॥ ४ ॥ तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने अति तीखे बाणसे भीमसेनके मर्मस्थानको घायल करदिया ॥ ५ ॥ तुम्हारे पुत्रके बाणसे अत्यन्त घायल हुए बड़े धनुषधारी भीमसेनने क्रोधके मारे लाल लाल नेत्र करके बड़े जोरसे अपने धनुष को खेंचकर दुर्योधनकी छातीमें एक तथा दोनों भुजाओंमें दो इसप्रकार तीन बाण मारे ॥६॥ इसप्रकार भीमसेनके तीन बाण शरीरमें घुसजानेके कारण राजा दुर्योधन शिखरों सहित न ढह सकने वाले गिरिराजकी समान शोभायमान हुआ ॥ ७॥ क्रोधमें भरकर आपसमें एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हुए भीमसेन और दुर्योधनको देखकर दुर्योधनके मृतकसमान हुए सब छोटे भाई भयानक काम करनेवाले भीमसेनको बन्दी करनेके अपने पहिले किये हुए विचारको याद करके दृढ़ निश्चयके साथ उसको पकड़ने के लिये टूटपड़े ॥ ८ ॥ ९ ॥ उनको आगेको बढ़ते हुए देख कर महाबली भीम, जैसे हाथियोंकी धांगके ऊपर हाथी झपटता हो इस प्रकार उनके ऊपरको झपटा ॥ १० ॥ हे महाराज ! अत्यन्त कोपमें भरेहुए तेजस्वी तथा बड़े यशवाले भीमसेनने एक नाराच बाणका तुम्हारे पुत्र चित्रसेनके ऊपर प्रहार किया

सुतांस्ताडयामास भारत । शरैर्बहुविधैः सङ्ख्ये रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ॥ १२ ॥ ततः संस्थाप्य समरे तान्यनीकानि सर्वशः । अभिमन्युप्रभृतयस्ते द्वादश महारथाः ॥ १३ ॥ प्रेषिता धर्मराजेन भीमसेनपदानुगाः । प्रतिजग्मुर्महाराज तव पुत्रान् महाबलान् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा रथस्थांस्तान् शूरान् सूर्याग्निसमतेजसः । सर्वानेव महेष्वासान् भ्राजमानान श्रिया वृतान् ॥ १५ ॥ महाहवे दीप्यमानान् सुवर्णविकृतोज्ज्वलान् । तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः ॥ १६ ॥ तान्नामृष्यत् कौन्तेयो जीवमाना गता इति । अन्वीय च पुनः सर्वांस्तव पुत्रानपीडयत् ॥ १७ ॥ अथाभिमन्युं समरे भीमसेनेन संगतम् । पार्षतेन च सम्प्रेक्ष्य तव सन्ये महारथाः ॥ १८ ॥ दुर्योधनप्रभृतयः प्रगृहीतशरासनाः । भृशमश्वैः प्रजवितैः प्रययुर्यत्र ते रथाः ॥१९॥ अपराह्णे महाराज

॥ ११ ॥ तथा हे महाराज ! सोनेके परोंवाले अत्यन्त तेज अनेकों प्रकारके बाणोंसे रणमें तुम्हारे अन्य पुत्रोंके ऊपर प्रहार किया ॥ १२ ॥ हे महाराज ! फिर अपनी उन सेनाओंको चारों ओर से इकट्ठी करके, भीमसेनकी सहायता करनेको युधिष्ठिरके भेजे हुए अभिमन्यु आदि बारह महारथी तुम्हारे महाबली पुत्रोंके सामने आये ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ सूर्य और अग्निकी समान तेजस्वी बड़े धनुषधारी और वीरश्रीसे शोभायमान तथा सोनेके मुकुटोंसे दमकते हुए इन बारहों महारथियोंको रथोंमें बैठकर आतेहुए देखकर तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनके साथ युद्ध करना छोड़दिया और उस महारणमें उनके सामने लड़नेको आये ॥१५॥ ॥ १६ ॥ मेरे साथ युद्ध करना छोड़कर ये जीते ही चलेगये, इस बातको भीमसेन सह नहीं सका और वह फिर तुम्हारे पुत्रोंके पीछे चलदिया तथा उनको मारने लगा ॥१७॥इसके अनन्तर भीमसेन और धृष्टद्युम्न रणमें अभिमन्युसे आकर मिलगये यह देखकर दुर्योधन आदि तुम्हारा सेनाके महारथी हाथमें धनुष लिये हुए वेगवाले घोड़ोंपर चढ़कर इन महारथियोंके सामने गये । १८–१९

प्रावर्त्तत महारणः । तावकानाञ्च बलिनां परेषां चैव भारत॥२०॥ अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान् हत्वा महाहवे । अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥२१॥ हताश्वं रथमुत्सृज्य विकर्णस्तु महारथः । आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भारत ॥ २२ ॥ स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुलवर्धनौ । आर्जुनिः शरजालेनच्छादयामास भारत ॥ २३ ॥ चित्रसेनो विकर्णश्च कार्ष्णिं पञ्चभिरायसैः । विव्याध तेन चाकम्पत् कार्ष्णिर्मेरुरिव स्थितः ॥ २४ ॥ दुःशासनस्तु समरे केकयान् पञ्च मारिष । योधयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥ द्रौपदेया रणे क्रुद्धा दुर्य्योधनमवारयन् । शरैराशीविषाकारैः पुत्रं तव विशाम्पते ॥ २६ ॥ पुत्रोऽपि तव दुर्द्धर्षो द्रौपद्यास्तनयान् रणे । सायकैर्निशितै राजन्नाजघान पृथक् पृथक् ॥२७॥ तैश्चापि विद्धः शुशुभे रुधिरेण समुक्षितः । गिरिः

हे भरतवंशी महाराज ! तीसरे पहरके समय तुम्हारे पुत्रोंका तथा पाण्डवोंके बलवान् वीरोंका भयानक युद्ध होने लगा॥२०॥ अभिमन्युने इस महायुद्धमें विकर्णके घोड़ोंको मार डाला और छोटे २ पचीस बाण इसके भी मारे ॥ २१ ॥ घोड़ोंके मरजाने से रथको छोड़ कर महारथी विकर्ण चित्रसेनके रथमें बैठगया ॥ २२ ॥ इन कुलवर्धन दोनों भाइयोंको एक रथमें बैठे हुए देखकर अर्जुनके पुत्रने उनके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया ॥ २३ ॥ चित्रसेनने और विकर्णने भी पांच बाण छोड़ कर कृष्णाके पुत्रको घायल कर डाला, परन्तु इससे वह जरा भी न डिगकर मेरुकी समान अचल रहा॥२४॥ और हे महाराज ! दुःशासन पाँच केकयोंके साथ युद्ध कर रहाथा, वह हे राजेन्द्र ! बड़ा अचरज सा मालूम होता था ॥ २५ ॥ परन्तु हे राजन ! द्रौपदीके पुत्र बड़े ही आवेशमें भरकर सांपजैसे आकारके बाणों को छोड़ते हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको रोकरहे थे ॥ २६ ॥ और तुम्हारा दुर्धर्ष पुत्र दुर्योधन भी तीखे बाणोंसे द्रौपदीके हर एक पुत्रके ऊपर अलग २ प्रहार कर रहाथा ॥ २७ ॥ और सामने

प्रस्रवणैर्यद्वद् गैरिकादिविमिश्रितैः ॥ २८ ॥ भीष्मोपि समरे राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् । कालयामास बलवान पालः पशुगणानिव ॥२९॥ ततो गाण्डीवनिर्घोषः प्रादुरासीद्दिशाम्पते । दक्षिणेन वरूथिन्याः पार्थस्यारीन् विनिघ्नतः ॥ ३० ॥ उत्तस्थुः समरे तत्र कबन्धानि समन्ततः । कुरूणाञ्चैव सैन्येषु पाण्डवानाञ्च भारत ॥ ३१ ॥ शोणितोदं शरावर्त्तं गजद्वीपं हयोर्मिणम् । रथनौभिर्नरव्याघ्राः प्रतेरुः सैन्यसागरम् ॥ ३२ ॥ छिन्नहस्ता विकवचा विदेहाश्च नरोत्तमाः । दृश्यन्ते पतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥ निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः । भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा ॥३४॥ तत्राद्भुतमपश्याम तव तेषां च

छोड़े हुए बाणोंसे घायल हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके शरीरमेंसे रुधिरकी धार बहने लगी, उससे वह ऐसा शोभायमान हुआ कि जैसे लाल धातुओंसे मिले प्रवाह वाले झरनोंसे गिरिराज शोभायमान होता है ॥२८॥ हे महाराज ! बलवान् भीष्मजी भी पाण्डवोंकी सेनाको ऐसे मार रहेथे जैसे ग्वालिया अपने ढोरों को मारता है ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इतनेमें ही शत्रुओं का संहार करते हुए अर्जुनके गाण्डीव धनुषका शब्द सेनाके दक्षिणभागमें सुनायी आया ॥ ३० ॥ और हे भारत ! तुम्हारी तथा पाण्डवों की सेनामें विना शिरके धड़ खड़े होकर इधर उधर दौड़ते हुए दीखने लगे ॥ ३१ ॥ रुधिररूपी जलसे भरे, बाणरूप भँवर वाले, हाथियों रूप टापूवाले और घोड़ेरूप तरङ्गों वाले सेना रूप समुद्रमें पुरुषोंमें व्याघ्र समान योधा रथरूप नौकामें बैठकर तैरते हुएसे दीखते थे ॥ ३२ ॥ कटे हुए हाथ, कवच और शरीरों वाले लाखों श्रेष्ठ मनुष्य रणभूमिमें जहां तहां पड़े हुए दीख रहे थे ॥ ३३ ॥ रुधिरके प्रवाहसे भीगे हुए शरीरों वाले कटे हुए हाथियोंसे रणभूमि ऐसी मालूम होती थी, कि-मानों पर्वतोंसे छागयी है ॥३४॥ ऐसा होते हुए भी तुम्हारे तथा

भारत । न तत्रासीत् पुमान् कश्चिद्यो युद्धं नाभिकांक्षति ॥३५॥ एवंयुयुधिरे वीराः प्रार्थयाना महद्यशः । तावकाः पाण्डवैः सार्द्धमाकांक्षंतो जयं युधि ॥ ३६ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

सञ्जय उवाच । ततो दुर्य्योधनो राजा लोहितायति भास्करे । संग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत ॥ १ ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य नृवीरं दृढवैरिणम् । भीमसेनः सुसंक्रुद्ध इदम्वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ अयं स कालः सम्प्राप्तो वर्षपूगाभिवांछितः । अद्य त्वां निहनिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥ अद्य कुन्त्या परिक्लेशं वनवासञ्च कृत्स्नशः । द्रौपद्याश्च परिक्लेशं प्रणोष्यामि हते त्वयि ॥ ४ ॥ यत् पुरा मत्सरी भूत्वा पाण्डवानवमन्यसे ।

पाण्डवोंके पक्षमें ऐसा एक भी योधा नहीं था, कि-जो युद्ध करना न चाहता हो, यह सबको अचरज सा मालूम होता था, हे महाराज ! युद्धमें जय और यशको चाहने वाले तुम्हारे पुत्र पाण्डुके पुत्रोंके साथ इसप्रकार युद्ध कर रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ * ॥ *

सञ्जय कहता है, कि-सूर्य अस्त होनेका समय होजानेके कारण लालवर्णका होने लगा तव राजा दुर्योधन युद्धकी शीघ्रता करता २ भीमसेनको मारनेकी इच्छासे आगेको बढ़ा ॥ १ ॥ पुरुषोंमें वीर तथा दृढ़ वैरवाले दुर्योधनको आतेहुए देख अत्यंत कोपमें भरकर भीमसेनने उससे इसप्रकार कहा, कि-॥ २ ॥ वहुतसे वर्षोंसे मैं जिस समयकी वाट देख रहा था, वह समय आज आगया है, यदि तू संग्रामको छोड़कर नहीं भागेगा तो मैं आज तुझे मार डालूंगा ॥३॥ आज मैं तुझे मार कर कुन्ती तथा द्रौपदीके क्लेशका, और अपने वनवासके दुःखका अन्त करूँगा ॥४॥ हे गान्धारीके पुत्र ! पहिले तूने वडा डाह रखकर पाण्डवोंका

तस्य पापस्य गान्धारे पश्य व्यसनमागतम् ॥ ५॥ कर्णस्य मतमा-स्थाय सौबलस्य च यत् पुरा । अचिन्त्य पाण्डवान् कामाद्यथेष्टं कृतवानसि ॥६॥ याचमानश्च यन्मोहाद्दाशार्हमवमन्यसे । उलूकस्य समादेशं यद्ददासि च हृष्टवत् ॥ ७ ॥ तेन त्वां निहनिष्यामि सानु-बंधं सबान्धवम् । शमीकरिष्ये तत् पापं यत् पुरा कृतवानसि ॥८॥ एवमुक्त्वा धनुर्घोरं विकृष्योद्भ्राम्य चासकृत् । समाधत्त शरान् घोरान् महाशनिसमप्रभान् ॥ ९ ॥ षड्विंशतिमसंक्रुद्धो मुमोचाशु सुयोधने । ज्वलिताग्निशिखाकारान् वज्रकल्पानजिह्मगान् ॥१०॥ ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्याञ्च विव्यधे । चतुर्भिरश्वान् जवनाननयद्यमसादनम् ॥ ११ ॥ द्वाभ्याञ्च सुविकृष्टाभ्यां शरा-

---

तिरस्कार किया है, परन्तु आज यह तेरे पापकर्मका परिणाम आ पहुंचा है, उसकी ओरको तू ध्यान दे ॥ ५ ॥ कर्णकी तथा शकुनिकी सम्मतिको मान पाण्डवोंको तुच्छ गिनकर तूने पहिले उनके ऊपर इच्छानुसार अत्याचार किये हैं ॥ ६ ॥ कृष्णने सन्धि कर लेनेके लिये तुझसे प्रार्थनाकी थी, उसको भी तूने कुछ नहीं गिना और अज्ञानके कारण बडा फूलकर उलूकको मेरे पास सन्देशा लेकर भेजा था ॥७॥ इसलिये मैं आज तुझे साथियों और संबन्धियों सहित मार डालूंगा और पहिले जो तूने पाप किया है उसका फल चखाऊँगा ॥ ८ ॥ इतना कह भीमसेनने अपना घोर धनुष चढ़ाकर वज्रकी समान कान्तिवाले घोर बाणको ठीक करके खूब खेंचा ॥ ९ ॥ और बडे क्रोधमें भरकर धक २ बलते हुए अग्निकी समान शोले छोडतेहुए तथा सीधे जाने वाले छब्बीस बाण दुर्योधनके ऊपर छोडे ॥ १० ॥ फिर दो बाण छोड कर उसके धनुषको काट डाला, फिर दो बाण छोड़ कर उसके सारथिको मार डाला तथा चार बाण छोड़ कर उसके चारों वेगवान घोड़ोंको भी यमालयमें भेज दिया ॥११॥ हे नरेन्द्र ! शत्रुओंका दमन करने वाले भीमसेनने खूब खेंच कर

भ्यामरिमर्दनः । छत्रं चिच्छेद समरे राज्ञस्तस्य नरोत्तम ॥ १२ ॥ षड्भिश्च तस्य चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम्। छित्त्वा तञ्च ननादोच्चैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ १३ ॥ रथाच्च स ध्वजः श्रीमान् नानारत्नविभूषितात् । पपात सहसा भूमौ विद्युज्जलधरादिव ॥ १४ ॥ ज्वलन्तं सूर्यसङ्काशं नागं मणिमयं शुभम् । ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥ १५ ॥ अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् । आजघान रणे वीरं स्मयन्निव महारथः ॥ १६ ॥ ततः स राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो महारथः । दुर्योधनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ १७ ॥ कृपश्च रथिनां श्रेष्ठः कौरव्यममितौजसम् । आरोपयद्रथं राजन् दुर्योधनममर्पणम् ॥ १८ ॥ स गाढविद्धो व्यथितो भीमसेनेन संयुगे । निषसाद रथोपस्थे

छोड़े हुए दो बाणोंसे उस रणमें राजा दुर्योधनके छत्रको काट डाला ॥ १२ ॥ और छः बाणोंसे उसकी दमकती हुई उत्तम ध्वजा को काट डाला और उसको काटकर भीमसेन बड़े जोरसे गरजा, इस बातको तुम्हारा पुत्र देखता रहा ॥ १३ ॥ नाना प्रकारके रत्नोंसे जडी हुई वह दुर्योधनके रथकी उत्तम ध्वजा एक साथ ऐसे नीचे गिरपडी जैसे मेघमेंसे बिजली गिरती है ॥ १४ ॥ और प्रकाश करते हुए सूर्यकी समान तेजवाली, मणियोंसे जडी नागके आकारकी दुर्योधनकी उस कटी हुई ध्वजाको सब राजाओंने देखा ॥ १५ ॥ फिर जैसे हाथीवान् अंकुशसे हाथीके ऊपर प्रहार करता है तैसे ही दश बाण छोड कर महारथी भीमने हँसते २ दुर्योधनके ऊपर प्रहार किया १६ तब तो रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी सिन्धुदेशका राजा श्रेष्ठ पुरुषोंको साथ लेकर दुर्योधनके पृष्ठभागकी रक्षा करनेको गया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने परम तेजस्वी और असहनशील कुरुवंशी दुर्योधनको अपने रथमें बैठाल दिया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! रणमें भीमसेनके बाणसे अत्यन्त घायल हुआ राजा

राजन् दुर्योधनस्तदा ॥ १९ ॥ परिवार्य ततो भीमं जेतुकामो जयद्रथः । रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद्दिशः ॥ २० ॥ धृष्टकेतुस्ततो राजन्नभिमन्युश्च वीर्यवान् । केकया द्रौपदेयाश्च तव पुत्रानयोधयन् ॥ २१ ॥ चित्रसेनः सुचित्रश्च चित्रांगश्चित्रदर्शनः । चारुचित्रः सुचारुश्च तथा नंदोपनंदकौ ॥ २२ ॥ अष्टावेते महेष्वासाः सुकुमारा यशस्विनः । अभिमन्युरथं राजन् समंतात् पर्यवारयन् ॥ २३ ॥ आजघान ततस्तूर्णमभिमन्युर्महामनाः । एकैकं पंचभिर्बाणैः शितैः सन्नतपर्वभिः ॥ २४ ॥ वज्रमृत्युप्रतीकाशैर्विचित्रायुधनिःसृतैः । अमृष्यमाणास्ते सर्वे सौभद्रं रथसत्तमम् ॥२५॥ ववृषुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवांबुदाः । स पीड्यमानः समरे कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ २६ ॥ अभिमन्युर्महाराज तावकान् सम-

---

दुर्योधन उस समय रथके उपस्थ भागमें विश्राम लेनेको बैठ गया ॥ १९ ॥ इतनेमें ही भीमसेनको जीतनेकी इच्छा वाले राजा जयद्रथने सहस्रों रथ लेकर भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया॥२०॥ तब तो हे राजन्! धृष्टकेतु, वीर्यवान्, अभिमन्यु, केकय तथा द्रौपदीके पुत्र ये सब तुम्हारे पुत्रके साथ युद्ध करनेको चढ़ आये ॥२१॥ चित्रसेन, सुचित्र, चित्राङ्ग, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारु, नन्दक और उपनन्दक ॥२२॥ हे राजन्! इन आठ महाधनुषधारी, कीर्त्तिमान्, सुकुमार राजपुत्रोंने अभिमन्युके रथको घेर लिया ॥ २३ ॥ तब तो बड़े साहसी अभिमन्युने शीघ्र ही और दृढ़ गांठवाले पांच २ बाण उनमेंसे हरएकके मारे ॥ २४ ॥ वज्र और मृत्युकी समान तथा दृढ़ धनुषमेंसे छूटेहुए इन बाणोंको न सहसकनेके कारण तुम्हारी ओरके सब योधा जैसे मेघ मेरुके ऊपर जलकी धारें बरसाते हैं तिसीप्रकार महारथी अभिमन्युके ऊपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे, सब योधा जब इसप्रकार रणमें अभिमन्युको पीड़ा देने लगे तब हे महाराज! अस्त्रविद्यामें चतुर युद्धदुर्मद अभिमन्यु तुम्हारे इन योधाओंको जैसे देवासुर

कंपयत् । यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान्॥२६॥ विकर्णस्य ततो भल्लान् प्रेषयामास भारत । चतुर्दश रथं श्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान् ॥ २८ ॥ स तैर्विकर्णस्य रथात् पातयामास वीर्यवान् ध्वजं सूतं हयांश्चैव नृत्यमान इवाहवे ॥ २९ ॥ पुनश्चान्यान् शरान् पीतानकुण्ठाग्रान् शिलाशितान् । प्रेषयामास संक्रुद्धो विकर्णाय महाबलः ॥ ३० ॥ ते विकर्णं समासाद्य कङ्कबर्हिणवाससः । भित्त्वा देहं गता भूमिं ज्वलन्त इव पन्नगाः ॥ ३१ ॥ ते शरा हेमपुङ्खाग्रा व्यदृश्यन्त महीतले । विकर्णरुधिरक्लिन्ना वमन्त इव शोणितम् ॥ ३२ ॥ विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवान्ये सहोदराः । अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान् रथान् ॥३३॥

संग्राममें इन्द्रने असुरोंको कम्पायमान किया था तैसे ही कम्पायमान करने लगा ॥ २५ ॥ २७ ॥ हे भारत ! महारथी अभिमन्यु ने तदनन्तर सांपोंकी समान विषैले और भयानक भल्ल नामके चौदह बाण विकर्णके ऊपर छोड़े ॥ २८ ॥ इन बाणोंको छोड़ते ही पराक्रमी अभिमन्युने रणभूमिमें नाचनेकी समान घूम२ कर विकर्णके रथमेंकी ध्वजाको तथा सारथीको नीचे गिरादिया और घोड़ोंको भी मार डाला ॥२९॥ फिर महाबली अभिमन्युने बड़े क्रोधमें भरकर विषमें बुझे,अच्छे प्रकार सान पर धरे मजबूत गांठोंवाले दूसरे बाण विकर्णको मारनेके लिये छोड़े ॥ ३० ॥ लपटें छोड़ते, विषधर सर्पोंकी समान तथा कङ्कपक्षीके परोंसे ढके वह बाण विकर्णके शरीरको फोड़कर पृथ्वीमें घुसगये ॥ ३१ ॥ जिनकी पूँछके अग्रभाग सोनेके थे ऐसे पृथ्वीतल पर पड़े हुए वह बाण विकर्ण के रुधिरसे सनेहुए होनेके कारण रुधिरकी कै करते हुए से मालूम होते थे ॥ ३२ ॥ विकर्णको इसप्रकार रणमें घायल हुआ देखकर उसके और भाई, अभिमन्यु आदि महारथियोंके सामने युद्ध करनेको दौड़ आये ॥ ३३ ॥ इसी

अभियात्वा तथैवान्यान् रथांस्तान् सूर्यवर्चसः । अविध्यन् समरेऽन्योन्यं संरंभाद्युद्धदुर्मदाः ॥ ३४ ॥ दुर्मुखः श्रुतकर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः । ध्वजमेकेन चिच्छेद सारथिञ्चास्य सप्तभिः ॥ ३५ ॥ अश्वाञ्जाम्बूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान् वातरंहसः । जघान षड्भिरासाद्य सारथिञ्चाभ्यपातयत् ॥ ३६ ॥ स हताश्वे रथे तिष्ठन् श्रुतकर्मा महारथः । शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३७ ॥ सा दुर्मुखस्य विमलं वर्म भित्वा यशस्विनः । विदार्य्य प्राविशद्भूमिं दीप्यमाना स्वतेजसा ॥ ३८ ॥ तं दृष्ट्वा विरथं तत्र सुतसोमो महारथः । पश्यतां सर्वसैन्यानां रथमारोपयत्स्वकम् ॥ ३९ ॥ श्रुतिकीर्त्तिस्तथा वीरो जयत्सेनं सुतं तव । अभ्ययात् समरे राजन् हन्तुकामो यशस्विनम् ॥ ४० ॥ तस्य

प्रकार सूर्यकी समान तेजवाले दूसरे रथोंके सामने आकर अत्यन्त कोपमें भरे हुए ये रणमें अत्यन्त दुर्मद योधा आपसमें मार काट कर रहे थे ॥ ३४ ॥ दुर्मुखने सात बाण मार कर श्रुतकर्माको बींधडाला, एक बाणसे उसकी ध्वजाको काटा और सात बाणोंसे उसके सारथीको बींधकर मारडाला ॥ ३५ ॥ फिर पास आ छः बाण छोड़कर सोनेके साजवाले तथा वायुकी समान वेग वाले उसके घोड़ोंको तथा सारथीको नीचे गिरा दिया ॥ ३६ ॥ परन्तु घोड़े मर जाने पर भी उस ही रथमें बैठे रहकर महारथी श्रुतकर्माने क्रोधमें भर कर उल्का की समान प्रकाश करती हुई एक शक्ति दुर्मुखके मारी ॥ ३७ ॥ और अपने तेजसे दमदमाती हुई वह शक्ति कीर्त्तिमान् दुर्मुखके कवच को फोड़कर भूमिमें घुसगई ॥ ३८ ॥ श्रुतकर्माको रथसे हीन हुआ देखकर महारथी सुतसोमने सब सेनाके सामने उसको अपने रथमें बैठाल दिया ॥ ३९ ॥ श्रुतकीर्त्ति नामवाला वीर तुम्हारे कीर्त्तिमान् पुत्र जयत्सेनको मारनेकी इच्छासे उसके सामने को झपट आया ॥ ४० ॥ और श्रुतकीर्त्ति अपने बड़ाभारी शब्द

विक्षिपतश्चापं श्रुतकीर्तेर्महास्वनम् । चिच्छेद समरे तूर्णं जयत्सेनः सुतस्तव ॥ ४१ ॥ क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत । तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम् ॥ ४२ ॥ अभ्यपद्यत तेजस्वी सिंहवन्निनदन् मुहुः । शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ४३ ॥ विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः ननाद सुमहानादं प्रभिन्न इव वारणः ॥ ४४ ॥ अथान्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना । शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम् ॥ ४५ ॥ तथा तस्मिन् वर्त्तमाने दुष्कर्णो भ्रातुरन्तिके । चिच्छेद समरे चापं नाकुलेः क्रोधमूर्छितः ॥ ४६ ॥ अथान्यद्धनु-रादाय भारसाहमनुत्तमम् । समादत्त शरान् घोरान् शतानीको महाबलः ॥ ४७ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति चामन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः । मुमोचास्मै ज्वलितान् बाणान् ज्वलितान् पन्नगानिव ॥ ४८ ॥

करनेवाले धनुषको खेंच रहा था, कि-इतनेमें ही तुम्हारे पुत्र जयत्सेनने सरासे मुसकुराकर तीखी धार वाले उसके धनुषको रणमें काट डाला, अपने भाईके बाणसे धनुषको कटाहुआ देखकर तेजस्वी सिंहकी समान गरजता हुआ यह आगेको बढ़ा और अपने दृढ़ धनुषको खेंचकर उसने तुम्हारे पुत्र जयत्सेनके दश बाण मारे और मद टपकानेवाले हाथीकी समान बड़ी जोरसे गरजा ॥ ४१-४४॥ और चाहे तैसे बख्तर को भी फोड़ डालने वाले दूसरे अत्यन्त तीखे बाणसे जयत्सेनकी छाती में घोर घाव करदिया ॥ ४५ ॥ इस समय जयत्सेन के पास खड़े हुए उसके भाई दुष्कर्णने क्रोधमें भरकर शतानीकका धनुष काट डाला ।४६। तब उस कटेहुए धनुषको फेंककर महाबली शतानीकने जोरको सह सकनेवाला दूसरा धनुष हाथमें लेकर उस पर भयानक बाण चढ़ाये और खड़ारह, खड़ा रह, ऐसा कहकर उसके ऊपर दमदमाते हुए साँपकी समाने विषैले बाण छोड़े ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतञ्च मारिष । चिच्छेद समरे तूर्णं तञ्च विव्याध सप्तभिः ॥४९॥ अश्वान् मनोजवांस्तस्य कबु रान् वातरंहसः । जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान् द्वादशभिः शरैः ॥५०॥ अथापरेण भल्लेन संयुक्तेनाशुपातिना । दुष्कर्णं सुदृढं क्रुद्धो विव्याध हृदये भृशम् ॥ ५१ ॥ स पपात ततो भूमौ वज्राहत इव द्रुमः । दुष्कर्णं व्यथितं दृष्ट्वा पञ्च राजन् महारथाः ॥ ५२ ॥ जिघांसन्तः शतानीकं सर्वतः पर्य्यवारयन । छाद्यमानं शरव्रातैः शतानीकं यशस्विनम् ॥ ५३ ॥ अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः केकयाः पञ्च सोदराः । तानभ्यापततः प्रेक्ष्य तव पुत्रा महारथाः ॥ ५४ ॥ प्रत्युद्ययुर्महाराज गजानिव महागजाः । दुर्मुखो दुर्ज्जयश्चैव तथा दुर्मर्षणो युवा ॥५५॥ शत्रुञ्जयः शत्रुसहः सर्वे क्रुद्धा यशस्विनः । प्रत्युद्याता महाराज केकयान् भ्रातरः समम् ॥ ५६ ॥ रथनगर-

---

फिर एक दूसरा बाण छोड़कर उसके धनुषको काट डाला दो बाणोंसे उसके सारथीको मारदिया तथा और सात बाण छोड़ कर उसके ऊपर फिर प्रहार किया ॥ ४९ ॥ तथा बारह बाण मारकर मनकी समान वेगवाले और चितकबरे रङ्गके उसके घोड़ों को भी मारडाला ॥ ५० ॥ फिर बड़ेभारी क्रोधमें भरकर युक्ति से चढ़ाये हुए शीघ्र ही जा पड़नेवाले भल्ल नामक बाणसे दुष्कर्ण की छातामें बड़े जोरका प्रहार किया ॥ ५१ ॥ तब तो वह वज्रसे टूटे हुए वृक्षकी समान भूमि पर गिरपड़ा, हे राजन् ! दुष्कर्णको घायल हुआ देखकर दूसरे पाँच महारथी शतानीकको मारनेके लिये सब ओरसे आकर घेरनेलगे, यशस्वी शतानीकको शत्रुओं के बाणोंसे ढकाहुआ देखकर पांच केकय राजकुमार क्रोधमें भर कर दौड़े, हे महाराज ! इनको सामनेसे आतेहुए देखकर, जैसे हाथियोंके सामनेको हाथी दौड़ते हों तैसे ही तुम्हारे महारथी पुत्र उनके सामनेको दौड़े, हे महाराज ! दुर्मुख, दुर्जय, युवा दुर्मर्षण, शत्रुञ्जय, शत्रुसह आदि यश पायेहुए योधा कोपमें भरकर टोली बनायेहुए केकयोंके सामने चढ़ आये ॥ ५२—५६ ॥ मनकी

सङ्काशैर्हयैर्युक्तैर्मनोजवैः । नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतैः ॥ ५७ ॥ वरचापधरा वीरा विचित्रकवचध्वजाः । विविशुस्ते परं सैन्यं सिंहा इव वनाद्वनम् ॥ ५८ ॥ तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् । अवर्त्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम् ॥५९॥ अन्योन्यागस्कृता राजन यमराष्ट्रविवर्द्धनम् । मुहूर्त्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥ ६० ॥ रथिनः सादिनश्चाथ व्यकीर्यन्त सहस्रशः । ततः शान्तनवः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६१ ॥ नाशयामास सेनां तां भीष्मस्तेषां महात्मनाम् । पञ्चालानाञ्च सैन्यानि शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६२ ॥ एवं भित्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् । कृत्वाऽवहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं

समान वेगवाले घोड़ोंसे जुड़े, नगरकी समान तथा नाना प्रकार की पताकाओंसे शोभायमान रथोंमें बैठकर सुन्दर धनुष धारण करनेवाले चित्रविचित्र कवच और ध्वजाओंवाले ये योधा, जैसे सिंह वनमें घुसते हैं तैसे ही शत्रुओंकी महासेनामें घुसगये॥५७॥ ॥ ५८ ॥ एक दूसरेको मारते हुए इन वीरोंका महाभयानक युद्ध होनेलगा, रथोंके सामने रथ और हाथियोंके सामने हाथी आकर भिड़गये ॥ ५९ ॥ एक दूसरेको अपना वैरी समझने वाले इन योधाओंका दारुण युद्ध सूर्य अस्त होजाने पर भी दो घड़ी तक होता रहा और इस युद्धमें मरेहुए योधा यमराजके राज्यकी बसतीको बढ़ानेलगे ॥ ६० ॥ और रथी तथा हाथियोंके हौदोंमें बैठे हुए सहस्रों योधा इधर उधरको गिरनेलगे, तब तो क्रोधमें भरे हुए शन्तनुके पुत्र भीष्मने बाणोंकी वर्षा करके पाण्डवों की सेनाका नाश करना आरम्भ करदिया तथा पाञ्चालोंकी सेनाका भी संहार करनेलगे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसप्रकार पाण्डवों की सेनाको तोड़कर महाधनुषधारी भीष्मजी अपनी सेनाको पीछेको लौटाकर लश्करमें गये, उधर युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न तथा भीमसेनसे मिलकर उनके मस्तकको सूंघा तथा

नृप ॥ ६३ ॥ धर्म्मराजोऽपि सम्प्रेक्ष्य धृष्टद्युम्नवृकोदरौ । मूर्द्धिन चैतावुपाघ्राय प्रहृष्टः शिविरं ययौ ॥ ६४ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मद्रोणसंवाद एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच । अथ शूरा महाराज परस्परकृतागसः । जग्मुः स्वशिविराण्येव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ १ ॥ विश्राम्य च यथान्यायं पूजयित्वा परस्परम् । सन्नद्धाः समदृश्यन्त भूयो युद्धचिकीर्षया ॥ २ ॥ ततस्तव सुतो राजंश्चिन्तयाभिपरिप्लुतः । विस्रवच्छोणिताक्ताङ्गः पप्रच्छेदं पितामहम् ॥ ३ ॥ सैन्यानि रौद्राणि भयानकानि व्यूढानि सम्यग्बहुलध्वजानि । विदार्य्य हत्वा च निपीड्य शूरास्ते पाण्डवानां त्वरिता महारथाः ॥ ४ ॥ सम्मोह्य सर्वान् युधि कीर्त्तिमन्तो व्यूहश्च तं मकरं वज्रकल्पम् ।

आनन्दित होते हुए अपनी छावनीमें को चले गये ॥६३॥६४॥ उन्नासीवां अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥ * ॥ * ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे महाराज ! एक दूसरेके ऊपर दृढ़ वैर रखने वाले और रुधिरसे भीगे हुए सब योधा अपनी २ छावनी में चले गये ॥ १ ॥ रातमें नियमके अनुसार विश्राम किया तथा परस्परका सन्मान किया, फिर दूसरे दिन युद्ध करने की इच्छासे सब योधा तयार होगये ॥ २ ॥ इस समय चिन्तासे और भयसे घबड़ाया हुआ तथा जिसके शरीरमें लगे हुए घावमें से रुधिर टपक रहा है ऐसा तुम्हारा पुत्र दुर्योधन भीष्म पितामह से यह बात बूझने लगा, कि-॥ ३ ॥ हे पितामह ! आपकी सेना बड़ी रौद्र और भयानक है, इसमें अनेकों ध्वजा हैं इस सेनाकी व्यूहरचना बड़ी उत्तमतासे कीगई है, तो भी उस व्यूहके भीतर घुसकर पाण्डवोंके चालाक महारथी योधा हमारी सेनाको मारे डालते हैं और हम सबोंको मोहित करके यह कीर्त्ति पारहे हैं, हमारे वज्रसमान मकरव्यूहको तोड़कर हमारी सेनामें घुस गये हैं

प्रविश्य भीमेन रणे हतोऽस्मि घोरैः शरैर्मृत्युदण्डप्रकाशैः ॥ ५ ॥ क्रुद्धन्तमुद्वीक्ष्य भयेन राजन् सम्मूर्च्छितो न लभे शान्तिमद्य । इच्छे प्रसादात्तव सत्यसन्ध प्राप्तुं जयं पाण्डवेयांश्च हन्तुम् ॥ ६ ॥ तेनैवमुक्तः प्रहसन् महात्मा दुर्योधनं मन्युगतं विदित्वा । तं प्रत्युवाचाविमना मनस्वी गङ्गासुतः शस्त्रभृताम्वरिष्ठः ॥ ७ ॥ परेण यत्नेन विगाह्य सेनां सर्वात्मनाहं तव राजपुत्र । इच्छामि दातुं विजयं सुखञ्च न चात्मानं छादयेऽहं त्वदर्थे ॥ ८ ॥ एते तु रौद्रा बहवो महारथा यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः । ये पाण्डवानां समरे सहाया जितक्लमा रोषविषं वमन्ति ॥ ९ ॥ ते नैव शक्याः सहसा विजेतुं वीर्योद्धताः कृतवैरास्त्वया च । अहं सेनां प्रति-

और मृत्युके दण्डकी समान भयानक बाणोंसे भीमसेनने मुझे घायल कर दिया है ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसको अतिकोपमें भरा देख कर मैं बहुत ही घबड़ा गया हूं और अभी तक मेरे मनको शान्ति नहीं मिलती है, इसलिये हे सत्यव्रतधारी ! आपकी सहायतासे मैं पाण्डवोंको जीतकर उनको मार डालना चाहता हूं ॥ ६ ॥ तुम्हारे पुत्रने ऐसा कहा तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ साहसी गङ्गानन्दन उसको क्रोध और चिन्तासे आतुर हुआ देखकर मुसकुराते हुए इस प्रकार कहने लगे कि—॥ ७ ॥ हे राजपुत्र ! मुझसे जहांतक हो सकेगा तहां तक मैं बड़ा भारी प्रयत्न करके पाण्डवोंकी सेनामें घुसता हूं और तुझे विजय तथा सुख दिलाना चाहता हूं तेरे लिये मैं अपने आत्मा तकको कुछ नहीं गिनता हूं ॥ ८ ॥ परन्तु पाण्डवोंकी सहायता करनेवाले ये सब महारथी बड़े भयानक, नामवरी पायेहुए, बड़ेशूर, अस्त्रविद्या में प्रवीण तथा युद्धके श्रमको सह सकनेवाले हैं, तेरे ऊपर बड़ा-भारी वैरभाव होनेके कारण यह क्रोधरूपी विषको वमन कर रहे हैं और वीरतासे उद्धत होनेके कारण सहजमें जीतनेमें नहीं आसकेंगे, परन्तु हे वीर ! मैं अपने प्राणोंतकको त्यागकर इन

योत्स्यामि राजन् सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर ॥ १० ॥ रणे तवार्थाय महानुभाव न जीवितं रक्ष्यतम ममाद्य । सर्वांस्तवार्थाय सदैव दैत्यान् घोरान् दहेयं किमु शत्रुनाम् ॥ ११ ॥ तान् पाण्डवान् योधयिष्यामि राजन् प्रियञ्च ते सर्वमहं करिष्ये । श्रुत्वैव चैतद्वचनं तदानीं दुर्योधनः प्रीतमना बभूव ॥ १२ ॥ सर्वाणि सैन्यानि ततः प्रहृष्टो निर्गच्छतेत्याह नृपांश्च सर्वान् । तदाज्ञया तानि विनिर्ययुर्द्रुतं गजाश्वपादातरथायुतानि ॥ १३ ॥ प्रहर्षयुक्तानि तु तानि राजन् महान्ति नानायुधशस्त्रवन्ति । स्थितानि नागाश्वपदातिमन्ति विरेजुराजौ तव राजन् बलानि ॥ १४ ॥ वृन्दैः स्थितांश्चापि सुसंप्रयुक्ताश्चकाशिरे दन्तिगणाः समन्तात् । शस्त्रास्त्रविद्भिर्नरवीरयोधैरधिष्ठिताः सैन्यगणास्त्वदीयाः ॥ १५ ॥ रथौघपादातगजाश्वसंघैः प्रयद्भिराजौ विधिवत् प्रणुन्नैः । समुद्धतं वै

की सेनाके साथ सब प्रकारसे युद्ध करूँगा ॥ ९ ॥ १० ॥ हे महानुभाव ! इस समय तेरे लिये मैं रणमें अपने जीवनतकको भी रक्षित रखने योग्य नहीं मानता हूं, तेरे लिये तो मैं देवताओंको और महाघोर दैत्योंको भी भस्म कर डालूंगा, फिर इस शत्रुसेनाकी तो बात ही क्या है ? ॥ ११ ॥ हे राजन् ! मैं पाण्डवोंके साथ लडूंगा और सब प्रकारसे तेरा हित करूँगा भीष्मजीकी इस बातको सुनकर दुर्योधनका चित्त प्रसन्न हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न हुए दुर्योधनने सब सेनाको संग्राममें जानेकी आज्ञा दी; उसकी आज्ञा पाते ही हाथी, घोड़े, पैदल तथा रथोंसे भरी हुई सब सेना अनेकों प्रकारके शस्त्र लेकर रणभूमि मेंको चली ॥ १३ ॥ हाथी घोड़े और पैदलों वाली तुम्हारी सेना रणभूमिमें खड़ी होनेके समय हे राजन् ! बड़ी अच्छी मालूम होती थी ॥ १४ ॥ तुम्हारी सेनाकी टुकड़ियें अस्त्र शस्त्र जानने वाले नरवीर योधाओंकी अधीनतामें खड़ी हुई थीं, रथों की पंक्तियोंने, पैदलोंने, हाथियोंने और घोड़ोंने रणमें का जाना

तरुणार्कवर्णं रजो वभौ च्छादयत् सूर्यरश्मीन् ॥ १६ ॥ रेजुः पताका रथदन्तिसंस्था वातेरिता भ्राम्यमाणाः समन्तात् । नाना-रङ्गाः समरे तत्र राजन् मेघैर्युता विद्युतः खे यथैव ॥ १७ ॥ धनूंषि विस्फारयतां नृपाणां बभूव शब्दस्तुमुलोऽतिघोरः । वि-मथ्यतो देवमहासुरौघैर्यथार्णवस्यादियुगे तदानीम् ॥ १८ ॥ तदुग्रनागं बहुरूपवर्णं तवात्मजानां समुदीर्णमेवम् । बभूव सैन्यं रिपुसैन्यहन्तृः युगान्तमेघौघनिभन्तदानीम् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे-ऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

संजय उवाच । अथात्मजं तव पुनर्गाङ्गेयो ध्यानमास्थितम् । अब्रवीद्भरतश्रेष्ठः सम्प्रहर्षकरं वचः॥१॥अहं द्रोणश्च शल्यश्च कृत-

---

आरंभ किया, उस समय बालसूर्यकी समान लाल रङ्गकी धूलि के समूहसे सूर्यकी किरणें ढक गयी थीं, रथ और हाथियोंके ऊपर पवनसे फहराती हुई अनेकों रङ्गकी ध्वजायें ऐसी शोभा-पारही थीं जैसे मेघमण्डलमें बिजली शोभा पाती है, पंक्ति बँध कर खड़े हुए और महावतोंसे ठीक किये हुए हाथी रणभूमिमें चारों ओर बड़ी शोभा पारहे थे ॥ १५-१७॥ आदियुगमें देवता और दानवोंसे मथेजाते हुए सागरकेसा, धनुषोंको चढ़ाकर खेंचते हुए योधाओंके रोदोंका शब्द होरहा था और भयानक हाथियों वाली, अनेकों रङ्ग और विभागोंवाली, शत्रुओंको मारनेके लिये तयार हुई तुम्हारी सेना, युगके क्षय (प्रलय) के समय चढ़े हुए मेघकी समान दीखती थी ॥ १८ ॥ १९ ॥ अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ छ ॥ छ ॥

संजय कहता है, कि-विचारमें डूबेहुए भरतवंशमें श्रेष्ठ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे भीष्मजीने फिर इसप्रकार हर्ष उत्पन्न करनेवाली बात कही कि-॥ १ ॥ मैं, द्रोणाचार्य, शल्य, सात्वतवंशी कृत-

वर्मा च सात्वतः। अश्वत्थामा विकर्णश्च भगदत्तोऽथ सौबलः॥२॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वाल्हीकः सह वाल्हिकैः। त्रिगर्त्तराजो बलवान् मागधश्च सुदुर्जयः॥ ३॥ बृहद्बलश्च कौशल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः। रथाश्च बहुसाहस्राः शोभनाश्च महाध्वजाः॥ ४॥ देशजाश्च तथा राजन् स्वारूढा हयसादिभिः। गजेन्द्राश्च मदोद्वृत्ताः प्रभिन्नकरटा मुखाः॥ ५॥ पादाताश्च तथा शूरा नानाप्रहरणध्वजाः। नानादेशसमुत्पन्नास्त्वदर्थे योद्धुमुद्यताः॥ ६॥ एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः। देवानपि रणे जेतुं समर्था इति मे मतिः॥ ७॥ अवश्यं हि मया राजंस्तव वाच्यं हितं सदा। अशक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः॥ ८॥ वासुदेवसहायाश्च महेन्द्रसमविक्रमाः। सर्वथाहन्तु राजेन्द्र करिष्ये

वर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त और सुबलका पुत्र शकुनि, उज्जैनके विन्द और अनुविन्द, वाल्हीक देशके योधाओं सहित वाल्हीकपति, बलवान् त्रिगर्त्तदेशका राजा, किसीके जीतनेमें न आनेवाला मगधदेशका राजा॥ २॥ ३॥ कोसलदेशका राजा राजा बृहद्बल, चित्रसेन, विविंशति, तथा बड़ी ध्वजावाले शोभायमान हजारों रथ॥ ४॥ हमारे देशमें उत्पन्न हुए तथा सुशिक्षित सवार जिन पर चढ़ेहुए हैं ऐसे घोड़े, माथेमेंसे मद टपकाने वाले मदोत्कट हाथी॥ ५॥ अनेकों देशोंमें उत्पन्न हुए तथा नानाप्रकारके आयुध और ध्वजाओंको धारण करके तेरे लिये प्राणतक त्यागनेको खड़े हुए पैदल तथा इनके सिवाय और अनेकों योधा तेरे लिये जीवनतक त्यागनेको खड़े हुए हैं, मेरे विचारमें तो इनको देवता भी नहीं जीतसकते॥ ६॥ ७॥ हे राजन्! मुझे तेरा हित अवश्य ही चाहना चाहिये तो भी मैं कहता हूं कि—इन्द्रादि देवताओंके लिये भी पाण्डवोंको जीतना कठिन है, क्योंकि-वासुदेव उनके सहायक हैं और वह सब स्वयं भी वासुदेवकी समान पराक्रमी हैं तो भी हे राजन्! मैं सर्वथा

वचनन्तव ॥९॥ पाण्डवांश्च रणे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः । एवमुक्त्वा ददावस्मै विशल्यकरणीं शुभाम् ॥ १० ॥ ओषधीं वीर्यसम्पन्नां विशल्यश्चाभवत्तदा । ततः प्रभाते विमले स्वेन सैन्येन वीर्यवान् ॥ ११ ॥ अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः । मण्डलं मनुजश्रेष्ठो नानाशस्त्रसमाकुलम् ॥ १२ ॥ सम्पूर्णं योधमुख्यैश्च तथा दन्तिपदातिभिः । रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् परिवारितम् ॥ १३ ॥ अश्ववृन्दैर्महद्भिश्च ऋष्टितोमरधारिभिः । नागे नागे रथाः सप्त सप्त चाश्वा रथे रथे ॥ १४ ॥ अन्वश्वं दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः । एवं व्यूढं महाराज तव सैन्यं महारथैः ॥ १५ ॥ स्थितं रणाय महते भीष्मेण युधि पालितम् ।

तेरे कहनेके अनुसार ही काम करूँगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ या तो मैं पाण्डवोंको रणमें जीतलूँगा, नहीं तो पाण्डव ही मुझे जीतलेंगे ऐसे वचनोंसे भीष्मजीने उसके हृदयका काँटा निकाले ऐसी आश्वासनरूप वीरतावाली शुभ ओषधि दी ॥ १० ॥ इससे दुर्योधनको जरा एक शान्ति मिली, जब निर्मल प्रभात हुआ तब चतुर भीष्मजीने अपनी सेनाकी व्यूहरचना करना आरंभ करदी ॥११ ॥ मनुष्योंमें श्रेष्ठ और व्यूह रचनेमें चतुर भीष्मजी ने स्वयं अपनी सेनाको मण्डल व्यूहमें खड़ी करके उसको अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे सजाया ॥ १२ ॥ मुख्य २ योधा हाथी और पैदलोंसे उस व्यूहको भर दिया था और अनेकों सहस्र रथोंके द्वारा चारों ओरसे घेर दिया था ॥ १३ ॥ ऋष्टि और तोमरोंको धारण करनेवाले घुड़सवारोंके बड़े २ रिसालोंसे घेर दिया था, हरएक हाथीके पास सात २ रथ खड़े किये, हरएक रथके पास सात २ सवार छोड़े, हरएक सवारके पास दश २ धनुषधारी खड़े किये और हरएक धनुषधारीके पास दश २ ढाल तलवारों वाले खड़े किये, हे महाराज ! इसप्रकार मण्डल व्यूहमें महारथियों से गुंथाहुआ तुम्हारा सेनादल, भीष्मजीकी अधीनतामें युद्ध

दशाश्वानां सहस्राणि दन्तिनाञ्च तथैव च ॥ १६ ॥ रथानामयुतञ्चापि पुत्राश्च तव दंशिताः । चित्रसेनादयः शूरा अभ्यरक्षन् पितामहम् ॥ १७ ॥ रक्ष्यमाणः स तैः शूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते । सन्नद्धाः समदृश्यन्त राजानश्च महाबलाः ॥ १८ ॥ दुर्योधनस्तु समरे दंशितो रथमास्थितः । व्यराजत श्रिया जुष्टो यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ १९ ॥ ततः शब्दो महानासीत् पुत्राणां तव भारत । रथघोषश्च विपुलो वादित्राणाञ्च निःस्वनः ॥ २० ॥ भीष्मेण धार्त्तराष्ट्राणां व्यूढः प्रत्यङ्मुखो युधि । मण्डलः स महाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातनः ॥ २१ ॥ सर्वतः शुशुभे राजन् रणेऽरीणां दुरासदः । मंडलन्तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयम् ॥ २२ ॥ स्वयं

करनेके लिये रणभूमिमें खड़ा था और दश हजार घुड़सवार, दश हजार हाथी, दश हजार रथ तथा चित्रसेन आदि तुम्हारे कवचधारी पुत्र भीष्मपितामहकी रक्षा करनेको खड़े हुए थे ॥ १४-१७ ॥ और व्यूहको रचते समय ऐसा प्रतीत होता था कि—मानो ये महाबली राजे भीष्मजीकी रक्षा करनेको तयार खड़े हैं और भीष्मजी इनकी रक्षा कररहे हैं ॥ १८ ॥ इस समय राजा दुर्योधन कवच पहर कर अपने रथमें बैठा, तो रणमें ऐसा शोभायमान हुआ कि—जैसे अपनी लक्ष्मीसे सेवा किया हुआ इन्द्र स्वर्गमें शोभित होता है ॥१९॥ हे भारत! तदनन्तर तुम्हारे पुत्रोंका बड़ा कोलाहल हुआ, रथोंकी बड़ी घरघराहट तथा बाजोंका बड़ाभारी शब्द सुनाई आया ॥२०॥ भीष्मजीका रचाहुआ आपके पुत्रोंकी सेनाके मण्डल नामके महाव्यूहका मुख पश्चिमकी ओरको था, उसको तोड़ना शत्रुओं के लिये बड़ा कठिन था और वह शत्रुओंका नाश करसकता था ॥ २१ ॥ हे राजन्! जिसके भीतर पहुंचना शत्रुओंको बड़ा ही कठिन था ऐसा वह व्यूह रणमें चारों ओरसे बड़ी ही शोभा पारहा था, कौरवोंके इस परमदुर्जय मण्डलव्यूहको देखकर राजा युधिष्ठिरने स्वयं

युधिष्ठिरो राजा वज्रं व्यूहमथाकरोत् । तथा व्यूढेष्वनीकेषु यथा-स्थानमवस्थिताः ॥ २३ ॥ रथिनः सादिनः सर्वे सिंहनादमथा-नदन् । विभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकांक्षिणः ॥ २४ ॥ इतरेत रतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः । भारद्वाजो ययौ मत्स्यं द्रौणि-श्चापि शिखण्डिनम् ॥ २५ ॥ स्वयं दुर्य्योधनो राजा पार्षतं समु-पाद्रवत् । नकुलः सहदेवश्च मद्रराजानमीयतुः ॥ २६ ॥ विन्दानु-विन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ । सर्वे नृपास्तु समरे धनञ्जयमयो-धयन् ॥ २७ ॥ भीमसेनो रणे यांतं हार्दिक्यं समवारयत् । चित्र-सेनं विकर्णञ्च तथा दुर्मर्षणं विभुः ॥ २८ ॥ आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत् । प्राग्ज्योतिषो महेष्वासो हैडिंबं राक्षसो-त्तमम् ॥ २९ ॥ अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम् । अलम्बु-

भी अपनी सेनाको वज्रव्यूहमें रचदिया, दोनों ओरकी सेना व्यूहरचनामें गुँथकर अपने २ स्थान पर खड़ी होगई ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ तब सब घुड़सवार और रथी सिंहकी समान गर्जना करनेलगे, फिर परस्परके व्यूहको तोड़ना चाहनेवाले तथा बड़ा प्रहार करनेवाले आमने सामनेके शूर योधा अपनी २ सेनाओं को लेकर आगेको बढ़नेलगे, द्रोणाचार्य राजा द्रुपदके सामने आये, अश्वत्थामा शिखण्डीके सामने आया ॥ २४ ॥ २५ ॥ स्वयं राजा दुर्योधन धृष्टद्युम्नके सामनेको झपट आया, नकुल और सहदेव मद्रराजके सामने आपहुंचे ॥ २६ ॥ उज्जैनके विन्द और अनुविन्द इरावान्के सामने आये और बाकीके सब राजे अर्जुनके सामने आकर युद्ध करनेलगे ॥ २७ ॥ इस लड़ाईमें अपने सामनेको आतेहुए हृदीकके पुत्रको और चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षणको समर्थ भीमसेनने रोकरक्खा था ॥ २८ ॥ और इसी समय अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु तुम्हारे पुत्रोंके साथ युद्ध कररहा था तथा जैसे मतवाला हुआ एक हाथी दूसरे हाथीके सामनेको दौड़ता है तैसे ही बड़ा धनुषधारी प्राग्ज्योतिष देशका राजा राक्षसोत्तम हिडिम्बाके पुत्रके साथ लड़नेको गया था और

पस्तदा राजन् सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३० ॥ ससैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समुपाद्रवत् । भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत् ३१ श्रुतायुषं च राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । चेकितानश्च समरे कृपमेवान्वयोधयत् ॥ ३२ ॥ शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम् । ततो राजसमूहास्ते परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३३ ॥ शक्तितोमरनाराचगदापरिघपाणयः । अर्जुनोथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ॥३४॥ पश्य माधव सैन्यानि धार्त्तराष्ट्रस्य संयुगे । व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥ ३५ ॥ युद्धाभिकामान् शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् । त्रिगर्त्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशवो ॥ ३६ ॥ अद्यैतान् नाशयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन । य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥ ३७ ॥ एतदुक्त्वा तु कौन्तेयं

अलंबुष राक्षस क्रोधमें भरकर सेनासहित खड़े हुए युद्धदुर्मद सात्यकीके ऊपरको दौड़ा और भूरिश्रवा इस रणमें सावधान होकर धृष्टकेतुके साथ लड़नेलगा ॥ २९-३१ ॥ इस रणमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर शतायुके साथ और राजा चेकितान कृपाचार्यके साथ लड़ने लगा ॥ ३२ ॥ बाकीके सब राजे सावधान होकर महारथी भीष्मजीके साथ युद्ध करने लगे, तदनन्तर शक्ति, तोमर, नाराच, गदा, परिघ आदि हाथमें लेकर उन सब राजाओं ने इकट्ठे होकर अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया, उस समय बड़े क्रोधमें भरेहुए अर्जुनने श्रीकृष्णसे यह बात कही, कि-॥३३॥ ॥३४॥ हेमाधव ! व्यूहरचनामें प्रवीण गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मजी के द्वारा व्यूह बनाकर खड़ी कीहुई इस कौरवोंकी सेनाको तुम देखो ॥ ३५ ॥ हे माधव ! बड़ा ही दंश रखनेवाले और युद्ध चाहनेवाले इन शूरोंको देखो तथा हे केशव ! भाइयों सहित त्रिगर्त्तराजको भी देखो ॥ ३६ ॥ हे यदुवंशमें श्रेष्ठ जनार्दन ! यह जो मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छासे रणभूमिमें आकर खड़े हुए हैं आज मैं आपके सामने इनका नाश करूँगा ॥ ३७ ॥

धनुर्ज्यामवमृज्य च । ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान् प्रति॥३८॥
तेऽपि तं परमेष्वासाः शरवर्षैरपूरयन् । तडागं वारिधाराभिर्यथा
प्रावृषि तोयदाः ॥ ३९ ॥ हाहाकारो महानासीत्तत्र सैन्ये विशां-
पते । छाद्यमानौ रणे कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे ॥ ४० ॥ देवा
देवर्षयश्चैव गन्धर्वाश्च सहोरगैः । विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा
कृष्णौ तथा गतौ ॥४१॥ततः क्रुद्धोऽर्जुनो राजन्नैन्द्रमस्त्रमुदैरयत् ।
तत्राद्भुतमपश्याम विजयस्य पराक्रमम् ॥४२॥ शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां
शरौघैर्यद्व्यदारयत् । न च तत्रास्य निर्भिन्नः कश्चिदासीद्विशाम्पते
॥ ४३ ॥ तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा । द्वाभ्यां
त्रिभिः शरैश्चान्यान् पार्थो विव्याध मारिष ॥४४॥ ते हन्यमानाः
पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः । अगाधे मज्जमानानां भीष्मः पोतो-

कुन्तीनन्दनने ऐसा कहकर और धनुषकी प्रत्यञ्चाको जरा झाड
कर उन राजसमूहोंके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया
॥ ३८ ॥ जैसे वर्षाकालमें मेघ जलकी धाराओंसे तालावको भर
देते हैं तैसे ही वे शूरराजे भी बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको
ढकने लगे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जब बाणोंकी वर्षासे कृष्ण और
अर्जुन दोनों ढके हुए दीखने लगे उस समय तुम्हारी सेनामें बड़ा
कोलाहल हुआ ॥ ४० ॥ कृष्ण और अर्जुनको ऐसी दशामें
देखकर देवता, देवर्षि, गन्धर्व और नागोंको बड़ा विस्मय हुआ
॥ ४१ ॥ हे राजन् ! फिर कोपमें भरेहुए अर्जुनने इन्द्रास्त्र छोड़ा
और शत्रुओंके शस्त्रोंकी वर्षाको अपने बाणोंसे हटा दिया, इस
अर्जुनके पराक्रमसे सबको अचरजसा मालूम हुआ, अर्जुनके
सामने आकर खड़ेहुए हजारों राजे, घोड़े और हाथियोंमेंसे
एक भी घायल हुए विना नहीं बचा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे महा-
राज ! धनञ्जयने उन सहस्रों राजे, घोड़े और हाथियोंमेंसे किन्ही
को दो२ बाणोंसे और किन्हीको तीन२ बाणोंसे घायल किया
॥४४॥जब अर्जुन इसप्रकार संहार करने लगा तब वह सब भीष्म

ऽभवत्तदा ॥ ४५ ॥ आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम् ।
संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः ॥ ४६ ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमदिवस-
युद्धारम्भ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच । तथा प्रवृत्ते संग्रामे निवृत्ते च सुशर्मणि ।
भग्नेषु चापि वीरेषु पाण्डवेन महात्मना ॥ १ ॥ क्षुभ्यमाणे बले
तूर्णं सागरप्रतिमे तत्र । प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम् । त्वरमाणः समभ्येत्य
सर्वांस्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३ ॥ तेषां तु प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महा-
बलम् । मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥ ४ ॥ एष
भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् । सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठ-

जीकी शरणमें गये उस समय गहरे जलमें डूबते हुए इन राजाओं
के लिये भीष्मजी नौकारूप हुए ॥४५॥ इसप्रकार उन राजाओं
के मर २ कर गिरने पर तुम्हारा सेनादल टूटगया और हे महा-
राज ! तुम्हारी सेनामें ऐसी खलभली पड़ गई जैसे घोर वायु
चलने पर समुद्र खलभला जाता है ॥ ४६ ॥ इक्यासीवां अध्याय
समाप्त ॥ ८१ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि-जब इसप्रकार संग्राम चल रहा था और
सुशर्मा युद्धमेंसे हटगया तथा दूसरे वीरोंको भी महात्मा अर्जुन
ने भगादिया ॥ १ ॥ और समुद्रकी समान तुम्हारा बड़ाभारी
सेनादल एकसाथ खलभला उठा, भीष्मजी उस समय शीघ्रता
से अर्जुनके सामनेको गये ॥ २ ॥ इस रणमें धनञ्जयके बड़ेभारी
पराक्रमको देखकर उनके बीचमें अगुआ बनकर खड़े हुए महा-
बली और शूर सुशर्माके ऊपर रङ्ग चढ़ाता हे। इसप्रकार राजा
दुर्योधन शीघ्रतासे सब राजाओंके पास जाकर इसप्रकार कहने
लगा, कि-॥ ३ ॥ ४ ॥ कौरवोंमें श्रेष्ठ यह भीष्मजी अपने प्राणों
की भी परवाह न करके युद्ध करनेके लिये बड़े उत्साहके साथ

त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५ ॥ तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम् । संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् ॥ ६ ॥ बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः । नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम् ॥ ७ ॥ ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् । रणे भारतमायान्तमासमाद महाबलः ॥ ८ ॥ महाश्वेनाश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना । महता मेघनादेन रथेनातिविराजता ॥ ९ ॥ ॥ समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम् । अभवत्तुमुलो नादो भयाद् दृष्ट्वा किरीटिनम् ॥१०॥ अभीषुहस्तं कृष्णञ्च दृष्ट्वादित्यमिवापरम् । मध्यन्दिनगतं संख्ये न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ॥११॥ तथा शान्तनवं भीष्मं श्वेताश्वं श्वेतकार्मुकम् । न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं श्वेतग्रहमिवोदितम् ॥१२॥ स सर्वतः परिवृतस्त्रिगर्तैः

धनञ्जयके सामने जारहे हैं ॥ ५ ॥ इसलिये तुम सब सावधान होकर अपनी२ सेनाको लियेहुए रणमें जानेवाले भीष्मपितामह की रक्षा करनेको जाओ। और इनकी रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे महाराज ! इस पर यह राजाओंकी सब सेनायें बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहकर पितामहके पास पहुंच गई ॥७॥ हे भारत ! तब तो शन्तनुके पुत्र महाबली भीष्मजी अपने सामनेको आते हुए भरतवंशी अर्जुनके साथ भिड़ गये ॥ ८ ॥ सफेद घोड़ोंसे जुड़े तथा जिसकी ध्वजायें भयानक वानर हैं ऐसे मेघका समान गड़गड़ाहट करते हुए परम शोभायमान बड़ेभारी रथमें बैठकर रणभूमिमें आते हुए धनञ्जयको देखकर तुम्हारी सेनामें भयके मारे बड़ाभारी कोलाहल होउठा ॥ ९ ॥ १० ॥ और हाथमें घोड़ाकी रासें लेकर मानो दूसरा सूर्य उदय होगया हो ऐसे रथपर बैठेहुए श्रीकृष्णको मध्यान्हकालके सूर्यकी समान कोई भी देखनेका साहस ही नहीं करसका ॥ ११ ॥ इसीप्रकार सफेद घोड़ोंवाले तथा सफेद धनुषवाले भीष्मजीको भी उदय हुए श्वेतग्रह (शुक्र) की समान पाण्डव देख भी नसके ॥१२॥ उनके आस पास

सुमहारथैः । भ्रातृभिःसह पुत्रैश्च तथान्यैश्च महारथैः ॥ १३ ॥ भारद्वाजस्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा । ध्वजश्चास्य शरेणाजौ धनुश्चैकेन चिच्छिदे ॥१४॥ तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनी-पतिः । अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढम् ॥ १५ ॥ शरांश्चा-शीविषाकारान् ज्वलितान् पन्नगानिव । द्रोणं त्रिभिश्च विव्याध चतुर्भिश्चास्य वाजिनः ॥ १६ ॥ ध्वजमेकेन विव्याध सारथिश्चास्य पञ्चभिः । धनुरेकेषुणाविध्यत्तत्राक्रुध्यद् द्विजर्षभः ॥ १७ ॥ तस्य द्रोणोऽवधीदश्वान् शरैः सन्नतपर्वभिः । अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूत-मेकेन पत्रिणा ॥१८॥ स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः । आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनाम्वरः॥१६॥ ततस्तु तौ पितापुत्रौ

दुर्योधन बड़े बली भाई तथा पुत्रों सहित त्रिगर्त तथा दूसरे महा-रथी योधा घेरे हुए खड़े थे ॥१३॥ इस युद्धमें द्रोणाचार्यने बाण मारकर राजा विराटको घायल किया और एक बाण छोड़कर इसकी ध्वजाको तथा एक बाणसे इसके धनुषको काट डाला१४ उस कटेहुए धनुषको फेंककर सेनापति विराटने शीघ्रतासे जोर सहनेवाले दूसरे धनुषको लेलिया ॥ १५ ॥ और दमदमाते हुए विषधर सर्पोंकी समान बहुतसे बाण भी लिये उनमेंसे तीन बाणों से द्रोणाचार्यको घायल किया और चार बाणोंसे इनके घोड़ोंको बींधदिया ॥१६॥ एक बाणसे इनकी ध्वजाको काटा और पांच बाणोंसे इनके सारथीको मार डाला, फिर एक बाण छोड़कर इनके धनुषको भी काट डाला तब तो द्रोणाचार्य बड़े क्रोधमें भर गये ॥१७॥ और दृढ़ गांठवाले आठ बाण छोड़कर उसके घोड़ों को तथा हे भरतसत्तम ! एक बाणसे उसके सारथीको मार डाला ॥ १८ ॥ जिसके घोड़े और सारथी मर गये हैं ऐसा रथियोंमें श्रेष्ठ राजा विराट अपने रथमेंसे कूद पड़ा और अपने पुत्रके रथमें बैठगया ॥ १६ ॥ तदनन्तर वह दोनों पिता पुत्र बड़े वेगसे बाणों की वर्षा करके भारद्वाज द्रोणाचार्यको रोकनेका उद्योग करने

भारद्वाजं रथे स्थितौ । महता शरवर्षेण धारयामासतुर्बलात् ॥ २० ॥ भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम् । चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वरः ॥ २१ ॥ स तस्य हृदयं भित्वा पीत्वा शोणितमाहवे । जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रवरच्छदः ॥२२॥ स पपात रणे तूर्णं भारद्वाजशराहतः । धनुरुत्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः ॥ २३ ॥ हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद्भयात् । उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ २४ ॥ भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम् । दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥ शिखंडी तु महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे । आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैस्त्रिभिराशुगैः ॥ २६ ॥ स बभौ रथशार्दूलो ललाटे संस्थितैस्त्रिभिः । शिखरैः काञ्चनमयैर्मेरुस्त्रिभिरिवोच्छ्रितैः ॥ २७ ॥ अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो निमे-

---

लगे ॥२०॥ परन्तु हे राजन् ! अत्यन्त क्रोधमें भरेहुए भारद्वाज ने सांपकी समान एक विषैला बाण विराटकुमार शङ्खके ऊपर छोड़ा ॥ २१ ॥ वह बाण रणमें उसकी छातीको फोड़, रुधिर पीकर भूमिमें घुस गया, उसका उत्तम कवच लोहूमें भीगगया ॥ २२ ॥ और भारद्वाजके बाणसे घायल हुआ वह अपना धनुष बाण पिताके पास डालकर तुरन्त भूमि पर ढह पड़ा ॥ २३ ॥ अपने पुत्रको रणमें मारागया देखकर राजा विराट मुख फैलाये हुए कालकी समान द्रोणाचार्यको छोड़कर भागगया ॥ २४ ॥ तब तो भारद्वाज रणमें पाण्डवोंकी बड़ीभारी सेनामेंसे सैंकड़ों और सहस्रों योधाओंको मारकर छिन्न भिन्न करने लगे ॥२५॥ हे महाराज ! शिखण्डीने तो रणमें अश्वत्थामाके सामने आकर फौलादके तीन बाणोंसे उसकी भौंके मध्यभागको फोड़ दिया ॥ २६ ॥ रथियोंमें सिंहसमान द्रोणपुत्र कपालमें गड़ेहुए तीन बाणोंसे तीन शिखरवाले सोनेके सुमेरुकी समान शोभायमान हुआ ॥ २७ ॥ फिर अति कोपमें भरे हुए अश्वत्थामाने आधे

पार्षात् शिखण्डिनः । ध्वजं सूतमथो राजंस्तुरगानायुधानि च ॥ २८ ॥ शरैर्बहुभिराच्छिद्य पातयामास संयुगे । स हताश्वादवप्लुत्य रथाद्वै रथिनाम्वरः ॥ २९ ॥ खड्गमादाय सुशितं विमलं च शरावरम् । श्येनवद्व्यचरत् क्रुद्धः शिखण्डी शत्रुतापनः ॥ ३० ॥ सखड्गस्य महाराज चरतस्तस्य संयुगे । नान्तरं ददृशे द्रौणिस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३१ ॥ ततः शरसहस्राणि बहूनि भरतर्षभ । प्रेषयामास समरे द्रौणिः परमकोपनः ॥ ३२ ॥ तामापतन्तीं समरे शरवृष्टिं सुदारुणाम् । असिना तीक्ष्णधारेण चिच्छेद बलिनाम्वरः ॥ ३३ ॥ ततोऽस्य विमलं द्रौणिः शतचन्द्रं मनोरमम् । चर्माच्छिनदसिञ्चास्य खण्डयामास संयुगे ॥ ३४ ॥ शितैस्तु बहुशो राजन् तञ्च विव्याध पत्रिभिः । शिखण्डी तु ततः खड्गं

निमेषमें ही अनेकों बाण छोड़कर शिखंडीकी ध्वजा, सारथी, शस्त्र और घोड़ोंको घायल करके रणभूमिमें गिरा दिया, रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डी घोड़ोंके मारे जाने पर रथमेंसे कूद पड़ा॥२८॥ ॥ २९ ॥ और क्रोधमें भरा हुआ वह शत्रुओंको ताप देनेवाला शिखण्डी हाथमें तीखी धारवाली तलवार ढाल लेकर बाज पक्षी की समान घूमने लगा॥३०॥ हे महाराज ! हाथमें तलवार लेकर रणमें घूमते हुए शिखण्डीको मारनेका अश्वत्थामाको अवसर ही नहीं मिला यह बड़ा अचरजसा मालूम होता था ॥३१॥ हे भरतसत्तम! तदनन्तर उस रणमें परम कोपमें भरे अश्वत्थामाने अनेकों सहस्र बाण छोड़े ॥३२॥ उस आकर पड़ती हुई घोर बाणवर्षाको बलवानोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीने तीखी धारवाली तलवारसे काट डाला ॥ ३३ ॥ तदनन्तर रणमें इसकी चमकती हुई सौ फल्लियोंवाली सुन्दर ढालको तथा तलवारको भी काटडाला ॥३४॥ हे राजन् ! फिर बहुतसे तेज बाण छोड़कर उसके शरीरको भी घायल कर दिया, परन्तु अश्वत्थामाके बाणसे कटी हुई तथा प्रलयकालकी अग्निकी समान कान्तिवाली लपटोंको उगलते हुए सांपकी

खण्डितं तेन सायकैः ॥ ३५ ॥ आविध्य व्यसृजत् तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम् । तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम् ॥ ३६ ॥ चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम् । शिखण्डिनञ्च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः ॥ ३७ ॥ शिखण्डी तु भृशं राजंस्ताड्यमानः शितैः शरैः । आरुरोह रथं तूर्णं माधवस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥ सात्यकिश्चापि संक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे । अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः ॥ ३९ ॥ राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद भारत। अर्धचन्द्रेण समरे तञ्च विव्याध सायकैः ॥ ४० ॥ मायाञ्च राक्षसीं कृत्वा शरवर्षैरवाकिरत् । तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयस्य पराक्रमम् ॥ ४१ ॥ असंभ्रमस्तु समरे वध्यमानाः शितैः शरैः । ऐन्द्रमस्त्रञ्च वार्ष्णेयो योजयामास भारत ॥ ४२ ॥ विजयाद्यदनुप्राप्तं माधवेन यशस्विना । तदस्त्रम्भस्मसात्

समान वह तलवार शिखण्डीने तुरन्त उसके सामनेको फेंकी परन्तु अपने हाथकी फुरती दिखलाते हुए अश्वत्थामाने प्रलय कालके अग्निकी समान उस खड्गको तत्काल काट डाला और लोहेके बहुतसे बाण छोड़कर शिखण्डीको भी घायल कर दिया ॥ ३५-३७ ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामाके तीखे बाणोंसे घायल-हुआ शिखण्डी शीघ्रतासे महात्मा सात्यकीके रथ पर चढ़ बैठा ॥ ३८ ॥ दूसरी ओर अत्यन्त कोपमें भरेहुए महाबली सात्यकी ने उस रणमें अलंबुष नामके राक्षसको तीखे बाणोंसे घायल कर डाला ॥ ३९ ॥ हे भारत ! तब राक्षसेन्द्र अलंबुषने आधे चन्द्रमा की समान बाणसे सात्यकीके धनुषको काट डाला और बाणोंसे उसको भी घायल करदिया ॥ ४० ॥ तथा राक्षसी माया करके उसको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया, परन्तु उस समय हमने सात्यकी का बड़ा अद्भुत पराक्रम देखा ॥ ४१ ॥ क्योंकि-ऐसे तीखे बाणोंसे घायल होने पर भी वह डिगा नहीं, हे भारत ! वृष्णि-वंशी कीर्त्तिमान् सात्यकीने इस समय विजय (अर्जुन) से मिला

कृत्वा मायान्तां राक्षसीं तदा ॥ ४३ ॥ अलम्बुषं शरैरन्यैरभ्या-
किरत सर्वतः । पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४४ ॥
तत्तथा पीडितं तेन माधवेन यशस्विना । प्रादुद्राव भयाद्रक्षस्त्य-
क्त्वा सात्यकिमाहवे ॥ ४५ ॥ तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता
अपि । शैनेयः प्राणदज्जित्वा योधानां तव पश्यताम् ॥ ४६ ॥
न्यहनत्तावकांश्चापि सात्यकिः सत्यविक्रमः । निशितैर्बहुभिर्बाणै-
स्तेऽद्रवन्त भयार्दिताः ॥ ४७ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदस्या-
त्मजो बली । धृष्टद्युम्नो महाराज पुत्रं तव जनेश्वरम् ॥ ४८ ॥
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः । स छाद्यमानो विशिखै-
र्धृष्टद्युम्नेन भारत ॥ ४९ ॥ विव्यथे न च राजेन्द्र तव पुत्रो
जनेश्वर । धृष्टद्युम्नश्च समरे तूर्णं विव्याध पत्रिभिः ॥ ५० ॥

हुआ ऐंद्र अस्त्र चढ़ाया और उस अस्त्रसे उस समय सकल राक्षसी
मायाको भस्म करडाला ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और जैसे वर्षाकालमें
मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको छादेता है तैसे ही चारों ओरसे
बाण बरसाकर अलंबुषको ढकदिया॥४४॥ इसप्रकार कीर्तिमा
सात्यकीसे पीड़ा पायाहुआ वह राक्षस भयके मारे रणमें सात्यक
को छोड़कर भागगया ॥४५॥ जिसको रणमें इन्द्र भी नहीं जी
सकता था ऐसे उस राक्षसेंद्रको जीतकर सात्यकी तुम्हारे योधाओ
के देखते हुए बड़े जोरसे गरजा ॥ ४६ ॥ और सत्यपराक्रम
सात्यकीने तीखे बाणोंसे तुम्हारे दूसरे योधाओंके ऊपर भी प्रहा
किया और वह भयसे घबड़ाकर भागने लगे ॥ ४७
हे महाराज ! इस समय ही राजा द्रुपदके बलवान् पुत्र धृष्टद्युम
ने दुर्योधनके ऊपर दृढ़ गांठोंवाले तीखे बाणोंकी वर्षा करके उ
को घेरलिया, परन्तु हे राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्नके बाणोंसे ढकेहु
तुम्हारे पुत्रने जरा भी खिन्न न होकर साठ और तीस बा
छोड़कर उसके ऊपर प्रहार किया, इसका सबको बड़ा अच
मालूम हुआ पाण्डवोंकी सेनाके नायक धृष्टद्युम्नने क्रोधमे

पष्ट्या च त्रिशता चैव तदद्भुतमिवाभवत् । तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ५१ ॥ हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महाबलः । शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः ॥ ५२ ॥ स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद्बली । पदातिरसिमुद्यम्य प्राद्रवत् पार्षतं प्रति ॥ ५३ ॥ शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः । राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत् स्वकम् ॥ ५४ ॥ ततो नृपं पराजित्य पार्षतः परवीरहा । न्यहनत्तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ५५ ॥ कृतवर्मा रणे भीमं शरैरार्च्छन् महारथः । प्रच्छादयामास च तं महामेघो रविं यथा ॥ ५६ ॥ ततः प्रहस्य समरे भीमसेनः परन्तपः । प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् कृतवर्मणे ॥ ५७ ॥ तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः सत्यकोविदः । नाकम्पत महाराज भीमं चार्च्छच्छितैः शरैः॥५८॥तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा भीम-

---

कर उसकी धनुष काटडाला ॥ ४८ ॥ ५१ ॥ चारों घोड़ोंको तत्काल मार डाला तथा बड़े तेज सात बाण छोड़कर उस महाबली सेनापतिने उसके शरीरको भी बींधडाला ॥५२॥ तुम्हारा पुत्र, जिसमेंके घोड़े मारेगये हैं ऐसे रथमेंसे कूदपड़ा और तलवार उठाकर पैदल ही पृषत्कुमार धृष्टद्युम्नके सामनेको झपटा ५३ परन्तु इतनेमें ही राजलोभी महाबली शकुनिने पास आकर सब लोगोंके देखते हुए तुम्हारे पुत्रको अपने रथमें बैठाल दिया ५४ इस प्रकार शत्रुके वीरोंका नाश करनेवाला पृषत्पुत्र उस राजा को जीतकर जैसे इन्द्र असुरोंका नाश करता है तैसे ही तुम्हारी सेनाका संहार करने पर फैल पड़ा ॥ ५५ ॥ इस संग्राममें महाबली कृतवर्माने जैसे मेघ सूर्यको ढक देता है तैसे ही बाणोंसे भीमसेनको ढकदिया ॥ ५६ ॥ परन्तु पहिले जराएक हँसकर और फिर क्रोधमें भरकर परन्तप भीमने कृतवर्माके ऊपर बाणोंकी बड़ी मार दी ॥५७॥ तो भी अतिरथी होनेके कारण वह सात्वतवंशी सत्यवादी राजा कृतवर्मा जरा भी चलायमान नहीं हुआ और भीमसेनके सामने बाणोंकी मारामार करनेलगा ॥ ५८ ॥

सेनो महारथः । सारथिं पातयामास सध्वजं सुपरिष्कृतम् ॥५९॥
शरैर्बहुविधैश्चैनमाचिनोत् परवीरहा । शकलीकृतसर्वाङ्गो हताश्वः
प्रत्यदृश्यत ॥ ६० ॥ हताश्वश्च ततस्तूर्णं वृषकस्य रथं ययौ ।
स्यालस्य ते महाराज तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ६१ ॥ भीमसेनोऽपि
संक्रुद्धस्तव सैन्यमुपाद्रवत् । निजघान च संक्रुद्धो दण्डपाणिरि
वान्तकः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वैरथे
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । बहूनि हि विचित्राणि द्वैरथानि स्म सञ्जय
पाण्डूनां मामकैः सार्धमश्रौषं तव जल्पतः ॥ १ ॥ न चैव मामकं
किंचित् हृष्टं शंससि सञ्जय । नित्यं पाण्डुसुतान् हृष्टानभग्नान्सं
प्रशंससि ॥ २ ॥ जीयमानान् विमनसो मामकान् विगतौजसः

महारथी, शत्रुहन्ता, वीर भीमसेनने उसके घोड़े, ध्वजा औ
सारथी को घायल करडाला और उसको भी अनेकों वाण छो
कर ढकदिया, इसप्रकार प्रहार होनेसे कृतवर्माके अङ्ग छिन्नभिन्
होगये और वह तुम्हारे पुत्रोंके देखते हुए तुरन्त तुम्हारे सा
वृषकके रथपर चढ़ बैठा, इससे वचगया ॥ ५९—६१ ॥ औ
अत्यन्त कोपमें भराहुआ भीमसेन भी हाथमें दण्ड लेकर संह
करते हुए यमराजकी समान तुम्हारी सेनाका संहार करनेलगा॥
बयासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८२ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्र कहता है, कि–हे सञ्जय ! तूने पाण्डव और मेरे पुत्र
जो रथियोंके द्वन्द्व युद्ध हुए थे उनकी वात कही वह मैंने सुनी॥
परन्तु हे सञ्जय ! मेरे पक्षवालोंको हर्ष हुआ हो, यह बात तो
किसी समय कहता ही नहीं है, उलटा–पाण्डवोंकी विजय हु
उनको हर्ष हुआ सदा ऐसा ही कहता है॥२॥ हे सूत! तू जो
समय मेरे पुत्रोंका पराजय होती है,उनको घवड़ाहट होती है त

वक्ष्से संयुगे सूत दिष्टमेतन्न संशयः ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । यथाशक्ति यथोत्साहं युद्धे चेष्टन्ति तावकाः । दर्शयानाः परं शक्त्या पौरुषं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥ गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादुभूत्वा यथोदकम् । महोदधेर्गुणाभ्यासाल्लवणत्वं निगच्छति ॥ ५ ॥ तथा तत् पौरुषं राजंस्तावकानां परंतप । प्राप्य पाण्डुसुतान् वीरान् व्यर्थं भवति संयुगे ॥ ६ ॥ घटमानान् यथाशक्ति कुर्वाणान् कर्म दुष्करम् । न दोषेण कुरुश्रेष्ठ कौरवान् गन्तुमर्हसि ॥ ७ ॥ तवाप-राधात् सुमहान् सपुत्रस्य विशाम्पते । पृथिव्याः प्रक्षयो घोरो यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ८ ॥ आत्मदोषात् समुत्पन्नं शोचितुं नार्हसे नृप । न हि रक्षन्ति राजानः सर्वथात्रापि जीवितम् ॥ ९ ॥ युद्धे सुकृतिनां लोकानिच्छन्तो वसुधाधिपाः । चमूं विगाह्य युध्यन्ते

उनका चित्त टूटजाता है ऐसा कहता है, यह सब निःसन्देह भावी है ॥ ३ ॥ सञ्जय कहता है, कि–तुम्हारे पक्ष वाले शक्ति और उत्साहके अनुसार लड़ते हैं, और हे पुरुषश्रेष्ठ ! अपनी शक्तिके अनुसार रणमें अपना पौरुष भी दिखाते हैं ॥४॥ परन्तु जैसे सुरनदी गङ्गा का जल स्वादु और मीठा होने पर भी समुद्रका संगम होने पर खारा होजाता है ॥५॥ तैसे ही तुम्हारे पक्षवालोंका पुरुषार्थ रणमें पाण्डवोंके पुरुषार्थके साथ मिलते ही व्यर्थ होजाता है ॥ ६ ॥ इसलिये हे कुरुश्रेष्ठ ! अपने बलके अनुसार उद्योग करके पराक्रम दिखाते हुए तुम्हारे पक्षवाले कौरवोंको इसमें जरा भी दोष नहीं दिया जासकता ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रोंके अपराधके कारण ही यमराजके राज्यकी बसतीमें बढ़ौतरी करनेवाला यह पृथिवीका घोर नाश निकट आगया है ॥ ८ ॥ और हे राजन् ! तुम्हारे दोषसे ही यह परिणाम हुआ है, अब इसमें शोक ही क्या करना ? राजे सर्वथा अपने प्राणोंकी रक्षा कर ही नहीं सकते ॥ ९ ॥ इस पृथिवीके राजे सत्कर्मवालोंका मिलनेवाले लोकको पानेकी कामनासे सदा शत्रुकी सेनाके साथ

नित्यं स्वर्गपरायणाः ॥ १० ॥ पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्त्तत जनक्षयः । तन्त्वमेकमना भूत्वा शृणु देवासुरोपमम् ॥ ११ ॥ आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ । इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ ॥ १२ ॥ तेषां प्रववृते युद्धं सुमहल्लोमहर्षणम् । इरावांस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरौ देवरूपिणौ ॥ १३ ॥ विव्याध निशितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः । तावेनं प्रत्यविध्येतां समरे चित्रयोधिनौ ॥१४॥ युध्यतां हि तथा राजन् विशेषो न व्यदृश्यत । यततां शत्रुनाशाय कृतप्रतिकृतैषिणाम् ॥ १५ ॥ इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः । चतुर्भिश्चतुरो वाहाननयद्यमसादन ॥ १६ ॥ भल्लाभ्यां च सुतीक्ष्णाभ्यां धनुः केतुश्च मारिष ।

जो युद्ध करते हैं सो स्वर्गको पानेकी अभिलाषासे करते हैं ॥१०॥ हे महाराज ! दो पहर होनेसे पहिले हीं वह मनुष्योंका क्षय हो लगा था, इसलिये तुम देवता और असुरोंकी समान इस युद्धक विस्तार एकचित्त होकर सुनो ॥ ११ ॥ महाबली तथा युद्ध करने से घमण्डमें भरे हुए उज्जैनके दोनों कुमार हाथमें बड़ाभारि धनुष ले इरावान्को आते देखकर उसके सामनेको चले ॥ १२ ॥ और पास आते ही उन दोनोंमें रोमाञ्च खड़े करने वाल युद्ध होने लगा, अतिकोपमें भरे हुए इरावान्ने देवताओंक समान रूपवाले उन दोनों कुमारोंको दृढ़ गांठवाले तीखे बाणों शीघ्रताके साथ घायल करना आरम्भ करदिया, उस सम विचित्र युद्ध करने वाले उन दोनों कुमारोंने भी सामने से बा छोड़कर उसके ऊपर प्रहार करना आरम्भ कर दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ शत्रुका नाश करनेके लिये एक दूसरे से बदला ले वाले इन योधाओंमें कोई घटा या बढ़ा मालूम नहीं होता थ ॥ १५ ॥ कोपमें भरे हुए इरावान्ने चार बाण छोड़कर अनुविन के चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ १६ ॥ तथा भल्ल नामके तीं बाण छोड़कर उसके धनुष और केतुको भी काट डाला, य

निच्छेद समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१७॥ स्वकरथात्तु विन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः। धनुर्गृहीत्वा परमं भारसाधनमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तावेकस्थौ रणे वीरावावन्त्यौ रथिनाम्वरौ। शरान् मुमुचतुस्तूर्णमिरावति महात्मनि ॥ १९ ॥ ताभ्यां युक्ता महावेगाः शराः काञ्चनभूषणाः दिवाकररथं प्राप्यच्छादयामासुरम्बरम् ॥ २० ॥ इरावांस्तु रणे क्रुद्धो भ्रातरौ तौ महारथौ। ववर्ष शर-वर्षेण सारथिं चाप्यपातयत् ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तु पतिते भूमौ गत-सत्वे तु सारथौ। रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः ॥२२॥ तौ स जित्वा महाराज नागराजसुतासुतः। पौरुषं ख्यापयंस्तूर्णं व्यधमत्तव वाहिनीम्॥२३॥सा वध्यमाना समरे धार्त्तराष्ट्री महाचमूः

देखकर सबोंको बड़ा अचरज हुआ था ॥ १७ ॥ अनुविन्द अपने रथको छोडकर अपने भाई विन्दके रथमें बैठगया और बड़े भारी जोरको सहसके ऐसा बडाभारी धनुष हाथमें लिया ॥ १८ ॥ रणमें एक रथ पर बैठे हुए उन दोनों उज्जैनके महा-रथी राजकुमारोंने महात्मा इरावान्के ऊपर बाण छोडना आरंभ कर दिया, सोनेसे शोभित किये हुए तथा बड़े वेगवाले उनके बाण सूर्यके मार्गमें आकर आकाशको ढके देते थे ॥१९॥२०॥ ऐसे ही युद्ध करते हुए कोपमें भरे हुए इरावान्ने दोनों भाइयों को बाण बरसाकर ढकदिया तथा उनके सारथीको मार डाला ॥ २१ ॥ जब प्राण छोडकर सारथी भूमि पर गिरा उस समय रथमें जुड़े हुए घोड़े भयभीत होकर रथको लेकर जैसे भी होसका भाग निकले ॥ २२ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार उन दोनों भाइयोंका पराजय करके नागराजकी पुत्रीका पुत्र इरावान् अनन्त पराक्रम दिखाता हुआ तुम्हारी सेनाको बड़ाभारी कष्ट देरहा था ॥२३ ॥ और मार पड़नेसे डरी हुई तुम्हारी बड़ीभारी सेन. विष पीलेनेवाले मनुष्यकी समान जिधर तिधरको भागरही

वेगान् बहुविधांश्चक्रे विषं पीत्वेव मानवः ॥ २४ ॥ हैडिम्बो रा
क्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत् । रथेनादित्यवर्णेन सध्वजेन महाब
॥ २५ ॥ ततः प्राग्ज्योतिषो राजा नागराजं समास्थितः । य
वज्रधरः पूर्वं संग्रामे तारकामये ॥ २६ ॥ तत्र देवाः सगन्ध
ऋषयश्च समागताः । विशेषं न स्म विविदुर्हैडिम्बभगदत्तयोः २
यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान् । तथैव समरे रा०
द्रावयामास पाण्डवान् ॥ २८ ॥ तेन विद्राव्यमाणास्ते पाण्डवं
सर्वतो दिशम् । त्रातारं नाभ्यगच्छन्त स्वेष्वनीकेषु भारत ॥२९
भैमसेनिं रथस्थन्तु तत्रापश्याम भारत । शेषा विमनसो भूत
प्राद्रवन्त महारथाः ॥ ३० ॥ निवृत्तेषु तु पाण्डूनां पुनः सैन्ये
भारत । आसीन्निष्ठानको घोरस्तव सैन्यस्य संयुगे ॥ ३१

थी ॥ २४ ॥ महाबली राक्षसराज हिडिम्ब अपने सूर्यकी समा
दमकती हुई ध्वजावाले रथमें बैठकर भगदत्तके साथ लड़र
था ॥ २५ ॥ जैसे तारकासुरके पराजयके समय इन्द्र अप०
वाहन हाथीपर बैठकर तारकासुरके ऊपर चढ़कर गया था तै
ही प्राग्ज्योतिषका राजा हाथी पर बैठकर उसके ऊपर च.
आया ॥२६ ॥ इस समय देवता, गन्धर्व, ऋषि आदिको हैडिम्ब
और भगदत्तमें कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं दीखती थी
॥ २७ ॥ जैसे सुरपति इन्द्रने दानवोंको भयभीत करदिया
था तैसे ही इस राजाने पाण्डवोंके हृदयमें त्रास बैठाल
दिया ॥ २८ ॥ उसकी मारसे सब दिशाओंमेंको भागतेहुए
पांडवोंके योधाओंको अपनी सेनामें कोई भी रक्षा करनेवाला
नहीं मिला था ॥ २९ ॥ और जिस समय पांडवोंके शेष रहेहुए
योधा निराश होकर भागरहे थे उस समय केवल भीमसेनका
पुत्र ही अकेला रथमें बैठाहुआ दीखता था ॥ ३० ॥ पाण्डवोंकी
सेनायें इसप्रकार रणमेंसे भागरहीं थीं, उस समय तुम्हारी

घटोत्कचस्ततो राजन् भगदत्तं महारणे। शरैः प्रच्छादयामास मेरुं गिरिमिवाम्बुदः ॥३२॥ निहत्य तान् शरान् राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान्। भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ३३ ॥ स ताड्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः। न विव्यथे राक्षसेन्द्रो विद्यमान इवाचलः ॥ ३४ ॥ तस्य प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरांश्च चतुर्दश। प्रेषयामास समरे तांश्चिच्छेद स राक्षसः ॥ ३५ ॥ स तांश्छित्वा महाबाहुस्तोमरान्निशितैः शरैः। भगदत्तञ्च विव्याध सप्तत्या कंकपत्रिभिः ॥ ३६ ॥ ततः प्राग्ज्योतिषो राजा प्रहसन्निव भारत। तस्याश्वांश्चतुरः संख्ये प्रेषयामास सायकैः ॥३७॥ स हताश्वे रथे तिष्ठन् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्। शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥ ३८ ॥ तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां

सेनामें बड़ा कोलाहल मच रहा था ॥३१॥ परन्तु जैसे मेघ जलकी धाराओंसे मेरुको छा देता है तैसे ही घटोत्कच ने रणमें एकसाथ बाण बरसा कर भगदत्तको ढक दिया ॥ ३२ ॥ परन्तु घटोत्कचके धनुषमेंसे छूटे हुए सब बाणोंको हटाकर भगदत्तने भीमसेनके पुत्र को सब मर्मस्थानोंमें घायल करदिया ॥ ३३ ॥ परन्तु उस प्रहारके समय, जैसे पहाड़ नहीं डगमगाता है तैसे ही मजबूत गांठों वाले अनेकों बाणोंसे घायल होजाने परभी राक्षसराज जरा भी खिन्न नहीं हुआ था ॥३४॥ इससे कोपमें भरकर प्राग्ज्योतिषपतिने उसके ऊपर चौदह तोमरोंका प्रहार किया, घटोत्कचने उनको काट डाला ॥ ३५ ॥ और महाबाहु राक्षसेंद्र ने तीखे बाणसे तोमरोंको काटकर भगदत्तके सत्तर बाण मारे ॥ ३६॥ हे भारत ! इस समय प्राग्ज्योतिषदेशका राजा जराएक मुसकराया और फिर बाण छोड़कर उसके घोड़ोंको मारडाला ॥ ३७ ॥ परन्तु मरे हुए घोड़ोंवाले रथमें बैठे बैठे ही उस प्रतापी राक्षसेन्द्रने भगदत्तके हाथीके ऊपर एक शक्ति बडे ज़ोरसे फेंकी ॥ ३८ ॥ परन्तु सोनेके दण्डे वाली तथा अपनी ओरको उड़

खुवेनिनीम् । त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीम् ३
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिम्बः प्राद्रवद्भयात् । यथेन्द्रस्य रणा
पूर्वं नमुचिर्दैत्यसत्तमः ॥ ४० ॥ तं विजित्य रणे शूरं विक्रां
ख्यातपौरुषम् । अजेयं समरे वीरं यमेन वरुणेन च ॥ ४१ ।
पाण्डवीं समरे सेनां सम्ममर्द स कुञ्जरः । यथा वनगजो राज
मृद्नंश्चरति पद्मिनीम् ॥ ४२ ॥ मद्रेश्वरस्तु समरे यमाभ्यां समस
ज्जत । स्वस्रीयौ च्छादयाञ्चक्रे शरौघैः पाण्डुनन्दनौ ॥ ४३ ।
सहदेवस्तु समरे मातुलं दृश्य सङ्गतम् । अवारयच्छरौघेण मे
यद्दृषिवाकरम् ॥ ४४ ॥ छाद्यमानः शरौघेण हृष्टरूपवरोऽभवत्
तयोश्चाप्यभवत् प्रीतिरतुला मातृकारणात् ॥ ४५ ॥ ततः प्रहस

वेगसे आती हुई उस शक्तिके, राजा भगदत्तने बाण छोड़क
तीन टुकड़े कर दिये तब वह शक्ति पृथिवी पर गिर पड़ी ॥३९॥
अपनी शक्तिको इस प्रकार व्यर्थ गयी देखकर, जैसे पहिले इन्
के साथके युद्धमें नमुचि नामक महादैत्य भागगया था तैसे
यह घटोत्कच भी रणमेंसे भागगया ॥ ४० ॥ रणमें प्रसिद्ध
पुरुषार्थवाले तथा यम और वरुणसे भी न जीते जानेवाले उ
शूर राक्षसको जीतकर राजा भगदत्त अपने हाथीपर बैठक
पांडवोंकी सेनाका संहार करनेलगा और जैसे वनका हा
पद्मिनीको कुचल डालता है वैसे ही उस सेनाका कुचला क न
लगा ॥ ४१--४२ ॥ मद्रराज अपनी बहिनके युगुलपुत्र (नकुल
सहदेव) के साथ युद्ध कर रहा था, उसने बाण बरसा कर इ
दोनों कुमारोंको ढकदिया था ॥ ४३ ॥ सहदेव अपने मामाके
सामने आया देखकर जैसे मेघ सूर्यको ढकदेता है तैसे ही उसको
बाण बरसाकर ढकदिया ॥ ४४ ॥ अपने भानजेके बाणोंके
समूहसे ढकाहुआ मद्रराज बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी बहिन
के पुत्रोंका ऐसा पराक्रम देखकर उनके ऊपर बड़ा ही प्रसन्न
हुआ तथा नकुल सहदेव भी अपनी माताके संबन्धके कारण
ऐसे ही आनन्दित हुए ॥ ४५ ॥ फिर जराएक मुसकुरा कर उस

समरे नकुलस्य महारथः । अश्वांश्च चतुरो राजंश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ४६ ॥ प्रेषयामास समरे यमस्य सदनं प्रति । हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ॥ ४७ ॥ आरुरोह ततो यानं भ्रातुरेव यशस्विनः । एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुके ॥४८॥ मद्रराजरथं तूर्णं छादयामासतुः क्षणात् । स छाद्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४९ ॥ स्वस्रीयाभ्यां नरव्याघ्रो नाकम्पत यथाचलः । प्रहसन्निव ताश्चापि शरवृष्टिं जघान ह ॥ ५० ॥ सहदेवस्ततः क्रुद्धः शरमुद्गृह्य वीर्यवान् । मद्रराजमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास भारत ॥ ५१ ॥ स शरः प्रेषितस्तेन गरुडानिलवेगवान् मद्रराजं विनिर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ५२ ॥ स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः । निषसाद महाराज कश्मलञ्च जगाम ह ॥ ५३ ॥ तं विसंज्ञं निपतितं सूतः सम्प्रेक्ष्य संयुगे । अपोवाह

महारथीने उत्तम चार बाण छोड़े और नकुलके चारों घोड़ोंको यमपुरीमें पहुंचा दिया, रथके घोड़े मरे, कि-वह महारथी तुरन्त अपने रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और अपने यशस्वी भाईके रथमें बैठ गया, फिर एक ही रथमें बैठेहुए दोनों भाइयोंने दृढ़ धनुषको खेंचकर मद्रराजके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ करदिया और मद्रराज उनके दृढ़ गांठोंवाले बाणोंसे ढकजाने पर भी जरा नहीं घबड़ाया पहाड़की समान अचल रहा तथा उसने हँसते २ उनकी बाणोंकी वर्षाका निवारण कर दिया ॥ ४६—५०॥ हे महाराज ! इससे कोपमें भरे हुए पराक्रमी सहदेवने एक बाण जोरसे तान कर मद्रराजकी ओरको ताककर छोड़ा ॥ ५१ ॥ गरुड़ और पवन की समान वेगवाला वह बाण मद्रराजके शरीरको फोड़कर भूमि पर आ पड़ा ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! बाणसे अत्यन्त घायल हुआ महारथी मद्रराज अपने रथके उपस्थभागमें बैठगया और फिर व्यथाके मारे मूर्छित होगया ॥ ५३ ॥ सहदेव और नकुलके घायल करदेने पर मद्रराज अचेत होकर रथमें गिरपड़ा यह देख

रथेनाशौ यमाभ्यामभिपीडितम्॥ ५४॥ दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्रा पराङ्मुखम् । सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥ ५५ ॥ निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ । दध्मतुर्मुदितौ शंख सिंहनादश्च नेदतुः ॥ ५६ ॥ अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशा म्पते । यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवामरौ ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे शल्यपराजये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच । ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास वाजिनः ॥ १ ॥ अभ्यधावत्तत राजा श्रुतायुषमरिन्दमम् । विनिघ्नन् सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नत पर्वभिः ॥ २ ॥ स सम्वार्य्य रणे राजा प्रेषितान् धर्मसूनुना

कर सारथि रथको रणभूमिमेंसे निकाल कर लेगया ॥ ५४ । और तुम्हारी सेनाके सब योधा मद्रराजके रथको पीछेको लौट देख कर उत्साहहीन होगये और यह मद्रराज मारेगये ऐसा विचार लगे ॥ ५५ ॥ माद्रीनन्दन महारथी नकुल सहदेव रणमें माम को जीतकर बड़े प्रसन्न हुए और हर्षसे सिंहकी समान गरज हुए शङ्खोंको बजाने लगे ॥ ५६ ॥ और हे महाराज ! जैसे इन्‍ और उपेन्द्र देवता दैत्यसेनामें घुसते थे तैसे ही बड़े प्रसन्न हो हुए वह दोनों भाई तुम्हारी सेनामें घुस पड़े ॥ ५७ ॥ तिरसीवँ अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-जब सूर्य बीच आकाशमें आगया उ समय राजा युधिष्ठिरने श्रुतायुको देखकर अपना घोड़ा उधरके ही बढ़ाया ॥ १ ॥ और शत्रुतापी अरिन्दमके ऊपरको धावा करदिया तथा युधिष्ठिरने दृढ़ गाँठवाले नौ तीखे बाणोंसे उसको घायल कर दिया ॥ २ ॥ तब उस महाधनुषधारी राजाने रणमें धर्मपुत्रके छोड़े हुए उन बाणोंको हटादिया तथा सात बाण युधि-

शरान् सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समर्पयत् ॥ ३ ॥ ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे । असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः ॥ ४ ॥ पाण्डवस्तु भृशं क्रुद्धो विद्धस्तेन महात्मना । रणे वराहकर्णेन राजानं हृदि विव्यधे ॥ ५ ॥ अथापरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः । रथश्रेष्ठो रथात्तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत् ॥ ६ ॥ केतुं निपतितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः । पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णै राजन् विव्याध सप्तभिः ॥ ७ ॥ ततः क्रोधात् प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । यथा युगान्ते भूतानि दिधक्षुरिव पावकः ॥ ८ ॥ क्रुद्धन्तु पाण्डवं दृष्ट्वा देवगन्धर्वराक्षसाः । प्रविव्यथुर्महाराज व्याकुलं चाप्यभूज्जगत् ॥ ९ ॥ सर्वेषाञ्चैव भूतानामिदमासीन्मनोगतम् । त्रींल्लोकानद्य संक्रुद्धो नृपोऽयं धक्ष्यतीति वै

ष्ठिरके मारे॥३॥ यह बाण मानो रणमें महात्मा युधिष्ठिरके प्राणोंको ढूंढ रहे हों इसप्रकार कवचको फोड़कर शरीरमें घुसगये और उन के रुधिरको पीनेलगे॥४॥ रणमें उस महाबलीने घायल करदिया तब तो युधिष्ठिरको बड़ा ही क्रोध आया और इन्होंने वराहके कानके आकारका एक बाण छोड़कर उसकी छातीमें भोंक दिया ॥ ५ ॥ फिर रथियोंमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दनने तुरन्त दूसरे भल्ल नामके बाणसे उस महाबलीकी ध्वजाको रथ परसे भूमिमें गिरा दिया ॥ ६ ॥ हे महाराज ! उस राजा श्रुतायुने अपनी ध्वजाको गिरीहुई देखकर युधिष्ठिरको सात तीखे बाणोंसे घायल किया॥७॥ तब तो धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर क्रोधके मारे ऐसे जल उठे जैसे प्रलयकालमें भूतमात्रको भस्म करनेकी इच्छासे अग्नि धधक उठता है ॥ ८ ॥ हे महाराज ! युधिष्ठिरको क्रोधमें हुआ देखकर देवता गन्धर्व और राक्षस बड़े घबड़ाये तथा सब जगत् व्याकुल होउठा ॥ ९ ॥ उस समय सब प्राणियोंके मनमें यह बात समागयी थी, कि-निःसन्देह क्रोधमें भरे हुए यह युधिष्ठिर आज तीनों लोकों

॥ १० ॥ ऋषयश्चैव देवाश्च चक्रुः स्वस्त्ययनं महत् । लोकान् नृप शान्त्यर्थं क्रोधिते पाण्डवे तदा ॥ ११ ॥ स च क्रोधसमाविष्टः सृक्किणी परिसंलिहन् । दधारात्मवपुर्घोरं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ १२ ॥ ततः सैन्यानि सर्वाणि तावकानि विशाम्पते निराशान्यभवंस्तत्र जीवितं प्रति भारत ॥ १३ ॥ स तु धैर्येण तं कोपं सन्निवार्य्य महायशाः । श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महाधनुः ॥ १४ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १५ ॥ सत्वरं च रणे राजन् तस्य वाहान्महात्मनः । निजघान शरैः क्षिप्रं सूतञ्च सुमहाबलः ॥ १६ ॥ हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञोऽस्य पौरुषम् विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा ॥ १७ ॥ तस्मिन् जिते महेष्वासे धर्मपुत्रेण संयुगे । दुर्य्योधनबलं राजन् सर्वमासीत् परा-

---

को भस्म कर डालेंगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! युधिष्ठिरके क्रोधमें भर जानेपर उस समय देवता और ऋषियोंने लोकोंकी शान्ति लिये बड़ाभारी स्वस्तिवाचन किया था ॥ ११ ॥ क्रोधमें भरे तथा ओठोंको चबाते हुए धर्मराजने प्रलयकालके सूर्यकी समान बड़ा घोररूप धारण किया ॥ १२ ॥ हे भरतवंशी महाराज ! उस समय तुम्हारी सब सेनाओंने अपने जीवनकी आशा छोड़ दी थी ॥ १३ ॥ परन्तु महायशवाले धर्मराजने धीरजसे क्रोधको दबाकर बाण छोड़ श्रुतायुके महाधनुषको पकड़नेके स्थान पर काटदिया ॥ १४ ॥ और धनुष कटजाने पर रणमें सब सेनाके सामने युधिष्ठिरने उसकी छातीमें घाव करदिया ॥ १५ ॥ हे राजन् ! फिर शीघ्र ही इन महाबलीने रणमें उस महात्माके घोड़े और सारथीको भी बाणोंसे मार डाला ॥ १६ ॥ उस समय श्रुतायु इनके पराक्रमको देख अपने बिना घोड़ोंके रथको छोड़ कर रणमेंसे बड़ी शीघ्रताके साथ भाग गया ॥ १७ ॥ जब धर्म-पुत्रने रणमें उस महाधनुषधारीको जीतलिया तब तो हे राजन् !

कुम्भवम् ॥ १८ ॥ एतत् कृत्वा महाराज धर्म्मपुत्रो युधिष्ठिरः व्यात्ताननो यथा कालस्तव सैन्यं जघान ह ॥ १९ ॥ चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनाम्वरम् । प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः ॥ २० ॥ सन्निवार्य्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि । चेकितानं रणे यत्तं राजन् विव्याध पत्रिभिः ॥ २१ ॥ अथापरेण भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष । सारथिश्चास्य समरे क्षिप्रहस्तो न्यपातयत् ॥ २२ ॥ अश्वांश्चास्यावधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी । सोऽवप्लुत्य रथात्तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः ॥२३॥ स तया वीरघातिन्या गदया गदिनाम्वरः । गौतमस्य हयान् हत्वा सारथिञ्च न्यपातयत् ॥ २४ ॥ भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेप षोडश । शरास्ते सात्वतं भित्त्वा प्राविशन् धरणीतलम् ॥ २५ ॥ चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदां । गौतमस्य

दुर्योधनकी सब सेना भाग निकली ॥ १८ ॥ इसप्रकार शत्रुओं का पराजय करके धर्मपुत्र युधिष्ठिर मुख फैलाये हुए कालकी समान तुम्हारी सेनाका संहार करने लगे ॥ १९ ॥ उधर वृष्णि वंशी राजा चेकितान सब सेनाओंके सामने रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यको बाणोंकी वर्षासे ढके देता था ॥ २० ॥ उस समय उन सब बाणोंको हटाकर शरद्वत्के पुत्र कृपाचार्यने हे राजन् ! सावधान चेकितानको बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २१ ॥ और रण में बाण छोड़नेमें फुरतीले इस योधाने हे महाराज ! भल्ल नामक बाणसे इसके धनुषको काट डाला और इसके सारथीको भी मार गिराया ॥ २२ ॥ तथा हे राजन् ! इसके घोड़े और दोनों इधर उधरके रक्षकोंको भी मारडाला, तब इस सात्वतवंशी चेकितानने तुरन्त रथमेंसे कूदकर हाथमें गदा लेली ॥ २३ ॥ गदाधारियोंमें श्रेष्ठ उस राजाने तिस वीरनाशिनी गदासे कृपाचार्यके घोड़ोंको तथा सारथीको भी मारडाला ॥ २४ ॥ तब रथहीन हुए इन गौतमने भूमिमें ही खड़े २ उसके ऊपर सोलह बाण छोड़े जो उस चेकितानके शरीरको फोड़कर भूमिमें घुसगये ॥ २५ ॥ तब

वधाकांक्षी वृत्रस्येव पुरन्दरः ॥ २६ ॥ तामापतन्तीं विपुलामश्मगर्भां महागदाम् । शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः ॥ २७ ॥ चेकितानस्ततः खड्गं क्रोधादुद्धृत्य भारत । लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत् ॥ २८ ॥ गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्यासिं सुसंयतः । वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥ तावुभौ बलसम्पन्नौ । निस्त्रिंशवरधारिणौ निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योऽन्यं संततक्षतुः ॥ ३० ॥ निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ । धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम् ॥ ३१ ॥ मूर्च्छयाभिपरीताङ्गौ व्यायामेन तु मोहितौ । ततोऽभ्यधावद्वेगेन करकर्षः सुहृत्तया ॥ ३२ ॥ चेकितानं तथाभूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदः । रथमारोपयच्चैवं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥ तथैव शकुनिः शूरः स्यालस्तव

तो कोपमें भरे हुए राजा चेकितानने, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारनेके लिये वज्र छोड़ा था तैसे ही गौतमका वध करनेकी इच्छासे फिर वह गदा उनके ऊपर फेंकी ॥ २६ ॥ पत्थरकी बनायी हुई उस चमकदार बड़ीभारी गदाको आती हुई देखकर गौतमने सहस्रों बाणोंसे उसको रोक दिया ॥ २७ ॥ हे भारत ! तब तो कोपमें भराहुआ चेकितान बड़े वेगमें भरकर हाथमें तलवार लिये हुए गौतमके सामनेको दौड़ा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! तब गौतम (कृपाचार्य) भी धनुषको छोड़ बड़ी सावधानीसे तलवार लिये हुए चेकितानके ऊपरको दौड़े ॥ २९ ॥ हाथमें तलवार लेकर एक दूसरेके ऊपर धावा करते हुए वह दोनों बलवान् योधा तीखी तलवारोंसे एक दूसरेको काटने लगे ॥ ३० ॥ और परस्पर खड्गके प्रहारसे घायल हुए वह दोनों योधा सकल प्राणियोंसे सेवित भूमिपर लड़तेर गिर पड़े ॥ ३१ ॥ उस समय दोनों परिश्रमसे अत्यन्त थक गये और मूर्छित होगये तब तुरन्त ही गाढ़ी मित्रताके कारण करकर्ष तहां दौड़ आया ॥ ३२ ॥ और चेकितानको ऐसी दशामें देखकर इस रणदुर्मद राजाने तुम्हारी सेनाके सामने उसको अपने रथमें बैठाल लिया ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार

विशाम्पते । आरोपयद्रथं तूर्णं गौतमं रथिनाम्वरम् ॥ ३४ ॥ सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः । नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन् विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥ सौमदत्तिरुरस्थैस्तैर्भृशं बाणैरशोभत । मध्यन्दिने महाराज रश्मिभिस्तपनो यथा ॥ ३६ ॥ भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम् । हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः ॥ ३७ ॥ विरथं तं समालोक्य हताश्वं हतसारथिम् । महता शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ॥ ३८ ॥ स तु तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः । आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष ।३९। चित्रसेनो विकर्णश्च राजन् दुर्मर्षणस्तथा । रथिनो हेमसन्नाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥४०॥ अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्त्तत । शरीरस्य यथा राजन् वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ ४१ ॥ विरथांस्तव

हे राजन् ! तुम्हारे साले शूर शकुनिने शीघ्रतासे रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यको अपने रथमें बैठाल लिया॥३४॥हे राजन्! कोपमें भरे हुए महाबली धृष्टकेतुने नब्बे बाण छोड़कर तुरन्त सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाको छातीमें घायल करदिया ॥३५॥ छातीमें अत्यन्त गड़ेहुए उन बाणोंसे भूरिश्रवा मध्याह्नके समय किरणोंसे घिरे सूर्यसा शोभा पारहा था ॥ ३६ ॥ भूरिश्रवाने रणमें झपट कर महारथी धृष्टकेतुके रथको तोड़डाला और घोड़े तथा सारथीको उत्तम बाणोंसे मार डाला ॥ ३७॥ रथसे हीन तथा जिसके घोड़े और सारथीको मारडाला है ऐसे धृष्टकेतुको भूरिश्रवाने बाणोंकी बड़ी वर्षा करके ढकदिया ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! तब तो महासाहसी धृष्टकेतु उस रथको छोड़ कर शतानीकके रथमें चढ़ बैठा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इसी समय चित्रसेन, विकर्ण, दुर्मर्षण आदि सोनेसे मढ़े हुए रथोंको लेकर अभिमन्युके ऊपर चढ़ आये॥४०॥ हे राजन् ! जैसे वात, पित और कफ इन तीनोंका शरीरके साथ महायुद्ध होता है तैसेही इन तीनों जनोंका अभिमन्युके साथ घोर युद्ध होने लगा ॥ ४१ ॥ और हे राजन् ! उस लड़ाईमें

पुत्रांस्तु कृत्वा राजन् महाहवे । स जघान नरव्याघ्रः स्मरन् भीम-वचस्तदा ॥ ४२ ॥ ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः । संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम् ॥४३॥ प्रयांतं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव । अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम्॥४४॥ वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः । चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्रैते बहुला रथाः ॥ ४५ ॥ एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्ध-दुर्मदाः । यथा हन्युर्न नः सेनां तथा माधव चोदय ॥ ४६ ॥ एव-मुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनामितौजसा । रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥ ४७ ॥ निष्टानको महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष । यदर्जुनो रणे क्रुद्धः संयातस्तावकान् प्रति ॥ ४८ ॥ समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान् भीष्मरक्षिणः । सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ जानामि त्वां युधां श्रेष्ठ-

---

अभिमन्युने तुम्हारे पुत्रोंको रथहीन कर दिया परन्तु भीमसेनकी प्रतिज्ञाको याद करके उनके प्राण नहीं लिये ॥ ४२ ॥ फिर सैंकड़ों राजे हाथी, घोड़े और पैदल आदिको लेकर तुम्हारे पुत्रों की रक्षा करनेके लिये आयेहुए जो देवताओंसे भी न जीतेजायँ ऐसे भीष्मजीको बालक अभिमन्युके सामने आते देखकर कुन्तीनन्दन अर्जुनने वासुदेवसे कहा, कि—हे हृषीकेश ! जहां अनेकों रथ दीखरहे हैं तहां मेरे रथको ले चलिये ॥ ४३-४५ ॥ हे माधव ! अस्त्रविद्याका अच्छा अभ्यास रखनेवाले यह रणदुर्मद सब वीर योधा कहीं हमारी सेनाका नाश न करडालें, अतः शीघ्र ही मेरे रथको तहां लेचलिये ॥ ४६ ॥ परमतेजस्वी अर्जुनके ऐसा कहने पर वृष्णिवंशी कृष्णने सफेद घोड़ोंसे जुताहुआ उसका रथ जहां संग्राम होरहा था उधरको हांका ॥ ४७ ॥ अर्जुन कोपमें भरकर तुम्हारी सेनाकी ओरको चला यह जानते ही हे महाराज ! तुम्हारी सेनामें बड़ी घबड़ाहट फैलगयी ॥ ४८ ॥ भीष्मकी रक्षा करनेवाले उन राजाओंके पास आकर अर्जुनने सुशर्मासे यह बात कही, कि—॥ ४९ ॥ मैं जानता हूं कि—तू युद्ध करनेवालोंमें

मत्पन्तं पूर्ववैरिणम् । अनयस्याद्य सम्प्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ५० ॥ अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् । एवं संजल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुघातिनः ॥ ५१ ॥ श्रुत्वापि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः । न चैनमब्रवीत् किञ्चिच्छुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ५२ ॥ अभिगम्यार्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः । पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः ॥ ५३ ॥ परिवार्यार्जुनं संख्ये तव पुत्रैर्महारथः । शरैः संच्छादयास मेघैरिव दिवाकरम् ॥५४॥ ततः प्रवृत्तः सुमहान् संग्रामः शोणितोदकः । तावकानां च समरे पाण्डवानाञ्च भारत ॥ ५५ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सुशर्मार्जुनसमागमे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

सञ्जय उवाच । स ताड्यमानस्तु शरैर्धनञ्जयः पदाहतो नाग इव श्वसन् बली । बाणेन बाणेन महारथानां चिच्छेद चापानि

बड़ा चपल और मेरा बड़ाभारी पुराना वैरी है आज तुझे अपनी अनीतिका बड़ा घोर फल मिलता है, देख ॥ ५० ॥ आज मैं तुझे तेरे पहिले मरे हुए पितामहोंका दर्शन कराऊँगा, शत्रुनाशी अर्जुनने उससे ऐसा कहा ॥ ५१ ॥ रथयूथोंके स्वामी सुशर्माने कठोर वचनको सुनकर भी उससे भला बुरा कुछ भी नहीं कहा ॥ ५२ ॥ परन्तु अनेकों राजे तथा तुम्हारे पुत्रोंको साथ लेकर उसने अर्जुनको आगेसे पीछेसे तथा दोनों करवटों से इसप्रकार चारों ओरसे घेरकर उसके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया और जैसे मेघ सूर्यको ढक देता है तैसे ही उसको ढक दिया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे भारत ! तदनन्तर उस रणभूमिमें तुम्हारे पुत्रोंका और पाण्डवोंका बड़ाभारी संग्राम होने लगा, जिसमें जलकी समान रुधिर बहरहा था ॥ ५५ ॥ चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि-इसप्रकार बाणोंसे ताड़ित हुए बलवान् धनञ्जयने पैरसे कुचले हुए सांपकी समान लंबी २ सांसें लेते

रणे प्रसह्य ॥१॥ सञ्छिद्य चापानि च तानि राज्ञां तेषां रणे वीर्य-
वतां क्षणेन। विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा निःशेषतां तेष्वथ मन्य-
मानः ॥ २ ॥ निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धास्ते ताडिताः शक्रसुतेन
राजन्। विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा गतासवश्छिन्नतनुत्रकायाः
॥ ३ ॥ महीं गताः पार्थबलाभिभूता विचित्ररूपा युगपद्विनेशुः।
दृष्ट्वा हतांस्तान् युधि राजपुत्रांस्त्रिगर्तराजः प्रययौ रथेन ॥४॥ तेषां
रथानामथ पृष्ठगोपा द्वात्रिंशदन्येऽभ्यपतन्त पार्थम्। तथैव ते तं परि-
वार्य पार्थं विकृष्य चापानि महारवाणि ॥ ५ ॥ अवीवृषन् बाण-
महौघवृष्ट्या यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः।सम्पीड्यमानस्तु शरौघ-
वृष्ट्या धनञ्जयस्तान् युधि जातरोषः ॥ ६ ॥ षष्ट्या शरैः संयु-

हुए बाणके ऊपर बाण छोड़कर बड़े पराक्रमसे उन महारथिय
के धनुषोंको काटडाला ॥ १ ॥ महात्मा अर्जुनने रणमें क्षणभ
में उन वीर राजाओंके धनुषोंको काटकर उनमेंसे एकको
जीता न छोड़नेकी इच्छासे उन सबोंको बाणोंसे बींधडाला ॥
हे राजन्! इन्द्रपुत्रके द्वारा घायल हुए उन राजाओंमेंसे कि
ही रुधिरमें सनगये, कितने ही रणभूमिमें गिरपड़े, कितनों
के अङ्ग शिर और कवच कट गये और कितने ही मरगये ॥
जब अर्जुनके बलसे दबाव खा अनेकों प्रकारसे घायल हो
पृथिवी पर गिरते हुए वह राजे एक साथ नष्ट होने लगे
उन राजपुत्रोंको रणभूमिमें नष्ट होते देख त्रिगर्त्त देशका र
सुशर्मा अपने रथमें बैठा हुआ वहां आया ॥ ४ ॥ उसके रथ
पीछेसे रक्षा करने वाले बत्तीस योधा और थे, वे सब अर्जु
ऊपर चढ़ आये और इन्होंने अर्जुनको चारों ओरसे घे
महाशब्द करने वाले अपने धनुषोंको चढ़ालिया ॥५॥ और
मेघ पहाड़के ऊपर जलकी धाराओंसे वर्षा करते हों ऐसे ही अ
के ऊपर बाणोंकी बड़ीभारी वर्षा करने लगे, उनके बाणोंके
की वर्षासे रणमें पीड़ित होनेपर अर्जुनको उनके ऊपर
आगया ॥६॥ और तेज चढ़ाए हुए साठ बाणोंसे रथके रक्ष

तैलधौतैर्ज्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान् । रथांश्च तांस्तानवजित्य संख्ये धनञ्जयः प्रीतमना यशस्वी ॥ ७ ॥ अथात्वरद्भीष्मवधाय जिष्णुर्बलानि राजन् समरे निहत्य । त्रिगर्त्तराजो निहतान् समीक्ष्य महात्मना तानथ बन्धुवर्गान् ॥ ८ ॥ रणे पुरस्कृत्य नराधिपांस्तान् जगाम पार्थं त्वरितो वधाय । अभिद्रुतं चास्त्रभृतां वरिष्ठं धनञ्जयं वीक्ष्य शिखण्डिमुख्याः ॥ ९ ॥ अभ्युद्ययुस्ते शितशस्त्रहस्ता रिरक्षिषन्तो रथमर्जुनस्य । पार्थोऽपि तानापततः समीक्ष्य त्रिगर्त्तराज्ञा सहितान् नृवीरान् ॥ १० ॥ विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान् गाण्डीवमुक्तैर्निशितैः पृषत्कैः । भीष्मं यियासुर्युधि सन्ददर्श दुर्योधनं सैन्धवादींश्च राज्ञः ॥ ११ ॥ संवारयिष्णूनभिवार्यित्वा मुहूर्त्तमायोध्य बलेन वीरः । उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो जयद्रथादींश्च नृपान्महौजाः ॥ १२ ॥ ययौ ततो भीमबलो

मारडाला, इसप्रकार इन सब महारथियोंको और तुम्हारी सब सेनाओंको युद्धमें जीतकर प्रसन्न हुआ यशस्वी अर्जुन हे राजन्! भीष्मका वध करनेके लिये आगेको झपटकर बढ़ा, परन्तु त्रिगर्तराज सुशर्मा अपने बंधुओंको महात्मा अर्जुनसे मारे गए देखकर ॥ ७—८ ॥ बाकी रहे हुए राजाओंको आगेकर अर्जुनके सामने आगया, उस समय अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको शत्रुओंसे घिरा हुआ देखकर शिखण्डी आदि योधा हाथोंमें तीक्ष्ण शस्त्र ले २ कर धस आये और अर्जुनके रथकी रक्षा करने लगे, अर्जुनने भी त्रिगर्तराजके साथ आते हुए दूसरे वीर राजाओंको देखकर गाण्डीव धनुषपर अनेकों तीक्ष्ण बाण चढ़ाए और उनसे उनको मार डाला, भीष्मके सामने जाते हुए अर्जुनने मार्ग रोकनेकी इच्छासे खड़े हुए दुर्योधन और सिंधुराज आदिको देखा, परन्तु वीर अर्जुनने उन सबको बलपूर्वक क्षणभर युद्ध करके खदेड़ दिया तथा दुर्योधन और जयद्रथ आदि राजाओंको भी खदेड़

मनस्वी गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः । युधिष्ठिरश्च प्रबलो महात्म समाययौ त्वरितो जातकोपः ॥ १३ ॥ मद्राधिपं समभित्यज संख्ये स्वभागमाप्तन्तमनन्तकीर्त्तिः । सार्धं समाद्रीसुतभीमसेनैर्भी यथौ शान्तनवं रणाय ॥ १४ ॥ तैः सम्प्रयुक्तैः स महारथाग्र्यै गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी । न विव्यथे शान्तनवो महात्म समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः ॥ १५ ॥ अथैत्य राजा युधि सत्य सन्धो जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी । चिच्छेद चापानि महारथान प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ पार्थं कृष्णं युधि सञ्जातकोपः । दुर्योधनः क्रोधविषो महात्म जघान बाणैरनलप्रकाशैः ॥ १७ ॥ कृपेण शल्येन शलेन चै तथा विभो चित्रसेनेन चाजौ । विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपैर्दैव

कर महाबलवान्, भयंकर तथा मनस्वी पृथाका पुत्र हाथमें धनु बाण लेकर जहाँ भीष्म थे वहाँ पहुंच गया, अनन्त कीर्तिवा महात्मा राजा युधिष्ठिर भी क्रोध आनेसे अपने सामने आये हु मद्रराजको छोड़कर अपने साथ माद्रीके पुत्र तथा भीमसेनको साथमें लेकर भीष्मके साथ युद्ध करनेको चढ़ आये ॥ ६-१४ चित्र विचित्र युद्ध करनेमें कुशल गंगापुत्र भीष्मजी, महारथियों श्रेष्ठ गिने जाने वाले अपने ऊपर चढ़कर आते हुए पाण्डु समस्त पुत्रोंके साथ युद्धमें उतर पड़ने पर भी जरा भी खिन्न नहीं हुए ॥ १५ ॥ महा उग्र बलवाला, मनस्वी, राजा जयद्र पहिले ही युद्धमें आगेको बढ़ा और उसने एक बड़ाभारी धनु लेकर सब महारथियोंके धनुषोंको काट डाला ॥ १६ ॥ अत्यन्त कोपायमान तथा क्रोधरूपी विषमें भरे हुए राजा दुर्योधनने युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा कृष्ण आदि पर अ की समान प्रकाश वाले बाणोंसे प्रहार किया ॥ १७ ॥ त महाक्रोधमें आये हुए कृप, शल्य, शल, चित्रसेन आदि राजा- के बाणोंसे विंधे हुए पाण्डव, महाक्रोधमें भरे हुए दैत्यों

यथा दैत्यगणैः समेतैः ॥ १८ ॥ छिन्नायुधं शान्तनवेन राजा शिखण्डिनं प्रेक्ष्य च जातकोपः । अजातशत्रुं समरे महात्मा शिखण्डिनं क्रुद्ध उवाच वाक्यम् ॥ १९ ॥ उक्त्वा तथा त्वं पितुरग्रतो मामहं हनिष्यामि महाव्रतन्तम् । भीष्मं शरौघैर्विमलार्कवर्णैः सत्यं वदामीति कृता प्रतिज्ञा ॥ २० ॥ त्वया न चैनां सफलां करोषि देवव्रतं यन्न निहंसि युद्धे । मिथ्याप्रतिज्ञो भव मा च वीर रक्षस्व धर्मञ्च कुलं यशश्च ॥ २१ ॥ प्रेक्षस्व भीष्मं युधि भीमवेगं सर्वांस्तपन्तं मम सैन्यसंघान् । शरौघजालैरतितिग्मवेगैः कालं यथा कालकृतं क्षणेन ॥२२॥ निकृत्तचापः समरेऽनपेक्षः पराजितः शान्तनवेन राज्ञो । विहाय बन्धून् नथ सोदरांश्च क्व यास्यसे नानुरूपं तवेदम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा हि भीष्मं तमनन्तवीर्यं भग्नञ्च सैन्यं द्रवमाणमेवम् । भीतोऽसि नूनं द्रुपदस्य पुत्र तथा हि ते मुखवर्णो

संग्राममें घायल हुए देवताओंकी समान दीखने लगे ॥ १८ ॥ शिखण्डीके धनुषको भीष्मसे काटा हुआ देखकर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने शिखण्डीसे कहा कि—॥ १९ ॥ पहिले तूने अपने पिताके सामने मुझसे कहा था कि—निर्मल सूर्यकी समान तेजस्वी बाणोंसे मैं भीष्मको मारडालूंगा" यह तूने प्रतिज्ञा की थी उसको मैं सच्ची समझता हूं ॥ २० ॥ देख ! यदि तूने भीष्मको आज नहीं मारा तो तेरी प्रतिज्ञा झूठी होजायगी । तू प्रतिज्ञाको मिथ्या मत कर परन्तु हे वीर ! अपने धर्म, यश और कुलकी रक्षाकर ॥ २१ ॥ यह भयंकर वेगवाले भीष्म, सर्वभक्षी कालकी समान मेरी ओरके सब योधाओंको अति तीक्ष्ण वेगवाले बाणों से सन्ताप दे रहे हैं, यह तू देख ॥ २२ ॥ तेरा धनुष कट गया है और रणमेंसे भीष्मके हाथसे पराजय पाकर अपने बंधु और सहोदरोंको छोड़कर तू कहाँ जावेगा ? इसप्रकार भागना तो तुझे शोभा नहीं देता ॥ २३ ॥ अनन्त वीर्य वाले भीष्मको देख कर तथा इस भागती हुई सेनाको देखकर तू वास्तवमें डर गया

प्रहृष्टः ॥ २४ ॥ अज्ञायमाने च धनञ्जयेऽपि महाहवे सम्प्रस नृवीरे । कथं हि भीष्मात् प्रथितः पृथिव्यां भयं त्वद्य प्रकरो धीर ॥२५॥ स धर्मराजस्य वचो निशम्य रूक्षाक्षरं विप्रलापा यद्धम् । तत्यादेशं मन्यमानो महात्मा प्रतस्वरे भीष्मवधाय राज ॥ २६ ॥ तमापतन्तं महता जवेन शिखण्डिनं भीष्ममभिद्रवन्तम् निवारयामास हि शल्य एनमस्त्रेण घोरेण सुदुर्जयेन ॥ २७ स चापि दृ । समुदीर्य्यमाणमस्त्रं युगान्ताग्नि समप्रकाशम् न संमुमोह द्रुपदस्य पुत्रो राजन् महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ॥ २८ तस्थौ च तत्रैव महाधनुष्मान् शरैस्तदस्त्रं प्रतिबाधमानः । अथाद वारुणमन्यदस्त्रं शिखंडयथोग्रं प्रतिघातमस्य ॥ २९ ॥ तदस्त्रम स्त्रेण विदार्य्यमाणं खस्थाः सुरा ददृशुः पार्थिवाश्च । भीष्मर

है और हे द्रुपद राजाके पुत्र ! तेरा मुह भी उतर गया है ॥२४ हे वीर ! पुरुषवीर धनञ्जय (भीष्मको किसप्रकार मारना इससे अनजान हैं, तो भी इस महासंग्राममें लड़ता है, परन्तु तू पृथ्वी प्रसिद्ध होकर इसप्रकार भीष्मसे आज इतना अधिक क्यों डरत है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! युधिष्ठिरके यह वचन, रूखे अक्षरोंवा प्रलाप भरे हुए तथा आज्ञारूप हैं ऐसा जानकर महात्मा शिख ण्डी, भीष्मका वध करनेके लिये पुनः उतावलीसे तयार होग ॥ २६ ॥ शिखण्डीको इसप्रकार महावेगसे भीष्मपर धाव करते हुए देखकर शल्य उसको घोर तथा दुर्जय अस्त्र से हटाने लगा ॥ २७ ॥ इन्द्रकी समान प्रभाव वाला द्रुपदक पुत्र भी युगान्तकी अग्निकी समान प्रकाश वाले अस्त्रको आ हुए देखकर भी जरा नहीं डिगा ॥ २८ ॥ परन्तु महाधनुर्ध द्रुपदपुत्रने उसके बाणोंको पीछेको लौटालनेके लिये अपने हा में वरुणास्त्र लिया, यह उग्र अस्त्र शल्यके बाणको नष्ट करनेवाला था ॥ २९ ॥ इस वरुणास्त्रसे टुकडे २ किये हुए उस बाणक

राजन् समरे महात्मा धनुश्च चित्रध्वजमेव चापि ॥ ३० ॥ भित्वा-
नदत् पाण्डुसुतस्य वीरो युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः । ततः
समुत्सृज्य धनुः सबाणं युधिष्ठिरं वीक्ष्य भयाभिभूतम् ॥ ३१ ॥
गदां प्रगृह्याभिपपात संख्ये जयद्रथं भीमसेनः पदातिः । तमापतन्तं
सहसा जवेन जयद्रथः सगदं भीमसेनम् ॥ ३२ ॥ विव्याध घोरै-
र्यमदण्डकल्पैः शितैः शरैः पञ्चशतैः समन्तात् । अचिन्तयित्वा
स शरांस्तरस्वी वृकोदरः क्रोधपरीतचेताः ॥३३॥ जघान वाहान्
समरे समंतात् पारावतान् सिन्धुराजस्य संख्ये । ततोऽभिवीक्ष्या-
मतिमप्रभावस्तवात्मजस्त्वरमाणो रथेन ॥ ३४ ॥ अभ्याययौ
भीमसेनं निहन्तुं समुद्यतास्त्रो सुरराजकल्पः । भीमोऽप्यथैनं
सहसा विनद्य प्रत्युद्ययौ गदया तर्जयानः ॥ ३५ ॥ समुद्यतां तां
तां यमदण्डकल्पां दृष्ट्वा गदान्ते कुरवः समन्ताद् । विहाय सर्वे

आकाशमें स्थित देवता और (पृथ्वी पर खडे हुए) राजाओंने
देखा इतनेमें ही महात्मा, वीर भीष्मने अजमीढवंशी पाण्डुपुत्र
युधिष्ठिरके विचित्र धनुष तथा ध्वजाको काट डाला और बड़ी
ओरसे गर्जे भय डरे हुए युधिष्ठिरको देखकर अपने चढ़ाये हुए
बाण तथा धनुषको छोड़कर पैदल ही भीमसेन हाथमें गदा लेकर
जयद्रथके सामने दौडा, भीमको हाथमें महाभयङ्कर गदा लेकर
एकाएक वेगसे आता देख जयद्रथने यमदण्डकी समान पांचसौ
भयङ्कर बाण छोड़ कर उसको बींधडाला, परन्तु इस की कुछ भी
परवाह न कर क्रोधमें आकर बलवान् भीमसेनने सिन्धुराजके पारे
की समान वर्णके घोडोंको रणमें मार डाला, उसके ऐसे अप्रातम
प्रभाव को देखकर इन्द्रकी समान तुम्हारा पुत्र (चित्रसेन)
रथमें बैठ कर भीमका वध करनेकी इच्छासे युद्धमें झपटा और
भीमसेन भी एकाएक गर्जना कर अपनी गदाको घुमाता२ उसके
सामने गया ॥३४-३५॥ यमदण्डकी समान उठाई हुई उस गदा

तव पुत्रमुग्रं पार्थं गदया परिहर्त्तुकामाः ॥ ३६ ॥ अपक्रान्ताः सुते संप्रदर्द सुदारुणे भारत मोहनीये । असूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य ॥ ३७ ॥ रथं समुत्सृज्य पदा राजौ प्रगृह्य खड्गं विपुलश्च चर्म । अवप्लुतः सिंह इवाचला उजगामान्यं भूमिप भूमिदेशम् ॥ ३८ ॥ गदापि सा प्राप्य सुचित्रं साश्वं ससूतं विनिहत्य संख्ये । जगाम भूमिं ज्वलि महोल्का अम्बराद् गामिव सम्पतन्ती ॥ ३९ ॥ आश्चर्य सुमहच्चदीया दृष्ट्वैव तद्भारत सम्प्रहृष्टाः । सर्वे विनेदुः सहि समन्तात् पुपूजिरे तव पुत्रस्य शौर्यम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चित्रसेन-रथभङ्गे पञ्चाशीतोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच । विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं यशस्विनम् । १०

को देख कर, उस गदाके उग्र महारसे बचनेके लिये सब की तुम्हारे पुत्रको छोड़ कर भागगये ॥ ३६ ॥ इन्द्रियोंको मो करने वाले इस दारुण संग्राममें भी सावधानचित्तसे खड़ा हुः चित्रसेन मूढ़ नहीं हुआ, गदाको अपनी ओर आती हुई दे कर वह हाथमें बड़े भारी अस्त्र तथा ढालको लेकर पर्वत शिखरसे सिंहके उतरनेकी समान रथ परसे पैदल ही उतर प और सपाट मैदानमें जाकर खड़ा होगया ॥ ३७—३८ ॥ इस में वह गदा उसके सुन्दर रथ पर पडी और उसने उस रथ घोडे तथा सारथीको चूरा २ कर डाला और आकाशमेंसे जै जलती हुई उल्का पडे इस प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ३९ हे भारत ! ऐसे महान् आश्चर्यको देखकर तुम्हारे पक्षके स योधा अत्यन्त हर्षित हुए और गर्जने लगे तथा तुम्हारे पुत्र शूरताकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४० ॥ पिचासीवां अध्याय समाप्त८

सञ्जय कहता है कि-यशस्वी चित्रसेनको रथहीन देखक

मारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव ॥१॥ तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले संकुले भृशम् । भीष्मः शान्तनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ २ ॥ ततः स रथनागाश्वाः समकम्पन्त सृञ्जयाः । मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मेनिरे च युधिष्ठिरम् ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः । महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ ॥४॥ ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन् पाण्डवो युधि । भीष्मं संछादयामास यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५ ॥ तेन सम्यक् प्रणीतानि शरजालानि मारिष । प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥ तथैव शरजालानि भीष्मेणास्तानि मारिष । आकाशे समदृश्यन्त खगमानां व्रजा इव ॥ ७ ॥ निमेषार्धेन कौन्तेय भीष्मः शान्तनवो युधि । अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः ॥ ८ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः । नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशी-

---

तुम्हारे पुत्र विकर्णने उसको अपने रथ पर चढ़ा दिया ॥ १ ॥ जब यह घोर संग्राम अत्यंत तुमुल होनेलगा तब शन्तनुके पुत्र भीष्म शीघ्रतासे युधिष्ठिर पर चढ़ आये ॥ २ ॥ उस समय रथ, हाथी, और अश्वों सहित सृञ्जय कांपने लगे और युधिष्ठिर मृत्युके मुखमें आपड़े ऐसा विचारने लगे ॥ ३ ॥ प्रभु युधिष्ठिर भी नकुल और सहदेव को साथमें लेकर महाधनुर्धर नरव्याघ्र भीष्म के ऊपर चढ़ गए ॥ ४ ॥ और पाण्डुके पुत्रने एक सहस्र बाण छोड़कर भीष्मको, मेघ सूर्यको जैसे ढक देते हैं इस प्रकार ढक दिया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! युधिष्ठिरसे ताक २कर छोड़े हुए अनेक बाण भीष्मजी पर पड़ते थे और भीष्मजीने उनको ग्रहण किया (सहा)॥६॥ तैसे ही भीष्मके छोड़े हुए बाण भी आकाशमें फिरने वालोंके व्रजों (विमानों) की समान सरसराहट करते हुए से दीखते थे ॥ ७ ॥ आधे निमेषमें ही भीष्मने बाणोंके समूहसे युधिष्ठिरको ढक कर अदृश्य कर दिया ॥ ८ ॥ फिर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने सर्पकी समान विषवाला नाराच नामकी

विषोपमम् ॥ ९॥ असंप्राप्तं ततस्तन्तु क्षुरप्रेण महारथः । चिच्छेद समरे राजन् भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम् ॥ १० ॥ तन्तु छित्त्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसम्मितम् । निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान् काञ्चनभूषणान् ॥ ११ ॥ हताश्वन्तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः ॥ १२ ॥ यमावपि हि संक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा । शरैः संछादयामास भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥ तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मवाणप्रपीडितौ । जगाम परमां चिन्तां भीष्मस्य वधकाङ्क्षया ॥ १४ ॥ ततो युधिष्ठिरो वश्यान् राज्ञस्तान् समचोदयत् । भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान् ॥१५॥ ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् । महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम् ॥ १६ ॥ स समन्तात् परिवृतः पिता देवव्रतस्तव । चिक्रीड धनुषा राजन्

वाण भीष्मके ऊपर छोड़ा ॥ ९ अपने पास पहुंचनेसे पहिले ही युधिष्ठिरके धनुषमेंसे छूटे हुए वाणके, वाण छोड़ कर टुकड़े २ कर दिये॥ १० ॥ और कालकी समान इस नाराच वाणको नष्ट कर भीष्मने कौरवेन्द्र युधिष्ठिरके सुवर्णके साज वाले घोड़ों को मारडाला ॥ ११ ॥ तुरन्त ही मरे हुए घोड़ोंवाले रथको छोड़ कर धर्मपुत्र युधिष्ठिर महारथी नकुलके रथ पर चढ़ बैठे ॥ १२ ॥ नकुल तथा सहदेवको रणमें अपने सामने आये हुए देखकर भीष्मको क्रोध आया और शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले भीष्म ने उनको भी वाणोंसे ढक दिया ॥ १३ ॥ दोनों भाइयोंको वाणों से इस प्रकार पीड़ित देखकर राजा युधिष्ठिरने भीष्मके वधके लिये तीव्र चिन्ता की ॥ १४ ॥ तदनन्तर अपनी आधीनतामें रहने वाले सकल राजाओं तथा मित्रोंसे युधिष्ठिरने कहा कि-सब जने भीष्मको मारो मारो ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरके कथनको सुन कर सब राजाओंने रथोंके समूहोंको हांका और भीष्मको घेर लिया ॥ १६ ॥ परन्तु तुम्हारे पिता देवव्रत चारों ओर से घिर

पातयानो महारथान् ॥ १७ ॥ तं चरन्तं रणे पार्था ददृशुः कौरवं युधि । मृगमध्यं प्रविश्येव यथा सिंहशिशुं वने ॥१८॥ तर्ज्जयानं रणे-शूरांस्त्रासयानश्च सायकैः । दृष्ट्वा त्रेसुर्महाराज सिंहं मृगगणा इव ॥ १९ ॥ रणे भारतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम् । अग्ने-र्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः ॥ २० ॥ शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे । तालेभ्यः परिपक्वानि फलानि कुशलो नरः ॥ २१ ॥ पतद्भिश्च महाराज शिरोभिर्धरणीतले । बभूव तुमुलः शब्दः पततामश्मनामिव ॥ २२ ॥ तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्त्तमाने भयानके । सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥२३ ॥ भिन्नेषु तेषु व्यूहेषु क्षत्रिया इतरेतरम् । एकमेकं समाहूय युद्धायैवावतस्थिरे ॥ २४ ॥ शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां

जाने पर भी धनुप खेंच २ कर बड़े २ रथियोंका नाश करते हुए युद्धमें घूमते थे ॥ १७ ॥ और सब योधाओंके बीचमें फिरते हुए भीष्म पाण्डवोंको, वनमें प्रवेश करके मृगों बीचमें घूमते हुए सिंहके बच्चेकी समान दीखते थे॥१८॥ रणमें वीरोंको धुत्कारते हुए और बाणोंसे पीड़ा देते हुए भीष्मको देखकर राजे, सिंहसे मृगोंकी समान भीष्मसे भयभीत होने लगे।१९।भरतवंशके सिंहरूप भीष्मकी गति रणमें वायुकी सहायतासे वनको भस्म करते हुए अग्निकी धांय २ सी थी, उसको क्षत्रिय देखते ही रहे ॥ २० ॥ पके हुए ताड़के फलोंको ताड़के वृक्ष परसे गिराने वाले चतुर मनुष्यकी समान, युद्धमें भीष्मजी रथियोंके शिरोंको गिराने लगे ॥ २१ ॥ हे महाराज ! पृथ्वीमें गिरते हुए योधाओंके शिर बरसते हुए पत्थरोंकी समान महाशब्द करते थे ॥ २२ ॥ जब यह युद्ध अत्यन्त घोर होगया उस समय तुम्हारे और पाण्डवोंके सेनादलमें बड़ा भारी गबड़दुन्द हुआ ॥ २३ ॥ दोनों ओरकी व्यूहरचनाएं (हरावल) टूट गईं और सब क्षत्रिय एक दूसरेको बुलाकर युद्धके लिये तत्पर होगए ॥ २४ ॥ शिखण्डी भरतोंके

पितामहम् ॥ अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २५ ॥
अनादृत्य ततो भीष्मस्तं शिखण्डिनमाहवे । प्रययौ सृञ्जयान्
क्रुद्धः स्त्रीत्वं चिन्त्य शिखण्डिनः ॥ २६ ॥ सृञ्जयास्तु ततो दृष्ट्वा
हृष्टं भीष्मं महारणे । सिंहनादांश्च विविधांश्चक्रुः शंखविमिश्रितान्
॥ २७ ॥ ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् । पश्चिमां दिशमा-
स्थिते सवितरि प्रभो ॥ २८ ॥ धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः
सात्यकिश्च महारथः । पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः
॥ २९ ॥ शस्त्रैश्च बहुभी राजन् जघ्नतुस्तावकान् रणे । ते हन्य-
मानाः समरे तावका भरतर्षभ ॥ ३० ॥ आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा
न त्यजन्ति स्म संयुगम् । यथोत्साहं च समरे निजघ्नुस्तावका
रणे ॥ ३१ ॥ तत्राक्रन्दो महानासीत्तावकानां महात्मनाम् ।

पितामह भीष्मके सामने आकर 'खड़ा रह२' यह कहकर उनके सामने
दौड़ा॥२५॥परन्तु मनमें शिखण्डीके स्त्रीपनेको सोच रणमें उसको
कुछ न गिन क्रोधमें भरे हुए भीष्म सृञ्जयोंके सामने गये॥२६॥
सृञ्जय हर्षमें भरे हुए भीष्मको देख कर शंखों सहित सिंहनाद
करने लगे ॥२७॥ हे राजन् ! जब सूर्य पश्चिम दिशाकी ओर जाने
लगा तब युद्ध अतीव भयंकर हो उठा, दोनों ओरके रथ और
हाथी घोलमेलमें पड़ गए ॥२८॥ पञ्चाल देशके धृष्टद्युम्न और
महारथी सात्यकि शक्ति, तोमर आदिकी वर्षाकर सेनाको अत्य-
न्त पीडित करने लगे ॥ २९ ॥ और हे राजन् ! अनेक शस्त्रों
की मारसे रणमें तुम्हारे सैनिकोंका संहार करने लगे हे भरत-
वंशमें श्रेष्ठ ! इस प्रकार पिटते हुए भी तुम्हारे योधा आर्यबुद्धि
(जीतेंगे तो यश मिलेगा और मरेंगे तो इन्द्रलोककी अप्सराओं
को पावेंगे ऐसी क्षात्रधर्मकी बुद्धि) को रख कर युद्धमेंसे पीछे
को नहीं हटे परन्तु शक्तिके अनुसार युद्ध करके पांडवोंके सैनिकों
को मारते थे ॥ ३०—३१ ॥ जब महात्मा धृष्टद्युम्नसे मारेजाते

वध्यतां समरे राजन् पार्षतेन महात्मना ॥ ३२ ॥ तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ ॥ ३३ ॥ तौ तस्य तुरगान् हत्वा त्वरमाणौ महारथौ छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम् ॥ ३४ ॥ अवप्लुत्याथ पाञ्चाल्यो रथात्तूर्णं महाबलः । आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेस्तु महात्मनः ॥ ३५ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः । आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात् स परन्तपौ ॥ ३६ ॥ तथैव तव पुत्रोऽपि सर्वोद्योगेन मारिष । विन्दानुविन्दौ समरे परिवार्यावतस्थिवान् ॥ ३७ ॥ अर्जुनश्चापि संक्रुद्धः क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः । अयोधयत संग्रामे वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ३८ ॥ द्रोणस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रस्य प्रियकृत्तव । व्यधमत् सर्वपाञ्चालांस्तूलराशिमिवानलः ॥ ३९ ॥ दुर्य्योधनपुरोगास्तु पुत्रास्तव विशाम्पते । परि-

---

हुए तुम्हारे योधाओंमें बड़ा हाहाकार मच रहा था ॥ ३२ ॥ तब तुम्हारे सैनिकोंके ऐसे हाहाकारको सुनकर उज्जैनके महारथी विन्द और अनुविन्द पञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नके ऊपर चढ़ आये ३३ और उसके घोड़ोंको मारकर, बाणोंकी वर्षासे उसको ढक दिया ॥ ३४ ॥ तब शीघ्रतासे अपने रथमेंसे कूद कर महाबली पांचालराजका पुत्र महात्मा सात्यकिके रथ पर शीघ्रतासे चढ़ गया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर बड़ी भारी सेनाको साथमें लेकर राजा युधिष्ठिर संग्राममें कोपमें भरे हुए परन्तप उज्जैनके कुमारोंके ऊपर दौड़े ॥ ३६ ॥ तैसे ही तुम्हारे पुत्र भी बड़े परिश्रमसे विन्द और अनुविन्दको घेरकर खड़ा होगया ३७ और क्षत्रिय श्रेष्ठ अर्जुन भी, असुरोंके साथ युद्ध करते हुए इन्द्रकी समान क्रोधमें भरकर दूसरे राजाओंसे युद्ध करता था ॥ ३८ ॥ और अग्नि जैसे रुईके ढेरको भस्म कर डालता है इस प्रकार द्रोणाचार्य सब पञ्चालों का विनाश करते थे ॥ ३९ ॥ तथा हे राजन् ! दुर्योधनके अधिपतिपनेमें रहने वाले तुम्हारे पुत्र, भीष्मको घेर कर पाण्डवोंके

वार्य रथो भीष्मं युयुधुः पाण्डवैः सह ॥ ४० ॥ ततो दुर्य्योधनो राजा लोहितायति भास्करे। अब्रवीत् तावकान् सर्वांस्त्वरध्वमिति भारत ॥ ४१ ॥ युध्यतान्तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम्। अस्तंगिरिमथारूढे अप्रकाशति भास्करे ॥ ४२ ॥ प्रावर्त्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी। गोमायुगणसङ्कीर्णा क्षणेन क्षणदामुखे ॥ ४३ ॥ शिवाभिरशिवाभिश्च रुवद्भिर्भैरवं रवम्। घोरमायोधनं जज्ञे भूतसंघैः समाकुलम् ॥ ४४ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च तथान्ये पिशिताशिनः। समन्ततो व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥४५॥ अर्जुनोऽथ सुशर्मादीन् राज्ञस्तान् सपदानुगान्। विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिविरं प्रति ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो भ्रातृभ्यां सहितस्तथा। ययौ स्वशिविरं राजा निशायां सेनया वृतः ॥ ४७ ॥ भीमसेनोऽपि राजेन्द्र दुर्योधनमुखान् रथान्। अवजित्य

साथ युद्ध करते थे ॥ ४० ॥ जब सूर्य अस्त होनेके लिये रक्त होने लगा, तब राजा दुर्योधनने अपने योधाओंको "शीघ्रता करो शीघ्रता करो" इस प्रकार कहकर उसकाया ॥ ४१ ॥ तब सब योधा सब उत्साहसे युद्ध करके रणमें दुष्कर कर्म करने लगे और जब सूर्य अस्ताचल पर चढ़ कर छिपने लगा तब सायङ्काल में रात्रि होने तक रणभूमिमें, खूनके समूहकी तरंगोंवाली रुधिर की महा भयानक नदीका प्रवाह बहने लगा और क्षण भरमें सहस्रों गीदड़ तहां इकट्ठे होगए ॥ ४२-४३ ॥ सहस्रों भूतोंके दलोंसे और भयङ्कर शब्द करती हुई गीदड़ियोंके भयङ्कर शब्दों से संग्राम अत्यन्त भयङ्कर प्रतीत होने लगा ॥ ४४ ॥ राक्षस, पिशाच तथा अन्य मांसाहारी जीव सैकड़ों और सहस्रों दीखने लगे ॥४५॥ इतनेमें श्री अर्जुन सुशर्मा आदि राजाओंको उनके पैदलों सहित हराकर सेनाके मध्यमें होकर अपने शिविरकी ओर चला गया ॥ ४६ ॥ रात्रि हुई कि-राजा युधिष्ठिर भी अपने दोनों भाइयोंके साथ सेनाको लेकर अपने डेरेको चले गये ॥ ४७ ॥ हे राजन्! भीमसेन भी दुर्योधन आदि महारथियोंको

ततः संख्ये ययौ स्वशिविरं प्रति ॥ ४८ ॥ दुर्योधनोऽपि नृपतिः परिवार्य महारणे । भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिविरं प्रति ॥ ४९ ॥ द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः । परिवार्य चमूं सर्वां प्रययुः शिविरं प्रति ॥ ५० ॥ तथैव सात्यकी राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । परिवार्य रणे योधान् ययतुः शिविरं प्रति ॥ ५१ ॥ एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह । पर्य्यवर्त्तन्त सहिता निशाकाले परन्तप ॥ ५२ ॥ ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा । न्यवसन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ॥ ५३ ॥ रक्षां कृत्वा ततः शूरान् न्यस्य गुल्मान् यथाविधि । अपनीय च शल्यानि स्नात्वा च विविधैर्जलैः ॥ ५४ ॥ कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे संस्तूयंतश्च बन्दिभिः । गीतवादित्रशब्देन व्यक्रीडन्त यशस्विनः ॥ ५५ ॥ मुहूर्तादिव तत्सर्वमभवत् स्वर्गसन्निभ-

और जीत और अपनी छावनीकी ओर चला गया ॥ ४८ ॥ राजा दुर्योधन भी अपने मनुष्योंके साथ भीष्मको घेरकर शीघ्रता से अपनी छावनीकी ओर चला गया ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार द्रोणाचार्य, उनका पुत्र, कृपाचार्य, शल्य, सात्वतवंशी कृतवर्मा अपनी सेनाओंको पीछेको लौटा कर अपनी २ छावनियों को चले गए, हे राजन् ! तैसे ही सात्यकि और धृष्टद्युम्न भी अपनी२ सेनाओंको पीछे को लौटाकर अपने २ तम्बुओंको चले गए ॥ ५०-५१ ॥ हे परन्तप ! जब रात होगई थी तब तुम्हारे पुत्र और पाण्डव संग्राममेंसे लौटे थे ॥५२॥ अपने २ डेरोंमें जाकर पाण्डव और कौरवोंके योधा आपसमें एक दूसरेकी प्रशंसा करते हुए बैठे थे ॥ ५३ ॥ तदनन्तर विधानके अनुसार रक्षाके लिये चौकीदारोंको नियत करके,शरीरमें चुभे हुए बाणोंको निकालकर, शूरवीर योधाओंने नाना प्रकारके जलोंसे स्नान किया था॥५४॥ तदनन्तर स्वस्तिवाचन किया गया और पीछेसे वंदियोंसे स्तुति किये जाते हुए, गाने बजानेके शब्दोंसे यशस्वी क्षत्रिय क्रीडा कर रहे थे ॥ ५५ ॥ उस समय वहां कोई युद्धका नाम भी नहीं लेता

कांचित्तत्राकुर्वन् महारथाः ॥ ५६ ॥ ते

भम् । न हि युद्धकथां
प्रसुप्ते बले तत्र परिश्रान्तजने नृप । हस्त्यश्वबहुले रात्रौ प्रेक्ष-
णीये बभूवतुः ॥ ५७ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमदिवस-
युद्धावहारे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच । परिणाम्य निशायान्तु सुखं सुप्ता जनेश्वराः ।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥ ततः शब्दो
महानासीत् सैन्ययोरुभयोर्नृप । निर्गच्छमानयोः संख्ये सागर-
प्रतिमो महान् ॥ २ ॥ ततो दुर्योधनो राजा चित्रसेनो विविंशतिः ।
भीष्मश्च रथिनां श्रेष्ठो भारद्वाजश्च वै नृप ॥ ३ ॥ एकीभूताः
सुसंयत्ताः कौरवाणां महाचमूम् । व्यूहाय विदधू राजन् पाण्डवान्
प्रति दंशिताः ॥४॥ भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशाम्पते ।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ॥ ५॥ अग्रतः सर्व सैन्यानां

था वह स्थल क्षणभरको स्वर्गकी समान प्रतीत होने लगा ५६
हे राजन् ! परिश्रमके कारण निद्रामें मग्न सेनाओंसे, योधाओंसे,
सहस्रों हाथी और अश्वोंसे, दोनों छावनियें रात्रिके समय अत्य-
न्त रमणीय लगती थीं ॥५७ ॥ छियासीवां अध्याय समाप्त ८६

सञ्जय कहता है कि—सुखरूप निद्रामें रात्रिको बिताकर शांत
हुए कौरव और पाण्डव पुनः युद्धके लिये उद्यत होकर छावनियों
मेंसे निकल पड़े.।१।।हे राजन् ! उस समय समुद्रके शब्दकी समान
संग्राममें जाती हुई दोनों सेनाओंमें बड़ा कोलाहल होरहा था।।२।।
हे राजन् ! तदनन्तर पाण्डवोंसे अतीव दंश(बैर)करने वाले दुर्यो-
धन, चित्रसेन, विविंशति, रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्म, भारद्वाज आदि
ने इकट्ठे होकर कौरवोंकी सेनाको व्यूहरचनासे खड़ा कर
दिया ३-४ तुम्हारे पिता भीष्मजीने हाथी घोड़े रूप तरङ्गोंवाला
महासागर नामक व्यूह रचा और स्वयं सब
सेनाओंको भयङ्कर

भीष्मः शान्तनवो ययौ। मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥ ६॥ ततोऽनन्तरमेवासीद्भारद्वाजः प्रतापवान्। कुलिंदैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ॥ ७॥ द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान्। मगधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते॥ ८॥ प्राग्ज्योतिषादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः। मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः॥९॥बृहद्बलात्ततः शूरस्त्रिगर्त्तः प्रस्थलाधिपः। काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः॥१०॥ द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रैगर्त्तादनु भारत। प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम्॥११॥ तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा। द्रौणेरनन्तरं प्रायात् सोदर्यैः परिवारितः॥ १२ ॥ दुर्योधनादनु ततः कृपः शारद्वतो ययौ। एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः ॥ १३ ॥ रेजुस्तत्र पताकाश्च श्वेतच्छत्राणि वा विभो। अङ्गदान्यत्र चित्राणि महार्हाणि धनूंषि च ॥ १४ ॥ तं तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः। युधिष्ठिरोऽब्र-

---

सेनाके आगे होकर चले तथा उनके चारों ओर मालव दक्षिण के राजे तथा अवन्ती के योधा रक्षकरूपसे चले ॥ ५॥ ६ ॥ उनके पीछे कुलिंद पारद क्षुद्रक तथा मालवोंको लेकर प्रतापवान् द्रोणाचार्य चले ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उनके पीछे मगध, कलिङ्ग, और पिशाचोंके साथ भगदत्त सावधान होकर चला ॥ ८ ॥ भगदत्तके पीछे काशलदेशका राजा बृहद्बल, मेकल, कुरुविंद, त्रैपुर आदिको साथमें लेकर चला, बृहद्बलके पीछे प्रस्थलका शूरवीर अधिपति त्रिगर्तराज सहस्रों कांबोज तथा यवनोंको लेकर चला ॥ १० ॥ उसके पीछे सिंहगर्जनसे पृथ्वीको गुञ्जारता हुआ द्रोणाचार्यका शूरवीर तथा वेगवान् पुत्र अश्वत्थामा चल रहा था ॥११॥ द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पीछे भाइयों सहित राजा दुर्योधन शेष सेनाको लेकर चलता था ॥ १२ ॥ और दुर्योधन के पीछे शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यजी चलते थे, इस प्रकार समुद्र की समान तुम्हारी सेनाओंका व्यूह रणभूमि पर चलरहा था॥१३॥ हे राजन् ! उन सेनादलोंमें पताकाएं श्वेत छत्र, चित्र विचित्र, बाजूबन्द तथा धनुष आदि शोभा देरहे थे ॥ १४॥ तुम्हारी सेना

वीत्तूर्ण पार्षतं पृतनापतिम् ॥ १५ ॥ पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मि
सागरोपमम् । प्रतिव्यूहन्त्वमपि हि कुरु पार्षत सत्वरम् ॥ १६
ततः स पार्षतः क्रूरो व्यूहञ्चक्रे सुदारुणम् । शृङ्गाटकं महाराज प
व्यूहविनाशनम् ॥ १७ ॥ शृङ्गाभ्यां भीमसेनश्च सात्यकिश्च महार
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा हयपदातिभिः ॥ १८ ॥ ताभ्यां बभौ न
श्रेष्ठ। श्वेताश्वः कृष्णसारथिः । मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ
पाण्डवौ ॥ १९ ॥ अथोत्तरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः
व्यूहं तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः ॥ २० ॥ अभिमन्युस्त
पश्चाद्विराटश्च महारथः । द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्क
२१ एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः । अतिष्ठन् समरे

के ऐसे प्रबल व्यूहको देखकर महारथी राजा युधिष्ठिरने अ
सेनापति धृष्टद्युम्नसे कहा कि-॥ १५ ॥ हे महाधनुर्धर ! बड़े
धनुर्धरोंसे रचे हुए इस समुद्रकी समान(कौरवोंके) व्यूहको देखे
और तुम भी शीघ्र ही उनके सामने अपनी सेनाको व
रचनासे खड़ी करदो ॥१६॥ हे राजन् ! तब उस क्रूर धृष्टद्युम्
शत्रुके व्यूहको नाश करनेवाला शृङ्गाटक नामका महादारुण व
बनाया ॥ १७ ॥ उस व्यूहके दोनों सींगोंके स्थान पर अने
सहस्र रथ तथा घोड़े और पैदलोंको लेकर भीमसेन और म
रथी सात्यकी खड़े हुए ॥ १८ ॥ और उन दोनोंके पा
जिसके सफेद घोड़े और श्रीकृष्ण सारथी हैं ऐसा अर्जुन वि
जमान हुआ तथा बीचमें माद्रीके दोनों पुत्रोंको लेकर युधि
खड़े हुए ॥ १९ ॥ व्यूहशास्त्रको जाननेवाले बड़े २ धनुषध
दूसरे राजोंने उस व्यूहको उत्तरकी ओरसे पूर्ण करदिया ॥२
तथा उसके पश्चिमके भागमें अभिमन्यु, महारथी राजा विर
द्रौपदीके पुत्र और राक्षस घटोत्कच यह खड़े हुए ॥ २१ ।
भारत ! जय चाहने वाले शूर पाण्डव इसप्रकार व्यूह रच

योद्धकामा जयैषिणः ॥ २२ ॥ भेरीशब्दैश्च विमलैर्विमिश्रैः शंख निःस्वनैः । क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैर्नादिताः सर्वतो दिशः ॥ २३ ॥ ततः शूराः समासाद्य समरे ते परस्परम् । नेत्रैरनिमिषै राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ २४ ॥ नामभिस्ते मनुष्येन्द्र पूर्वं योधाः परस्परम् । युद्धाय समवर्त्तन्त समाहूयेतरेतरम् ॥ २५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम् । तावकानां परेषाञ्च निघ्नतामितरेतरम् ॥२६॥ नाराचा निशिताः संख्ये सम्पतन्ति स्म भारत । व्यात्ताननां भयकरा उरगा इव संघशः ॥ २७ ॥ निष्पेतुर्विमला शक्त्यस्तैलधौता सुतेजनाः । अम्बुदेभ्यो यथा राजन् भ्राजमानाः शतह्रदाः ॥ २८ ॥ गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषितैः । पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिशृङ्गोपमाः शुभाः ॥ २९ ॥ निस्त्रिंशाश्च

लड़नेके लिये खड़े होगये ॥ २२ ॥ उस समय शङ्खों की ध्वनियोंसे मिलेहुए निर्मल भेरीके शब्दसे और ललकारनेके, भुजदंड ठोकनेके तथा जोर २ से पुकारनेके शब्दोंसे सब दिशायें गूँज उठीं ॥ २३ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर संग्राममें आमने सामने आकर खड़े हुए योधा पलक न मारकर टकटकी लगाये हुए देखनेलगे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! एक दूसरेका नाम ले ले कर परस्पर पुकारते हुए वह योधा युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ और परस्परमें एक दूसरेके प्राण लेनेवाले तुम्हारे पुत्रोंकी और पांडवों की सेनामें महाभयानक युद्ध होनेलगा ॥ २६ ॥ हे भारत ! मुख खोले इकट्ठे होकर भागते हुए भयानक सर्पोंकी समान तीखे बाण युद्धमें चारों ओर गिरने लगे ॥ २७ ॥ और तेलसे घिसकर चमकदार कीहुई अतितेज शक्तियें हे राजन् ! ऐसी गिरती थीं जैसे मेघपटलोंमेंसे बिजलियें गिर रहीं हों ॥ २८ ॥ और तहां पहाड़ोंके शिखरोंकी समान सुवर्णसे भूषित गाढे पड़ी हुई गदायें भी पड़रही थीं ॥ २९ ॥ हे भारत ! सैंकड़ों फुल्लियोंवाली विचित्र

व्यदृश्यन्त विमलाम्बरसन्निभाः । आर्षभाणि विचित्राणि शस्त्राणि भारत ॥ ३० ॥ अशोभन्त रणे राजन् पात्यमाना सर्वशः । तेऽन्योन्यं समरे सेने युध्यमाने नराधिप ॥ ३१ ॥ अशोभेतां यथा देवदैत्यसेने समुद्यते । अभ्यद्रवन्त समरे तेऽन्योन्यं समन्ततः ॥ ३२ ॥ रथास्तु रथिभिस्तूर्णं प्रेषिताः परमाहवे युगैर्युगानि संश्लिष्य युयुधुः पार्थिवर्षभाः ॥ ३३ ॥ दन्तिनां युध्यमानानां संघर्षाद् पावकोऽभवत् । दन्तेषु भरतश्रेष्ठ सधूमः सर्वतदिशम् ॥ ३४ ॥ प्रासैरभिहताः केचिद् गजयोधाः समन्ततः पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिशृङ्गान्नगा इव ॥ ३५ ॥ पादाताश्चाप्यदृश्यन्त निघ्नन्तोऽथ परस्परम् । चित्ररूपधराः शूरा नखरप्रासयोधिनः ॥ ३६ ॥ अन्योन्यन्ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः

ढालें और स्वच्छ आकाशकी समान आसमानी रङ्गकी भ्रष्ट मारतीं और चारों ओर पड़ती हुईं तलवारें भी तहां उछलती हु शोभा पा रही थीं हे राजन् ! रणमें परस्पर युद्ध करती हु दोनों सेनायें देवता और दानवोंकी सेनाकी समान शोभा पा लगीं और दोनों सेनायें एक दूसरीके ऊपर चारों ओरसे टू पड़ती थीं, देखते २ रथियोंने महा संग्राममें दौड़ाये हुए र आमने सामने जुड़ादिये, रथोंकी धुरियोंसे धुरियें अटका कर व बड़े राजे युद्ध करने लगे ॥ ३०-३३ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! आम सामने लड़ते हुए हाथियोंके दाँतोंकी रगड़से चारों ओर धु फैलाता हुआ अग्नि उत्पन्न होगया ॥ ३४ ॥ और प्रासके म से हाथियोंकी अंबारियोंमेंसे नीचे गिरते हुए योधा पहाड़ों शिखरों परसे गिरते हुए वृक्षोंकी समान दीखते थे ॥ ३५ चित्र विचित्र रूपधारी बाघनख और प्रासोंसे युद्ध करनेवाले पैद बड़ी ही शोभा पारहे थे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार आमने सामने आ हुए कौरव और पाण्डव योधाओंके नानाप्रकारके अस्त्रोंसे परस्प का संहार होने लगा ॥ ३७ ॥ इतनेमें ही रथकी घरघराहट

अस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम् ॥३७॥ ततः शान्तनवो-भीष्मो रथघोषेण नादयन् । अभ्यागमद्रणे पार्थान् धनुःशब्देन मोहयन् ॥ ३८ ॥ पाण्डवानां रथाश्चापि नदन्तो भैरवम् स्वनम् । अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥३९॥ ततः प्रवर्त्तते युद्धं तव तेषाञ्च भारत । नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम् ४०

इति श्रीमहाभारते भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धारम्भे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

सञ्जय उवाच । भीष्मन्तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः । न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम् ॥ १ ॥ ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् । अभ्यद्रवन्त गांगेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः ॥ २ ॥ स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान् सहसृञ्जयान् । पाञ्चालांश्च महेष्वासान् पातयामास सायकैः ॥ ३ ॥ ते वध्यमाना

सब दिशाओंको शब्दायमान करते भीष्मजी धनुषकी टङ्कारसे सबोंको मूर्छितसे करते हुए रणमें पाण्डवोंके सामने आये ३८ और धृष्टद्युम्न जिनका अधिपति था ऐसे पाण्डवोंके रथ भी तयार होकर बड़ाभारी घरघराहट करते हुए दौड़ादौड़ कर रहे थे ॥ ३९ ॥ हे भारत ! तदनन्तर तुम्हारे पुत्र और पाण्डवोंमें ऐसा युद्ध होनेलगा, कि—योधा, रथ, हाथी, घोड़े आदि एक सेनाके दूसरी सेनाके योधाओंसे मेल होनेलगे ॥ ४० ॥ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि—संग्राममें अत्यन्त क्रोधमें भरकर चारों ओरसे सन्ताप देते हुए भीष्मजीकी ओरको पाण्डव, तीव्रतासे तपतेहुए सूर्यकी समान देख भी नहीं सके ॥ १ ॥ तब सब सेनायें धर्मपुत्रकी आज्ञासे तीखे बाणोंकी वर्षा करती हुईं भीष्मजीके ऊपरको चढ़ आयीं ॥ २ ॥ रणमें प्रशंसा पानेवाले भीष्मने बाण छोड़कर सृञ्जय, सोमक और बड़े २ धनुषवाले पांचालोंको रणमें गिरादिया ॥ ३ ॥ तथा प्रहार होने पर सोमक

भीष्मेण पाञ्चालाः सोमकैः सह । भीष्ममेवाभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयम् ॥ ४ ॥ स तेषां रथिनाम्वीरो भीष्मः शान्तनवो युधि । चिच्छेद सहसा राजन् बाहूनथ शिरांसि च च ॥ ५ ॥ विरथान् रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव । पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम् ॥६॥ निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान् शयानान् पर्वतोपमान् । अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान् ॥ ७ ॥ न तत्रासीत् पुमान् कश्चित् पाण्डवानां विशाम्पते । अन्यत्र रथिनां श्रे ष्ठाद्भीमसेनान् महाबलात् ॥ ८ ॥ स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे । ततो निष्टानको घोरो भीष्मभीमसमागमे ॥९॥ बभूव सर्वसैन्यानां घोररूपो भयानकः ॥ तथैव पाण्डवा हृष्टाः सिंहनादमथानदन् ॥ १० ॥ ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः । भीष्मं जुगोप समरे वर्त्तमाने जनक्षये ॥ ११ ॥ भीमस्तु

और पाञ्चाल मृत्युका जरा भी भय न करते हुए भीष्मके ऊपर टूटपड़े ॥ ४ ॥ तब हे राजन् ! रणमें वीरता दिखानेवाले भीष्मने उन महारथियोंकी भुजाओंको और मस्तकों को सटासट काटना आरम्भ करदिया ॥ ५ ॥ तुम्हारे पिता देवव्रतने रथियोंको रथशून्य करडाला तथा घुड़सवारोंके शिर टपाटप घोड़ों परसे गिर नेलगे ॥ ६ ॥ हे महाराज ! भीष्मके अस्त्रोंसे मूर्छित हुए बिना महावतोंके हाथी जहाँ तहाँ पड़े हुए पहाड़से दीखते थे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस समय रथियोंमें श्रेष्ठ महाबली भीमके सिवाय पाण्डवों में का एक भी योधा तहां भीष्मके साथ लड़ता हुआ नहीं दीखता था ॥ ८ ॥ उसने रणमें भीष्मके पास जाकर उनके ऊपर प्रहार किया, तदनन्तर भीष्म और भीमका सामना होने पर सब सेना में भयानक कोलाहल मचगया तथा पांडव भी आनन्दित होकर सिंहकी समान गर्जना करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ जब रणमें इस कार मनुष्योंका संहार होनेलगा तब राजा दुर्योधन अपने भाइयों को साथ लेकर भीष्मजीकी रक्षा करनेलगा ॥ ११ ॥ हे भारत !

सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनाम्वरः । विद्रुताश्वे रथे तस्मिन् द्रवमाणे समन्ततः॥१२॥सुनाभस्य शरेणाशु शिरश्चिच्छेद भारत। क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ।१३। हते तस्मिन् महाराज तव पुत्रे महारथे । नामृष्यन्त रणे शूराः सोदराः सप्त संयुगे॥१४॥ आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः । अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः ॥ १५ ॥ पाण्डवं चित्रसन्नाहा विचित्र-कवचध्वजाः । अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारिमर्दनाः ॥ १६ ॥ महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः । नवभिर्वज्रसङ्काशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥ १७ ॥ आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चापि पञ्चभिः । नवत्या कुण्डधारश्च विशालाक्षश्च पञ्चभिः ॥ १८ ॥ अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथम् ।। शरैर्बहुभिरानर्च्छ-

---

उसी समय रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेनने भीष्मजीके सारथिको मार डाला तब उनके रथके घोड़े सारथिहीन रथको लिये हुए संग्राम मेंसे भागनिकले ॥ १२ ॥ इतनेमें ही भीमसेनने बड़ा तेज बाण छोड़कर सुनाभ नामके तुम्हारे पुत्रका शिर फाटडाला और वह घायल होकर भूमिपर डहपड़ा ॥ १३ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे उस महारथी पुत्रके मारे जाने पर उसके सात शूर सहोदर भाई इस बातको सह नहीं सके ॥ १४ ॥ आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और किसीके जीतनेमें न आनेवाला विशालाक्ष भी चित्र विचित्र कवच पहर कर तथा अनेकों प्रकारकी ध्वजायें लेकर लड़ने के लिये पाण्डुनन्दनके सामने चढ़ आये ॥ १५ ॥ १६ ॥ जैसे इन्द्रने नमुचिको घायल करडाला था तैसे ही महोदर ने वज्रसमान नौ बाण छोड़कर भीमको घायल करडाला ॥ १७ ॥ आ-दित्यकेतुने सत्तर, बह्वाशीने पांच, कुण्डधारने नब्बै, विशा-लाक्षने पांच और हे महाराज ! पराजय करना चाहनेवाले अप-राजितने अनेकों बाण छोड़कर महारथी महाबली भीमसेनको

भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥ रणे पण्डितकश्चैनं त्रिभिर्बाणैः समार्पयत् । स तन्न मसृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे ॥ २० ॥ धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः । शिरश्चिच्छेद समरे शरेणानतपर्वणा ॥ २१ ॥ अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे । पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम् ॥ २२ ॥ अथापरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम् । प्राहिणोन्मृत्युलोकाय स लोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥ ततः पुनरमेयात्मा प्रसन्धाय शिलीमुखम् । प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत ॥ २४ ॥ स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम् । यथा नरं निहत्याशु भुजगः कालचोदितः ॥ २५ ॥ विशालाक्षशिरश्छित्वा पातयामास भूतले । त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन् क्लेशं पुरातनम् ॥ २६ ॥ महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे । विव्याध समरे राजन् १

छादिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ पण्डितकने रणमें, इसके तीन बा मारे, इसप्रकार शत्रु जो रणमें उसका वध करना चाहते थे, इ बातको भीमसेन नहीं सहसका ॥ २० ॥ इसकारण उस शत्रुन शकने बायें हाथसे धनुषको खेंच बाण छोड़कर तुम्हारे पु अपराजितका सुन्दर नासिकावाला शिर काटदिया, तब भीम पराजय पाये हुए तुम्हारे पुत्रका वह शिर भूमिपर गिरपड़ा ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब सबके देखते हुए भीमने दूसरा बाण छोड़, महारथी कुण्डधारको यमालयमें भेजदिया ॥ २३ ॥ हे भारत तदनन्तर महासाहसी भीमने फिर दूसरा बाण चढ़ाकर पण्डि कके ऊपर छोड़ा ॥ २४ ॥ जैसे कालका भेजा हुआ सांप मनु के प्राण लेकर बिलमें घुसजाता है तैसे ही वह बाण उसके प्रा लेकर भूमिमें घुसगया ॥ २५ ॥ और पहिले वैरको याद क हुए उदारचित्त भीमने तीन बाण छोड़कर विशालाक्षका भी ि काटकर भूमिमें गिरादिया ॥ २६ ॥ हे राजन्! फिर भी सेनने और बाण छोड़कर बड़े धनुषवाले महोदरकी छात

हतो न्यपतद्भुवि॥२७॥आदित्यकेतोः केतुं च छित्वा वाणेन संयुगे। भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद भारत ॥ २८ ॥ बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणानतपर्वणा । प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥ प्रदुद्रुवुस्ततस्तेन्ये पुत्रास्तव विशाम्पते । मन्यमाना हि तत्सत्यं सभायां तस्य भाषितम् ॥ ३० ॥ ततो दुर्योधनो राजा भ्रातृव्यसनकर्शितः। अब्रवीत्तावकान् योधान् भीमोयं युधि वध्यताम् ॥ ३१ ॥ एवमेते महेष्वासाः पुत्रास्तव विशाम्पते। भ्रातॄन् सन्दृश्य निहतान् प्रास्मरंस्ते हि तद्वचः ॥ ३२ ॥ यदुक्तवान् महाप्राज्ञः क्षत्ता हितमनामयम् । तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दिव्यदर्शिनः ॥ ३३॥ लोभमोहसमाविष्टः पुत्रप्रीत्या धनाधिप। न बुध्यसे पुरा यत्तत् तथ्यमुक्तं वचो महत् ॥ ३४ ॥ तथैव च वधार्थाय पुत्राणां

प्रहार किया तब वह भी रणमें घायल होकर भूमिमें गिरपड़ा ॥ २७ ॥ हे भारत ! फिर भीमने आदित्यकेतुकी ध्वजाको फाड़डाला और एक बाण छोड़कर उसके मस्तकको उड़ादिया २८ फिर और एक नमी हुई गांठ वाले बाणसे बह्वाशीको भी क्रोधमें भरकर यमधाममें पहुंचादिया ॥ २९ ॥ इसप्रकार कौरवोंके शिर जरा देरमें काटडालनेके कारण भीमने सभामें जो कहा था, वह आज ही सत्य करदिखावेगा, ऐसा विचार कर आपके और पुत्र तुरन्त रणमें से भागगये ॥ ३० ॥ अपने भाइयोंके मरणसे अत्यन्त दुःखी हुए राजा दुर्योधनने अपने योधाओंसे कहा; कि- इस भीमको मारडालो ॥ ३१ ॥ परन्तु हे महाराज ! अपने भाइयोंको इसप्रकार रणमें पड़ेहुए देखकर तुम्हारे धनुषधारी पुत्र, पहिले महाप्राज्ञ विदुरने जो हितके वचन कहे थे, उनको याद करने लगे और उनको दिव्यदर्शी विदुरने जो कुछ भी कहा था सब सत्य होगा ऐसा निश्चय होगया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और हे राजन् ! लोभ तथा मोहसे घिरे हुए आप पुत्रके ऊपर प्रेमके कारण अन्धे हो रहे हो तथा अभीतक पहिले आपसे जो सत्य वचन कहा था उसके तत्त्वको आंख खोलकर नहीं देखते हो

पाण्डवो बली। नूनं जातो महाबाहुर्यथा हन्ति स्म कौरवान॥३५॥ ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य संयुगे। दुःखेन महताविष्टो विललाप सुदुःखितः॥३६॥ निहता भ्रातरः शूरा भीमसेनेन मे युधि। यतमानास्तथान्येऽपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः॥३७॥ भवांश्च मध्यस्थतया नित्यमस्मानुपेक्षते। सोऽहं कुपथमारूढः पश्य दैवमिदं मम॥३८॥ एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पितादेवव्रतस्तव। दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् साश्रुलोचनः॥३९॥ उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च। गान्धार्या च यशस्विन्या तत्त्वं तात न बुद्धवान्॥४०॥ समयश्च मया पूर्वं कृतो वै शत्रुकर्शन। नाहं युधि नियोक्तव्यो नाप्याचार्यः कथञ्चन॥४१॥ यं यं हि धार्त्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे। हनिष्यति रणे नित्यं सत्य-

॥३४॥ महाबाहु भीम तुम्हारे कौरवोंका नाश कर रहा है, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि-यह तुम्हारे पुत्रोंका नाश करनेके लिये ही इस लोकमें जन्मा है॥३५॥ उसी समय राजा दुर्योधन अत्यन्त दुःखित हो रणमें ही भीष्मजीके आगे जाकर विलाप करने लगा॥३६॥ कि-भीमसेनने संग्राममें मेरे शूर भाइयोंको मारडाला, तथापि दूसरे लड़नेका उद्योग कर रहे हैं और वह सब सैनिकोंको मारडालता है॥३७॥ तथा आप नित्य मध्यस्थ बने रहकर मेरी उपेक्षा करते हैं, इस समय मैं कुमार्गमें आपड़ा हूं, मेरे इस दुर्दैवको देखिये॥३८॥ सञ्जय कहता है, कि—दुर्योधनके इस क्रूर वचनको सुनकर तुम्हारे पिता देवव्रत आंखोंमें आंसू भरकर यह बात बोले, कि-॥३९॥ मैंने, द्रोणने, विदुरने तथा गान्धारीने तुमसे पहिले ही कहा था, कि-ऐसा होगा, परन्तु बेटा! तूने उस पर ध्यान ही नहीं दिया॥४०॥ और हे शत्रुनाशन! पहिले हमने पक्का ही कर लिया था, कि-मुझे और द्रोणाचार्यको युद्धमें न लगाना॥४१॥ तेरे पक्षके जो जो मनुष्य रणमें भीमसेनकी दृष्टि पड़ेंगे

मेतद्ब्रवीमि ते ॥४२॥ स त्वं राजन् स्थिरो भूत्वा रणे कृत्वा दृढां मतिम्। योधयस्व रणे पार्थान् स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥४३॥ न शक्या पाण्डवा जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः। तस्माद्युद्धे स्थिरां कृत्वा मतिं युध्यस्व भारत ॥ ४४ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि आदित्य-केतुप्रभृतिवधे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। दृष्ट्वा मे निहतान् पुत्रान् बहूनेकेन सञ्जय। भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव किमकुर्वत संयुगे ॥१॥ अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति सञ्जय। मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम्॥२॥ यत्र मे तनयाः सर्वे जीयन्ते न जयन्त्युत। यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥ सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः। अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ४ ॥ अन्येषाञ्चैव शूराणां मध्यगास्तनया मम। यदहन्यन्त संग्रामे किम-

---

उनको यह नित्य ही मारेगा, यह बात मैं तुझसे सत्य कहता हूं ॥ ४२ ॥ इस कारण हे राजन्! तू धीरज रखकर स्वर्गपरायण होनेकी इच्छासे लड़नेका दृढ़ निश्चय कर और इनके साथ युद्ध कर ॥ ४३ ॥ इन्द्रसहित देवता तथा असुर मिलकर भी पाण्डवों को नहीं जीत सकते इसलिये हे भारत! तू रणमें स्थिर बुद्धि रखकर युद्ध कर ॥ ४४ ॥ अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय! अकेले भीमने रणमें मेरे बहुतसे पुत्रोंको मारडाला, यह देखकर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यने क्या किया? ॥ १ ॥ हे सञ्जय! प्रतिदिन मेरे पुत्र मारे जाते हैं, हे सूत! मैं समझता हूं यह सब दुर्दैवके चुङ्गलमें फँसगये हैं ॥२॥ जब कि–मेरे पुत्रोंको शत्रु जीत रहे हैं और वह शत्रुओंको नहीं जीतते और भीष्म, द्रोण, महात्मा कृपाचार्य, वीर भूरिश्रवा तथा भगदत्त, अश्वत्थामा आदि पीछेको चरण न रखनेवाले अनेकों शूर योधाओंके मध्यमें रहने परभी मेरे पुत्र रणमें मर रहे हैं,

न्यज्ञागधेयतः ॥ ५ ॥ नहि दुर्योधनो मन्दः पुरा प्रोक्तमबुध्यत वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च ॥ ६ ॥ गांधार्या चैव दुर्मेधा सततं हितकाम्यया । नाबुध्यत पुरा मोहात् तस्य प्राप्तमिदं फलम् ॥ ७॥ यद्भीमसेनः समरे पुत्रान्मम विचेतसः । अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम् ॥ ८ ॥ संजय उवाच । इदं तत्समनुप्राप्तं क्षत्तुर्वचनमुत्तमम् । न बुद्धवानसि विभो प्रोच्यमानं हि तं तदा ॥ ९ ॥ निवारय सुतान् द्यूतात् पाण्डवान् मा द्रुहेति च ॥ सुहृदां हितकामानां ब्रुवतां तत्तदेव च ॥ १० ॥ न शुश्रूषसि यद्वाक्यं मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् । तदेव त्वामनुप्राप्तं वचनं साधुभाषितम् ॥ ११ विदुरद्रोणभीष्माणां तथान्येषां हितैषिणाम् । अकृत्वा वचनं पथ्यं क्षयं गच्छन्ति कौरवाः १२ तदेतत् समनुप्राप्तं पूर्वमेव विशाम्पते ।

इसको प्रारब्धके सिवाय और क्या कहा जाय ? ॥ १-५ ॥ हे तात ! मन्दबुद्धि दुर्योधनको मैंने, भीष्मने तथा विदुरने पहिले ही बहुतेरा रोका था. परन्तु उसने माना ही नहीं ॥ ६ ॥ और परमबुद्धिमती गांधारीने उसके हितकी इच्छासे उसे रोका था तो भी अज्ञानसे अन्धा होकर उसने उसकी बात नहीं मानी तभी तो आज यह फल भोगना पड़ा है।॥७॥ और कोपमें भरा हुआ भीमसेन मेरे बुद्धिहीन पुत्रोंको प्रतिदिन यमधाममें पहुंचा रहा है ॥८॥ सञ्जय कहता है,कि-हे विभो! आपसे भी पहिले ही हितके वचन कहे थे परन्तु तुमने नहीं माना, तभी तो क्षत्ता (विदुर के यह वचन आज सच्चे हो रहे हैं ॥ ९ ॥ अपने पुत्रोंको जुआ खेलनेसे रोको और पाण्डवोंसे द्वेष न करो, यह बात हित चाहने वाले मित्रोंने तुमसे कही थी, परन्तु जैसे मरने वाला मनुष्य पथ्य औषधका अनादर करता है तैसे ही तुमने उस बातका अनादर किया, परन्तु वही साधुवचन आज तुम्हारे सामने आ रहे हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ विदुर, द्रोण, भीष्म तथा दूसरे हितैषियोंकी हितकी बात न माननेसे आज कौरवोंका नाश होरहा है ॥ १२ ॥

तस्मात्त्वं शृणु यत्नेन यथा युद्धमवर्त्तत १३ मध्याह्ने सुमहारौद्रः संग्रामः समपद्यत। लोकक्षयकरो राजंस्तन्मे निगदतः शृणु १४ ततःतावाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् । संरब्धान्यभ्यवर्त्तत भीष्ममेव जिघांसया ॥१५॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः । युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः॥१६॥ विराटो द्रुपदश्चैव सहिताः सर्वसोमकैः । अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीष्ममेव महारथम् १७ केकया धृष्टकेतुश्च कुंतिभोजश्च दंशितः। युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः॥१८॥अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च वीर्यवान् । दुर्योधनसमादिष्टान् राज्ञः सर्वान् समभ्ययुः ॥ १६ ॥ अभिमन्युस्तथा शूरो हैडिम्बश्च महारथः । भीमसेनश्च संक्रुद्धस्तेभ्यधावन्त कौरवान् ॥ २० ॥ त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि।

हे राजन् ! वह पहिले कहे हुए वचन आज सच्चे हो रहे हैं, अब जिस प्रकार युद्ध होने लगा, उसको तुम यथावत् सुनो ॥ १३ ॥ हे महाराज ! मध्यान्हकाल होने पर लोकोंका क्षय करने वाला महाघोर संग्राम होने लगा, उसको मैं कहता हूं, सुनो ॥ १४ ॥ युधिष्ठिरकी आज्ञासे सब सेनायें बड़े आवेशमें आकर भीष्मको ही वध करनेके लिये उनके ऊपर चढ़गयीं ॥१५॥ हे महाराज ! धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, महारथी सात्यकि आदि अपनी २ सेनाओं को लेकर भीष्मजीके साथ युद्ध करनेको चलदिये ॥ १६ ॥ राजा विराट, राजा द्रुपद, और सब सोमक भी रणमें महारथी भीष्मके साथ युद्ध करनेको दौड़ गये ॥ १७ ॥ हे महाराज ! केकय, धृष्टकेतु और दंश रखने वाला राजा कुन्तिभोज ये सब सेनाओंके साथ भीष्मके ऊपरको चढ़ चले ॥१८॥ अर्जुन द्रौपदी के पुत्र और वीर्यवान् चेकितान ये सब दुर्योधनकी अधीनतामें रहनेवाले राजाओंके ऊपर चढ़गये ॥१६॥ अभिमन्यु, महारथी हिडिम्बाका पुत्र और क्रोधमें भरा हुआ भीमसेन वीरोंके कौरवों के सामने आकर खड़े होगये ॥ २० ॥ इस प्रकार तीन भागों में

तथैव कौरवा राजन्नवध्यन्त परे रणे ॥ २१ ॥ द्रोणस्तु रथिनः
श्रेष्ठान् सोमकान् सृञ्जयैः सह । अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन्
यमक्षयम् ॥२२॥ तत्राक्रन्दो महानासीत् सृञ्जयानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन् भारद्वाजेन धन्विना ॥२३॥ द्रोणेन निहता-
स्तत्र क्षत्रिया बहवो रणे । विचेष्टन्तो व्यदृश्यन्त व्याधिक्लिष्टा
नरा इव ॥२४॥ कूजतां क्रन्दताञ्चैव स्तनताञ्चैव भारत । अनिशं
शुश्रुवे शब्दः क्षुत्क्लिष्टानां नृणामिव ॥ २५ ॥ तथैव कौरवे-
याणां भीमसेनो महाबलः । चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवा-
परः ॥ २६ ॥ वध्यतां तत्र सैन्यानामन्योन्येन महारणे । प्रावर्त्तत
नदी घोरा रुधिरौघप्रवाहिनी ॥ २७ ॥ स संग्रामो महाराज घोर-
रूपोऽभवन्महान् । कुरूणां पाण्डवानाञ्च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥२८ ॥

कटेहुए पाण्डवोंने कौरवोंको मारना आरम्भ करदिया तथा
कौरव भी रणमें अपने वैरियोंका संहार करने लगे ॥ २१ ॥
सोमक और सृञ्जय सरीखे श्रेष्ठ रथियोंके सामने द्रोणाचार्य
आये और कोपमें भरकर उनको यमपुरीमें पहुंचाने लगे ॥२२॥
जब धनुषधारी भारद्वाज (द्रोण) इसप्रकार संहार करने लगे
तब महात्मा सृञ्जयोंमें बड़ा हाहाकार होने लगा ॥२३॥ द्रोणाचार्य
के हाथसे रणमें मरेहुए क्षत्रिय रोगपीड़ित मनुष्योंकी समान
जिधर तिधर लोटते हुए दीखते थे ॥ २४ ॥ रोते, हाय
हाय करते और चीखें मारते हुए हजारों मनुष्योंके शब्द, भूखे
मरते हुए मनुष्योंके दुःखभरे हाहाकारोंकी समान जहां तहां
सुनाई आते थे ॥ २५ ॥ तथा मानों दूसरा काल ही हो ऐसा
महाबली भीमसेन क्रोधमें भरकर कौरवोंका घोर संहार करने
लगा ॥ २६ ॥ महारणमें परस्परका संहार करने वाली दोनों
सेनाओंके रुधिरके प्रवाहकी बड़ी भारी नदी बहने लगी ॥२७॥
हे महाराज ! कौरव और पाण्डवोंका यह संग्राम बड़ा ही घोर
रूप और यमराजकी बसतीको बढ़ाने वाला हुआ ॥ २८ ॥

ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः । गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २९ ॥ तत्र भारत भीमेन नाराचभिहता गजाः । पेतुर्नेदुश्च सेदुश्च दिशश्च परिबभ्रमुः ॥ ३० ॥ छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नगात्राश्च मारिष । क्रौञ्चवद्व्यनदन्भीताः पृथिवी-मधिशेरते ॥ ३१ ॥ नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ । ते हयाः काञ्चनापीडा रुक्मभाण्डपरिच्छदाः ॥ ३२ ॥ वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः । पतद्भिस्तुरगै राजन् समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ३३ ॥ निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः । हयैर्बभौ नरश्रेष्ठ नानारूपधरैर्धरा ॥ ३४ ॥ अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत राजभिः । प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ३५ ॥ रथैर्भग्नैर्ध्वजैश्छिन्नैर्निकृत्तैश्च महायुधैः । चामरैर्व्यजनैश्चैव छत्रैश्च

तदनन्तर रणमें क्रोधमें और बडे ही वेगमें भरा हुआ भीमसेन हाथियोंकी सेनामें पहुंचकर उनको मृत्युके अर्पण करने लगा ॥ २९ ॥ हे भारत ! इस संग्राममें भीमने जिनको बाणोंसे काट डाला था ऐसे कितने ही हाथी भूमि पर पडे हुए चीखें मार रहे थे, कितने ही वेदनाको भोगरहे थे और कितने ही इधर उधर दिशा-ओंमें को भाग रहे थे ॥ ३० ॥ और कितने ही कटी हुई सूंडों वाले तथा छिदे हुए अङ्गों वाले बडे २ हाथी क्रौंच पक्षी की समान चीखें मारते हुए डरके मारे भूमि पर पडे थे ॥ ३१ ॥ नकुल सहदेव तुम्हारे घुडसवारोंके रिसाले पर टूटपडे थे, सोने के साजवाले और सोनेके टोप तथा झूलों वाले लाखों घोडे रणमें कट २ कर गिर रहे थे, मरते और गिरते हुए घोडोंसे सब रणभूमि छागयी थी ॥ ३२-३३ ॥ और हे नरेन्द्र! कटी हुई जीभों वाले, श्वास छोडते, चीखें मारते तथा मरनेको पडे हुए अनेकों प्रकारके घोडोंसे भूमि शोभायमान भी दीखती थी ॥ ३४ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुनके मारे हुए अनेकों राजाओंसे यह घोर रणभूमि जहां तहां बडी ही शोभा पारही थी ॥ ३५ ॥ टूटे

सुमहाप्रभैः ॥ ३६ ॥ हारैर्निष्कैः सकेयूरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः । उष्णीषैरपविद्धैश्च पताकाभिश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥ अनुकर्षैः शुभै राजन् योक्त्रैश्चैव सरश्मिभिः । संकीर्णा वसुधा भाति वसन्ते कुसुमैरिव ॥ ३८ ॥ एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डूनामपि भारत । क्रुद्धे शान्तनवे भीष्मे द्रोणे च रथसत्तमे ॥ ३९ ॥ अश्वत्थाम्नि कृपे चैव तथैव कृतवर्मणि । तथेतरेषु क्रुद्धेषु तावकानामपि क्षयः ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टम-दिवसयुद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने तथा रौद्रे राजन वीरवरक्षये । शकुनिः सौबलः श्रीमान पाण्डवान् समुपाद्रवत् ॥ १ ॥ तथैव सात्वतो राजन् हार्दिक्यः परवीरहा । अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानां वरूथिनीम् ॥२॥ ततः काम्बोजमुख्यानां नदीजानाञ्च वाजिनाम् ।

हुए रथ, कटी हुई ध्वजायें, टूटे हुए बड़े २ शस्त्र, चमर, पंखे, अतिचमकीले बड़े २ छत्र, बाजूबन्द, छातीके गहने और कुण्डलों सहित पड़े हुए मस्तकोंसे, पड़ी हुई पगड़ियों और पताकाओंसे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सुन्दर अनुकर्ष, रथकी रासें और धुरियोंसे छायी हुई रणभूमि ऐसी शोभा पारही थी जैसे वसन्तमें फलोंसे वन शोभा पाता है ॥ ३८ ॥ जिससमय शन्तनुनन्दन भीष्म, रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा आदिने क्रोधमें भरकर युद्ध करना आरंभ किया उस समय पाण्डवोंका भी क्षय होनेलगा और दूसरे पक्षवाले भी जब क्रोधके आवेशमें आये तो तुम्हारे पक्ष वालोंका भी ऐसा ही संहार हुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नवासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! जब उत्तम २ वीरोंका महाभयङ्कर क्षय होनेलगा तब सुबलका पुत्र शकुनि पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेको चढ़ आया ॥ १ ॥ तथा शत्रुके योधाओंका नाश करने वाला सात्वतवंशी हार्दिक्य भी पाण्डवोंकी सेनाके सामने युद्ध करनेको दौड़ आया ॥ २ ॥ फिर तुम्हारी ओरके कितने

आरट्टानां महीजानां सिन्धुजानाञ्च सर्वशः ॥ ३ ॥ वनायुजानां शुभ्राणां तथा पर्वतवासिनाम् । वाजिनां बहुभिः संख्ये समन्तात् परिवारयन् ॥ ४ ॥ ये चापरे तित्तिरिजा जवना वातरंहसः । सुवर्णालंकृतैरेतैर्वर्मवद्भिः सुकल्पितैः ॥ ५ ॥ हयैर्वातजवैः मुख्यैः पाण्डवस्य सुतो बली । अभ्यवर्तत तत्सैन्यं हृष्टरूपः परन्तपः ॥ ६ ॥ अर्जुनस्य सुतः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान् । स्नुषायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥ ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना । पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥ ८ ॥ भार्यार्थं तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगाम् । एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रे-

ही योधा क्षणभर हँसकर बहुतसे घुड़सवारोंके साथ जिनमें कांबोज देशमें पले हुए, सिंधुदेशमें उत्पन्न हुए तथा आरट्टोंकी जातिके मही जातिके, सिंधुजातिके, धौले रंगके, वनायुदेशके तथा पहाड़ी जातिके घोड़े थे उनको लेकर पाण्डवोंकी सेनाको चारों ओरसे घेरने लगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ तथा तित्तिरिज नामके पवनकी समान वेगवाले, सुवर्णके बखतर और साजवाले मुख्य२ घोड़ोंको लेकर अर्जुनका बलवान् श्रीमान् तथा परन्तप पुत्र इरावान् अतिआनन्द पाकर उस सेनाके पीछेको चला अर्जुनको यह इरावान् नामका सुन्दर और धीर वीर पुत्र नागराजकी पुत्रीके पेटमें अर्जुनसे उत्पन्न हुआ था ॥ ५—७ ॥ सुपर्ण (गरुड) ने नागराजकी पुत्रीके पतिको मार डाला था, इसकारण वह अत्यन्त दीन और कृपण होगयी था, उसके पेटसे कोई सन्तान न होनेके कारण महात्मा ऐरावतने वह कन्या अर्जुनको देदी थी ॥ ८ ॥ कामवश हुई उस स्त्रीको अर्जुनने अपनी भार्या रूपसे स्वीकार कर लिया था और अर्जुनसे यह कुमार उस ही परक्षेत्र (१)

(१) अर्जुनका यह कार्य भारतवासी द्विजोंके अनुकरणयोग्य नहीं है, क्योंकि-पाण्डवोंके समयकी बहुतसी घटनायें अमानुषी हुईं थीं तथा उनके द्वारा भारतके क्षयका सूत्रपात हुआ था, उन विशेष घटनाओंका अनुकरण कभी मानवी धर्मशास्त्रानुकूल नहीं होसकता।

र्जुनात्मजः ॥ ६ ॥ स नागलोके संवृद्धो मात्रा च परिरक्षितः । ऐरावतेन रुपवान् पितृव्येण परित्यक्तः पार्थद्वेषाद् दुरात्मना ॥ १० ॥ रूपवान् बलसम्पन्नो गुणवान् सत्यविक्रमः । इन्द्रलोकं जगामाशु श्रुत्वा तत्रार्जुनङ्गतम् ॥ ११ ॥ सोऽभिगम्य महाबाहुः पितरं सत्यविक्रमः अभ्यवादयदव्यग्रो विनयेन कृतांजलिः ॥ १२ ॥ न्यवेदयत चात्मानमर्जुनस्य महात्मनः । इरावानस्मि भद्रन्ते पुत्रश्चाहं तव प्रभो ॥ १३ ॥ मातुःसमागमो यश्च तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् । तच्च सर्वं यथावृत्तमनुसस्मार पाण्डवः ॥ १४ ॥ परिष्वज्य सुतञ्चापि आत्मनः सदृशं गुणैः । प्रीतिमाननयत् पार्थो देवराजनिवेशने ॥ १५ ॥ सोऽर्जुनेन समाज्ञप्तो देवलोके तदा नृप । प्रीतिपूर्वं महाबाहुः स्वकार्यं प्रति भारत ॥ १६ ॥ युद्धकाले त्वया-

---

में उत्पन्न हुआ था ॥ ६ ॥ उसकी माने उसको नागलोकमें पालकर बड़ा किया था, क्योंकि-अर्जुनके ऊपर द्वेष होनेके कारण इसके दुष्टात्मा चचाने इसको त्याग दिया था ॥ १० ॥ यह पुत्र सुन्दरता युक्त, महाबली, अनेकों प्रकारकी माया करने वाला और सत्यपराक्रमी था, जब इसने सुना कि-अर्जुन इन्द्रलोक में गया है तो यह सत्यपराक्रमी वीर भी तहाँ गया और तहाँ अर्जुनको विनयके साथ प्रणाम करके उस महात्मा को अपना सब वृत्तान्त सुनाकर कहा, कि-हे प्रभो ! मैं आपका इरावान् नामका पुत्र हूं आपका कल्याण हो ॥ ११—१३ ॥ फिर अपनी माताके साथ जो अर्जुनका समागम हुआ था, यह पहिला सब वृत्तान्त निवेदन किया, तुरन्त ही अर्जुनको पहिली सब बातें याद आगयीं ॥ १४ ॥ अपनी समान गुणों वाले कुमार को अर्जुनने छातीसे लगाया और फिर प्रसन्न होकर उसको इन्द्रभवनमें लिवागया ॥ १५ ॥ हे भारत ! स्वर्गलोकमें अर्जुनने प्रेमके साथ महाबाहु इरावान्से कहा, कि-जब मेरा कोई काम आकर पड़े तब युद्धके समय आकर तू सहायता करना, यह पिता

स्माकं सार्द्धं देयमिति प्रभो । बाढमित्येवमुक्त्वा तु युद्धकाल इहागतः ॥ १७ ॥ कामवर्णजवैरश्वैर्बहुभिः संवृतो नृप । ते हयाः काञ्चनापीडा नानावर्णा मनोजवाः ॥ १८ ॥ उत्पेतुः सहसा राजन् हंसा इव महोदधौ । ते त्वदीयान् समासाद्य हयसंघान् मनोजवान् ॥ १९ ॥ क्रोडैः क्रोडानभिघ्नन्तो घोणाभिश्च परस्परम् । निपेतुः सहसा राजन् सुवेगाभिहता भुवि ॥ २० ॥ निपतद्भिस्तथा तैश्च हयसंघैः परस्परम् । शुश्रुवे दारुणः शब्दः सुपर्णपतने यथा ॥ २१ ॥ तथैव तावका राजन् समेत्यान्योन्यमाहवे । परस्परवधं घोरं चक्रुस्ते हयसादिनः ॥ २२ ॥ तस्मिंस्तथा वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम् । उभयोरपि संशान्ता हयसंघा समन्ततः ॥ २३ ॥ मत्तोणसायकाः शूरा निहताश्वाः श्रमातुराः । विलयं समनुप्राप्ता-

की आज्ञाको शिरपर चढ़ाकर अपने लोकको चलागया, उस ही पहिली आज्ञाके अनुसार अब इस युद्धके समयमें आया है॥१६॥ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह इच्छानुसार वेग और रङ्ग वाले बहुतसे घोड़ोंको लेकर इस संग्राममें लड़नेके लिये आया है, हे राजन् ! वह घोड़े सोनेके साज वाले, अनेकों रङ्गके और मनकी समान वेगवाले थे ॥ १८ ॥ जैसे हंस महासागरमें एकसाथ उड़ते हैं तैसे ही वह घोड़े रणमें वेगसे चलने लगे और वह तुम्हारे मनकी समान वेगवाले घोड़ोंके सामने आकर छातीसे छाती और नाक से नाक मिलाकर लड़नेलगे और वेगसे लड़ते हुए वह घोड़े टपाटप पृथिवी पर गिरनेलगे ॥ १९ ॥ २० ॥ इन गिरते हुए घोड़ों के समूहका शब्द गरुड़के गिरनेकी समान मालूम होता था ॥२१॥ इसी प्रकार हे राजन् ! तुम्हारे घुड़सवार भी शत्रुके घुड़सवारोंके सामने आकर रणमें परस्परका संहार करने लगे ॥ २२ ॥ जब तुम्हारे और उनके घोड़ोंका भयानक युद्ध होने लगा तब दोनों ओरके घोड़ोंका समूह नष्ट होगया ॥ २३ ॥ जिनके बाण निवड़ गये और घोड़े मरगये थे ऐसे परस्परका संहार करते हुए योधा,

स्तन्नमाणाः परस्परम् ॥२४॥ ततः क्षीणे हयानीके किञ्चिच्छेषे भारत। सौबलस्यानुजाः शूराः निर्गता रणमूर्द्धनि ॥ २५ ॥ वायुवेगसमस्पर्शान् जवे वायुसमांश्च ते। आरुह्य बलसम्पन्ना वयःस्थांस्तुरगोत्तमान्। गजो गवाक्षो वृषभश्चर्मवानार्ज्जवः शुकः षडेते बलसम्पन्ना निर्ययुर्महतो बलात् ॥ २७ ॥ वार्य्यमाणा शकुनिना तैश्च योधैर्महाबलैः। सन्नद्धा युद्धकुशला रौद्ररू महाबलाः ॥ २८ ॥ तदनीकं महाबाहो भित्त्वा परमदुर्ज्जयम् बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः ॥ २९ ॥ विविशुस्ते तद् दृष्ट्वा गान्धारा युद्धदुर्मदाः। तान् प्रहृष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान् ॥ ३० ॥ अब्रवीत् समरे योधान् विचित्रान् दारुणायुधान्

परिश्रमके कारण थक २ कर टपाटप रणभूमिमें गिरनेलगे ॥२४॥ हे राजन् ! इसप्रकार नाशको प्राप्त होती हुई घोड़ोंकी सेना ज कुछ ही शेष रहगयी तब वायुकी समान वेगवाले बलवान् तथ जवान घोड़ों पर बैठकर शकुनिके शूर सेवक रणके अग्रभाग दौड़ते हुए चले आये ॥ २५ ॥ २६ ॥ गज, गवाक्ष, वृषभ, चर्मवान्, आर्जव और शुक ये छहों बलवान् भाई कौरवसेनामें निकलकर आगे आये ॥२७॥ शकुनि तथा दूसरे महाबली योधा उनकी सहायताके लिये आस पास चलरहे थे, युद्धमें चतुर, भयङ्कररूपवाले, महाबली तथा युद्धमें दुर्मद वह गान्धारदेशके सब योधा शरीर पर बख्तर पहिरे, स्वर्गकी या विजयकी अभिलाषा वाले पाण्डवोंकी सेनाकी पाँति तोड़कर उसके भीतर घुस गये, उन गान्धारोंको पाण्डवोंकी सेनामें घुसे हुए देखकर वीर इरावान् विचित्र तथा दारुण युद्ध करने वाले अपने योधाओंसे कहने लगा, कि -इन कौरवोंके सब योधाओंको तुम इस प्रकार घेरो, कि—जिसमें यह अनुयायी और वाहनों सहित रणमें मारे जायँ, इरावान्के वह सब योधा 'बहुत अच्छा' कहकर कौरवोंकी कठिनसे जीती जाने वाली सेनाके ऊपर टूटपड़े, अपनी सेनाको

यथैते धार्त्तराष्ट्रस्य योधाः सानुगवाहनाः ॥ ३१ ॥ हन्यन्ते समरे सर्वे तथा नीतिर्विधीयताम् । बाढमित्येवमुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः ॥ ३२ ॥ जघ्नुस्तेषां बलानीकं दुर्ज्जयं समरे परैः । तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम् ॥ ३३ ॥ अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्यात्मजा रणे । इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्य्यवारयन् ॥ ३४ ॥ ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परम् । ते शूराः पर्य्यधावन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ३५ ॥ इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः । स्रवता रुधिरेणाक्तस्तोत्रैर्विद्ध इव द्विपः ॥ ३६ ॥ पुरतोपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः । एको बहुभिरत्यर्थं धैर्य्याद्राजन्न विव्यथे ॥ ३७ ॥ इरावानपि संक्रुद्धः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः । मोहयामास समरे विद्ध्वा परपुरञ्जयः ३८ प्रासानुत्कृष्य तरसा स्वशरीरादरिन्दमः। तैरेव ताडयामास सुबल-

---

शत्रुकी सेनाने मारडाला यह देखकर सुबलके सब पुत्रोंसे सहा नहीं गया और वह इरावान्के सामनेको दौड़गये तथा उसको चारों ओरसे घेर लिया ३८-३४ तीखे प्रास मारते तथा परस्परको उभारते हुए उन शूर योधाओंने रणमें चारों ओरको दौड़२ कर बड़ी व्याकुलता मचाडाली ॥ ३५ ॥ उन कौरवोंके बड़े२ योधाओंके तीखे प्रासोंकी मारसे घायल हुआ और टपकते हुए रुधिरसे सना हुआ वह इरावान् अंकुशोंसे घायल हुआ हाथीसा मालूम होता था ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! अनेकों योधाओंके हाथसे छाती पर पीठमें और दोनों करवटोंमे अत्यन्त घायल हुआ वह अकेला इरावान् जरा भी नहीं घबड़ाया ॥ ३७ ॥ शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले उस इरावान्ने भी क्रोधमें भरकर अतितीखे बाणों से रणमें उन सबोंको घायल करके मूर्छित कर दिया ॥ ३८ ॥ शत्रुनाशी इरावान्ने शीघ्र ही अपने शरीरमें घुसेहुए सब प्रासों को खेंचकर निकाल लिया और उनसे ही रणमें सुबलके पुत्रों

स्यात्मजान् रणे ॥ ३६ ॥ निकृष्य च शितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम् । पदातिर्द्रुतमागच्छज्जिघांसुः सौबलान् युधि ॥ ४० ॥ ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः । भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमभिद्रुताः ॥ ४१ ॥ इरावानपि खड्गेन दर्शयन् पाणि-लाघवम् । अभ्यवर्त्तत तान् सर्वान् सौबलान् बलदर्पितः ॥ ४२॥ लाघवेनाथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः । अन्तरं नाभ्यगच्छन्त चरन्तः शीघ्रगैर्हयैः ॥ ४३ ॥ भूमिष्ठमथ तं संख्ये सम्प्रदृश्य ततः पुनः । परिवार्य्य भृशं सर्वे गृहीतुमुपचक्रमुः ॥ ४४॥ अथाभ्यास-गतानां स खड्गेनामित्रकर्षणः । असिहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्रा-ण्यकृन्तत ॥ ४५ ॥ आयुधानि च सर्वेषां बाहूनसिविभूषितान् । अपतन्त निकृत्ताङ्गा मृता भूमौ गतासवः ॥ ४६ ॥ वृषभस्तु महा-

को घायल करडाला ॥ ३६ ॥ तथा तेज तलवार खेंचकर हाथमें ढाल लियेहुए यह इरावान् पैदल हो सुबलके पुत्रोंको मारनेके लिये शीघ्रतासे आगे बढ़ा ॥ ४० ॥ इतनेमें ही सुबलके सब पुत्र सचेत होकर क्रोधमें भरेहुए इरावान्के सामनेको दौड़े ॥ ४१ ॥ परन्तु बलका घमण्डी इरावान् अपने हाथकी फुरती दिखाता हुआ तलवार लेकर सुबलके पुत्रोंके ऊपर टूट पड़ा ॥ ४२ ॥ वेग वाले घोड़ोंपर बैठकर इधर उधरको दौड़ने पर भी सुबलके पुत्रोंको इरावान् के हाथकी फुरतीके कारणसे उसको मारनेका अवसर ही नहीं मिला ॥ ४३ ॥ वह रणभूमिमें पैदल ही फिर रहा था, यह देखकर सुबलके सब पुत्र फिर इकट्ठे होकर उसको पकड़नेका प्रयत्न करने लगे ॥ ४४॥ परन्तु उनके पासमें पहुंचने पर शत्रुओं का नाश करनेवाले इरावान् ने दायें बायें दोनों हाथोंमे तल-वार लेकर उनके शरीरोंको काट डाला ॥ ४५ ॥ और देखते२ सबोंकी आयुध और आभूषणोंसे भूपित भुजाओंको भूमिपर गिरा दिया और वह योधा भी अङ्गोंके कटजानेसे प्राण छोड़२कर भूमिपर गिरपड़े ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! इन शूरोंके भयानक

राज बहुधा परिरक्षिताः। अयुध्यत महारौद्रास्तस्माद्वीरावकर्त्तनात् ॥ ४७ ॥ तान् सर्वान् पतितान् दृष्ट्वा सुतो दुर्योधनस्तव। अभ्यापतत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ४८ ॥ आर्ष्यशृङ्गं महेष्वासं मायाविनमरिन्दमम्। वैरिणं भीमसेनस्य रूयातं बकवधेन वै ।४०। पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली। मायावी विप्रियं घोरं माकार्षीन्मे बलक्षयम् ॥ ५० ॥ त्वञ्च कामगमस्तात मायास्त्रे च विशारदः। कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि ॥ ५१ ॥ बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः। प्रययौ सिंहनादेन यत्रार्जुनसुतो युवा ॥ ५२ ॥ आरूढैर्युद्धकुशलैर्विमलप्रासयोधिभिः। वीरैः प्रहारिभिर्युक्तैः स्वैरनीकैः समावृतः ॥ ५३ ॥ ततः शे·महाराज द्विसाहस्रैर्हयोत्तमैः। निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महा-

संहारमेंसे अकेला वृषभ ही भागकर बचा था ॥ ४७ ॥ उन सबोंको रणमें पड़ा देखकर भयको प्राप्त हुआ दुर्योधन घोर आकार वाले मायावी शत्रुओंका दमन करनेवाले तथा बकको मारडालने के कारण भीमसेनके ऊपर वैर रखनेवाले आर्षशृंगी नामके राक्षसके पुत्र अलम्बुषके पास दौड़कर गया और उससे यह बात कही, कि-हे वीर! इस अर्जुनका मायावी पुत्र मेरा अनिष्ट करने को खड़ा है और मेरी सेनाका तो इसने सर्वनाश ही करडाला है ॥ ४८ ॥ ५० ॥ हे तात! तुझमें ऐसी शक्ति है कि-तू जीमें आये तहां जासकता है तथा मायाकी अस्त्रविद्यामें भी तू बड़ा ही चतुर है और कुन्तीके पुत्र भीमके साथ तेरा पुराना वैर भी है इस कारण तू इस युद्धमें इरावान्‌का शीघ्र ही वध कर ॥५१॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर घोर दीखने वाला वह राक्षस सिंहकी समान गरजता हुआ जहां अर्जुनका युवा पुत्र घूम रहा था तहां आया ५२उसने रणचतुर,घोड़ों पर सवार,तीखे प्रास लेकर युद्ध करने वाले तथा गहरा प्रहार करने वाले अपने योधाओंको भी साथमें लेलिया था ॥ ५३ ॥ हे महाराज! पहिली लड़ाईमें बचे हुए दो

बलम् ॥५४॥ इरावानपि संक्रुद्धस्त्वरमाणः पराक्रमी । हन्तुकाम-मभित्रघ्नो राक्षसं प्रत्यवारयत् ॥ ५५ ॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसः सुमहाबलः । त्वरमाणस्ततो मायां प्रयोक्तुमुपचक्रमे ॥५६॥ तेन मायामयाः सृष्टा हयास्तावन्त एव हि । आरूढा राक्षसैर्घोरैः शूलपट्टिशपाणिभिः ॥ ५७ ॥ ते संरब्धाः समागम्य द्विसाहस्राः प्रहारिणः । अचिराद् गमयामासुः प्रेतलोकं परस्परम् ॥ ५८ ॥ तस्मिंस्तु निहते सैन्ये तावुभौ युद्धदुर्मदौ । संग्रामे व्यवतिष्ठेतां यथा वै वृत्रवासवौ ॥ ५९ ॥ आद्रवन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्धदुर्मदम् इरावान् क्रोधसंरब्धो वारयन् सुमहाबलः ॥ ६० ॥ समभ्यास-गतस्याजौ तस्य खड्गेन दुर्मतेः । चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावा-पञ्च सत्वरम् ॥ ६१ ॥ स निकृत्तं धनुर्दृष्ट्वा खञ्जवेन समाविशत्।

हजार घुड़सवारोंको लेकर महाबली इरावान्को मारनेके लिये वह राक्षस आगे बढ़ा ॥ ५४ ॥ शत्रुनाशक पराक्रमी इरावान् भी अतिकोपमें भरकर उसको मारनेकी इच्छासे आगेको बढ़ा और पहिले उस राक्षसको ही आगे बढ़नेसे रोका ॥ ५५ ॥ उसको आते हुए देखकर वह महाबली राक्षस शीघ्रतासे अपनी माया फैलानेकी तयारी करने लगा ॥ ५६ ॥ उसने एक ही क्षणमें शूल और पट्टिश धारण किये हुए भयानक राक्षस सवारों सहित अनेकों मायावी घोड़े उत्पन्न करदिये ॥ ५७ ॥ वह मायावी दो हजार घुड़सवार क्रोधमें भरकर इरावान्के साथ युद्ध करनेको आये और आमने सामने लड़ते हुए एक दूसरेको मारकर यम-लोकमें भेजने लगे ॥ ५८ ॥ सेनाका नाश होजाने पर वृत्र और और इन्द्रकी समान वह दोनों योधा द्वन्द्वयुद्ध करनेको तयार होगये ॥ ५९ ॥ युद्धदुर्मद राक्षसको अपने ऊपरको झपटते हुए देखकर महाबली इरावान् भी कोपमें भरकर उसके ऊपरको दौड़ा ॥ ६० ॥ जब वह दुष्टबुद्धि राक्षस पास आपहुंचा तब इरा-वान्ने तलवारसे उसके चमकते हुए धनुष और भाथेको जरादेर में काटडाला ॥ ६१ ॥ अपने धनुषको कटा हुआ देखकर वह

इरावन्तमभिक्रुद्धं मोहयन्निव मायया ॥ ६२॥ ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य इरावानपि राक्षसम् । विमोहयित्वा मायाभिस्तस्य गात्राणि सायकैः ॥ ६३ ॥ चिच्छेद सर्वमर्मज्ञः कामरूपो दुरासदः । तथा स राक्षसश्रेष्ठः शरैः कृत्तः पुनः पुनः ॥ ६४ ॥ सम्बभूव महाराज समवाप च यौवनम् । माया हि सहजा तेषां वयो रूपश्च कामजम् ॥ ६५ ॥ एवं तद्राक्षसस्याङ्गं छिन्नं छिन्नं व्यरूह ह । इरावानपि संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ॥ ६६ ॥ परश्वधेन तीक्ष्णेन चिच्छेद च पुनः पुनः । स तेन बलिना वीरश्छिद्यमान इरावता ॥ ६७॥ राक्षसोप्यनदद्द्घोरं स शब्दस्तुमुलोऽभवत् । परश्वधक्षतं रक्षः सुस्राव बहु शोणितम् ॥ ६८ ॥ ततश्चुक्रोध बलवांश्चक्रे वेगञ्च संयुगे । आर्ष्यशृङ्गिस्तथा दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितम् ॥६९॥

राक्षस, क्रोधमें भरे इरावान्को मायासे मोहित करता हुआसा आकाशमेंको उछला ॥ ६२ ॥ सब मर्मको जानने वाले और इच्छानुसार रूप धरने वाले दुरासद इरावान्ने भी उसकी समान ही आकाशमेंको उछलकर मायासे उस राक्षसको मोहित करके बाणसे उसके अङ्गोंको काट डाला, परन्तु इरावान्के बाणोंसे वह प्रचण्ड राक्षस बार बार कट जाने पर भी सजीव होकर युवाका युवाही रहता था, क्योंकि-राक्षसोंका वश माया है और वय(उमर) तथा रूप तो उनकी इच्छाके अनुसार हुआ करते हैं॥६३-६५॥ इसप्रकार उस राक्षसके अङ्गोंको ज्यों२ काटता था त्यों२ वह नये उत्पन्न होजाते थे, इसकारण बड़े कोपमें भराहुआ इरावान् तेज फरसा लेकर बारम्बार उसके अङ्गोंको काटने लगा जब इरावान्ने बारम्बार ऐसा किया तब वह राक्षस महा भयानक गर्जना करने लगा और उस राक्षसके शरीरमें जो फरसेसे घाव होगये थे उनमेंसे बड़ाभारी रुधिर बहने लगा ॥६६-६८॥ परन्तु अपने शत्रुको संग्राममें उदय पाता हुआ देखकर बलवान् अलंबुष बड़े ही कोपमें भरगया और द्वन्द्वयुद्धमें बड़ा वेग दिखाने

कृत्वा घोरं महद्रूपं गृहीतुमुपचक्रमे । अर्जुनस्य सुतं वीरमिरावन्तं यशस्विनम् ॥ ७० ॥ संग्रामशिरसो मध्ये सर्वेषां तत्र पश्यताम् । तां दृष्ट्वा तादृशीं मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ ७१ ॥ इरावानपि संक्रुद्धो मायां स्रष्टुं प्रचक्रमे । तस्य क्रोधाभिभूतस्य समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ७२ ॥ योऽन्वयो मातृकस्तस्य स एनमभिपेदिवान् । स नागैर्बहुभी राजन्निरावान् संवृतो रणे ॥ ७३ ॥ दधार सुमहद्रूपमनन्त इव भोगवान् । ततो बहुविधैर्नागैश्छादयामास राक्षसम् ॥ ७४ ॥ छाद्यमानस्तु नागैः स ध्यात्वा राक्षसपुंगवः । सौपर्णं रूपमास्थाय भक्षयामास पन्नगान् ॥ ७५ ॥ मायया भक्षिते तस्मिन्नन्वये तस्य मातृके । विमोहितमिरावन्तं न्यहनद्राक्षसोऽसिना ॥ ७६ ॥ सकुण्डलं समुकुटं पद्मेन्दुसदृशप्रभम् । इरावतश्शिरो रक्षः पातयामास भूतले ॥ ७७ ॥ तस्मिंस्तु निहते वीरे राक्षसे-

---

करके संग्रामके खुले मैदानमें सबके देखते हुए अर्जुनके यशस्वी पुत्र इरावान्को पकड़नेको दौड़ा इस दुष्टात्मा राक्षसकी ऐसी मायाको देखकर इरावान्ने भी क्रोध करके अपनी माया फैलाना आरम्भ कर दी इस संग्राममें पीछेको पैर न देनेवाले तथा अत्यन्त कोपमें भरेहुए इरावान्का ननिहालका सम्बन्धी एक नाग उसके पास बहुतसे नागोंको लेकर आया तथा वह सब नाग घेरकर खड़े होगये उस समय इरावान् फणोंवाले अनन्तकी समान बनगया तथा उस राक्षसको अनेकों नागोंने घेरलिया ॥ ७० ॥ ७४ ॥ वह अलंबुष राक्षस जब नागोंसे घिरगया तब उस महारथीने ध्यान धर कर गरुड़का रूप धारण किया और सब नागोंको खानेलगा ॥ ७५ ॥ इरावान्की ननिहालके सब नागोंका माया के द्वारा भक्षण करलेने पर अकेले रहकर मूर्छितसे हुए इरावान् के ऊपर उसने तलवारका प्रहार किया ॥७६॥ और कुण्डलोंको पहिरे तथा मुकुट धारण किये कमल और चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् इरावान्के शिरको उस राक्षसने भूमि पर गिरादिया ॥७७॥

नार्जुनात्मजे । विशोकाः समपद्यन्त धार्त्तराष्ट्राः सराजकाः॥७८॥ तस्मिन् महति संग्रामे तादृशे भैरवे पुनः । महान् व्यतिकरो घोरः सेनयोः समपद्यत ॥ ७९ ॥ गजा हयाः पदाताश्च विमिश्रा दन्तिभिर्हताः । रथाश्वा दन्तिनश्चैव पत्तिभिस्तत्र सूदिताः ॥ ८० ॥ तथा पत्तिरथौघाश्च हयाश्च बहवो रणे । रथिभिर्निहता राजंस्तव तेषां च संकुले ॥ ८१ ॥ अजानन्नर्जुनश्चापि निहतं पुत्रमौरसम् । जघान समरे शूरान् राज्ञस्तान् भीष्मरक्षिणः ॥ ८२ ॥ तथैव तावका राजन् सृञ्जयाश्च सहस्रशः । जुह्वतः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ८३ ॥ मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः । बाहुभिः समयुध्यन्त समवेताः परस्परम्॥८४॥ तथा मर्मातिगैर्भीष्मो निजघान महारथान् । कम्पयन् समरे सेनां पाण्ड-

---

जब उस वीर अर्जुनकुमारको अलम्बुष राक्षसने मारडाला उस समय अनेकों राजाओं सहित तुम्हारे पुत्रोंको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ७८ ॥ फिर तिस महासंग्रामके बड़ाभारी भयानक होजाने पर दोनों सेनाओंका बड़ाघोर घोलमेल होगया था ॥ ७९ ॥ घोलमेल हुए हाथी घोड़े और पैदलोंको हाथियोंने मारडाला और तहां कितने ही रथ घोड़े और हाथियोंको पैदलोंने नष्ट कर डाला ॥ ८० ॥ तथा हे राजन् ! तुम्हारा और पाण्डवोंका घोलमेल होने पर बहुतसे पैदल, रथ और घोड़ोंके समूह उस रणमें रथियोंने मारडाले ॥ ८१ ॥ मेरा औरस पुत्र मारागया, यह बात अर्जुन को मालूम नहीं थी,वह तो भीष्मकी रक्षा करनेवाले उन राजाओंका संहार करनेमें ही लग रहा था ॥ ८२ ॥ इसीप्रकार हे राजन् ! तुम्हारे पक्षके सहस्रों सृञ्जय रणमें अपने प्राणोंको होमते हुए परस्परका नाश कर रहे थे ॥ ८३ ॥ जिनके बाल खुलगये थे, कवच कटगये थे, रथ टूटगये थे और धनुष टुकड़े २ होगये थे ऐसे योधा इकट्ठे होजाने पर आपसमें बाहुयुद्ध करनेलगे ८४ हे महाराज ! इस ही प्रकार मर्मको फोड़ डालनेवाले बाण छोड़

थानां परंतपः ॥ ८५ ॥ तेन यौधिष्ठिरे सैन्ये बहवो मानवा हताः दन्तिनः सादिनश्चैव रथिनोऽथ हयास्तथा ॥ ८६ ॥ तत्र भारत भीष्मस्य रणे दृष्ट्वा पराक्रमम्। अत्यद्भुततमपश्याम शक्रस्येव परा-क्रमम् ॥ ८७॥ तथैव भीमसेनस्य पार्षतस्य च भारत । रौद्रमासी-द्रणे युद्धं सात्यकस्य च धन्विनः ॥ ८८ ॥ दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रांतं पाण्डवान् भयमाविशत् । एक एव रणे शक्तो निहन्तुं सर्वसैनि-कान् ॥ ८९ ॥ किं पुनः पृथिवीशूरैर्योधव्रातैः समावृतः । इत्यब्रुवन् महाराज रणे द्रोणेन पीडिताः ॥ ९० ॥ वर्त्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे भरतर्षभ । उभयोः सेनयोः शूरा नामृष्यन्त परस्परम् ॥ ९१ ॥ आविष्टा इव युध्यन्ते रक्षोभूता महाबलाः । तावकाः

कर भीष्मजी पाण्डवोंकी सेनाको संग्राममें कम्पायमान करते हुए महारथियोंका संहार कर रहे थे ॥ ८५ ॥ उन्होंने युधिष्ठिरकी सेनाके असंख्यों मनुष्य, हाथी, घुडसवार, रथी और घोड़ोंको मारडाला ॥ ८६ ॥ हे भारत ! उस संग्राममें हमने भीष्मजीका इन्द्रके पराक्रमकी समान बड़ा अद्भुत पराक्रम देखा था ॥ ८७ ॥ हे भारत ! इस रणमें इसीप्रकार भीमसेन, धृष्टद्युम्न और धनुष-धारी सात्यतका युद्ध भी बड़ा भयनानक हुआ था ॥ ८८ ॥ और द्रोणाचार्यके पराक्रमको देखकर तो पाण्डवोंको यह बड़ा ही भय लगने लगा था, कि-यह एक द्रोणाचार्य ही जब रणमें सब योधाओंका संहार कर सकते हैं॥८९॥ तो फिर यह पृथिवीके शूर योधाओंके समूहोंकी सहायता पाकर तो क्या नहीं करडालेंगे, हे महाराज ! रणमें द्रोणसे पीड़ा पाते हुए पाण्डव ऐसा कहने लगे थे ॥ ९० ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! जब इसप्रकार घोर संग्राम होने लगा तब दोनों सेनाओंके योधा शत्रुओंके पराक्रमको नहीं सह सकते थे ॥ ९१ ॥ और हे तात ! तुम्हारे और पाण्डवोंके वह धनुषधारी महाबली योधा क्रोधमें भरेहुए प्रेतबाधावालोंकी समान

पाण्डवेयाश्च संरब्धास्तात धन्विनः ॥ ९२ ॥ न स्म पश्यामहे कंचित् प्राणान्यः परिरक्षति । संग्रामे दैत्यसंकाशे तस्मिन् वीरवरक्षये ॥ ९३ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवस-
युद्धे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । इरावन्तन्तु निहतं दृष्ट्वा पार्था महारथाः । संग्रामे किमकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । इरावन्तन्तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः । व्यनदत् सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ २ ॥ नदतस्तस्य शब्देन पृथिवी सागराम्बरा सपर्वतवना राजंश्चचाल सुभृशं तदा ॥ ३ ॥ अन्तरिक्षं दिशश्चैव सर्वाश्च दिशस्तथा । तं श्रुत्वा सुमहानादं तव सैन्यस्य भारत ॥ ४ ॥ ऊरुस्तम्भः समभवद्वेपथुः स्वेद एव च । सर्व एव महाराज तावका दीनचेतसः ॥ ५ ॥ सर्वतः समचेष्टन्त सिंहाद्भीता

राक्षस बनकर लड़ रहे थे ॥ ९२ ॥ अनेकों वीरोंका संहार करने वाले दैत्योंके संग्रामकी समान इस रणमें जो अपने प्राण बचानेके लिये युद्ध न करता हो ऐसा एक भी योधा हमें नहीं दीखता था ॥ ९३ ॥ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! महारथी पाण्डवोंने इरावान् को मराहुआ देखकर संग्राममें क्या किया यह मुझे सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया कि—संग्राममें इरावान् मारागया, यह देख कर भीमसेनका राक्षस पुत्र घटोत्कच बड़ाभारी शब्द करके गर-जनेलगा ॥ २ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार गरजते हुए घटोत्कचके शब्दसे सागर, आकाश, पहाड़ और वनों सहित पृथिवी काँप उठी ॥ ३ ॥ तथा अन्तरिक्ष दिशायें और उपदिशायें भी गुंजा-रनेलगीं हे भारत ! इस घोर नादको सुनकर तुम्हारी सेनाके योधाओंकी तो जाँघें ही बँधसीगयीं, कपकपी आगयी और पसीना छूट निकला तथा हे महाराज ! तुम्हारी सेनाके सब ही योधा दीनचित्त होगये ॥ ४ ॥ ५ ॥ और सिंहकी दहाड़से भयभीत

गजा इव । कृत्वा तु सुमहानादं निर्घातमिव राक्षसः ॥ ६ ॥ ज्वलितं शूलमुद्यम्य रूपं कृत्वा विभीषणम् । नानारूपप्रहरणैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः ॥ ७ ॥ आजघान सुसंक्रुद्धः कालान्तकयमोपमः । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धो भीमदर्शनम् ॥ ८ ॥ स्वं बलञ्च भयात्तस्य प्रायशो विमुखीकृतम् । ततो दुर्योधनो राजा घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ प्रगृह्य विपुलं चापं सिंहवद्व्यनदन्मुहुः । पृष्ठतोऽनुययौ चैनं स्रवद्भिः पर्वतोपमैः ॥ १० ॥ कुञ्जरैर्दशसाहस्रैर्वङ्गानामधिपः स्वयम् । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य गजानीकेन संवृतम् ॥ ११ ॥ पुत्रं तव महाराज चुकोप स निशाचरः । ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १२ ॥ राक्षसानाञ्च राजेन्द्र दुर्योधनबलस्य च ।

हुए हाथियोंकी समान थर २ काँपनेलगे, उस समय राक्षसने वज्रपातकी समान बड़ीभारी गर्जना की थी ॥ ६ ॥ बड़े क्रोधमें भराहुआ वह राक्षस बड़ा भयानक रूप धारण कर और त्रिशूल उठाकर अनेकों प्रकारके शस्त्र और आयुधधारी बड़े २ वीर राक्षसोंको साथमें लिये हुए प्रलयकालमें सबका अन्त करने वाले यमराजकी समान तुम्हारी सेनाका संहार करने पर फैल पड़ा, जिसको देखनेमें भी भय लगता था ऐसे क्रोधमें भरे हुए उस घटोत्कचको आते हुए देखकर ॥ ७ ॥ ८ ॥ तथा अपनी सेनाको उसके भयसे प्रायः भागते हुए देखकर राजा दुर्योधन घटोत्कचके ऊपरको दौड़ा ॥ ९ ॥ दुर्योधन हाथमें बड़ा भारी धनुष लेकर सिंहकी समान वारंवार गरजता हुआ आगेको बढ़ा उसी समय पहाड़की समान शरीरवाले तथा मद टपकाने वाले दश हजार हाथियोंको लेकर बंगालका राजा उसके पीछे २ चलदिया, हाथियोंकी सेनासे घिरे तुम्हारे पुत्रको आते हुए देख कर ॥ १० ॥ ११ ॥ हे महाराज ! वह राक्षस बड़े क्रोधमें भर गया और फिर जिसको देखनेसे रोमाञ्च खड़े हों ऐसा उन राक्षसों का और दुर्योधनकी सेनाका भयङ्कर युद्ध होनेलगा, जैसे घन-

गजानीकञ्च सम्प्रेक्ष्य मेघवृन्दमिवोद्यतम् ॥ १३ ॥ अभ्यधावन् सुसंक्रुद्धा राक्षसाः शस्त्रपाणयः । नदन्तो विविधान्नादान्मेघा इव सविद्युतः ॥ १४ ॥ शरशक्त्यृष्टिनाराचैर्निघ्नन्तो गजयोधिनः भिन्दिपालैस्तथा शूलैर्मुद्गरैः सपरश्वधैः ॥ १५ ॥ पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च निजघ्नुस्ते महागजान् । भिन्नकुम्भान् विरुधिरान् भिन्नगात्रांश्च वारणान् ॥ १६ ॥ अपश्यामि महाराज वध्यमानान्निशाचरैः । तेषु प्रक्षीयमाणेषु भग्नेषु गजयोधिषु ॥ १७ ॥ दुर्योधनो महाराज राक्षसान् समुपाद्रवत् । अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १८ ॥ मुमोच निशितान् बाणान् राक्षसेषु परन्तप । जघान च महेष्वासः प्रधानांस्तत्र राक्षसान् ॥ १९ ॥ संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव । वेगवन्तं महारौद्रं विद्युज्जिह्वं प्रमाथिनम् २०

चढा चढ़ आयी हो ऐसी हाथियोंकी सेनाको देखकर राक्षस, कोप में भरे हुए हाथोंमें शस्त्र लेकर दौड़े, उस समय वह बिजलीवाले मेघोंकी समान अनेकों प्रकारसे गरज रहे थे ॥ १२-१४ ॥ बाण, शक्ति और ऋष्टि आदिसे हाथियों पर बैठकर लड़नेवाले योधाओंका संहार करने लगे तथा भिन्दिपाल, त्रिशूल, मुद्गर, फरसे, पहाड़ोंके शिखर और वृक्षोंसे बड़े २ हाथियोंका संहार करने लगे, जिनके गण्डस्थल फूटगये थे, जो रुधिरमें लथड़पथड़ होरहे थे और जिनके अङ्ग कटगये थे ऐसे अनेकों हाथी राक्षसों के तीखे बाणोंसे मरते हुए हमारे देखनेमें आये, इसप्रकार जब हाथियोंका ध्वंस होगया और उनके ऊपर बैठनेवाले योधा भागगये ॥ १५-१७ ॥ हे परन्तप महाराज ! तब राजा दुर्योधन राक्षसोंके सामनेको दौड़ा और अत्यन्त क्रोधमें भराहुआ वह महाधनुषधारी अपने प्राणोंका भी भय न करके राक्षसोंके ऊपर तेज कियेहुए तीखे बाण छोड़नेलगा और मुख्य २ राक्षसोंको उसने मार डाला ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त कोपमें भरे हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने चार बाण छोड़कर महावेग, महा-

शरैश्चतुर्भिश्चतुरो निजघान् महाबलः । ततः पुनरमेयात्मा शरवर्षं दुरासदम् ॥ २१ ॥ मुमोच भरतश्रेष्ठ निशाचरबलं प्रति । तत्तु दृष्ट्वा महत् कर्म तव पुत्रस्य मारिष ॥ २२ ॥ क्रोधेनाभिप्रजज्वाल भैमसेनिर्महाबलः । स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ॥२३॥ अभिदुद्राव वेगेन दुर्योधनमरिन्दमम् । तमापतन्तमुद्वीक्ष्य काल-सृष्टमिवान्तकम् ॥२४॥ न विव्यथे महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव । अथैनमब्रवीत् क्रुद्धः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २५ ॥ अद्यानृण्यं गमिष्यामि पितृणां मातुरेव च । ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः ॥ २६ ॥ यच्च ते पाण्डवा राजंश्छलद्यूते पराजिताः यच्चैव द्रौपदी कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ॥ २७ ॥ सभामानीय दुर्बुद्धे बहुधा क्लेशिता त्वया । तव च प्रियकामेन आश्रमस्था

रौद्र, विद्युज्जिह्व तथा प्रमाथी नामके चार राक्षसोंको मारडाला और फिर भरतश्रेष्ठ अतिसाहसी महाबली दुर्योधनने राक्षसोंकी सेनाके ऊपर बाणोंकी भयानक वर्षा की, हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रके ऐसे पराक्रमको देखकर ॥ २०–२२ ॥ महाबली भीमसेन का पुत्र क्रोधाग्निसे अत्यन्त जल उठा और इन्द्रधनुषकी समान बड़ेभारी धनुषको पकड़कर ॥ २३ ॥ बड़े वेगसे शत्रुनाशी दुर्योधन के ऊपरको दौड़ा, कालके भेजेहुए अन्तककी समान उसको आते हुए देखकर ॥ २४ ॥ हे महाराज ! आपका पुत्र दुर्योधन जरा भी व्यथित नहीं हुआ तब क्रोधमें भरे लाल २ नेत्रोंवाले घटो-त्कचने दुर्योधनसे कहा, कि–॥ २५ ॥ अरे ! जिनको तूने क्रूर बनकर वर्षोंतक बनोंमेंको निकालदिया था उन अपने पिता आदि और माताके ऋणमेंसे आज मैं तुझे मारकर छूटूंगा ॥२६॥ और तूने जो पाण्डवोंको जुएमें छल करके हराया है और हे दुर्बुद्धि ! रजस्वला हुई एक वस्त्र पहिरे हुए द्रौपदीको तूने सभामें बुलवा कर जो अनेकों प्रकारसे कष्ट दिया है तथा तेरा प्रिय करनेवाले दुष्टात्मा सिंधुराज जयद्रथने आश्रममें रहती हुई द्रौपदीको मेरे

दुरात्मना ॥ २८ ॥ सैन्धवेन परामृष्टा परिभूय शिरस्तव मम । एते-षामपमानानामन्येषाञ्च कुलाधम ॥ २९ ॥ अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् । एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद्विस्फार्य कार्मु-कम् ॥ ३० ॥ सन्दश्य दशनैरोष्ठं सृक्किणी परिसंलिहन् । महता शरवर्षेण दुर्योधनमवाकिरत् । पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव वलाहकः ॥ ३१ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि इरावद्वध एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

सञ्जय उवाच । ततस्तद्बाणवर्षं तु दुःसहं दानवैरपि । दधार युधि राजेन्द्रो यथा वर्षं महाद्विपः ॥१॥ ततः क्रोधसमाविष्टो निः-श्वसन्निव पन्नगः । संशयं परमं प्राप्तः पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ २ ॥ मुमोच निशितांस्तीक्ष्णान्नाराचान्पञ्चविंशतिम् । तेऽपतन्सहसा राजंस्तस्मिन् राक्षसपुंगवे॥३॥ आशीविषा इव क्रुद्धाः पर्वते गंध-

चचा ताउओंका अनादर करके बहुत ही दुःखित किया है, हे नराधम ! इन अपमानोंका तथा और जो कुछ अपराध किये हैं उनका भी फल यदि तू रणमेंसे नहीं भागा तो आज ही देखेगा, ऐसा कहकर हिडिंबाके पुत्रने अपना बड़ाभारी धनुष खेंचा और दाँतोंसे ओठोंको चबाकर जैसे वर्षाकालमें मेघ जलधाराओंसे पहाड़को ढकदेता है वैसे ही बाणोंकी वड़ीभारी वर्षासे दुर्योधन को घेरलिया ॥ २७-३१ ॥ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९१॥

सञ्जय कहता है, कि-जिसको दानव भी न सहसकें ऐसी इस बाणोंकी वर्षाको राजेन्द्र दुर्योधन युद्धमें ऐसे सहन कर रहा था जैसे बड़ा गजराज वर्षाके वेगको सहता है ॥ १ ॥ हे राजन् ! इस समय क्रोधमें भरा और सांपकी समान फुङ्कारें भरता हुआ तुम्हारा पुत्र बड़े ही संशयमें पड़ गया ॥ २ ॥ फिर उसने तेज किये हुए बड़े तीखे पचीस बाण छोड़े, जैसे क्रोधमें भरेहुए सांप गन्धमादन पहाड़में घुसते हों तैसे ही वह बाण उस

मादधे। स तैर्विद्धः स्रवन् रक्तं प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ४ ॥ दध्रे मतिं विनाशाय राज्ञः स पिशिताशनः । ज ग्राह च महाशक्तिं गिरीणामपि दारिणीम् ॥ ५ ॥ संप्रदीप्तां महोल्काभामशनिं ज्वलितामिव । समुदिच्छन्महाबाहुर्जिघांसुस्तनयं तव ॥ ६ ॥ तामुद्यतामभिप्रेक्ष्य वंगानामधिपस्त्वरन् । कुञ्जरं गिरिसंकाशं राक्षसं प्रत्यचोदयत् ॥ ७ ॥ स नागप्रवरेणाजौ बलिना शीघ्रगामिना । ततो दुर्योधनरथस्तं मार्गं प्रत्यपद्यत ॥ ८ ॥ रथं च वारयामास कुञ्जरेण सुतस्य ते । मार्गमावारितं दृष्ट्वा राज्ञा वंगेन धीमता ॥ ९ ॥ घटोत्कचो महाराज क्रोधसंरक्तलोचनः । उद्यतां तां महाशक्तिं तस्मिंश्चिक्षेप वारणे ॥ १० ॥ स तयाभिहतो राजंस्तेन बाहुम-

---

महाराक्षसके शरीरमें एकसाथ घुसगये,इन बाणोंसे बिंधाहुआ वह राक्षस घायल हुए हाथीकी समान रुधिरको टपकानेलगा ॥१॥४॥ उस राक्षसने दुर्योधनका नाश करनेका विचार किया और पहाड़ों को भी फाड़डालनेवाली महाशक्ति हाथमें उठायी ॥ ५ ॥ प्रकाश करनेवाली बड़ीभारी उल्काकी समान तथा जलते हुए वज्रकी समान उस शक्तिको महाबाहु राक्षसने ज्योंही तुम्हारे पुत्रको मारनेकी इच्छासे उठाया, कि—॥ ६ ॥ उसी समय उस उठायी हुई शक्तिको देखकर बङ्गराजने तत्काल एक पहाड़की समान हाथी को उस राक्षसकी ओरको दौड़ाया ॥ ७ ॥ और उस बलवान् तथा शीघ्र जानेवाले हाथीको रणमें दुर्योधनके रथके आगे खड़ा करके राजा दुर्योधनके रथके आगेका मार्ग उसने रोकदिया ॥८॥ इसप्रकार हाथीकी आड़ करके बङ्गालके राजाने दुर्योधनके रथका मार्ग रोकदिया यह देखते ही हे महाराज ! क्रोधके कारण जिस की आंखे लाल होरही थीं ऐसे घटोत्कचने उठायी हुई वह शक्ति हाथीके मारी ॥९–१०॥हे राजन् ! राक्षसने जिसको अपने हाथसे बड़े जोरके साथ मारा था ऐसी शक्तिके लगनेसे वह हाथी

मुक्तया । संजातरुधिरोत्पीडः पपात च ममार च ॥ ११ ॥ पत-त्यथ गजे चापि वङ्गानामीश्वरो बली । जवेन समभिद्रुत्य जगाम धरणीतलम् ॥ १२ ॥ दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पतितं वरवारणम् । प्रभग्नञ्च बलं दृष्ट्वा जगाम परमां व्यथाम् ॥ १३ ॥ क्षत्रधर्मं पुर-स्कृत्य आत्मनश्चाभिमानिताम् ॥ प्राप्ते प्रक्रमणे राजा तस्थौ गिरि-रिवाचलः ॥ १४ ॥ सन्धाय च शितं बाणं कालाग्निसमतेजसम् । मुमोच परमक्रुद्धस्तस्मिन् घोरे निशाचरे ॥ १५ ॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य बाणमिन्द्राशनिप्रभम् । लाघवान्मोचयामास महात्मा वै घटोत्कचः ॥ १६ ॥ भूयश्च विननादोग्रं क्रोधसंरक्तलोचनः । त्रासयामास सैन्यानि युगान्ते जलदो यथा ॥ १७ ॥ तं श्रुत्वा निनदं घोरं तस्य भीमस्य रक्षसः । आचार्य्यमुपसङ्गम्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥१८॥ यथैष निनदो घोरः श्रूयते राक्षसेरितः ।

लोहूलुहान होकर भूमिपर गिरपड़ा और मरगया ॥ ११ ॥ परन्तु जब हाथी गिरने लगा तब वङ्ग देशका बलवान् राजा भगदत्तशीघ्रता से भूमिपर कूदपड़ा ॥ १२ ॥ हाथी मारागया तथा मेरी सेना भागगयी यह देखकर राजा दुर्योधन बड़ा ही खिन्न होगया १३ तथा क्षत्रियधर्मके अपने अभिमानके कारणसे हार रहा था तो भी पीछेको नहीं हटा किन्तु पहाड़की समान दृढ़ताके साथ खड़ा रहा ॥ १४ ॥ और अत्यन्त क्रोध करके कालाग्निकी समान तेज वाला, एक बाण उत्साहमें भरकर चढ़ाया और वह राक्षसके ऊपर छोड़ा ॥ १५ ॥ इन्द्रके वज्रकी समान इस बाणको आते हुए देख कर महात्मा घटोत्कचने चालाकीसे उसको चुका दिया ॥ १६ ॥ और क्रोधके मारे लाल२ आंखें करके घटोत्कच प्रलयकालके मेघकी समान गरजा, जिससे तुम्हारी सेनायें डरगयीं ॥ १७ ॥ इस भयानक राक्षसकी ऐसी गर्जनाको सुनकर शन्तनुके पुत्र भीष्मने द्रोणाचार्यके पास जाकर यह बात कही कि—॥ १८ ॥ यह जो राक्षसकी सी गर्जनाका घोर शब्द सुनायी आरहा है.

हैडिम्बो युध्यते नूनं राज्ञा दुर्योधनेन ह ॥ १६ ॥ नैष शक्यो हि संग्रामे जेतुं भूतेन केनचित् । तत्र गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ २० ॥ अभिद्रुतो महाभागो राक्षसेन महात्मना । एतद्धि वः परं कृत्यं सर्वेषां नः परन्तपाः ॥ २१ ॥ पितामहवचः श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः । उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र कौरवः ।२२। द्रोणश्च सोमदत्तश्च बाह्लीकोथ जयद्रथः । कृपो भूरिश्रवाः शल्य आवन्त्यः सबृहद्बलः ॥ २३ ॥ अश्वत्थामा विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः । रथाश्चानेकसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः ॥ २४ ॥ अभिद्रुतं परीप्सन्तः पुत्रं दुर्योधनं तव । तदनीकमनाधृष्यं पालितन्तु महारथैः ॥२५॥ आततायिनमायान्तं प्रेक्ष्य राक्षससत्तमः । नाकम्पत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ॥ २६ ॥ प्रगृह्य विपुलं चापं

इससे निश्चय होता है,कि-राजा दुर्योधनके साथ घटोत्कच युद्ध कररहा है ॥ १६ ॥ इस संग्राममें उसको कोई भी प्राणिमात्र नही जीतसकता, इसलिये तुम तहां जाओ और राजाकी रक्षा करो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ २० ॥ महाभाग दुर्योधनके ऊपर महात्मा राक्षसने घोर आक्रमण किया है इसलिये हे शत्रुओंको ताप देने वाले आचार्य! इस समय इसको बचाना ही हमारा परम कर्त्तव्य है ॥ २१ ॥ भीष्मपितामहकी इस बातको सुनकर अनेकों महारथी बड़े वेगसे जहां कौरवपति था तहां आगये ॥२२ ॥ द्रोण, सोमदत्त, वाह्लीक, जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरिश्रवा शल्य, उज्जैनके कुमार, वृहद्बल ॥ २३ ॥ अश्वत्थामा, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति और उनके साथके सहस्रों रथी ॥ २४ ॥ तुम्हारे पुत्रको बचानेके लिये दौड़े, महारथियों की रक्षाकी हुई इस महासेनाको बड़े जोरके साथ आती हुई देखकर महाबाहु राक्षसपुङ्गव,मैनाक पर्वतकी समान जरा भी नहीं डिगा किन्तु हाथमें बड़ाभारी धनुष उठाकर और शूल मुद्गर आदि बड़े २ आयुधों वाले अपने

ज्ञातिभिः परिवारितः । शूलमुद्गरहस्तैश्च नानाप्रहरणैरपि ॥२७॥
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । राक्षसानाञ्च मुख्यस्य दुर्योधनबलस्य च ॥ २८ ॥ धनुषां कूजतां शब्दः सर्वतस्तुमुलो रणे । अश्रूयत महाराज वंशानां दह्यतामिव ॥ २९ ॥ शस्त्राणां पात्यमानानां कवचेषु शरीरिणाम् । शब्दः समभवद्राजन् गिरीणामिव भिद्यताम् ॥ ३० ॥ वीरबाहुविसृष्टानां तोमराणां विशाम्पते । रूपमासीद्वियत्स्थानां सर्पाणामिव सर्पताम् ॥ ३१ ॥
ततः परमसंक्रुद्धो विस्फार्य सुमहद्धनुः । राक्षसेन्द्रो महाबाहुर्विनदन् भैरवं रवम् ॥ ३२ ॥ आचार्यस्यार्द्धचन्द्रेण क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् । सोमदत्तस्य भल्लेन ध्वजमुन्मथ्य चानदत् ॥ ३३ ॥ बाह्लीकञ्च त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे । कृपमेकेन विव्याध चित्रसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३४ ॥ पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहि-

---

संबन्धियोंसे घिर कर खड़ा ही रहा ॥ २५—२७ ॥ तदनन्तर राक्षसोंमें मुख्य घटोत्कच और दुर्योधनकी सेनाका रोमाञ्च खड़े करने वाला घोर युद्ध होनेलगा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! रणमें चारों ओरसे जलते हुए बांसोंकेसा धनुषोंकी टङ्कारका भयानक शब्द सुनायी देने लगा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! योधाओंके कवचों पर तलवारोंके पड़नेसे फटते हुए पहाड़ोंकेसा शब्द होने लगा ॥ ३० ॥ और हे राजन् ! वीरोंके हाथोंमेंसे छूटे हुए तोमरोंका शब्द आकाशमें दौड़ते हुए सांपोंकी सुरसुराहटकी समान सुनाई आता था ॥ ३१ ॥ तदनन्तर बड़े क्रोधमें भरा हुआ महाबाहु राक्षसेन्द्र अपना धनुष चढ़ाकर महाशब्द करने लगा ॥ ३२ ॥ उसने अर्द्धचन्द्राकार बाण छोड़कर द्रोणाचार्यके धनुषको काट-डाला और भल्ल नामके बाणसे सोमदत्तकी ध्वजाको काटकर बड़े जोरसे गरजा ॥ ३३ ॥ फिर उसने तीन बाणोंसे बाह्लीककी छातीको बींध दिया, एक बाणसे कृपाचार्यको बींधा और चित्रसेनके तीन बाण मारे ॥ ३४ ॥ और खूब जोरसे खेंचकर तथा

तेन च । जत्रुदेशे समासाद्य विकर्णं समताडयत् ॥ ३५ ॥ न्यपीदत् स्वरथोपस्थे शोणितेन परिप्लुतः । ततः पुनरमेयात्मा नाराचान्दश पञ्च च ॥ ३६॥ भूरिश्रवसि संक्रुद्धः प्राहिणोद्भरतर्षभ । ते वर्म भित्त्वा तस्याशु विविशुर्धरणीतलम् ॥ ३७ ॥ विविंशतेश्च द्रौणेश्च यन्तारौ समताडयत् । तौ पेततू रथोपस्थे रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् ॥ ३८ ॥ सिन्धुराज्ञोऽर्द्धचन्द्रेण वाराहं स्वर्णभूषितम् । उन्ममाथ महाराज द्वितीयेनाच्छिनद्धनुः ॥ ३९॥ चतुर्भिरथ नाराचैरावन्त्यस्य महात्मनः । जघान चतुरो वाहान् क्रोधसंरक्तलोचनः॥४० पूर्णायतविसृष्टेन पीतेन निशितेन च । निर्बिभेद महाराज राजपुत्रं बृहद्बलम् ॥ ४१ ॥ स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् । भृशं क्रोधेन चाविष्टो रथस्थो राक्षसाधिपः ॥ ४२॥ चिक्षेप निशि-

ठीक ताक कर विकर्णके गलेकी हँसली पर एक बाण मारा ३५ इस बाणके लगने पर विकर्ण अपने रथकी बैठक पर गिरगया और रुधिरसे भीगगया तब उस परमसाहसी राक्षसराजने क्रोध में भरकर भूरिश्रवाके ऊपर पन्द्रह बाण छोड़े यह बाण भूरिश्रवाके कवचको फोड़कर भूमिमें घुसगये ॥३६॥ ३७ ॥ और विविंशति तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके सारथियोंके ऊपर भी प्रहार किया, इससे वह दोनों भी घोड़ोंकी बागडोरोंको छोड़कर रथकी बैठकपर गिरगये थे ॥ ३८ ॥ फिर उसने एक और अर्धचन्द्र बाण छोड़ कर वराहके चिह्नवाली सिंधुराजकी सोनेकी ध्वजाको काटडाला तथा दूसरे बाणसे उसके धनुषको काटडाला ॥ ३९ ॥ क्रोधके मारे लाल२ नेत्रोंवाले उस राक्षसने चार बाण मारकर अवन्तीके कुमारके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥ ४० ॥ तथा हे महाराज ! जोरसे खेंचकर छोड़े हुए और भलेप्रकार विषमें बुझाये हुए तीखी धारके एक बाणसे राजपुत्र बृहद्बलको बींधडाला ॥ ४१ ॥ इस बाणके लगते ही अत्यन्त घायल हुआ वह कुमार रथकी बैठक पर गिरगया फिर अत्यन्त कुपित हुए राक्षसराजने रथमें

तांस्तीक्ष्णाङ्कुरानाशीविषोपमान् । विभिदुस्ते महाराज शल्यं युद्धविशारदम् ॥ ४३ ॥ छ ॥ छ ॥

इतिश्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बयुद्धे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

सञ्जय उवाच । विमुखीकृत्य सर्वांस्तु तावकान् युधि राक्षसः । जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ दुर्योधनमुपाद्रवत् ॥ १ ॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राजानं प्रति वेगितम् । अभ्यधावन् जिघांसन्तस्तावका युद्धदुर्मदाः ॥ २ ॥ तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः । तमेकमभ्यधावन्त नदन्तः सिंहसंघवत् ॥ ३ ॥ अथैनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवाकिरन् । पर्वतं वारिधाराभिः शरदीव बलाहकाः ४ स गाढविद्धो व्यथितस्तोत्रार्दित इव द्विपः । उत्पपात तदाकाशं समन्ताद्वैनतेयवत् ॥ ५ ॥ व्यनदत् सुमहानादं जीमूत इव शारदः ।

वैसे २ ही विषैले सांपकी समान तीक्ष्ण बाण छोड़कर रणचतुर शल्यको बींधडाला ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ बानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—हे भरतश्रेष्ठ ! इसप्रकार रणमें तुम्हारे सब योधाओंके मुख फेरकर वह राक्षसराज दुर्योधनको मारनेकी इच्छासे उसके ऊपरको दौड़ा ॥ १ ॥ अपने राजा दुर्योधनको मारनेके लिये उस राक्षसराजको दौड़ताहुआ आते देखकर तुम्हारे पक्षके युद्धदुर्मद योधा उसको मारनेको दौड़े ॥ २ ॥ ताड़की समान बड़े२ धनुषोंको खेंचते हुए वह महारथी योधा सिंहोंकी मण्डलीकी समान गरजते हुए आगेको दौड़ रहे थे ॥ ३ ॥ और जैसे शरद् ऋतुमें मेघमण्डल पहाड़को घेरलेता है वैसे ही उन योधाओंने बाण बरसाकर उस राक्षसको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ४ ॥ अंकुशसे अत्यन्त पीड़ित हुए हाथीकी समान बाणोंसे बहुत ही घायल हुआ वह राक्षसराज अत्यन्त दुःखी होनेके कारण उस समय गरुड़की समान आकाशमेंको उड़ा ॥ ५ ॥

दिशः खं विदिशश्चैव नादयन् भैरवस्वनः ॥६॥ राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः । उवाच भरतश्रेष्ठ भीमसेनमरिंदमम् ।७। युध्यते राक्षसो नूनं धार्तराष्ट्रैर्महारथैः । यथास्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवस्वनम् ॥ ८ ॥ अतिभारश्च पश्यामि तस्मिन् राक्षस पुङ्गवे । पितामहश्च संक्रुद्धः पाञ्चालान् हन्तुमुद्यतः ॥ ९ ॥ तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फाल्गुनः परैः । एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम् ॥ १० ॥ गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम् । भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः ॥ ११ ॥ प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन् सर्वपार्थिवान् । वेगेन महता राजन् पर्वकाले यथोदधिः ॥ १२ ॥ तमन्वगात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।

और भयानक शब्द करने वाला वह राक्षस शरद्के मेघकी समान गर्जनायें करके दिशा उपदिशा और आकाशको गुंजारने लगा ॥ ६ ॥ राक्षसके ऐसे भयानक शब्दको सुनकर हे भरतसत्तम ! महाराज ! राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंका दमन करनेवाले भीमसेन से इसप्रकार कहा, कि–॥७॥ ये बड़ी भयानक गर्जनायें सुनायी आरही हैं इससे निश्चय होता है कि—राक्षस धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ युद्ध करता होगा ॥ ८ ॥ मुझे अनुमान होता है, कि—उस महाराक्षसके ऊपर युद्धका बहुत भार आपड़ा है, कोपमें भरे हुए पितामह पाञ्चालोंका नाश करने पर फैलरहे हैं और उनको बचानेके लिये अर्जुन शत्रुओंके साथ युद्ध करनेमें घिर रहा है हे महाबाहो ! ऐसा समाचार पाकर हमको दोनों ही ओर ध्यान देना है ॥ ९ ॥ १० ॥ तू अभी महासङ्कटमें पड़ेहुए घटोत्कचके पास जाकर उसकी रक्षाकर, भाईकी आज्ञाको माथे चढ़ाकर भीमसेन बड़ी शीघ्रतासे ॥ ११ ॥ पूर्णिमाके समुद्रकी समान सिंहका तुल्य गर्जनाओंसे सब राजाओंको कम्पायमान करता हुआ बड़े वेगसे चलदिया ॥ १२ ॥ उसके पीछे२ सत्यधृति युद्धमें महामद वाला सौचित्ति, श्रेणिमान, वसुदान, काशिराजका पुत्र, अभिमन्यु

श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यपस्य चाभिभूः ॥ १३ ॥ अभि-मन्युमुखाश्चैव द्रौपद्या महारथाः । क्षत्रदेवश्च विक्रान्तः क्षत्र-धर्मा तथैव च॥१४॥ अनूपाधिपतिश्चैव नीलः स्वबलमास्थितः । महता शरवर्षेण हैडिम्बं पर्यवारयत् ॥ १५ ॥ कुञ्जरैश्च महामत्तैः षट्सहस्रैः प्रहारिभिः । अभ्यरक्षन्त सहिता राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ १६॥ सिंहनादेन महता नेमिघोषेण चैव ह । खुरशब्दनिपातैश्च कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥१७॥ तेषामापततां श्रुत्वा शब्दन्तं तावकं बलम् । भीमसेनभयोद्विग्नं विवर्णवदनं तथा ॥ १८ ॥ परिवृत्तं महाराज परित्यज्य घटोत्कचम् । ततः प्रववृते युद्धं तत्र तेषां महा-त्मनाम् ॥१९॥ तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्त्तिनाम् । नाना-रूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः॥२०॥अन्योन्यमभिधावन्तः

की अधीनतामें द्रौपदीके महारथी पुत्र पराक्रमी क्षत्रदेव, क्षत्रधर्मा, अनूप देशका राजा तथा अपनी सेनाओंको लिये हुए नील आदि महारथी चलदिये,इन सब योधाओंने इकट्ठे होकर घटोत्कच को बड़ीभारी रथसेनासे तथा सदा मतवाले रहनेवाले मद टप-काते हुए हजार हाथियोंकी सेनासे घेरकर राक्षसेन्द्र घटोत्कच की रक्षा करना आरम्भ करदिया ॥ १३-१६ ॥ बड़े २ सिंहों कीसी गर्जनाओंसे रथोंकी बड़ीभारी घरघराहटसे तथा घोड़ोंकी खुरियोंकी खटाखटसे ये योधा पृथिवीको कम्पायमान कररहे थे ॥१७॥ भीमसेनके भयसे व्याकुल हुई तुम्हारी सेनाके मुख, इन वेगसे आतेहुए योधाओंके शब्दको सुनते ही पीले पड़ गये ॥ १८ ॥ और हे महाराज ! घटोत्कचको छोड़कर पीछेको भाग पड़ी, फिर तहां पाण्डवोंके महात्मा योधाओंका और जो संग्राम को छोड़कर नही भागे थे ऐसे तुम्हारे योधाओंका युद्ध होने लगा वह योधा अनेक प्रकारके शस्त्रोंको छोड़रहे थे ॥ १९ ॥ २० ॥ वह एक दूसरेके ऊपरको दौड़२ कर प्रहार करने लगे, दोनों सेनाओंका घोलमेल होकर वह युद्ध ऐसा भयानक होने लगा,

सम्प्रहारं प्रचक्रिरे । व्यतिषक्तं महारौद्रं युद्धं भीरुभयावहम् २१
हया गजैः समाजग्मुः पदाता रथिभिः सह । अन्योन्यं समरे राजन्
प्रार्थयानाः समभ्ययुः २२ सहसा चाभवत्तीव्रं सन्निपातान्महद्रजः ।
गजाश्वरथपत्तीनां पदनेमिसमुद्धतम् ॥ २३ ॥ धूम्रारुणं रजस्तीव्रं
रणभूमिं समावृणोत् । नैव स्वे न परे राजन् समजानन् परस्परम्
॥ २४ ॥ पिता पुत्रं न जानीते पुत्रो वा पितरं तथा । निर्मर्यादे
तथाभूते वैशसे लोमहर्षणे ॥ २५ ॥ शस्त्राणां भरतश्रेष्ठ मनुष्याणां
च गर्जताम् । सुमहानभवच्छब्दः प्रेतानामिव भारत ॥ २६ ॥
गजवाजिमनुष्याणां शोणितान्त्रतरङ्गिणी । प्रावर्तत नदी तत्र
केशशैवलशाद्वला ॥ २७ ॥ नराणां चैव कायेभ्यः शिरसां
पततां रणे । शुश्रुवे सुमहाञ्छब्दः पततामश्मनामिव ॥ २८ ॥
विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च छिन्नगात्रैश्च वारणैः । अश्वैः सम्भिन्नदेहैश्च

कि—उससे डरपोक बड़े भयभीत होगये, घोड़े हाथियोंके साथ
और पैदल रथियोंके साथ जुटगये, हे राजन् ! वह सब योधा
एक दूसरेको पुकार २ कर लड़ रहे थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हाथी
घोड़े आदिके पैरोंसे और रथोंके पहियोंसे उठीहुई बड़ीभारी
धूल चारों ओर घिरगयी ॥ २३ ॥ धुएंकी समान धूसर वर्णकी
धूलिकी बड़ीभारी घटा रणभूमिमें चारों ओर छागयी, हे राजन् !
इससे योधा अपने और परायेको नहीं पहिचानते थे ॥ २४ ॥
पिताने पुत्रको नहीं पहिचाना और पुत्रने पिताको नहीं पहिचाना
इस समय मनुष्योंका ऐसा संहार होरहा था, कि—जिसको देख
नेसे रोमाञ्च खड़े होते थे ॥२५॥ हे भरतसत्तम ! उसमें गरजते
हुए योधाओंके तथा बड़े२ प्रेतोंके शब्दकी समान शस्त्रोंके शब्द
होनेलगे ॥२६॥ मनुष्य,हाथी,घोड़े,आदिके रुधिर और आंतोंकी
तरङ्गोंवाली तथा कटेहुए केशरूप सिवार और घासवाली लोहूकी
बड़ीभारी नदी बहनेलगी ॥ २७ ॥ मनुष्योंके धड़ों परसे रणमें
गिरते हुए शिरोंका, पत्थरोंकी वर्षाकी समान बड़ाभारी शब्द
सुनायी आता था ॥ २८ ॥ शिरकटे मनुष्योंसे, कटहुए अङ्गोंवाले

संकीर्णाऽभूद्वसुन्धरा ॥ २९ ॥ नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः । अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारार्थमुद्यताः ॥ ३० ॥ हया हयान् समासाद्य प्रेषिता हयसादिभिः । समाहत्य रणेऽन्योन्यं निपेतुर्गतजीविताः ॥ ३१ ॥ नरा नरान् समासाद्य क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् । उरांस्युरोभिरन्योन्यं समाश्लिष्य निजघ्निरे ॥ ३२ ॥ प्रेषितोश्च महामात्रैर्वारणाः परवारणैः । अभ्यघ्नन्त विषाणाग्रैर्वारणानेव संयुगे ॥ ३३ ॥ ते जातरुधिरोत्पीडाः पताकाभिरलंकृताः । संसक्ताः प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ३४ ॥ केचिद्भिन्ना विषाणाग्रैर्भिन्नकुम्भाश्च तोमरैः । विनदन्तोऽभ्यधावन्त गर्जमाना घना इव ॥ ३५ ॥ केचिद्धस्तैर्द्विधाच्छिन्नैश्छिन्नगात्रास्तथा परे । निपेतुस्तुमुले तस्मिंश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३६ ॥ पार्श्वैस्तु दारितैरन्ये वारणैर्वरवारणाः । मुमुचुः शोणितं भूरि

हाथियोंसे और छिन्न भिन्न शरीरोंवाले घोड़ोंसे रणभूमि छागयी ॥ २९ ॥ परस्परका संहार करनेके लिये अनेकों प्रकारके शस्त्र उठा कर वह महारथी एक दूसरेके सामनेको दौड़ रहे थे ॥ ३० ॥ क्रोधके मारे लाल२ नेत्रोंवाले घुड़सवारोंके दौड़ाये हुए घोड़े आमने सामने आकर परस्परके प्राण लेतेहुए भूमिपर गिरने लगे ॥ ३१ ॥ क्रोधसे लाल२ नेत्रोंवाले योधा एक दूसरेको पासमें पा छातियोंसे उनकी छातियोंको दबाकर मारने लगे ॥ ३२ ॥ महावतों के हांकेहुए हाथी रणमें शत्रुपक्षके हाथियोंके सामने पहुंचकर दांतों से एक दूसरेके प्राण लेनेलगे ॥ ३३ ॥ उनमें बड़ी२ पताकाओं से शोभायमान रुधिर टपकाते हुए एक दूसरेके ऊपर चढ़कर आयेहुए हाथी बिजलीवाले मेघोंकी समान दीखते थे ॥ ३४ ॥ दांतोंकी नोकोंसे घायल हुए और तोमरोंसे जिनके मस्तक फट गये थे ऐसे कितने ही हाथी गरजते हुए मेघोंकी समान इधर उधरको दौड़ने लगे ॥ ३५ ॥ दो टुकड़े हुई सूंडोंवाले तथा कटे हुए शरीरोंवाले कितने ही हाथी इस घोर युद्धमें कटेहुए पंखों वाले पहाड़ोंकी समान भूमिपर ढहने लगे ॥ ३६ ॥ दोनों ओरके

धातूनिव महीधराः ॥ ३७ ॥ नाराचनिहतास्त्वन्ये तथा विद्धाश्च तोमरैः । विनदन्तोऽभ्यधावन्त विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ३८॥ केचित् क्रोधसमाविष्टा मदान्धा निरवग्रहाः । रथान् हयान् पदाताश्च ममृदुः शतशो रणे ॥ ३९ ॥ तथा हया हयारोहैस्ताडिताः प्रासतोमरैः । तेन तेनाभ्यवर्त्तन्त कुर्वन्तो व्याकुला दिशः ॥ ४० ॥ रथिनो रथिभिः सार्द्धं कुलपुत्रास्तनुत्यजः । परां शक्तिं समास्थाय चक्रुःकर्माण्यभीतवत् ॥ ४० ॥ स्वयम्वर इवामर्दे प्रजह्रुरितरेतरम् । प्रार्थयाना यशो राजन् स्वर्गं वा युद्धशालिनः ॥ ४२ ॥ तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे । धार्त्तराष्ट्रं महत् सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतम् ॥ ४३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
हैडिम्बयुद्धे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

हाथियोंने जिनके करवत चीरडाले थे ऐसे कितने ही बड़ेर हाथियोंके शरीरोंमेंसे ऐसे रुधिर बहने लगा जैसे पहाड़ोंमेंसे धातुओंके झरने बहते हैं ॥३७॥ बाणोंसे तथा तोमरोंसे घायल हुए कितने ही हाथी विना शिखरोंके पहाड़ोंकी समान चिंघाड़ें मारते हुए जिधर तिधरको दौड़ने लगे ॥ ३८ ॥ अत्यन्त क्रोधमें भरेहुए कितने ही मतवाले हाथी निरंकुश होनेसे हजारों रथ, घोड़े और पैदलोंको झपाझपीमें कुचलने लगे ॥ ३९ ॥ घुड़सवारोंने जिनको प्रास और तोमरोंसे मारा था ऐसे कितने ही घोड़े सब दिशाओंको व्याकुल करते हुए इधर उधर दौड़ने लगे ॥ ४० ॥ शरीर त्यागनेको तयार हुए कितने ही कुलीन रथी राजपुत्र बड़े आवेशमें आकर जरा भी न डरते हुए शत्रुके रथियोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥ यशकी अथवा स्वर्गकी चाहनासे युद्ध करनेवाले राजे स्वयंवरकी समान युद्धमें परस्परका संहार कररहे थे ४२ रोमाञ्च खड़े करनेवाले इस भयानक संग्राममें धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी बड़ीभारी सेनाको पाण्डवोंने प्रायः मुख फेर दिया था ॥४३ ॥ तिरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय उवाच । स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् । अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥१॥ प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् । महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ॥ २ ॥ अर्द्धचन्द्रञ्च सन्धाय क्षुराग्रं लोमवाहिनम्। भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोधसमन्वितः ॥ ३ ॥ तदन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः । प्रसन्दधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥ ४ ॥ तेनोरसि महाराज भीमसेनमताडयत् । स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ५ ॥ समालम्बे तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम् । तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः ॥ ६ ॥ क्रोधेनाभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः । अभिमन्युमुखाश्चापि पाण्डवानां महारथाः ॥ ७ ॥ समभ्यधावन् क्रोशन्तो राजानं जातसंभ्रमाः ।

सञ्जय कहता है, कि—अपनी सेनाको मारीगयी देखकर राजा दुर्योधन बड़े क्रोधमें भरगया और शत्रुका दमन करनेवाले भीमसेनके सामनेको दौड़ा चलागया ॥ १ ॥ और इन्द्रके वज्रकी समान शब्द करने वाले बड़ेभारी धनुषको लेकर बाणोंकी बड़ी भारी वर्षासे भीमसेनको ढकदिया॥२॥ उसने क्रोधमें भरकर अति तीखे और परोंसे जानेवाले अर्धचन्द्र बाणको चढ़ाया और उस से भीमसेनके धनुषको काटडाला ॥ ३ ॥ फिर इस महारथीने पहाड़ोंको भी फाड़ डालनेवाला एक तीखा बाण एक साथ अपने शत्रुके सामनेको ताककर उसकी छातीमें मारा ॥४॥ इस बाणसे अत्यन्त घायल हुए तेजस्वी भीमसेनने होठ पीसकर अपने सोनेकी शोभायमान पताकाका दण्डा पकड़ लिया था, परन्तु भीमसेनको इसप्रकार उदास हुआ देखकर जलाये डालते हुए अग्निकी समान घटोत्कच बड़े क्रोधमें भरगया और अभिमन्यु आदि पाण्डवोंके महारथी योधा ॥ ५-७ ॥ सम्भ्रममें होकर गर्जनायें करते हुए राजा दुर्योधनके सामनेको दौड़ आये, यह

सम्प्रेक्ष्यैतान्संपततः संक्रुद्धान् जातसम्भ्रमान् ॥ ८ ॥ भारद्वाजो-
ऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान् । क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं
परिरक्षत ॥ ९ ॥ संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे । एते
क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १० ॥ भीमसेनं पुरस्कृ-
त्य दुर्योधनमुपाद्रवन् । नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये
धृताः ॥ ११ ॥ नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान् । तदा-
चार्य्यवचः श्रुत्वा सोमदत्तपुरोगमाः ॥ १२ ॥ तावकाः समव-
र्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् । कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो
विविंशतिः ॥ १३ ॥ चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्य्यवारयन् ॥ १४ ॥ ते विंशति-
पदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे । पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च परस्परजिघां-
सवः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् । भार-

देखकर द्रोणाचार्यने तुम्हारे रथियोंसे कहा, कि-जाओ दौड़ो !
तुम्हारा मङ्गल हो, आपत्तिरूप समुद्रमें डूबते हुए और बड़ी घब-
ड़ाहटमें पड़े हुए दुर्योधनकी रक्षा करो ये बड़ेभारी धनुषधारी
पाण्डवोंके महारथी योधा क्रोधमें भरकर भीमसेनको आगे किये
हुए दुर्योधनके सामनेको आरहे हैं और विजय पानेका निश्चय
करके हमारे राजाको भयभीत करने वाली बड़ी२ गर्जनायें करके
अनेकों प्रकारके शस्त्र माररहे हैं द्रोणाचार्यकी इस बातको सुनते
ही सोमदत्तकी आधीनतामें ॥ ८-१२ ॥ तुम्हारे योधा पाण्डवों
की सेनाके सामनेको चले, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य,द्रोणाचार्य
का पुत्र अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, सिंधुराज,
बृहद्बल, बड़े धनुषधारी अवन्तीके कुमार इत्यादि योधा कौरव
राजाओंको घेरकर खड़े होगये ॥ १३ ॥ १४ ॥ परन्तु बीस पग
आगेको बढ़ते ही पाण्डवोंके और कौरवोंके योधा परस्परको मार
डालनेकी इच्छासे प्रहार करने लगे ॥ १५ ॥ और महाबाहु
द्रोणाचार्यने योधाओंसे इसप्रकार कह बड़ाभारी धनुष चढ़ा

द्रोणस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ १६ ॥ भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् । पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव वलाहकः ॥ १७ ॥ तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः । त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः ॥ १८ ॥ स गाढविद्धो हि व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत । प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥१९॥ गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् । द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ ॥ २० ॥ तावापतन्तौ संप्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ । भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम् ॥ २१ ॥ अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाचलः । समुद्यम्य गदां गुर्वीं कालदण्डोपमां रणे ॥ २२ ॥ तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् । कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् ॥२३ तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनांवरौ । अभ्यधावत वेगेन

कर भीमसेनके छब्बीस बाण मारे ॥ १६ ॥ जैसे चौमासेमें मेघ जलकी धाराओंसे पहाड़को ढक देता है तैसे ही उस महाबाहुने भीमसेनको ढकदिया ॥ १७ ॥ महाधनुषवाले भीमसेनने भी दस बाण मारकर द्रोणाचार्यकी बायीं करवटपर प्रहार किया॥१८॥ हे भारत ! अत्यन्त घायल और वृद्ध अवस्था होनेके कारण व्यथित हुए द्रोणाचार्य मूर्छित होकर रथकी बैठकमें गिरगये १९ अपने गुरुको अत्यन्त घायल हुआ देखकर राजा दुर्योधन और अश्वत्थामा कोपमें भरकर भीमसेनके सामने को दौड़े ॥ २० ॥ काल और यमकी समान उन दोनोंको आते हुए देखकर भीमसेन रथमेंसे कूदपड़ा और पहाड़की समान दृढ़ हो गदा उठाकर सामने खड़ा हो गया, यमदण्डकी समान भारी गदाको हाथमें लेकर शिखर सहित कैलासकी समान खड़े हुए उस भीमसेनको देखकर दुर्योधन और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा दोनों इकठे होकर उसके सामने आये ॥ २१—२३ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ उन दोनों

त्वरमाणो वृकोदरः ॥ २४ ॥ समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीम-
दर्शनम् । समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः ॥ २५ ॥
भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया । नानाविधानि शस्त्राणि
भीमस्योरस्यपातयन् ॥ २६ ॥ सहिताः पांडवं सर्व पीडयन्तः
समन्ततः । तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तम्पीड्यमानम्महारथम् ॥ २७ ॥
अभिमन्युप्रभृतयः पांडवानां महारथाः । अभ्यधावन् परीप्सन्तः
प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥२८॥ अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य
दयितः सखा । नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात् २९
स्पर्धतेहि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन सः । स विस्फार्य महच्चापं
द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ॥ ३० ॥ यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध

को एकसाथ अपनी ओरको आते हुए देखकर शीघ्र ही भीमसेन
बड़े वेगसे उनके सामनेको दौड़ा ॥ २४ ॥ तब भयानक दीखने
वाले भीमसेनको कोपमें भरकर अपने ऊपरको झपटते हुए देख
कर कौरव पक्षके महारथी शीघ्र ही आगेको दौड़े ॥ २५ ॥ वह
द्रोणाचार्य आदि सब योधा भीमसेनको मारनेकी इच्छासे
अनेकों प्रकारके अस्त्र भीमसेनकी छातीमें मारने लगे ॥ २६ ॥
वह सब इकट्ठे होकर भीमसेनको चारों ओरसे पीड़ा देने लगे
तब उस महारथ भीमसेनको पीड़ा पाता और प्राणोंके सन्देहमें
पड़ाहुआ देखकर ॥ २७ ॥ अभिमन्यु आदि पाण्डवोंके महारथी
परमप्यारे प्राणोंका भी मोह छोड़कर उसको बचानेके लिये दौड़े
॥ २८ ॥ भीमसेनका प्यारा मित्र मेघकी समान श्यामवर्ण
अनूप देशका स्वामी नीलनामका शूर राजा बड़े क्रोधमें भरकर
अश्वत्थामाके ऊपरको दौड़ा ॥ २९ ॥ वह महाधनुषधारी द्रोण-
पुत्र अश्वत्थामाके साथ सदा स्पर्धा (हिर्स) रखता था उसने अपने
बड़े भारी धनुषको चढ़ाकर अश्वत्थामाके एक बाण मारा ॥३०॥
हे महाराज ! जैसे, कि---पहिले इन्द्रने देवताओंको भय उपजाने
वाले अपने कोपसे तीनों लोकोंको त्रास देनेवाले विप्रचित्ति नाम

दानवम् । विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयंकरम् ॥ ३१ ॥ येन लोकत्रयं क्रोधात् त्रासितं स्वेन तेजसा । तथा नीलेन निर्भिन्नः सुमुक्तेन पत्रिणा ॥ ३२ ॥ सञ्जातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः । स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमप्रभम् ॥३३॥ दध्रे नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः । ततः सन्धाय विमलान् भल्लान् कर्मारमार्जितान् ॥ ३४ ॥ जघान चतुरो वाहान् पातयामास च ध्वजम् । सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥ स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् । मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ॥ ३६ ॥ घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो भ्रातृभिः परिवारितः । अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥३७॥ तथेतरे चाभ्यधावन् राक्षसा युद्धदुर्मदाः । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ३८ ॥ अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन् ।

के उद्धत दानवके ऊपर प्रहार किया था तैसे ही नीलने ताककर छोड़ हुए अपने बाणसे अश्वत्थामाको घायल कर दिया ॥३१॥ ॥ ३२ ॥ तब तो रुधिर निकलनेसे बड़ी पीड़ा पाता हुआ अश्वत्थामा क्रोधमें भरगया और उसने इन्द्रके वज्रकी समान शब्द करनेवाले अपने विचित्र धनुषको चढ़ालिया ॥ ३३ ॥ और उस चतुरशिरोमणिने नीलका नाश करनेका विचार किया और फिर सानपर धरकर चमकदार कियेहुए भल्ल नामके बाण चढ़ाये ॥ ३४ ॥ उसके चार घोड़ोंको मारकर तथा ध्वजाको गिराकर सातवें भल्ल बाणसे नीलकी छातीको फोड़ दिया ३५ गहरा घाव आनेके कारण वह पीड़ित होकर रथकी बैठकके सहारे से बैठगया तब तो श्याम घनघटाकी समान नीलको मूर्छित हुआ देखकर कोपमें भराहुआ घटोत्कच अपने सम्बन्धियोंको साथ लेकर संग्रामको शोभा देनेवाले अश्वत्थामाके सामनेको दौड़ा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और भी बहुतसे युद्धदुर्मद दानव दौड़े, तब उस भयानक दीखनेवाले राक्षसको दौड़कर आते देख ॥३८॥

निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान् भीमदर्शनान् ॥ ३९ ॥ येऽभवन्न
ग्रतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः । विगतांश्चैव तान् दृष्ट्वा द्रौणि
चापच्युतैः शरैः ॥ ४० ॥ अक्रुध्यत महाकायो भैमसेनिर्घटो
त्कचः । प्रादुश्चक्रे ततो मायां घोररूपां सुदारुणाम् ॥ ४१ ।
मोहयन् समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः । ततस्ते तावकाः स
मायया विमुखीकृताः॥४२॥ अन्योऽन्यं समपश्यन्त निकृत्ता मेदिनी
तले । विचेष्टमानाः कृपणाः शोणितेन परिप्लुताः ॥ ४३ ।
द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च । प्रायशश्च महेष्वासा
प्रधानाः सकौरवाः॥४४॥ विध्वस्ता रथिनः सर्वे राजानश्च निपा
तिताः । हयांश्चैव हयारोहाः सन्निकृत्ताः सहस्रशः ॥ ४५ ॥ त
दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिविरं प्रति । मम प्राक्रोशतो राजंस्तथा

द्रोणाचार्यका तेजस्वी पुत्र भी बड़ी शीघ्रतासे उसके सामनेको दौड़ा
और अत्यन्त क्रोधमें भरकर घटोत्कचके जितने भी क्रोधी और
भयानक दीखने वाले राक्षस आगे२ थे उन सबका संहार करने
लगा, अश्वत्थामाके छोड़े हुए बाणोंसे राक्षस मर रहे हैं यह देखते
ही बड़े शरीर वाला वह भीमसेनका अत्यन्त दारुण पुत्र घटो-
त्कच बड़े क्रोधमें भरगया और अपनी अतिदारुण घोर मायाको
फैलाने लगा ॥ ३९-४१ ॥ उस मायावी राक्षसराजने रणमें
अश्वत्थामाको मूढ़सा बनादिया तब तो तुम्हारे सब योधा माया
के प्रभावसे रणमेंसे पीछेको लौटने लगे ॥ ४२ ॥ तथा आपसमें
एक दूसरेको कटकर पृथिवीपर पड़े हुए रुधिरसे भीगे हुए तथा
बेवश होकर जिधर तिधर लोटते हुए देखने लगे ॥ ४३ ॥ इस
मायासे द्रोण दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा आदि जो बड़े२ धनुप-
धारी थे वह तथा और सब मुख्य२ कौरव, सब रथी, राजे,
घोड़े, घुड़सवार आदि हजारों रणमें कटकर पड़े हुए दीखते थे
॥ ४४ ४५ ॥ हे राजन् ! यह दशा देखते ही तुम्हारी सेना
शिविर (सेनाके पड़ाव) की ओरको भागने लगी, उस समय

देवव्रतस्य च ॥४६॥ युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे। घटोत्कचप्रयुक्तेति नातिष्ठन्त विमोहिताः ॥ ४७ ॥ नैव ते श्रद्दधुर्भीता वदतोरावयोर्वचः। तांश्च प्रद्रवतो दृष्ट्वा जयं प्राप्ताश्च पांडवाः ४८ घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान् प्रचक्रिरे। शंखदुन्दुभिनिर्घोषैः समन्तान् नेदिरे भृशम् ॥४९॥ एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना। सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बमायायां चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच। तस्मिन् महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा। गाङ्गेयमुपसङ्गम्य विनयेनाभिवाद्य च ॥ १ ॥ तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे। घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥२॥

मैंने तथा देवव्रत भीष्मजीने पुकार२ कर बहुतेरा कहा, कि—यह घटोत्कच राक्षसकी फैलायी हुई माया है, इसकारण तुम रणमेंसे पीछेको न भागकर युद्ध करो, परन्तु मायासे मोहित हुए वह रुके ही नहीं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हमारे ऐसा कहनेपर भी भयभीत होजानेके कारण तुम्हारे योधाओंको हमारे कहनेका विश्वास नहीं हुआ और तुम्हारे सैनिकोंको इसप्रकार भागते हुए देखकर पाण्डवोंने विजय पायी ॥ ४८ ॥ घटोत्कचके साथ सिंहोंकी समान गरजते हुए उन्होंने शङ्ख दुन्दुभि आदि बाजोंसे सब रणभूमिको अच्छे प्रकारसे गुंजार दिया॥४९॥इसप्रकार दुष्टात्मा घटोत्कचने सूर्यास्तका समय आनेपर तुम्हारी सेनाको भगादिया इसकारण वह चारों ओरको भागगयी थी ॥ ५० ॥ चौरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि—उस महासंग्रामके होचुकने पर राजा दुर्योधन गङ्गानन्दन भीष्मके पास गया और विनयके साथ प्रणाम करके उनसे सब वृत्तान्त कहा ॥ १ ॥ उद्धत राजा दुर्योधनने वारम्बार लंबे सांस छोड़कर भीष्मसे घटोत्कचके विजय और अपने पराजयके विषयमें जैसे२ जो कुछ हुआ था वह सब कहना

कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः । अब्रवीच्च तदा राजन् भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ३ ॥ भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः । पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥४॥ एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम । निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परन्तप ॥५ ॥ सोऽहं भारतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः । घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ॥ ६ ॥ तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवानलः । तदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात् परन्तप ॥ ७ ॥ राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह । त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ८ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम । दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥९॥ शृणु राजन् मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव । यथा त्वया महाराज वर्त्तितव्यं परन्तप ॥ १० ॥ आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वा-

---

आरम्भ किया और फिर हे महाराज ! कुरुओंके पितामह भीष्म से उसने कहा, कि—॥ २ ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! पाण्डवोंने जैसे वासुदेवका आश्रय लिया है तैसे ही मैंने आपका आश्रय लेकर पाण्डवोंके साथ घोर संग्राम ठाना है॥४॥ हे परन्तप ! मेरी जो गिनीहुई ग्यारह अक्षौहिणी सेना है वह सब तथा मैं भी आपकी आज्ञामें चलते हैं ॥ ५ ॥ तो भी हे भरतसिंह ! भीमसेन आदि पाण्डवोंके योधाओंने घटोत्कचकी सहायतासे मुझे युद्धमें हरा दिया है ॥ ६ ॥ जैसे अग्नि सूखे वृक्षको जलाता है तैसे ही यह घटना मेरे अङ्गोंको जलाकर भस्म कररही है इसलिये हे परन्तप पितामह ! आपकी कृपासे मैं इस दुष्ट राक्षसको अपने हाथसे मारना चाहता हूं इसलिये आप ऐसा करिये कि—जिससे मेरा यह मनोरथ सिद्ध होजाय ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे भरतसत्तम ! राजा दुर्योधनकी इस बातको सुनकर भीष्मपितामहने उससे कहा, कि- ॥९॥ हे कौरवराज ! तुझे जिसप्रकार काम करना चाहिये वह अब मैं तुझे बताता हूं, तू मेरी बात सुन ॥ १० ॥ हे शत्रुओंका

रक्ष्यास्त्वरिन्दम । धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदाऽनघ ॥ ११ ॥ अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः । राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमार्च्छति ॥ १२ ॥ अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः । शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथाः ॥ १३ ॥ तव च भ्रातरः श्रेष्ठा दुःशासनपुरोगमाः । त्वदर्थं प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥ १४ ॥ रौद्रे तस्मिन् राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुतापो महान् । अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः ॥ १५ ॥ भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि । एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥ समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः । गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ॥ १७ ॥ वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम् । राक्षसं क्रूरकर्माणं

दमन करनेवाले तात ! सब दशाओंमें मनुष्यको अपने आत्माकी रक्षा करनी चाहिये अतः हे अनघ ! तुम्हें सदा युधिष्ठिरके साथ संग्राम करना चाहिये ॥ ११ ॥ अर्जुनके साथ, नकुल सहदेव के साथ अथवा भीमसेनके साथ लड़, क्योंकि राजधर्मके अनुसार राजाको राजाके ही साथ युद्ध करना चाहिये ॥ १२ ॥ मैं द्रोण कृपाचार्य अश्वत्थामा सात्वतवंशी कृतवर्मा शल्य भूरिश्रवा और विकर्ण आदि महारथी तथा दुःशासन आदि तेरे श्रेष्ठ भाई यह सब उस महाबली राक्षसके साथ युद्ध करेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ तथापि यदि तुम्हें इस भयानक दुष्टबुद्धि राक्षसके लिये बड़ाभारी पछतावा होरहा है तो रणमें इन्द्रकी समान पराक्रमवाले इस राजा भगदत्तको उसके साथ युद्ध करनेको जाने दे, दुर्योधनसे इतना कहकर बोलनेवालोंमें चतुर भीष्मजीने राजा भगदत्तसे दुर्योधनके सामने यह बात कही, कि-हे महाराज ! आप युद्धदुर्मद राक्षस घटोत्कचके साथ युद्ध करनेको शीघ्र ही जाइये ॥ १५-१७ ॥ और जैसे पहिले इन्द्रने भयानक पराक्रमवाले तारकासुरका नाश

यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥ १८॥ दिव्यानि तव शस्त्राणि विक्रमश्च परंतप । समागमश्च बहुभिः पुराभूद्सुरैः सह ॥ १९ ॥ त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे । स्वबलेनाभिसंवृतो राजन् जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥ २०॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः । प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २१ ॥ तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् । अभ्यवर्त्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २२ ॥ भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः । द्रौपदेयाः सत्यधृतिः सहदेवश्च भारत ॥ २३ ॥ चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा । सुप्रतीकेन तांश्चापि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत् २४ ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् । पाण्डूनां भगदत्तेन यम-

---

किया था तैसे ही तुम सब धनुषधारियोंके सामने लड़कर इसको हटाओ ॥ १८ ॥ हे परन्तप ! तुम्हारे अस्त्र दिव्य हैं और पराक्रम बड़ाभारी है तथा आपका पहिले देवदानवोंके युद्धमें अनेकों बार राक्षसों के साथ समागम भी हुआ है ॥ १९ ॥ इसलिये हे राजसिंह ! तुम ही महायुद्धमें इस राक्षसके सामने शोभा पासकते हो तथा महाबली हो इसकारण हे राजन् ! अपनी सेनाओंको साथ लेकर तुम शीघ्र ही इस बड़ेभारी राक्षसका नाश करो ॥ २० ॥ सेनापति भीष्मकी इसबातको सुनकर राजा भगदत्त सिंहकी समान गरजता हुआ शत्रुओंकी सेनाके सामनेको बड़े वेगसे चलागया ॥ २१ ॥ गरजते हुए मेघकी समान भगदत्तको आते देखकर पाण्डवोंके महारथी क्रोधमें भरकर उसके सामने आये ॥ २२ ॥ हे भारत ! भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदीके पुत्र, सत्यधृति, सहदेव, चेदिराज, वसुदान और दशार्ण देशका राजा पाण्डवोंके इतने योधाओंको आगेको आते देखकर भगदत्त अपने सुप्रतीक नामके हाथी पर बैठकर उनके सामने आया॥२३॥२४॥ तुरन्त ही यमराजके राज्यकी बसती को बढ़ानेवाला पाण्डवोंका

राष्ट्रविवर्धनम् ॥२५॥ प्रयुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः। ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च॥२६॥प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः। परस्परं समासाद्य सन्निपेतुरभीतवत् ॥ २७ ॥ मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे। बिभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ २८ ॥ हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः। चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥ २९ ॥ पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः। न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥३० ॥ रथिनश्च रथै राजन् कर्णिनालीकसायकैः। निहत्य समरे वीरान् सिंहनादान् विनेदिरे ॥ ३१ ॥ तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे। भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाद्रवत् ॥ ३२ ॥ कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता

भगदत्तके साथ महाभयानक युद्ध होने लगा ॥ २५ ॥ रथियोंके ताक२ कर मारे हुए भयङ्कर वेगवाले तीखे बाण, हे महाराज ! हाथी और रथोंके ऊपर पड़ने लगे ॥ २६ ॥ महावतोंने जिनको अच्छे प्रकार शिक्षा दी थी और बहुत ही मद टपकाने वाले हाथी निर्भय होकर एक दूसरेके सामनेको दौड़ने लगे ॥ २७ ॥ मदसे अन्धे और क्रोधके आवेशमें भरेहुए हाथी उस महासंग्राम में एक दूसरेके सामने पहुंचकर मूसलकी समान अपने दांतोंकी नोकोंसे परस्परको चीरने लगे ॥ २८ ॥ भालेवाले सवारोंके दौड़ायेहुए चँवर और साजवाले घोड़े शीघ्रतासे एक दूसरेके ऊपरको झपटने लगे ॥ २९ ॥ जिनको पैदल योधाओंने शक्ति और तोमरोंसे घायल किया था ऐसे सैंकड़ों और सहस्रों पैदल भूमिपर गिरने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! सामनेके रथियोंको रण में बाणोंसे और बन्दूकोंसे मारकर रथी सिंहनाद करने लगे ॥ ३१ ॥ वह रोमाञ्च खड़े करनेवाला संग्राम जब इसप्रकार होने लगा तब महाधनुषधारी भगदत्त भीमसेनके साथ लड़नेको दौड़ आया ॥ ३२ ॥ जैसे ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ इन्द्र जलकी

मदम् । पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वशः ॥ ३३ ॥ फिर रसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः । ऐरावतस्थो मघवान् वारिवं इवानघ ॥ ३४ ॥ स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिव पर्वतं वारिधाराभिस्तपांते जलदो यथा ॥ ३५ ॥ भीमसेन स क्रुद्धः पादरक्षान् परः शतान् । निजघान महेष्वासः सं १० शरैस्त्रिभिः ॥ ३६ ॥ तान्दृष्ट्वा निहतान् क्रुद्धो भगदत्तः प्रत वान् । चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥३७॥ स ना प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा । अभ्यधावत वेगेन भीमसे परिन्दमम् ॥ ३८ ॥ समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः अभ्यवर्त्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ केकयाश्चाभि मन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः । दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥ ४० ॥ चेदिपश्चित्रकेतुश्च संरब्धाः सर्व एव ते । उत्त

धारायें बरसाता है तैसे ही जलके प्रवाहवाले पहाड़की समा बहता हुई मदकी साम धाराओंवाले सुप्रतीके हाथीपर बैठक राजा भगदत्त हजारों बाण बरसाने लगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ औ जैसे ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें मेघ जलकी धाराओंसे पहाड़को ढ देता है तैसे ही इस राजाने बाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको ढ दिया ॥ ३५ ॥ तब तो बड़े क्रोधमें भरेहुए भीमसेनने बाण छो कर भगदत्तके सौसे भी अधिक पादरक्षकोंको मारडाला ॥३६। अपने रक्षकोंको मरेहुए देखकर कोपमें भरेहुए प्रतापी भगदत्त अपने हाथीको भीमसेनके रथके सामनेको दौड़ाया ॥ ३७ । उस भगदत्तका दौड़ाया हुआ वह हाथी धनुषसे छूटे हुए बा की समान बड़े वेगके साथ शत्रुनाशी भीमसेनके सामनेको दौड़ा ॥ ३८ ॥ परन्तु हाथीको आगेको झपटते हुए देखकर पाण्डवों के महारथी भीमसेनको आगे करके बड़े जोरसे दौड़े ॥ ३९ ॥ केकय, अभिमन्यु द्रौपदीके सब पुत्र दशार्णदेशका राजा शूर क्षत्र- देव चेदिराज चित्रकेतु आदि कोपमें भरेहुए सब योधाओंने उत्तम

स्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ॥ ४१ ॥ तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात् पर्य्यवारयन् । स विद्धो बहुभिर्बाणैर्व्यरोचत महाद्विपः ॥ ४२ ॥ सञ्जातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाद्रिराट् । दशार्णाधिपतिश्चापि गजं भूमिधरोपमम् ॥ ४३॥ समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम् । तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ।४४। दधार सुप्रतीकोपि वेलेव मकरालयम् । वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मनः ॥ ४५ ॥ साधु साध्विति सैन्यानि पाण्डवेयानपूजयन् । ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान् वै चतुर्दश ४६ प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम । वर्मंमुख्यं तनुत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम् ॥ ४७ ॥ विदार्य्य प्राविशन् क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः । स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ॥ ४८ ॥ उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्त्तत वेगिनः । स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन्

और दिव्य आयुध खेंचकर उस हाथीको चारों ओरसे घेरलिया और अनेकों बाणोंसे विंधाहुआ वह हाथी रुधिरकी धाराओंके बहनेसे धातुओंके झरनोंसे विचित्र दीखने वाले हिमालयकी समान विचित्र दीखता था, दशार्ण देशका राजा भी पहाड़की समान अपने हाथीपर बैठकर भगदत्तके हाथीके सामने आया उस हाथीको अपने सामने आताहुआ देखकर गजराज सुप्रतीक ने उसको ऐसे रोकदिया जैसे किनारा समुद्रकी तरङ्गोंको रोके रहता है इसप्रकार महात्मा दशार्णपतिके हाथीको रुकाहुआ देखकर ॥ ४०–४५ ॥ पाण्डवोंकी सेनायें भी बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहने लगीं फिर क्रोधमें भरेहुए प्राग्ज्योतिष देशके राजाने उस हाथीके ऊपर चौदह तोमर फेंके और सोनेसे शोभायमान कियाहुआ उस हाथीके शरीर परका बखतर तोड़ दिया वह बाण जैसे सांप बमईमें घुसजाते हैं तैसे ही उस हाथीके शरीर में खचाखच घुसगये, हे भरतसत्तम ! उन तोमरोंसे बहुत ही घायल हुआ वह हाथी अत्यन्त ही कष्टको प्राप्त हुआ और अपने

भैरवं रवम् ॥ ४६ ॥ सम्मर्द्दयानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
तस्मिन् पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ॥ ५० ॥ सिंहनादं
विनद्योच्चैर्युद्धायैवावतस्थिरे । ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपा-
द्रवन् ॥ ५१ ॥ किरन्तो विविधान् बाणान् शस्त्राणि विविधानि
च । तेषामापततां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ॥ ५२ ॥ श्रुत्वा स
निनदं घोरममर्षाद्विगतसाध्वसः । भगदत्तो महेष्वासः स्वं नागं
प्रत्यचोदयत् ॥ ५३ ॥ अंकुशाङ्गुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि ।
तस्मिन् क्षणे समभवत् सांम्वर्तक इवानलः ॥ ५४ ॥ रथसंघां-
स्तथा नागान् हयांश्च सह सादिभिः । पादातांश्च सुसंक्रुद्धः शत-
शोऽथ सहस्रशः ॥५५॥ अमृद्नात्समरे नागः संप्रधावंस्ततस्ततः ।
तेन संपीड्यमानन्तु पांडवानां बलं महत् ॥ ५६ ॥ सञ्चुकोच

मद नष्ट होजानेके कारण भयानक चीखें मारता हुआ बड़े वेगसे
पीछेको फिरकर भागा ॥ ४६–४९ ॥ और जैसे वायु वृक्षोंको
सपाटेके साथ तोड़ डालता है तैसे ही यह हाथी अपनी सेनाको
कुचलता हुआ भागता ही चलागया तिस हाथीके इसप्रकार हार
मान जानेपर पाण्डवोंके महारथी ॥ ५० ॥ सिंहकी समान गर्ज-
नायें करते हुए युद्ध करनेके लिये आकर खड़े होगए और भीम-
सेनकी अधीनतामें अनेकों प्रकारके बाण तथा नाना प्रकारके
शस्त्र छोड़ते हुए वह योधा भगदत्तके ऊपरको दौड़े हे राजन् !
अत्यन्त कोपमें भरे तथा न सहने वाले उन योधाओंकी घोर
गर्जनाओंको सुनकर क्रोध करनेवाले परन्तु निडर बनेहुए महा-
धनुषधारी भगदत्तने जरा भी न डरकर अपने हाथीको उनके
सामनेको दौड़ाया ॥ ५१—५३ ॥ अंकुश और अंगूठेसे हांका
हुआ वह हाथी संवर्त्तक अग्निकी समान क्षणभरमें कोपसे जल
उठो और क्रोधमें भरकर इधर उधरको भागते हुए सहस्रों रथ,
हाथी, घोड़े, सवार और पैदल आदिको कुचल डाला, हे महा-
राज ! जैसे आगमें पड़ा हुआ चमड़ा सुकड़ जाता है तैसे ही हाथी
की विलोड़ी हुई पाण्डवोंकी सेना बहुत ही संकुचित होगयी,

महाराज चर्मेवाग्नौ समाहितम् । भग्नन्तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ॥५७॥ घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत् । विकटः पुरुषो राजन् दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ॥ ५८ ॥ रूपं विभीषणं कृत्वा रोषेण प्रज्वलन्निव । जग्राह विमलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ॥ ५९ ॥ नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः । सविस्फुलिङ्गमालाभिः समन्तात् परिवेष्टितः ॥ ६० ॥ तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा प्राग्ज्योतिषो नृपः । चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं सुदारुणम् ॥ ६१ ॥ चिच्छेद तन्महच्छूलं तेन बाणेन वेगवान् । उत्पात द्विधाच्छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥ ६२ ॥ महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता । शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृत्तं च पार्थिवः ॥ ६३ ॥ रुक्मदण्डां महाशक्तिं जग्राहाग्निशि-

---

हमारी सेनाको बुद्धिमान् भगदत्तने तित्तर बित्तर कर डाला है, यह देखकर कोपमें भराहुआ घटोत्कच उसके सामने आया, अत्यन्त विकट, तमतमाते हुए मुखवाले और चमकते हुए नेत्रों वाले उस महाबली राक्षसने, क्रोधसे जलता हुआसा अति भयानक रूप धारण करके पहाड़ोंको भी फाड़ डालने वाला एक त्रिशूल हाथमें लिया और हाथीके प्राण लेनेके लिये तुरन्त उसके सामनेको फेंका,वह हाथी चारों ओरसे अग्निकी लपटोंसे घिरगया ॥ ५४---६० ॥ उस त्रिशूलको एकायकी आते हुए देखकर प्राग्ज्योतिषराजने अर्धचन्द्र नामका दारुण और सुन्दर बाण उसके सामनेको छोड़ा, जोशमें भरकर छोड़ेहुए उस बाणके साथ अटक जानेसे यह बड़ाभारी शूल एकसाथ कटगया और वह सोनेसे मढ़ाहुआ शूल दो टुकड़े होकर भूमिपर गिर पड़ा ॥६१॥ ॥ ६२ ॥ और जैसे इन्द्रका फेंका हुआ महावज्र आकाशमें दो जगह बँटजाता है तैसे ही हे राजन् ! बाणके लगनेसे उस शूल के दो टुकड़े होकर उड़े ॥ ६३ ॥ शूलको कटाहुआ देखकर, जिसमें सोनेका दण्डा लगा था ऐसी अग्निकी ज्वालाकी समान

खोपमाम् । चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ६४ तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव । उत्पत्य राक्षसस्तूर्ण जग्राह च ननाद च ॥ ६५ ॥ बभञ्ज चैनां त्वरितो जान्वारोप्य भारत । पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६६ ॥ तदवेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन बलीयसा । दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चापि विस्मिताः ॥६७॥ पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन् ॥ ६८ ॥ तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम् । नामृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ॥ ६९ ॥ स विस्फार्य्य महच्चापमिंद्राशनिसमप्रभम् तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान् ॥ ७० ॥ विसृजन् विमलांस्तीक्ष्णान्नाराचान् ज्वलनप्रभान् । भीममेकेन विव्याध

एक महाशक्ति हाथमें लेकर भगदत्तने 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहते हुए उस राक्षसके ऊपरको फेंक दी ॥ ६४ ॥ आकाशमेंसे गिरते हुए वज्रकी समान उस शक्तिको आती हुई देखकर राक्षसने तुरन्त छलांग मारी और उसको पकड़ लिया तथा सिंहकी समान गरजने लगा ॥ ६५ ॥ दोनों जांघोंमें दबोचकर सब राजाओंके सामने ही उसको तोड़डाला, इस पराक्रमको देखकर सबको बड़ा अचरज मालूम हुआ ॥ ६६ ॥ महाबली राक्षसके किये हुए ऐसे पराक्रमको देखकर आकाशमें देवता, गन्धर्व, और मुनियोंको अचरज हुआ, तथा भीमसेन आदि पाण्डवोंने बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहकर सब रणभूमिको गुंजार डाला ६७ ॥ ६८ ॥ बड़े ही आनन्दमें भरे हुए महात्मा पाण्डवोंका ऐसा विजयका शब्द सहन न होनेके कारण महाधनुषधारी प्रतापी भगदत्तने इन्द्रके वज्रकी समान कान्तिवाले अपने धनुषको खेंच कर पाण्डवोंके महारथियोंके ऊपर बड़े जोरके साथ अग्निकी समान उजाला करनेवाले तीखे बाण मारना आरम्भ करदिये और उनका तिरस्कार करने लगे उसने एक बाणसे भीमसेनको,

राक्षसं नवभिः शरैः ॥ ७१ ॥ अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान् पञ्चभिस्तथा । पूर्णायतविसृष्टेन शरेणानतपर्वणा ॥ ७२ ॥ बिभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाहवे । पपात सहसा तस्य सशरं-धनुरुत्तमम् ॥ ७३ ॥ द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत् । भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान् ॥ ७४ ॥ ध्वजं केसरिणं चास्य चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः । निर्बिभेद त्रिभिश्चान्यैः सारथिं चास्य पत्रिभिः ॥ ७५ ॥ स गाढविद्धो व्यथितो रथो-पस्थ उपाविशत् । विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥ ७६ ॥ ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः । गदां प्रगृह्य वेगेन प्रच-स्कन्द रथोत्तमात् ॥ ७७ ॥ तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् । तावकानां भयं घोरं समपद्यत भारत ॥ ७८ ॥ एतस्मिन्नेव काले

नौ बाणोंसे राक्षसको, तीन बाणोंसे अभिमन्युको और पांच बाणोंसे केकयोंको बींधडाला ॥ ६९–७२ ॥ फिर बड़े ही जोर से खेंचकर छोड़े हुए एक दूसरे बाणसे क्षत्रदेवका दहिना हाथ काटडाला, उससे उसका धनुष बाण सहित भूमिपर गिरपड़ा ॥ ७३ ॥ फिर उसने पांच बाण छोड़कर द्रौपदीके पांचों पुत्रोंके ऊपर प्रहार किया, फिर उसने कोपमें भरकैर भीमसेनके घोड़ों को मारडाला ॥ ७४ ॥ तथा और तीन बाण छोडकर उसकी सिंहके चिन्हवाली ध्वजाको काटडाला. फिर और तीन बाण छोड़कर उसके सारथीको भी मारडाला ॥ ७५ ॥ अत्यन्त घायल होनेसे भीमसेनको पीड़ा होने लगी और रथकी बैठक पर बैठ गया, फिर रथहीन हुआ महारथी भीमसेन शोक न करके साव-धानीके साथ हाथमें बड़ी भारी गदा लेकर एक साथ बड़ेभारी रथ परसे भूमिपर कूदपड़ा ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ हे भारत ! शिखर सहित पर्वतराजकी समान चलकर हाथमें गदालिये आते हुए भीमसेनको देखकर तुम्हारे सैनिकोंको बड़ा भय लगनेलगा ७८ हे महाराज ! इतनेमें ही श्रीकृष्ण जिसके सारथी हैं ऐसा अर्जुन

तु पाण्डवः कृष्णसारथिः । आजगाम महाराज निघ्नन् शत्रून् समन्ततः ॥ ७९ ॥ यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महाबलौ प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥८० ॥ दृष्ट्वा च पाण्डव भ्रातृन् युध्यमानान्महारथान् । त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्रायुध्यत् किरन्छरान् ॥ ८१ ॥ ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः सेनामचोदयत् क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम् ॥ ८२ ॥ तामापतन्त सहसा कौरवाणां महाचमूम् । अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेत वाहनः ॥ ८३ ॥ भगदत्तश्च समरे तेन नागेन भारत । विमृद्नन् पांडवबलं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥८४ ॥ तदासीत्तुमुलंयुद्धं भगदत्तस्य मारिष । पञ्चालैः पांडवेयैश्च केकयैश्चोद्यतायुधैः ॥ ८५ ॥ भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ । अश्रावयद्यथावृत्तमिरावद्वध मुत्तमम् ॥ ८६ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
भगदत्तपराक्रमे पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

शत्रुओंको संहार करता २ जहाँ पुरुषोंमें सिंहसमान पिता पुत्र भीमसेन और घटोत्कच युद्ध कर रहे थे तहाँ आपहुंचे ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ अर्जुनने अपने महारथी भाईको युद्ध करते देखकर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया ॥ ८१ ॥ तब महारथी राजा दुर्योधनने शीघ्रतासे रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरीहुई अपनी सेना एकसाथ आगेको बढ़ादी ॥ ८२ ॥ कौरवोंकी बड़ीभारी सेनाको एक साथ बढ़ती हुई देखकर सफेद घोड़ोंवाला अर्जुन बहुत ही वेगसे आगेको बढ़ा ॥ ८३ ॥ हे राजन् ! उस ही समय पांडवोंकी सेनाको कुचलता हुआ भगदत्त उस ही हाथी पर बैठ कर इस ही संग्राममें डटेहुए युधिष्ठिरके सामने चढ़ आया ॥८४॥ और हे राजन् ! उस भगदत्तका पांचाल, पांडव और उठेहुए शस्त्रोंवाले केकयोंके साथ घोर युद्ध होनेलगा ॥ ८५ ॥ इस ही युद्धमें भीमसेनने श्रीकृष्ण और अर्जुनको इरावान् के मारेजानेका समाचार सुनाया था ॥८६॥ पिचानवेवां अध्याय समाप्त ॥९५॥

सञ्जय उवाच । पुत्रं विनिहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनञ्जयः । दुःखेन महताविष्टो निःश्वसन् पन्नगो यथा ॥ १ ॥ अब्रवीत् समये राजन् वासुदेव मिदं वचः । इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा ॥ २ ॥ कुरूणां पाण्डवानाञ्च क्षयं घोरं महामतिः । स ततो निवारितवान् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥३॥ अन्ये च बहवो वीराः संग्रामे मधुसूदन । निहताः कौरवैः संख्ये तथास्माभिश्च कौरवाः ॥ ४ ॥ अर्थहेतोर्नरश्रेष्ठ क्रियते कर्म्म कुत्सितम् । धिगर्थान् यत्कृते ह्येवं क्रियते ज्ञातिसंक्षयः ॥ ५ ॥ अधनस्य मृतं श्रेयान्न च ज्ञातिवधाद्धनम् । किन्तु प्राप्स्यामहे कृष्ण हत्वा ज्ञातीन् समागतान् ॥६॥ दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौवलस्य च । क्षत्रिया

सञ्जय कहता है, कि—अपने पुत्र इरावान्‌के लड़ाईमें मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर जैसे सांप अति दुःखी होकर फुङ्कारें भरता है तैसे ही अर्जुन लम्बे २ सांस भरने लगा ॥ १॥ और हे राजन् ! उसने वासुदेवसे यह बात कही, कि—परम चतुर विदुरने पहिले ही जानकर कहदिया था, कि—कौरव और पांडवोंका महाक्षय होगा और इसी कारणसे उन्होंने राजा धृतराष्ट्रको बहुत ही समझाया था ॥ २ ॥ ३ ॥ हे मधुसूदन ! इस संग्राममें कौरवोंने हमारे बहुतसे वीरोंको मारडाला है तथा हमने भी रणमें उनके वीरोंका संहार किया है ॥ ४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! ये सब निन्दित काम धनके ही लिये किये जारहे हैं इस कारण जिसके लिये अपने भाइयोंका नाश करना पड़ता है ऐसे धनको धिक्कार है ॥ ५ ॥ धनहीन रहकर मरना अच्छा है, परन्तु सम्बन्धियोंका नाश करके धन पाना कल्याणकारी नहीं है, इन सब इकट्ठे हुए सगे सम्बन्धियोंको मारकर हे कृष्ण ! हमें क्या मिलना है ॥ ६ ॥ हाय ! दुर्योधनके अपराधसे और सुबलनन्दन शकुनि तथा कर्णकी खोटी संमतिसे क्षत्रियोंका नाश होरहा है

निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च ॥ ७ ॥ इदानीञ्च विजानामि सुकृतं मधुसूदन । कृतं राज्ञा महाबाहो याचता च सुयोधनम् ॥८॥ राज्यार्द्धं पञ्च वा ग्रामा नाकार्षीत् स च दुर्मतिः । दृष्ट्वा हि क्षत्रियान् शूरान् शयानान् धरणीतले ॥ ९ ॥ निन्दामि भृश-मात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् । अशक्तमिति मामेते ज्ञास्यन्ते क्षत्रिया रणे ॥ १० ॥ युद्धन्तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन । सञ्चोदय हयान् शीघ्रं धार्त्तराष्ट्रचमूं प्रति ॥ ११ ॥ प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् । नायं यापयितुं कालो विद्यते माधव कर्हिचित् ॥ १२ ॥ एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा । चोदयामास तानश्वान् पाण्डुरान् वातरंहसः ॥१३॥ अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य भारत । मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव

॥ ७ ॥ हे महाबाहु मधुसूदन ! धर्मराजने दुर्योधनसे निहोरा कर के आधा राज्य मांगा और जब वह नहीं दिया तो पांच ही ग्राम मांगे यह बहुत ही अच्छा किया था यह बात आज मेरी समझ में आरही है परन्तु इस याचनाको भी दुष्टात्माने नहीं माना इन सब शूर क्षत्रियोंको मरकर रणभूमिमें पड़े हुए देखता हुआ अपने आपेको बड़ा भारी धिक्कार देता हूं,धिक्कार है इस क्षत्रियधर्मको इस कारण हे मधुसूदन ! ये क्षत्रिय मुझे भले ही असमर्थ समझें परन्तु मुझे तो इन अपने सगे संबन्धियोंके साथ युद्ध करना जरा भी नहीं रुचता है तो भी आपके समझाये हुए धर्मके अनु सार मैं लडूंगा इस लिये मेरे घोड़ोंको जिधर धृतराष्ट्रके पुत्र हैं तहां लेचलिये ॥ ८ ॥ ११ ॥ मै अपनी भुजाओंसे इस दुस्तर संग्रामरूप सागरको तरूंगा हे माधव! अब विलम्ब करनेका अव-सर नहीं रहा है ॥ १२ ॥ अर्जुनकी इस बातको सुनकर शत्रु-ओंके वीरोंका संहार करनेवाले केशवने वायुकी समान वेगवाले सफेद घोड़े आगेको बढ़ाये ॥ १३ ॥ यह देखकर तुम्हारी सेना में पूर्णिमाके दिन पवन चलनेसे ऊँचा नीचा होनेवाले सागर

पर्यपि ॥ १४ ॥ अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत । पर्जन्य-समनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥ १५ ॥ ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् । परिवार्य्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा॥१६॥ ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः । भगदत्तः सुशर्मा च धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥ १७ ॥ हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ । अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवस्थितः ॥ १८ ॥ शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान् । ततः प्रवृत्ते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ १९॥ भीमसेनस्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर । प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव ॥ २० ॥ पुत्रास्तु तव कौंतेयं छादयाञ्चक्रिरे शरैः । प्रावृषीव महाराज जलदा इव पर्वतम्॥२१॥ स छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशांपते । सृक्किणी संलिहन् वीरः

ऐसा बड़ाभारी कोलाहल होने लगा ॥ १४ ॥ तीसरा पहर होने पर भीष्मका पाण्डवोंके साथ मेघकी समान घोर शब्दवाला महा-संग्राम आरम्भ हुआ ॥ १५ ॥ जैसे वसु इन्द्रको घेर लें तैसे ही द्रोणाचार्यके आस पास चलनेवाले तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनके ऊपर बड़ीभारी चढ़ाई की ॥ १६ ॥ शन्तनुके पुत्र भीष्म महारथी कृपाचार्य, भगदत्त, सुशर्मा आदि धनञ्जयके सामने आये ॥ १७ ॥ हार्दिक्य और बाह्लीक सात्यकिके सामने युद्ध करनेको गये, राजा अम्बष्ठक अभिमन्युके सामने डटगया ॥१८॥ और हे महाराज ! आपके बाकी योधा पाण्डवोंके अन्य योधाओंके सामने पहुंच गये, इसप्रकार देखनेमें भय उपजानेवाला भयानक युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥ जैसे घीसे अग्नि बल उठता है तैसे ही रणमें तुम्हारे पुत्रोंको देखकर भीमसेन बड़े कोपमें भर गया २० हे महाराज ! जैसे वर्षाकालमें मेघ पहाड़को ढक देता है तैसे ही तुम्हारे पुत्रोंने कुन्तीके पुत्रको बाणोंसे ढकदिया ॥ २१ ॥ हे राजन! उस समय तुम्हारे पुत्रोंके बाणोंसे छाया हुआ वीर भीमसेन सिंहकी समान बड़े ही घमण्डमें भराहुआ होठोंको चबारहा

शार्दूल इव दर्पितः ॥ २२ ॥ व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत। क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद्गतजीवितः॥ २३॥ अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन तु। अपातयत् कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ २४ ॥ ततः सुनिशितान् पीतान् समादत्त शिलीमुखान्। ससर्ज त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष ॥ २५ ॥ प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना। अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् ॥ २६ ॥ अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम्। दीर्घबाहुं सुबाहुञ्च तथैव कनकध्वजम् ॥२७॥ प्रपतन्तस्म वीरास्ते विरेजुर्भरतर्षभ। वसन्ते पुष्पशबलाश्चूताः प्रपतिता इव ॥ २८ ॥ ततो प्रदुद्रुवुः शेषास्तव पुत्रा महाहवे। तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥ २९ ॥ द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव। यथाद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद्व्यकिरच्छरैः ॥ ३० ॥ तत्राद्भुत-

---

था ॥ २२ ॥ उसने छुरेकी समान एक तेज बाणसे व्यूढोरस्क को गिरा दिया हे भारत ! वह गिरते ही मरगया ॥२३ ॥ तथा जैसे सिंह छोटे२ मृगोंको मार डालता है तैसे ही विषमें बुझाये हुए भल्ल नामके दूसरे तीखे बाणसे कुण्डलीको मार डाला२४ हे राजन् ! फिर विषमें बुझाये हुए अनेकों तीखे बाण चढ़ाकर सटासट तुम्हारे पुत्रोंके ऊपर छोड़ने लगा ॥२५॥ दृढ़ धनुषधारी भीमसेनके हाथसे छूटे हुए उन बाणोंने तुम्हारे महारथी पुत्रोंको रथोंमेंसे धपाधप नीचेको गिराना आरम्भ कर दिया ॥ २६ ॥ अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, विराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वजये तुम्हारे शूर पुत्र रथोंमेंसे गिरते समय वसन्त ऋतुमें टूट कर नीचे गिरे हुए फूलोंसे लदे आमके वृक्षोंकी समान दीखते थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ बाकी तुम्हारे पुत्र महाबली भीमको कालका रूप मानकर उस महारणमेंसे भाग गये ॥ २९ ॥ इस झपाझपी में तुम्हारे पुत्रोंको भस्म करनेवाले भीमके ऊपर द्रोणाचार्य जल धाराओंकी समान चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा कररहे थे ॥३०॥

मपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् । द्रोणेन वार्य्यमाणोऽपि निजघ्ने यत्सुतांस्तव ॥ ३१ ॥ यथा गोवृषभो वर्षं सन्धारयति खात् पतत् । भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत् ॥ ३२ ॥ अद्भुतञ्च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः । यत्पुत्रांस्तेऽवधीत् संख्ये द्रोणञ्चैव न्यवारयत् ॥ ३३ ॥ पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडार्जुनपूर्वजः । मृगेष्विव महाराज चरन् व्याघ्रो महाबलः ॥ ३४ ॥ यथा हि पशुमध्यस्थो द्रावयेत पशून् वृकः । वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद्रणे ॥ ३५ ॥ गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथः । पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुरर्जुनम् ॥ ३६ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य्य तेषां सोऽतिरथो रथे । प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३७ ॥

यहां हमने कुन्तीके पुत्रका बड़ा अद्भुत पराक्रम देखा, जो वह द्रोणाचार्यके अटकाने परभी तुम्हारे पुत्रोंको मारे ही चला जाता था ॥ ३१ ॥ जैसे आकाशमेंसे पड़ती हुई वर्षाके वेगको सांड नीचे को मुख किये हुए झेलता रहता है तैसे ही द्रोणाचार्यके बाणों को भीमसेन शान्तभावसे सहरहा था ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! इस संग्राममें भीमसेनने यह बड़े अचरजका काम किया, कि—बाण बरसाते सामनेसे आतेहुए द्रोणाचार्यको रोकता भी था और तुम्हारे पुत्रोंका संहार भी किये चला जाता था ॥ ३३ ॥ जैसे महाबली सिंह मृगोंके बीचमें फिरता हो तैसे ही अर्जुनका बड़ा भाई भीम तुम्हारे वीर पुत्रोंके मध्यमें घूमरहा था ॥ ३४ ॥ और जैसे भेड़िया पशुओंके झुण्डमें घुस कर उनको तित्तर बित्तर करता है तैसे ही भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंकी सेनामें घुस कर उनको रण में से भगादिया था ॥ ३५ ॥ भीष्म, भगदत्त, कृपाचार्य आदि महारथी इस रणमें वेगवान् पाण्डुनन्दन अर्जुनको रोकरहे थे ॥ ३६ ॥ परन्तु उस अतिरथीने रणमें सबके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे निवारण करके तुम्हारे मुख्य२ वीरोंको मार डाला था

अभिमन्युस्तु राजानमम्बष्ठं लोकविश्रुतम् । विरथं रथिनां श्रे
वारयामास सायकैः ॥ ३८ ॥ विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रे
यशस्विना । अवप्लुत्य रथात्तूर्णमंबष्ठो वसुधाधिपः ॥ ३९
असिं चिक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः । आरुरोह रथं चै
हार्दिक्यस्य महाबलः ॥ ४० ॥ आपततं तु निस्त्रिंशं युद्धमा
विशारदः । लाघवाद्व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा ॥ ४१
व्यंसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा । साधु साध्वि
सैन्यानां प्रणादोऽभूद्विशाम्पते ॥ ४२ ॥ धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये त
सैन्यमयोधयन् । तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ॥४३।
तत्राक्रन्दो महानासीत्तव तेषाञ्च भारत । निघ्नतां दृढमन्योऽन्
कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥ ४४ ॥ अन्योऽन्यं हि रणे शूराः केशेष्वा

॥ ३७ ॥ जगत्प्रसिद्ध तथा अतिरथियोंमें श्रेष्ठ राजा अम्बष्ठके अभिमन्युने बाणोंसे घेरकर विना रथका कर दिया था ॥३८ ॥ कीर्त्तिमान् सुभद्रानन्दनने जिसको विना रथका करदिया था और जो मरणके किनारे आलगा था ऐसा राजा अम्बष्ठ अपने रथ परसे कूद पड़ा ॥ ३९ ॥ और हार्दिक्यके रथपर चढ़ बैठा फिर उसने महात्मा अभिमन्युके ऊपर अपनी तलवार चलायी परन्तु अनेकों प्रकारकी युद्धकी रीतियोंमें चतुर तथा शत्रुओंका संहार करनेवाले अभिमन्युने फुरती करके अपने ऊपर पड़तीहुई उस तलवारके वारको चुका दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अभिमन्युने रणमें इस तलवारके प्रहारको चुका दिया यह देखकर हे राजन् ! सेनायें वाह ! वाह ! का कोलाहल करने लगीं ॥ ४२ ॥ धृष्टद्युम्न आदि योधा भी तुम्हारी सेनाके साथ युद्ध कर रहे थे तथा तुम्हारे सब योधा भी पाण्डवोंकी सेनाके साथ लड़रहे थे ४३ हे राजन् ! उस समय रणमें दुष्कर कर्म करने तथा परस्परको घोर संहार करते हुए तुम्हारे और पांडवोंके योधाओंका बड़ा भारी कोलाहल होरहा था ॥ ४४ ॥ इस रणमें अभिमानी शूर

क्षिप्य मानिनः नखदन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥ ४५ ॥ तलैश्चैवाथ निस्त्रिंशैर्बाहुभिश्च सुसंस्थितैः । विवरम्प्राप्य चान्योऽन्यमनयन् यमसादनम् ॥ ४६ ॥ न्यहनच्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा । व्याकुलीकृतसर्वाङ्गा युयुधुस्तत्र मानवाः ॥ ४७ ॥ रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि भारत । हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः ॥ ४८ ॥ जातरूपमयैः पुंखै राजतैर्निशिताः शराः तैलधौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः ॥ ४९ ॥ हस्तिदंतत्सरून् खड्गान् जातरूपपरिष्कृतान् । चर्माणि चापविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनाम् ॥ ५० ॥ सुवर्णविकृतप्रासान् पट्टिशान् हेमभूषितान् । जातरूपमयाश्चर्ष्टीः शक्तीश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ५१ ॥ सुसन्नाहाश्च

परस्परके केश पकड़कर नख, दांत, घूँसे तथा लातोंसे लड़ रहे थे ॥४५॥ तथा अवसर पाते ही योधा अपने प्रतिपक्षीको थप्पड़ोंसे, दृढ़ कोनियोंसे तथा तलवारोंसे मारकर यमपुरीमें भेजते थे ॥ ४६ ॥ पिता पुत्रका और पुत्र पिताका प्राणान्त कर रहा था एक दूसरेको पहचान ही नहीं सकता था, इसप्रकार घमसान युद्ध होरहा था, उस समय युद्ध करनेवाले योधाओंके अङ्ग अङ्गमें व्याकुलता होरही थी ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! उस रणमें जिनकी पीठ सोनेकी थी;ऐसे योधाओंके हाथोंमेंसे गिरे हुए सुन्दर धनुष बहुमूल्य भूषण, सोनेके पङ्खों वाले चांदीके पत्तर चढ़े तेल लगाकर चमकाये हुए कैंचुलीसे छूटेहुए सांपोंकी समान बाण रणभूमिमें इधर उधर पड़े हुए थे - बड़े ही शोभायमान दीखते थे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हाथी दांतकी मूठोंवाली और चांदीकी कलई की हुई तलवार सोनेसे चित्र विचित्र कीहुई धनुषधारियोंकी ढालें ॥ ५० ॥ सोनेसे चिते हुए भाले, सोने से शोभायमान किये हुए पट्टिशकी ऋष्टियें सोनेकी समान चमकदार शक्तियें ॥ ५१ ॥ बड़े२ हाथियोंके हौदे, भारी२ मूशल, परिघ, पट्टिश,

पतिता मुसलानि गुरूणि च । परिघान् पट्टिशांश्चैव भिंदिपालांश्च मारिप ॥ ५२ ॥ पतितान् विविधांश्चापांश्चित्रान्हेमपरिष्कृतान् । कुथा बहुविधाकाराश्चामरान् व्यजनानि च ॥५३॥ नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य पतिता नराः । जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वा महारथाः ॥ ५४ ॥ गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः । गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ ॥ ५५ ॥ तथैवाश्वनृनागानां शरीरैर्विबभौ तदा । संच्छन्ना वसुधा राजन् पर्वतैरिव सर्वशः ॥ ५६॥ समरे पतितैश्चैव शक्त्यृष्टिशरतोमरैः । निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासै रथकुंदैः परश्वधैः॥५७॥परिघैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिश्च मारिप । शरीरैः शस्त्रनिर्भिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥५८॥ विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः । गातासुभिरमित्रघ्न विबभौ निचिता मही ॥५९॥ सतलत्रैः सकेयूरैर्बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः।

भिन्दिपाल, सोनेसे चिते अनेकों प्रकारके धनुष,हाथियोंके ऊपर डालनेकी अनेकों प्रकारकी झूलें चँवर और पंखे आदि रणभूमि में बिखरे पड़े थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ तथा नाना प्रकारके शस्त्र हाथों में लिये पड़े हुए महारथी वीर पुरुष मरे हुए होनेपर भी जीवित से दीखते थे ॥ ५४ ॥ गदाओंसे कुचले हुए अङ्गोंवाले मूसलों से फूटेहुए मस्तकोंवाले हाथी घोड़े तथा रथोंके नीचे पिचेहुए ढेरके ढेर मनुष्य रणभूमिमें पड़े थे ॥ ५५ ॥ घोड़े मनुष्य और हाथियोंके मृतशरीरोंसे छायी हुई रणभूमि सर्वत्र पहाड़ोंसे भरी हुई सी दीखती थी ॥ ५६ ॥ रणभूमिमें पड़े हुए शक्ति, ऋष्टि, तोमर, तलवार पट्टिश, पाश, लोहेके भाले, फरसे ॥५७॥ परिघ, भिन्दिपाल,तोपें और शस्त्रोंसें कटे शरीर आदिसे रणभूमि छारही थी ॥ ५८ ॥ रुधिरकी धारमें बहते हुए कितने ही चुप, कितने ही चीखें मारते मरते और मरे हुए योधाओंसे भरीहुई भूमि शोभा पारही थी ॥ ५९ ॥ चमड़ेके मोजे, बाजूबन्द तथा चन्दन से

हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ६० ॥ बद्धचूडामणि-
वरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः । पातितैर्ऋषभाक्षाणां बभौ भारत
मेदिनी ॥ ६१ ॥ कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च काञ्चनैः ।
रराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवानलैः ॥ ६२ ॥ विप्रविद्धैः
कलापैश्च पतितैश्च शराशनैः । विप्रकीर्णैः शरैश्चैव रुक्मपुंखैः
समन्ततः ॥ ६३ ॥ रथैश्च सर्वतो भग्नैः किंकिणीजालभूषितैः ।
वाजिभिश्च हतैर्बाणैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः ॥ ६४ ॥ अनुकर्षैः
पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि । प्रवीराणां महाशंखैर्विप्रकीर्णैश्च
पाण्डुरैः ॥ ६५ ॥ स्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विबभौ मही । नाना-
रूपैरलङ्कारैः प्रमदेवाभ्यलंकृता ॥ ६६ ॥ दन्तिभिश्चापरैस्तत्र
सप्रासैर्गाढवेदनैः । करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरञ्च मुहुर्मुहुः ६७

वर्चित हाथियोंकी सूडोंकी समान कटीहुई भुजाये जङ्घाये और मुकुट कुंडल तथा बैलकेसे नेत्रों वाले योधाओंके मस्तकोंसे हे भारत ! रणभूमिका दृश्य बड़ीही शोभा देरहा था ॥ ६०—६१ ॥ रुधिरसें रँगेहुए सोनेके कवच जहां तहां विखरे होनेके कारण वह रणभूमि शान्त हुई लपटोंवाली अग्निसे जैसे भूमि शोभा पाती है तैसे ही शोभा पा रही थी ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ टूटे हुए अनेकों प्रकारके गहने, टूटे हुए धनुष, विखरे पड़े हुए सोनेके पंखों वाले वाण, चूरा चूरा हुए घण्टियों वाले रथ, वाणोंसे घायल लोहू लुहान हुए तथा वाहर निकली हुई जीभों वाले घोड़े ॥ ६४ ॥ रथके नीचेकी लकड़ियें, पताकायें, रथके करवटकी लकड़ियें, ध्वजायें, वड़े २ वीरोंके जिधर तिधर पड़े हुए सफेद शंख ॥ ६५ ॥ और कटी हुई सूंडों वाले हाथी आदि जो पड़े हुए थे उनसे रणभूमि अनेकों गहनोंसे सजीहुई स्त्रीसी प्रतीत होती थीं ॥ ६६ ॥ कितने ही भाले लगनेसे घायल हुए, पीड़ा पाते और सूंडोंके शब्द करते तथा पानीकी फुङ्कारें उड़ाते हाथी पड़े और खड़े थे, इसकारण वह रणभूमि चलते हुए पहाड़ों

विवंभौ तद्रणस्थानं स्यन्दमानैरिवाचलैः। नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनाम् ॥ ६८ ॥ वैदूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरंकुशैः शुभैः। घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः ॥ ६९ ॥ विपाटितविचित्राभिः कुथाभिश्चांकुशैस्तथा। ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च रुक्मकक्ष्याभिरेव च ॥ ७० ॥ यन्त्रैश्च बहुधाछिन्नैस्तोमरैश्चापि कांचनैः। अश्वानां रेणुकपिलैः रुक्मच्छन्नैश्वरश्छदैः ॥ ७१ ॥ सादिनां भुजगैश्छिन्नै पतितैः साङ्गदैस्तथा। प्रासैश्च विमलैस्तीचणैर्विमलाभिस्तथर्ष्टिभिः ॥ ७२ ॥ उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रबद्धैस्ततस्ततः। विचित्रैर्बाणवर्षैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ॥ ७३ ॥ अश्वास्तरपरिस्तोमैरांकवैर्मृदितैस्तथा। नरेंद्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ॥ ७४ ॥ छत्रैस्तथापविद्धैश्च चामरैर्व्यजनैरपि। पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः॥७५॥ क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं

वालीसी मालूम होती थी, चारों ओर पड़ी हुई अनेकों प्रकारकी झूलें, हौदे, वैदूर्य मणिसे जड़े दांतों वाले, सुन्दर अंकुश तथा हाथियोंके घण्टे, इनके सिवाय फटी हुई चित्र विचित्र झूलें अंकुश, नाना प्रकारकी हाथियोंके गलोंकी मालायें सुनहरी लड़ोंके तङ्ग ॥ ६७-७० ॥ बहुधा टूटे हुए यन्त्र, सोनेके तोमर, धूल से मैले हुए घोड़ोंके जरीके जीनपोश ॥ ७१ ॥ बाजूबन्दों सहित कटकर पड़ी हुई घुड़सवारोंकी भुजायें, चमकदार और तेज भाले, चमकदार ऋष्टियें ॥ ७२ ॥ जहां तहां पड़ी हुई पगड़ियें, सोनेका झोल किये नानाप्रकारके बरसाये हुए बाण ॥ ७३ ॥ रंकुमृगके चमड़ेके बनाये हुए घोड़ों पर बिछाने की फटी हुई गद्दियें, चित्र विचित्र और बहुमूल्य राजाओंके चूड़ामणि, फटेहुए छत्र, टूटे हुए चमर और पंखे, कमल और चन्द्रमाकी समान कान्ति वाले तथा कतरी हुई दाढ़ी मूछोंसे शोभायमान, सोनेके दमकते हुए कुण्डलों वाले वीरोंके कटे हुए शिर इन सब

वीराणां समलंकृतैः। अपविद्धैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुंडलैः॥७६॥ ग्रहनक्षत्रशवला द्यौरिवासीद्वसुन्धरा॥ एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत ॥ ७७॥ परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे । तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत॥७८॥रात्रिः समभवत्तत्र नापश्याम ततोऽनुगाम् । ततोऽवहारः सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः॥७९॥ रजनीमुखे हि रौद्रे तु वर्त्तमाने महाभये। अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः । न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिविरं तदा॥८०॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वण्यष्टमदिवसयुद्धावहारे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच। ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः । दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः ॥ १ ॥ समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम् । कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति ॥२ ॥ ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः ।

से भरी हुई रणभूमि ग्रह नक्षत्र आदिसे भरे हुए आकाशकी समान चित्र विचित्र भासती थी, हे भारत ! इसप्रकार तुम्हारी और पाण्डवोंकी दोनों सेनाओंके आमने सामने लड़नेसे महासंहार होगया, इस संग्राममें कितने योधा थक गये,कितने ही मर गये और बाकी भागगये ॥ ७४–७८ ॥ हे भारत ! फिर रात्रि होने लगी इसकारण हम दोनों ओरके लड़ते हुए योधाओंको देख नहीं सकते थे, तब कौरव और पाण्डव दोनोंने अपनी २ सेनाओं को लौटाया ॥ ७९ ॥ जब महाभयङ्कर और महारौद्र सन्ध्याका समय बीत गया तब अपनी२ सेनाओंको लौटाये हुए कौरव और पाण्डव रात्रिमें विश्राम लेनेके लिये अपनी २ छावनियोंमें चलेगये ॥८०॥ छियानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९६ ॥

सञ्जय कहता है, कि-शिविरमें पहुंचकर राजा दुर्योधन सुबलका पुत्र शकुनि,तुम्हारा पुत्र दुःशासन तथा सतपुत्र कर्ण ये, सब इकट्ठ होकर इसप्रकार विचार करने लगे कि – हम पाण्डवों को और उनके साथियोंको किसप्रकार जीतें ॥ १ ॥ २ ॥ राजा

सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलञ्च महाबलम् ॥३॥ द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे। न पार्थान् प्रतिबाधन्ते न जाने तत्र कारणम् ॥४॥ अवध्यमानास्ते चापि क्षपयन्ति बलं मम। सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे ॥५॥ निकृतः पाण्डवैः शूरैरवध्यैर्दैवतैरपि। सोऽहं संशयमापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे ॥६॥ कर्ण उवाच। मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव। भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात् ॥७॥ निवृत्ते युधि गाङ्गेये न्यस्तशस्त्रे च भारत। अहं पार्थान् हनिष्यामि सहितान् सर्वसोमकैः ॥८॥ पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप। पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति वै ॥९॥ अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान् महारथान्।

दुर्योधन अपने सब मित्रोंसे और विशेष कर सूतपुत्र कर्ण और शकुनिसे कहने लगा, कि-॥३॥ द्रोण, भीष्म, शल्य, कृपाचार्य और भूरिश्रवा पाण्डवोंके साथ रणमें मन लगाकर नहीं लड़ते हैं, इसका कारण मेरी समझमें नहीं आता ॥४॥ पाण्डव नहीं मारे जाते और वह मेरी सेनाका नाश किये डालते हैं, हे कर्ण! इससे मेरा सेनादल बहुत कम होगया है और शस्त्र भी कम होने लगे हैं ॥५॥ इन पाण्डवोंने तो मुझे हैरान कर डाला है, मालूम होता है इनको तो देवता भी नहीं मार सकेंगे इस कारण मैं सन्देहमें पड़ा हुआ हूं, कि—अब मैं रणमें किस प्रकार लड़ूं? ॥६॥ हे महाराज! दुर्योधनकी इस बातको सुनकर सूतपुत्र कर्णने उसको उत्तर दिया, कर्ण कहने लगा, कि—हे भरतसत्तम! आप सोच न करिये मैं आपका प्रिय काम करूँगा ॥७॥ शन्तनु-नन्दन भीष्मजीको शीघ्र ही रणमेंसे अलग जाने दो, हे भारत! भीष्मके सग्रामको छोड़कर चले जाने पर ॥८॥ मैं सकल सोमकों सहित पाण्डवोंका संहार करूँगा इस बातको युद्धमें भीष्म भी देख लें, हे राजन्! मैं तुमसे यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं ९

अभिमानी रणे भीष्मो जेतुमेतान् महारथान् । अभिमानी रणे भीष्मो नित्यं चापि रणप्रियः ॥ १० ॥ स कथं पाण्डवान् युद्धे जेष्यते तात सङ्गतान् । स त्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिबिरं प्रति ॥ ११ ॥ अनुमान्य गुरुं वृद्धं शस्त्रं न्यासय भारत । न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान् पश्य पाण्डवान् ॥१२॥ मयैकेन रणे राजन् ससुहृद्गणबान्धवान् । एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ १३ ॥ अब्रवीद् भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः । अनुयात्रं यथा सर्वं सज्जीभवति सर्वशः ॥ १४ ॥ दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय । एवमुक्त्वा ततो राजन् कर्णमाह जनेश्वरः १५ अनुमान्य रणे भीष्ममेषोऽहं द्विपदाम्वरम् । आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिन्दम ॥ १६ ॥ अपक्रांते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे । निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ १७ ॥ सहितो

निःसन्देह भीष्म पाण्डवोंके ऊपर सदा दयाभाव रखते हैं और इन महारथियोंको जीतनेकी इनमें शक्ति भी नहीं है ॥ १० ॥ भीष्मको रणमें अपना पराक्रम दिखानेका अभिमान है और सदा रणके प्रेमी भी हैं परन्तु हे तात! इतनेसे यह इकट्ठे हुए पाण्डवों को कैसे जीत सकते हैं? ॥ ११ ॥ इस कारण हे भारत! अब तुम शीघ्र ही भीष्मके डेरे पर जाओ और उन वृद्ध पितामहको समझाकर शस्त्र रखवा दो ॥ १२ ॥ भीष्मके शस्त्र छोड़ते ही अकेला ही मैं मित्र तथा बान्धवों सहित पाण्डवोंको किसप्रकार मारता हूं यह तुम देख लेना ॥ १३ ॥ कर्णकी इस बातको सुन कर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अपने भाई दुःशासनसे यह बात कहने लगा, कि—॥ १४ ॥ हे दुःशासन! मेरे पीछे२ चलने वाला सब सेनादल जिसमें तयार रहै, इसके लिये तुम उसको शीघ्र ही आज्ञा दो ॥ १५ ॥ दुःशासनसे ऐसा कहकर दुर्योधन कर्णसे कहने लगा, कि—हे शत्रुदमन! मैं भीष्मजीसे प्रार्थना करके तुम्हारे पास अभी आता हूं और भीष्मजीके संग्रामसे अलग हो जाने पर तुम युद्ध करना ॥ १६-१७ ॥ फिर जैसे देवगाओं

भ्रातृभिस्तैस्तु देवैरिव शतक्रतुः । ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूल विक्रमम् ॥ १८ ॥ आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्त अङ्गदीबद्धमुकुटो हस्ताभरणवान्नृप ॥ १९ ॥ धार्त्तराष्ट्रो महा विबभौ स पथि व्रजन् । मण्डीपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभे ॥ २० ॥ अनुलिप्तः परार्ध्येन चन्दनेन सुगन्धिना । अरजोऽम्ब संवीतः सिंहखेलगतिर्नृप ॥ २१ ॥ शुशुभे विमलार्चिष्मान् सीव दिवाकरः । तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिबिरं प्रति अनुजग्मुर्महेष्वासाः सर्वलोकस्य धन्विनः । भ्रातरश्च महेष्वा त्रिदशा इव वासवम् ॥ २३ ॥ हयानन्ये समारुह्य गजानन्ये भारत ॥ २४ ॥ रथानन्ये नरश्रेष्ठ परिवव्रुः समन्ततः । आ शस्त्राश्च सुहृदो रक्षणार्थं महीपतेः ॥ २५ ॥ प्रादुर्बभूवुः सहि

के साथ सहस्र यज्ञ करनेवाला इन्द्र जाता हो तैसे ही तु पुत्र अपने भाइयोंके साथ भीष्मजीके पास जानेको तयार हु ॥ १८ ॥ सिंहकी समान पराक्रमी दुर्योधनको उसके भाई दुःश सनने घोड़ेपर चढ़ाया बाजूबन्द मुकुट तथा हाथके गहनोंसे सज हुआ दुर्योधन मार्गमें चलता हुआ बड़ा ही शोभायमान दीखत था ॥ १९ ॥ २० ॥ मण्डीके फूलकी समान तथा सोनेकी समा· पीले रङ्गके उत्तम चन्दनको लगाकर और स्वच्छ वस्त्र पहरक सिंहकी समान चालसे चलता हुआ राजा दुर्योधन आकाशमें चलते हुए सूर्यसा दीखता था ॥ २१ ॥ २२ ॥ भीष्मके डेरेकी ओरको जाते हुए दुर्योधनके पीछे२ दूसरे पुरुष तथा बड़े२ धनुष-धारी भी गये जैसे देवता इन्द्रके पीछे२जाते हैं तैसे ही बड़े धनुष-धारी उसके भाई उसके पीछे२ गये थे, हे भारत ! कितने ही घोड़ोंपर चढ़कर कितने ही हाथियों पर चढ़कर ॥ २३ ॥ २४ ॥ और कितने ही रथोंमें बैठकर उस नरेन्द्रके इधर उधर चलरहे थे. जैसे देवता इन्द्रकी रक्षा करनेके लिये आगे२ चलते हैं तैसे ही इस राजाकी रक्षा करनेके लिये अनेकों मित्र शस्त्र लेकर इस

शक्रस्येवामरा दिवि । सम्पूज्यमानः कुरुभिः कौरवाणां महाबलः ॥ २६ ॥ ययौ सदनं राजा गाङ्गेयस्य यशस्विनः । अन्वीयमानः सततं सोदरैः परिवारितः ॥२७॥ दक्षिणं दक्षिणः काले संभृत्य स्वभुजं तदा । हस्तिहस्तोपमं शैलं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ २८ ॥ प्रगृह्णन्नञ्जलीन्नणामुद्यतान् सर्वतो दिशः । शुश्राव मधुरा वाचो नानादेशनिवासिनाम् ॥ २९ ॥ संस्तूयमानः सूतैश्च मागधैश्च महायशाः । पूजयानश्च तान् सर्वान् सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥३०॥ प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलावसेचितैः । परिवव्रुर्महाराजं प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥ ३१ ॥ स तैः परिवृतो राजा प्रदीपैः काञ्चनैर्ज्वलन् । शुशुभे चन्द्रमा युक्तो दीप्तैरिव महाग्रहैः ॥ ३२ ॥कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः । प्रोत्सारयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतो दिशः॥३३॥ संप्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य

के आगे२ चलरहे थे,कौरवोंसे सन्मान पाताहुआ महाबली कौरवों का राजा, कीर्त्तिमान् गङ्गापुत्र भीष्मजीके तम्बूकी ओरको गया उस समय उसके भाई भी इकट्ठे होकर उसके पीछे२ गये थे २५ ॥ २७ ॥ सकल शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा हाथीकी सूँड की समान अपना दाहिना दृढ़ हाथ आगेमें हाथ जोड़कर खड़े हुए लोगोंको नमस्कार करनेमें वार वार उठाता हुआ तथा अनेकों देशोंके लोगोंके मधुर वचन और सूत मागधोंके किये हुए यशोगानको सुनता हुआ तथा सब लोगोंका सन्मान करता हुआ सब लोकोंका राजा चतुर दुर्योधन चलरहा था ॥ २८ ॥ ३० ॥ सुगन्धित तेल डालकर वाली हुई सोनेकी मसालोंवाले सेवक उसके आस पास घिरकर चलरहे थे ॥ ३१ ॥ उन सोनेकी मसालोंसे तेजस्वी दीखता हुआ राजा दुर्योधन तेजस्वी ग्रहोंसे घिरेहुए चन्द्रमाकी समान शोभा पारहा था ॥ ३२ ॥ सोनेके मण्डील बांधे तथा हाथोंमें छड़ी और झर्झरियायें लिये खड़े हुए चोबदार लोगोंको हटाकर चारों ओरको मार्ग करते चले जाते थे ॥ ३३ ॥ राजा दुर्योधन भीष्मजीके तम्बूके पास आ

सदनं शुभम् । अवतीर्य हयाच्चापि भीष्मं प्राप्य जनेश्वरः ॥३४॥ अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने । कांचने सर्वतो भद्रे स्पर्द्ध्यास्तरणसंवृते ॥३५॥ उवाच प्रांजलिर्भीष्मं बाष्पकंठोऽश्रुलोचनः । त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ॥ ३६ ॥ उत्सहेम रणे जेतुं सेंद्रानपि सुरासुरान् । किमु पांडुसुतान्वीरान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ ३७ ॥ तस्मादर्हसि गांगेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो । जहि पांडुसुतान्वीरान् महेन्द्र इव दानवान् ॥ ३८ ॥ अहं सर्वान् महाराज निहनिष्यामि सोमकान् । पञ्चालान् केकयैः सार्धं करूषांश्चेचि भारत ॥ ३९ ॥ त्वद्वचः सत्यमेवास्तु जहि पार्थान् समागतान् । सोमकांश्च महेष्वासान् सत्यवाग्भव भारत ॥ ४० ॥ दयया यदि वा राजन् द्वेष्यभावान्मम प्रभो । मंदभाग्यतया वापि मम रक्षसि पांड-

पहुंचा तब घोड़े परसे उतरकर पास जा भीष्मजीको प्रणाम किया फिर स्पर्धा करने योग्य बिछौना जिसपर बिछ रहा था ऐसे सोने के सर्वतोभद्र नामक उत्तम सिंहासन पर वह जा बैठा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ फिर दोनों हाथ जोड़े हुए नेत्रोंमें आंसू भरकर गद्गद् कण्ठसे कहने लगा, कि-हे शत्रुनाशन ! आपका आश्रय लेकर हम इन्द्रसहित देवताओंका तथा असुरोंको भी रणमें जीतसकते हैं तो फिर मित्र और बान्धवों सहित पांडवोंको जीतना तो बात ही क्या है॥३६॥३७॥इसलिये हे प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा करिये और जैसे इन्द्रने दैत्योंका नाश किया था तैसे ही आप शूर पांडवोंका संहार करिये ॥ ३८ ॥ और हे भरतवंशी महाराज ! मैं सब सोमकोंको पाञ्चालोंको, केकयोंको और करूषोंको मार डालूँगा ॥ ३९ ॥ इस बातको अब सत्य होने दीजिये कुन्तीके सब पुत्रोंका नाश करो तथा सोमकोंकोभी मारकर हे महाधन्वी ! तुम अपनी बातका पालन करो ॥ ४० ॥ हे राजन् ! कदाचित् मेरे ऊपर द्वेष और पांडवोंके ऊपर दयाभावसे अथवा मेरे मन्द

वान् ॥४१॥ अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् । स जेष्यति रणे पार्थान् ससुहृद्गणबान्धवान्॥४२॥ स एवमुक्तो नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तव । नोवाच वचनं किञ्चिद्भीष्मं सत्यपराक्रमम् ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधन-सम्वादे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

सञ्जय उवाच । वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः । दुःखेन महताविष्टो नोवाचाप्रियमण्वपि ॥ १ ॥ स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः । श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया ॥ २ ॥ उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत । सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदांवरः ॥३ ॥ अब्रवीत्तव पुत्रं स साम-

---

भाग्यसे आप पांडवोंकी रक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥ तो आपने स्थान में संग्रामको शोभा देनेवाले कर्णको युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिये तो वह मित्र और बान्धवों सहित पांडवोंको रणमें जीतेगा ४२ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन सत्य पराक्रमी भीष्मजीसे इतना कहकर फिर कुछ न बोलता हुआ चुपचाप बैठगया ॥ ४३ ॥ सत्तानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि-तुम्हारे पुत्रके वाणीरूप बाणसे घायल हुए उदारचित्त भीष्मजीको इससे बड़ा ही कष्ट हुआ परन्तु उन्होंने एक भी अप्रिय बात नहीं कही ॥ १ ॥ दुःख और क्रोधसे युक्त हुए भीष्मजी अन्तःकरणमें वाणीरूप त्रिशूलका घाव होनेसे सांप की समान लंबे२ सांस लेते हुए कितनी ही देरतक विचार ही विचारमें बैठे रहे ॥ २ ॥ फिर कोपसे भरे नेत्रोंको उठाकर मानो देवता, गन्धर्व और असुरों सहित सब लोगोंको भस्म ही कर डालेंगे ऐसी भ्रकुटि बनाकर व्यवहारको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भीष्मजीने तुम्हारे पुत्रको समझाते हुए यह बात कही, कि हे

पूर्वमिदं वचः । किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि ॥
घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणञ्च तव प्रियम् । जुह्वानं समरे प्राणां
प्रियकाम्यया ॥५॥ यदा तु पाण्डवः शूरः खांडवेऽग्निमतर्प
पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ६ ॥ यदा च
महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा । अमोचयत् पाण्डुसुतः पर्याप्तं त.
दर्शनम् ।७। द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तव प्रभो । सूतपुत्रे च र
पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८ ॥ यच्च नः सहितान् सर्वान् वि
नगरे तदा । एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥
द्रोणञ्च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे । वासांसि स समा
पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १० ॥ तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतम
पि च । गोग्रहे जितवान् पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ११

दुर्योधन ! तू ऐसे वाणीरूप बाणसे मुझे क्यों घायल करता
॥ ३ ॥ ४ ॥ मैं अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करता हूं तेरा भ
चाहता हूं तथा तेरे कल्याणके लिये मैं रणमें अपने प्राणों
होमनेके लिये तयार रहता हूं ॥ ५ ॥ परन्तु पांडुके शूर पुत्रें
खांडव वनमें इन्द्रको हराकर अग्नि को तृप्त किया, यह उन
अजित होनेका एक पूरा लक्षण है ॥ ६ ॥ और जब गन्धर्व तु
जोरावरी पकड़े लिये जाते थे, उस समय पांडुनन्दनने ही तु
छुड़ाया था यह भी एक पूरा लक्षण है ॥ ७ ॥ उस समय ते
सब भाई और सूतपुत्र कर्ण ये सब तहांसे भागगये थे यह भ
उनके अजित होनेका नमूना है ॥ ८ ॥ और विराट नगरमें ह
सबोंके साथ युद्ध करनेको भी यह अकेला धनञ्जय ही आय
था यह भी एक पूरा दृष्टान्त है ॥ ९ ॥ संग्राममें मुझे तथा द्रोर
को जीतकर इसने हमारे वस्त्र छीन लिये थे यह भी एक पूर
दृष्टान्त है ॥ १० ॥ इसीप्रकार गौओंको हरण करते समय इस
ने द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्यको जीतलिया था यह भी
एक पूरा दृष्टान्त है ॥ ११ ॥ सदा पराक्रमका घमंड करनेवाले

विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम्। उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१२॥ निवातकवचान् युद्धे वासवेनापि दुर्जयान्। जितवान् समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १३ ॥ को हि शक्तो रणे जेतुं पांडवं रभसं तदा। यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शंखचक्रगदाधरः॥१४॥ वासुदेवोऽनन्तशक्तिः सृष्टिसंहारकारकः। सर्वेश्वरो देवदेवः परमात्मा सनातनः ॥ १५ ॥ उक्तो हि बहुशो राजन् नारदाद्यैर्महर्षिभिः॥ त्वन्तु मोहान्न जानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥१६॥ मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान् वृक्षान्पश्यति काञ्चनान्। तथा त्वमपि गांधारे विपरीतानि पश्यसि ॥ १७॥ स्वयं वैरं महत् कृत्वा पांडवैः सह सृञ्जयैः। युध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव ॥ १८ ॥ अहन्तु सोमकान् सर्वान् पञ्चालांश्च समागतान्। निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखंडिनम् ॥ १९ ॥ तैर्वाहं

कर्णको जीतकर उत्तरा कुमारीको वस्त्र दिये थे यह भी एक पूरा दृष्टान्त है जिनको इन्द्र भी नहीं जीतसकता ऐसे निवातकवचोंको धनञ्जयने युद्धमें जीत लिया, यह भी एक पूरा दृष्टान्त है ॥१३॥ इन सब बातोंको विचारकर, कि—जगत्के रक्षक शङ्ख चक्र गदाधारी कृष्ण जिनके रक्षक हैं उन पांडवोंको कौन जीत सकता है ॥१४॥ यह वासुदेव अनन्तशक्ति सृष्टिका संहार करनेवाले सकल ईश्वरोंके भी ईश्वर परमात्मा तथा सनातन हैं १५ नारद आदि महर्षियोंने तुमसे अनेकों बार कहा था तो भी क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये इस बातको हे सुयोधन! तू अज्ञानवश समझता ही नहीं है ॥ १६ ॥ मरनेको तयार हुआ पुरुष जैसे सकल वृक्षोंको सोनेके देखता है तैसे ही तू भी सब उलटा ही देखता है ॥ १७ ॥ तूने पाण्डव और सृञ्जयोंके साथ बड़ाभारी वैर अपने हाथसे ही बांध लिया है ॥ १८ ॥ हे नरव्याघ्र! मैं अर्जुनको छोड़कर इन आये हुए सब सोमक और पाञ्चालोंको मार डालूंगा ॥ १९ ॥ या तो मैं ही रणमें उनके हाथसे मारा

निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम् । तान् वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव ॥ २० ॥ पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखंडी राजवेश्मनि । वरदानात् पुमान् जातः सैषा वै स्त्री शिखंडिनी ॥२१॥ तमहं न हनिष्यामि प्राणत्यागेऽपि भारत । यासौ प्राङ् निर्मिता धात्रा सैषा वै स्त्री शिखंडिनी ॥ २२ ॥ सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽस्मि कर्त्ता महारणम् । यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत् स्थास्यति मेदिनी ॥ २३ ॥ एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वरः । अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम् ॥ २४ ॥ आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनम् । प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयंकरः ॥ २५ ॥ प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिव । प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान्नृपः ॥ २६ ॥

जाकर यमालयमें जाऊँगा नहीं तो मैं ही समरमें उनको मारकर तुम्हें प्रसन्न करूँगा ॥ २० ॥ पहिले शिखण्डी राजा द्रुपदके घर स्त्रीरूपमें उत्पन्न हुआ था परन्तु वरदानसे पुरुष होगया है तथापि शिखण्डिनी स्त्री ही है ॥ २१ ॥ हे भारत ! चाहे मेरे प्राण चले जायँ परन्तु उसको मैं नहीं मारूंगा, ब्रह्माने जिस शिखण्डिनी स्त्रीको उत्पन्न किया था यह वही है ॥ २२ ॥ हे गान्धारीके पुत्र ! तू निश्चिन्ततासे घर जाकर सो, मैं कल प्रातःकाल ऐसा घोर संग्राम करूंगा, कि-जिसको जबतक भूमि रहेगी तबतक मनुष्य आपसमें कहा करेंगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भीष्मजीके ऐसा कहने पर तुम्हारा पुत्र उन पितामहको शिरसे प्रणाम करके अपने घरको चला आया ॥ २४ ॥ तदनन्तर शत्रुनाशी तुम्हारे पुत्रने घर आकर सब लोगोंको विदा कर दिया और तुरन्त अपने घर में जाकर सोरहा ॥ २५ ॥ हे राजन् ! वह रात उसने घरके भीतर ही वितायी और ज्यों ही रात बीतकर प्रातःकाल हुआ, कि-उसने उठकर सब राजाओंको बुलवाकर उनको आज्ञा दी,

राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह । अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥ २७ ॥ दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु । मन्यमानः स तं राजन् प्रत्यादेशमिवात्मनः ॥२८॥ निर्वेदपरमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम् । दीर्घं दध्यौ शांतनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥ २९ ॥ इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम् । दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥ ३० ॥ दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः । द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाभिचोदय ॥ ३१ ॥ इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिंतितम् । पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चागमः ॥३२॥ तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम् । स नो गुप्तः सहायः स्याद्धन्यात् पार्थांश्च संयुगे ॥ ३३ ॥ अब्रवीद्धि विशुद्धात्मा नाहं

कि-सेनाको तयार करो, आज क्रोधमें भरेहुए भीष्मजी रणमें सोमकोंका नाश करेंगे ॥२६॥ २७ ॥ दुर्योधनकी रातकी बहुतसी बरबराहटको सुनकर भीष्मजीने समझा कि-उसके वचन मुझे आज्ञारूप हैं ॥ २८ ॥ फिर पराधीनताकी निन्दा करते हुए भीष्मजी बहुत ही शोकग्रस्त होकर अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये गहरा विचार करने लगे ॥ २९ ॥ हे महाराज ! भीष्मके विचारोंको उनकी चेष्टाओंसे जानकर दुर्योधनने दुःशासनको आज्ञा दी, कि-॥ ३० ॥ हे दुःशासन ! भीष्मकी रक्षा करनेके लिये शीघ्र ही रथोंको तयार कर तथा मेरी बाईस सेनाओं को भी उनकी रक्षा करनेके लिये आज्ञा दे ॥ ३१ ॥ हम बहुत वर्षोंसे सेनासहित पाण्डवोंका नाश करना चाहते थे, वह अवसर आज आया है, और ऐसा होने पर राज्य भी हमारे हाथमें आजायगा ॥ ३२ ॥ भीष्मजीकी रक्षा करना हमारा पहिला काम है, क्योंकि-हम इनकी रक्षा करेंगे तो यह हमारी सहायता करेंगे तथा संग्राममें पाण्डवोंको मारेंगे ॥ ३३ ॥ इन शुद्ध चित्तवाले भीष्मजीने

हन्यां शिखण्डिनम् । स्त्रीपूर्वको ह्यसौ राजंस्तस्माद्वर्ज्यो मया रणे ॥ ३४ ॥ लोकस्तद्वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया । राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान् पुरा ॥ ३५ ॥ नैव चाहं स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथञ्चन । हन्यां युधि नरश्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३६ ॥ अयं स्त्रीपूर्वको राजञ्छिखण्डी यदि ते श्रुतः । उद्योगे कथितं यत्तत्तथा जाता शिखंडिनी ॥ ३७ ॥ कन्या भूत्वा पुमान् जातः स च मां योधयिष्यति । तस्याहं प्रमुखे बाणान् न मुञ्चेयं कथञ्चन ॥ ३८ ॥ युद्धे हि क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः । सर्वानन्यान् हनिष्यामि सम्प्राप्तान् रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥ एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित् । तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम् ॥ ४० ॥ अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात् सिंहं

मुझसे कहा, कि—मैं शिखण्डीको नहीं मारूँगा क्योंकि—हे राजन्! वह पहिले स्त्री था, इसकारण रणमें इसके साथ युद्ध करना मुझे उचित नहीं है ॥ ३४ ॥ सब लोग जानते हैं, कि—मैंने पहिले अपने पिताका प्रिय काम करनेकी इच्छासे समृद्धिमान् राज्य और स्त्रियोंको त्याग दिया है ॥ ३५ ॥ इस लिये मैं स्त्रीको या जो पहिले स्त्री हो ऐसे पुरुषको रणमें नहीं मारूँगा, हे राजन्! यह जो मैं तुमसे कहता हूं सत्य ही है ॥ ३६ ॥ हे राजन्! यदि तूने सुना हो, यह शिखण्डी पहिले स्त्री था, वह किसप्रकार उत्पन्न हुआ सो पहिले उद्योगमें कहजा चुका है ३७ यह पहिले कन्या था और पीछेसे पुरुष होगया है, इसलिये यदि यह मेरे सामने युद्ध करनेको आवेगा तो मैं इसके ऊपर किसी प्रकार भी बाण नहीं छोडूँगा॥ ३८ ॥ हे राजन्! इसके सिवाय पाण्डवोंके पक्षके जो जो क्षत्रिय विजयकी इच्छासे मेरे सामने लड़नेको आवेंगे उनको मैं मारूँगा ॥ ३९ ॥ यह बात शास्त्रको जानने वाले भीष्मजीने मुझसे कही है, इसलिये मेरी समझमें जैसे भी होसकेगा, भीष्मकी ही रक्षा करनी चाहिये ॥ ४० ॥ रक्षा-

महाहवे । मा वृकेणेव गांगेयं घातयेम शिखंडिना ॥ ४१ ॥ मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः । यत्ता रक्षन्तु गांगेयं तस्मिन्गुप्ते ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधनवचस्तदा । सर्वतो रथवंशेन गांगेयं पर्यवारयन् ॥ ४३ ॥ पुत्राश्च तव गांगेयं परिवार्य ययुर्मुदा । कम्पयन्तो भुवं द्याञ्च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥ ४४ ॥ तै रथैः सुसंयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः । परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवस्थिताः ॥ ४५ ॥ यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम् । सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम् ॥ ४६ ॥ ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत् । सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ॥ ४७ ॥ गोप्तारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः ।

हीन सिंहको भी भेड़िया जैसे छोटासा जीव मार डालता है इस लिये महा संग्राममें भेडियेकी समान शिखण्डीसे हम भीष्मजीको नहीं मरवावेंगे ॥ ४१ ॥ मामा शकुनि, शल्य, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य विविंशति ये सब तयार होकर गङ्गानन्दन भीष्मकी रक्षा करें इनकी रक्षा होनेसे निःसन्देह हमारी विजय होगी ॥४२॥ दुर्योधनकी इस बातको सुनकर सब योधा रथोंके समूहको लेकर भीष्मजीके आस पास खड़े होगये, तुम्हारे पुत्र भीष्मजीको घेर कर प्रसन्नताके साथ यात्रा करते समय पृथिवी आकाश और पांडवोंको कम्पायमान करने लगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अत्यन्त दंश रखनेवाले वह योधा उत्तमतासे जोतेहुए रथ और हाथियोंसे भीष्मजीको घेरकर खड़े होगये ॥४५ ॥ जैसे देवता और असुरों के युद्धके समय देवताओंने इन्द्रकी रक्षा करी थी तैसे ही सब योधा भीष्मजीकी रक्षा करनेमें लगगये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर राजा दुर्योधनने अपने भाई दुःशासनसे फिर कहा, कि--युधामन्यु अर्जुनके बायें करवटकी रक्षा कर रहा है और उत्तमौजा दाहिने करवटकी रक्षा कररहा है ॥ ४७ ॥ इसप्रकार ये दोनों अर्जुन

रक्ष्यमाणः स पार्थेन तथास्माभिर्विवर्जितः ॥ ४८ ॥ यथा भीष्मं न नो हन्या दुःशासन तथा कुरु । भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ ४९ ॥ भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया । भीष्मन्तु रथवंशेन दृष्ट्वा समभिसंवृतम् ॥ ५० ॥ अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह । शिखण्डिनं नरव्याघ्रं भीष्मस्य प्रमुखे नृप । स्थापयस्वाद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताहमित्युत ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दुर्योधनदुःशासम्वादे नवमदिवसारंभेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

सञ्जय उवाच । ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सह सेनया । व्यूहञ्चाव्यूहत महत् सर्वतोभद्रमात्मनः ॥ १ ॥ कृपश्च कृतवर्मा च शैब्यश्चैव महारथः । शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २ ॥ भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत । अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः ॥३ ॥ द्रोणो भूरिश्रवाः शल्यो

की रक्षा कर रहे हैं और अर्जुन शिखण्डीकी रक्षा कर रहा है, इस लिये हमारे चूक जाने पर यह शिखण्डी अर्जुनसे रक्षा पाता हुआ कहीं भीष्मजीके ऊपर प्रहार न करबैठे, इसका तू अच्छे प्रकार ध्यान रखना भाईकी इस बातको सुनकर तुम्हारा पुत्र दुःशासन ॥४८-४९ ॥ भीष्मजीको आगे करके सेनाके सहित आगेको बढ़ा भीष्मको हजारों रथोंसे घिराहुआ देखकर ॥५०॥ अर्जुनने, धृष्टद्युम्नसे कहा, कि—हे पाञ्चालपुत्र नरेन्द्र ! तुम शिखण्डीको भीष्मजीके सामने खड़ा रक्खो और पीछेसे इसकी रक्षा मैं करूँगा ॥ ५१ ॥ अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥

सञ्जय कहता है, कि—तदनन्तर शन्तनुनन्दन भीष्म बड़ीभारी सेनाको लेकर आगे बढ़े और अपनी सेनाका सर्वतोभद्र नामका व्यूह रचा ॥ १ ॥ कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैब्य, शकुनि, सैंधव, कंबोजका राजा, सुदक्षिण, आदि योधा तुम्हारे पुत्रोंके तथा तुम्हारे सब पुत्रोंके साथमें सब सेनाके आगे आकर व्यूहके आगे के भागमें खड़े होगये ॥ २ ॥ ३ ॥ हे राजन् ! द्रोण, भूरिश्रवा,

भगदत्तश्च मारिष । दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥४॥ अश्वत्थामा सोमदत्तश्चावन्त्यौ च महारथौ । महत्या सेनया युक्तौ वामं पक्षमपालयन् ॥ ५ ॥ दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृतः । व्यूहमध्ये स्थितो राजन् पांडवान् प्रति भारत ॥६॥ अलम्बुषो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः । पृष्ठतः सर्वसैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ ॥ ७ ॥ एवमेव तं तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः । सन्नद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाग्नयः ॥ ८ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पांडवः । नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि ॥ ९ ॥ अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः । धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ १० ॥ स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः । शिखंडी विजयश्चैव राक्षसश्च

शल्य, और भगदत्त व्यूहके दक्षिण भागमें खड़े हुए ॥ ४ ॥ अश्वत्थामा, सोमदत्त, उज्जैनके दोनों महारथी कुमार बड़ीभारी सेनाको लेकर व्यूहके वाम भागकी रक्षा करने लगे ॥ ५ ॥ हे महाराज ! त्रिगर्त्त देशके राजाओंसे चारों ओरसे घिरा हुआ राजा दुर्योधन पाण्डवोंके सामने आकर व्यूहके मध्यभागमें खड़ा होगया ॥ ६ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ अलम्बुष तथा महारथी श्रुतायु ये दोनों दंश रखने वाले योधा सब सेनाके पीछे रहकर व्यूहके पिछले भागकी रक्षा करने लगे ॥ ७ ॥ हे भारत ! इस प्रकार व्यूहरचना कर लड़नेके लिये बख्तर पहरकर तयार हुए तुम्हारे योधा प्रज्वलित हुए अग्निकी समान दीखते थे ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, पांडुपुत्र भीमसेन और दोनों माद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव आवेशमें भरे हुए सब सेनाके अग्रभागमें आये और व्यूहके मुहाने पर खड़े होगये, धृष्टद्युम्न, विराट, महारथी सात्यकी आदि शत्रुकी सेनाको नाश करने वाले योधा अपनी बड़ीभारी सेनाके साथ खड़े हुए थे, शिखण्डी, विजय, राक्षस घटोत्कच

घटोत्कचः ॥ ११ ॥ चेकितानो महाबाहुः कुन्तीभोजश्च वीर्यवान् । स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः ॥ १२ ॥ अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः । युयुधानो महेष्वासो युधामन्युश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥ केकया भ्रातरश्चैव स्थिता युद्धाय दंशिताः । एवं तेऽपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्ज्जयम् ॥ १४ ॥ पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय दंशिताः । तावकास्तु रणे यत्ताः सहसेना नराधिपाः ॥ १५ ॥ अभ्युद्ययू रणे पार्थान् भीष्मं कृत्वाग्रतो नृप । तथैव पाण्डवा राजन् भीमसेनपुरोगमाः ॥ १६ ॥ भीष्मं योद्धुमभीप्सन्तः संग्रामे विजयैषिणः । क्ष्वेडाः किलकिलाः शंखान् क्रकचान् गोविषाणकाः ॥ १७ ॥ भेरीमृदङ्गपणवान् नादयन्तश्च पुष्करान् । पांडवा अभ्यवर्त्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ १८ ॥ भेरीमृदङ्गशंखानां दुन्दुभीनाञ्च निःस्वनैः । उत्कृष्टसिंहनादैश्च वल्गितैश्च पृथग्विधैः

महाबाहु राजा चेकितान, और वीर्यवान् कुन्तिभोज आदि भी बड़ीभारी सेनाको लेकर रणके अग्रभागमें आकर खड़े होगये थे ॥ ६-१२ बड़े धनुषवाला अभिमन्यु, महाबली राजा द्रुपद, बड़े धनुषवाला राजा युयुधान, वीर्यवान्, युधामन्यु ॥ १३ ॥ और सब भाई केकय ये सब दंश रखनेवाले योधा युद्धके लिये तयार होगये और कौरवोंके सामने दुर्जय रचना करके खार खाये हुए पांडव युद्धके लिये तयार होकर रणमें आये, तुरन्त ही संग्राम के लिये तयार हुए तुम्हारे सैनिक भीष्मजीको आगे करके रण में पांडवोंके ऊपरको बढ़े, भीमसेन आदि पांडव भी विजयकी इच्छासे भीष्मजीके साथ युद्ध करनेको आगे बढे, गाल बजाते, किल किल शब्द करते, शङ्ख, क्रकच और रणसिंगोंको तथा भेरी मृदङ्ग, और पणव आदिको बजाते तथा भयानक रूपसे गरजते हुए वह आगेको बढ़ने लगे ॥ १४ ॥ १८ ॥ भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे, सिंहोंकी समान गजनाओंसे तथा

॥ १६ ॥ वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम स्वरान्विताः । सहसैवाभिसंक्रुद्धास्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ २० ॥ ततोऽन्योऽन्यं प्रधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे । ततः शब्देन महता प्रचकम्पे वसुन्धरा ॥२१॥ पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विबभ्रमुः । समभ्रश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत ॥ २२ ॥ ववुश्च वातास्तुमुलाः शंसन्तः सुमहद्भयम् । तथाच घोरनिर्ह्रादाः शिवास्तत्र ववाशिरे॥२३॥वेदयन्त्यो महाराज महद्वैशसमागतम् । दिशः प्रज्वलिता राजन् पांसुवर्षं पपात च ॥ २४ ॥ रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्षं तथैव च । रुदतां वाहनानाञ्च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २५ ॥ सुसुवुश्च सकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशाम्पते । अन्तर्हिता महानादाः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २६ ॥ रक्षसां पुरुषादानां नदतां भैरवान् रवान् । सम्पतन्तश्च

और भी अनेकों प्रकारके शब्दोंके द्वारा उनके शब्दोंका उत्तर देते हुए हमारे सैनिक भी कोपमें भरकर उनके सामनेको झपटे और घोर युद्धका आरम्भ होगया ॥ १६ ॥ २० ॥ योधा एक दूसरेके ऊपरको दौड़कर परस्परमें प्रहार करने लगे, उस बड़ेभारी शब्दसे पृथिवी भी डगमगाने लगीं ॥ २१ ॥ महाघोर चांखें मारते हुए पक्षी आकाशमें भटकने लगे, प्रभाके साथ उदय हुआ सूर्य कान्तिहीन होगया ॥ २२ ॥ बड़ेभारी भयको सूचित करता हुआ सा वायु चलने लगा, महाघोर संहारकाल समीप आरहा हो ऐसा सूचित करती हुईं गीदड़ियें जोरके स्वरके साथ भयानक रुदन करने लगीं, दिशायें जल उठीं, जहां तहां धूलकी वर्षा होने लगी तथा रुधिरकी धारोंसे मिलीहुई हड्डियें बरसने लगीं रोतेहुए हाथी घोड़े आदि वाहनोंके नेत्रोंमेंसे आंसू गिरने लगे ॥ २३ ॥ २५ ॥ तथा भयभीत हुए प्राणी मल मूत्र त्यागने लगे, तैसे ही भयानक गर्जनायें करते और मनुष्योंको खानेवाले राक्षसोंके न दीखने वाले शब्द सुनायी आने लगे; गीदड़, गधे

दृश्यन्ते गोमायु बलवायसाः ॥ २७ ॥ स्थानाञ्च दिविवैर्ना शन्तरजन्म पाशिप । ज्वलिताश्च महोल्का वै समाहत्य दिवाकरं निपेतुः सहसा भूमौ वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ २८ ॥ महान्त्यपि महासैन्ये तस्मिन्तयोः पाण्डवधार्त्तराष्ट्रयोः । चकम्पिरे शंखमृदङ्गनिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ २९ ॥ नरेन्द्रनागाश्वसमाकुलानामभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते । बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि युतपातदर्शने नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सञ्जय उवाच । अभिमन्यू रथोदारः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः । अभिदुद्राव तेजस्वी दुर्य्योधनबलं महत् ॥ १ ॥ विकिरन् शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदः । न शेकुः समरे क्रुद्धं सौभद्रमरिसूदन ॥ २ ॥ शस्त्रौघिणं गाहमानं सेनासागरमक्षयम् । निवारयि

और कौओंके समूह रणमें को घुसने लगे ॥ २६ ॥ २७ और हे महाराज ! बड़े लंबे शब्दसे कुत्ते रोने लगे, आकाश जलती हुई उल्कायें, सूर्यसे टक्कर लगाकर महाभय दिखाती हुई सी पृथिवी पर गिरने लगीं ॥ २८ ॥ फिर जैसे वायुसे वन कांप उठता है वैसे ही शङ्ख, मृदङ्ग आदिके शब्दसे पाण्डवों और कौरवोंकी बड़ीभारी सेनायें कांप उठीं ॥ २९ ॥ अशुभ मुहूर्त्त आमने सामने आकर खड़े हुए राजे और हाथी घोड़ोंसे भरी हुई दोनों सेनाओंका शब्द वायुकी प्रबलतासे खलभलाये हुए समुद्रके समान महाघोर होउठा ॥३०॥ निन्यानवेवां अध्याय समाप्त ९९

सञ्जय कहता है, कि—तेजस्वी और महारथी अभिमन्यु पीले रङ्गके घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठकर दुर्योधनकी बड़ीभारी सेनाके सामनेको चला ॥ १ ॥ हे कुरुनन्दन ! जैसे मेघ जलकी धारोंको बरसाते तैसे ही बाणोंकी वर्षा करते हुए, जिसके पास शस्त्रोंका बड़ाभारी समूह था ऐसे सेनासागरमें घुसते हुए अभिमन्युको उस

[illegible] त्वदीयाः कुरुनन्दन ॥ ३ ॥ तेन मुक्ता रणे राजन् शराः शत्रुनिबर्हणाः । क्षत्रियाननयन् शूरान् प्रेतराजनिवेशनम् ॥ ४ ॥ यमदण्डोपमान् घोरान् ज्वलिताशीविषोपमान् । सौभद्रः समरे क्रुद्धः प्रेषयामास सायकान् ॥ ५ ॥ स रथान् रथिनस्तूर्णं हयांश्चैव ससादिनः । गजारोहांश्च सगजान् दारयामास फाल्गुनिः । तस्य तत् कुर्वतः कर्म महत् संख्ये महीभृतः । पूजयाञ्चक्रिरे हृष्टाः प्रशशंसुश्च फाल्गुनिम् ॥ ७ ॥ तान्यनीकानि सौभद्रो द्रावयामास भारत । तूलराशीनिवाकाशे मारुतः सर्वतो दिशम् ॥ ८ ॥ तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत । त्रातारं नाध्यगच्छन्त पंके मग्ना इव द्विपाः ॥ ९ ॥ विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि नरोत्तम । अभिमन्युः स्थितो राजन् विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १० ॥ न चैनं तावका राजन् विषेहुररिघातिनम् । प्रदीप्तपावकं यद्वत्

रणमें तुम्हारे योधा पीछेको न हटासके ॥ १-३ ॥ रणमें शत्रुओं का नाश करनेवाले अभिमन्युके बाणोंने अनेकों शूर क्षत्रियों को यमलोकमें पहुंचा दिया ॥ ४ ॥ अभिमन्यु अत्यन्त क्रोधमें भर कर यमदण्डकी समान घोर लपटें छोड़ते हुए सांपोंकी समान बाणोंको छोड़ रहा था ॥ ५ ॥ अर्जुनका पुत्र रथोंसहित रथियों का, सवारों सहित घोड़ोंका तथा महावतों सहित हाथियोंका संहार कर रहा था ॥ ६ ॥ इस संग्राममें उसके ऐसे महापराक्रम को देखकर दूसरे राजे प्रसन्न होर कर उसकी प्रशंसा कररहे थे ॥ ७ ॥ हे भारत ! जैसे वायु रुईके ढेरको सब दिशाओंमेंको उड़ादेता है, वैसे ही अभिमन्युने इन सब सेनाओंको चारों दिशा ओंमेंको भगादिया ॥ ८ ॥ हे भारत ! और कीचमें धँसेहुए बड़ेर हाथियोंकी समान. अभिमन्युकी भगाई हुई इस सेनाको रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं मिला था ॥ ९ ॥ हे नरेन्द्र ! तुम्हारी सेनाओंको इसप्रकार भगाकर धुएंसे रहित अग्निकी समान अभिमन्यु प्रज्वलित होकर खड़ा होगया ॥ १० ॥ और कालके प्रेरेहुए पतङ्गे जैसे बलते हुए अग्निके तापको नहीं सहसकते

पतङ्गाः कालचोदिताः ॥ ११ ॥ प्रहरन् सर्वशत्रुभ्यः पाण्डवानां महारथः । अदृश्यत महेष्वासः सवज्र इव वासवः ॥ १२ ॥ हेमपृष्ठं धनुश्चास्य ददृशे विचरद्दिशः । तोयदेषु यथा राजन् राजमाना शतह्रदा ॥ १३ ॥ शराश्च निशिताः पीता निश्चरन्ति स्म संयुगे । वनात् फुल्लद्रुमाद्राजन् भ्रमराणामिव व्रजाः ॥ १४ ॥ तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः । रथेन काञ्चनाङ्गेन ददृशुर्नान्तरं जनाः ॥ १५ ॥ मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिञ्च सबृहद्बलम् । सैन्धवञ्च महेष्वासो व्यचरल्लघु सुष्ठु च ॥ १६ ॥ मण्डलीकृतमेवास्य धनुः पश्याम भारत । सूर्य्यमण्डलसंकाशं दहतस्तव वाहिनीम् ॥ १७ ॥ तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूराः प्रतपंतं

तैसे ही शत्रुओंका संहार करनेवाले अभिमन्युके तापको तुम्हारी सेनाके योधा नहीं सहसके ॥ ११ ॥ और सब शत्रुओंके ऊपर प्रहार करता हुआ महाधनुषधारी यह पाण्डवोंका महारथी हाथ में वज्र लेकर खड़ा था उस समय वह इन्द्रकी समान मालूम होता था ॥ १२ ॥ सोनेकी पीठवाला चारों दिशाओंमेंको घूमता हुआ अभिमन्युका धनुष हे राजन् ! मेघमण्डलमें चमकती हुई बिजलीसा दीखता था ॥ १३ ॥ और हे राजन् ! जैसे फूलों वाले वृक्षोंके वनमेंसे छूटा हुआ भौरोंका झुण्डचलाजाता है तैसे ही तीखे और बुझेहुए बाण अभिमन्युके हाथमेंसे छूट रहे थे १४ सोनेके पत्तरोंसे जड़े हुए रथमें बैठकर जिधर तिधरको फिरते हुए महात्मा अभिमन्युकी फुरतीके कारणसे और योधाओंको प्रहार करनेका अवसर ही नहीं मिलता था ॥ १५ ॥ कृपाचार्य द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और सिन्धुराज बृहद्बल आदिको मोहमें डालता हुआ अभिमन्यु बड़ी ही फुरतीसे बड़ा ही सुन्दर मालूम होताहुआ शीघ्रतासे इधर उधरको घूम रहा था ॥ १६ ॥ जब वह तुम्हारी सेनाका संहार करनेके लिये धनुषको खेंचता था उस समय खिचनेसे गोल होता हुआ उसका धनुष सूर्यमण्डल की समान दीखता था ॥ १७ ॥ प्रतापसे शत्रुको ताप देते हुए

तरस्विनम् । द्विफाल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः ॥ १८ ॥ तेनार्दिता महाराज भारती सा महाचमूः । व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ १९ ॥ द्रावयित्वा महासैन्यं कम्पयित्वा महारथान् । नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः ॥ २० ॥ तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे । चक्रुरार्तस्वनं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २१ ॥ तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य भारत । मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ २२ ॥ दुर्योधनस्तदा राजन्नार्ष्यशृङ्गिमभाषत । एष कार्ष्णिर्महाबाहो द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ २३ ॥ चमूं द्रावयते क्रोधाद्वृत्रो देवचमूमिव । तस्य चान्यन्न पश्यामि संयुगे भेषजं महत् ॥ २४ ॥ ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठं सर्वविद्यासु पारगम् । स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभ-

फुरतीले अभिमन्युको रणमें ऐसे घूमता हुआ देख कर सब क्षत्रिय कहते थे, कि—इस जगत्में दो अर्जुन हैं ॥ १८ ॥ हे महाराज उसकी पीड़ा दीहुई भारतकी महासेना मदसे बेहाल होकर भट कती हुई युवतीकी समान इधर उधर भटकने लगी ॥ १९ ॥ जैसे इन्द्रने मय दानवको जीतकर देवताओंको प्रसन्न किया था तैसे ही तुम्हारी बड़ीभारी सेनाको भगाकर तथा बड़े२ महारथियोंको कम्पायमान करके अभिमन्युने अपने मित्रोंको प्रसन्न किया ॥ २० ॥ उस अभिमन्युकी रणमें भगायी हुई तुम्हारी सेनायें मेघके गरजनेकी समान बड़ी दयाजनक रीतिसे डकराने लगीं ॥२१॥ पूनोंके दिन पवनके हिलोरनेसे वेगके साथ उबले हुए समुद्रकी समान तुम्हारी सेनाके उस घोर हाहाकारको सुन कर हे राजन् ! राजा दुर्योधन अलम्बुपसे कहनेलगा, कि-जैसे वृत्रासुर देवताओंकी सेनाको भगाता है तैसे ही यह सुभद्राका पुत्र अर्जुनकी समान क्रोध करके हमारी सेनाको भगारहा है इस कारण हे राक्षसेन्द्र ! सब विद्याओंमें चतुर होनेके कारण तुम्हारे सिवाय संग्राममें और कोई औषध नहीं है, इसलिये तुम शीघ्र ही रण

क्रमाद्वे ॥ २५ ॥ वयं पार्थं हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः । स
एवमुक्तो बलवान् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २६ ॥ प्रययौ समरे
तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् । नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बला-
हकः ॥ २७ ॥ तस्य शब्देन महता पाण्डवानां बलं महत् । प्राच-
लत् सर्वतो राजन् वातोद्धूत इवार्णवः ॥ २८ ॥ बहवश्च महा-
राज तस्य नादेन भीषिताः । प्रियान् प्राणान् परित्यज्य निपेतु-
र्धरणीतले ॥ २९ ॥ कार्ष्णिश्चापि मुदा युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
नृत्यन्निव रथोपस्थे तद्रक्षः समुपाद्रवत् ॥ ३० ॥ ततः स राक्षसः
क्रुद्धः सम्प्राप्यैवार्जुनिं रणे । नातिदूरे स्थितां तस्य द्रावयामास
वै चमूम् ॥ ३१ ॥ तां वध्यमानाञ्च तथा पाण्डवानां महाचमूम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे रक्षो देवसेनां यथा बलः ॥ ३२ ॥ विमर्दः सुमहा-
नासीत् तस्य सैन्यस्य मारिष । रक्षसा घोररूपेण वध्यमानस्य

ने इसको मारो और भीष्म द्रोण आदि हम सब अर्जुनको मारेंगे
इसप्रकार दुर्योधनने कहा तब प्रतापी राक्षस तुम्हारे पुत्रकी आज्ञा
लेकर शीघ्र ही अभिमन्युके सामने आकर संग्राम करनेलगा और
वर्षाकालमें जैसे मेघ गरजता है तैसे गर्जनायें करने लगा ॥२६॥
॥ २७ ॥ उसकी बड़ीभारी गर्जनाको सुनकर जैसे पवनके कारण
चारों ओरसे समुद्र खलभला उठता है तैसे ही पांडवोंकी सेना
चारों ओरसे खलभला उठी ॥ २८ ॥ हे महाराज ! उस राक्षस
की गर्जनाको सुनते ही बहुतसे योधा अपने प्राणोंको छोड़कर
पृथिवीमें गिरपड़े ॥ २९ ॥ राक्षसके आतेही अभिमन्यु बाण
चढ़ाहुआ धनुष हाथमें लेकर नाचता हुआसा रथके भीतर बैठ
कर उसके सामने आया ॥ ३० ॥ तब कोपमें भराहुआ
वह राक्षस अभिमन्युके पास आया और उसको भगाया ॥३१॥
और मानो स्वामिकार्त्तिकेयके ऊपर बल दैत्य टूट पड़ा हो तैसे
ही विनाशको प्राप्त होती हुई पाण्डवोंकी सेनाके ऊपर वह राक्षस
रणमें टूटपड़ा ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! उस भयङ्कर राक्षसके हाथसे
मारे जाते हुए उस पाण्डवसेनाके हजारों मनुष्योंका नाश हो

संयुगे ॥ ३३ ॥ ततः शरसहस्रैस्तां पाण्डवानां महाचमूम् । व्य-
द्रावयद्रणे रक्षो दर्शयत् स्वपराक्रमम् ॥ ३४ ॥ स वध्यमाना च
तथा पाण्डवानामनीकिनी । रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे
भयात् ॥ ३५ ॥ मृद्नन् च रणे सेनां पद्मिनीं वारणो यथा । ततो-
ऽभिदुद्राव रणे द्रौपदेयान् महाबलान् ॥ ३६ ॥ ते तु क्रुद्धा महे-
ष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः । राक्षसं दुद्रुवुः संख्ये ग्रहाः पञ्च
रविं यथा ॥ ३७ ॥ वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥ ३८ ॥ प्रतिविन्ध्य-
स्ततो रक्षो बिभेद निशितैः शरैः । सर्वपारशवैस्तूर्णैरकुण्ठाग्रैर्महा-
बलः ॥ ३९ ॥ स तैर्भिन्नतनुत्राणः शुशुभे राक्षसोत्तमः । मरी-
चिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४० ॥ विषक्तैः स

गया ॥ ३३ ॥ अपना पराक्रम दिखाता हुआ वह राक्षस हजारों
बाण छोड़कर उस सेनाको इधर उधरको भगाने लगा ॥ ३४ ॥
और घोररूप राक्षसकी भगायी हुई पाण्डवोंकी बड़ी भारी सेना
डरके मारे इधर उधरको भागने लगी ॥ ३५ ॥ और जैसे हाथी
कमलिनीको कुचल डालता है तैसे ही उस सेनाको कुचल कर
वह राक्षस द्रौपदीके महाबली पुत्रोंके सामनेको गया ॥ ३६ ॥
अति कोपमें भरेहुए तथा दृढ़ प्रहार करने वाले द्रौपदीके पुत्र
जैसे सूर्यके ऊपरको पांच ग्रह दौड़ते हैं तैसे ही उस राक्षसके
सामनेको दौड़े ॥ ३७ ॥ और घोर प्रलयकालके समय जैसे पांच
ग्रह चन्द्रमाको पीड़ा देते हैं, तैसे ही इन वीर्यवान् पांचों योधाओं
ने उस राक्षसको बड़ा ही पीड़ित किया ॥ ३८ ॥ प्रतिविन्ध्यने
तीखी नोक और कुल्हाड़े की सी धार वाले बाणोंसे उस राक्षस
को घायल कर डाला ॥ ३९ ॥ उन बाणोंसे बख्तरके टूटते ही
वह राक्षस ऐसी शोभा पाने लगा, जैसे सूर्यकी किरणोंसे फटा
हुआ बादल शोभा पाता है ॥ ४० ॥ शरीरमें घुसेहुए सोनेकी

शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः । आर्ष्यशृङ्गिर्बभौ राजन् दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥ ४१ ॥ ततस्ते भ्रातरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे । विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्तपनीयविभूषितैः ॥ ४२ ॥ स निर्भिन्नशरै-र्घोरैर्भुजगैः कोपितैरिव । अलम्बुषो भृशं राजन् नागेन्द्र इव चुक्रुधे ॥ ४३ ॥ सोतिविद्धो महाराज मुहूर्त्तमथ मारिष । प्रविवेश तमो दीर्घं पीडितस्तैर्महारथैः ॥ ४४ ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः । चिच्छेद सायकांस्तेषां ध्वजांश्चैव धनूंषि च ॥ ४५ ॥ एकैकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्मयन्निव । अलम्बुषो रथोपस्थे नृत्यन्निव महारथः ॥ ४६ ॥ त्वरमाणः सुसंरब्धो हयां-स्तेषां महात्मनाम् । जघान राक्षसः क्रुद्धः सारथींश्च महाबलः ॥ ४७ ॥ बिभेद च सुसंरब्धः पुनश्चैनान् सुसंशितैः । शरैर्बहु-विधाकारैः शतशोथ सहस्रशः ॥ ४८ ॥ विरथांश्च महेष्वासान्

पूंछवाले इन बाणोंसे राक्षस अलम्बुष, चलते हुए शिखर वाला पहाड़सा दीखता था ॥ ४१ ॥ तदनन्तर इन पांचों भाइयोंने उस महारणमें सोनेसे शोभित तीखे बाणोंसे उस राक्षसेन्द्रको घायल कर डाला ॥४२॥ हे राजन् ! तब कोपमें भरेहुए सांपोंकी समान घोर बाणोंसे घायल हो वह अलम्बुष नागराजकी समान बड़े ही क्रोधमें भरगया ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! महारथियोंस पीड़ा पाया हुआ वह राक्षस बड़ीभारी मूर्छामें पड़ गया ॥ ४४ ॥ फिर जरा ही देरमें चेतना पाकर कोपके मारे उसमें दूना बल आगया और उसने उनके बाण ध्वजा और धनुषोंको काट डाला॥४५॥ और रथके ऊपर मानो नाच रहा हो इस प्रकार मुसकुराते हुए अलंबुषने उनमेंसे हरएकके पांच२ बाण मारे ॥ ४६ ॥ और फिर बहुत ही कोपमें भरेहुए उस महाबली राक्षसने शीघ्रतासे उनके घोड़े और सारथियोंको भी मारडाला ॥ ४७ ॥ और फिर अति आवेशमें आकर उसने अनेकों प्रकारके बाण छोड़ उनको सहस्रों स्थानमें बींधदिया ॥ ४८ ॥ इसप्रकार द्रौपदीके सब पुत्रोंको रथ

कृत्वा तत्र स राक्षसः । अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः ॥ ४६ ॥ तानर्दितान् रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना । आर्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाद्रवत् ॥ ५० ॥ तयोः समभवद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव । ददृशुस्तावकाः सर्वे पाण्डवाश्च महारथाः ॥५१॥ तौ समेतौ महायुद्धे क्रोधदीप्तौ परस्परं । महाबलौ महाराज क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ ५२॥ परस्परमवेक्षेतां कालानलसमौ युधि । तयोः समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः ॥ ५३ ॥ यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयोः पुरा ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धारम्भेऽलम्बुषाभिमन्युसमागमे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । आर्जुनिं समरे शूरं विनिघ्नन्तं महारथान् । अलम्बुषः कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥ १ ॥ आर्ष्यशृङ्गिं कथ-

---

हीन करनेके अनन्तर उनको मारडालनेकी इच्छावाला वह राक्षस उनके सामनेको दौड़ा ॥ ४६ ॥ जब दुष्टात्मा राक्षसने उनको इसप्रकार पीड़ा दी तो यह अर्जुनका पुत्र रणमें उस राक्षसके ऊपरको दौड़ा ॥ ५० ॥ तब वृत्रासुर और इन्द्रकी समान उन दोनोंका युद्ध होने लगा जिसको तुम्हारे सब योधा और महारथी कौरवोंने देखा ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! वह दोनों महाबली उस महारणमें क्रोधके आवेशमें भर गये और एक दूसरेको देखकर क्रोधके मारे लाल२ आंखें करने लगे ॥ ५२ ॥ वह दोनों उस रणमें एक दूसरेकी ओरको प्रलयकालकी अग्निकी समान देखते थे और दोनोंका वह घोर समागम कड़वा फल देनेवाला हुआ था जैसा कि—पहिले देवासुर संग्राममें इन्द्र और शम्बरासुरका युद्ध हुआ था ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ सौवां अध्याय समा ॥१००॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि–हे सञ्जय ! संग्राममें महारथियोंको मारते हुए शूर अभिमन्युने अलम्बुषके साथ किसप्रकार युद्ध किया था ॥ १ ॥ तथा शत्रुके वीरोंका नाश करने वाले सुभद्रानन्दनने

च्चैव सौभद्रः परवीरहा । तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन यथावृत्तं स्म संयुगे ॥ २ ॥ धनञ्जयश्च किं चक्रे मम सैन्येषु संयुगे । भीमो वा रथिनां श्रेष्ठो राक्षसो वा घटोत्कचः ॥ ३ ॥ नकुलः सहदेवो वा सात्यकिर्वा महारथः । एतदाचक्ष्व मे सत्यं कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥४ ॥ सञ्जय उवाच । हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि संग्रामं लोमहर्षणम् । यथाभूद्राक्षसेन्द्रस्य सौभद्रस्य च मारिष ॥ ५ ॥ अर्जुनश्च यथा संख्ये भीमसेनश्च पाण्डवः । नकुलः सहदेवश्च रणे चक्रुः पराक्रमम् ॥ ६ ॥ तथैव तावकाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः । अद्भुतानि विचित्राणि चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ७ ॥ अलम्बुषस्तु समरे ह्यभिमन्युं महारथम् । विनद्य समुहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः ॥८॥ अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । अभिमन्युश्च वेगेन सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ९ ॥ आर्ष्यशृङ्गि महेष्वासं

अलम्बुषके साथ कैसा युद्ध किया था, यह सब समाचार रणमें जैसा हुआ हो सो मुझे ठीक २ सुना ॥ २ ॥ और इस संग्राममें धनञ्जयने मेरी सेनामें क्या किया ? तथा रथियोंमें श्रेष्ठ भीमने, राक्षस घटोत्कचने, नकुलने, सहदेवने और महारथी सात्यकीने भी क्या किया था, सो मुझे सत्य२ बता, क्योंकि–तू इसको जानता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! राक्षसेन्द्र और सुभद्राके पुत्रका यह रोमाञ्च करनेवाला जिसप्रकार हुआ था वह मैं तुम्हें सुनाता हूं ॥५॥ इस रणमें जैसा पराक्रम अर्जुनने किया था तैसा ही पाण्डव भीमसेन और नकुल सहदेवने भी किया था ॥ ६ ॥ तैसे ही भीष्म, द्रोणाचार्य आदि तुम्हारे सब योधाओंने भी निर्भय होकर अद्भुत और विचित्र पराक्रम किये थे ॥ ७ ॥ अलम्बुष राक्षस इस संग्राममें बड़ी जोर२ से गरज कर महारथी अभिमन्युको वारंवार तर्जना करता हुआ 'खड़ा रह खड़ा रह, ऐसा कहकर वारम्वार उसके ऊपरको दौड़ा, तैसे ही सिंहकी समान गरजता हुआ अभिमन्यु भी अपने पिताके महा-

पितुरत्यन्तवैरिणम् । ततः समीयतुः संख्ये त्वरितौ नरराक्षसौ ॥ १० ॥ रथाभ्यां रथिनौ श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ । मायावी राक्षसश्रेष्ठो दिव्यास्त्रश्च फाल्गुनिः ॥ ११ ॥ ततः कार्ष्णिर्महाराज निशितैः सायकैस्त्रिभिः । आर्ष्यशृङ्गिं रणे विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ १२॥ अलम्बुषोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णिं नवभिराशुगैः । हृदि विव्याध वेगेन तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १३ ॥ ततः शरसहस्रेण क्षिप्रकारी निशाचरः । अर्जुनस्य सुतं संख्ये पीडयामास भारत ॥ १४ ॥ अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः । बिभेद निशितैर्बाणै राक्षसेन्द्रं महोरसि ॥ १५ ॥ ते तस्य विविशुस्तूर्णं कायं निर्भिद्य मर्मसु । स तैर्विभिन्नसर्वाङ्गः शुशुभे राक्षसोत्तमः ॥ १६ ॥ पुष्पितैः किंशुकै राजन् संस्तीर्ण इव पर्वतः ।

वैरी महाधनुषधारी अलम्बुषके सामने आया, जैसे देवता और दानव सन्मुख आगये हों तिसीप्रकार रथियोंमें श्रेष्ठ अभिमन्यु और राक्षस दोनों जने रथमें बैठकर परस्परके सामने आये, जब मायावी राक्षसेंद्र अलम्बुष और दिव्य अस्त्रधारी अभिमन्यु ये आमने सामने आकर खडे हुए उस समय तीन तीखे बाणोंसे उस राक्षसको बींधा और फिर उसके पांच बाण मारे॥८-१२॥ तब जैसे महावत हाथीके ऊपर प्रहार करता हो तैसे कोपमें भरेहुए अलम्बुषने भी बड़े जोरसे अभिमन्युकी छातीमें नौ बाण मारे ॥ १३ ॥ हे भारत ! फिर जल्दी२ बाण छोड़नेवाले उस राक्षसने हजारों बाण छोड़कर अर्जुनकुमारको रणमें घबड़ा दिया १४ परन्तु इससे कुपित हुए अर्जुनकुमारने भी नौ तीखे बाण मारकर राक्षसकी छातीको चलनी करदिया ॥ १५ ॥ वह उसकी छाती को फोड़कर मर्मस्थानोंमें जाघुसे, उन बाणोंसे सब अङ्गोंमें छिदा हुआ राक्षसराज ऐसा शोभायमान हुआ, कि-जैसे हे राजन् ! फूले हुए ढाकके वृक्षोंसे छाया हुआ पहाड़ हो तथा वह महाबल

संधारयाणश्च शरान् हेमपुङ्खान् महाबलः ॥ १७ ॥ विबभौ राक्षस-श्रेष्ठः सज्वाल इव पर्वतः । ततः क्रुद्धो महाराज आर्ष्यशृङ्गिरमर्षणः ॥ १८ ॥ महेन्द्रप्रतिमं कार्ष्णिं छादयामास पत्रिभिः । तेन ते विशिखा मुक्ता यमदण्डोपमाः शिताः ॥ १९ ॥ अभिमन्युं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् । तथैवार्जुनिना मुक्ताः शराः कनक-भूषणाः ॥ २० ॥ अलम्बुषं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् । सौभद्रस्तु रणे रक्षः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१ ॥ चक्रे विमुख-मासाद्य मयं शक्र इवाहवे । विमुखश्च रणे रक्षो वध्यमानं रणे-ऽरिणा ॥ २२ ॥ प्रादुश्चक्रे महामायां तामसीं परतापनाम् । ततस्ते तमसा सर्वे हृताश्चासन् महीपते ॥ २३ ॥ नाभिमन्युमपश्यन्त नैव स्वान् न परान् रणे । अभिमन्युश्च तद् दृष्ट्वा घोररूपं महत्तमः ॥ २४ ॥ प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमत्युग्रं भास्करं कुरुनन्दनः । ततः प्रकाशम-

राक्षसेन्द्र सोनेके परोंवाले बाणोंको धनुष पर चढ़ाता हुआ ऐसा शोभायमान हुआ जैसे ज्वालाओंसे घिरा हुआ पहाड़ हो, तद-नन्तर अति कोपमें भरेहुए उस असहनशील राक्षसने इन्द्रसमान अभिमन्युको बाणोंसे ढक दिया और उसके छोड़ेहुए वह यमदण्ड की समान तीखे बाण अभिमन्युके शरीरको फोड़कर पृथिवीमें घुस गये थे और इसीप्रकार सुवर्णसे शोभायमान कियेहुए अभि मन्युके बाण अलंबुषके शरीरको फोड़कर भूमिमें घुसगये थे तथा जैसे पहिले समयमें इन्द्रने मय दानवको संग्राममें हटादिया था तैसे ही सुभद्राके पुत्रने अपने सामने आकर युद्ध करनेवाले राक्षसको दृढ़ गांठोंवाले बाण छोड़कर पीछेको हटादिया, इसप्रकार वैरीके हाथसे मार खाये हुए उस राक्षसने शत्रुओंको ताप देनेवाली महा तामसी माया फैलायी, हे राजन् ! तब तो वह सब अन्धकार से घिरकर अन्धेसे होगये ॥ १९-२३ ॥ उस अन्धकारमें उन को न अभिमन्यु दीखा और न कोई अपना पराया ही दीखता था कुरुनन्दन अभिमन्युने रणमें उस घोररूप बड़ेभारी अन्धकार

भवज्जगत् सर्वं महीपते ॥ २५ ॥ तांश्चाभिजघ्निवान् मायां राक्षसस्य दुरात्मनः । संक्रुद्धश्च महावीर्यो राक्षसेन्द्रं नरोत्तमः ॥ २६ ॥ छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः । बह्वीस्तथान्या मायाश्च प्रयुक्तास्तेन रक्षसा ॥ २७ ॥ सर्वास्त्रविदमेयात्मा वारयामास फाल्गुनिः । हतमायस्ततो रक्षो वध्यमानश्च सायकैः ॥ २८ ॥ रथं तत्रैव संत्यज्य प्राद्रवन् महतो भयात् । तस्मिन् विनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ॥२९ ॥ आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं संममर्द ह । मदान्धो गन्धनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव ॥३०॥ ततः शांतनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाऽभिविद्रुतम् । महता शरवर्षेण सौभद्रं पर्य्यवारयत् ॥ ३१ ॥ कोष्ठीकृत्य च तं वीरं धार्त्तराष्ट्रा महारथाः । एकं सुबहवो युद्धे ततक्षुः सायकैर्दृढम् ॥ ३२ ॥ स तेषां रथिनां-

---

को देखकर अति उग्र भास्कर नामका अस्त्र छोड़ा, हे राजन ! तब तो सब जगत्में उजाला ही उजाला होगया ॥ २४ ॥ २५ ॥ फिर बड़ी वीरता करने वाले मनुष्योंमें श्रेष्ठ अभिमन्युने क्रोधमें भरकर दुष्टात्मा राक्षसकी उस मायाका नाश कर दिया ॥२६॥ और रणमें दृढ़ गांठोंवाले बाणोंसे उसको ढकदिया, इसीप्रकार उस राक्षसने और भी बहुतसी मायाएँ फैलायीं ॥ २७ ॥ परन्तु चित्तमें बड़ा साहस रखनेवाले तथा सब प्रकारके अस्त्रोंमें चतुर अभिमन्युने उसकी मायाका तुरन्त ही नाश करदिया, इसप्रकार मायाका नाश होते ही शत्रुके हाथकी मार पड़नेसे वह राक्षस रथ को छोड़कर डरता हुआ रणमेंसे भागगया, कपटयुद्ध करने वाले उस राक्षसको इसप्रकार जीतकर, जैसे मदसे अन्धा हुआ हाथी कमलोंसे भरी पद्मिनी (तलैया) को नष्ट भ्रष्ट करडालता है तैसे ही अभिमन्युने रणमें तुम्हारी सेनाको कुचल डाला । २८-३०॥ तदनन्तर शन्तनुनन्दन भीष्मने सेनाको भागते हुए देखकर बड़ी भारी बाणोंकी वर्षासे अभिमन्युको घेरलिया ॥ ३१ ॥ और कौरवपक्षके अनेकों महारथी योधा उस अकेलेको कोठेकी समान बीचमें घेरकर रणमें बाणोंसे अत्यन्त ही घायल करने लगे ३२

वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः। सदृशो वासुदेवस्य विक्रमेण बलेन च ॥ ३३ ॥ उभयोः सदृशं कर्म स पितुर्मातुलस्य च। रणे बहुविधं चक्रे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥ ततो धनञ्जयो वीरो विनिघ्नंस्तव सैनिकान्। आससाद रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः ॥ ३५ ॥ तथैव समरे राजन् पिता देवव्रतस्तव। आससाद रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ३६ ॥ ततः सरथनागाश्वाः पुत्रास्तव जनेश्वर। परिवव्रू रणे भीष्मं जुगुपुश्च समन्ततः ॥ ३७ ॥ तथैव पाण्डवा राजन् परिवार्य्य धनञ्जयम्। रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ ॥ ३८ ॥ शारद्वतस्ततो राजन् भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम्। अर्जुनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पिनोत्॥३९॥ प्रत्युद्गम्याथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः। पाण्डवप्रियकामार्थं शार्दूल

ऐसा होने पर भी पिताकी समान पराक्रम वाले तथा पराक्रम और बलमें कृष्णकी समान तथा सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अभिमन्युने अपने पिता और मामा कृष्णकी समान अनेकों प्रकार का पराक्रम दिखाना आरम्भ कर दिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इतनेमें ही उस अपने पुत्रकी सहायताके लिये आकर वीर चिढ़े हुए धनञ्जय ने रणमें तुम्हारे योधाओंके ऊपर प्रहार करना आरम्भ करदिया ॥ ३५ ॥ और जैसे राहु सूर्यके सामनेको आता हो तैसे ही तुम्हारे पिता देवव्रत अर्जुनके सामने लड़नेको चढ़ आये ॥३६॥ और रथ, हाथी तथा घोड़ोंको लेकर तुम्हारे पुत्र भीष्मजीके चारों ओर होकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार हे भरतसत्तम राजन्! बड़ाभारी रण करनेकी योग्यता वाले पाण्डवोंके योधा भी आवेशमें भरेहुए अर्जुनके आस पास आ कर उसकी रक्षा करने लगे ॥ ३८ ॥ हे राजन्! फिर भीष्मके सामने आकर खड़े हुए अर्जुनके कृपाचार्यने पचीस बाण मारे ॥ ३९ ॥ इस पर जैसे बाघ सामने आकर हाथीके ऊपर प्रहार करता हो तैसे ही पाण्डवोंका हित चाहनेवाले सात्यकीने आगे

इव कुञ्जरम् ॥ ४० ॥ गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः । हृदि विव्याध संक्रुद्धः कंकपत्रपरिच्छदैः ॥ ४१ ॥ शैनेयोऽपि ततः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान् । गौतमान्तकरं तूर्णं समाधत्त शिलीमुखम् ॥ ४२ ॥ तमापतन्तं वेगेन शक्राशनिसमद्युतिम् । द्विधा चिच्छेद संक्रुद्धो द्रौणिः परमकोपनः ॥ ४३ ॥ समुत्सृज्याथ शैनेयो गौतमं रथिनां वरः । अभ्यद्रवद्रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा ॥ ४४ ॥ तस्य द्रोणसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद भारत । अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः ॥ ४५ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम् । द्रौणिं षष्ट्या महाराज बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४६ ॥ स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः । निषसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ४७ ॥ प्रतिलभ्य ततः

बढ़कर उनके तीखे बाण मारे ॥ ४० ॥ द्रोणाचार्यने भी क्रोधमें भरकर शीघ्र ही कंक पक्षीके परोंवाले नौ बाण सात्यकीकी छाती में मारे॥४१॥ तब फुरतीले सात्यकीने भी क्रोधमें भरकर द्रोणाचार्यका प्राणलेवा एक बाण धनुष पर चढ़ाकर बड़े जोरसे उन के सामनेको छोड़ा ॥ ४२ ॥ इन्द्रके वज्रका समान इस बाणको आतेहुए देखकर द्रोणके महाक्रोधी पुत्रने उसके दो टुकड़े कर डाले ॥ ४३ ॥ ऐसा होने पर जैसे राहु चन्द्रमाके सामनेको आता हो तैसे ही कृपाचार्यको छोड़कर महारथी सात्यकी अश्वत्थामाके ऊपर चढ़ आया ॥ ४४ ॥ हे भारत ! अश्वत्थामाने बाण छोड़ कर उसके धनुषको काट डाला और धनुष काटकर फिर इसके ऊपर बाणोंका प्रहार किया ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! सात्यकीने अपने धनुषके कटते ही बलको सहसकनेवाला और एक धनुष उठाकर अश्वत्थामाकी छातीमें साठ बाण मारे ॥ ४६ ॥ बाण का गहरा घाव होनेसे उसको कष्ट होने लगा। तब अश्वत्थामा दुःखके कारण मूर्छित होकर एक मुहूर्त तक अपनी ध्वजाके दण्डे के सहारेसे रथके भीतर ही पड़ा रहा ॥ ४७ ॥ परन्तु क्षणभर

संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान् । वार्ष्णेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समर्पयत् ॥४८॥ शैनेयं स तु निर्भिद्य प्राविशद्धरणीतलम् । वसन्तकाले बलवान् बिलं सर्पशिशुर्यथा ॥ ४९ ॥ अथापरेण भल्लेन माधवस्य ध्वजोत्तमम् । चिच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं मुमोच ह ॥ ५० ॥ पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत । निदाघान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५१ ॥ सात्यकिरपि महाराज शरजालं निहत्य तत् । द्रौणिमभ्याकिरत्तूर्णं शरजालैरनेकधा ॥५२॥ तापयामास च द्रौणिं शैनेयः परवीरहा । विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा ॥ ५३ ॥ शराणां च सहस्रेण पुनरेव समुद्यतः । सात्यकिश्छादयामास ननाद च महाबलः ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वा पुत्रं च तं ग्रस्तं राहुणेव निशाकरम् । अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५५ ॥ विव्याध च सुतीक्ष्णेन पृषत्केन महामृधे । परी-

में चेत होते ही द्रोणके प्रतापी पुत्रने रणमें सात्यकीके नाराच बाण मारा ॥४८ ॥ वह बाण सात्यकीके शरीरको फोड़कर इस प्रकार भूमिमें घुस गया जैसे वसन्तमें छोटासा सांप बिलमें घुस जाता है ॥ ४९ ॥ फिर द्रोणपुत्रने रणमें सिंहकी समान गरज कर भल्ल नामके बाणसे सात्यकीकी ध्वजा काटडाली ॥ ५० ॥ और हे भारत ! जैसे वर्षा ऋतुमें मेघ पहाड़को वृष्टिसे ढकदेता है ऐसे ही घोर बाणोंसे इसको ढकदिया ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! सात्यकीने भी उस बाणजालको काटकर अश्वथामाको अनेकों बाणोंके समूहसे छादिया ॥ ५२ ॥ जैसे घनघटाओंमें से बाहर निकला हुआ सूर्य जगत्को तपाता है तैसे ही वीर शत्रुका संहार करने वाले सात्यकीने अश्वत्थामाको बहुत ही सन्ताप दिया ॥ ५३ ॥ फिर महाबली सात्यकीने अश्वत्थामाके ऊपर हजारों बाणोंकी वर्षा करके उसको ढकदिया और गरजने लगा ॥५४॥ जैसे राहु चन्द्रमाको ग्रस लेता है तैसे ही अपने पुत्रको ग्रसाहुआ देखकर प्रतापी द्रोणाचार्य पुत्रकी रक्षा करनेके लिये सात्यकी के ऊपर चढ़ आये ॥ ५५ ॥ और हे राजन् ! सात्यकीके पीड़ा

प्सन् स्वसुतं राजन् बाणौघेनाभिपीडितम् ॥ ५६ ॥ सात्यकिस्तु रणे हित्वा गुरुपुत्रं महारथम् । द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः ॥ ५७ ॥ तदन्तरममेयात्मा कौन्तेयः शत्रुतापनः । अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथम् ॥ ५८ ॥ ततो द्रोणश्च पार्थश्च समेयातां महामृधे । यथा बुधश्च शुक्रश्च महाराज नभस्तले ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे द्रोणार्जुनसमागमे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । कथं द्रोणो महेष्वासः पाण्डवश्च धनञ्जयः । समीयतू रणे मत्तौ तावुभौ पुरुषर्षभौ ॥ १ ॥ प्रियो हि पांडवो नित्यं भारद्वाजस्य धीमतः । आचार्यश्च रणे नित्यं प्रियः पार्थस्य सञ्जय ॥ २ ॥ तावुभौ रथिनौ संख्ये दृप्तौ सिंहाविवोत्कटौ ।

दिये हुए अपने पुत्रको बचानेके लिये द्रोणाचार्य उस महारणमें उसके शत्रुके ऊपर तीखे बाणोंकी मार देने लगे ॥ ५६ ॥ तब सात्यकीने अपने गुरुके महारथी पुत्रके साथ युद्ध करना छोड़कर फरसेके आकारके बीस बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींधडाला ॥५७॥ इतनेमें ही परमसाहसी तथा शत्रुओंको ताप देने वाला महारथी अर्जुन क्रोधमें भरा हुआ रणमें द्रोणाचार्यके सामने आ पहुंचा ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! जैसे आकाशमें बुध और शुक्र आमने सामने आजायँ तैसे ही द्रोण और अर्जुन आमने सामने आकर खड़े हो गये ॥ ५९ ॥ एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०१॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सञ्जय ! युद्ध करनेके लिये तयार हुए पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाधनुषधारी द्रोण और अर्जुन एक दूसरेके सामने आकर किसप्रकार युद्ध करने लगे थे ? ॥ १ ॥ बुद्धिमान् भरद्वाजके पुत्र पाण्डुपुत्र पर नित्य परम प्रीति करते हैं तथा हे सञ्जय ! द्रोणाचार्य कुन्तीनन्दनको रणमें अत्यन्त प्यारे हैं ॥२॥ द्रोणाचार्य और धनञ्जय उत्कट सिंहकी समान हैं. ये दोनों रथी

कथं समीयतुर्यत्तौ भारद्वाजधनञ्जयौ ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । न द्रोणः समरे पार्थं जानीते प्रियमात्मनः । क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य पार्थो वा गुरुमाहवे ॥ ४ ॥ न क्षत्रिया रणे राजन् वर्जयन्ति परस्परम् । निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ॥ ५ ॥ रणे भारत पार्थेन द्रोणो विद्धस्त्रिभिः शरैः । नाचिन्तयच्च तान् बाणान् पार्थचापच्युतान् युधि ॥ ६ ॥ शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे । स प्रजज्वाल रोषेण गहनेऽग्निरिवोर्जितः ॥ ७ ॥ ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः सन्नतपर्वभिः । छादयामास राजेन्द्र न चिरादेव भारत ॥ ८ ॥ ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् । द्रोणस्य समरे राजन् पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ९ ॥ त्रिगर्त्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् । छादयामास समरे

अत्यन्त हर्षित होते हुए आपने सामने आकर किसप्रकार युद्ध करने लगे सो मुझे बता ॥ ३ ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे राजन्! क्षत्रियधर्मके अनुसार रणमें द्रोणाचार्य अर्जुनको प्रिय नहीं गिनते थे और अर्जुन भी द्रोणको अपना प्रिय नहीं गिनता था ॥४॥ हे राजन् ! रणमें कोई क्षत्रिय किसीको नहीं छोड़ते हैं, यदि कोई अपना पिता या भाई होय तो भी उसके साथ मर्यादाको तोड़कर युद्ध करते हैं ॥ ५ ॥ रणमें अर्जुनने द्रोणाचार्यके तीन बाण मारकर बींधदिया, परन्तु हे भारत ! रणमें अर्जुनके धनुषमेंसे छूटेहुए उन बाणोंको कुछ नहीं गिना ॥ ६ ॥ तब धनञ्जयने फिर रणमें बाणोंकी वर्षासे उनको ढकदिया तब तो जैसे वनमें अग्नि धधक उठता है तैसे ही द्रोण क्रोधके मारे जलउठे ॥ ७ ॥ हे भरत वंशी राजेन्द्र ! तब द्रोणने रणमें जरा ही देरमें नमी हुई गांठवाले बाणोंसे अर्जुनको ढकदिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तब राजा दुर्योधनने सुशर्माको आज्ञा दी, कि—रणमें जाकर द्रोण की पीठकी रक्षा करो ॥९॥ यह सुनकर क्रोधमें भरेहुए त्रिगर्त्त-राजने भी रणमें आ धनुषको चढ़ाकर लोहेके फलवाले बाणोंसे

पार्थं बाणैरयोमुखैः ॥ १० ॥ ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे । हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ॥ ११ ॥ ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद्विविशुः प्रभो । फलभारनतं यद्वत् स्वादुवृक्षं विहङ्गमाः ॥ १२ ॥ अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः । त्रिगर्त्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३ ॥ ते विध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये । पार्थमेवाभ्यवर्त्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ॥ १४ ॥ मुमुचुः शरवृष्टिञ्च पाण्डवस्य रथं प्रति । शरवृष्टिं ततस्तान्तु शरवर्षैः समन्ततः ॥ १५ ॥ प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाचलः । तत्राद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम् ॥ १६ ॥ विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् । यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणा-

---

अर्जुनको ढकदिया ॥ १० ॥ हे राजन् ! दोनों जनोंके हाथोंसे छूटतेहुए बाण शरद्कालमें आकाशमें उड़ते हुए हंससमान मालूम होते थे ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! फलोंके भारसे नमे हुए और मीठे फलोंवाले वृक्षके ऊपर जैसे पक्षियोंके झुण्ड आकर गिरते हैं तैसे ही वह बाण अर्जुनके ऊपर गिरने लगे ॥ १२ ॥ तब रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने गरजकर त्रिगर्त्तराज और उसके पुत्रको बाणोंसे बींध डाला ॥ १३ ॥ युगके अन्तमें प्रहार करतेहुए कालकी समान अर्जुन जब उनको मारने लगा तो वह दोनों भी मरने का निश्चय करके अर्जुनके ऊपर टूटपड़े ॥ १४ ॥ और पाण्डव के रथके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे,हे राजेन्द्र ! चारों ओर से आकर पड़ती हुई बाणोंकी वर्षाको धनञ्जय ऐसे सहरहा था जैसे पहाड़ मेघकी धाराओंको सहता है, और हजारों योधा शस्त्रोंकी दुःसह वर्षा कररहे थे,शत्रुओंके उन सब बाणोंको अकेले ही अर्जुनने काटडाला था,उसके हाथोंकी ऐसी फुरतीको देखकर हमें बड़ा ही अचरज मालूम होता था, क्योंकि- जैसे पवन घनघटाओंको बखेर डालता है तैसे ही उसने बाणोंके सब आवरण

निग ॥ १७ ॥ कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः । अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्त्तान् प्रति भारत ॥ १८ ॥ मुमोचास्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे । प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम् ॥ १९ ॥ पातयन् वै तरुगणान् विनिघ्नंश्चैव सैनिकान् । ततो द्रोणोऽभिदीप्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम् ॥ २० ॥ शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह । द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप ॥ २१ ॥ प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश । ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्त्तस्य रथव्रजान् ॥ २२ ॥ निरुत्साहान् रणे चक्रे विमुखान् विपराक्रमान् । ततो दुर्योधनश्चैव कृपश्च रथिनां वरः ॥ २३ ॥ अश्वत्थामा तथा शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वाह्लिकः सह वाह्लिकैः ॥ २४ ॥ महता रथवंशेन पार्थस्यावारयन् दिशः । तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः ॥ २५ ॥ गजानीकेन भीमस्य ताववारयतां दिशः ।

को धखेर डाला था ॥ १५-१७ ॥ अर्जुनके ऐसे पराक्रमसे देवता और दानव बड़े प्रसन्न हुए. हे महाराज ! फिर कोपमें भरेहुए अर्जुनने रणके मुहाने पर खड़ेहुए त्रिगर्त्तोंके ऊपर वायु अस्त्र छोड़ा, तब अनेकों वृक्षोंको तोड़ता हुआ तथा योधाओंका संहार करता हुआ बड़ा प्रबल पवन चलने लगा, हे भारत! उस पवनसे सब आकाश क्षुभित हो उठा, धनञ्जयके वायु अस्त्रको आतेहुए देखकर द्रोणाचार्यने उसके सामने भयानक शैलास्त्र छोड़ा, तब सब वायु मंद पड़गया और दशों दिशायें निर्मल होगयीं तथा जब पाण्डुके पुत्रने त्रिगर्त्त रथियोंका उत्साह तोड़ दिया, उनको पराक्रमशून्य करके रणमेंसे भगादिया तब राजा दुर्योधन रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य ॥ १८-२३ ॥ अश्वत्थामा तथा शल्य, कम्बोज देशका राजा सुदक्षिण, उज्जैनके विन्द और अनुविन्द, वाह्लीकों सहित वाह्लीक देशका राजा इत्यादि राजाओं की बड़ीभारी रथसेनासे धनञ्जयको चारों ओरसे घेरने लगा, इसीप्रकार श्रुतायु तथा महाबली भगदत्तने ॥ २४ ॥ २५ ॥ भीम

भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशाम्पते ॥ २६ ॥ शरौघैर्वि-
मलैस्तीक्ष्णैर्माद्रीपुत्राववारयन् । भीष्मस्तु सहितः संख्ये धार्त्तराष्ट्रैः
ससैनिकैः ॥ २७ ॥ युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्य्यवारयत् ।
आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः ॥ २८ ॥ लेलिहन्
सृक्किणी वीरो मृगराडिव कानने । भीमस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां
गृह्य महाहवे ॥ २९ ॥ अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तव सैन्यान्यभीषयत् ।
तमुद्वीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः ॥ ३० ॥ परिवव्रू रणे
यत्ता भीमसेनं समन्ततः । गजमध्यमनुप्राप्तः पाण्डवः स व्यरा-
जत ॥ ३१ ॥ मेघजालस्य महतो यथा मध्यगतो रविः । व्यधमत्
स गजानीकं गदया पाण्डवर्षभः ॥ ३२ ॥ महाभ्रजालमतुलं मात-
रिश्वेव सन्ततम् । ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः

सेनको हाथियोंकी सेनासे घेरलिया और हे राजन् ! भूरिश्रवा,
शल और शकुनिने चमकते हुए तेज बाणोंके समूहसे माद्रीके पुत्रों
को घेरलिया और कौरवोंसे तथा उनकी सेनाओंसे सुरक्षित
भीष्मजीने रणमें॥२६॥२७॥ युधिष्ठिरके पास जाकर चारों ओर
से घेरलिया कुन्तीनन्दन भीमने हाथियोंकी सेनाको अपने ऊपर
को आतीहुई देखा ॥ २८ ॥ वनमें घूमते हुए सिंहकी समान
वह रथियोंमें श्रेष्ठ वीर भीमसेन उस महारणमें गदा हाथमें उठा
कर जबाड़ोंको चाटने लगा ॥ २९ ॥ और शीघ्र ही रथमेंसे कूद
कर तुम्हारी सेनाको डराने लगा, तब तो वह हाथीसवार उस
को हाथमें गदालिये आतेहुए देखकर ॥३०॥ सावधानीके साथ
चारों ओरसे आकर भीमसेनको घेरने लगे, तब हाथियोंके
मध्यमें फँसाहुआ भीमसेन ऐसा शोभायमान हुआ ॥ ३१ ॥
जैसे बड़ेभारी मेघमण्डलके मध्यमें सूर्य छिपरहा हो, पाण्डवोंमें
श्रेष्ठ भीमने अपनी गदाके प्रहारसे उस हाथियोंकी सेनाको तित्तर
वित्तर करदिया ॥ ३२ ॥ बलवान् भीमके हाथोंकी चोट पड़नेसे
हाथी गरजते हुए मेघकी समान चिंघारने लगे, हाथियोंके दांतों

॥ ३३ ॥ आर्त्तनादं रणे चक्रुर्गर्ज्जन्तो जलदा इव । बहुधा दारितश्चैव विषाणैस्तत्र दन्तिभिः ॥ ३४ ॥ फुल्लाशोकनिभः पार्थः शुशुभे रणमूर्धनि । विषाणे दन्तिनं गृह्य निर्विषाणमथाकरोत् ॥ ३५ ॥ विषाणेन च तेनैव कुम्भेऽभ्याहत्य दन्तिनम् । पातयामास समरे दण्डहस्त इवान्तकः ॥ ३६ ॥ शोणिताक्तां गदां बिभ्रन् मेदोमज्जाकृतच्छविः । कृताभ्यङ्गः शोणितेन रुद्रवत् प्रत्यदृश्यत ॥ ३७ ॥ एवं ते वध्यमानाश्च हतशेषा महागजाः । प्राद्रवंत दिशो राजन् विमृद्नंतः स्वकं बलम् ॥ ३८ ॥ द्रवद्भिस्तैर्महानागैः समन्ताद्भरतर्षभ । दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

सञ्जय उवाच । मध्यंदिने महाराज संग्रामः समपद्यत । लोकक्षयकरो रौद्रो भीष्मस्य सह सोमकैः ॥ १ ॥ गांगेयो रथिनां

से अनेकों स्थानोंमें घायल हुए शरीरवाला भीम रणमें फूलेहुए अशोकके वृक्षकी समान शोभा पारहा था और वह रणमें खड़े कितने ही हाथियोंके दांत खेंचर कर उखाड़ रहा था ॥३३—॥ ३५ ॥ हाथमें दण्ड लेकर रणमें घूमते हुए यमराजकी समान भीम उस ही दांतसे हाथीके शिरमें प्रहार करके उसको गिरारहा था ॥ ३६ ॥ मेद और मज्जासे सना तथा रुधिरसे भीगा हुआ भीम रुधिरमें सनीहुई गदाको लेकर रणभूमिमें रुद्रसा दीखता था ॥३७॥ उस समय इस संहारमेंसे बचेहुए बड़ेर हाथी तुम्हारा सेनाका नाश करते हुए चारों ओरको भागने लगे ॥३८॥ इस प्रकार इधर उधरको दौड़ भाग करने वाले हाथियोंके कारण सेना भी रणमेंसे फिर पीछेको भागने लगी ॥ ३९ ॥ एकसौदोवां अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे महाराज ! जब सूर्य शिरके ऊपर आया उस समय भीष्मको सोमकोंके साथ महाभयानक तथा लोकोंका क्षयकारी संग्राम होनेलगा ॥१॥ रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्म

श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम् । व्यधमन्निशितैर्बाणैः शतशोथ सहस्रशः ॥ २ ॥ स ममर्द च तत् सैन्यं पिता देवव्रतस्तव । धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा । भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम् ॥ ४ ॥ धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा विराटं च शरैस्त्रिभिः । द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥ तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेण मित्रकर्षिणा । चुक्रुधुः समरे राजन् पादस्पृष्टा इवोरगाः ॥ ६ ॥ शिखंडी तं च विव्याध भारतानां पितामहम् । स्त्रीमयं मनसा ध्यात्वा नास्मै प्राहरदच्युतः ॥ ७ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधेनाग्निरिव ज्वलन् । पितामहं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ८ ॥ द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः । शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याध सायकैः ॥ ९ ॥ सोतिविद्धो महाराज

बाण छोड़कर पाण्डवोंकी सेनाका अनेकों प्रकारसे संहार करने लगे ॥ २ ॥ जैसे गौओंका समूह कटेहुए धान्योंका नाश कर डालता है तैसे ही तुम्हारे पिता भीष्म उस सेनाका संहार करने लगे ॥३॥ धृष्टद्युम्न शिखण्डी, विराट तथा द्रुपद ये सब भीष्मके सामने आकर उनके ऊपर बाणोंकी मारामार करने लगे ॥ ४ ॥ परन्तु हे भारत ! धृष्टद्युम्नको बींधनेके अनन्तर विराटके तीन बाण मारकर भीष्मने राजा द्रुपदके ऊपर एक बाण छोड़ा ॥५॥ शत्रुओंका संहार करडालने वाले भीष्मजीके हाथसे घायल हुए वह बड़े२ धनुषधारी योधा हे राजन् ! पैरतले दबेहुए सांपोंकी समान बड़े कोपमें भरगये ॥ ६ ॥ इतनेमें ही शिखण्डीने भरतोंके पिता भीष्मको बाण मारकर बींधदिया, परन्तु धर्मसे भ्रष्ट न होने वाले भीष्मने यह स्त्री है, ऐसा जानकर उसके ऊपर प्रहार नहीं किया ॥ ७ ॥ कोपसे अग्निकी समान प्रज्वलित हुए धृष्टद्युम्न ने पितामहकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ ८ ॥ द्रुपदने पचीस बाण मारकर, विराटने दश बाण मार कर और शिखण्डीने पचीस बाण मारकर भीष्मको घायल करदिया ॥ ९ ॥ तब अत्यन्त

शोणितौघपरिप्लुतः । वसन्ते पुष्पशबलो रक्ताशोक इवाबभौ ॥१०॥ तान् प्रत्यविध्यद् गाङ्गेयस्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः । द्रुपदस्य च भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ११ ॥ सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः । सारथिञ्च त्रिभिर्बाणैर्निशितै रणमूर्धनि ॥१२॥ तथा भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः । केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः ॥ १३ ॥ अभ्यद्रवन्त गांगेयं युधिष्ठिरपुरोगमाः । रिरक्षिषन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥१४॥ तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः । प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप ॥ १५॥ तत्रासीत् सुमहद्युद्धं तव तेषाञ्च संकुलम् । नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १६ ॥ रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद्यमसादनम् । तथेतरान् समासाद्य नरनागा-

घायल हुए तथा घावोंसे निकले हुए रुधिरसे भीगेहुए भीष्म पितामह, फूलोंसे चित्र विचित्र दीखते हुए वसन्त ऋतुके लाल अशोकसे मालुम होते थे ॥ १० ॥ हे राजन् ! भीष्मने सीधे जाने वाले तीन बाण मारकर उनको सामनेसे बींधदिया और भल्ल नामके बाणसे द्रुपदका धनुष काटडाला ॥ ११ ॥ तब वसन्त अपने हाथमें दूसरा धनुष लेकर संग्रामके आगेके भागमें खड़े हुए भीष्मके पांच बाण मारे तथा उनके सारथीको अतितेज तीन बाणोंसे घायल किया ॥ १२ ॥ और हे महाराज ! भीमसेन द्रौपदीके पांचों पुत्र केकय देशके पांचों भाई और सात्वतवंशी सात्यकी ये सब युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्नको आगे करके द्रुपदकी रक्षा करनेके लिये भीष्मके ऊपरको चढ़ आये ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इसीप्रकार सेनाको लेकर तुम्हारे पक्ष वाले सब योधा भी भीष्मकी रक्षा करनेके लिये पाण्डवोंकी सेनाके ऊपर चढ़ आये॥१५॥ ऐसा होने पर तुम्हारे और पाण्डवोंके योधाओंका, तथा रथ हाथी और घोड़ोंका यमराजकी राजधानीकी बसती को बढ़ाने वाला महाघोर युद्ध होनेलगा ॥ १६ रथी रथियोंके सामने आकर परस्परको यमधाममें पहुंचाने लगे तथा हे राजन् !

रथसादिनः ॥ १७ ॥ अनयत् परलोकाय शरैः सन्नतपर्वभिः । शरैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशाम्पते ॥ १८ ॥ रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा । विप्रद्रुताश्च समरे दिशो जग्मुः समन्ततः ॥ १९ ॥ मृद्नन्तस्ते नरान् राजन् हयांश्च सुबहून् रणे । वातायमाना दृश्यन्ते गन्धर्वनगरोपमाः ॥ २० ॥ रथिनश्च रथैर्हीना वर्मिणस्तेजसा युताः । कुण्डलोष्णीषिणः सर्वे निष्काङ्गदविभूषणाः ॥ २१ ॥ देवपुत्रसमाः सर्वे शौर्ये शक्रसमा युधि । ऋद्ध्या वैश्रवणञ्चातिनयेन च बृहस्पतिम् ॥ २२ ॥ सर्वलोकेश्वराः शूरास्तत्र तत्र विशाम्पते । विप्रद्रुता व्यदृश्यन्त प्राकृता इव मानवाः ॥२३॥ दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ हीनाः परमसादिभिः । मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि निपेतुः सर्वशब्दगाः ॥ २४ ॥ चर्मभिश्चामरैश्चित्रैः पताकाभिश्च

पैदल, रथी और सवार एक दूसरेके सामने आ दृढ़ गांठों वाले अनेकों प्रकारके वाणोंका प्रहार करके परस्परको परलोकमें पहुंचाने लगे ॥१७॥ १८ ॥ रथियोंसे रहित तथा जिनके सारथी मारे गये थे ऐसे रथ रणमें चारों ओरकी दिशाओंमेंको भागरहे थे १९ हे राजन ! हजारों मनुष्य और घोड़ोंको रणमें कुचलते हुए वह वायुकी समान वेगसे दौड़ने वाले रथ गन्धर्वनगरकी समान दीखते थे ॥ २० ॥ अत्यन्त तेजस्वी, बड़े २ बख्तर पहिरे, कुण्डल मुकुट और सोनेके बाजूबन्दोंसे भूषित, देवपुत्रोंकी समान सुन्दर, पराक्रममें और युद्ध करनेमें इन्द्रकी समान, सम्पत्तिमें कुबेरकी समान,तथा नीतिमें बृहस्पतिकी समान देश २के शूर राजे रथहीन होजानेके कारण साधारण मनुष्योंकी समान जहाँ तहाँ भागते हुए दीखरहे थे ॥ २१—२३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अपने उत्तम सवारोंके मारे जानेके कारण बड़े २ हाथी तुम्हारी सेना को कुचलते हुए और चिंघाड़ते हुए चारों ओरको भागने लगे ॥ २४ ॥ नवीन घनघटाओंकी समान ये हाथी मेघोंकी समान

मारिष । छत्रैः सितैर्हेमदण्डैश्चामरैश्च समन्ततः ॥ २५ ॥ विशीर्णैर्विप्रधावन्तो दृश्यन्ते स्म दिशो दश । नवमेघप्रतीकाशा जलदोपमनिःस्वनाः ॥ २६ ॥ तथैव दन्तिभिर्हीना गजारोहा विशाम्पते । प्रधावन्तो व्यदृश्यन्त तव तेषाञ्च संकुले ॥ २७ ॥ नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान् हेमभूषितान् । वातायमानान्द्राक्षं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८॥ अश्वारोहान् हतैरश्वैर्गृहीतासीन् समन्ततः । द्रवमाणानपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे ॥ २९ ॥ गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महाहवे । ययौ प्रमृद्य तरसा पादातान् वाजिनस्तथा ॥ ३० ॥ तथैव च रथान् राजन् प्रममर्द रणे गजः । रथाश्चैव समासाद्य पतितांस्तुरगान् भुवि ॥ ३१ ॥ व्यमृद्नन् समरे राजंस्तुरङ्गांश्च नरान् रणे । एवं ते बहुधा राजन् प्रत्यमृद्नन्

शब्द करते हुए जहाँ तहाँ भागरहे थे और उनकी चमड़ेकी झूलें, पताकायें, सोनेकी दण्डियोंके सफेद छत्र चमर आदि रणभूमिमें जहाँ तहाँ बिखरे पड़े थे ॥ २५ ॥ २६ ॥ तैसे ही इस घोर युद्ध में तुम्हारे और शत्रुपक्षके हाथियोंसे हीन हुए योधा भी हे राजन्! भागते हुए दीखरहे थे ॥ २७॥ तथा अनेकों देशोंमें उत्पन्न हुए और सोनेके गहनोंसे सजे हुए सैंकड़ों हजारों घोड़े भी पवनकी समान वेगसे दौड़ते हुए दीखते थे ॥ २८ ॥ अपने घोड़ोंके मारे जानेसे शत्रुके भगाये हुए हजारों घुड़सवार हाथोंमें तलवारें लिये रणमें चारों ओर भागते हुए दीखरहे थे ॥ २९ ॥ उस महासंग्राम में सामनेके हाथियोंको दौड़ते हुए देखकर दूसरे हाथी भी घोड़े और मनुष्योंको कुचलते हुए जोरसे दौड़ने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस ही प्रकार रणमें भागते हुए हाथियोंने रथोंको कुचल डाला तथा दौड़ते हुए रथ रणमें नीचे पड़े हुए घोड़ोंको कुचल कर बीचमें आते हुए मनुष्योंका भी कचर घांस कर रहे थे, इसप्रकार हे राजन् ! वह हाथी रथ और घोड़े आपसमें कुचल२

परस्परम् ॥ ३२ ॥ तस्मिन् रौद्रे तथा युद्धे वर्त्तमाने महाभये। प्रावर्त्तत नदी घोरा शोणितान्त्रतरङ्गिणी ॥ ३३ ॥ अस्थिसंघातसम्बाधा केशशैवलशाद्वला। रथह्रदा शरावर्त्ता हयमीना दुरासदा ॥ ३४ ॥ शीर्षोपलसमाकीर्णा हस्तिग्राहसमाकुला। कवचोष्णीषफेनौघा धनुर्वेगासिकच्छपा ॥ ३५ ॥ पताकाध्वजवृक्षाढ्या मर्त्यकूलापहारिणी। क्रव्यादहंससंकीर्णा यमराष्ट्रविवर्धिनी ॥३६॥ तां नदीं क्षत्रियाः शूरा रथनागहयप्लवैः। प्रतेरुर्बहवो राजन् भयं त्यक्त्वा महारथाः ॥ ३७ ॥ अपोवाह रणे भीरून् कश्मलेनाभि

कर महासंहार कररहे थे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ बड़े भयदायक उस घोर युद्धके इसप्रकार चलने पर आंतोंकी तरङ्गों वाली रुधिरकी घोर नदी वह निकली ॥ ३३ ॥ इस नदीमें बड़े २ हड्डियोंके ढेर उसके प्रवाहको रोकने वाले बांधसे होरहे थे, केश सिवार और घाससे दीखते थे, टूटे हुए रथ कुण्डसे मालूम होते थे, वाण उसके भँवर से दीखते थे और घोड़े उसमें मच्छियोंकी समान तैर रहे थे, इसप्रकार वह नदी बड़ी ही भयानक थी ॥ ३४॥ कटेहुए शिर उसमें पत्थरोंकी समान भर रहे थे, हाथी उसमें नाकों की समान भररहे थे, कवच और पगड़ियें उसमें झागोंके समूहसे दीखते थे, धनुष उसके वेगरूप और डालें उसमें कछुएसी दीख रही थीं ॥ ३५ ॥ पताका और ध्वजायें उसमें भरेहुए वृक्षसे थे, मनुष्यरूपी तटोंको वह नदी ढाती चली जारही थी, मांसभक्षी प्राणी इस नदीमें तैरते हुए हंससे दीखते थे, इसप्रकार बहती हुई वह नदी समुद्रको बढ़ानेके स्थानमें यमराजकी राजधानीकी बसतीको बढ़ा रही थी ॥ ३६ ॥ हे राजन्! बहुतसे महारथी क्षत्रिय राजे भयको त्याग कर रथ हाथी और घोड़े रूप डोंगियों पर बैठ२ कर उसके पार होरहे थे ॥ ३७ ॥ और जैसे वैतरणी नदी प्रेतको यमपुरीमें लेजाती है तैसे ही यह रुधिरकी नदी

संवृतान् । यथा वैतरणी प्रेतान् प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ३८ ॥ प्राक्रोशन् क्षत्रियास्तत्र दृष्ट्वा तद्वैशसं महत् । दुर्य्योधनापराधेन गच्छन्ति क्षत्रियाः क्षयम् ॥ ३९ ॥ गुणवत्सु कथं द्वेषं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । कृतवान् पांडुपुत्रेषु पापात्मा लोभमोहितः ॥ ४० ॥ एवं बहुविधाः वाचः श्रूयन्ते स्म परस्परम् । पाण्डवैस्तव संयुक्ताः पुत्राणां ते सुदारुणाः ॥ ४१ ॥ ता निशम्य ततो वाचः सर्वयोधैरुदाहृताः । आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रो दुर्य्योधनस्तव ॥ ४२ ॥ भीष्मं द्रोणं कृपञ्चैव शल्यञ्चोवाच भारत । युध्यध्वमनहङ्काराः किं चिरं कुरुथेति च ॥ ४३ ॥ ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह । अक्षद्यूतकृतं राजन् सुघोरं वैशसं तदा ॥ ४४ ॥ यत् पुरा न निगृह्णासि वार्य्यमाणो महात्मभिः । वैचित्रवीर्य्य तस्येदं फलं पश्य

मूर्छित होकर पड़ेहुए डरपोकोंको लिये जारही थी ॥३८॥ तहां इस महासंहारको देख बहुतसे क्षत्रिय पुकार२ कर कह रहे थे, कि—यह क्षत्रियोंका महानाश दुर्योधनके अपराधसे होरहा है ॥ ३९ ॥ लोभसे मोहित हुए पापात्मा राजा धृतराष्ट्रने पाण्डुके गुणवान् पुत्रोंके साथ ऐसा द्वेष क्यों किया है ? ॥४०॥ इसप्रकार पाण्डवोंकी प्रशंसा और तुम्हारे पुत्रोंकी घोर निन्दावाले हजारों वचन वह योधा परस्परमें सुना रहे थे ॥४१॥ तब सब योधाओं की कही हुई उन बातोंको सुनकर सकल लोकोंका अपराध करने वाला तुम्हारा पुत्र दुर्योधन ॥ ४२ ॥ हे भारत ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, और शल्यसे कहने लगा, कि–तुम अहङ्कारको त्याग कर युद्ध करो, विलम्ब क्यों करते हो ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! दुर्योधनके इतना कहते ही पाण्डव और कौरवोंका फांसोंके जुएसे आरम्भ हुआ यह महाघोर मारकाट करनेवाला युद्ध और भी जोरसे होने लगा ॥४४॥ हे विचित्रवीर्यके पुत्र ! पहिले महात्माओं ने तुम्हें समझाया था तो भी तुमने अपने पुत्रोंको नहीं रोका

सुदारुणम् ॥ ४५ ॥ न हि पाण्डुसुता राजन् ससैन्याः सपदानुगाः । रक्षन्ति समरे प्राणान् कौरवा वापि संयुगे॥४६॥एतस्मात् कारणाद्घोरो वर्त्तते स्वजनक्षयः । दैवाद्वा पुरुषव्याघ्र तव चापनयान्नृप ॥ ४७ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच । अर्जुनस्तान् नरव्याघ्रः सुशर्मानुचरान्नृपान् । अनयत् प्रेतराजस्य सदनं सायकैः शितैः ॥ १ ॥ सुशर्मापि ततो-बाणैः पार्थं विव्याध संयुगे । वासुदेवञ्च सप्तत्या पार्थञ्च नवभिः पुनः ॥ २ ॥ तन्निवार्य्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः । सुशर्मणो रणे योधान् प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ३ ॥ ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये । व्यद्रवन्त रणे राजन् भये जाते महारथाः॥४॥

अब उसके इस अति दारुण फलको देखलीजिये ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! उस रणमें अपनी२ सेना और साथियों सहित पाण्डुके पुत्र और कौरवोंको अपने प्राण बचानेका मोह नहीं था ॥४६॥ हे पुरुषसिंह राजन् ! इसकारण दैवकी प्रवलतासे या तुम्हारी अनीतिसे यह कुटुम्बी और संवन्धियोंका घोर नाश होरहा है ४७

एकसौ तीनवां अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! मनुष्योंमें सिंहसमान अर्जुन ने तीखे बाणोंसे उन सुशर्माके साथी राजाओंको यमराजके घर भेजदिया ॥१॥ तब सुशर्माने भी रणमें बाणोंसे अर्जुनको बींध दिया, सत्तर बाण श्रीकृष्णके मारकर फिर नौ बाण अर्जुनके मारे ॥२॥ महारथी इन्द्रपुत्रने अपने बाणोंके समूहसे उन बाणों को लौटाकर सुशर्माके योधाओंको रणमेंसे यमालयमें भेज दिया ॥ ३ ॥ हे राजन् ! कल्पान्तके कालकी समान धनञ्जयके हाथसे रणमें मारेजाते हुए वह महारथी भयभीत होकर भागने लगे ४

उत्सृज्य तुरगान् केचिद् रथान् केचिच्च मारिष । गजा-
नन्ये समुत्सृज्य प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ ५ ॥ अपरे तु तदादाय
वाजिनागरथान् रणे । त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशांपते
॥ ६ ॥ पादाताश्चापि शस्त्राणि समुत्सृज्य महारणे । निरपेक्षा
प्राधावन्त तेन तेन स्म भारत ॥ ७ ॥ वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैग-
र्तेन सुशर्मणा । तथान्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ॥ ८ ॥
तद्बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव । पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्व-
सैन्यपुरस्कृतः ॥ ९ ॥ सर्वोद्योगेन महता धनञ्जयमुपाद्रवत् ।
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते ॥ १० ॥ स एकः समरे
तस्थौ किरन् बहुविधान् शरान् । भ्रातृभिः सहितः सर्वः शेषा
वि प्रद्रुता नराः ॥ ११ ॥ तथैव पाण्डवा राजन् सर्वोद्योगेन
दंशिताः । प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यतिष्ठत ॥ १२ ॥

हे महाराज ! उनमेंसे कोई घोड़ोंको छोड़ कर, कोई रथोंको छोड़
कर, और कोई हाथियोंको छोड़कर दशों दिशाओंमेंको भागने
लगे ॥ ५ ॥ और हे राजन् ! उस समय कितने ही राजे घोड़े,
हाथी और रथोंको लेकर रणमेंसे बड़ी ही शीघ्रतासे भागगये ६
हे भारत ! उस महारणमें पैदल भी अपने शस्त्रोंको डालकर
किसी भी मनुष्य या वस्तुकी परवाह न करके तहांसे भागगये
॥७॥ त्रिगर्त्तराज सुशर्माने तथा अन्य श्रेष्ठ राजाओंने उनको बहुत
ही रोका परन्तु वह रणमें नहीं रुके ॥ ८॥ इसप्रकार उस सेना
को भागती हुई देख तुम्हारा पुत्र दुर्योधन सब सेनाके मुहानेपर
आया और भीष्मजीको अगवानी बनाकर ॥ ९ ॥ हे राजन् !
अपनेसे होसके तहांतक उद्योगसे त्रिगर्त्तराजके प्राण बचानेके
लिये अर्जुनके ऊपर चढ़ आया ॥ १० ॥ अपने सब भाइयोंके
साथ अनेकों प्रकारके बाणोंकी वर्षा करता हुआ एक वह दुर्यो-
धन ही रणमें टिका रहा, बाकी सब भागगये ॥ ११ ॥ हे
राजन् ! इसीप्रकार पाण्डव भी भरसक उद्योग करके जहां भीष्म
जी थे तहां आकर अर्जुनकी रक्षाके लिये खड़े होगये ॥ १२ ॥

ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गांडीवधन्वनः । हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः ॥ १३ ॥ ततस्तालध्वजः शूरः पांडवानां वरूथनीम् । छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१४॥ एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः । अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ १५ ॥ सात्यकिः कृतवर्माणं विध्वा पञ्चभिराशुगैः । अतिष्ठदाहवे शूरः किरन् बाणान् सहस्रशः ॥ १६ ॥ तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विध्वा शितैः शरैः । पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिश्चास्य पञ्चभिः ॥ १७ ॥ भीमसेनस्तु राजानं बाह्लीकं प्रपितामहम् । विध्वानदन्महानादं शार्दूल इव कानने ॥ १८ ॥ आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः । अतिष्ठदाहवे शूरः किरन् बाणान् सहस्रशः ॥ १९ ॥ चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध

वह गाण्डीवधारी अर्जुनकी घोर रणवीरताको जानते थे, इस कारण हाहाकारके साथ उत्साहमें भरेहुए भीष्मजीको चारों ओर से घेरकर खड़े होगये ॥ १३ ॥ फिर जिनकी ध्वजाने तालका चिह्न है ऐसे शूर भीष्मने दृढ़ गांठोंवाले वाणोंसे पाण्डवोंकी सेना को ढकदिया ॥ १४ ॥ हे महाराज ! मध्याह्नकाल होनेपर सब कौरव इकट्ठे होकर पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ सात्यकीने पांच वाणोंसे कृतवर्माको वींधदिया और शूरताके साथ हजारों वाणोंको बरसाता हुआ रणभूमिमें खड़ा होगया ॥ १६ ॥ हे राजन् ! ऐसे ही राजा द्रुपदने तीखे वाणोंसे द्रोण को वींधकर फिर उनके ऊपर सत्तर वाण छोड़े तथा उनके सारथीके भी पांच वाण मारे ॥१७॥ भीमसेन भी राजा बाह्लीक और पितामहको वींधकर जैसे वनमें सिंह गरजता है तैसे बड़ा भारी शब्द करने लगा ॥ १८ ॥ चित्रसेनने अर्जुनके पुत्रको बहुतसे वाणोंसे घायल करदिया था तो भी वह रणमें शूरताके साथ हजारों वाण बरसाता हुआ खड़ा रहा ॥१९॥ उसने तीन वाण मारकर चित्रसेनको अत्यन्त घायल कर दिया हे राजन् !

समरे भृशम् । समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम् ॥२०॥
यथा दिवि महाघोरौ राजन् बुधशनैश्चरौ । तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा
सूतञ्च नवभिः शरैः ॥ २१ ॥ ननाद बलवान्नादं सौभद्रः पर-
वीरहा । हताश्वात्तु रथात्तूर्णं सोऽवप्लुत्य महारथः ॥ २२ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते । द्रोणश्च द्रुपदं भित्त्वा
शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २३ ॥ सारथिञ्चास्य विव्याध त्वरमाणः
पराक्रमी । पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे ॥ २४ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन् । भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्त्ता-
दिव वाह्लिकम् ॥ २५ ॥ व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
ससम्भ्रमो महाराज संशयं परमं गतः ॥ २६ ॥ अवप्लुत्य ततो
वाहाद्वाह्लीकः पुरुषोत्तमः । आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महा-
रणे ॥ २७ ॥ सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे । शरै-

आमने सामने युद्ध करतेहुए दोनों योधा आकाशमें सम्मुख आये हुए बुध और शनैश्चरकी समान रणमें शोभा पारहे थे, शत्रुके वीरोंका नाश करनेवाला सुभद्राकुमार अपने शत्रुके चार योधाओं को नौ बाणोंसे मारकर बड़े जोरसे गरजा तब महारथी चित्रसेन जिसके घोड़े मरगये थे ऐसे रथमेंसे कूदकर॥२०-२२॥दुर्मुखके रथमें चढ़ बैठा, हे राजन! पराक्रमी द्रोणने द्रुपदको बाणोंसे बींध कर देखतेर उसके सारथीको मारडाला इसकारण अत्यन्त पीड़ित हुआ राजा द्रुपद अपने पहिले वैरभावको याद करता हुआ वेगवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर संग्राममेंसे पीछेको लौट दिया, इतनेमें ही सब सेनाके सामने भीमसेनने क्षणभरमें राजा बाह्लीकको घोड़े सारथी और रथसे शून्य कर दिया इसकारण बड़ी घबड़ाहटमें पड़ाहुआ राजा बाह्लीक महासङ्कटमें फँसजानेके कारण उस संग्राममें एकसाथ लक्ष्मणके रथमें चढ़ बैठा ॥ २३ ॥ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इस महारणमें सात्यकी कृतवर्माको अनेकों

बहुविधैः राजन्नाससाद पितामहम्। स विध्वा भारतं पञ्चा निशितैर्लोमवाहिभिः। नृत्यन्निव रथोपस्थे विधुन्वानो महद्धनुः ॥ २६ ॥ तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाथ पितामहः। हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम् ॥ ३० ॥ तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां स दुर्जयाम्। व्यंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः ॥ ३१ ॥ अनासाद्य तु वार्ष्णेयं शक्तिः परमदारुणा। न्यपतद्धरणीपृष्ठे महोल्केव महाप्रभा ॥ ३२ ॥ वार्ष्णेयस्तु ततो राजंस्तां शक्तिं कनकप्रभाम्। वेगवद्गृह्य चिक्षेप पितामहरथं प्रति ॥ ३३ ॥ वार्ष्णेयभुजवेगेन प्रणुन्ना सा महाहवे। अभिदुद्राव वेगेन कालरात्रिर्यथा नरम् ॥ ३४ ॥ तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारत। क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णां सा व्यशीर्यत मेदिनीम्

प्रकारके बाणोंसे रोककर पितामह भीष्मके पास आया ॥२८॥ और अपने बड़े भारी धनुषको चढ़ाकर वह राजा मानो अपने रथके ऊपर नाच रहा हो इसप्रकार खड़ा होकर परवँधे हुए तीखे बाणोंसे भीष्मको बींधने लगा ॥ २६ ॥ तब तो पितामहने सोने से चित्र विचित्र दीखती हुई नागकन्याकी समान सुन्दर एक बड़ी भारी लोहेकी शक्ति उसके ऊपर फेंकी ॥३०॥ उस मृत्युकी समान महादुर्जय शक्तिको अपनी ओरको आतीहुई देखकर उस वृष्णि वंशके बड़ी कीर्त्तिवाले राजाने बड़ी फुरतीकेसाथ उसको हटादिया तब तो सात्यकी के न लगकर बड़ी भारी उल्काकी समान प्रभाव वाली वह परमदारुण शक्ति भूमिमें जापड़ी ॥ ३२ ॥ हे राजन्! तब सात्यकीने अपनी सोनेकी समान दमकती हुई शक्तिको लेकर बड़ेजोरसे पितामहके रथपर फेंका ॥ ३३ ॥ सात्यकीके हाथसे जोरके साथ छूटी हुई वह महाशक्ति, जैसे कालरात्रि बड़े वेगके साथ मनुष्योंके ऊपर टूट पड़ती है तैसे ही भीष्मकी ओर को जाने लगी ॥ ३४॥ परन्तु जोरके साथ महातीक्ष्ण दो बाण छोड़कर भीष्मने उस शक्तिके क्षणभरमें दो टुकड़े करदिये तब

॥३५॥छित्वा शक्तिं तु गांगेयः सात्यकिं नवभिः शरैः। आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्छत्रुकर्शनः ॥ ३६ ॥ ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजाः। परिवव्रू रणे भीष्मं माधवत्राणकारणात् ॥ ३७ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्। पाण्डवानां कुरूणाञ्च समरे विजयैषिणाम् ॥ ३८ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवार्ष्णेययुद्धे।
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

सञ्जय उवाच। दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम्। यथा मेघैर्महाराज तपान्ते दिवि भास्करम् ॥१॥ दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत। एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शूरनिषूदनः ॥ २ ॥ छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद्भरतर्षभ। तस्य कार्य्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः ॥३॥ रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः। निहन्यात् समरे यत्तान् पाञ्चालान् पाण्डवैः

वह भूमिपर आपड़ी ॥ ३५ ॥ तब शत्रुनाशी भीष्मने क्रोधमें भर कर हँसते हुए नौ बाणोंसे सात्यकीकी छाती को घायल कर दिया ॥ ३६ ॥ तब रथ हाथी और घोड़ोंकी सेना सहित पांडव तथा उनके पूर्वज सात्यकी की रक्षा करनेके लिये चढ़ आये और भीष्मको घेरने लगे, उस समय विजय चाहने वाले पाण्डव और कौरवोंमें रोमांच खड़े करने वाला घोर युद्ध होने लगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ एकसौ चारवां अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे महाराज! रणमें अतिक्रोधमें भरे हुए भीष्मपितामहको, चौमासेमें घनघटासे घिरे हुए सूर्यकी समान पाण्डवोंसे घिरा हुआ देखकर दुर्योधनने दुःशासनसे कहा, कि-हे भरतसत्तम। शूरोंका संहार करने वाले इन शूर भीष्मपितामह को शूर पाण्डवोंने चारों ओरसे घेरलिया है इसलिये हे वीर! तुम्हैं इन महात्माकी रक्षा करना चाहिये ॥ १-३ ॥ यदि हम भीष्म पितामहकी रक्षा कर

सह ॥ ४ ॥ तत्र कार्य्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम् । गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः ॥५॥ स भवान् सर्वसैन्येन परिवार्य्य पितामहम् । समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु ॥६॥ स एवमुक्तः समरे पुत्रो दुःशासनस्तव । परिवार्य्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः ॥ ७ ॥ ततः शतसहस्राणां हयानां सुबलात्मजः । विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम् ॥ ८ ॥ दर्पितानां सुवेशानां वलस्थानां पताकिनाम् । शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः ॥ ९ ॥ नकुलं सहदेवञ्च धर्मराजञ्च पाण्डवम् । न्यवारयन्नरश्रेष्ठान् परिवार्य्य समन्ततः ॥ १० ॥ ततो दुर्य्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम् । अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां निवारणे ॥ ११ ॥ तैः प्रविष्टैर्महावेगैर्गरुत्मद्भिरिवाहवे । खुराहता धरा

लेंगे तो यह पाण्डवोंके साथ तयार हुए पाञ्चालोंको भी मारडालेंगे ॥ ४ ॥ इसकारण हम भीष्मकी रक्षा करें, यह हमारा परम कर्त्तव्य है, क्योंकि–महाधनुषधारी और महाव्रतधारी यह भीष्म हमारे रक्षक हैं ॥५॥ इस कारण तुम रणमें कठिन पराक्रम करने वाले भीष्मको अपनी सेनाके द्वारा चारों ओरसे घेरकर इनकी रक्षा करो ॥ ६ ॥ दुर्योधनका इस बातको सुनकर तुम्हारा पुत्र दुःशासन अपनी वड़ीभारी सेनाके द्वारा भीष्मको घेरकर खड़ा होगया ॥ ७ ॥ तव सुवलका पुत्र शकुनि, जिनके हाथोंमें चमकते हुए पाश थे ऐसे ऋष्टि तोमरोंको धारण करने वाले, वड़े घमण्डी, सुन्दर पोशाक पहिरे, वलपर चढ़े हुए, पताकाधारी कवायद सीखे हुए, एक लाख घुड़सवारोंकी सेनाको तथा शिक्षा पाये हुए और भी वहुतसे मनुष्योंको साथ लेकर पाण्डुपुत्र, नकुल सहदेव और युधिष्ठिरको घेरता हुआ उनको भीष्मके सामनेको जानेसे रोकने लगा ॥ ८-१० ॥ और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने दश हजार शूर घुड़सवार पाण्डवोंको रोकनेके लिये भेजे, गरुड़की समान वेगसे शत्रुओंके ऊपरको दौड़ते हुए उन

राजंश्चकम्पे च ननाद च ॥ १२ ॥ खुरशब्दश्च सुमहान् वाजिनां शुश्रुवे तदा । महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ १३ ॥ उत्पतद्भिश्च तैस्तत्र समुद्भूतं महद्रजः । दिवाकरपथं प्राप्य च्छादयामास भास्करम् ॥ १४ ॥ वेगवद्भिर्हयैस्तैस्तु क्षोभिता पाण्डवी चमूः । निपतद्भिर्महावेगैर्हंसैरिव महत्सरः ॥ १५ ॥ हेषतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन । ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १६ ॥ प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे हयसादिनाम् । उद्वृत्तस्य महाराज प्रावृट्कालेऽतिपूर्य्यतः ॥ १७॥ पौर्णमास्यामम्बुवेगं यथा वेला महोदधेः । ततस्ते रथिनो राजन् शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१८॥ न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि शरेण हयसादिनाम् । ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ॥ १९ ॥ नागैरिव महानागा यथावत् गिरि-

सवारोंके घोड़ोंकी खुरियोंसे खुदती हुई पृथ्वी हे राजन् ! डगमगाने और शब्द करने लगी ॥ ११ ॥ १२ ॥ और जैसे पहाड़ पर जलते हुए बड़े२ घांस फटकर टुकड़े२ होने लगते हैं तैसा ही शब्द घोड़ोंके पैरोंकी खुरियोंका होरहा था ॥ १३ ॥ उनके कूदनेसे उड़ीहुई धूलने सूर्यके रथतक पहुंचकर सूर्यको भी ढकदिया ॥ १४ ॥ और जैसे इधर उधरको दौड़ते हुए हंसोंसे बड़ाभारी सरोवर खलभला उठता है तैसे ही इन आंधीकी चाल पर आते हुए घोड़ोंसे पाण्डवोंकी सेनामें खलभली पड़गयी ॥ १५ ॥ उन घोड़ोंकी हिनहिनाहटके दुन्दमें और कुछ भी सुनायी नहीं आता था, उस समय राजा युधिष्ठिर और माद्रीनन्दन नकुल सहदेवने, जैसे समुद्रका किनारा पूनोंके दिन चौमासेमें भरेहुए समुद्रके उवाल को रोके रहता है तैसे ही उन घुड़सवारोंको रोकलिया और हे राजन् ! तदनन्तर यह रथी तीखे बाण छोड़कर उन घुड़सवारों के शिर काटने लगे, दृढ़ धनुषधारियोंके मारे हुए ये घुड़सवार ऐसे नीचे गिररहे थे जैसे मतवाले हाथियोंके मारे हुए साधारण हाथी पहाड़की गुफाओंमें ढहपड़ते हैं, दशों दिशाओंमें पहुंचते

गह्वरे । तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥ न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश । अभ्याहता हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ॥ २१ ॥ अत्यजन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमाः । ससादिनो हया राजंस्तत्र तत्र निषूदिताः ॥ २२ ॥ पतिता पात्यमानाश्च प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः । वध्यमाना हयाश्चैव प्राद्रवन्त भयार्दिताः ॥ २३ ॥ यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः । पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून्महामृधे ॥ २४ ॥ दध्मुः शंखांश्च भेरीश्च ताडयामासुराहवे । ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम् ॥ २५ ॥ अब्रवीद् भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः । एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो यमाभ्यां सहितो रणे ॥ २६ ॥ पश्यतां नो महाबाहो सेनां द्रावयति प्रभो । तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम् ॥२७ ॥ त्वं हि संश्रूयसेऽत्यर्थमसह्यबलविक्रमः । पुत्रस्य तव तद्वा-

---

हुए वह योधा दृढ़ गांठवाले बाणोंसे सवारोंके मस्तक काटरहे थे ॥ १६—२० ॥ और हे भरतसत्तम ! ऋष्टियोंसे मारेहुए घुड़सवारोंके मस्तक पृथिवीपर ऐसे गिररहे थे जैसे वृक्षों परसे फल गिरते हों, उस रणमें हजारों घुड़सवार अपने वाहनों सहित कटे हुए और कटते हुए दीखते थे तथा जैसे हिरन सिंहको देखकर प्राण बचानेके लिये भागते हैं तैसे ही मारे जाते हुए वह घोड़े भी भयसे पीड़ा पाकर चारों ओरको भागने लगे, हे महाराज ! इस प्रकार रणमें शत्रुओंको जीत कर पाण्डव रणभूमिमें शङ्ख और भेरियोंको बजाने लगे, उधर अपनी सेनाको हारीहुई देखकर उदास हुआ राजा दुर्योधन मद्रराजसे इसप्रकार कहने लगा, कि हे महाबाहो! हे प्रभो! हम सबोंके देखते हुए यह युधिष्ठिर नकुल और सहदेवकी सहायता से हमारी सेनाको भगा रहा है, इस लिये जैसे किनारा समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकता है तैसे ही इस को रोको ॥ २१—२७ ॥ क्योंकि—तुम्हारे बल और पराक्रमको हरएक नहीं सहसकता, तुम्हारे पुत्रकी इस बातको सुन

कथं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान् ॥ २८ ॥ स ययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः । तदापतद्वै सहसा शल्यस्य सुमहद्बलम् ॥ २९ ॥ महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः । मद्रराजश्च समरे धर्मराजो महारथः ॥ ३० ॥ दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे । नकुलः सहदेवश्च तं सप्तभिरजिह्मगैः ॥ ३१ ॥ मद्रराजोपि तान् सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः । युधिष्ठिरं पुनः षष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥ माद्रीपुत्रौ च सम्भ्रान्तौ द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् । ततो भीमो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ ३३ ॥ मद्रराजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा । अभ्यपद्यत संग्रामे युधिष्ठिरममित्रजित् ॥ ३४ ॥ ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्त्तत सुदारुणम् । अपरां दिशमास्थाय पतमाने दिवाकरे ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि शल्यधर्मराजसमागमे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

कर प्रतापी शल्य रथसेनाको लेकर जहां युधिष्ठिर थे तहां चढ़ आया और उसकी सब सेना एकसाथ युधिष्ठिरके ऊपर टूट पड़ी ॥ २८ ॥ २९ ॥ तुरन्त ही महाबली युधिष्ठिरने बहुत ही आवेशके साथ चढ़कर आते हुए मद्रराज शल्यको रोकदिया और उसकी छातीमें दश बाण मारे तथा नकुल और सहदेवने भी उसके सीधे जाने वाले सात२ बाण मारे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ शल्यने भी इन सबोंके तीन२ बाण मारे और फिर साठ तीक्ष्ण बाण छोड़कर युधिष्ठिरको घायल किया ॥ ३२ ॥ तथा माद्रीके दोनों पुत्रोंको घबड़ाये हुए देखकर उनके ऊपर भी दो२ बाणों का प्रहार किया उस समय राजा युधिष्ठिर मानो कालके मुखमें आपड़े हों इसप्रकार उनको शल्यके रथके पास पहुंचे हुए देखकर महाबाहु भीमसेन उनकी रक्षा करनेके लिये आगेको बढ़आया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जब सूर्य पश्चिम दिशामेंको उतरनेकी तयारीमें था उस समय महादारुण और बड़ा घोर युद्ध होरहा था ३५ एकसौ पांचवां अध्याय समाप्त ॥ १०५ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । ततः पिता तव क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः । आजघान रणे पार्थान् सहसेनान् समन्ततः ॥ १ ॥ भीमं द्वादशभिर्विध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः। नकुलं च त्रिभिर्विध्वा सहदेवञ्च सप्तभिः॥२॥युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् । धृष्टद्युम्नन्ततो विध्वा ननाद सुमहाबलः॥३॥तं द्वादशाभ्यैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः । धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत् पितामहम् । द्रोणस्तु सात्यकिं विध्वा भीमसेनमविध्यत ॥ ५ ॥ एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः । तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ६ ॥ तोत्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम् । सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ७ ॥ अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोथ वसा-

सञ्जय कहता है, कि—तदनन्तर कोपमें भरेहुए तुम्हारे पिता बड़े तीखे बाणोंसे कुन्तीके पुत्र और उनकी सेनाके ऊपर चारों ओरसे प्रहार करने लगे ॥ १ ॥ उन्होंने भीमको बारह बाणोंसे सात्यकीको नौ बाणों से नकुलको तीन बाणोंसे और सहदेवको सात बाणोंसे बींधदिया ॥ २ ॥ और युधिष्ठिर की छातीमें बारह बाण मारे तदनन्तर धृ ष्टद्युम्नको बाणोंसे बींध कर यह महाबली गरजने लगे ॥ ३ ॥ तब नकुलने बारह बाणों से सात्यकीने तीन बाणोंसे धृष्टद्युम्नने सत्तर बाणोंसे भीमसेन ने सात बाणोंसे ॥ ४ ॥ और युधिष्ठिरने बारह बाणोंसे भीष्म पितामहको बींधडाला,द्रोणाचार्यने सात्यकीको बींधकर भीमसेनको घायल किया ॥ ५॥ इस प्रकार यमदण्डकी समान पांच पांच तीखे बाण हरएकके मारे तब भीम और सात्यकीने भी, जैसे महावत हाथीके अंकुश मारता है तैसे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके ऊपर तीन२ बाणोंका प्रहार किया, रणमें तीक्ष्ण बाणों की मार खारहे थे तो भी सौवीर, कितव, पूर्ववासी, पश्चिमवासी उत्तरवासी, मालवेके, अभीषाह, शूरसेन, शिवी तथा वसाती,

तयः । संग्रामे नाजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ८ ॥ तथैवाऽन्ये महीपाला नानादेशसमागताः । पाण्डवानभ्यवर्त्तन्त विविधायुधपाणयः ॥ ९ ॥ तथैव पाण्डवा राजन् परिवव्रुः पितामहम् । स समन्तात् परिवृतो रथौघैरपराजितः ॥ १० ॥ गहनाग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन् परान् । रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ॥ ११ ॥ शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निर्ददाह क्षत्रियर्षभान् । सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः ॥ १२ ॥ कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद्बलम् । अपातयद्ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ॥ १३ ॥ मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजाम् । निर्मनुष्यान् रथान् राजन् गजानश्वांश्च संयुगे ॥ १४ ॥ अकरोत् स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः । तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जित-

आदि योधा भीष्मको छोड़कर नहीं गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ अनेकों देशोंके राजे प्रकार२ के शस्त्र लेकर पाण्डवोंके ऊपरको चढ़आये ॥ ९ ॥ और हे राजन् ! पाण्डवोंने पितामहको चारों ओरसे घेर लिया, तो भी अनेकों रथोंसे सब ओरसे घिरे हुए जरा भी पीछेको नहीं हटे और उनको कोई नहीं जीतसका ॥ १० ॥ परन्तु जैसे वनमें पड़ा हुआ अग्नि बल उठता है तैसे ही क्रोधसे प्रज्वलित होकर शत्रुओंका संहार ही करते रहे. उनका रथ ही अग्निशाला था, बाण ज्वाला थे, तलवार शक्ति और गदा काठ थे ॥ ११ ॥ बाण चिनगारियें थीं और स्वयं भीष्म जी अग्नि रूप हो बड़े २ क्षत्रियोंको जलाकर भस्म कररहे थे भीष्मजी सोनेकी फुल्लियें और गिज्जके परोंवाले अतिचमकीले कर्णि नालीक और नाराच जातिके बाणोंसे सब सेनाको ढके देते थे तथा तेज बाण छोड़कर ध्वजाओं और रथियोंको काटरहे थे ॥ १२ ॥ १३ ॥ उन्होंने क्षणभरमें हजारों रथोंको ठुण्डमात्र तालके वनोंकी समान करडाला और उस संग्राममें सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीष्मने रथ घोड़े और हाथियोंको

पिवाशनेः ॥ १५ ॥ निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत । अमोघा ह्यपतन् बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ ॥ १६ ॥ नासज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः । हतवीरान् रथान् राजन संयुक्तान् जवनैर्हयैः ॥ १७ ॥ अपश्याम महाराज ह्रियमाणान् रणाजिरे । चेदिकाशिकरूपाणां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १८ ॥ महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः । अपरावर्तिनः सर्व सुवर्णविकृत-ध्वजाः ॥ १९ ॥ संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्यमिवान्तकम् । निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथकुञ्जराः ॥ २० ॥ भग्नाक्षोप-स्करान् कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत । अपश्याम महाराज शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २१ ॥ सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः । शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिशैश्च विशाम्पते ॥ २२ ॥ गदाभिर्भिन्दिपा-

अनाथ करडाला हे भारत ! बिजलीके कड़कड़ाहटकी समान उन के रोदेकी टङ्कारको सुनकर सब प्राणी कांपने लगे थे, हे भरत-र्षभ ! तुम्हारे पितामहका एक बाण भी खाली नहीं जाता था ॥ १४-१६ ॥ भीष्मजीके धनुषमेंसे छूटते हुए बाण केवल योधाओंके कवचोंको ही नहीं फोड़ते थे किन्तु उनके शरीरोंमें भी घुस जाते थे, हे राजन् ! वीरोंके मरजाने पर सूने रथोंको लेकर वेगवाले घोड़े रणभूमिमें इधर उधर दौड़ने लगे, चेदी, काशी, करूप आदि देशोंके दशहजार महारथी और प्राण देने को तयार कुलीन राजपुत्र जो कभी रणमें पीछेको पैर न देने वाले तथा सोनेकी ध्वजाओं वाले थे वह सब खुले हुए मुखवाले कालकी समान भीष्मजीके साथ युद्ध करतेमें अपने रथ, घोड़े और हाथियों सहित कटर कर परलोकमें जापहुंचे ॥१७-२० ॥ हे भरतवंशी महाराज ! हमने सैंकड़ों और हजारों रथ ऐसे देखे कि-जिनमें किन्हींकी धुरी टूटी थीं किन्हीके पहिये टूट थे तथा किन्हींके और अङ्ग टूटें हुए थे ॥२१॥ हे राजन् ! टूटेहुए ढांचों वाले रथोंसे भूमिपर घायल करके गिराये हुए रथियोंसे बाणोंसे, टूटहुए सुन्दर कवचोंसे, पट्टिशोंसे ॥ २२ ॥ गदाओंसे

लैश्च निशितैश्च शिलीमुखैः । अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चक्रैर्भग्नैश्च मारिष ॥ २३ ॥ बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः। तलत्रैरङ्गुलित्रैश्च ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २४ ॥ चापैश्च बहुधा छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी । हतारोहा गजा राजन् हयाश्च हयसादिनः ॥२५॥ न्यपतन्त गतप्राणाः शतशोऽथ सहस्रशः । यतमानापि ते वीरा द्रवमाणान् महारथान् ॥ २६॥ नाशक्नुवन् वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् । महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ २७ ॥ अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः । आविद्धरथनागाश्वं पतितध्वजसंकुलम् ॥ २८ ॥ अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् । जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ २९ ॥ प्रियं सखायश्चाक्रन्दे सखा दैववलात् कृतः । विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥ ३० ॥ प्रकीर्य केशान् धावन्तः प्रत्य-

भिन्दिपालोंसे, तीखे बाणोंसे तथा हे राजन् ! रथोंके टूटे हुए रथके अनुकर्ष उपासङ्ग और पहियोंसे २३ कटे हुए हाथ धनुष तलवार कुण्डलों सहित शिर, हाथोंके मोजे और अगुलियोंमें पहरनेके चमड़ेके अंगुलित्र, गिराई हुई ध्वजायें तथा अनेकों स्थानोंमें टूटेहुए धनुषोंसे सब पृथिवी ढक रही थी और हे राजन् ! जिनके महावत मारे गये थे ऐसे हाथी और घुड़सवारोंसे शून्य घोड़े ॥२४॥ ॥ २५ ॥ सैंकड़ों और हजारों मरे पड़े थे, भीष्मजीके बाणोंसे पीडित होकर भागते हुए महारथियोंको रोकनेका वीर पुरुषोंने उद्योग किया, परन्तु रोक नहीं सके, हे राजन् ! इन्द्रकी समान पराक्रमवाले भीष्मजीके हाथसे मार खायी हुई सेना ऐसी बिखर गयी थी, कि—दो मनुष्य भी एकसाथ भागते हुए नहीं दीखते थे, कटे हुए रथ, हाथी और घोड़ोंवाली तथा टूटी हुई ध्वजाओं वाली पाण्डवोंकी सेना अचेत होकर हाहाकार कररही थी, दैव के बलसे खिचे हुए पुत्र पिताओंको, पिता पुत्रोंको और मित्र अपने प्यारे मित्रोंको माररहे थे तथा पाण्डवोंके पक्षके कितने ही

दृश्यन्त सर्वशः । तद् गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथकूवरम् ३१
ददर्श पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्त्तस्वरं तदा । प्रभज्यमानं सैन्यन्तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ३२ ॥ उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् । अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यः काङ्क्षितस्तव ॥ ३३ ॥ प्रहरास्मिन्नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे । यत् पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमे ॥ ३४ ॥ विराटनगरे तात सञ्जयस्य समीपतः । भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान् धार्त्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ॥ ३५ ॥ सानुबन्धान् हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संगरे । इति तत् कुरु कौंतेय सत्यं वाक्यमरिन्दम ॥ ३६ ॥ क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः । इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ॥ ३७ ॥ अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् । अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा

योधा अपने कवचोंको फेंककर खुलेवालों चारों ओरको भागते हुए दीखरहे थें, उस समय ढोरोंके झुण्डकी समान जिसमें रथोंके घोड़े भड़क गये थे ऐसी पाण्डवों की सेना घबड़ायी हुई त्राहि त्राहिका द्वन्द मचारही थी, जब इसप्रकार सेना भागने लगी तो यादवनन्दन श्रीकृष्णने अपने रथको खड़ा करके कुन्ती के पुत्र बीभत्सुसे कहा, कि-हे धनञ्जय ! तू जिस समय को चाहता था वह अब पास ही आगया है ॥२६-३३॥ इसकारण हे नरव्याघ्र ! यदि तुझे मोह न होता हो तो तू इस समय प्रहार कर, हे शत्रुओंका दमन करने वाले नर ! पहिले विराटके नगरमें राजाओंके और सञ्जयके सामने तूने कहा था, कि-संग्राममें युद्ध करनेको आये आये हुए भीष्म द्रोण आदि धृतराष्ट्रके सब सैनिकों को तथा उनके अनुयायियोंको मैं मार डालूंगा, इस बातको हे धनञ्जय ! अब तू सत्य करके दिखा ॥ ३४—३६ ॥ क्षत्रिय धर्मको याद करके जरा भी चिन्ता न रखता हुआ युद्ध कर, वासुदेवने ऐसा कहा तब अर्जुनने तिरछी दृष्टि किये हुए मुख नीचेको करलिया, और जिसको लड़नेकी जरा भी इच्छा नहीं

नरकोत्तरम् ॥ ३८ ॥ दुःखानि वनवासो वा किन्नु मे सुकृतं भवेत् । चोदयाश्वान् यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ॥ ३९ ॥ पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम् । स चाश्वान् रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ॥ ४० ॥ यतो भीष्मस्ततो राजन् दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिमानिव । ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे । ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥४२॥ धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् । क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ॥ ४३ ॥ शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत । वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्य्यमास्थाय सत्वरः ॥ ४४ ॥ चोदयामास तानश्वान् वितुन्नान् भीष्मसायकैः । ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ॥ ४५ ॥ पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा शितैः शरैः । स छिन्नधन्वा कौरव्यः

मालूम होती थी ऐसे अर्जुनने यह बात कही, कि—जो मारने के योग्य नहीं हैं ऐसे बन्धुजनोंका वध करके नरकगति देनेवाले राज्यको पाजाना अथवा वनमें रहकर दुःख भोगना, ये दो ही इसके परिणाम हैं ? इन दोनोंमें से मेरा कल्याण किससे है? हे हृषीकेश ! जहां भीष्मजी हों उधरको ही मेरे घोड़ोंको हांक दीजिये, मैं आपका कहना करूँगा ॥ ३७—३९ ॥ किसीसे न दबनेवाले कुरुओंके पितामह भीष्मजीको मैं मारकर गिराऊँगा, यह सुनकर कृष्णने चांदीकी समान स्वेत वर्णके घोड़ोंको जहां सूर्यकी समान चौंधने वाले भीष्मजी थे उधरको हांक दिया, रणमें अर्जुनको भीष्मके सामनेको जाता देखकर युधिष्ठिरकी बड़ीभारी सेना फिर पीछेको लौट आयी तदनन्तर वार २ सिंहकी समान गरजते हुए भीष्मने शीघ्र ही धनञ्जयके रथको बाणोंसे ढक दिया, तब क्षणभरमें ही वह अर्जुनका रथ घोड़े और सारथी समेत बाणोंकी वर्षासे छुपगया और उसका दीखना बन्द होगया, परन्तु वासुदेव जरा भी न घबड़ा कर भीष्मके बाणोंसे घायल हुए

पुनरन्यन्महद्धनुः ॥ ४६ ॥ निमेषांतरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव । चकर्ष च ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ ४७ ॥ अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः। तस्य तत् पूजयामास लाघवं शंतनोः सुतः ॥ ४८ ॥ गाङ्गेयस्त्वब्रवीत्पार्थं धन्विश्रेष्ठमरिन्दम । साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ॥ ४९ ॥ समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः । मुमोच समरे भीष्मः शरान् पार्थरथं प्रति ॥ ५० ॥ अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् । मोघान् कुर्वन् शरांस्तस्य मण्डलानि निदर्शयन् ॥ ५१ ॥ शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ । गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखितांकितौ ॥ ५२ ॥ वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम् । भीष्म-

---

घोड़ोंको आगे ही आगेको हांकते रहे, तदनन्तर अर्जुनने मेघके कड़ाकेकी समान गरजकर दिव्य धनुषको हाथमें उठालिया तथा तीखे बाणोंसे भीष्मके धनुषके टुकड़े २ करडाले, तब तुम्हारे पिताने दूसरा धनुष हाथमें लिया तथा निमेषमात्रमें उसको चढ़ा कर मेघकी समान गरजते हुए उस धनुषको दोनों हाथोंसे खेंचा ॥ ४०—४७ ॥ परन्तु इतनेमें ही अर्जुनने क्रोधमें भरकर उस धनुषको भी काटडाला, अर्जुनके हाथकी ऐसी फुरतीको देखकर शन्तनुनन्दन भीष्मजी उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४८ ॥ और कहने लगे, कि—धन्य है ! हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ ! धन्य है ! हे शत्रुओंका दमन करनेवाले महाबाहु कुन्तीनन्दन ! धन्य है ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर भीष्मने और एक सुन्दर धनुष हाथमें उठाया और उससे रणमें पार्थके रथके ऊपर बाण छोड़ने लगे ॥ ५० ॥ उस समय घोड़ोंको हांकनेकी परम चतुरता दिखाते हुए श्रीकृष्णने घोड़ोंको चक्करकी चालमें डालकर बाणोंको चुकादिया ॥ ५१ ॥ भीष्मके बाणोंसे घायल हुए ये दोनों नर व्याघ्र आमने सामने लड़ते हुए सींगोंसे घायल हुए बैलोंकी समान दीखते थे ॥ ५२ ॥ युद्धमें अर्जुनकी कोमलताको देखकर

* शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ॥ ५३ ॥ मपपन्तमिवामिवा-दत्यं मध्यमासाद्य सेनयोः । वरान् वरान् विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ॥ ५४ ॥ युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले । नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥ ५५॥ उत्सृज्य रजतप्रख्यान् हयान पार्थस्य मारिष ।-वासुदेवस्ततो योधी प्रचस्कन्द महा-रथात् ॥ ५६ ॥ अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली । प्रतोद-पाणिस्तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ५७ ॥ दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः। क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः ॥ ५८ ॥ ग्रसन्न इव चेतांसि तावकानां महाहवे । दृष्ट्वा माधवमा-क्रन्दे भीष्मायोद्यतमन्तिके ॥ ५९ ॥ हतो भीष्मो हतो भीष्मस्तत्र तत्र वचो महत् । अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात्तदा ॥ ६० ॥ पीतकौशेयसम्वीतो मणिश्यामो जनार्दनः । शुशुभे विद्रवन् भीष्मं

तथा वारम्बार बाण छोड़ते, सेनाके मध्यमें आकर सूर्यकी समान प्रकाश करते और प्रलयकालकी समान युधिष्ठिरकी सेनाके मुख्य२ वीरोंका नाश करते हुए भीष्मको देखकर मधु दैत्यको संहार करनेवाले वासुदेवसे नहीं रहागया और उस समय चांदी की समान सफद रङ्गके अर्जुनके घोड़ोंकी रासोंको छोड़कर रथ परसे नीचे कूदपड़े ॥ ५३ ॥ ५६ ॥ और सिंहकी समान गरजते हुए वासुदेव हाथमें चाबुक लेकर भीष्मजीके सामनेको दौड़े अपार तेजस्वी तथा कोपके मारे लाल२ होरहे हैं नेत्र जिनके ऐसे जग-दीश्वर श्रीकृष्ण पैरोंकी धमकसे भूमिको कम्पायमान करते हुए भीष्मजीको मारनेके लिये आगेको बढे, कृष्णको भीष्मके समीप पहुंचे हुए देखकर तुम्हारे पक्षके योधाओंके हृदय कांपने लगे और हे महाराज ! श्रीकृष्णसे भयभीत हुए सब योधा 'यह भीष्मको मारडालेंगे, मार डालेंगे ऐसा कोलाहल मचाने लगे ॥ ५७–॥ ६० ॥ पीताम्बर पहिरे और मणिकी समान श्यामवर्ण जना-र्दन भीष्मके सामनेको जा आरहे थे उस समय बिजलीसे शोभा

विद्युन्माली यथाम्बुदः ॥६१॥ स सिंह इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम् । अभिदुद्राव वेगेन विनदन् यादवर्षभः ॥ ६२ ॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे । असम्भ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महद्धनुः ॥ ६३ ॥ उवाच चैव गोविन्दमसम्भ्रान्तेन चेतसा । एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देव देव नमोस्तु ते ॥ ६४ ॥ मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे । त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ ६५ श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः । सम्भावितोऽस्मि गोविंद त्रैलोक्येनाद्य संयुगे ॥ ६६ ॥ प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ । अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम् ॥ ६७ ॥ निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै । निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ॥ ६८ ॥ जगामचैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ।

समान घनघटाकी समान मालूम होते थे ॥६१॥ जैसे सिंह हाथी के ऊपरको चढ़ता है, तथा यूथमेंसे जैसे वृषभ दूसरे वृषभके ऊपर को चढ़कर जाता है तैसे ही मधुवंशमें श्रे श्रीकृष्ण बड़े गरजते हुए एकसाथ भीष्मके ऊपरको झपटे ॥ ६२ ॥ पुण्डरीकाक्ष श्री कृष्णको रणमें अपने सामनेको आते देख जरा भी न घबड़ा कर भीष्मने अपना बड़ाभारी धनुष चढ़ाया और निर्भयताके साथ गोविन्दसे कहने लगे, कि—हे पुण्डरीकाक्ष ! आइये, हे देवोंके देव ! मैं आपको प्रणाम करता हूं, हे सात्वतोंमें श्रेष्ठ ! आज आप मेरा वध करिये, हे निष्पाप ! आपके हाथसे मृत्यु होने पर इस लोकमें मेरा सब प्रकारसे कल्याण होगा, हे गोविन्द! आज संग्राममें आप मेरे सामने आये इससे मैं अपनेको त्रिलोकी भरमें प्रतिष्ठा पाया हुआ समझता हूं ॥ ६३-६६ ॥ हे अनघ ! मैं आपका दास हूं आप अपनी इच्छानुसार मेरे ऊपर प्रहार करिये परन्तु कृष्णको दौड़ते हुए देखकर महाबाहु अर्जुनने पीछेसे आ उनको कौलिया भरकर पकड़ लिया परन्तु इस पर भी कमलनयन श्रीकृष्ण अर्जुनको घसीटते हुए बड़े वेगसे आगेको

पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ॥ ६९ ॥ निजग्राह हृषी-केशं कथंचिद्दशमे पदे । तत एवमुवाचार्त्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ॥ ७० ॥ निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः प्रणयात्सखा । निवर्त्तस्व महाबाहो नानृतं कर्तुमर्हसि ॥ ७१ ॥ यत्त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव । मिथ्यावादीति लोकास्त्वां कथयिष्यन्ति माधव ॥ ७२ ॥ ममैष भारः सर्वो हि हनिष्यामि पितामहम् । शपे केशव शस्त्रेण सत्येन सुकृतेन च ॥७३ ॥ अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुसूदन । अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महारथम् ॥ ७४ ॥ तारापतिमिवापूर्णमन्तकाले यदृच्छया । माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ ७५ ॥ अकिञ्चिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः । तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शांतनवः पुनः ॥७६॥

ही बढ़े चले जाते थे, उस समय बड़ा जोर करके चरणको जमाते जमाते अर्जुनने दशमें पगपर श्रीकृष्णको आगे बढ़नेसे रोकपाया, तदनन्तर कोपसे तमतमाते हुए नेत्रों वाले तथा सांपकी समान फुङ्कार भरते हुए श्रीकृष्णसे बड़े ही स्नेहके साथ उनको प्यारा सखा अर्जुन कहने लगा, कि–हे महाबाहो! आप पीछेको लौटिये, ऐसा अन्याय करना आपको शोभा नहीं देता है ॥ ६७–७१ ॥ हे माधव ! आपने पहिले कहा था, कि—मैं स्वयं युद्ध नहीं करूंगा, इस लिये यदि आप आज युद्ध करेंगे तो लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे ॥ ७२ ॥ इस सब युद्धके भारको मैं अपने शिर पर लेता हूं और अपने इस शस्त्रकी पुण्यकी तथा सत्यकी शपथ खाकर कहता हूं, कि–मैं पितामहका संहार करूंगा ॥७३॥ जिससे शत्रुओंका नाश होगा, मैं वही करूंगा, हे शत्रुनाशन ! इन महारथी भीष्मको आप प्रलयकालमें नष्ट होते हुए तारापति की समान रणमें मरा हुआ देखोगे, महात्मा धनञ्जयकी इस बातको सुनकर श्रीकृष्ण कुछ भी न कहकर कोपमें भरे हुए पीछेको लौट आये और रथ पर जा बैठे. तदनन्तर जैसे मेघ दो

ववर्ष शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाचली। प्राणानादत्त योधानां पिता देवव्रतस्तव ॥ ७७ ॥ गभस्तिभिरिवादित्यस्तेजांसि शिशिरात्यये। यथा कुरूणां सैन्यानि बभञ्जुर्युधि पाण्डवाः ॥ ७८ ॥ तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता। हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ॥ ७९ ॥ मध्यं गतमिवादित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा। ते वध्यमाना भीष्मेण शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८० ॥ निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे। कुर्वाणं समरे कर्माण्यतिमानुषविक्रमम् ॥ ८१ ॥ वीक्षाञ्चक्रुर्महाराज पांडवा भयपीडिताः। तथा पाण्डवसैन्यानि द्राव्यमाणानि भारत ॥ ८२ ॥ त्रातारं नाभ्यगच्छन्त गावः पङ्कगता इव। पिपीलिका इव क्षुण्णा दुर्बला बलिना रणे ॥ ८३ ॥ महारथं भारत दुष्प्रकम्पं शरौघिणं

पहाड़ोंके ऊपर जलकी धारोंको बरसाता है तैसे ही रथमें बैठे हुए इन दोनों नरव्याघ्रोंके ऊपर भीष्मजी बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे शिशिर ऋतुके अन्तमें सूर्य अपनी किरणों से भूतमात्रके तेजको हरलेता है तैसे ही तुम्हारे पिता योधाओं के प्राणोंको हरने लगे, जैसे पहिले पाण्डवोंने कौरवोंकी सेनामें भागड़ डालदी थी तैसे ही तुम्हारे पिताने भी पाण्डवोंकी सेनामें भागड़ डालदी, मरती हुई तथा इधर उधरको भागती हुई सेना वाले पाण्डव युद्धमें मध्यान्हके समय तपते हुए सूर्यकी समान अद्वितीय भीष्मके सामनेको देख भी नहीं सकते थे ॥७४॥८०॥ भीष्मके हाथसे मरते हुए वह सैकड़ों और सहस्रा पांडवपक्षके योधा भतभीत होकर संग्राममें देवताओंकेसा पराक्रम दिखानेवाले भीष्मजीकी ओरको भौंचक्केसे होकर देखने लगे, कि—क्या भीष्मजी प्रलय ही कररहे हैं ! और हे भारत ! भगायी हुई पांडवोंकी सेनाको, कीचमें अँदीहुई गैाओंकी समान कोई भी रक्षा करने वाला नहीं दीखा, बलवान् ! भीष्मने पाण्डवोंके दुर्बल योधाओंको रणमें चींटियोंकी समान मसलडाला था ॥ ८१ ॥

प्रतपन्तं नरेन्द्रान् । भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते शराचिंषं सूर्य्यमिवातपन्तम् ॥ ८४ ॥ विमृद्नतस्तस्य तु पाण्डुसेनामस्तं जगामाथ सहस्ररश्मिः । ततो बलानां श्रमकर्शितानां मनोऽवहारं प्रतिसम्बभूव ॥ ८५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सञ्जय उवाच । युध्यतामेव तेषान्तु भास्करेऽस्तमुपागते । संध्या समभवद्घोरा न पश्याम ततो रणम् ॥ १ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सन्ध्यां संदृश्य भारत । वध्यमानञ्च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम् ॥ २ ॥ स्वसैन्यञ्च पराव्रत्तं पलायनपरायणम् । भीष्मञ्च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ॥ ३ ॥ सोमकांश्च जितान् दृष्ट्वा निरुत्साहान् महारथान् । चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत् ॥ ४ ॥ ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधि-

---

॥ ८३ ॥ हे भारत ! योधाओंको ताप देनेवाले किसीसे भी कम्पायमान न होनेवाले बाणरूप किरणोंसे युक्त तथा सूर्यकी समान सबको ताप देतेहुए भीष्मरूप सूर्यको अपने सामने देख कर पांडव बाधासे गये थे ॥ ८४ ॥ भीष्मजी पांडवोंकी सेनाको संहार कररहे थे, इतनेमें ही सूर्य अस्त होने लगा इसकारण थके हुए सब योधाओंका मन युद्धको बन्द करनेकी ओर चलागया ॥ ८५ ॥ एकसौ छःवां अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि-उनका युद्ध होते ही होते सूर्य अस्त होगया तथा घोर सन्ध्याकाल होगया जिससे हमको फिर रण नहीं दीखा ॥ १ ॥ संध्याका समय होगया था, भय से व्याकुल होनें के कारण युधिष्ठिरकी सेना अस्त्रोंको फेंककर पीछेको भागरही थी भीष्म अत्यन्त कोपमें भरकर महारथियोंको बेहाल कररहे थे ॥ २ ॥ ३ ॥ सोमक महारथी, पराजय होता देखकर निरुत्साह होगये थे, यह देख और कुछ विचार करके राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाको युद्ध बन्द करदेन की आज्ञा देदी ॥ ४ ॥ जब

ष्ठिरः । तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत्तदा ॥ ५ ॥ ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः । न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥ ६ ॥ भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः । नालभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः ॥ ७ ॥ भीष्मोपि समरे जित्वा पाण्डवान् सहसृञ्जयान् । पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत ॥ ८ ॥ न्यविशत् कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः । ततो रात्रिः समभवत् सर्वभूतप्रमोहिनी ॥ ९ ॥ तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह । सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन् ॥१०॥ आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः । मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः॥११॥ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप । वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे॥१२॥

राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाओंको लौटा लिया तो तुम्हारी सेनायें भी युद्ध बन्द करके लौट आयीं ॥ ५ ॥ हे कुरुसत्तम ! अपनी सेनाओंको पीछेको लौटा कर संग्राममें घायल हुए महारथी आराम लेने लगे ॥ ६ ॥ भीष्मके बाणोंसे पीड़ित हुए पाण्डवोंको, उनके अद्भुत पराक्रमकी याद आने पर जरा भी शान्ति नहीं मिलती थी ॥ ७ ॥ हे भारत ! भीष्म भी पाण्डवोंको तथा सृञ्जयोंको हरा कर तथा तुम्हारे पुत्रोंसे धन्यवाद पाकर अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुए कौरवोंके साथ बैठकर आराम लेने लगे, तदनन्तर सकल प्राणियोंको मोहित करने वाली रात्रीका आरम्भ होगया ॥८॥ ॥ ९ ॥ इस घोर रात्रीके पहिले भागमें वृष्णि और सृञ्जयोंके साथ इकट्ठे होकर पाण्डव विचार करने लगे ॥ १० ॥ मंत्रका निश्चय करनेमें चतुर वे सब उस समय अब हमको क्या करना कल्याणकारी होगा, इस बातका विचार करने लगे ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरने बहुत देरतक विचार करके श्रीकृष्णकी ओरको देखा और इसप्रकार कहने लगे, कि—हे कृष्ण ! जैसे नलोंके वनको हाथी मसल डालता है तैसे ही मेरी सेनाका कचरघांस करते हुए भयङ्कर पराक्रम वाले भीष्मके पराक्रमको आप देखें ॥१२॥

कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् । गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥ १३ ॥ न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् । लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥ १४ ॥ यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः । तथा भीष्मो रणे क्रुद्धस्तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान् ॥ १५ ॥ गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन्निशिताञ्छरान् । शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट् ॥ १६ ॥ वरुणः पाशभृच्चापि सगदो वा धनेश्वरः । नतु भीष्मः सुसंक्रुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे ॥ १७ ॥ सोऽहमेवं गते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे । आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य संयुगे ॥१८॥ वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम् । न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा ॥ १९ ॥ यथा प्रज्वलितं वह्निं पतङ्गः समभिद्रवन् । एकतो मृत्युमभ्येति तथाहं भीष्ममीयिवान्

॥१३॥ धधकते हुए बड़ेभारी अग्निकी समान सेनाओंको चाटते हुए इन महात्मा भीष्मकी ओरको तो हम देख भी नहीं सकते ॥ १४ ॥ तीक्ष्ण शस्त्रधारी प्रतापी भीष्मजी जिस समय संग्राम में कोप करते हैं उस समय वह महाविषधर तक्षकसे मालुम होते हैं॥ १५ ॥ हाथमें धनुष लेकर तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए यमराजको, वज्रधारी इन्द्रको, पाशधारी वरुणको अथवा गदाधारी धनेश्वर कुवेरको जीतना सहज है परन्तु महासंग्राममें कोपमें भरे हुए भीष्मको जीतना सहज नहीं है ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे कृष्ण ! रणमें भीष्मको सन्मुख पाकर किसप्रकार जीताजाय, इस बात को मैं अपनी बुद्धिकी दुर्बलताके कारणसे नहीं समझ सकता हूं इसकारण इस दशामें मैं शोकसागरमें गोते खारहा हूं ॥ १८ ॥ हे दुर्धर्ष कृष्ण ! भीष्म सदा हमारा नाश करते हैं, इसलिये मुझे अब युद्ध करना जरा भी अच्छा नहीं लगता है, इसकारण अब मैं वनमें चलाजाऊँ यही कल्याणकारी मालूम होता है, जैसे बलते हुए अग्निमें गिरते हुए पतङ्गे नष्ट होजाते हैं, यही दशा भीष्मके सामने पहुंचने पर हमारी भी होती है, हे वृष्णिवंशमें

॥ २० ॥ क्षयं नीतोस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी । भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः ॥ २१ ॥ मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्यभ्रष्टा वनं गताः । परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन ॥ २२ ॥ जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् । जीवितस्याद्य शेषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥ २३ ॥ यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव । स्वधर्मस्याविरोधेन हितं व्याहर केशव ॥ २४ ॥ एवं श्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद्बहुविस्तरम् । प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम् ॥ २५ ॥ धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर । यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः ॥ २६ ॥ अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ । माद्रीपुत्रौ च

श्रेष्ठ ! राज्यके लोभके कारणसे मेरे पराक्रमी पक्षका ऐसा नाश हुआ है तथा मेरे शूर भाई भी बाणोंके लगनेसे पीड़ा पारहे हैं ॥ १९-२१ ॥ मेरे कारण ही स्नेहसे बँधेहुए मेरे भाइयोंको राज्यभ्रष्ट होकर वनमें भटकना पड़ा और हे मधुसूदन ! द्रौपदी को भी मेरे ही कारणसे ऐसे दुःखमें डूबना पड़ा था ॥ २२ ॥ मैं जीवनको बहुमूल्य समझता हूं, परन्तु अब उस जीवनके दुर्लभ होनेका समय आगया है, इसलिये यदि मैं अपने जीवन को बचालूंगा तो उस अपने शेष जीवनमें अब उत्तम धर्माचरण करूँगा ॥२३॥ हे केशव ! यदि तुम मेरे और मेरे भाइयोंके ऊपर अनुग्रह करना चाहते हो तो जिससे मेरे धर्ममें विरोध न आवे ऐसी हितकारी बात मुझे बताइये ॥ २४ ॥ इसप्रकार युधिष्ठिर की करुणाभरी लम्बी चौड़ी बातको सुनकर श्रीकृष्ण उनको धीरज देते हुए इसप्रकार कहने लगे, कि—॥ २५ ॥ हे धर्मपुत्र हे सत्य पर दृढ़ रहने वाले ! आप इसप्रकार दुःखित न हूजिये, शत्रुओंका नाश करनेवाले तुम्हारे भाई शूर हैं, उन को तो कोई जीत ही नहीं सकता ॥ २६ ॥ अर्जुन और भीमसेन वायु और अग्निकी समान तेजस्वी हैं तथा माद्रीके दोनों पुत्र भी दो इन्द्रों

विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ ॥ २७ ॥ मां वापि युंच्व सौहार्दा-
द्योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव । त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महा-
हवे ॥ २८ ॥ हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् । पश्यतां
धार्त्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः ॥ २९ ॥ यदि भीष्मे हते
वीरे जयं पश्यसि पाण्डव । हन्तास्म्येकरथेनाद्य कुरुवृद्धं पिता-
महम् ॥ ३० ॥ पश्य मे विक्रमं राजन् महेन्द्रस्येव संयुगे । विमु-
ञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात् ॥ ३१ ॥ यः शत्रुः पाण्डु-
पुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः । मदर्था भवदीया ये ये मदीया-
स्तवैव ते ॥ ३२ ॥ तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते ॥ ३३ ॥ एष चापि
नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत् । एष नः समयस्तात तारयेम

की समान पराक्रमी हैं ॥२७॥ हे पाण्डव ! इनको कम समझते
हो तो मुझे ही इस काम पर लगादो, मैं भीष्मके साथ लडूंगा
हे महाराज ! आपके आज्ञा करने पर महासंग्राममें मैं कौनसा काम
नहीं करूँगा अर्थात् हरएक काम करनेको तयार हूं ॥ २८ ॥
यदि अर्जुन भीष्मके ऊपर शस्त्र छोड़ना नहीं चाहता तो मैं ही
धृतराष्ट्रके पुत्रोंके सामने महात्मा भीष्मको बुलाकर रणमें मार-
डालूँगा॥२९॥हे पाण्डव ! यदि वीर भीष्मके ही मारेजाने पर तुम
विजय देखरहे हो तो आज मैं अकेला ही रथमें बैठकर कुरुओंके
वृद्ध पितामहका वध करनेको तयार हूं ॥३०॥ हे राजन् ! आज
तुम रणमें मेरे इन्द्रकी समान पराक्रमको देखना, बड़े२ अस्त्र छोड़ने
पर भी भीष्मको रथमेंसे नीचे गिरादूँगा ॥ ३१ ॥ जो पाण्डुके
पुत्रोंका शत्रु है वह निःसन्देह मेरा शत्रु है, जो तुम्हारे अपने हैं
वह मेरे भी हैं और जो मेरे अपने हैं वह सब तुम्हारे ही हैं ३२
तुम्हारा भाई अर्जुन मेरा सखा है, संबन्धी है, तथा शिष्य है,
हे राजन् ! उस अर्जुनके लिये मैं अपना शरीरका मांसतक काट
कर देनेको तयार हूं ॥ ३३ ॥ तथा यह नरव्याघ्र भी मेरे लिये

परस्परम् ॥ ३४ ॥ स मां नियुंक्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धा भवाम्यहम्। प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत्तत् पार्थेन पूर्वतः ॥ ३५ ॥ घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य सन्निधौ। परिरक्ष्यमिदं तावद् वचः पार्थस्य धीमतः ॥ ३६ ॥ अनुज्ञातन्तु पार्थेन मया कार्य्यं न संशयः। अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे ॥ ३७ ॥ स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम्। अशक्यमपि कुर्य्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः ॥ ३८ ॥ त्रिदशान् वा समुद्युक्तान् सहितान् दैत्यदानवैः। निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप ॥ ३९ ॥ विपरीतो महावीर्य्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवनः। भीष्मः शान्तनवो नूनं

अपने प्राण तक त्याग सकता है, हे राजन्! यह हमारी प्रतिज्ञा है, कि—एकके ऊपर आपत्ति आकर पड़े तो दूसरा उसको दूर करे ॥ ३४ ॥ इस कारण हे राजेन्द्र! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि-मैं आपकी ओरसे योधा बनकर लडूं, उपप्लवमें बुद्धिमान् धनञ्जयने सब लोगोंके सामने यह प्रतिज्ञा की थी, कि-मैं गङ्गानन्दनका वध करूँगा, इसकारण इसकी उस प्रतिज्ञाकी मुझे सर्वथा रक्षा करनी ही चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यदि अर्जुन ऐसा करना चाहे तो मैं उसके इस वचनको सफल करनेको तयार हूं और यदि ऐसा न होसके तो अर्जुन भले ही अपनी बातका भार अपने ऊपर रक्खे ॥ ३७ ॥ शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले भीष्मको अर्जुन रणमें अवश्य मारेगा क्योंकि—चाहे तैसा कठिन काम हो यदि अर्जुन उद्यत होजायगा तो उसको कर ही डालेगा ॥ ३८ ॥ दैत्य और दानवोंके साथ इकट्ठे होकर आये हुए देवताओंका भी अर्जुन रणमें संहार करसकता है, हे राजन्! फिर भीष्मकी तो बात ही क्या है? ॥३९॥ महावीरता युक्त होनेके कारण शन्तनुनन्दन भीष्मकी बुद्धिविपरीत होगयी है जो सत्त्वहीन होकर मृत्युके निकट पहुंचजाता है, वह निःसन्देह

एवमेतन्महाबाहो कर्त्तव्यं नावबुध्यते ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर उवाच । एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव । सर्वे ह्येते न पर्याप्तास्तव वेगविधारणे॥४१॥ नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेतद्यथेप्सितम् । यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान् पक्षे व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥ सेन्द्रानपि रणे देवान् जयेयं जयतां वर । त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महारथम् ॥४३॥ न तु त्वामनृतं कर्त्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात् । अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव ॥ ४४ ॥ समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे । मन्त्रयिष्ये तवार्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन ॥ ४५ ॥ दुर्योधनार्थे योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो । स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव ॥ ४६॥ तस्माद्द देवव्रतं भूयो वधोपाया-

अपने कर्त्तव्यको नहीं समझ सकता है ॥ ४० ॥ यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा, कि—हे महाबाहो ! हे माधव ! आप जो कुछ कहते हैं, वह सब सत्य है, आपके बलको इनमेंसे कोई भी नहीं सहसकता ॥ ४१ ॥ हे पुरुषसिंह ! जहां मेरे पक्षमें आप हैं तहां मेरे विचारे हुए सब ही काम सिद्ध होंगे, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ४२ ॥ हे विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे गोविन्द ! जहां आप मेरे रक्षक हैं तहां मैं रणमें इन्द्रसहित देवताओं को भी जीत सकता हूं, फिर महारथी भीष्मसे तो लड़ना ही क्या है ? ॥ ४३ ॥ परन्तु मैं अपना गौरव रखनेके लिये आपसे आपका वचन मिथ्या करनेके लिये नहीं कह सकता, इसलिये हे माधव ! आपने पहिले जैसा कहा है, उसके अनुसार ही आप युद्ध न कर के केवल अपनी संमतिसे ही मेरी सहायता करते रहिये ॥४४॥ संग्रामके विषयमें भीष्मने मेरे साथ यह प्रतिज्ञा की है कि—मैं तुम्हें सम्मति दूँगा, परन्तु मैं तुम्हारी ओरसे युद्ध किसी प्रकार भी नहीं करूंगा ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! मैं दुर्योधनके पक्षमें रहकर लड़ूंगा, इस बातको तुम सत्य समझो, हे माधव ! यह भीष्म मुझे राज्य और संमति देने वाले हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये हे मधु-

र्थमात्मनः । भवता सहिताः सर्वे मायाम मधुसूदन ॥ ४७ ॥ तद्वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम् । न चिरात् सर्ववार्ष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवम् ॥ ४८ ॥ स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्मान् जनार्दन । यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्तास्मि संयुगे ॥ ४९ ॥ स नो जयस्य दाता स्यान्मन्त्रस्य च दृढव्रतः । बालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम् ॥ ५० ॥ तञ्चेत् पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव । पितुः पितरमिष्टञ्च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५१ ॥ सञ्जय उवाच । ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम् । रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम् ॥ ५२ ॥ देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनापि निर्दहेत् । गम्यतां स वधोपायं प्रष्टुं सागरगासुतः ॥ ५३ ॥ वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो

सूदन ! हम सब आपको साथमें लेकर एकवार उनसे अपने वधका उपाय बूझनेके लिये उन देवव्रतके पास चलें॥४७॥ सो हे वृष्णिवंशी ! हम सब शीघ्र ही इकट्ठे होकर मनुष्योंमें श्रेष्ठ कुरुवंशी भीष्मजीके पास चलें, अब इसमें देर करनेका काम नहीं है ॥ ४८ ॥ हे जनार्दन ! वह हमको हितकारी और सच्ची ही बात बतावेंगे,हे कृष्ण ! वह जो कुछ बतावेंगे,हम रणमें वैसा ही करेंगे ॥ ४९ ॥ वह दृढ़ व्रतधारी हमें जय और संमति देंगे, क्योंकि-पितासे हीन हम बालकोंको उन्होंने ही पाला पोसा था ॥५०॥ हे माधव ! यदि ऐसे हितकारी पिताके पिता वृद्ध पितामहको मैं मारडालना चाहूं तो ऐसे क्षत्रियजीवनको धिक्कार है ॥५१॥ सञ्जय कहता है,कि-हे महाराज! तदनन्तर श्रीकृष्णने कुरुनन्दन से कहा, कि—हे चतुरशिरोमणे महाराज ! आपकी बात मुझे अच्छी लगती है ॥५२॥ परमचतुर देवव्रत भीष्म अपना एक दृष्टि से ही सबको भस्म कर सकते हैं, इसलिये उन गङ्गानन्दनके पास उनके वधका उपाय बूझनेके लिये चलना चाहिये ॥ ५३ ॥ विशेष कर तुम पूछोगे तो वह अवश्य ही सत्य बात कहेंगे, इस

विशेषतः । ते वयं तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम् ॥ ५४ ॥
गत्वा शांतनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत । स वो दास्यति मन्त्रं यं
तेन योत्स्यामहे परान् ॥ ५५ ॥ एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः
पाण्डुपूर्वजम् । जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥५६॥
विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति । प्रविश्य च तदा भीष्मं
शिरोभिः प्रणिपेदिरे ॥ ५७ ॥ पूजयन्तो महाराज पाण्डवा
भरतर्षभम् । प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमभ्ययुः ॥५८॥
तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः॥ स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वा-
गतन्ते धनञ्जय ॥ ५९ ॥ स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ।
किं वा कार्य्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम् ॥ ६० ॥ सर्वा-
त्मनापि कर्त्तास्मि यदपि स्यात् सुदुष्करम् । तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं

लिये चलो हम सब तहां कुरुओंके पितामहसे पूछनेको चलें ५४
हे भारत ! उन शन्तनुके वृद्ध पुत्रके पास चल कर संमति करें
वह तुम्हें जैसी संमति देंगे उसके अनुसार ही हम शत्रुओंके
साथ युद्ध करेंगे ॥ ५५ ॥ उन वीर पाण्डवोंने ऐसी संमति की
और फिर वह सब इकट्ठे होकर वीर्यवान् श्रीकृष्णको साथ लिये
हुए पाण्डुके पूर्वज भीष्मजीसे मिलनेको गये॥५६॥भीष्मजीके
तम्बूको जाते समय उन्होंने अपने२ शस्त्र और कवचोंको उतार
कर धर दिया और फिर भीष्मजीके तम्बूमें पहुंचकर उन्होंने
उनको शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥५७॥ हे महाराज! पांडवों
ने भरतवंशमें श्रेष्ठ भीष्मजीको शिरसे प्रणाम करके उनका पूजन
किया और कहने लगे, कि—हम आपकी शरण आये हैं ५८
तब कौरवोंके पितामह महाबाहु भीष्मने उनसे कहा, कि—हे
कृष्ण! तुम अच्छे आये और हे धनञ्जय! तू भी अच्छा आया,
॥५९॥ हे धर्मपुत्र! हे भीम ! और हे नकुल सहदेव! तुम्हारे आने
से भी मैं बड़ा प्रसन्न हूं, बताओ आज मैं ऐसा कौन काम करूँ
जिससे तुम्हारे चित्तको अधिक प्रसन्नता प्राप्त हो ६०यदि तुम्हारा
काम बहुत कठिन होगा तो भी उसको मैं किसी न किसी प्रकार

प्रीतियुक्तं पुनः पुनः ॥ ६१ ॥ उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्त-मिदं वचः । कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ॥ ६२ ॥ प्रजानां संशयो न स्यात् कथं तन्मे वद प्रभो । भवान् हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ॥ ६३ ॥ भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयम् । न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥ ६४ ॥ मण्डलेनैव धनुषाह्द दृश्यसे संयुगे सदा । आददानं सन्दधानं विकर्षन्त धनुर्न च ॥ ६५ ॥ पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्य-मिवापरम् । रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥६६॥ कोऽथ वोत्सहते जेतुं त्वां पुमान् भरतर्षभ । वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम् ॥ ६७ ॥ क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम ।

से अवश्य करूँगा, जब गङ्गानन्दनने यह बात बड़ी प्रीतिके साथ बार२ कही ॥६१॥ तब राजा युधिष्ठिरने उदास मनसे उनसे यह बात कही, कि—हे सर्वज्ञ ! हम किस प्रकार जीतें और किस प्रकार राज्यको पावें ? ॥ ६२ ॥ और हे प्रभो ! यह प्रजाका संहार होना किस प्रकार बन्द हो सो हमको बताइये तथा हम आपका वध किस प्रकार कर सकते हैं, यह भी हमें आप ही बता दीजिये ॥ ६३ ॥ हे वीर ! इस रणमें हम आपके वलको कैसे सहसकेंगे ? क्योंकि—हे कुरुपितामह ! हम आपमें किसीप्रकारकी जरासी भी कमी नहीं देखते हैं ॥ ६४ ॥ हम रणमें आपके धनुष का सदा मण्डल ही बँधा हुआ देखते हैं आप कब वाण निकालते हैं, कब चढ़ाते हैं और कब धनुषको खेंचते हैं यह हमें मालूम ही नहीं होता ॥ ६५ ॥ हे महाबाहु भीष्म ! हम जब देखते हैं तब आपको दूसरे सूर्यकी समान रथमें वैठा ही देखते हैं, हे शत्रुओंके वीरोंका संहार करनेवाले भरतसत्तम भीष्म ! रथ, घोड़े, मनुष्य और हाथियोंका संहार करनेवाले आपको जीतनेका साहस कौन कर सकता है ? तुम हजारों वाण छोड़कर संग्राममें घोर संहार करडालते हो ॥ ६६ ॥६७॥ आपने इस रणमें मेरी बड़ी

यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम ॥ ६८॥ मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह । ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान् पाण्डुपूर्वज ॥ ६९ ॥ न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे । जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७० ॥ निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः । क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम् ॥ ७१ ॥ अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम् । एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ॥ ७२ ॥ हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम् । युधिष्ठिर उवाच । ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ॥ ७३ ॥ भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्तमिवान्त-

भारी सेनाका सत्यानाश कर दिया, इसलिये आप हमें ऐसी संमति दीजिये, कि—जिससे हमारी विजय होय, हमारा राज्य लौट आवे ॥ ६८ ॥ हे पितामह ! जिसमें मेरी सेना कुशलसे रहे वह उपाय बताइये, इस पर हे पाण्डुके बड़े भाई ! शन्तनुनन्दन भीष्मजीने पाण्डवोंसे यह बात कही, कि—॥६९॥ हे सर्वज्ञ कुन्तीनन्दन ! मैं तुमसे यह बात सत्य कहता हूं, कि—जब तक मैं जीवित हूं तब तक रणमें तुम्हारी विजय किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥७०॥ हे पाण्डवो ! जब युद्ध करके मुझे जीत लोगे तब ही तुम्हारी विजय होगी, इसलिये यदि तुम रणमें अपनी विजय चाहते हो तो शीघ्र ही मेरे ऊपर प्रहार करो ॥७१॥ हे पाण्डवो ! मैं तुम्हें ऐसा करनेकी आज्ञा देता हूं तुम मेरे ऊपर इच्छानुसार प्रहार करो, तुमने जो मुझे अजित समझ लिया है यही तुम्हारे पुण्यका उदय है अर्थात् यही तुम्हारी विजयका चिह्न है, यदि तुम इस बातको नहीं समझते तो तुम मेरे साथ लड़ते ही रहते और इसमें सहस्रों क्षत्रियोंका संहार होजाता, परन्तु तुम मुझे अजित जानकर मेरी शरणमें आगये, इससे ही इस संहारको रुका हुआ समझिये, मेरे मारे जाने पर तुम बाकी सबोंको भी मरा हुआ ही समझना, इसलिये तुम मेरे ही मारने का उद्योग करो, युधिष्ठिरने कहा, कि-तो इसलिये आप ऐसा उपाय बताइये कि–जिससे रणमें हम जीतजायँ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हाथमें दण्ड ले

कम् । शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा ॥ ७४॥ न भवान् समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः । भीष्म उवाच । सत्यमेतन्महा-बाहो यथा वदसि पाण्डव ॥ ७५ ॥ नाहं जेतुं रणे शक्यः सेन्द्रै-रपि सुरासुरैः । आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ॥ ७६ ॥ ततो मां न्यस्तशस्त्रं तु एते हन्युर्महारथाः । निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ॥ ७७ ॥ द्रवमाणे च भीते च तवास्मीति च वादिनि । स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रिणि ॥ ७८ ॥ अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम ॥ इमं मे शृणु राजेन्द्र सं-कल्पं पूर्वचिन्तितम्॥७६॥ अमङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कदाचन ।

कर खड़े हुए अन्तककी समान रणमें कोपायमान हुए आपको हम कैसे जीतें ? वज्रधारी इन्द्र वरुण और यमराजको जीता जा सकता है ॥ ७४ ॥ परन्तु आपको इन्द्रको साथमें लिये भी सुर असुर भी रणमें नहीं जीतसकते भीष्मजीने कहा, कि-हे महा-बाहु पांडव ! तुम जैसा कहते हो यह ठीक ही हैं ॥ ७५ ॥ यदि मैं शस्त्र धारण किये हुए, रणमें श्रेष्ठ धनुषको उठाकर खड़ा हो जाऊँ तो इन्द्रकी सहायता लेकर आये हुए सुर असुर भी मुझे नहीं जीत सकते ॥७६॥ इसलिये यदि मैं शस्त्रको हाथमेंसे धरदूँ तब ही यह महारथी मुझे जीत सकते हैं, जो शस्त्रको डालदेता है जो रणमें गिर जाता है,जो अपनी ध्वजाको गिरा देता है,जो शरीर परसे कवच उतार डालता है, जो भागने लगता है, जो भयभीत होजाता है जो कहता है. कि-मैं तुम्हारा ही हूं तथा स्त्री, स्त्रीकी समान नामवाला, विकल, एक पुत्रका पिता तथा जिस मनुष्यकी संसारमें निन्दा हो, इनके साथ युद्ध करना मुझे अच्छा नहीं लगता, इसके सिवाय मेरा पुरातन कालसे चिन्तवन किया हुआ जो सङ्कल्प है उसको भी हे राजेन्द्र ! तुम सुनो ॥७७॥७८॥ हे राजन् ! तुम्हारी सेनामें जो महारथी द्रुपदपुत्र,

थ एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ॥ ८० ॥ शिखण्डी समरामर्षी शूरश्च समितिञ्जयः। यथाभवत्स्त्री पूर्वं पश्चात् पुंस्त्वं समागतः ॥ ८१ ॥ जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद्यथातथम्। अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ८२ ॥ मामेव विशिखैस्तीक्ष्णैरभिद्रवतु दंशितः। अमङ्गल्यध्वजे तस्मिन् स्त्रीपूर्वे च विशेषतः ॥ ८३ ॥ न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुः कथंचन। तदंतरं समासाद्य पाण्डवो मां धनञ्जयः ॥ ८४ ॥ शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद्भरतर्षभ। न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद्यः समुद्यतम् ॥ ८५ ॥ ऋते कृष्णान्महाभागात् पाण्डवाद्वा धनञ्जयात्। एष तस्मात् पुरोधाय कंचिदन्यं ममाग्रतः ॥ ८६ ॥ आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः। मां पातयतु बीभत्सुरेवं तव जयो ध्रुवम् ॥ ८७ ॥ एतत् कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत।

प्रायः शत्रुओंको जीता करता है वह पहिले स्त्री था और पीछेसे पुरुष होगया है ॥८०॥८१॥ इस बातको तुम सब भी यथावत् जानते ही हो, इस शिखंडीको आगे करके शूर अर्जुनको मेरे ऊपर तीखे बाणोंका प्रहार करने दो, विशेष कर स्त्रीरूप पुरुष को आगे करके लड़नेको आने पर इस अमङ्गलचिह्नको देखकर मैं हाथमें बाण लेकर कभी भी प्रहार करना नहीं चाहता हूं, हे भरतसत्तम! ऐसा समय पाकर मेरे सामने आयाहुआ धनञ्जय मेरे ऊपर चारों ओरसे बाण मारे, मैं त्रिलोकीमें महाभाग श्रीकृष्ण और पांडुनन्दन अर्जुनके सिवाय और कोई ऐसा पुरुष देखता ही नहीं जो युद्ध करनेके लिये तयार हुए मुझे मारसके, इसलिये शिखंडीको या ऐसे ही किसी दूसरे पुरुषको आगे करके संग्राम के लिये तयार हो कवच और धनुष धारण करके अर्जुनको मेरे सामने आकर मेरा नाश करने दो, ऐसा करने पर ही निःसन्देह तुम्हारी विजय होगी ॥ ८२ ॥ ८७ ॥ हे सुन्दर

संग्रामे धार्त्तराष्ट्रांश्च हन्याः सर्वान् समागतान् ॥ ८८ ॥ सञ्जय उवाच । ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था जग्मुः स्वशिविरं प्रति । अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ८९ ॥ तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते । अर्जुनो दुःखसन्तप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ ९० ॥ गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता । पितामहेन संग्रामे कथं योद्धास्मि माधव ॥ ९१ ॥ क्रीडता हि मया बाल्ये, वासुदेव महामनाः । पांसुरूषितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः ॥ ९२ ॥ यस्याहमधिरुह्याङ्कं बाल किल गदाग्रज । तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः॥९३॥ नाहं तातस्तव पितुस्तातोऽस्मि तव भारत । इति मामब्रवीद्बाल्ये यः स वध्यः कथं मया ॥ ९४ ॥ कामं वध्यतु

व्रतधारी कुन्तीनन्दन ! जैसा मैंने कहा है, इसको ऐसा ही करो तब ही तुम युद्धमें इकट्ठे हुए धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको मार सकोगे ॥ ८८ ॥ सञ्जय कहता है, कि—भीष्मजीसे उनके मरणके उपायको जानकर वह कुन्तीके पुत्र; कुरुओंके पितामह महात्मा भीष्मजीको प्रणाम करके अपने तम्बूमेंको लौट आये ॥ ८९॥ परलोकके लिये दीक्षा लेनेवाले गङ्गानन्दनने इसप्रकार कहा तब दुःखसे सन्तप्त हुआ अर्जुन लज्जित होकर कृष्णसे यह बात कहने लगा, कि—॥ ९० ॥ हे माधव ! कुरुओंमें वृद्ध गुरु, अनुभवी, बुद्धिमान् पितामहके साथ मैं संग्राममें कैसे लडूंगा ? ॥ ९१ ॥ हे वासुदेव ! बालकपनेमें खेलते समय धूलिसे मैले हुए अपने अङ्गोंसे मैंने इन महात्मा भीष्मजीके शरीरको इनकी गोदीमें बैठ कर मैला किया है ॥ ९२ ॥ और हे बलदेवके छोटे भैया ! मैंने बालकपनेमें इनकी गोदीमें चढ़ २ कर इनको पिता पिता कहकर पुकारा है,यह मेरे पिता पाण्डुके भी बड़े हैं ९३ मैं अकेले तेरा ही पिता नहीं हूं किन्तु तेरे पिताका भी पिता (दादा) हूं, ऐसे२ प्रेमके वचन जिन महात्माने मुझसे बालकपनेमें कहे थे, उनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूंगा,उनको मैं कैसे मार सकूंगा

सैन्यं मे नाहं योत्स्ये महात्मना। जयो वास्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे ॥ ९५ ॥ वासुदेव उवाच। प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे। क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ॥ ९६ ॥ पातयैनं रथात् पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम्। नाहत्वा युधि गांगेयं विजयस्ते भविष्यति ॥ ९७ ॥ दृष्टमेतत् पुरा देवैर्गमिष्यति यमक्षयम्। यद्द दृष्टं हि पुरा पार्थ तत्तथा न तदन्यथा ॥ ९८ ॥ न हि भीष्म दुराधर्षं व्यात्ताननमिवान्तकम्। त्वदन्यः शक्नुयाद्योद्धुमपि वज्रधरः स्वयम् ॥ ९९ ॥ जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचो मम। यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः ॥ १०० ॥ ज्यायांसमपि चेद्द वृद्धं गुणैरपि समन्वितम्। आतता-

॥ ९४ ॥ यह भले ही मेरी सेनाका नाश करडालें, मेरी विजय हो चाहे मैं मारा जाऊँ, परन्तु मैं इन महात्माके साथ युद्ध नहीं करूंगा, मेरे मनका विचार तो यही है, परन्तु ये कृष्ण! अब तुम क्या उचित समझते हो? ॥ ९५ ॥ श्रीकृष्ण कहते हैं, कि-हे विजयी! पहिले तूने रणमें भीष्मको मारने की प्रतिज्ञा की थी और अब 'मैं इनको नहीं मारूंगा' ऐसा क्यों कहता है ॥ ९६ ॥ हे अर्जुन! क्षत्रियके धर्मका ग्रहण कर और युद्धमें दुर्मद इन भीष्मको तू रथ परसे गिरादे, भीष्मको मारे बिना तेरी विजय नहीं होगी ॥ ९७ ॥ इस बातका सङ्केत तो देवताओंने पहिलेसे ही कर रक्खा है, कि—इस समय यह यमालयको जायँगे ही और ऐसा करने से ही तेरी विजय होगी हे धनञ्जय! भावी होनहार) का जो संकेत है वह तो वैसा ही होगा, इसमें लौटफेर हो ही नहीं सकता ॥ ९८ ॥ मुख फैलाकर दौड़ते हुए कालकी समान भीष्मके साथ लड़नेका साहस तेरे सिवाय साक्षात् वज्रधारी इन्द्रको भी नहीं हो सकता ॥ ९९ ॥ जैसे पहिले परम बुद्धिमान् बृहस्पति ने इन्द्रको समझाया था वैसे ही मैं तुझें समझा रहा हूं, इसलिये तू मेरी इस बातको सुन और स्थिर होकर भीष्मका संहार कर ॥ १०० ॥ मनुष्य चाहे जैसा गुणवान् बड़ा और वृद्ध हो तो

यिनमायान्तं हन्यादु घातकमात्मनः॥१०१॥ शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय। योद्धव्यं रक्षितव्यश्च यष्टव्यश्चानुसूयुभिः ॥१०२॥ अर्जुन उवाच। शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम्। दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्त्तते ॥१०३॥ ते वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्। गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥१०४॥ अहमन्यान्महेष्वासान् वारयिष्यामि सायकैः। शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठं भीष्ममेवाभियोधयेत् ॥१०५॥ श्रुतं हि कुरुमुख्यस्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम्। कन्या ह्येषा पुरा भूत्वा पुरुषः समपद्यत॥१०६॥इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाःसहमाधवाः।अनुमान्य महात्मानं प्रययुर्हृष्टमानसाः॥१०७॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसा-
हारोत्तरमन्त्रे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

भी वह यदि आततायी बनकर अपनेको मारनेके लिये आता हो तो उसको मार ही डाले ॥१०१॥ हे धनञ्जय ! क्षत्रियोंका यह सदाका धर्म चला आता है कि—वह युद्ध करें प्रजाकी रक्षा करें और असूयाको त्यागकर यज्ञ करें॥१०२॥अर्जुनने कहा, कि-हे कृष्ण ! निःसन्देह शिखण्डी भीष्मके मरणका कारण होगा, क्योंकि-भीष्म सदा इस पंचालराजके पुत्रको देखते ही पीछेको हट जाते हैं ॥१०३ इसलिये हम इस शिखण्डीको अपने आगे करके उनके सामने जायँ तो इस उपायसे उनको मार डालेंगे यह मेरी मति है ॥१०४॥ मैं बाण छोड़कर अन्य बड़े २ धनुष धारियों को रोके रहूंगा, और शिखण्डी महायोधा भीष्मके ही साथ युद्ध करेगा ॥१०५॥ कुरुवर भीष्मको अपने मुखसे यह बात कहते सुना है कि—शिखण्डी पहिले कन्या था और पीछे पुरुष होगया है, इस कारण मैं इसको नहीं मारूंगा ॥१०६॥ कृष्ण सहित पाण्डव ऐसा निश्चय करके और महात्मासे आज्ञा लेकर बड़े आनन्दित होते हुए अपने शिविरमें चले गये और पलँग पर जाकर पौढ़ रहे॥१०७॥एक सौ सातवां अध्याय समाप्त॥१०७॥

धृतराष्ट्र उवाच । कथं शिखण्डी गांगेयमभ्यवर्त्तत संयुगे पाण्डवांश्च कथं भीष्मस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । ततस्ते पांडवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति। ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥२॥ ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः । शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पांडवा युधि ॥ ३ ॥ कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिवर्हणम्। शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद्विशाम्पते ॥४॥ चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनञ्जयौ । पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान्॥ सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः । धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात् पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ६ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः । प्रययौ सिंहनादेन नादयन् भरतर्षभ ७ विराटस्तु ततः पश्चात् स्वेन सैन्येन संवृतः । द्रुपदश्च महाबाहो ततः

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे सञ्जय ! शिखण्डीने गङ्गानन्दनके सामने आकर क्या२ किया तथा भीष्मने पाण्डवोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया यह मुझे बता ॥१॥ सञ्जय कहता है, कि—जब प्रातःकाल होनेको आया उस समय भेरी मृदङ्ग और नगाड़ों के शब्द होने लगे, चारों ओर दहीकी समान उज्वल शङ्खके शब्द ध्यान करते हुए दीखने लगे, तब वह सब पाण्डव उठे और शिखण्डीको आगे करके युद्धके लिये चल पड़े ॥ २ ॥ ३॥ हे महाराज ! तदनन्तर सब शत्रुओंका नाश करने वाला व्यूह बनाकर हे राजन् ! शिखण्डी सब सेनाओंके आगे आकर खड़ा होगया ॥ ४ ॥ भीमसेन और धनञ्जय उसके रथके पहियोंकी रक्षा करते हुए दोनों ओर खड़े होगये और उसकी पीठकी रक्षा करनेके लिये द्रौपदीके पांचों पुत्र तथा सुभद्रानन्दन अभिमन्यु खड़े होगये ॥ ५ ॥ महारथी सात्यकी और राजा चेकितान उन की पीछेसे रक्षा करनेको आये और पाञ्चालोंसे रक्षित धृष्टद्युम्न उनके पीछे आकर खड़ा हुआ ॥६॥ हे भरतसत्तम ! फिर नकुल और सहदेवसे रक्षित राजा युधिष्टिर सिंहकी समान नादसे रणको गुंजारते हुए आगेको चले ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! अपनी सेना

पश्चादुपाद्रवत् ॥ ८ ॥ केकया भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् । जघनं पालयामासुः पाण्डुसैन्यस्य भारत ॥ ९ ॥ एवं व्यूह्य महासैन्यं पाण्डवास्तत्र वाहिनीम् । अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १० ॥ तथैव कुरवो राजन् भीष्मं कृत्वा महारथम् । अग्रतः सर्वसैन्यानां मण्युः पाण्डवान् प्रति ॥ ११ ॥ पुत्रैस्तव दुराधर्षो रक्षितः सुमहाबलैः । ततो द्रौणो महेष्वासः पुत्रश्चास्य महाबलः ॥ १२ ॥ भगदत्तस्ततः पश्चाद्‌ गजानीकेन संवृतः । कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ ॥ १३ ॥ काम्बोजराजो बलवांस्ततः पश्चात् सुदक्षिणः । मागधश्च जयत्सेनः सौबलश्च बृहद्बलः ॥१४॥ तथैवान्ये महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः । जघनं पालयामासुस्तव सैन्यस्य भारत ॥ १५ ॥ दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः

सहित राजा विराट चला और उसके पीछे राजा द्रुपद चलने लगा ॥ ८ ॥ हे भारत ! पांचों केकय भाई और वीर्यवान् धृष्टकेतु पाण्डवोंकी सेनाके जङ्घा स्थानकी रक्षा करने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार उस महासेनाकी व्यूहरचना कर पाण्डव अपने प्राण तक त्यागनेका निश्चय करके तुम्हारी सेनाके ऊपर टूट पड़े ॥ १० ॥ हे भारत ! इसीप्रकार कौरव भी महारथी भीष्मको अपनी सब सेनाके आगे करके पाण्डवोंके ऊपर चढ़गये ॥ ११ ॥ तुम्हारे महाबली पुत्रोंसे रक्षित दुराधर्ष द्रोण उनके पीछे चले-और उनके पीछे उनका महाबली पुत्र ॥ १२॥ तथा राजा भगदत्त हाथियोंकी बड़ी भारी सेनाको लेकर चला, कृप तथा कृतवर्मा भगदत्तके पीछे२ चलरहे थे, ॥ १३ ॥ उनके पीछे कंबोज देशका राजा, उसके पीछे राजा सुदक्षिण, मगधका राजा जयत्सेन सुबलका पुत्र शकुनि तथा बृहद्बल यह क्रमसे पीछे२ चल पड़े १४ हे भारत इसीप्रकार सुशर्मा आदि बड़े२ धनुषधारी राजे तुम्हारी सेनाके ज ास्थानकी रक्षा कर रहे थे ॥ १५ ॥ और प्रतिदिन शन्तनुनन्दन भीष्मजी कभी आसुरी रीतिसे, कभी पैशाची रीति

शान्तनवो युधि । आसुरानकरोद्व्यूहान् पैशाचानथ राक्षसान् ॥ १६ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तव तेषाञ्च भारत । अन्योऽन्यं निघ्नत राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १७ ॥ अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् । भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधान् शरान् ॥ १८ ॥ तत्र भारत भीमेन ताडितास्तावकाः शरैः । रुधिरौघ-परिक्लिन्नाः परलोकं ययुस्तदा ॥ १९ ॥ नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः । तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा॥२० ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ । नाशक्नुवन् वारयितुं पाण्डवानां महद्बलम् ॥ २१ ॥ ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः । सुसम्भग्नं दश दिशः काल्यमानं महारथैः ॥ २२ ॥ त्रातारं नाध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ । वध्यमानाः शितैर्बाणैः पांडवैः सह सृञ्जयैः ॥ २३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । पीड्यमानं बलं

से और कभी राक्षसी रीतिसे व्यूह रचा करते थे ॥ १६ ॥ हे भारत ! तदनन्तर दोनों पक्षका नाश करके यमराजके राज्यकी वृद्धि करने वाला तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाके युद्धका आरंभ होगया ॥ १७ ॥ अर्जुन आदि कुन्तीके पुत्र शिखंडीको आगे करके अनेकों बाणोंकी वर्षा करते हुए भीष्मजीके साथ युद्ध करने में फैलपड़े ॥ १८ ॥ हे भारत ! इस युद्धमें भीमसेनके हाथसे घायल हुए तुम्हारी सेनाके योधा उस समय रुधिरके प्रवाहमें स्नान करके परलोकको पधारने लगे ॥ १९ ॥ नकुल सहदेव और महारथी सात्यकी आदि योधा सामने आकर तुम्हारी सेना को पीड़ा देने लगे ॥२०॥ हे भारत ! इसप्रकार मारे जाते हुए तुम्हारी सेनाके योधा पांडवोंकी बड़ीभारी सेनाके सामने टक्कर झलनेको असमर्थ होगये ॥ २१ ॥ और थोड़ी ही देरमें पांडवोंके महाबली योधाओंके हाथसे चारों ओरसे मारखाती हुई तुम्हारी सेना दशों दिशाओंमेंको भागने लगी ॥ २२ ॥ हे भरतसत्तम ! जब सृञ्जय और पांडव तुम्हारी सेनाको तीखे बाणोंसे माररहे थे उस समय उनको कोई रक्षा करने वाला नहीं मिला था २३

दृष्ट्वा पार्थैर्भीष्मः पराक्रमी । यदकार्षीद्रणे क्रुद्धस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २४ ॥ कथं वा पाण्डवान् युद्धे प्रत्युद्यातः परन्तपः । विनिघ्नन् सोमकान् वीरस्तदाचक्ष्व ममानघ॥२५॥सञ्जय उवाच । आचक्षे ते महाराज यदकार्षीत् पिता तव । पीडिते तव पुत्रस्य सैन्ये पाण्डवसृञ्जयैः ॥ २६ ॥ प्रहृष्टमनसः शूराः पाण्डवाः पांडुपूर्वज । अभ्यवर्त्तन्त निघ्नन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २७ ॥ तं विनाशं मनुष्येन्द्र नरवारणवाजिनाम् । नामृष्यत तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः ॥ २८ ॥ स पाण्डवान् महेष्वासः पञ्चालांश्चैव सृञ्जयान् । नाराचैर्वत्सदन्तैश्च शितैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २९ ॥ अभ्यवर्षत दुर्धर्षस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः । स पाण्डवानां प्रवरान् पञ्च राजन् महारथान् ॥ ३० ॥ आत्तशस्त्रो रणे यत्नाद्वारयामास

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे सञ्जय ! जब पांडव मेरी सेनाको पीड़ा देने लगे तब पराक्रमी भीष्मने क्रोधमें भर कर जो कुछ किया हो वह मुझे सुना ॥२४॥ तथा हे निर्दोष सञ्जय ! शत्रुतापी भीष्म पांडवोंके सामने युद्ध करते समय किस प्रकार सोमकोंका संहार करने लगे थे, यह भी मुझे सुना ॥२५॥ सञ्जयने उत्तर दिया कि—हे महाराज ! जब पांडव और सृञ्जय तुम्हारी सेनाको बड़ी भारी पीड़ा देने लगे तब तुम्हारे पिताने जो कुछ किया था वह मैं तुमसे कहता हूं ॥२६॥ हे पाण्डुके बड़े भाई ! अत्यन्त प्रसन्न मनवाले पांडव चारों ओरसे तुम्हारी सेनाका संहार करते हुए चढ़ आये ॥ २७ ॥ हे नरेन्द्र ! उस समय जो शत्रु मनुष्य, हाथी और घोड़ोंका नाश किये डालते थे तथा सेनाका संहार करने पर फैलपड़े थे, यह भीष्मजीसे देखा नहीं गया ॥ २८ ॥ वह अपने प्राणोंका मोह छोड़कर पांडव, पाञ्चाल और सृञ्जयोंके ऊपर वछड़ेके दांत और अञ्जलिके आकारके बाणोंकी वर्षा करने लगे भीष्मने हाथमें शस्त्र लेकर पांडवोंके पांच महारथी योधाओंको

सायकैः । नानाशस्त्रास्त्रवर्षैस्तान् वीर्यामर्षप्रवेरितैः ॥ ३१ ॥ निजघ्ने समरे क्रुद्धो हस्त्यश्वं चामितं बहु । रथिनोऽपातयद्राजन् रथेभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ३२ ॥ सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यः पादातांश्च समागतान् ॥ ३३ ॥ गजारोहान् गजेभ्यश्च परेषां जयकारिणः । तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम् ॥ ३४ ॥ पांडवाः समवर्त्तन्त वज्रहस्तमिवासुराः। शक्राशनिसमस्पर्शान् विमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ॥ ३५ ॥ दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं संधारयन् वपुः । मण्डलीभूतमेवास्य नित्यं धनुरदृश्यत ॥ ३६ ॥ संग्रामे युध्यमानस्य शक्रचापोपमं महत् । तद्दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ ३७ ॥ विस्मयं परमं गत्वा पितामहमपूजयन् । पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव ॥ ३८ ॥ युध्यमानं रणे शूरं विप्र-

बाणोंसे तथा बल और क्रोधके साथ फेंके हुए दूसरे अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे और अस्त्रोंसे आगे बढ़नेसे रोक दिया २९-३१ हे पुरुषसत्तम ! क्रोधमें भरेहुए भीष्मजीने हजारों हाथी और घोड़ोंका संहार कर डाला तथा हे राजन् ! कितने ही रथियोंको रथों परसे नीचे गिरादिया ॥ ३२ ॥ शत्रुओंको विजय दिलाने वाले कितने ही सवारोंको घोड़ा परसे गिरादिया, इकट्ठे हुए पैदलोंको रणभूमिमें लिटा दिया, हाथीसवारोंको हाथियों परसे गिरा दिया, उस समय जैसे इन्द्रके साथ असुर युद्ध करते हों तिसी प्रकार बड़े वेगके साथ युद्ध करते हुए अकेले भीष्मजीके साथ पाण्डव युद्ध करनेको फैल पड़े और इन्द्रके वज्रकी समान तीखे बाणोंका प्रहार करते हुए भीष्म सब दिशाओंमें भयङ्कररूपसे दीखने लगे, युद्ध करते समय भीष्मजीका इन्द्रधनुषकी समान बड़ाभारी धनुष निरन्तर खिचा हुआ ही दीखता था, हे राजन् ! संग्राममें भीष्मजीके ऐसे पराक्रमको देखकर तुम्हारे पुत्र बड़े अचम्भेमें होकर उनकी प्रशंसा करने लगे, जैसे पहिले निराश हुए देवता रणमें शूर विप्रचित्ति दैत्यकी ओरको देखते

चिच्छिमिवामराः । न चैनं शक्नुवन्त्याजौ व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ३९ ॥ दशमेऽहनि संप्राप्ते रथानीकं शिखंडिनः । अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ ४० ॥ तं शिखंडी त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे । आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवान्तकम् ॥ ४१ ॥ स तेनातिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखंडिनम् । अनिच्छन्निव संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४२॥ काममभ्यस वा मा वा न त्वां योत्स्ये कथञ्चन । यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव हि त्वं शिखंडिनी ॥ ४३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिखंडी क्रोधमूर्च्छितः । उवाचैनं तदा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ४४ ॥ जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां भयङ्करम् । मया श्रुतञ्च ते युद्धं जामदग्न्येन वै

रहगये थे तैसे ही उत्साहहीन मनवाले पाण्डव तुम्हारे पिताके मुखकी ओरको देखने लगे, खुलेहुए मुखवाले कालकी समान भीष्मजीको पाण्डवोंमेंका कोई भी नहीं हटा सका ॥ ३२-३९ ॥ युद्धके दशवें दिन जैसे अग्नि वनको जलाकर भस्म करता है,तैसे ही भीष्मने बाणोंकी वर्षासे शिखण्डीके सेनादलका कचरधांस कर डाला ॥ ४०॥ फिर शिखंडीने कोपमें भरे हुए सांपकी समान तथा महाकालके भेजे हुए कालकी समान भीष्मकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ ४१ ॥ इन बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर भीष्मजी कोपमें भरगये, परन्तु उसके साथ लडनेकी इच्छा न होने से शिखंडीको सामने देखते हुए जराएक हँसकर कहने लगे,कि— तेरी इच्छामें आवे तैसे तू मेरे ऊपर प्रहार कर चाहे न कर,परन्तु मैं तेरे साथ युद्ध नहीं करूंगा, विधाताने तुझे जिस स्त्रीरूपमें रचा था उसी शरीरमें अभीतक तू शिखण्डिनी ही है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ भीष्मजीकी इस बातको सुनकर शिखंडी बड़े क्रोधमें भरगया और दांतोंको पीसता हुआ उनसे इसप्रकार कहने लगा, कि— ॥ ४४ ॥ हे महाबाहो ! क्षत्रियों का नाश करने वाले आपको मैं भले प्रकार पहचानता हूं, परशुरामके साथ तुम्हारा जो युद्ध

सह ॥ ४५ ॥ दिव्यश्च ते प्रभावोयं मया च बहुशः श्रुतः । जान न्नपि प्रभावन्ते योत्स्येऽद्याहं त्वया सह ॥ ४६ ॥ पांडवानां प्रि कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम । अद्य त्वां योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्त ॥ ४७ ॥ ध्रुवश्च त्वां हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः । एतच्छ्रुत्व च मद्वाक्यं यत् कृत्यं तत् समाचर ॥ ४८ ॥ काममभ्यस वा म वा न मे जीवन् प्रमोच्यसे। सुदृष्टः क्रियतां भीष्म लोकोयं समिि ञ्जय ॥ ४९ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्च भिर्नतपर्वभिः । अविध्यत रणे भीष्मं प्रद्युन्नं वाक्यसायकैः ५० तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः। कालोऽयमिति सञ्चिन्त शिखंडिनमचोदयत् ॥ ५१ ॥ अहं त्वामनुयोत्स्यामि परा

हुआ था उसको मैंने सुना है और तुम्हारे इस दिव्य प्रभावको मैं भले प्रकार जानता हूं तो भी मैं आज तुम्हारे साथ युद्ध करना चाहता हूं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे पुरुषोंमे श्रेष्ठ ! पांडवोंका प्रिय करनेको तथा अपने आपेको सार्थक करनेके लिये आज मैं रणभूमिमें तुम्हारे साथ युद्ध करूंगा और सत्यकी सौगन्ध खाकर तुम्हारे सामने कहता हूं कि-आज मैं तुम्हे मार डालूंगा,मेरी इस प्रतिज्ञाको सुनकर तुम्हे जो कुछ करना हो सो करो ॥ ४७-४८ ॥ आपका जी चाहे तो मेरे ऊपर प्रहार करो और न चाहे तो न करो परन्तु आज तुम मेरे सामने से जीते बचकर नहीं जा सकते, हे संग्रामको जीतने वाले भीष्म ! इसलिये अब तुम आज इस लोकका अन्तिम दर्शन कर लो ॥ ४९ ॥ सञ्जयने कहा, कि—इसप्रकार वाणीरूप वज्रसे बींधकर शिखण्डीने भीष्मजीके पांच बाण मारे ॥ ५० ॥ उसकी इस बातको सुनकर महारथी सव्यसाची अर्जुन ने यह अवसर आगया, ऐसा विचार कर शिखंडीसे कहा, कि- शत्रुके दूसरे योधाओंका संहार करता २ मैं तेरे पीछे २ जाऊँगा, इसलिये तू कोपमें भरकर भयानक पराक्रमवाले भीष्मजीके ऊपर

विद्रावयन् शरैः। अभिद्रवत्सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥५२॥ न हि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्त्तुं महाबलः। तस्मादद्य महाबाहो यत्तो भीष्ममभिद्रव॥ ५३॥ अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष। अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह॥ ५४॥ नावाहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे। तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम्॥ ५५॥ अहन्ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल। वारयन् रथिनः सर्वान् साधयस्व पितामहम्॥ ५६॥ द्रोणञ्च द्रोणपुत्रञ्च कृपश्चाथ सुयोधनम्। चित्रसेनं विकर्णञ्च सैन्धवञ्च जयद्रथम्॥५७॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजञ्च सुदक्षिणम्। भगदत्तं तथा शूरं मागधञ्च महाबलम्॥ ५८॥ सौमदत्तिं तथा शूरमार्ष्यशृङ्गिञ्च राक्षसम्। त्रिगर्त्तराजञ्च रणे सह सर्वैर्महारथैः॥ ५९॥ अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम्। कुरूंश्च सहि-

को भगा कर॥ ५१॥ ५२॥ महाबली इन्द्र तक भी आज तुझे रणमें पीड़ा नहीं देसकता, इसलिये हे महाबाहु! तू आज यत्न करके भीष्मके साथ युद्ध कर॥ ५३॥ हे राजन्! यदि आज भीष्मको मारे विना रणमेंसे लौट कर आये तो लोग मेरी और तुम्हारी हँसी करेंगे॥ ५४॥ इस लिये हे वीर! जिसमें जरा भी हँसी न हो ऐसा करके आज यत्नके साथ पितामहको रणभूमिमें घेरलो॥ ५५॥ हे महाबली! मैं दूसरे रथियोंको रोके हुए रणमें तुम्हारी रक्षा करूंगा, तुम बस पितामहके साथ युद्ध करो॥ ५६॥ मैं सकल महारथीों सहित द्रोण, द्रोणके पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुर्योधन, चित्रसेन, विकर्ण, सिंधुराज जयद्रथ, अवन्तीके विन्द अनुविन्द, कंबोजराज सुदक्षिण, शूर भगदत्त महाबली मगधराज, शूर सोमदत्तका पुत्र, राक्षस ऋष्यशृङ्गीका पुत्र, और त्रिगर्त्तराज इन सबोंको रोके रहूंगा॥ ५७-५९॥ और इकट्ठे होकर युद्ध करने वाले सब महाबली कौरवोंको भी ऐसे रोके रहूंगा जैसे किनारा

तान् सर्वान् युध्यमानान् महाबलान् । निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहम् ॥ ६० ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दशमदिवस युद्धारम्भे भीष्मशिखंडिसमागमेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः १०८

धृतराष्ट्र उवाच । कथं शिखंडी गाङ्गेयमभ्यधावत पितामहम् । पांचाल्यः समरे योद्धुं धर्मात्मानं यतव्रतम् ॥ १ ॥ केऽरक्षन् पांडवानीके शिखंडिनमुदायुधाः । त्वरमाणास्त्वराकाले जिगीषन्तो महारथाः ॥ २ ॥ कथं शान्तनवो भीष्मः स तस्मिन् दशमेऽहनि । अयुध्यत महावीर्यः पांडवैः सह सृञ्जयैः ॥ ३ ॥ न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखंडिनम् । कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः ॥ ४ ॥ सञ्जय उवाच । नाशीर्यत धनुश्चास्य रथभङ्गो न चाप्यभूत् । युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ ५ ॥ निघ्नतः समरे शत्रून् शरैः सन्नतपर्वभिः ।

समुद्रको रोके रहता है, तू केवल पितामहको मारनेके लिये घेरले ॥ ६० ॥ एकसौ आठवां अध्याय समाप्त ॥१०८॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—क्रोधमें भराहुआ पञ्चालनन्दन शिखंडी व्रतका पालन करनेवाले गङ्गानन्दन धर्मात्मा पितामहके ऊपर कैसे चढ़कर आया था ॥ १ ॥ उस शीघ्रताके समयमें पाण्डवोंके सेनादलमें विजयकी इच्छावाले किन२ महारथियोंने हथियार उठाकर शिखण्डीकी रक्षा की थी ? ॥ २ ॥ उन बड़े बलवान् पितामहने दशमें दिन सृञ्जयों सहित पाण्डवोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया था ? ॥ ३ ॥ शिखण्डी पितामहके ऊपर चढ़कर गया यह मुझसे सहा नहीं जाता, उस रणमें पितामहका रथ तो नहीं टूटा था और बाण छोड़तेमें धनुषके तो टुकड़े तो नहीं हुए थे ॥४ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे भरतर्षभ ! उस रणमें लड़ते समय पितामहका रथ या धनुष कुछ भी नहीं टूटा था ॥ ५ ॥ पितामहने दृढ़ गांठों वाले अनेकों बाणोंसे युद्धमें हजारों शत्रुओंका संहार

अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ॥ ६ ॥ तथा दन्तिगणा राजन् हयाश्चैव सुसज्जिताः । अभ्यवर्तन्त युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ॥ ७ ॥ यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चापि समितिञ्जयः । पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ८ ॥ युध्यमानं महेष्वासं विनिघ्नन्तं परान् शरैः । पाञ्चालाः पाण्डवैः सार्द्धं सर्वे ते नाभ्यवारयन् ॥ ६ ॥ दशमेऽहनि सम्प्राप्ते ततरतां रिपुवाहिनीम् । कीर्य्यमाणां शितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥ न हि भीष्मं महेष्वासं पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज । अशक्नुवन् रणे जेतुं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ ११ ॥ अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनञ्जयः । त्रासयन् रथिनः सर्वान् बीभत्सुरपराजितः ॥ १२ ॥ सिंहवद्विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन्मुहुः । शरौघान् विसृजन पार्थो व्यचरत्

करडाला था, तब तुम्हारे पक्षके हजारों महारथी हाथियोंको तथा सजेहुए घोड़ोंको लेकर पितामहको आगे किये हुए युद्ध करनेके लिये चढ़गये थे॥६॥७॥ हे कौरववंशके राजन् ! उस समय अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार विजय पानेवाले पितामहने पांडवोंके सेनादलको तदा ऊपर नाश करना आरम्भ करदिया था॥८॥हाथमें वड़ाधनुष लेकर युद्ध करनेवाले तथा बाणोंसे शत्रुओंका संहार करते हुए पितामहके सामने पाण्डव तथा पाञ्चाल टक्कर न लेसके और उनको रोक भी न सके ॥९॥ हे पांडुके बड़े भाई ! दशवें दिनका आरम्भ होनेपर पितामहने उस शत्रुसेनाको सैंकड़ों और सहस्रों तेज बाण छोड़कर तितर बितर करदिया था॥१०॥और हे पांडुके वड़े भ्राता ! हाथमें पाश लेकर लड़ते हुए कालके समान, वड़ा धनुष लेकर लड़ते हुए भीष्मको रणमें पांडव जीत न सके ११ परन्तु हे राजन् ! इतनेमें ही किसीसे न हारनेवाला सव्यसाची धनञ्जय सब रथियोंको त्रास देता हुआ आगे आपहुंचा ॥१२॥ सिंहके समान वड़े जोरसे गरजता हुआ और धनुषके रोदे पर टङ्कार देताहुआ धनञ्जय बाणोंको बरसाता२ रणमें कालके

कालचक्रगो ॥ १३ ॥ तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ । सिंहस्येव मृगा राजन् व्यद्रवन्त महाभयात् ॥ १४ ॥ जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा त्वत्सैन्यश्चाभिपीडितम् । दुर्योधनस्ततो भीष्ममब्रवीद् भयपीडितः ॥ १५ ॥ एष पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः । दहते मामकान् सर्वान् कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ १६ ॥ पश्य सैन्यानि गांगेय द्रवमाणानि सर्वशः । पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे ॥ १७ ॥ यथा पशुगणान् पालः सङ्कालयति कानने । तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥ १८ ॥ धनञ्जयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः । भीमोऽप्येवं दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम् ॥ १९ ॥ सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पांडवौ अभिमन्युः सुविक्रांतो वाहिनीं द्रवते मम ॥ २० ॥ धृष्टद्युम्नस्तथ

समान घूमने लगा ॥१३॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उस समय जैसे सिंहको देखकर हिरन भागने लगते हैं तैसे ही अर्जुनकी ललकारको सुनकर तुम्हारे योधा अति भय मानकर भाग लगे ॥ १४ ॥ जब दुर्योधनने यह देखा, कि—धनञ्जय जीत रहा है और तुम्हारी सेना भागरही है, तब तो वह बड़ा दुःखित होकर पितामहसे कहने लगा, कि—॥ १५ ॥ हे तात ! जिसके सफेद घोड़े और कृष्ण सारथी हैं ऐसा यह पांडुकुमार मेरे योधाओंको इसप्रकार नाश करे डालता है जैसे अग्नि वनको भस्म कररहा हो ॥ १६ ॥ हे युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ गङ्गानन्दन ! रणमें पांडुके पुत्रसे हारे हुए हमारे योधा देखो चारों ओरको भागे जाते हैं ॥ १७ ॥ हे शत्रुतापन ! जैसे ग्वालिया वनमें अपने पशुओंको हांककर भगाता है तैसे ही यह धनञ्जय मेरे सेनादलको भगारहा है ॥ १८ ॥ मेरा सेनादल धनञ्जयके बाणोंसे बेहाल होकर इधर उधरको भाग ही रहा था, तिसपर यह ढीठ भीमसेन मेरे सेनादलको और भी खदेड़ रहा है ॥ १९ ॥ सात्यकी चेकितान, माद्रीके पुत्र नकुल सहदेव और परम पराक्रमवाला अभिमन्यु ये सब भी मेरे सेनादलमें भागड़ डालरहे हैं ॥ २० ॥ तथा

शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः । व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे ॥ २१ ॥ वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महारथैः । नान्यास्त्रातारमपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत ॥ २२ ॥ ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रमम् । पर्याप्तस्तु भवान् शीघ्रं पीडितानां गतिर्भव ॥ २३ ॥ एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव । चिन्तयित्वा मुहूर्त्तन्तु कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥ २४ ॥ तव सन्धारयन् पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः । दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशाम्पते ॥ २५ ॥ पूर्वकालं तव मया प्रतिज्ञातं महाबल । हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥ संग्रामाद् व्यपयातव्यमेतत् कर्म ममाह्निकम् । इति तत् कृतवांश्चाहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥ २७ ॥ अद्य चापि महत् कर्म प्रकरिष्ये महाबल । अहं

शूर धृष्टद्युम्न, राक्षस घटोत्कच ये दोनों इस महारणमें एकसाथ मेरे सेनादलको हैरान कररहे हैं ॥२१॥ हे भारत ! इस स्थानके युद्धमें इन सब महारथियोंसे मारखाते हुए मेरे सेनादलकी आप के सिवाय और कोई रक्षा नहीं करसकता ॥ २२ ॥ हे महाराज ! देवताओंके तुल्य पराक्रम वाले आपके सिवाय और कौन रक्षा करसकता है ? आप ही समर्थ हैं, इसलिये आप शीघ्र जाकर पीडितोंकी रक्षा करिये ॥ २३ ॥ हे महाराज ! दुर्योधनके ऐसा कहने पर तुम्हारे पिता शन्तनुनन्दन देवव्रत जरा देर विचार कर और अपने मनमें कुछ निश्चय करके तुम्हारे पुत्रको धीरज देते हुए इसप्रकार कहने लगे, कि—हे राजा दुर्योधन ! मैं जो कुछ कहता हूं उसको शान्त होकर सुन ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे भरत सत्तम ! महाबलवाले मैंने पहिले तुमसे प्रतिज्ञा की थी, कि—दश हजार महाबल क्षत्रियोंको मारकर रणमेंसे लौटा करूँगा यह मेरा प्रतिदिनका काम होगा, सो ऐसा ही मैंने किया है २६ ॥ २७ ॥ हे महाबल ! आज भी मैं ऐसा ही महापराक्रम करूँगा आज या तो मैं मारा जाकर रणभूमि सोऊँगा अथवा आज

वाद्य हतः श्रोष्ये इनिष्ये वाद्य पाण्डवान् ॥ २८ ॥ अद्य ते पुरुष व्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणन्तव । भर्तृपिण्डकृतं राजन् निहतः पृतना मुखे ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान् प्रवपञ्छरैः । आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ३० ॥ अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गांगेयं भरतर्षभ । आशीविषमिव क्रुद्धं पांडवाः प्रत्यवारयन ॥ ३१ ॥ दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयन् शक्तिमात्मनः । राजन शतसहस्राणि सोऽवधीत् कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥ पञ्चालानाञ्च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः । तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य्य इवांशुभिः ॥ ३३ ॥ हत्वा दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् । सारोहाणां महाराज हयानाञ्चायुतन्तथा ॥ ३४ ॥ पूर्णे शतसहस्रे द्वे पादातानां नरोत्तम । प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ३५ ॥ न चैव पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम् । उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३६ ॥ ते पाण्डवेयाः

पांडवोंको मार डालूँगा ॥ २८ ॥ हे पुरुषसिंह राजन ! मैंने जो तेरा अन्न खाया है आज उसका बदला चुकाऊँगा, सेनाके मुहानेपर मारा जाकर तेरे ऋणसे मुक्त होऊंगा, ॥२९॥ हे भरत सत्तम ! दुराधर्ष पितामह ऐसा कहकर क्षत्रियोंके ऊपर बाणोंको बरसाते हुए पांडवोंके सेनादलके सामने आपहुंचे ॥ ३० ॥ हे भारत ! तब क्रोधमें भरे हुए सांपकी समान सेनादलमें खड़ेहुए गङ्गानन्दनको पांडव रोकने लगे ॥ ३१ ॥ हे कुरुनन्दन, राजन् ! दशवें दिन भीष्मने अपना बल दिखार दश हजार योधाओंको मारडाला ॥ ३२ ॥ और जैसे सूर्य जलको सोखलेता है तैसे ही पितामहने पांचालोंमेंके चुनेरमहारथी राजपुत्रोंके तेजको हरलिया ॥ ३३ ॥ वेगमें भरे हुए दश हजार हाथियोंका, सवारों सहित दशहजार घोड़ोंका और बीस हजार पैदलोंका भीष्मने बलतेहुए अग्निके समान नाश करडाला ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उत्तर मार्गमें आकर तपते हुए सूर्यके समान पितामहके सामनेको पांडवोंमेंका कोई देख भी नहीं सका ॥ ३६ ॥ जब बड़े धनुषवाले पितामह

संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः । वधायाभ्यद्रवन् भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥ ३७ ॥ संयुध्यमानो बहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तथा । अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवावृतः ॥ ३८ ॥ पुत्रास्तु तव गाङ्गेयं समन्तात् पर्य्यवारयन् । महत्या सेनया सार्द्धं ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३९ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दुर्योधनभीष्मसंवादे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

सञ्जय उवाच । अर्जुनस्तु रणे राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् । शिखंडिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् ॥ १ ॥ न चापि भीस्त्वया कार्य्या भीष्मादद्य कथञ्चन । अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् ॥ २ ॥ एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ । अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् सौभद्रश्च महारथः । हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्

के पीड़ा दिये हुए महारथी पांडव तथा सृञ्जय उनके प्राण लेने के लिये आगेको बढ़ आये ॥ ३७ ॥ तब युद्ध करतेमें अनेकों योधाओंसे घिरेहुए भीष्म, मेघमंडलसे घिरे हुए महामेरुके समान शोभा पाने लगे ॥ ३८ ॥ उस समय तुम्हारे पुत्र अपने सब सेनादलको लेकर पितामहके चारों ओर खड़े होगये और फिर युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥ एकसौ नौवां अध्याय समाप्त ॥ १०९ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! पितामहके ऐसे पराक्रम को देखकर अर्जुन शिखंडीसे कहने लगा, कि—भीष्मके ऊपर को दौड़ो दौड़ो ॥ १ ॥ आज तुम पितामहसे जरा भी न डरना, मैं इनको तेज बाण मारकर रथमेंसे नीचे लुढ़कादूँगा ॥ २ ॥ हे भरतसत्तम ! धनञ्जयके ऐसे कथनको सुनकर शिखंडी गङ्गानन्दनके ऊपरको दौड़ा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! धृष्टद्युम्न और महारथी अभिमन्यु भी धनञ्जयका वचन सुनकर प्रसन्न होते हुए पितामहके सामने को दौड़गये ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः । अभ्यद्रवत गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥ ५ ॥ नकुलः सहदेवश्च धर्म्मराजश्च वीर्य्यवान् । तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशाम्पते ॥ ६ ॥ समाद्रवन्त गांगेय श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् । प्रत्युद्यमुस्तावकाश्च समेतांस्तान् महारथान् ॥७॥ यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु । चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ॥८॥ भीष्मप्रेप्सुं रणे यांतं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा । धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ॥ ९ ॥ त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत् । भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गांगेयस्य वधैषिणम् ॥ १० ॥ त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत् । तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान् बहून् ॥ ११ ॥ विकर्णो वारयामास इच्छन् भीष्मस्य जीवितम् । सहदेवं तथा राजन् यान्तं भीष्मरथं प्रति ॥ १२ ॥ वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि । राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं

वृद्ध राजा विराट और द्रुपद तथा कवच पहिरे कुन्तिभोज तुम्हारे पुत्रके सामने पितामहके ऊपर जा चढ़े ॥ ५ ॥ हे राजन् ! नकुल, सहदेव, वीर्यवान् युधिष्ठिर तथा उनके और सब सेनादल भी धनञ्जयके कहनेसे भीष्मके ऊपरको दौड़पड़े ॥ ६ ॥ इन इकट्ठे हुए महारथियोंके सामने आकर तुम्हारे योधा जैसी शक्ति और उत्साहके साथ लडने लगे, उसको मैं कहता हूं, सुनिये, हे महाराज ! चित्रसेन चेकितानके ऊपरको झपटा ॥ ७ ॥ ८ ॥ और हे महाराज ! जैसे शेरका बच्चा बैलके ऊपरको झपटता है तैसे ही शीघ्रतासे रणमें सावधानीके साथ भीष्मके पास पहुंचे हुए धृष्टद्युम्नको कृतवार्मा रोकने लगा, ऐसे ही पितामहका वध करनेको बड़े क्रोधसे झपटते हुए भीमको हे महाराज ! बड़ी शीघ्रतासे भूरिश्रवा रोकने लगा और भीष्मको बचानेकी इच्छासे, अनेकों बाण बरसाते हुए नकुलको विकर्ण ने रोका और हे राजन् ! पितामहके रथके ऊपरको झपटते हुए सहदेवको कोपमें भरे हुए शरद्वत्के पुत्र कृपाचार्यने रोका, क्रूर

महाबलम् ॥ १३ ॥ भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद्बली । सात्यकिं समरे यान्तं तव पुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥ अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति । सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥ १५ ॥ विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ । अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १६ ॥ तथा पांडुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकांक्षिणम् । भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥ १७ ॥ अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखंडिनम् । भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश ॥ १८॥ दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे । अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान् ॥ १९ ॥ भीष्मस्यभिमुखान्यातान् वारयामासुराहवे । धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशंस्तु पुनः पुनः ॥२०॥ अभ्यद्रवन्त संरब्धो भीष्ममेकं महारथः । एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं

कर्म करनेवाले तथा भीष्मका वध करना चाहने वाले भीमके राक्षसपुत्र घटोत्कचको बलवान् दुर्मुखने रोका और संग्राममें आगेको बढ़ते हुए सात्यकीको तुम्हारे पुत्रने अटका लिया ॥६--१४ ॥ हे महाराज ! पितामहके रथको ताक कर दौड़ते हुए अभिमन्युको काम्बोजराज सुदक्षिणने रोकलिया ॥१५॥ हे भारत ! शत्रुओंको मसलने वाले बूढ़े विराट और राजा द्रुपदको कोपमें भरे हुए अश्वत्थामाने रोकलिया ॥ १६ ॥ और पितामहको वधकरना चाहते हुए पाण्डुके बड़े पुत्र धर्मराजको द्रोणाचार्यने रोक लिया ॥१७॥शिखण्डीको आगे करके शीघ्रताके साथ पितामहके ऊपरको झपटते तथा दशों दिशाओंमें उजाला करते हुए धनञ्जयको बड़े धनुषवाले दुःशासनने रोका और पितामहके ऊपरको झपट कर आते हुए पांडवोंके दूसरे योधाओंको तुम्हारे और २ योधाओं ने आकर रणमें रोकलिया, केवल कोपमें भराहुआ अकेला धृष्टद्युम्न महारथी पितामहके सामने आ सेनाओंको पुकार२ कर वार२ कहने लगा, कि-यह कुरुनन्दन धनञ्जय भीष्मजीके ऊपर

प्रयाति कुरुनन्दनः ॥ २१ ॥ अभ्यधावत मा भैष्ट भीष्मो हि प्राप्स्यते न वः । अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः॥२२॥ किंतु भीष्मो रणे वीरा गतसत्वोऽल्पजीवितः । इति सेनापतेः श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ २३ ॥ अभ्यद्रवन्त संहृष्टा गाङ्गेयस्य रथम्प्रति । आगच्छमानान् समरे वार्योघान् मकरानिव ॥ २४ ॥ अवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः । दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः ॥ २५ ॥ भीष्मस्य जीवितकांक्षी धनञ्जयमुपाद्रवत् । तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथम्प्रति ॥ २६ ॥ अभ्यद्रवन्त संग्रामे तव पुत्रान् महारथाः । तत्राद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशाम्पते ॥ २७ ॥ दुःशासनरथं प्राप्य यत् पार्थो नात्यवर्त्तत । यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम् ॥ २८ ॥

आपहुंचा है ॥ १८ ॥ २१ ॥ इसलिये तुम भी आगेको बढ़ो, जरा भय न करो, भीष्म तुम्हारे सामने नहीं टिक सकेंगे, इन्द्र भी धनञ्जयके सामने आकर युद्ध नहीं करसकता, इन सत्त्वहीन और अल्पजीवन वाले भीष्मकी क्या शक्ति है जो इसके सामने टिकसकें, बढ़ो बढ़ो ! अपने सेनापतिकी इस बातको सुनकर पांडवोंके पक्षके महारथी योधा ॥ २२ ॥ २३ ॥ बड़े प्रसन्न होते हुए भीष्मके रथके ऊपरको झपटपड़े, मकरयुक्त जल की तरङ्गोंकी समान झपटकर आते हुए इन योधाओंको तुम्हारे सैनिक आगे बढ़कर रोक रहे थे, हे महाराज ! पितामहके जीवन की रक्षा करनेके लिये दुःशासन भयको त्यागकर धनञ्जयके सामने आया तब पाण्डवोंके महारथी योधा भी पितामहके रथ के आगे खड़े हुए तुम्हारे पुत्रोंके ऊपर चढ़ आये, हे राजन् ! उस समय वहां हमने यह अचरज देखा, कि—॥ २४–२७ ॥ दुःशासनके रथके पास पहुंच कर अर्जुनसे आगेको बढ़ा ही नहीं गया और जैसे खलभलाये हुए महासागरके जलको किनारा रोके रहता है तैसे ही तुम्हारा पुत्र कोपमें भरेहुए अर्जुनको रोके

तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत् । उभौ तौ रथिनः श्रेष्ठा-वुभौ भारत दुर्जयौ ॥ २९ ॥ उभौ चन्द्रार्कसदृशौ कान्त्या दीप्त्या च भारत । तथा तौ जातसंरम्भावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ ३० ॥ समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा । दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ३१ ॥ वासुदेवञ्च विंशत्या ताडयामास संयुगे । ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम् ॥ ३२ ॥ दुःशासनं शतेनाजौ नाराचानां समार्पयत् । ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ ३३ ॥ दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पत्रिभिः । ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३४ ॥ ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः शुशुभे पाण्डवो रणे । यथा मेरुर्महाराज शृङ्गैरत्यन्तमुच्छ्रितैः ॥ ३५ ॥ सोतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना । व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ॥ ३६ ॥ दुःशासन-

---

रहा, रथियोंमें श्रेष्ठ, किसीसे जीते न जानेवाले चन्द्रमा और सूर्यकी समान दमकती हुई कान्तिवाले, अतिक्रोधके आवेशमें भरे तथा परस्परका वध करनेको तयार हुए ॥ २८—३० ॥ ये दोनों योधा मय दानव और इन्द्रकी समान रणमें लड़ने लगे हे महाराज ! दुःशासनने पाण्डुपुत्रके पांच तथा कृष्णके वीस बाण मारे, कृष्णको बाण लगनेसे पीड़ा पाते देखकर कोपमे भरेहुए धनञ्जयने दुःशासनके सौ बाण मारे, इस कारण उसका कवच टूटगया और बाण शरीरमें घुसकर उसका रुधिर पीनेलगे ॥ ३१-३३ ॥ उस समय कोपमें भरे दुःशासनने पांच बाण मारे और फिर हे भरतसत्तम ! तीन बाण अर्जुनके कपालमें मारे, कपालमें लगेहुए उन बाणोंसे धनञ्जय ऊँचे शिखरोंवाले मेरुकी समान शोभा पाने लगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और तुम्हारे पुत्रका घायल किया हुआ अर्जुन रुधिर निकलने के कारण फूलोंसे लदा ढाक का वृक्षसा मालूम होनेलगा ॥ ३६ ॥ परन्तु जैसे

ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः । पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुः पूर्णं निशाकरम् ॥ ३७ ॥ पीड्यमानो बलवता पुत्रस्तव विशाम्पते । विव्याध समरे पार्थं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ ३८ ॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा रथञ्चास्य त्रिभिः शरैः । आजघान ततः पश्चात् पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥ ३९ ॥ सोन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः । अर्जुनं पंचविंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४० ॥ तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः । अप्रैषीद्विशिखान् घोरान् यमदण्डोपमान् बहून् ॥ ४१ ॥ अप्राप्तानेव तान् बाणान् चिच्छेद तनयस्तव । यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४२ ॥ पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत्तनयस्तव । ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान् सन्धाय कार्मुके ॥ ४३ ॥ प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशि-

पूनोंके दिन राहु चन्द्रमाको पीड़ा देता है तैसे ही कोपमें भरा हुआ धनञ्जय तुम्हारे पुत्रको पीड़ा देने लगा ॥३७॥ तब अर्जुन से पीड़ा पाते हुए तुम्हारे पुत्रने कङ्क पत्तीके परोंवाले तथा सानपर चढाकर धारदार किये हुए बाणोंसे अर्जुनको घायल करडाला, तब अर्जुनने उसके धनुषको काटकर तीन बाणोंसे उसका रथ तोड़डाला और फिर उसके और तीखे बाण मारे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब टूटे हुए धनुषको फेंक दिया और दूसरा धनुष हाथमें लेकर तुम्हारे पुत्र दुःशासनने पितामहके आगे आ कर धनञ्जयकी छातीमें और भुजाओंमें पचीस बाण मारे ४० हे महाराज ! तब शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले पाण्डुपुत्र तुम्हारे पुत्रके ऊपर यमदण्डकी समान प्रबल बाण छोड़ने लगा ॥४१॥ धनञ्जय बड़ा उद्योग करके बाण छोड़ रहा था, परन्तु तुम्हारा पुत्र आकर पहुंचनेसे पहिले ही उनको काट डालता था, यह सबको अचरजसा मालूम होता था ॥ ४२ ॥ जब तुम्हारे पुत्र ने तेज़ बाण मारकर धनञ्जयको घायल करडाला, तब धनञ्जय भी सोनेके परोंवाले और शानपर धरकर तेज किये हुए बाण

तान् । न्यमज्जन्त महाराज तस्य काये महात्मनः ॥ ४४ ॥ यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत । पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ॥ ४५ ॥ हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत् । अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत्तदा ॥ ४६ ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशाम्पते । अवारयत्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥ ४७ ॥ शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रं पुरन्दरः । निर्बिभेद महाकायो विव्यथे नैव चार्जुनः ॥ ४८ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अर्जुनदुःशासन-समागमे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

सञ्जय उवाच । सात्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाभ्युद्यतं रणे । आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥ १ ॥ माधवस्तु सुसंक्रुद्धो

तुम्हारे पुत्रके ऊपर छोड़ने लगा तथा हे भारत! जैसे तालाव में हंस घुसते हैं तैसे ही वह बाण तुम्हारे महात्मा पुत्रके देहमें घुसने लगे ॥ ४३-४५ ॥ इसप्रकार महात्मा पाण्डुपुत्र ने पीड़ित किया तब तुम्हारा पुत्र अर्जुनके साथ युद्ध करना छोड़कर तुरन्त पितामहके रथकी ओरको दौड़गया और जैसे समुद्रमें डूबता हुआ मनुष्य टापूका सहारा पाजाता है तैसे ही उसने पितामहका आश्रय पाया ॥ ४६ ॥ और हे राजन्! चेत होते हीं तुम्हारा पराक्रमी तथा शूर पुत्र फिर धनञ्जयके आगे को बढ़कर उसको रोकने लगा ॥ ४७ ॥ और जैसे वृत्रासुरने इन्द्रके सामने युद्ध किया था तैसे ही वह फिर तेज बाण छोड़ कर धनञ्जयके साथ युद्ध करने लगा, बड़े शरीर वाला तुम्हारा पुत्र धनञ्जयको घायल किये देता था तो भी अर्जुन उससे जरा भी विचलित नहीं होता था ॥ ४८ ॥ एकसौ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—कवचधारी सात्यकीको रणमें पितामह के सामने आते देखकर अलंबुष राक्षसने रोका ॥ १ ॥

राक्षसं नवभिः शरैः । आजघान रणे राजन् प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥ तथैव राक्षसो राजन् माधवं नवभिः शरैः । अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥ शैनेयः शरसंघन्तु प्रेषयामास संयुगे । राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा ॥ ४ ॥ ततो रक्षो महाबाहुः सात्यकिं सत्यविक्रमम् । विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च ॥ ५ ॥ माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा । धार्यमाणश्च तेजस्वी जहास च ननाद च ॥ ६ ॥ भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः । ताडयामास समरे तोत्रैरिव महागजम् ॥ ७ ॥ विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः । प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान् सन्नतपर्वणः ॥ ८ ॥ तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद्धनुः । चिच्छेद शतधारेण

हे भारत! तब क्रोधमें भरेहुए सात्यकीने भी हँसतेर उस राक्षसके नौ बाण मारे, तब राक्षसने भी कोपमें भरकर शिनिवंशमें श्रेष्ठ! उस सात्यकीके नौ बाण मारे ॥ २ ॥ ३ ॥ तब शत्रुके वीरोंका नाश करनेवाले सात्यकीने अति कोपमें भरकर राक्षसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदिया ॥ ४ ॥ और सिंहके समान दहाड़ते हुए उस राक्षसने सत्यपराक्रम वाले महाबाहु सात्यकीके ऊपर बहुतसे तेज बाणोंका प्रहार करना आरम्भ करदिया ॥ ५ ॥ रणमें राक्षसके बाणसे अति घायल होजाने पर भी तेजवान् सात्यकी उन बाणोंको जरा भी न गिन जरा एक हँसकर गरजने लगा ॥ ६ ॥ तब तो जैसे महावत गजराजको अंकुशोंसे घायल करता है तैसे ही भगदत्तने क्रोधमें भर कर सात्यकीके ऊपर तेज बाण मारना आरम्भ करदिये ॥७॥ उसी समय राक्षसके साथ युद्ध करना छोड़कर शिनिवंशके महारथ सात्यकीने प्राग्ज्योतिष देशके राजाके ऊपर दृढ़ गांठवाले बाण छोड़ना आरम्भ करदिया ॥ ८ ॥ प्राग्ज्योतिषराजने भी अपने हाथकी फुरती दिखलाकर भल्ल नामके सैंकड़ों धार धार

मल्लेन कृतहस्तवत् ॥ ९ ॥ अथान्यद्धनुरादाय वेगवत् परवीरहा । भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥ सोतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् । शक्तिं कनकवैदूर्य्यभूषिता-मायसीं दृढाम् ॥ ११ ॥ यमदण्डोपमां घोरां चिक्षेप परमाहवे । तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुबलेरिताम् ॥ १२ ॥ सात्यकिः समरे राजन् द्विधा चिच्छेद सायकैः । ततः पपात सहसा महो-ल्केव हतप्रभा ॥ १३ ॥ शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते । महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥ १४ ॥ तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम् । दुर्योधनो भृशं क्रुद्धो भ्रातॄन् सर्वा-नुवाचह ॥ १५ ॥ तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि । न जीवन् प्रति निर्याति महतोऽस्मात् रथव्रजात् ॥ १६ ॥ तस्मिन्

धरे हुए बाणसे सात्यकीका बड़ा धनुष काटडाला ॥ ९ ॥ तब शत्रुके शूरोंका संहार करनेवाले सात्यकीने हाथमें दूसरा धनुष लेकर तेज बाणोंसे क्रोधमें भरेहुए भगदत्तको घायल करदिया ॥ १० ॥ सात्यकीके बाणोंसे अति घायल हुए भगदत्तने होठ चबाकर सोने और वैदूर्यसे जड़ी हुई तथा यमदण्डके समान दृढ़ लोहेकी भयानक शक्ति सात्यकिके ऊपर फेंकी, बड़े जोरसे फेंकी हुई भगदत्तकी इस शक्तिको अपनी ओरको एकसाथ आतीहुई देख सात्यकिने बाण मारकर उसके दो टुकड़े करदिये तब तो जैसे बड़ीभारी बिजली गिरती है तिसी प्रकार वह शक्ति एकसाथ भूमिपर गिरपड़ी ॥ ११—१३ ॥ हे राजन् ! उस शक्तिको वृथा गई देखकर तुम्हारे पुत्रने असंख्यों रथ लेकर सात्यकीको चारों ओरसे घेरना आरम्भ करदिया ॥ १४ ॥ उस वृष्णिवंशके महा रथीको इसप्रकार घिराहुआ देखकर अति कोपमें भरा हुआ राजा दुर्योधन अपने भाइयोंसे कहने लगा, कि—॥ १५ ॥ हे कौरवो ! तुम ऐसा करो कि–जिसमें यह सात्यकी हमारे बड़े भारी रथोंके घेरमेंसे जीता बच कर न जाने पावे ॥ १६ ॥ यदि यह

हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद्बलम् । तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः ॥ १७ ॥ शैनेयं योधयामासुर्भीष्मायाभ्युद्यतं रणे । काम्बोजराजो बलवान् वारयामास संयुगे ॥ १८ ॥ आर्जुनिर्नृपतिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः। पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन् विव्याध तं नृपम् ॥१९॥ सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विव्याध पञ्चभिः । सारथिञ्चास्य नवभिरिच्छन् भीष्मस्य जीवितम् ॥ २० ॥ तद्युद्धमासीत् सुमहत्तयोस्तत्र समागमे । यदाभ्यधावद्गांगेयं शिखण्डी शत्रुकर्शनः ॥ २१ ॥ विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम् । भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ ॥ २२ ॥ अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समियाद्रथसत्तमः । ततः प्रववृते युद्धं तयोस्तस्य च भारत ॥ २३ ॥ विराटो दशभिर्भल्लैराजघान परन्तप । यतमानं

मारा गया तो यह समझना, कि-पाण्डवोंका बड़ाभारी सेनादल मारागया, तब तो 'बहुत अच्छा ऐसा ही होगा, ऐसा कहकर दुर्योधनके वचनको शिरपर धरते हुए तुम्हारे महारथी॥१७॥भीष्म के ऊपर चढ़कर आयेहुए शिनिके पोतेके साथ रणमें युद्ध करने लगे, काम्बोजराजने दृढ़ गांठोंवाले तेज बाण छोड़कर धनञ्जय के पुत्र अभिमन्युको रोकलिया, तब अर्जुनकुमारने बहुतसे बाण मारे और हे राजन! फिर उसके गिनकर चौंसठ बाण मारे॥१८॥ ॥१९॥ और पितामहके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये सुदक्षिणने उसके पांच बाण मारे तथा इसके सारथीके नौ बाण मारे ॥२०॥ इन दोनों योधाओंके तहां छुटजाने पर महा भयानक युद्ध होरहा था,कि-इतनेमें ही शिखण्डी भीष्मजीके सामने जाचढ़ा ॥२१॥ और बूढे महारथी राजा विराट तथा द्रुपद क्रोधमें भरकर कौरवोंके बड़े भारी सेनादलको चीरते हुए भीष्मजीके ऊपरको झपटने लगे ॥२२॥ हे भारत ! तब तो रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा कोपमें भर कर इन दोनों योधाओंके साथ युद्ध करनेको चढ़ आया ॥२३॥ राजा विराटने संग्रामको शोभा देनेवाले धनुषधारी द्रोणकुमारको

महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ २४ ॥ द्रुपदश्च त्रिभिर्बाणैर्वि-
व्याध निशितैस्तदा । गुरुपुत्रं समासाद्य प्रहरन्तौ महाबलौ ॥२५॥
अश्वत्थामा ततस्तौ तु विव्याध बहुभिः शरैः । विराटद्रुपदौ
वीरौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ ॥ २६ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम वृद्धयो-
श्चरितं महत् । यद्द्रौणिसायकान् घोरान् प्रत्यवारयतां
युधि ॥ २७ ॥ सहदेवं तथायान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात् ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत् ॥ २८ ॥ कृपश्च समरे
शूरो माद्रीपुत्रं महारथम् । आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्म-
भूषणैः ॥ २९ ॥ तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः ॥ ३० ॥ सोऽन्यद्
कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम् । माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्नि-

युद्ध करते देखकर भल्ल नामके दश बाण मारे ॥२४॥ और राजा
द्रुपदने तीन तेज बाण मारकर उसको घायल कर दिया अपने
गुरुपुत्रके ऊपर ऐसे बाण छोड़ते हुए उन दोनों महाबलवान् योधा-
ओंके महाबलवान् अश्वत्थामाने भी बहुतसे बाण मारे, क्योंकि
वह दोनों जने भीष्मके ऊपरको बढे चले जाते थे ॥ २५ ॥२६॥
इस झपाझपीमें हमने उन दोनों बूढोंका यह बड़ा अद्भुत
पराक्रम देखा कि-द्रोणकुमारके छोड़े हुए बाण उन दोनों
बूढे राजाओंने पीछेको लौटा दिये थे, जैसे मतवाला हाथी दूसरे
मतवाले हाथीके सामनेको दौड़कर आता है, ऐसे ही आगेको
बढ़ते हुए सहदेवके सामने शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य आकर खड़े
होगये ॥ २७ ॥ २८ ॥ सोनेके गहने पहरे शूर कृपाचार्यने रण
में तुरन्त महारथी माद्रीनन्दनके सत्तर बाण मारे ॥ २९ ॥ तब
माद्रीनन्दन सहदेवने उनके धनुषके दो टुकड़े करके उनको दो
बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥ हे राजन्! भीष्मकी रक्षा
करना चाहते हुए कृपाचार्यने दूसरा दृढ़ धनुष हाथमें लेकर बड़े
आनन्दमें मग्न होतेहुए सहदेवकी छातीमें दश तेज बाण मारे,

शितैः शरैः ॥ ३१ ॥ आजघानोरसि क्रुद्ध इच्छन् भीष्मस्य जीवितम् । तथैव पाण्डवो राजञ्शारद्वतममर्षणम् ॥ ३२ ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकांक्षया । तयोर्युद्धं समभवद् घोररूपं भयावहम् ॥ ३३ ॥ नकुलन्तु रणे क्रुद्धो विकर्णः शत्रुतापनः । विव्याध सायकैः षष्ट्या रक्षन् भीष्मं महाबलम् ॥३४ ॥ नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता । विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः ॥ ३५ ॥ तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परन्तपौ । अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ ३६ ॥ घटोत्कचं रणे यान्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम् । दुर्मुखः समरे प्रायाद् भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ३७ ॥ हैडिम्बस्तु रणे राजन् दुर्मुखं शत्रुतापनम् । आजघानोरसि क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा ॥ ३८ ॥ भीमसेनसुतश्चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः । षष्ट्या वीरोऽनदन् हृष्टो विव्याध

तब तो भीष्मको मारना चाहते हुए पाण्डुकुमारने भी क्रोधमें भर कर क्रोधी कृपाचार्यकी छातीमें बाण मारा, इस प्रकार उनका महाभयानक और घोर युद्ध होरहा था ॥ ३१-३३ ॥ उसी समय महाबलवान् पितामहकी रक्षा करते हुए और शत्रुओंको ताप देनेवाले विकर्णने क्रोधमें भरकर साठ बाण छोड़ नकुलको घायल कर दिया ॥३४ ॥ और तुम्हारे बुद्धिमान् पुत्रके हाथसे अत्यन्त घायल हुए नकुलने भी विकर्णको सतत्तर बाणोंसे घायल किया था ॥ ३५ ॥ भीष्मकी रक्षाके लिये लड़ने वाले दोनों परन्तप योधा घेरेके भीतर लड़ते हुए दो बैलोंकी समान एक दूसरेको माररहे थे ॥ ३६ ॥ भीष्मकी रक्षा करनेके लिये पराक्रमी दुर्मुख आगेको बढ़कर तुम्हारी सेनाको नाश करते हुए घटोत्कचके सामने युद्ध करनेको आखड़ा हुआ था ॥३७॥ तब हे राजन् ! शत्रुओंको सन्ताप देने वाले हिडिम्बके पुत्रने दृढ़ गांठोंवाले बाण छोड़कर दुर्मुखकी छातीमें प्रहार किया तब दुर्मुखने भी हर्षके साथ गर्जना करके रणके मुहाने पर खड़े हुए भीमपुत्रको तीखी

रणमूर्द्धनि ॥ ३६ ॥ धृष्टद्युम्नं तथायान्तं भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणम् । हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठं महारथः ॥ ४० ॥ हार्दिक्यः पार्षतञ्चापि विध्वा पञ्चभिरायसैः । पुनः पञ्चाशता तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४१ ॥ आजघान महाबाहुः पार्षतं तं महारथम् । तं चैव पार्षतो राजन् हार्दिक्यं नवभिः शरैः॥४२॥ विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः । तयोः समभवद्युद्धं भीष्महेतोर्महाहवे ॥ ४३ ॥ अन्योऽन्यातिशये युक्तं यथा वृत्रमहेन्द्रयोः । भीमसेनं तथायान्तं भीष्मं प्रति महारथम् ॥ ४४ ॥ भूरिश्रवाभ्ययात्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे ॥ ४५ ॥ नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुंखेन संयुगे । उरस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥ स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम । तौ शरान् सूर्य्यसंकाशान् कर्मारपरि-

---

नोकवाले साठ बाण मारकर घायल कर डाला ॥ ३८ ॥ ३६ ॥ भीष्मका वध करना चाहते हुए धृष्टद्युम्न को आगे बढ़ते देखकर महारथ हार्दिक्यने उस महारथीको रोक लिया ॥ ४० ॥ पहिले कृतवर्माने धृष्टद्युम्नको पांच बाणोंसे वेधा और फिर पचास बाण मारकर खड़ा रह खड़ा रह ऐसा कहा ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! तब धृष्टद्युम्नने भी कङ्क पक्षीके परोंसे बँधेहुए सीधे जानेवाले नौ बाणोंसे कृतवर्माको वेध डाला, इस प्रकार परस्पर बराबरी करते हुए उन दोनों योधाओंमें पितामहके लिये वृत्रासुर और इन्द्रकी समान युद्ध होने लगा, इतनेमें ही पितामहके रथपरको चढ़कर आते हुए महारथी भीमके सामने आकर भूरिश्रवा 'खड़ा रह, 'खड़ा रह, कहने लगा और उसने सोनेके पङ्खोंवाले तेज बाणों से भीमकी छातीमें प्रहार किया, तब हे राजन् ! छातीमें घुसे हुए बाणोंसे प्रतापी भीमसेन ऐसा दीखने लगा, जैसे पहिले स्वामि कार्त्तिकेयकी शक्तिसे क्रौंचगिरि दीखता था, वह दोनों योधा परस्पर क्रोध करके सानपर धरेहुए सूर्यकी समान दमकते हुए

गार्जितान् ॥४७॥ अन्योऽन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते नरर्षभौ। भीमो भीष्मवधाकाङ्क्षी सौमदत्तिं महारथम् ॥ ४८ ॥ तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम्। कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे ॥ ४९ ॥ युधिष्ठिरन्तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम्। भीष्माभिमुखमायान्तं भारद्वाजो न्यवारयत् ॥ ५० ॥ द्रोणस्य रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम्। श्रुत्वा प्रभद्रका राजन् समकम्पन्त मारिष ॥५१॥ सा सेना महती राजन पांडुपुत्रस्य संयुगे। द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात् पदम् ॥ ५२ ॥ चेकितानं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर। चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५३ ॥ भीष्महेतोः पराक्रांतश्चित्रसेनः पराक्रमी। चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत ॥ ५४ ॥ तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमवारयत्। तद्युद्धमासीत् सुमहत् तयोस्तत्र समा-

बाणोंकी वर्षा कररहे थे, भीष्मका वध करना चाहता हुआ भीमसेन भूरिश्रवाको मार रहा था और भीष्मकी विजयका लोभी भूरिश्रवा भीमको माररहा था, इसप्रकार परस्पर बदला लेते हुए वह दोनों योधा रणमें जूझ रहे थे ॥ ४२ ॥ ४६ ॥ बड़े सेनादलको ले पितामहके ऊपर चढ़कर आते हुए कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यने रोक लिया, हे राजन्! मेघके गरजनेकी समान द्रोणके रथकी घरघराहटको सुनकर सब प्रभद्रक कांपने लगे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ और हे राजन्! द्रोणका रोकाहुआ पांडुपुत्रका बड़ाभारी सेनादल एक पग भी आगेको नहीं बढ़ सकता था ॥५२॥ हे राजन्! भीष्मके ऊपर चढ़ आनेके लिये उद्योग करते हुए क्रोधरूप राजा चेकितानको तुम्हारे पुत्र चित्रसेनने रोक लिया॥५३॥और हे भारत! भीष्मके लिये अपना पराक्रम भी दिखाता हुआ पराक्रमी चित्रसेन चेकितानके साथ शक्तिसे युद्ध कर रहा था ॥ ५४ ॥ इसीप्रकार चेकितानने भी चित्रसेनको मुचेड़ा लिया था, उन दोनोंके तहां जुटजाने पर वह बड़ाभारी

गमे ॥ ५५ ॥ अर्जुनो वार्य्यमाणस्तु बहुशस्तत्र भारत । विमुखी-कृत्य पुत्रं ते सेनां तव ममर्दह ॥ ५६ ॥ दुःशासनोपि परया शक्त्या पार्थमवारयत् । कथं भीष्मं न नो हन्यादिति निश्चित्य भारत ॥ ५७ ॥ सा वध्यमाना समरे पुत्रस्य तव वाहिनी । लोड्यते रथिभिः श्रेष्ठैस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ५८ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वसमागमे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

सञ्जय उवाच । अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः । समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥ १ ॥ विधुन्वानो नरश्रेष्ठो द्रावयाणो वरूथिनीम् । पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः ॥ २ ॥ निमित्तानि निमित्तज्ञः सर्वतो वीक्ष्य वीर्य्यवान् । प्रतपन्त-मनीकानि द्रोणः पुत्रमभाषत ॥ ३ ॥ अयं हि दिवसस्तात यत्र

युद्ध हुआ था॥५५॥ हे भारत! तहां बहुत कुछ रोकाजाने पर भी धनञ्जयने तुम्हारे पुत्रका मुख फेरकर तुम्हारी सेनाको कुचल ही डाला ॥ ५६ ॥ हेभारत! हमारे पितामह को किसीप्रकार मार न सकें, ऐसा निश्चय करके दुःशासन भी अपनी बड़ी भारी शक्ती से धनञ्जयको रोकेही रहा ॥ ५७ ॥ परन्तु हे भारत! उस समय पाण्डवोंके बड़े२ रथियोंने जहां२ पाया तुम्हारे सेना दलको उथल पुथल करडाला ॥ ५८ ॥ छ ॥

एकसौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि—इसके अनन्तर बड़े धनुषवाले मरने हाथीकी समान पराक्रमी, पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर द्रोणाचार्य मतवाले हाथीको भी रोक सकने वाले मजबूत धनुषको हाथमें लेकर उसको खेंचते हुए पाण्डवोंकी सेनामेंको घुसे और उसको भगाने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ निमित्तके शुभ अशुभ कारणोंको जाननेवाले तथा वीरता दिखानेवाले द्रोणाचार्यने चारों ओर होते हुए शकुनों को देखकर शत्रुसेनाका संहार करनेमें लगे हुए अपने पुत्रसे

पार्थो महाबलः । जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ॥४॥ उत्पतन्ति हि मे बाणा धनुः प्रस्फुरतीव च । योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्त्तते मतिः॥५॥दिक्शान्तानि घोराणि व्याहरन्ति मृगद्विजाः । नीचैर्गृध्राणि लीयन्ते भारतानां चमूं प्रति ॥ ६ ॥ नष्टप्रभ इवादित्यः सर्वतो लोहिता दिशः । रसते व्यथते भूमिः कम्पतीव च सर्वशः ॥ ७ ॥ कङ्कगृध्रा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहुः । शिवाश्चैवाशिवा घोरा वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ ८ ॥ पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलात् । सकबन्धश्च परिघो भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ ९ ॥ परिवेषस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोरभूत् । वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्त्तनम् ॥ १० ॥ देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः। कम्पन्ते च हसंते च नृत्यन्ति च

कहा, कि-हे बेटा ! मुझे मालूम होता है, कि-आज महाबली अर्जुन भीष्मको मारनेके लिये अपनी शक्तिभर उद्योग करेगा ॥३-४॥ क्योंकि—मेरे बाण भाथेमेंसे बाहर निकले पड़ते हैं, मेरा धनुष कांपता है, मेरे अस्त्र अपने आप काम करनेको उद्यत होते हैं और मेरी बुद्धिमें भी क्रूरता समाई जाती है ॥ ५ ॥ दिशाओं में मृग और पक्षी बराबर घोर शब्द कर रहे हैं, भरतवंशियोंके सेनादलोंमें गीध पक्षी आकर घुसे जाते हैं ॥ ६ ॥ सूर्यकी प्रभा नष्टसी होगयी है, दिशाएं चारों ओर लाल२ होरही हैं, भूमि शब्दसा करती है और कंप पाकर सर्वत्र डगमगा रही है ॥७॥ कङ्क, गिद्ध, बगले बार२ चीखें माररहे हैं, महाभय दिखाती हुईं गीदड़ियें अमङ्गलकारी भयङ्कर रुदन कररही हैं ॥ ८ ॥ सूर्य मण्डलमेंसे बड़ीभारी उल्का गिरी है, कबन्धोंके साथ परिघ सूर्यके आस पास घिरे हुए हैं ॥ ९ ॥ चन्द्रमा और सूर्यके चारों ओर महाभयानक घेरकुण्डल दीखता है, यह राजाओंके शरीरों को काटनेवाले बड़े भारी भयकी सूचना देता है ॥ १० ॥ तथा देवालयोंमेंकी कौरवोंके कुलदेवताओंकी मूर्त्तियें कांपती हैं, हँसती

रुदन्ति च ॥ ११ ॥ अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम् । अवाक्शिराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः ॥ १२ ॥ वपूंषि च नरेन्द्राणां विगताभानि लक्षये । धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च भ्राजन्ति दंशिताः ॥ १३ ॥ सेनयोरुभयोश्चापि समन्ताच्छ्रूयते महान् । पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निःस्वनः ॥ १४ ॥ ध्रुवमास्थाय बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे । अपास्यान्यान् रणे योधानभ्येष्यति पितामहम् ॥ १५ ॥ हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः । चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम् ॥ १६ ॥ तञ्चेह निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम् । पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्यायोधनं गतः ॥ १७ ॥ अब्रवीच्च पुरा भीष्मो नाहं हन्यां शिखण्डिनम् । स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥ १८ ॥

हैं, नाचती हैं और रोती हैं ॥ ११ ॥ सूर्यको दाहिनी ओर रखकर भ्रमण करने वाले ग्रह उसकी क्रूरताको दिखाते हैं, भगवान् चन्द्रमा नीचेको शिर किये उदय हुए दीखते हैं ॥ १२ ॥ कौरव पक्षके राजाओंके शरीर निस्तेजसे दीखते हैं और धृतराष्ट्रके पुत्रोंके सेनादलमें योधाओंके कवचधारी शरीर भी शोभा नहीं पाते हैं ॥ १३ ॥ तथा दोनों सेनाओंमें पाञ्चजन्य और गाण्डीवका ही शब्द सुनाई आता है इससे यह प्रतीत होता है, कि-निःसन्देह आज अर्जुन अपने शस्त्रबलसे दूसरे योधाओंको पीछे हटाकर भीष्मके पास आपहुंचेगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! आज रणमें पितामह और अर्जुनका मुचैटा होगा इस बातका विचार करते हुए मेरे रोंगटे खड़े होते हैं और मेरा मन पीछेको हटा जाता है ॥१६॥ कपट करनेमें चतुर तथा पाप बुद्धिवाले शिखंडी को आगे करके धनञ्जय आज पितामहके साथ युद्ध करनेको रण में चढ़ आया है ॥ १७ ॥ और भीष्म पहिले कहचुके हैं, कि-मैं शिखंडीके साथ युद्ध नहीं करूंगा, क्योंकि—इसको विधाता ने पहले स्त्री बनाया था, परन्तु पीछे दैवकी लीलासे यह पुरुष

अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः। न चाभङ्क्ष्यति तस्मिन् महेष्वासापगासुतः ॥ १९ ॥ एतद्विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम्। अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २० ॥ युधिष्ठिरस्य च कोपो भीष्मश्चार्जुनसङ्गमः। मम चास्त्रसमारम्भः प्रजानामशिवं ध्रुवम् ॥ २१ ॥ मनस्वी बलवान् शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः। दूरपाती दृढेषुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२ ॥ अजेयः समरे चापि देवैरपि सवासवैः। बलवान् बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः ॥ २३ ॥ विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः। तस्य मार्गं परिहरन् द्रुतं गच्छ यतव्रत ॥ २४ ॥ पश्याद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत्। हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च

होगया है ॥ १८ ॥ यह महाबलवान् यज्ञसेनका पुत्र स्वयं ही अमङ्गलरूप है, इसलिये गङ्गानन्दन इस अमङ्गलरूपके ऊपर बाण नहीं छोड़ेंगे ॥ १९ ॥ और धनञ्जय आज कुरुवृद्ध पितामहके सामने उद्यत होकर आरहा है इस बातको विचारते हुए आज मेरे शरीरके बन्धन ढीले पड़े जाते हैं ॥ २० ॥ युधिष्ठिरका कोप, पितामह और धनञ्जयका युद्ध तथा मेरा अस्त्र छोड़नेका उद्योग ये तीनों बातें अवश्य ही प्रजाका अमङ्गल करनेवाली हैं ॥ २१ ॥ यह धनञ्जय उत्साही, बलवान्, शूर, अस्त्रविद्यामें प्रवीण, चालाक, दूरसे निशाना लगानेवाला, मजबूत बाणवाला और शुभ अशुभ शकुनोंको जाननेवाला है ॥ २२ ॥ इन्द्रसहित देवता भी इसको रणमें नहीं जीतसकते, यह बलवान्, बुद्धिमान् जरा भी परिश्रम न मानकर युद्ध करनेवाला तथा योधाओंमें श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ यह सदा संग्राममें विजय ही पाता है, इसके अस्त्र बड़े ही भयानक हैं, हे व्रतधारी बेटा ! तू इसके मार्गको लांघ कर शीघ्र ही पितामह की रक्षाके लिये जा ॥ २४ ॥ आज इस महाभयानक संग्राममें मनुष्योंका बड़ाभारी संहार होनेवाला है तथा सोनेसे चित्रे हुए दीखनेवाले शूरोंके बड़े२ कवच अर्जुनके

शुभानि च ॥ २५ ॥ कवचान्यवदीर्य्यन्ते शरैः सन्नतपर्वभिः। छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च ॥ २६ ॥ प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः शक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः। वैजयन्त्यश्च नागानां संयुद्धेन किरीटिना ॥ २७ ॥ नायं संरक्षितुं कालः प्राणान् पुत्रोपजीविभिः। याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च ॥ २८ ॥ रथनागहयावर्त्तां महाघोरां सुदुर्गमाम्। रथेन संग्रामनदीं तरत्येष कपिध्वजः ॥ २९ ॥ ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत्। इहैव दृश्यते पार्थे भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥ ३० ॥ भीमसेनश्च बलवान् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ। वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥ तस्यैष मन्युप्रभवो धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः। तपोदग्धशरीरस्य कोपो दहति भारतीम् ॥ ३२ ॥ एष संदृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः। दारयन् सर्वसैन्यानि धार्त्तराष्ट्राणि

दृढ गांठोंवाले बाणोंसे टूटनेवाले हैं, ध्वजाओंके अग्रभाग, तोमर, धनुष, निर्मल और तीखे पाश, सोनेसे जगमगाती हुइ शक्तियें, हाथियोंकी वैजयन्ती मालाय आदिको यह क्रोधमें भराहुआ किरीटी आज काट डालेगा ॥ २५ ॥ हे बेटा! नौकरी पाने वालोंको अपने प्राणोंको प्यार करनेका यह समय नहीं है, तू स्वर्ग और यशकी चाहना रखता हुआ विजयके लिये जाकर युद्ध कर ॥ २८ ॥ यह वानरकी ध्वजा वाला अर्जुन रथ हाथी और घोड़ेरूप भँवरवाली महाघोर तथा अति दुर्लभ संसार नदीको एक रथकी सहायतासे तर जायगा ॥ २९ ॥ जिनका भाई अर्जुन है ऐसे इन युधिष्ठिरमें ब्राह्मणोंकी भक्ति, दम, दान, तप और महान् चरित्र ये सब गुण हैं,॥३०॥ और बलवान् भीमसेन तथा माद्रीके दोनों पुत्र इनके सहायक हैं और वृष्णि-वंशी श्रीकृष्ण सरीखा उनका नाथ है ॥ ३१ ॥ तपसे दग्ध हुए शरीर वाले इन युधिष्ठिरका दुरात्मा धृतराष्ट्रके ऊपर जो कोप है वह इस भारतका नाश करने वाला है ॥ ३२ ॥ देख २ यह वासुदेवके आश्रय वाला धनञ्जय धृतराष्ट्रके सब सेनादलका नाश

सर्वतः ॥ ३३ ॥ एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना । महोर्मिनद्धं सुमहत्तिमिनेव महाजलम् ॥ ३४ ॥ हाहा किलकिला-शब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे । याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥ ३५ ॥ दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्यामिततेजसः । समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥ ३६ ॥ सात्यकिश्चाभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ । पर्य्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ३७ उपेन्द्रसदृशश्यामो महाशाल इवोद्गतः । एष गच्छत्यनीकाग्रे द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ ३८ ॥ उत्तमास्त्राणि चाधत्स्व गृहीत्वा च महद्धनुः । पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥ ३९ ॥ को हि नेच्छेत् प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः । क्षत्रधर्मन्तु

करता चला आरहा है ॥ ३३ ॥ बड़ी२ तरङ्गोंवाले सागरके जलको जैसे बड़े२ मगर मच्छ घूम२ कर क्षुभित कर डालते हैं तैसे ही यह कौरवोंका सेनादल अर्जुनका क्षुभित किया हुआ दीखता है ॥ ३४ ॥ सेनाके अग्रभागमें अहोहो! हा! हा! ऐसी किलकिलाट भरीहुई वाणी सुनाई आरही है, तू धृष्टद्युम्नके सामने जा और युधिष्ठिरके सामने मैं जाता हूं ॥ ३५ ॥ परम तेजस्वी युधिष्ठिरके व्यूहके भीतर जाना समुद्रके भीतर प्रवेश करनेकी समान दुस्तर है; क्योंकि—यह व्यूह चारों ओर अतिरथियोंसे सुरक्षित है ॥३६॥ तथा सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, वृकोदर, नकुल और सहदेव राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेको खड़े हैं ॥ ३७॥ तथा इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रकी समान श्यामवर्ण और बड़े सालके वृक्षकी समान ऊँचे शरीरवाला अभिमन्यु दूसरे अर्जुनकी समान सेनाके मुहाने पर खड़ा हुआ है, तो भी मैं इनमें प्रवेश करूँगा ॥ ३८ ॥ तू उत्तम अस्त्रोंको धारण कर, हाथमें बड़ा धनुष ले और धृष्टद्युम्न तथा भीमके सामने जा और युद्धका आरम्भ कर ॥ ३९ ॥ अपने पुत्रका बहुतसे वर्षों तक जीवित रहना कौन नही चाहता है? तो भी मैं केवल क्षत्र-

सम्मेदय ततस्त्वां विसृजनऽस्म्यहम् ॥ ४० ॥ एष चाति रणे भीष्मो दहते वै महाचमूम् । युद्धेषु सदृशस्तात यमस्य वरुणस्य च॥४१॥

इतिश्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्रोणाश्वत्थाम-संवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

सञ्जय उवाच । भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः ॥१॥ चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणादयः । दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥ २ ॥ महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया । भीष्मस्य समरे राजन् प्रार्थयाना महद्यशः ॥ ३ ॥ शल्यस्तु नवभिर्बाणै-र्भीमसेनमताडयत् । कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥ ४ ॥ चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष । दशभिर्दशभिर्बाणै-र्भीमसेनमताडयन् ॥ ५ ॥ सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।

धर्मकी ओरको देखकर तुझसे यह काम करनेके लिये कहता हूं ॥ ४० ॥ हे बेटा ! यम और वरुणके समान पराक्रम वाले पितामह इस महासंग्राममें पाण्डवोंके बड़ेभारी सेनादलको भस्म कर रहे हैं, इसलिये तू शीघ्र ही पहुंच ॥ ४१ ॥ एकसौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११२ ॥　　 छ　　 ॥　　 छ　　 ॥

सञ्जय कहता है, कि—भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, उज्जैनके विंद और अनुविंद, सिंधका राजा जयद्रथ, चित्रसेन और विकर्ण आदि तुम्हारे दश योधा भीमके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १ ॥ २ ॥ और हे राजन् ! अनेकों देशोंमें उत्पन्न हुए योधाओंके बड़े भारी सेनादलको साथ लेकर रणमें पितामहको विजय दिलानेका उद्योग कररहे थे ॥ ३ ॥ शल्यने भीमके नौ बाण मारे, कृतवर्माने तीन बाण मारे और कृपाचार्यने उसको नौ बाणोंसे घायल किया ॥ ४ ॥ तथा चित्रसेन, विकर्ण, भगदत्त इन योधाओंमेंके हरएकने भीमसेनके दश२ बाण मारे॥५॥सिन्धुराज जयद्रथने तीन बाण मारे अवन्तीके विन्द और अनुविन्दने पांच२

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ६ ॥ दुर्मर्षण-स्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः । स तान् सर्वान् महाराज राज-मानान् पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥ प्रवीरान् सर्वलोकस्य धार्त्तराष्ट्रान् महारथान । जघान समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा ॥ ८ ॥ सप्तभिः शल्यमाविध्यत् कृतवर्माणमष्टभिः । कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ॥ ९ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः । विन्दानुविन्दौ च यथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ १० ॥ दुर्मर्षणञ्च विंशत्या चित्रसेनञ्च पञ्चभिः । विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ॥ ११ ॥ विध्वा भीमो नदद्धृष्टः सैन्धवञ्च पुनस्त्रिभिः । अथान्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ १२ ॥ भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः । स विद्धो दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपः ॥ १३ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् । गौतमं ताड-

---

बाण मारे, तथा दुर्मर्षणने बीस तेज बाणोंसे भीमको घायल किया परन्तु हे महाराज ! अलग २ बाण छोड़ते हुए सब लोगोंमें शूर गिनेजानेवाले तुम्हारे योधाओंको शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पाण्डुनन्दन भीमने कुछ भी न गिनकर उनके ऊपर प्रहार किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे भारत ! उसने सात बाण छोड़कर शल्यको और आठ बाणोंसे कृतवर्माको घायल करडाला, कृपाचार्यका धनुष बीचमेंसे काट डाला ॥ ९ ॥ और धनुष काटनेके अनन्तर उनके फिर सात बाण मारे, विन्द तथा अनुविन्दके तीन २ बाण मारे, ॥ १० ॥ तथा दुर्मर्षणके बीस चित्रसेनके पांच, विकर्णके दश और जयद्रथके पांच बाण मारे ॥ ११ ॥ फिर अत्यन्त हर्षमें भरे हुए भीमने गर्जकर सिंधुराजको तीन बाणोंसे घायल किया, महारथ कृपाचार्यने अपने टूटेहुए धनुषको फेंक दिया और दूसरा धनुष लेकर भीमसेनके दश तेज बाण मारे, तब अंकुश से घायल हुए गण्डस्थल वाले गजराजकी समान अतिकोपमें भरे हुए प्रतापी भीमने रणभूमिमें कृपाचार्यके ऊपर अनेकों बाणों

यामास शरैर्बहुभिराहवे ॥१४॥ सैन्धवस्य तथाश्वांश्च सारथिञ्च त्रिभिः शरैः । माहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः ॥१५॥ हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः । शरांश्चिक्षेप निशितान् भीमसेनस्य संयुगे ॥ १६॥ तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद मारिषः । भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः ॥ १७ ॥ स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । चित्रसेनरथं राजन्ना रुरोह त्वरान्वितः ॥१८॥ अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पांडवः । महारथान् शरैर्विध्वा वारयित्वा च मारिष ॥ १९ ॥ विरथं सैंधवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः । तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् ॥ २० ॥ स सन्धाय शरांस्तीक्ष्णान् कर्मारपरिमार्जितान् । भीमं विव्याध समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥ कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्य्यवान् । विन्दानुविंदावावन्त्यौ चित्रसेनश्च

को वरसा डाला ॥१२-१४॥ और काल तथा अन्तकके समान प्रभाव वाले वृकोदरने जयद्रथके घोड़े और सारथीको तीन बाणों से यमलोकमें पहुंचा दिया ॥ १५ ॥ तब तो यह महारथी तुरन्त मरे हुए घोड़ोंवाले रथमेंसे नीचे कूद पड़ा और रणमें खड़ा होकर भीमके ऊपर तेज बाण छोड़ने लगा ॥ १६ ॥ तब तो हे भरत-सत्तम ! भीमने भल्ल नामके दो बाणोंसे महात्मा सिंधुराजका धनुष बीचमेंसे काट डाला ॥ १७ ॥ घोड़े मरगये, रथ टूटगया, सारथि मारा गया तथा धनुषके टुकड़े२ होगये इसकारण सिंधुराज तुरन्त ही चित्रसेनके रथमें चढ़ बैठा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! बड़े२ महारथियोंको बाणोंसे घायल करके आगे बढ़नेसे रोक कर भीमने रणमें बड़ा ही अद्भुत पराक्रम दिखाया ॥ १९॥ जब सिंधुराजको सबके सामने रथसे शून्य करडाला तब शल्यसे भीमका पराक्रम नहीं सहागया ॥ २० ॥ उसने सानपर धरे हुए तेज बाण धनुष पर चढ़ाकरवृकोदरसे कहा, कि-अरे खड़ा तो रह ! खड़ा तो रह !! ॥२१॥ शल्यको सहायता देनेके लिये येकृपा-

संयुगे ॥ २२ ॥ दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान् । भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिन्दमाः ॥ २३ ॥ स च तान् प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः । शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः ॥ २४ ॥ तं शल्यो नवभिर्भित्त्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः । सारथिञ्चास्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्मणि ॥ २५ ॥ विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान् । मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २६ ॥ तथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः । ताडयामास समरे सिंहवद्विननाद च ॥ २७ ॥ ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम् । त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन् ॥ २८ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे । पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाम्बुदैः ॥ २९ ॥ स

चार्य, कृतवर्मा, शूर भगदत्त, उज्जैनके विंद और अनुविन्द चित्रसेन, दुर्मर्षण, विकर्ण, शूर सिंधुराज आदि शत्रुओंका दमन करनेवाले योधाओंने फिर बाण छोड़कर वृकोदरको एकसाथ घायल कर डाला ॥ २२—२३ ॥ परन्तु भीमने उनके पांच२ बाण मारे और शल्यके पहिले सत्तर बाण मारकर फिर दश बाणोंका प्रहार किया ॥ २४ ॥ और शल्यने भीमके नौ बाण मारकर फिर पांच बाण मारे तथा एक बाण इसके सारथिके ममस्थानमें बड़ा गहरा मारा ॥ २५ ॥ अपने सारथि विशोक को घायल हुआ देखकर प्रतापी भीमने मद्रराजकी छाती और दोनों भुजाओंमें तीन बाण मारे ॥ २६ ॥ तथा सिंहकी समान गरज कर और धनुषधारियोंके भी सीधे जानेवाले तीन२ बाण मारे ॥२७॥ बड़े२ धनुषोंवाले वह योधा भी इस संग्राममें सावधान होगये और उन्होंने रणचतुर भीमके मर्मस्थानोंमें तेज धार वाले तीन २ बाण मारे ॥२८॥ परन्तु जैसे वर्षा करते हुए मेघ की जलधाराओंसे पहाड़ जरा भी व्यथा नहीं पाता है तैसे ही इन योधाओंके बाणोंसे विंधजाने पर भी महाधनुषधारी भीम

तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः । मद्रेश्वरं त्रिभिर्बाणैर्भृशं विध्वा महायशाः ॥ ३० ॥ कृपञ्च नवभिर्बाणैर्भृशं विध्वा समं-ततः । प्राग्ज्योतिषं शरैराजौ राजन् विव्याध सायकैः ॥ ३१ ॥ ततस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः । क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥ तथान्यद्धनुरादाय कृतवर्मा वृको-दरम् । आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परन्तप ॥ ३३ ॥ भीमस्तु समरे विध्वा शल्यं नवभिरायसैः । भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माण-मष्टभिः ॥ ३४ ॥ द्वाभ्यां द्वाभ्यान्तु विव्याध गौतमप्रभृतीन् रथान । तेऽपि तं समरे राजन् विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥ स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वशस्त्रैर्महारथैः । मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान् विच-चार गतव्यथः ॥ ३६ ॥ ये चापि रथिनां श्रेष्ठा भीमाय निशि-

जरा भी व्यथित नहीं हुआ ॥ २६ ॥ फिर अत्यन्त कोपमें भरे हुए पाण्डवोंके महारथी और बड़ा यश पाये हुए भीमसेनने मद्र-राज शल्यके जोरसे तीन बाण मारे ॥ ३० ॥ और कृपाचार्यके ऊपर नौ बाण छोड़कर उनको चारों ओरसे छेददिया तथा प्राग्ज्योतिष देशके राजाके रणमें सौ बाण मारे ॥ ३१ ॥ फिर हाथकी चालाकी दिखाकर एक तेज बाणसे महात्मा कृतवर्माका बाण चढ़ाहुआ धनुष काटडाला ॥ ३२ ॥ उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष हाथमें ले परन्तप कृतवर्माने भीमके बीच कपालमें एक बाण मारा ॥ ३३ ॥ परन्तु भीमने उस रणमें फौलादके नौ बाणोंसे शल्यको वेधकर भगदत्तको तीन बाणोंसे और कृतवर्माको आठसे घायल किया ॥ ३४ ॥ तथा गौतम आदि महारथियोंको दो २ बाणोंसे घायल किया और इन योधाओंने भी सामनेसे तेज बाण मारकर भीमसेनको घायल कर डाला ३५ इन सब शस्त्रधारी महारथियोंने उसको बहुत ही व्यथा दी, परन्तु भीमसेनने इनको तिनकेके समान भी नहीं गिना और जरा भी व्यथित न होकर बराबर आगेको बढ़ता चलागया ॥ ३६ ॥ और वह महारथी भी उसको रोकनेके लिये सावधानीके साथ

तान् शरान् । प्रेषयामासुरव्यग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥ तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः । चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महामते ॥ ३८ ॥ तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशञ्च महाभुजः । शतघ्नीं च कृपो राजञ्छरं शल्यश्च संयुगे ॥ ३९ ॥ अथेतरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् । भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा ॥ ४० ॥ तोमरञ्च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणानिलात्मजः । पट्टिशञ्च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ४१ ॥ स बिभेद शतघ्नीञ्च नवभिः कङ्कपत्रिभिः । मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्त्वा महारथः ॥४२॥ शक्तिं चिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे । तथेतरान् शरान् घोरान् शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४३ ॥ भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत् । तांश्च सर्वान् महेष्वासान् त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ ४४ ॥ ततो धनञ्जयस्तत्र वर्त्तमाने महारणे ।

सैंकड़ों और सहस्रों बाण फेंकने लगे ॥ ३७ ॥ हे महामते ! तदनन्तर महारथी भगदत्तने सोनेके दण्डे और बड़े वेगवाली एक शक्ति भीमके ऊपर फेंकी ॥३८॥ हे राजन् ! उस ही रणमें महाबाहु सिन्धुराजने एक पट्टिश और एक तोमर, कृपाचार्यने शतघ्नी तथा शल्यने एक बाण मारा ॥३९ ॥ दूसरे महाधनुषधारी योधाओंने भीमसेनके ऊपर बड़े आवेशमें भरकर पांच २ बाण मारे ॥४० ॥ पवननन्दन भीमने तेज बाणसे तोमरके दो टुकड़े करदिये, और तीन बाणोंसे पट्टिशको भी तिलके सेंटेकी समान काट डाला ॥ ४१ ॥ कङ्कके परोंवाले और नौ बाण मार कर शतघ्नीको तोड़दिया तथा मद्रराजके छोड़े हुए बाणको काट डाला ॥ ४२ ॥ महारथी भीमने भगदत्तकी शक्तिके तुरन्त टुकड़े करडाले और दूसरे योधाओंके छोड़े हुए बाणोंके युद्धमें प्रशंसा पाये हुए भीमसेनने सामनेसे बाण छोड़कर तीन २ टुकड़े करडाले और उन सब धनुषधारियोंमें भी हरएकके तीन २ बाण मारे ॥ ४३—४४ ॥ रणमें बाणोंसे शूरोंका संहार तथा

आजगाम रथेनाजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ॥ ४५ ॥ निघ्नन्तं समरे शत्रून् योधयानञ्च सायकैः । तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीक्ष्य पाण्डवौ ॥ ४६ ॥ न शशंसुर्ज्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभाः । अथार्जुनं रणे भीमं योधयन्तं महारथान् ॥ ४७ ॥ भीष्मस्य निधनाकांक्षी पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् । आससाद रणे वीरांस्तावकान् दश भारत ॥ ४८ ॥ ये स्म भीमं रणे राजन् योधयन्तो व्यवस्थिताः बीभत्सुस्तानथाविध्यद्भीमस्य प्रियकाम्यया ॥ ४९ ॥ ततो दुर्य्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् । अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः ॥ ५० ॥ सुशर्मन् गच्छ शीघ्रं त्वं बलौघैः परिवारितः । जहि पाण्डुसुतावेतौ धनञ्जयवृकोदरौ ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य त्रैगर्त्तः प्रस्थलाधिपः । अभिद्रुत्य रणे भीममर्ज्जुनं चैव धन्विनौ ॥ ५२ ॥ रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् पर्य्ये-

---

युद्ध करते हुए महारथी भीमसेनको इसप्रकार रणमें लड़तेहुए देखकर धनञ्जय रथमें बैठ उस रणभूमिमें आपहुंचा, इनदोनों महात्मा पाण्डवोंको इकट्ठे हुए देखते ही तुम्हारे योधाओंकी विजयकी आशा टूट गई ॥ ४५—४७ ॥ भीष्मका वध चाहने वाला अर्जुन, शिखण्डीको लेकर तुम्हारे रथियोंके साथ लड़ते हुए भीमसेनके पास आपहुंचा तथा तुम्हारे दशों महारथियोंके साथ युद्ध करने लगा ॥ ४८ ॥ भीमका प्रिय करनेकी इच्छासे धनञ्जयने,जो२ भीमके सामने लड़ रहे थे उनको घायल कर डाला ॥ ४९ ॥ तब हे राजा दुर्योधनने अर्जुन और भीमसेन दोनों का वध करनेके लिये सुशर्माको समझाया ॥ ५० ॥ और कहा कि—हे सुशर्मा ! तू सब सेनादलको लेकर झट आगेको बढ़जा और पाण्डुके पुत्र इन भीमसेन तथा धनञ्जय दोनोंका वध कर५१ दुर्योधनके इस वचनको सुनकर प्रस्थलके स्वामी राजा त्रिगर्त्तने भीमसेन और अर्जुनके सामने जाकर उनको हजारों रथोंसे घेर

वारयन् । ततः प्रववृते युद्धमर्जुनस्य परैः सह ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमार्जुन-
पराक्रमे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

सञ्जय उवाच । अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम् । छाद-यामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १ ॥ सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत । प्राग्ज्योतिषं च समरे सैंधवं च जयद्रथम् ।२। चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च । दुर्मर्षणं च राजेंद्र ह्यावंत्यौ च महारथौ ॥ ३ ॥ एकैकं त्रिभिरानर्च्छत्कंकबर्हिणवाजितैः । शरै-रतिरथो युद्धे पीडयन् वाहिनीं तव ॥ ४ ॥ जयद्रथो रणे पार्थं विध्वा भारत सायकैः । भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः ॥ ५ ॥ शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः । विव्यधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः ॥ ६ ॥ चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव

लिया तब अर्जुनका शत्रुओंके साथ युद्ध चलने लगा, ॥५२॥ ॥ ५३ ॥ एक सौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—रणमें उद्योग करते हुए महारथी शल्यके ऊपर धनञ्जयने दृढ़ गांठवाले अनेकों बाण छोड़कर उस को ढक दिया ॥ १ ॥ फिर सुशर्मा और कृपाचार्यके तीन२ बाण मारे, तदनन्तर हे राजेन्द्र ! उस रणमें प्राग्ज्योतिष, सिंधका राजा जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण, कृतवर्मा, दुर्मर्षण, और उज्जैनके दोनों महारथी राजकुमार इनमेंसे हरएकके कङ्क और मोर के परोंवाले तीन२ बाण मारे, इसप्रकार उस अतिरथीने रणमें बाण छोड़कर तुम्हारी सेनाको बड़ी पीड़ा दी ॥ २-४ ॥ हे भारत ! तब जय-द्रथने रणमें बाणोंसे धनञ्जयको घायल करडाला और फिर चित्रसेनके रथमें बैठे२ बड़े वेगसे भीमको भी वेध दिया,॥ ५ ॥ हे महाराज ! शल्यने तथा रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने धनञ्जयके मर्मस्थानको फोड़नेवाले बाण छोड़कर बड़ा ही घायल कर दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! उस संग्राममें चित्रसेन आदि तुम्हारे पुत्रोंने

विशाम्पते । पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः ॥ ७ ॥ आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष । तौ तत्र रथिनां श्रेष्ठौ कौंतेयौ भरतर्षभौ ॥ ८ ॥ अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद्बलम् । सुशर्मापि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः ॥ ९ ॥ ननाद बलवन्नादं त्रासयानो महद्बलम् । अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ १० ॥ विव्यधुर्निशितैर्बाणैरुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः । तेषां च रथिनां मध्ये कौंतेयौ भरतर्षभौ ॥ ११ ॥ क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यदृश्यताम् आमिषेप्सू गवां मध्ये सिंहाविव मदोत्कटौ ॥ १२ ॥ छित्त्वा धनूंषि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे । पातयामासतुर्वीरौ शिरांसि शतशो नृणाम् ॥ १३ ॥ रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः । गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १४ ॥ रथिनः सादिनश्चापि तत्र तत्र निषूदिताः । दृश्यंते बहवो राजन्वेपमानाः

भी तुरन्त अर्जुन और भीमसेनके पांच२ तेज वाण मारे ॥ ७ ॥ परन्तु रथियोंमें और भरतकुलमें श्रेष्ठ कुन्तीके दोनों पुत्र त्रिगर्त राजके बड़े भारी सेनादलको पीड़ा देने लगे, तब सुशर्माने रणमें उस कुन्तीनन्दनके बड़ी फुरतीसे नौ बाण मारे ॥ ८ ॥ ९ ॥ और उनके बड़ेभारी सेनादलको त्रास देतेहुए बड़े जोरसे दहाड़ा तब तो और भी शूर रथी सोनेके परोंसे बँधे सीधे जानेवाले तेज बाणोंसे भीमसेन और धनञ्जयको घायल करने लगे, परन्तु वह रथियोंके मध्यमें खड़े हुए महारथी और विचित्र रूपवाले कुन्तीके दोनों पुत्र पशुओंके समूहमें मांस पानेके लिये घुसना चाहने वाले मदोत्कट सिंहोंके समान मालूम होते थे ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ शूर योधाओंके धनुष तथा बाणोंको काटकर ये दोनों वीर सैंकड़ों मनुष्योंके शिर काट २ कर गिरा रहे थे ॥ १२ ॥ इस लड़ाईमें सैंकड़ों रथ टूटगये, सैंकड़ों घुड़सवार कट गये तथा महावतों सहित बहुतसे हाथी भूमिपर कट२ कर गिर गये थे ॥ १४ जहां तहां मरे पड़े रथी तथा घुड़सवार चारों ओर पड़े२ तड़फते

सपन्नतः ॥ १५ ॥ हतैर्गजपदात्योघैर्वाजिभिश्च निषूदितैः । रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ १६ ॥ छत्रैश्च बहुधा च्छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः । अंकुशैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत १७ केयूरैरङ्गदैर्हारैराङ्कवैर्मृदितैस्तथा । उष्णीषैऋष्टिभिश्चैव चामरव्यजनैरपि ॥ १८ ॥ तत्र वातापविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः । ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी ॥१९॥ तत्राद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम् । शरैः संवार्य तान् वीरान् यज्जघान महाबलः ॥२०॥ पुत्रस्तु तत्र तं दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम् । गांगेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः॥२१॥कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाजहुः संयुगं तदा॥२२॥ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः । कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे ॥ २३ ॥ ततो बर्हिणवाजानामयुतान्यर्बुदानि च । धन-

---

हुए दीख रहे थे ॥ १५ ॥ कटेहुए हाथी, घोड़े और पैदलोंसे तथा टूटेहुए रथोंसे रणभूमि प्रायः छागयी थी ॥१६॥ हे भारत! कटेहुए छत्र,नीचे पड़ी हुई ध्वजायें, कटेहुए अंकुश फटी हुई झूलें ॥ १७ ॥ केयूर, बाजूबन्द, हार, रंकुमृगके चर्म, पगड़ियें, ऋष्टि, चँवर, पङ्खे और चन्दनसे चर्चित राजाओंके हाथ तथा जङ्घाओं से सब रणभूमि छारही थी ॥ १८ ॥ १९ ॥ उस समय रणमें हमने धनञ्जयका अचरजमें डालने वाला यह पराक्रम देखा, कि-वह महावीर धनञ्जय सब वीरोंको रोक कर बाणोंसे उनका संहार ही किये चला जाता था ॥ २० ॥ भीम और धनञ्जयके ऐसे पराक्रमको देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन गङ्गानन्दन भीष्मजीके रथकी ओरको गया उस समय कृपाचार्य,कृतवर्मा, सिंधका राजा जयद्रथ तथा उज्जैनके विंद और अनुविंद ये सब भीम और अर्जुनके सामने बराबर युद्ध कर रहे थे॥ २१ ॥ २२ ॥ बड़े धनुषवाले भीम तथा महारथी अर्जुनने कौरवोंकी सेनाको चारों ओरसे जोरके साथ भगाना आरम्भ कर दिया ॥ २३॥ तबतो

ञ्जयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः ॥ २४ ॥ ततस्तान् शर-
जालेन सन्निवार्य्य महारथान् । पार्थः समन्तात् समरे प्रेषयामास
मृत्यवे ॥ २५ ॥ शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥ तस्य पार्थो
धनुश्छित्वा हस्तावापञ्च पञ्चभिः।अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध
मर्मणि ॥ २७ ॥ अथान्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम् । मद्रेश्वरो
रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः ॥ २८ ॥ त्रिभिः शरैर्महाराज
वासुदेवञ्च पञ्चभिः । भीमसेनञ्च नवभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् २९
ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः। दुर्योधनसमादिष्टौ तं देश-
मुपजग्मतुः ॥ ३० ॥ यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः ।
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ ॥ ३१ ॥ जयत्सेनस्तु

दूसरे राजाओंने धनञ्जयके रथके ऊपर मोरके पङ्खोंवाले असंख्यों
बाण तले ऊपर छोड़ना आरम्भ कर दिये ॥ २४ ॥ धनञ्जयने
इन सब बाणोंको पीछेको लौटा कर उन महारथियोंका नाश कर
डाला ॥ २५ ॥ महारथी शल्यने बड़े कुपित होकर दृढ़ गांठवाले
भल्ल नामके बाणसे मानो खेल कररहा हो इसप्रकार अर्जुनकी
छातीमें प्रहार किया ॥ २६ ॥ अर्जुनने उसके धनुषको काट
डाला तथा पांच बाणोंसे उसके हाथोंके चमड़ेके दस्तानोंको
काट डाला और तेज बाण छोड़कर उसके मर्मस्थानमें गहरा
प्रहार किया ॥ २७ ॥ कोपमें भरे हुए मद्रराजने हाथमें दूसरा दृढ़
धनुष लेकर धनञ्जयके तीन बाणोंसे कृष्णके पांच बाणोंसे तथा
भीमके नौ बाणोंसे भुजाओंमें और छातीमें प्रहार किया ॥२८॥
हे महाराज! इतनेमें ही दुर्योधनकी आज्ञासे द्रोणाचार्य और महा-
रथी मगधराज ॥ ३० ॥ जहां भीमसेन और अर्जुन कौरवोंकी
सेनाका संहार कररहे थे तहां आपहुंचे, हे भरतसत्तम! मगधराज
जयत्सेनने भयानक आयुधवाले भीमसेनको तेज किये हुए

समरे भीमं भीमायुधं युधि । विव्याध निशितैर्बाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥ ३२ ॥ तं भीमो दशभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः । सारथिञ्चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३३ ॥ उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः। मागधोपहृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥ द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः । विव्याध बाणैर्निशितैः पञ्चषष्टिभिरायसैः ॥ ३५ ॥ तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे । विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत ॥ ३६ ॥ अर्जुनस्तु सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिरायसैः । व्यधमत्तस्य तत् सैन्यं महाभ्राणि यथानिलः ॥ ३७ ॥ ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः । समवर्त्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ३८ ॥ तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । अभ्यद्रवन्

आठ बाण मारकर घायल किया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब भीमने दश बाणोंका प्रहार करके और पांच बाणोंसे उसको बेध डाला तथा भल्ल नामका एक बाण मारकर जयत्सेनके सारथिको रथ की बैठक परसे नीचे गिरा दिया ॥३३॥ हे महाराज ! तब तो जयत्सेनके घोड़े भड़क कर घबड़ाये हुए चारों ओरको भागने लगे, इस प्रकार सब सेनाके सामने मगधराजको रणमेंसे पीछेको हटा दिया ॥ ३४ ॥ तब तो मारनेका अवसर पाते ही द्रोणाचार्यने फौलादके पैंसट तेज बाणोंसे भीमसेनके ऊपर प्रहार किया ३५ हे भारत ! तब भीमने भी अपने पिताके समान पूजनीय गुरु के पहिले भल्ल नामके पांच बाण मारकर फिर साठ बाण और मारे ॥ ३६ ॥ उधर धनञ्जयने भी सुशर्माके अनेकों बाण मारकर जैसे वायु मेघमण्डलको बखेर डालता है तैसे ही उसके सेनादल को बखेर डाला ॥ ३७ ॥ यह देख भीष्म, कोशलराज बृहद्बल तथा दुर्योधन बड़े क्रोधमें भरकर भीम और धनञ्जयकी ओरको झपटे ॥ ३८ ॥ तथा इसीप्रकार शूर पाण्डव और धृष्टद्युम्न भी

रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ३९ ॥ शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् । अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा महारथात् ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरमुखा पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् । अयोधयन् रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयैः ॥४१॥ तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम् । शिखण्डिप्रमुखान् पार्थान् योधयन्ति स्म संयुगे ॥ ४२ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं कौरवाणां भयावहम् । तत्र पाण्डुसुतैः सार्धं भीष्मस्य विजयं प्रति ॥ ४३ ॥ तावकानां जये भीष्मो ग्लह आसीद्विशाम्पते । तत्र हि द्यूतमासक्तं विजयायेतराय वा ॥ ४४ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु राजेन्द्र सर्वसैन्यान्यचोदयत् । अभ्यद्रवत गाङ्गेयं मा भैष्ट रथसत्तमाः ॥ ४५ ॥ सेनापतिवचः श्रुत्वा पाण्डवानां वरूथिनी । भीष्मं समभ्ययात्तूर्णं प्राणांस्त्यक्त्वा

मुख फैलाये हुए यमकी समान पितामहके ऊपरको चढ़ आये ॥३९॥ शिखण्डी भरतोंके पितामहके पास आते ही बड़ा प्रसन्न होता हुआ निर्भयताके साथ रथपरसे नीचे उतरकर दौड़ताहुआ आगेको आया ॥ ४० ॥ परन्तु युधिष्ठिर आदि कुन्तीके पुत्र शिखण्डीको रथमें बैठाल आगे किये हुए सृञ्जयोंको साथ लेकर भीष्मजीके साथ लड़ने लगे ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे पक्ष के सब योधा पितामहको आगे करके शिखण्डी आदि पाण्डवों के साथ लड़ने लगे ॥ ४२ ॥ तुरन्त ही भीष्मकी विजय करनेके लिये तथा शत्रुओंको हरानेके लिये क्रम से उद्यत हुए कौरवोंका तथा पाण्डवोंका भयानक युद्ध होने लगा ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! कौरव और पांडवोंमें हार जीतके लिये युद्ध रूप जुएका आरम्भ हुआ था उसमें भीष्म पितामह ग्लह (दांव) थे ॥ ४४ ॥ हे राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्न सब सेनादलको आवेश दिलाता हुआ कह रहा था, कि—हे रथियों ! तुम जरा भी भय न करके पितामह के ऊपर चढ़ जाओ ॥ ४५ ॥ अपने सेनापतिके ऐसे कहनेको सुनकर पाण्डवोंका सेनादल उस महारणमें प्राणोंकी आशा

महाहवे ॥४६॥ भीष्मोऽपि रथिनां श्रेष्ठः प्रतिजग्राह तां चमूम् । आपतन्तीं महाराज वेलामिव महोदधिः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमार्जुन पराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । कथं शान्तनवो भीष्मो दशमेऽहनि सञ्जय । अयुध्यत महावीर्य्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ १ ॥ कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान् प्रत्यवारयन् । आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याहव-शोभिनः ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । कुरवः पाण्डवैः सार्धं यदयु-ध्यन्त भारत । यथा च तदभूद्युद्धं तत्तु वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥३॥ गमिताः परलोकाय परमास्त्रैः किरीटिनः । अहन्यहनि संक्रुद्धा-स्तावकानां महारथाः ॥ ४ ॥ यथाप्रतिज्ञं कौरव्यः स चापि समि-तिञ्जयः । पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ५ ॥

त्याग कर पितामहके ऊपरको जाचढ़ा ॥ ४६ ॥ और जैसे महा-सागर सामने आये हुए किनारेको स्वीकार करता है तैसे ही रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने पाण्डवोंके बढ़े आते हुए सेनादलको ग्रहण किया ॥४७॥ एकसौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥११४॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे सञ्जय ! दशवें दिन शन्तनुके महावीर पुत्र भीष्मने पाण्डवोंके साथ तथा सृञ्जयोंके साथ किसप्रकार युद्ध किया था तथा कौरवोंने पाण्डवोंको किस प्रकार रोका था, संग्राम को शोभा देनेवाले पितामहके उस महायुद्धका सब वृत्तान्त मुझे सुना ॥ १ ॥ २ ॥ सञ्जय कहता है, कि—हे भारत ! कौरवोंने पाण्डवोंके साथ जिसप्रकार युद्ध किया था वह सब वृत्तान्त अब मैं आपसे कहता हूं, सुनिये ॥ ३ ॥ अर्जुनने उत्तम अस्त्रोंसे प्रतिदिन तुम्हारे महारथी योधाओंको परलोकमें भेजना आरम्भ करदिया ॥ ४ ॥ उस समय तुम्हारे महारथियोंने बड़े क्रोधमें भर कर लड़ना आरम्भ कर दिया और रणमें विजय पाने वाले कुरुवंशी भीष्म भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार युद्ध करके पांडवों

कुरुभिः सहितं भीष्मं युध्यमानं परन्तप । अर्जुनश्च सपाञ्चाल्यं संशयो विजयेऽभवत् ॥६॥ दशमेऽहनि तस्मिंस्तु भीष्मार्जुनसमागमे । अवर्त्तत महारौद्रः सततं समितिक्षयः ॥७॥ तस्मिन्नयुतशो राजन् भूयशश्च परन्तपः । भीष्मः शान्तनवो योधान् जघान परमास्त्रवित् ॥ ८ ॥ येषामज्ञातकल्पानि नामगोत्राणि पार्थिव । ते हतास्तत्र भीष्मेण शूराः सर्वेऽनिवर्त्तिनः ॥९ ॥ दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीम् । निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परन्तप ॥ १० ॥ स क्षिप्रं वधमन्विच्छन्नात्मनोऽभिमुखे रणे । न हन्यां मानवश्रेष्ठान् संग्रामे सुबहूनिति ॥ ११ ॥ चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव । अभ्यासस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥ युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । शृणुष्व वचनं तात

का संहार करने लगे ॥ ५ ॥ हे परन्तप ! जब भीष्मकी अधीनता में कुरुओंने और धनञ्जयकी अधीनतामें पाञ्चालोंने युद्धका आरम्भ किया तब किसकी विजय होगी इस विषयमें सबोंको सन्देह होने लगा ॥ ६ ॥ दशवें दिन जब धनञ्जय और पितामह के युद्धका आरम्भ हुआ, निरन्तर सेनादलका महाक्षय होने लगा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! परम अस्त्रको जाननेवाले परन्तप भीष्म ने उस संग्राममें हजारों योधाओंका नाश कर डाला ॥८॥ जिन के नाम और गोत्र मालूम नहीं थे ऐसे, संग्राममें पीछेको चरण न धरनेवाले अनेकों शूरोंको पितामहने रणमें मारडाला ॥ ९ ॥ हे परन्तप! दश दिन तक पाण्डवोंकी सेनाको सन्ताप देकर अन्तमें धर्मात्मा पितामहने अपने जीवनकी आशा छोड़ दी ॥ १० ॥ हे महाराज ! अन्तमें संग्राममें अपना मरण चाहने वाले तुम्हारे पिता महाबाहु देवव्रतने अपने मनमें अब मैं अधिक योधाओंका नाश नहीं करूँगा, ऐसा निश्चय किया और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको पास में देखकर हे राजन् ! उनसे इसप्रकार कहने लगे, कि-॥११॥ ॥ १२ ॥ हे महाप्राज्ञ ! हे सकल शास्त्रोंके जाननेवाले युधिष्ठिर

धर्म्यं स्वर्ग्यञ्च जल्पतः॥१३॥ निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनानेन भारत । घ्नतश्च मे गतः कालः सुबहून् प्राणिनो रणे ॥ १४ ॥ तस्मात् पार्थं पुरोधाय पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा । मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १५ ॥ तस्य तन्मतमाज्ञाय पांडवः सत्यदर्शनः । भीष्मं प्रति ययौ राजा संग्रामे सह सृञ्जयैः १६ धृष्टद्युम्नस्ततो राजन् पाण्डवश्च युधिष्ठिरः । श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्बलम् ॥ १७ ॥ अभिद्रवध्वं युध्यध्वं भीष्मं जयत संयुगे । रक्षिताः सत्यसंधेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना ॥१८॥ अयञ्चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः । भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥ १९ ॥ मा वो भीष्माद्भयं किञ्चिद-स्त्वद्य युधि सृञ्जयाः। ध्रुवं भीष्मं विजयेष्यामः पुरस्कृत्य शिखंडि-

मैं तुझसे तेरा हितकारी और स्वर्ग देनेवाला सत्यधर्म कहता हूं उसको तू सुन ! ॥ १३ ॥ हे तात भारत ! अब मुझे इस देहको धारण करनेकी इच्छा नहीं है रणमें असंख्यों प्राणियोंका संहार करते २ मुझे बहुतसा समय बीतगया है,इसलिये यदि तुम मेरा प्रिय काम करना चाहते हो तो अर्जुन पाञ्चाल और सृञ्जयोंको आगे करके मेरा प्राणान्त करनेका उद्योग करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! भीष्मके इस अभिप्रायको जानकर सत्यदर्शी पाण्डु-नन्दन युधिष्ठिर सृञ्जयोंको साथमें लेकर पितामहके साथ संग्राम करने लगे ॥ १६ ॥ और हे राजन् ! भीष्मकी इस बातको सुन कर धृष्टद्युम्न तथा युधिष्ठिरने अपने सेनादलको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी ॥ १७ ॥ कहा, कि—आगेको बढ़ो, और पितामहके साथ युद्ध करो,उनको जीत लो,शत्रुओंको जीतनेवाला यह धन-ञ्जय तुम्हारी पीछेसे रक्षा करेगा तथा यह महाधनुषधारी सेना पति धृष्टद्युम्न और भीमसेन भी तुम्हारी रक्षा करनेको तयार हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे सृञ्जयों ! आज तुम अपने मनमें भीष्मका जरा भी डर करना. आज हम शिखंडीको आगे करके भीष्मको

नम् ॥ २० ॥ ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः । ब्रह्मलोकपरा भूत्वा सञ्जग्मुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २१ ॥ शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवश्च धनञ्जयम् । भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥ २२ ॥ ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः । द्रोणेन सहपुत्रेण सहसेना महबलाः ॥ २३ ॥ दुःशासनश्च बलवान् सह सर्वैः सहोदरैः । भीष्मं समरमध्यस्थं पालयाञ्चक्रिरे तदा ॥ २४ ॥ ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् । शिखण्डिप्रमुखान् पार्थान् योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५ ॥ चेदिभिस्तु सपञ्चालैः सहितो वानरध्वजः। ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २६ ॥ द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् । अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥ २७ ॥ विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् । वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद

अवश्य जीतेंगे ॥ २० ॥ ऐसा निश्चय करके दशवें दिन कोपमें भरे हुए पांडव जीतेंगे, या ब्रह्मलोकको जायँगे ऐसा निश्चय करके युद्धके लिये तयार होगये ॥ २१ ॥ और शिखंडी तथा पांडुनन्दन धनञ्जयको आगे करके पितामहके वधका वड़ाभारी उद्योग करने लगे ॥ २२ ॥ तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे अनेकों देशोंके राजे अपने वड़े२ सेनादलोंको लेकर द्रोणाचार्य और अश्वत्थामाको आगे कर तथा अपने सगे भाइयोंके साथ आये हुए दुःशासनको लेकर उस समय रणभूमिके मध्यमें खड़े हुए पितामहकी रक्षा करने लगे ॥ २३ ॥ २४॥ भीष्मको आगे करके तुम्हारे योधाओंने शिखंडी आदि पांडवोंके साथ युद्ध करना आरम्भ करदिया ॥ २५ ॥ चेदी और पाञ्चालोंके सहित कपिध्वज अर्जुन, शिखंडीको आगे करके शन्तनुनन्दन भीष्मजीके सामने जा डटा ॥ २६ ॥ सात्यकी अश्वत्थामाके साथ लड़ने लगा, धृष्टकेतु, पौरवके साथ लड़ने लगा तथा युधामन्युने मंत्रियों सहित राजा दुर्योधनके साथ लड़ना आरम्भ किया ॥ २७ ॥ हे परन्तप राजन्! राजा विराट सेनासहित जयद्रथके साथ तथा हे परन्तप!

परन्तप ॥ २८ ॥ मद्रराजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः । भीमसेनोऽभिगुप्तस्तु नागानीकमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥ अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृताम्वरम् । द्रौणिं प्रति ययौ यत्त पाञ्चाल्यः सह सोदरैः ॥ ३० ॥ कर्णिकारध्वजञ्चैव सिंहकेतुररिन्दम । प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो वृहद्बलः ३१ शिखण्डिनश्च पुत्रास्ते पांडवश्च धनञ्जयम् । राजभिः समरे पार्थमभिपेतुर्जिघांसवः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे । सम्प्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥ ३३ ॥ तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत । तावकानां परेषाञ्च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे ॥ ३४ ॥ ततस्तेषां प्रतप्तानामन्योऽन्यमभिधावताम् । प्रादुरासीन्महाशब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ३५ शंखदुन्दुभिघोषञ्च वारणानां च बृंहितैः । सिंहनादश्च सैन्यानां

वृद्ध क्षत्रका उत्तराधिकारी तुम्हारे पुत्र चित्रसेनके साथ उत्तम धनुष बाण लेकर लड़ने लगा ॥ २८ ॥ सेनासहित महाधनुषधारी मद्रराजके साथ राजा युधिष्ठिर लड़ने लगे, तथा उत्तम प्रकारसे रक्षित भीमसेन तुम्हारी गजसेनाके साथ लड़ने लगा ॥ २९ ॥ शत्रुके सपाटेमें न आने वाले तथा सकल शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके श्रेष्ठ पुत्र अश्वत्थामाके सामने पाञ्चालकुमार अपने भाइयोंके साथ आया ॥ ३० ॥ कनेरकी ध्वजावाले अभिमन्युके सामने सिंहकी ध्वजा वाला राजकुमार वृहद्बल चढ़ आया ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र कुन्तीनन्दन धनञ्जय और शिखंडीको मारडालनेके लिये सब राजाओंके साथ उनके ऊपर टूटपड़े,॥ ३२ ॥ जब ये दोनों सेनादल संग्राममें महाभयानक पराक्रम दिखानेलगे तब उनके इधर उधरको दौड़नेकी धमक से भूमि डगमगाने लगी ॥३३॥ हे भारत ! शन्तनुनन्दन भीष्म को देखकर रणमें घूमते हुए दोनों पक्षके सेनादल घोलमेल हो गये ॥ ३४ ॥ हे भारत ! इसप्रकार अत्यन्त आवेशमें आकर एक दूसरेके सामनेको दौड़ते हुए सेनादलोंका बड़ाभारी शब्द सब दिशाओंमें फैलकर गूंजने लगा ॥ ३५ ॥ शङ्ख और दुन्दु-

दारुणः समपद्यत ॥ ३६ ॥ सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा । वीरांगदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥ ३७ ॥ रजोमेघास्तु सञ्जज्ञुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः । धनुषाञ्चापि निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥ ३८ ॥ बाणशंखप्रणादाश्च भेरीणाञ्च महास्वनाः । रथघोषश्च सञ्जज्ञे सेनयोरुभयोरपि ॥ ३६ ॥ पाशशक्त्यृष्टिसंघैश्च बाणौघैश्च समाकुलम् । निष्प्रकाशमिवाकाशं सेनयोः समपद्यत ॥ ४० ॥ अन्योऽन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे । कुञ्जरान् कुञ्जरा जघ्नुः पादातांश्च पदातयः ॥ ४१ ॥ तत्रासीत् सुमहद्युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह । भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥ ४२ ॥ तेषां समागमो घोरो बभूव युधि सङ्गतः । अन्योऽन्यस्य

भियोंके शब्द तथा हाथियोंके चिंघारनेके शब्द सुनाई आनेलगे तथा सेनाओंका सिंहोंकी दहाड़की समान दारुण द्वन्द होनेलगा ॥ ३६ ॥ वीरोंकी पहुंचियों, और मुकुटोंमेंकी मणियोंका चन्द्रमा और सूर्यके सा उजाला फीका पड़ने लगा ॥ ३७ ॥ धूलिरूप मेघकी घटा चारों ओर छागयी शस्त्ररूप बिजलीका कौंधा और धनुषोंके रोदोंका गरजनेके समान दारुण शब्द होने लगा ३८ बाणोंकी सरसराहट शङ्खोंके शब्द, भेरियोंके नाद और रथोंकी घरघराहट दोनों सेनाओंमें सुनाई आने लगी ॥ ३६ ॥ पाश, शक्ति, ऋष्टि और बाणोंके समूहका दोनों सेनादलोंके ऊपर पटाव होजानेसे आकाशमें अन्धकारसा छागया ॥४०॥ इस महा संग्राममें रथी रथियोंके ऊपर चढ़ आये,घोड़े घोड़ोंके सामने आ गये, हाथी हाथियोंको मारने लगे तथा पैदलोंने पैदलोंका कचर घांस करडाला॥४१॥हे राजन् ! जैसे मांसके लिये बाज लड़ते हैं तैसे ही लड़ते हुए कौरव और पाण्डवोंका भीष्मकी रक्षा वा वध के लिये रणभूमिमें ठना हुआ युद्ध बड़ा ही भयानक दीखता था इस बड़ेभारी संग्राममें विजयकी इच्छावाले कौरव और पांडवों का परस्परको मारडालनेके लिये आरम्भ किया हुआ युद्ध बड़ा

वधार्थाय जिगीषूणां महाहवे ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपदेशे
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

सञ्जय उवाच । अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् । महत्या सेनया युक्तं भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ १ ॥ दुर्य्योधनो रणे कार्ष्णिं नवभिर्नतपर्वभिः । आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैव त्रिभिः शरैः ॥२॥ तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरां स्वसामिव । प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्य्योधनरथम्प्रति ॥ ३ ॥ तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशाम्पते । द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥ ४ ॥ तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः । दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥ पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनांतरे । दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः ॥ ६ ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं चित्र-

---

ही घोर मालूम होता था ॥४२॥४३॥ एकसौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—हे महाराज! भीष्मको जीतनेके लिये पराक्रमी अभिमन्यु बड़े सेनादलको साथमें लाकर तुम्हारे पुत्रके साथ लड़ने लगा ॥ १ ॥ रणमें कुपित हुए दुर्योधनने अभिमन्यु की छातीमें नौ बाण मारे और फिर तीन बाण मारे ॥ २ ॥ तब द्रौपदीनन्दनने रणमें क्रोधमें भरकर कालकी बहिनके तुल्य एक घोर शक्ति दुर्योधनके रथ पर फेंकी ॥ ३ ॥ हे राजन्! इस घोर शक्तिको एकायकी अपने रथकी ओरको आती हुई देख कर महारथी दुर्योधनने एक तेज बाण मारकर उसके टुकड़े २ कर डाले ॥ ४ ॥ अपनी शक्तिको कटीहुई देखकर अतिकोपमें हुए अभिमन्युने दुर्योधनकी छाती और दोनों भुजदंडोंपर तीन बाण मारे ॥ ५ ॥ तथा भरतोंके महारथी अभिमन्युने फिर भी उसकी छातीमें अनेकों बाण मारे ॥ ६ ॥ हे भारत! अभिमन्यु और

रुश्च भारत । इन्द्रियप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥ ७ ॥
भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च । युयुधाते रणे वीरौ
सौभद्रकुरुपुङ्गवौ ॥ ८ ॥ सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परन्तपः ॥ ९ ॥ शैनेयोऽपि गुरोः
पुत्रं सर्वमर्मसु भारत । अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कवाजितैः
॥१०॥ अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः । त्रिंशता च
पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ११ ॥ सोऽतिविद्धो
महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः । द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान
महायशाः ॥१२ ॥ पौरवो धृष्टकेतुश्च शरैराच्छाद्य संयुगे । बहुधा
दारयाञ्चक्रे महेष्वासं महारथः ॥ १३ ॥ तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतु-
र्महारथः । त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याधाशु महाभुजः ॥ १४ ॥
पौरवस्तु धनुश्छित्त्वा धृष्टकेतुर्महारथः । ननाद बलवन्नादं विव्याध
च शितैः शरैः ॥ १५ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः

तुम्हारे पुत्रका युद्ध ऐसा घोर और विचित्र हुआ कि—उसको देखतेमें आनन्द आता था और देखने वाले सब राजे उसकी वाह वाह करते थे ॥ ७ ॥ भीष्मके वधके लिये और धनञ्जय की विजयके लिये अभिमन्यु और दुर्योधनने इस प्रकार रणमें युद्ध किया ॥ ८ ॥ क्रोधमें भरे वैरियोंको ताप देनेवाले ब्राह्मण-नन्दन परन्तप अश्वत्थामाने आवेशमें भरे हुए सात्यकीकी छाती में एक बाण मारा ॥ ९ ॥ हे भारत ! तब बड़े साहसी सात्यकी ने भी कङ्कके परोंसे बँधे हुए नौ बाण लेकर गुरुपुत्रके सब मर्म-स्थानोंको फोड़ दिया ॥ १० ॥ उस रणमें अश्वत्थामाने पहिले सात्यकीके नौ बाण मारकर फिर तीस बाण छातीमें और दो बाण भुजदंडों पर मारे ११ उस समय द्रोणनन्दन अश्वत्थामाके हाथसे अत्यन्त घायल हुए परमकीर्तिमान् और बड़े धनुषवाले सात्यकीने अश्वत्थामाके तीन बाण मारे ॥१५॥ महारथी पौरव-राजने महाधनुषधारी धृष्टकेतुको अनेकों बाणोंसे ढककर चारों ओर

शरैः । आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ १६ ॥ तौ तु तत्र महेष्वासौ महामात्रौ महारथौ । महता शरवर्षेण परस्परम-विध्यताम् ॥ १७ ॥ अन्योऽन्यस्य धनुश्छित्त्वा हयान् हत्वा च भारत । विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ॥ १८ ॥ आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपुरस्कृते । तारकाशतचित्रे च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ॥१९॥ प्रगृह्य विमलौ राजंस्तावन्योन्यमभिद्रुतौ । वासिता-सङ्गमे यत्तौ सिंहाविव महावने ॥ २० ॥ मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च । चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् २१ पौरवो धृष्टकेतुन्तु शंखदेशे महासिना । ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२२॥ चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम् ।

से घायल कर दिया इसीप्रकार महारथी महाबाहु धृष्टकेतुने तीस बाण छोड़कर पौरवराजके शरीरको फोड़ दिया १३-१४ तब महा-रथी पौरवने धृष्टकेतुके धनुषको काटकर सिंहकी समान गर्जना की और उसके ऊपर तेज बाण छोड़ने लगा १५ हे महाराज! तब हाथ में दूसरा धनुष लेकर धृष्टकेतुने उस पौरवके तिहत्तर तेज बाण मारे ॥ १६ ॥ इसप्रकार बड़े धनुषवाले और महापराक्रमी वह दोनों महारथी परस्पर बाणोंकी वर्षा करके एक दूसरेको छके देते थे ॥ १७ ॥ परस्परके धनुष काटकर तथा घोड़ोंको मारकर रथहीन हुए वह दोनों जने आवेशमें भरकर तलवारकी लड़ाई लड़ने लगे ॥ १८ ॥ गेंडेके चमड़ेकी चन्द्रमा और तारोंकी समान छोटी बड़ी सैंकड़ों फुल्लियें जड़ी विचित्र ढालें तथा चमचमाती हुई तलवारें हाथोंमें लेकर जैसे वनमें बड़ेभारी दो सिंह एक सिंहनीके लिये लड़ते हैं। तैसे ही वह दोनोंजने आपसमें जुटरहे थे ॥ १९-२० ॥ एक दूसरेके सामने आकर लड़नेके लिये कहकर वह अनेकों प्रकारके पैंतरे बदलतेहुए—आगेको बढ़े चले जाना और पीछेको हटजाना आदि युक्तियोंसे लड़ रहे थे २१ पौरवने 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहकर अपनी बड़ी तलवारसे धृष्टकेतुके कपाल पर प्रहार किया ॥ २२ ॥ तब चेदिराज धृष्ट-

आजघान शिताग्रेण जत्रुदेशे महासिना ॥ २३ ॥ तावन्योऽन्यं महाराज समासाद्य महाहवे । अन्योऽन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिन्दमौ ॥ २४ ॥ ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव । जयत्सेनो रथेनाजावपोवाह रणाजिरात् ॥ २५ ॥ धृष्टकेतुन्तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान् । अपोवाह रणे शूरः सहदेवः पराक्रमी ॥ २६ ॥ चित्रसेनः सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः । पुनर्विव्याध तं षष्ट्या पुनश्च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥ सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं विशांपते । दशभिर्दशभिश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥ २८ ॥ चित्रसेनश्च तं राजंस्त्रिंशता नतपर्वभिः। आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ॥ २९ ॥ भीष्मस्य समरे राजन् यशो मानञ्च वर्द्धयन् । सौभद्रो राजपुत्रं तं बृहद्बलमयोधयत् ॥ ३० ॥ पार्थहेतोः पराक्रांतो भीष्मस्यायोधनं प्रति । आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विध्वा

केतुने अपनी तेज और अनीदार बड़ी तलवारसे महात्मा पौरव के गलेकी हँसली पर घाव करदिया ॥ २३ ॥ हे महाराज! उस महारणमें वह दोनों आमने सामने डटकर थकियातेर भूमि पर गिरपड़े ॥ २४ ॥ तब तुम्हारा बेटा जयत्सेन पौरवको अपने रथमें डालकर रणभूमिमेंसे बाहर लेगया ॥ २५ ॥ और प्रतापवान् पराक्रमी, माद्रीका पुत्र सहदेव क्रोधमें भराहुआ धृष्टकेतुको रणमेंसे बाहर लेगया ॥२६॥ चित्रकेतुने पहिले सुशर्माके अनेकों बाण मारे और फिर साठ तथा नौ बाणोंसे छेदद़िया ॥ २७ ॥ तब कोपमें भरेहुए पाण्डवपक्षके राजा सुशर्माने तुम्हारे बेटेके ऊपर दश तेज बाण छोड़े ॥ २८ ॥ हे राजन्! तब चित्रसेनने उसके दृढ़ गांठवाले तीस बाण मारे, तब उसने भी कोपमें भर सामने से बाण छोड़कर चित्रसेनको घायल करदिया ॥२९॥ हे राजन! भीष्म पितामहके लिये आरम्भ हुए इस संग्राममें यश और मान को बढ़ाता हुआ सुभद्राका पुत्र राजकुमार बृहद्बलके साथ लड़रहा था ॥ ३० ॥ तथा भीष्मके साथ युद्ध करते हुए धनञ्जयको सदा

पञ्चभिरायसैः ॥ ३१ ॥ पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः सन्नत पर्वभिः। सौभद्रः कोसलेन्द्रस्तु विव्याधाष्टभिरायसैः ॥ ३२ ॥ नाकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः। कौसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ ३३ ॥ आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः। सोऽन्यत् कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३४ ॥ फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः। तयोर्युद्धं समभवत् भीष्महेतोः परन्तप ॥ ३५ ॥ संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः। यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत् ॥ ३६ ॥ भीमसेनो रथानीकं योधयन् बह्वशोभत। यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन् पर्वतोत्तमान् ॥ ३७ ॥ ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसन्निभाः। निपेतुरुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुन्धराम् ३८

यता देनेके लिये अनेकों प्रकारका पराक्रम कररहा था ॥३१॥ उसने फिर दृढ़ गांठवाले बीस बाण मारे तब सुभद्रानन्दनने कोशलेशके फौलादके आठ बाण मारे ॥ ३२ ॥ परन्तु कोसलेश रणमें जरा भी डगमगाया नहीं, तब अभिमन्युने उसके ऊपर और बाण मारे तथा दूसरा और एक बाण छोड़कर कोसलेन्द्र के धनुषको काटडाला ॥ ३३ ॥ तथा कङ्क पक्षीके परोंवाले तीस बाणोंसे उसके ऊपर फिर प्रहार किया, तब हाथमें दूसरा धनुष लेकर राजकुमार बृहद्बलने क्रोधके साथ अनेकों बाण छोड़कर अर्जुनके पुत्रको घायल करडाला, हे परन्तप महाराज ! पहिले देवासुरके संग्रामके समय जैसा बलि और इन्द्रका युद्ध हुआ था तैसा ही अत्यन्त कोपमें भरेहुए, तथा चित्र विचित्र प्रकारसे लड़ते हुए इन दोनों योधाओंका भीष्मके लिये महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ३४—३६ ॥ रथियोंकी सेनाके साथ युद्ध करता हुआ भीमसेन पहाड़ोंको फाडने वाला है वज्र जिसका ऐसे इन्द्रकी समान बड़ा ही दिपने लगा ॥ ३७ ॥ भीमके हाथसे मरते हुए पहाड़ोंके समान शरीरवाले हाथी इकट्ठे होकर भूमि पर ढहने लगे और उनकी चिंघाड़ोंसे सब पृथिवी गूंजगई ३८

गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ॥ विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे । महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास संगतम् ॥ ४० ॥ मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् । पीडयामास संरब्धो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ४१ ॥ विराटं सैन्धवो राजा विद्ध्वा सन्नतपर्वभिः । नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्पयत् ॥ ४२ ॥ विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीपतिः । त्रिंशद्भिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ४३ ॥ चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मायुधध्वजौ । रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ॥ ४४ ॥ द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे । महासमुदयं चक्रे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४५ ॥ ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद्धनुः । छित्वा पञ्चा-

पहाड़ोंकी समान तथा बिखरे हुए अञ्जनके ढेरकी समान प्रतीत होते हुए वह हाथी भूमिपर बिखरे पड़ेहुए पहाड़ोंसे मालूम होते थे ॥ ३९ ॥ बड़ेभारी सेनादलसे सुरक्षित होकर लड़नेको आये हुए मद्रराजको बड़े धनुषवाले राजा युधिष्ठिरने बड़ा ही कष्टदेना आरम्भ करदिया ॥ ४० ॥ तथा भीष्मके लिये लड़ते हुए मद्रराजने भी महारथी युधिष्ठिरको रणमें पीड़ा देनेमें कुछ कमी नहीं की ॥ ४१ ॥ सिन्धुराजने राजा विराटके पहिले नमीहुई गांठों वाले नौ तेज बाण मारे और फिर तीस तेज बाणोंका प्रहार किया ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! बड़ीसेनाके अधिपति राजा विराट ने तीस बाण सिन्धके राजाकी छातीमें मारे ॥ ४३ ॥ चित्र विचित्र धनुष तलवार तथा चित्र विचित्र कवच आयुध और ध्वजा ओंके कारणसे मत्स्य और सिंध देशके राजे इसप्रकार रणमें लड़ते हुए बड़ी ही शोभा पारहे थे ॥४४॥ द्रोणाचार्यने पांचाल कुमारके सामने आ दृढ़ गांठोंवाले हजारों बाण छोड़कर बड़ाभारी युद्ध मचाडाला ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! द्रोणाचार्यने द्रुपदनन्दन के धनुषको काटकर उसके पचीस बाण मारे, तब शत्रुओंके वीरों

शतेपूर्णां पार्षतं समविध्यत ॥ ४६ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा । द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥ ४७ ॥ ताञ्छराञ्छरघातेन चिच्छेद स महारथः । द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत्पञ्च सायकान् ॥ ४८ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा । द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ४९ तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम् । शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे ॥ ५० ॥ सा छिन्ना बहुधा राजन् द्रोणचापच्युतैः शरैः । चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ॥ ५१ ॥ गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुतापनः । द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारशवीं शुभाम् ॥ ५२ ॥ तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत । पार्षतञ्च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥ ५३ ॥ एवमेतन्महायुद्धं द्रोणपार्षतयोरभूत् । भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भया-

---

को मारने वाले धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष हाथमें ले द्रोणके ऊपर बाणोंकी मारामार करडाली ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ महारथी द्रोणने उन बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला और उस द्रुपद कुमारके पांच बाण मारे ॥ ४८ ॥ कोपमें भरेहुए वीर शत्रुओंको नाश करने वाले धृष्टद्युम्नने यमदण्डके समान एक गदा द्रोणाचार्यके मारी ॥ ४९ ॥ जरीके चीरेसे शोभायमान दीखती हुई उस गदाको एकसाथ अपने ऊपर आती हुई देखकर द्रोणाचार्यने पचास बाण छोड़कर उसको रणके बीचमें गिरादिया ॥५०॥ और द्रोणके धनुषमें से छूटेहुए बाणोंसे टुकड़े २ हुई वह गदा चूरा होकर भूमिपर गिरगई ॥ ५१ ॥ अपनी गदाको कटी हुई देखकर शत्रुको पीड़ा देनेवाले धृष्टद्युम्नने द्रोणके ऊपर एक लोहे का उत्तम शक्ति फेंकी ॥ ५२ ॥ हे भारत ! उस शक्तिको भी द्रोणने नौ बाणोंसे रणभूमिमें काटडाला और धृष्टद्युम्नको संग्राम में बड़ी भारी पीड़ा देनेलगा ॥ ५३ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार पितामहके लिये द्रोण और द्रुपदनन्दनका महाभयानक युद्ध हुआ

नकम् ॥ ५४ ॥ अर्जुनः प्राप्य गाङ्गेयं पीडयन्निशितैः शरैः । अभ्यद्रवत सम्मत्तो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ५५ ॥ प्रत्युद्ययौ च तं राजा भगदत्तः प्रतापवान् । त्रिधा भिन्नेन नागेन मदांधेन महाबलः ॥ ५६ ॥ तमापतंतं सहसा महेंद्रगजसन्निभम् । परं यत्नं समास्थाय बीभत्सुः प्रत्यपद्यत ॥ ५७ ॥ ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् । अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ५८ अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमैः । विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥ ५९ ॥ शिखण्डिनञ्च कौन्तेयो याहि याहीत्यचोदयत् । भीष्मं प्रति महाराज जह्येनमिति चाब्रवीत् ॥ ६० ॥ प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज । प्रययौ त्वरितो राजन् द्रुपदस्य रथं प्रति ॥ ६१ ॥ ततोर्ऽजुनो महाराज भीष्ममभ्य-

था ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! अर्जुन भीष्मके सामने पहुंचकर सान पर धरेहुए बाणोंसे उनको पीड़ा देता हुआ, जैसे उन्मत्त हुआ हाथी वनमें दूसरे हाथियोंके ऊपरको झपटता है तैसे ही उनके ऊपरको झपटा ॥ ५५ ॥ तब प्रतापी और महाबली राजा भगदत्त तीन स्थानोंमेंसे मद टपकाते हुए अपने मतवाले हाथीपर बैठकर उसके सामनेको आया ॥ ५६ ॥ इन्द्रके हाथीकी समान इस हाथीको अपने सामनेको वेगके साथ आते हुए देखकर धनञ्जय स्वस्थ होकर खड़ा होगया ॥ ५७ ॥ हाथी पर बैठेहुए राजा भगदत्तने अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा बरसाकर उसको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ५८ ॥ परन्तु हाथीको अपने सामने आते हुए देखकर धनञ्जयने उसके चांदीके समान चमकते हुए तीखे बाण मारे ॥ ५९ ॥ और हे महाराज ! फिर अर्जुनने शिखण्डीसे कहा, कि—आगेको बढ़ो, आगेको बढ़ो भीष्मके पास तक पहुंच जाओ और उनको मारडालो ॥ ६० ॥ हे पांडुके जेठे भाई ! तब प्राग्ज्योतिषराज पाण्डवोंको छोड़कर शीघ्रता से राजा द्रुपदके रथकी ओरको दौड़ा ॥ ६१ ॥ और हे महाराज !

द्रवद् द्रुतम् । शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ६२ ॥
ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं युधि । समभ्यधावन् क्रोशन्त-स्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६३ ॥ नानाविधान्यनीकानि पुत्राणान्ते जनाधिप । अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ६४ ॥
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् । इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत् ॥ ६५ ॥ रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्ति-गदेन्धनः । शरसंघमहाज्वालः क्षत्रियान् समरेऽदहत् ॥ ६६ ॥
यथाग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः। तथा जज्वाल भीष्मोपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन् ॥ ६७ ॥ सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान् । न्यवारयत तत् सैन्यं पाण्डवस्य महारथः ६८
सुवर्णपुंखैरिषुभिः शितैः सन्नतपर्वभिः । नादयन् स दिशो

अर्जुन शिखण्डीको आगे करके भीष्मके सामनेको एकसाथ दौड़ा तब बड़े जोरसे युद्ध होने लगा ॥६२॥ तुम्हारे शूर योधा बड़े वेगसे आगेको बढते हुए अर्जुनके ऊपर चढ़ आये और बड़े जोर२ से गरजने लगे, उस समय हमने यह अचरज देखा, कि—जैसे पवन आकाशमेंके मेघोंको बखेर डालता है तैसे ही अर्जुनने तुम्हारे नाना प्रकारके सेनादलोंको पीछेको हटा दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ शिखण्डी भरतवंशके पितामह भीष्मके सामने चढ़ आया और सावधान होकर उनके ऊपर बहुत से बाण बरसाने लगा ॥ ६५ ॥ जैसे अत्यन्त प्रज्वलित हुआ अग्नि पवन की सहायतासे वनको भस्म करडालता है तैसे ही जिनका रथ रूप अग्निकुण्ड तथा धनुषरूप लपटें, तलवार शक्ति और गदा रूप इन्धन था ऐसे बाणसमूह रूप महाज्वालाओं वाले भीष्मजी दिव्य अस्त्रोंसे संग्राममें शत्रुओंको भस्म करने लगे ॥ ६६ ॥ ॥ ६७ ॥ धनञ्जयके पीछे चलने वाले सेवकोंको पितामहने मार डाला तथा पाण्डवोंके सेनादलको आगे बढ़नेसे रोकदिया ६८ सुनहरी पर और दृढ़ गांठों वाले धारदार बाणोंसे सब दिशाओं

भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे ॥ ६९ ॥ पातयन् रथिनो राजन् हयांश्च सह सादिभिः । मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ॥७०॥ निर्मनुष्यान् रथान् राजन् गजानश्वांश्च संयुगे । चकार समरे भीष्मः सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ ७१ ॥ तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः । निशम्य सर्वतो राजन् समकम्पन्त सैनिकाः ॥ ७२ ॥ अमोघा न्यपतन् बाणाः पितुस्ते मनुजेश्वर । नासज्जन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥ ७३ ॥ निर्मनुष्यान् रथान् राजन् सुयुक्तान् जवनैर्हयैः । वातायमानानद्राक्षं ह्रियमाणान् विशाम्पते ॥ ७४ ॥ चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश । महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ७५ ॥ अपरावर्त्तिनः शूरा सुवर्णविकृतध्वजाः । संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ॥ ७६ ॥ जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवा-

और कोनोंको गुञ्जायमान करते हुए पितामहने रथियोंको, घोड़ोंको तथा घुड़सवारोंको मारकर रथसमूहोंको तालके ठुण्ठवनोंकी समान करडाला ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे राजन् ! शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पितामहने रथोंको मनुष्योंसे शून्य हाथियोंको महावतोंसे शून्य तथा घोड़ोंको सवारोंसे शून्य कर डाला ॥ ७१ ॥ हे महाराज ! मेघके गरजनेकी समान उनके रोदेकी टङ्कारको सुनकर चारों ओरके सेनादल कांपने लगे ॥ ७२ ॥ हे नरेन्द्र ! तुम्हारे पिताके बाणोंमेंका एक बाण भी खाली जाकर नहीं पड़ता था तथा पितामहके धनुषमेंसे निकले हुए बाण शरीरमें बिना घुसे रहते ही नहीं थे ॥ ७३ ॥ मनुष्योंसे शून्य हुए रथोंको लिये वेगमें भरे घोड़े पवनके समान वेगसे रणभूमिमें इधर उधर दौड़ने लगे ॥ ७४ ॥ मुख फाड़ कर आते हुए कालकी समान भीष्म के सामने आने वाले, अपने प्राणों को कुछ न गिनकर लड़नेवाले तथा पीछेको न हटनेवाले और जिन की ध्वजायें सोनेका थीं ऐसे चेदी, काशी और करूप देशके

न्तकम् । न तत्रासीद्रणे राजन् सोमकानां महारथः ॥ ७७ ॥ यः संप्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे । तांश्च सर्वान् रणे योधान् प्रेतराजपुरं प्रति ॥७८॥ नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् । न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्याति महारथः ॥ ७९ ॥ ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् । शिखण्डिनञ्च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ८० ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सञ्जय उवाच । शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषर्षभम् । दशभिर्निशितैर्भल्लैराजघान स्तनान्तरे ॥ १ ॥ शिखण्डिनन्तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा । सम्प्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥ २ ॥ स्त्रीत्वं तस्य स्मरन् राजन् सर्वलोकस्य पश्यतः ।

चौदह हजार महारथी राजपुत्र अपने हाथी, घोड़े और रथोंके साथ रणमें गिरगये, हे राजन्! सैनिकोंमें ऐसा एक भी महारथी नहीं था कि—जो पितामहके सामने आनेपर जीवित बचकर जानेकी आशा रखता हो, पितामहके पराक्रमको देखकर, उनके सामने लड़नेको जानेवाले सब योधाओंको लोग परलोक में सिधाराहुआ ही मानते थे, कोई भी महारथी रणमें भीष्मके सामने आनेका साहस नहीं करता था ॥ ७५—७९ ॥ केवल सफेद घोड़ोंवाला और श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं ऐसा पांडुनन्दन अर्जुन तथा परमतेजस्वी शिखण्डी ये दो जने ही भीष्म के सामने आनेका साहस रखते थे ॥ ८० ॥ एक सौ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ ११६ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि—पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीष्मके सामने आकर शिखण्डीने भल्ल नामके दश तेज बाण मारकर उनकी छातीमें प्रहार किया ॥१॥ हे भारत! उस समय क्रोधके मारे जिनके नेत्र लाल २ होरहे थे ऐसे पितामहने शिखण्डीकी ओरको ऐसी वक्र दृष्टिसे देखा कि-मानो उसको भस्म ही करडालेंगे ।२॥ हे राजन्

नाजघानं रणे भीष्मः स च तन्नावबुद्धवान् ॥ ३ ॥ अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत । अभिद्रवस्व त्वरितं जहि चैनं पितामहम् ॥ ४ ॥ किन्ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम् । न ह्यन्यमनुपश्यामि कञ्चिद्यौधिष्ठिरे बले ॥ ५ ॥ यः शक्तः समरे भीष्मं प्रतियोद्धमिहाहवे । ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥ एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ । शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमवाकिरत् ॥७॥ अचिन्तयित्वा तान् बाणान् पिता देवव्रतस्तव । अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः ॥ ८ ॥ तथैव च चमूं सर्वां पाण्डवानां महारथः । अप्रैषीत् स शरैस्तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष ॥ ९ ॥ तथैव पाण्डवा राजन् सैन्येन महता वृताः । भीष्मं सञ्छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १० ॥

यह स्त्री है, ऐसा मनमें विचारकर सब लोगोंके देखते हुए पितामहने उसके ऊपर प्रहार नहीं किया परन्तु शिखण्डी इस भेदको नहीं समझसका॥३॥ हे महाराज ! उस समय धनञ्जय शिखंडीसे कहने लगा, कि-अरे ! झट आगेको बढ़कर पितामहके ऊपर प्रहार कर ॥४॥ हे वीर! तुझसे बार२ कहनेकी आवश्यकता क्या है ? तू महारथी भीष्मको मार, युधिष्ठिरके सेनादलमें तेरे सिवाय और किसीमें भी इनको मारनेकी शक्तिवाला नहीं देखता हूं ॥ ५ ॥ हे पुरुषसिंह ! भीष्मके साथ युद्ध करसकनेवाला तेरे सिवाय और कोई नहीं है, यह मैं तुझसे सत्य कहता हूं ॥ ६ ॥ हे भरत सत्तम ! अर्जुनकी इस बातको सुनकर शिखन्डी तुरन्त अनेकों प्रकारके बाणोंसे पितामहको ढकने लगा ॥ ७ ॥ परन्तु हे महाराज ! इन बाणोंकी मारको कुछ भी न गिनकर कोपमें भरे तुम्हारे पिता भीष्मने अर्जुनके बाण मारकर उसको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ८ ॥ इतना ही नहीं किन्तु और भी हजारों तेज बाण मारकर पाण्डवोंके बहुतसे सेनादलको परलोकमें भेजदिया ॥९॥ हे राजन् ! इसीप्रकार पाण्डवोंने भी जैसे मेघ सूर्यको ढकदेता

स समन्तात् परिवृतो भारतो भरतर्षभ । निर्ददाह रणे शूरान् वने वह्निरिव ज्वलन् ॥ ११ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् । अयोधयच्च यत् पार्थं जुगोप च पितामहम् ॥ १२ ॥ कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः । दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः ॥ १३ ॥ यदेकः समरे पार्थान् सार्जुनान् समयोधयत् । न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुल्बणम् ॥ १४ ॥ दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः । सादिनश्च महेष्वासा हस्तिनश्च महाबलाः ॥ १५ ॥ विनिर्भिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्वसुधातले । शरातुरास्तथैवान्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः ॥ १६ ॥ यथाग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद्दीप्तार्चिरुल्बणम् । तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डुसेनां विनिर्दहन् ॥ १७ ॥ तं भारत महामात्रं पाण्डवानां महारथः ।

तैसे ही बाणोंकी वर्षा करके पितामहको ढकदिया ॥ १० ॥ हे भरतसत्तम ! पाण्डवोंके सेनादलसे घिरेहुए पितामहने वनमें धध करते हुए अग्निकी समान शूरोंको भस्म करडाला ॥ ११ ॥ तहां हमने तुम्हारे पुत्रका ऐसा अचरजभरा पुरुषार्थ देखा कि–वह धनञ्जयके साथ लड़ भी रहा था और पितामहकी रक्षा भी कर रहा था ॥ १२ ॥ समरमें तुम्हारे पुत्र धनुषधारी महात्मा दुःशासनके इस पराक्रमसे सब लोग प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ यह अकेला ही अर्जुनसहित पाण्डवोंके साथ लड़ रहा था, परन्तु इस उग्र वीरको पाण्डव जरा भी न रोक सके ॥ १४ ॥ उस रणमें दुःशासनने अनेकों रथियोंको रथशून्य करडाला और बड़े२ धनुषधारी घुड़सवार तथा महाबली हाथियोंको उस रणमें तेज बाणोंसे काटडाला, वह भूमिपर गिरने लगे और कितने ही हाथी बाणोंके घावसे व्याकुल होकर दशों दिशाओंमेंको भागने लगे ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ जैसे अग्नि लकड़ियोंके ढेरको पाकर धकधकाकर बल उठता है तैसे ही पाण्डवोंकी सेनासे भेटा होते ही तुम्हारा पुत्र बड़ा ही प्रज्वलित होकर संहार करने लगा ॥ १७ ॥ भरतवंशमें श्रेष्ठ तुम्हारे पुत्रकेसामने आनेको तथा उसको जीतनेको पांडवोंमेंसे कोई

जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाभ्युद्यातुं कथञ्चन ॥ १८ ॥ ऋते महेन्द्रतनयाच्छ्वेताश्वात् कृष्णसारथेः। स हि तं समरे राजन् निर्जित्य विजयोऽर्जुनः ॥ १९ ॥ भीष्ममेवाभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः। विजितस्तव पुत्रोपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः ॥ २० ॥ पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः। अर्जुनस्तु रणे राजन् योधयन् संव्यराजत ॥ २१ ॥ शिखण्डी तु रणे राजन् विव्याधैव पितामहम्। शरैरशनिसंस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः ॥ २२ ॥ न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर। स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान् बाणान् जगृहे तदा ॥ २३ ॥ उष्णार्त्तो हि नरो यद्वज् जलधाराः प्रतीच्छति। तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥ २४ ॥ तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे। भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पांड-

---

भी किसीप्रकार भी साहस न करसका॥ १८॥ जिसके घोड़े धौले और सारथी कृष्णहैं और जिसका नाम विजयभी है वह इन्द्रपुत्र अर्जुनही उसके सामने आसका था,वह तुम्हारे पुत्रको हराकर सब सेनादलके सामने भीष्मपितामहके ऊपर जा चढ़ा, तब पराजित हुआ तुम्हारा पुत्र दुःशासन भी पितामहके बलका भरोसा रख कर ॥ १९ ॥ २० ॥ वार२ आराम लेता हुआ मतवालासा होकर युद्ध करता रहा,हे राजन्! युद्ध करता हुआ धनञ्जय इस समय रणमें बड़ा ही शोभायमान मालूम होता था,हे महाराज! उस समय शिखण्डी सांपके समान विषधर और वज्रके समान दृढ़ बाणोंसे पितामहके ऊपर प्रहार करने लगा ॥ २१-२२ ॥ हे राजन्! वह बाण तुम्हारे पिताको जरा भी पीड़ा न देसके उस समय गङ्गानन्दनने उन बाणोंको हँसतेर सहलिया ॥ २३॥ जैसे गरमीसे घबड़ाया हुआ पुरुष जलकी धाराओंको आनन्द के साथ अपने ऊपर लेता है तैसे ही गङ्गानन्दनने शिखण्डीके बाणोंकी धाराको अपने ऊपर सहलिया ॥ २४ ॥ हे महाराज! उस महारणमें क्षत्रियोंने उन पितामहको बड़ा घोररूप और महा

वानां महात्मनाम् ॥ २५ ॥ ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष । अभिद्रवत सङ्ग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे ॥ २६ ॥ भीष्मो वः समरे सर्वान् पालयिष्यति धर्मवित् । ते भयं सुमहत्त्यक्त्वा पांडवान् प्रत्ययुध्यत ॥ २७ ॥ हेमतालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन् । सर्वेषां धार्त्तराष्ट्राणां समरे शर्म वर्म च ॥ २८ ॥ त्रिदशापि समुद्युक्ता नालं भीष्मं समासितुम् । किमु पार्था महात्मानं मर्त्यभूता महाबलाः ॥ २९ ॥ तस्मान्न द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे । अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि पाण्डवम् ॥ ३० ॥ सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः । तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः ॥ ३१ ॥ सर्वे योधा सुसंरब्धा बलवन्तो महाबलाः । ते विदेहा कलिङ्गाश्च दासेरकगणाश्च ह ॥ ३२ ॥

त्मा पाण्डवोंके सेनादलोंको भस्म करते हुए देखा ॥ २५ ॥ हे महाराज ! तब तुम्हारे पुत्रने अपने सब सेनादलोंसे कहा, कि—रणमें अर्जुनके ऊपर चारों ओरसे धावा करो ॥ २६ ॥ युद्धके धर्ममें प्रवीण पितामह हम सबोंकी रक्षा करेंगे, इसकारण तुम सब पांडवोंके साथ युद्ध करो, यह सुन वह बड़ेभारी भयको त्याग कर पांडवोंके साथ लड़ने लगे ॥ २७ ॥ तब तुम्हारा पुत्र फिर कहने लगा, कि—जिनकी ध्वजामें सोनेके तालके वृक्षका चिह्न है ऐसे पितामह हम सबोंके सुख और रक्षाके कारणभूत होनेसे कल्याण और कवचरूप हैं ॥ २८ ॥ इकट्ठे होकर आये हुए सब देवता भी महात्मा भीष्मको नहीं हटा सकते तो फिर महाबली होने पर भी मनुष्य धनञ्जयकी क्या बिसात है, ॥ २९ ॥ इस लिये हे योधाओं ! अर्जुनको अपने सामने आता हुआ देखकर भागो मत, मैं सावधान होकर पांडवोंके साथ युद्ध करनेको खड़ा हूं ॥ ३० ॥ और तुम सब राजे सावधान होकर मेरे साथमें रहो और मुझे सहायता दो, तुम्हारे धनुषधारी पुत्रकी इस बातको सुनकर ॥ ३१ ॥ बड़े आवेशमें भरेहुए महाबली विदेह, कलिङ्ग

अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीराश्च महारणे । बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः ३३ अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः। शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह॥ ३४ ॥ अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम् । एतान् सर्वान् सहानीकान् महाराज महारथान् ॥ ३५ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि सञ्चिन्त्य प्रसन्धाय धनञ्जयः । स तैस्तैर्महावेगैर्ददाहाशु महाबलान् ॥ ३६ ॥ शरप्रतापैर्बीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः । तस्य बाणसहस्राणि सृजतो दृढधन्विनः ॥ ३७ ॥ दीप्यमानमिवाकाशे गाण्डीवं समदृश्यत । ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णमहाध्वजाः ॥ ३८ ॥ नाभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः वानरध्वजम् । सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ॥ ३९ ॥ सगजाश्च गजारोहाः किरीटिशरताडिताः । ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृतासीद्वसुन्धरा ॥ ४० ॥ विद्रवद्भिश्च बहुधा

बाणोंका धनञ्जयके ऊपर टूटपड़े ॥ ३२ ॥ तथा उस महारणमें निषाद, सौवीर, बाह्लीक, दरद, प्रतीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबी, वसाती, शाल्व, शक, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय आदि भिन्नर देशोंके सब योधा भी, जैसे पतङ्ग अग्निमेंको टूट पड़ते हैं तैसे ही अर्जुन धनञ्जयके ऊपर टूटपड़े, हे महाराज ! सेनाओं सहित आगेको बढ़कर आते हुए इन सब महारथी योधाओंको ॥ ३३—३५ ॥ अर्जुनने अपने दिव्य अस्त्रोंको याद कर के तथा उनको वेगके साथ चढ़ाकर जैसे अग्नि पतङ्गोंको भस्म करने लगता है तैसे ही महाबली अर्जुन उनको भस्म करने लगा इस समय हजारों बाणोंको छोड़ते हुए दृढ़ धनुषवाले अर्जुन का गांडीव धनुष आकाशमें सदा ही प्रदीप्त दीखने लगा, जिनकी ध्वजायें कटकर बिखरी पड़ी थीं ऐसे वह सब योधा इकट्ठे होकर भी फिर कपिध्वजके पास आनेका साहस न करसके, परन्तु किरीटीके बाणोंसे घायल हुए रथी रथोंके सहित, सवार घोड़ों सहित और हाथीसवार योधा हाथियों सहित रणभूमिमें गिरने

वध्ये राज्ञां समन्ततः । अथ पार्थो महाराज द्रावयित्वा वरूथिनीम् ॥ ४१ ॥ दुःशासनाय सुबहून् प्रेषयामास सायकान् । ते तु भित्त्वा तव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ॥ ४२ ॥ धरणीं विविशुः सर्वे वल्मीकमिव पन्नगाः । हयांश्चास्य ततो जघ्ने सारथिञ्च न्यपातयत् ॥ ४३ ॥ विविंशतिञ्च विंशत्या विरथं कृतवान् प्रभुः । आजघान भृशञ्चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ४४ ॥ कृपं विकर्णं शल्यञ्च विद्ध्वा बहुभिरायसैः । चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ४५ ॥ एवन्ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष । दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ॥ ४६ ॥ सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना । पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान् ॥ ४७ ॥ प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः । तथैव शर-

लगे और देखते २ अर्जुनके बाणोंकी मारसे हारकर भागाभाग करते हुए हजारों राजाओंसे रणभूमि चारों कोनोंमें छागयी ॥ ३६—४१ ॥ हे महाराज! तुम्हारी सेनाको भगाकर धनञ्जय दुःशासनके ऊपर अनेकों बाण छोड़ने लगा, जैसे सांप रेतेके ढेरके बिलमें घुसजाते हैं, तैसे ही लोहेके फलोंवाले बाण तुम्हारे पुत्र दुःशासनको फोड़कर भूमिमें घुसे चले जाते थे, अर्जुनने उसके घोड़ोंको मारडाला और सारथीको भी नीचे गिरादिया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और फिर महात्मा अर्जुनने बीस बाण छोड़कर विविंशतिके रथको तोड़डाला तथा उसको रथशून्य करके दृढ़ गांठों वाले पांच बाणोंका प्रहार किया ॥ ४४ ॥ फिर कृपाचार्य, विकर्ण तथा शल्यको अनेकों बाणोंसे घायल करके और उनके घोड़ोंको भी मारकर कुन्तीनन्दनने उनके रथोंको भी तोड़डाला ॥ ४५ ॥ इसप्रकार जिनके रथ टूटगये हैं ऐसे कृपाचार्य शल्य, दुःशासन विकर्ण तथा विविंशति धनञ्जयसे हारकर भागगये, हे भरतसत्तम! दुपहर चढ़ आने पर इन महारथियोंको जीतकर अर्जुन धुएं रहित अग्नि की समान दमकने लगा और जैसे मध्याह्नके समय सूर्य

वर्षेण भास्करो रश्मिमानिव ॥ ४८ ॥ अन्यानपि महाराज ताप-
यामास पार्थिवान् । पराङ्मुखीकृत्य तथा शरवर्षैर्महारथान् ४६
प्रावर्त्तयत संग्रामे शोणितोदां महानदीम् । मध्येन कुरुसैन्यानां
पाण्डवानाञ्च भारत ॥ ५० ॥ गजाश्वरथसंघाश्च बहुधा रथि-
भिर्हताः । रथाश्च निहता नागैर्हयाश्चैव पदातिभिः ॥ ५१ ॥ अंत-
राच्छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च । निपेतुर्दिक्षु सर्वासु
गजाश्वरथयोधिनाम् ॥ ५२ ॥ छन्नमायोधनं राजन् कुण्डलाङ्गद-
धारिभिः । पतितैः पात्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः ॥ ५३ ॥ रथ-
नेमिनिकृत्तैश्च गजैश्चैवावपोथितैः । पादाताश्चाप्यधावन्त साश्वाश्च
हययोधिनः ॥ ५४ ॥ गजाश्वरथयोधाश्च परिपतुः समन्ततः ।
विकीर्णाश्च रथा भूमौ भग्नचक्रयुगध्वजाः ॥ ५५ ॥ तद्गजाश्व-
रथौघानां रुधिरेण समुक्षितम् । छन्नमायोधनं रेजे रक्ताभ्रमिव

अपनी किरणोंसे जगत्‌को तपाता है तैसे ही अर्जुन बाण छोड़
कर और भी अनेकों महारथियोंको सन्ताप देता हुआ रणमेंसे
भगाने लगा ॥४६-४६॥ हे भारत ! इसप्रकार अर्जुनने कौरवों
और पांडवोंके सेनादलोंके बीचमें रुधिरकी एक महानदी बहादी
५० अनेकों रथियोंने हाथियोंको मारडाला, हाथियोंने कितने
ही रथ तोड़डाले, और पैदलोंने कितने ही घोड़ोंको मारडाला ५१
हाथी, घोड़े और रथोंपर बैठकर युद्ध करनेवालोंके कटेहुए मस्तक
सब दिशाओंमें लुढ़केर फिरने लगे ५२ हे राजन् ! कुंडल और
पहुंची पहिरे हुए कितने ही कटेहुए और काटेजाते हुए महारथी
राजपुत्रोंसे सब रणभूमि छागयी ॥ ५३ ॥ हजारों योधा
रथोंके पहियोंके नीचे और हाथियोंके पैरोंके नीचे कुचल
कर रणमें पड़ेहुए दीखरहे थे, हजारों पैदल तथा घोड़े सवार
इधर उधरको भागाभाग करने लगे, हाथी तथा रथी, इधर उधर
को भागने लगे, जिनकी धुरी पहिये, जुए और ध्वजा आदि
टूटगये थे ऐसे सहस्रों रथ रणभूमिमें बिखरे पड़े थे ॥ ५४-५५ ॥
हाथी, घोड़े और रथोंपर बैठकर लड़ने वालोंके रुधिरसे लाल२

शारदम् ॥ ५६ ॥ श्वानः काकाश्च गृध्राश्च वृका गोमायुभिः सह । प्राणेदुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृग द्विजाः ॥ ५७ ॥ ववुर्बहुविधा-श्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः । दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु च नदत्सु च ॥ ५८ ॥ काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः । धूय-माना व्यदृश्यन्त सहसा मारुतेरिताः ॥ ५९ ॥ श्वेतच्छत्रसहस्राणि सध्वजाश्च महारथाः । विकीर्णाः समदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६० ॥ सपताकाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः । क्षत्रियाश्च मनुष्येन्द्र गदाशक्तिधनुर्धराः ॥ ६१ ॥ समंततश्च दृश्यंते पतिता धरणीतले । ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ॥ ६२ ॥ अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम् । तं शिखण्डी रणे यत्त-मभ्यद्रवत दंशितः ॥ ६३ ॥ ततः समाहरद्भीष्मस्तदस्त्रं पावकोप-

---

हुई रणभूमि शरद्ऋतुके लाल २ आकाश की समान दीखती थी ॥ ५६ ॥ खानेको मिलनेके कारण कुत्ते, कौए, गिद्ध, भेड़िये गीदड़ तथा और भी अनेकों प्रकारके विकराल प्राणी आनन्दमें मग्न होकर नानाप्रकारके शब्द करनेलगे ॥ ५७॥ सब दिशाओं में पवन बड़ी सुरसुराहटके साथ चलनेलगा, हजारों राक्षस तथा भूत दौड़ते हुए आकर भयानक शब्द करनेलगे ॥५८॥ सोनेकी रासें और बहुमूल्य पताकायें एकसाथ वायुसे कम्पायमान होकर इधर उधरको उड़ने लगीं ॥ ५९ ॥ हजारों सफेद छत्र और टूटीहुई ध्वजाओंवाले रथ चूरा २ होकर रणमें उलटे सीधे पड़ेहुए दीखनेलगे॥६० बाणोंसे पीडित हुए हाथी बड़ी २ पता काओंके सहित इधर उधरको भागने लगे,हे नरेन्द्र ! गदा,शक्ति और धनुषोंको हाथमें धारेहुए हजारों क्षत्रिय रणभूमिमें पड़ेहुए दीखने लगे ॥ ६१ ॥ जब रण में ऐसा दृश्य दीखरहा था उस समय धनुषधारियोंके सामने पितामह दिव्य अस्त्र लेकर अर्जुनके ऊपरको चढ़ आये, पितामह को आगे बढ़ते देखकर आवेशमें भराहुआ शिखण्डी उनके सामनेको दौड़आया ॥ ६२—६३ ॥

मम् । स्वरितः पाण्डवो राजन्मध्यमः श्वेतवाहनः ॥ ६४ ॥ भिन्न-
न्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

सञ्जय उवाच । समं व्यूढेष्वनीकेषु भूयिष्ठेष्वनिवर्त्तिनः । ब्रह्म-
लोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत॥१॥न ह्यनीकमनीकेन समसज्जत
संकुले । रथा न रथिभिः सार्धं पादाता न पदातिभिः॥२॥ अश्वा
नाश्वैरयुध्यन्त गजा न गजयोधिभिः । उन्मत्तवन्महाराज युध्यन्ते
तत्र भारत ॥ ३ ॥ महान्व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत ।
नरनागगणेष्वेवं विकीर्णेषु च सर्वशः ॥ ४ ॥ क्षये तस्मिन्महारौद्रे

तब भीष्मने अपने अग्निकी समान अस्त्रको पीछेको खेंचलिया
उसी समय सफेद घोड़ोंवाले रथमें बैठा हुआ अर्जुन भीष्म पिता
महको मूर्छित करके तुम्हारी सेनाका संहार करने लगा ॥६४॥
॥ ६५ ॥ एकसौ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११७ ॥ छ

सञ्जय कहता है, कि—जब दोनों सेनाओंके योधा बराबर
व्यूहके आकारमें गुथ गये, तब हे भारत ! पीछेको न
हटनेका निश्चय करके सब योधा ब्रह्मपरायण होकर खड़े होगये
अर्थात् या तो शूरता दिखा कर स्वर्गमें जायँगे, नहीं तो
युद्धमें मरकर ब्रह्मगति पावेंगे ऐसा निश्चय करके लड़नेको
तयार होगये ॥ १ ॥ इस संकुल संग्राममें सेनादल एक दूसरेके
साथ क्रमसे गुथकर खड़े नहीं हुए थे, एक पक्षके रथी तथा पैदल
दूसरे पक्षके रथ तथा पैदलोंके साथ और एक पक्षके घुड़सवार
दूसरे पक्षके घुड़सवारोंके साथ तथा हाथी हाथियोंके साथ नहीं
लड़े थे, किन्तु हे महाराज ! इसके विपरीत सब लोग उन्मत्तसे
होकर लड़े थे ॥ २ ॥ ३ ॥ दोनों सेनादलोंका महाभयानक घोल
मेल होगया था और मनुष्य हाथी आदि रणभूमिमें चारोंओर
फैल गये थे, ऐसा होनेपर परस्परको न पहचान सकनेवाले सेना

निर्विशेषमजायत । ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ॥५॥ दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान् । पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन् ॥ ६ ॥ सा वध्यमाना समरे पांडुसेना महात्मभिः । भ्राम्यते बहुधा राजन् मारुतेनेव नौर्जले ॥७॥ यथा हि शिशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति । तथा पांडुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति ॥ ८ ॥ तथैव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना । नवमेघप्रकाशाः पातिता बहुधा गजाः॥९॥ मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः । इषुभिस्ताड्यमानाश्च नराश्चैव सहस्रशः॥१०॥पेतुरार्त्तस्वरंघोरं कृत्वा तव महागजाः । आनद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥११॥छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः।तस्मिन्नेव महाराज महावीरवरक्षये॥१२॥भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनञ्जये । ते पराक्रान्तमालोक्य राजन्

दलोंका महाभयानक संहार होगया, हे भारत ! उस समय शल्य कृपाचार्य चित्रसेन ॥ ४ ॥ ५ ॥ दुःशासन, विकर्ण आदि योधा चमचमाते हुए रथोंमें बैठकर रणमें पाण्डवोंकी सेनाको कम्पायमान करने लगे ॥ ६ ॥ और जैसे पवनके झोंकेसे समुद्रमें जहाज डगमगाने लगता है तैसे ही शूरोंके हाथोंसे कटतीहुई पाण्डवोंकी सेना इधर उधरको भागने लगी ॥७॥ जैसे शिशिरकाल गौओंके मर्मस्थानोंको, फाड़देता है तैसे ही पितामहने पांडवोंकी सेनाके मर्म भागको नष्ट भ्रष्ट करडाला॥८॥ इसप्रकार ही महात्मा अर्जुनने नवीन घनघटाकी समान तुम्हारी सेनाके हजारों रथियोंको रणमें लुढ़कादिया ॥ ९॥ और धनञ्जयके फौलादी बाणोंसे कटकर रणमें पड़ेहुए तुम्हारे पक्षके हजारों योधा रणभूमिमें तड़फते हुए दीखने लगे ॥ १० ॥ बड़े२ हाथी भयानक चिंघाड़ें मारकर रणमें गिरने लगे, गहनोंसे सजे हुए शरीरोंवाले महात्मा योधाओंके कुण्डलों सहित कटहुए मस्तकोंसे सब रणभूमि छागयी और दिपनेलगी हे महाराज ! जब पितामह और अर्जुनने रणभूमिमें अपना२ बल दिखाना आरम्भ करदिया

मुखि पितामहम् ॥ १३ ॥ अभ्यवर्त्तन्त ते पुत्राः सह सैन्यपुरस्कृताः । इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ १४ ॥ पाण्डवानभ्यवर्त्तन्त तस्मिन् वीरवरक्षये । पाण्डवापि महाराज स्मरन्तो विविधान् बहून् ॥ १५ ॥ क्लेशान् कृतान् सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप । भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकाय तत्पराः १६ तावकांस्तत्र पुत्रांश्च योधयन्ति प्रहृष्टवत् । सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः ॥ १७ ॥ अभिद्रवन्त गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह । सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयाश्च ते ॥ १८ ॥ अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः । वध्यमानस्ततो राजन् पिता शान्तनवस्तत्र ॥ १९ ॥ अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान् । तस्य कीर्त्तिमतस्तात पुरा रामेण धीमता ॥ २० ॥ सम्प्रदत्तास्त्रशिक्षा

उस समय हजारों बड़े२ वीर पुरुषोंका नाश होने लगा, हे राजन् पितामहको संग्राममें अपना पूरा२ पराक्रम प्रकाशित करते हुए देखकर तुम्हारे पुत्र भी स्वर्गकी सुरत लगाकर मृत्युकी बाट देखते हुए अपने२ सेनादलोंको लेकर आगेको बढ़े और बड़े२ वीरोंका नाश करने वाले उस संग्राममें पाण्डवोंके ऊपर टूटपड़े, हे महाराज! उस समय शूर पाण्डव भी तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रोंके किये हुए द्वेषको याद करके निर्भयताके साथ ब्रह्मलोककी सुरत लगाकर तुम्हारे पुत्रोंके और सेनादलोंके साथ बड़े प्रसन्न होकर लड़ने लगे, इस समय पाण्डवोंका महारथी सेनापति वीर धृष्टद्युम्न अपनी सेनाओंसे कहने लगा, कि—हे सोमकों ! तुम इन सृञ्जयोंके साथ गङ्गानन्दनके ऊपर धावा करो, सेनापतिजी इस बातको सुनकर सोमक तथा सृञ्जय ॥ ११—१८ ॥ बाणोंकी वर्षासे घायल होने पर भी पितामहके ऊपरको दौड़े, इन योधाओं के बाणोंसे बिंधजाने पर भी तुम्हारे पिता भीष्मजी बड़े ही क्रोध में भरकर सृञ्जयोंके साथ युद्ध करने लगे. हे तात ! तुम्हारे पिता को पहिले बुद्धिमान् परशुरामजाने शत्रुओंके सेनादलका संहार

वै परानीकविनाशिनी । स तां शिक्षामधिष्ठाय कुर्वन् परबलक्षयम् ॥ २१ ॥ अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः । भीष्मो दश सहस्राणि जघान परवीरहा ॥ २२ ॥ तस्मिंस्तु दशमे प्राप्ते दिवसे भरतर्षभ । भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पाञ्चालेषु च संयुगे ॥ २३ ॥ गजाश्वममितं हत्वा हताः सप्त महारथाः । हत्वा पञ्च सहस्राणि रथानां प्रपितामहः ॥ २४ ॥ नराणाञ्च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश । दन्तिनाञ्च सहस्राणि हयानामयुतं पुनः ॥ २५ ॥ शिक्षाबलेन निहतं पित्रा तव विशाम्पते । ततः सर्वमहीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीम् ॥ २६ ॥ विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः । शतानीकञ्च समरे हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ २७ ॥ सहस्राणि महाराज राज्ञां भल्लैरपातयत् । उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनञ्जयम् ॥ २८ ॥ ये च केचन पार्थानामभियाता

करनेवाली जो अस्त्रविद्या सिखायी थी उस अस्त्रविद्याका प्रयोग करके भीष्मजीने शत्रुओंकी सेनाका नाश करना आरम्भ कर दिया ॥ १६–२१ ॥ शत्रुओंका नाश करने वाले वृद्ध कुरुपितामह ने हरएक दिनकी समान आज भी पाण्डवोंके दश हजार योधाओंका संहार करडाला, हे भरतसत्तम ! दशवें दिन अकेले भीष्मने मत्स्य और पाञ्चाल योधाओंके असंख्यों हाथी और घोड़े मारडाले तथा उनके सात महारथियोंको परलोकमें भेज दिया, फिर पांच हजार रथियोंको और मार डाला ॥२२–२४॥ उस रणमें पितामहने चौदह हजार मनुष्योंको मारकर एकहजार हाथी और दश हजार घोड़ोंको भी मारा ॥ २५ ॥ हे राजन् ! अपनी अस्त्रविद्याके बलसे तुम्हारे पितामहने इसप्रकार पाण्डवों की सेनाका नाश किया, सब राजाओंकी सेनाका संहार करके भीष्मजीने विराटके प्यारे भाई शतानीकको रणमें मारडाला, संग्राममें शतानीकको मारकर प्रतापी भीष्मने भल्ल नामके बाणों से दूसरे हजार राजाओंको मारडाला, इसप्रकार घोररूपसे होते हुए रणमें घबड़ाये हुए योधा अर्जुनको पुकारने लगे॥२७२८॥

धनञ्जयम् । राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम् ॥ २६ ॥ एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः । अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ ३० ॥ स कृत्वा सुमहत् कर्म तस्मिन् वै दशमेऽहनि । सेनयोरन्तरे तिष्ठन् प्रगृहीतशरासनः ॥ ३१ ॥ न चैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राजन् निरीक्षितुम् । मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥ ३२ ॥ यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे।तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्तापयामास भारत । तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः । उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥३४॥ एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः । सन्निहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति॥३५॥ बलात् संस्तम्भय-

इसके सिवाय पाण्डवोंके जोर योधा धनञ्जयके पीछे पीछे गये थे वह सब पितामहके सामने आते ही यमधाममें पहुंच गये ॥ २६ ॥ इसप्रकार पाण्डवोंके सेनादलको दशोंदिशाओंमें बाणोंके समूहसे घेरकर भीष्मजी कौरवोंके सेनादलके मुहानेपर खड़े होगये ॥ ३० ॥ दशवें दिन इस प्रकार बड़ाभारी पराक्रम करके हाथमें धनुष लियेहुए पितामह दोनों सेनाओंके मध्यभाग में खड़े होगये थे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उस समय ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नके समय शिरपर आकर तपते हुए सूर्यकी समान इस संग्राममें प्रतापसे दमकते हुए भीष्मजीकी ओरको देखनेको भी किसी राजाका साहस नहीं हुआ ॥ ३२ ॥ हे भारत ! जैसे इन्द्रने दैत्योंकी सेनाको सन्ताप दिया था तैसे ही भीष्मने पांडवों की सेनाको सन्ताप दिया ॥ ३३॥ भीष्मके ऐसे पराक्रमको देख कर देवकीनन्दन मधुसूदन अर्जुनसे प्रेमके साथ इसप्रकार कहने लगे, कि—॥ ३४ ॥ हे अर्जुन ! यह शन्तनुनन्दन भीष्म दोनों सेनाओंके मध्यमें आकर खड़े होगये हैं, अब तू अपना बल अजमाकर देख, इनका वध करनेसे ही तेरी विजय होगी ॥ ३५ ॥ जहां यह सेनाको नष्ट भ्रष्ट कररहे हैं तहां जाकर तू जोरावरी

रथेनं यत्रैषा भिद्यते चमूः । नहि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥३६॥ततस्तस्मिन् क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः । सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ ३७ ॥ स चापि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान् । शरव्रातैः शरव्रातान् बहुधा विदुधाव तान्॥३८॥ ततः पञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् । पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३९ ॥ यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह । सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ॥४०॥ द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् । सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः ॥ ४१ ॥ एते चान्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः । समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे ॥ ४२ ॥ ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम् । भीष्ममेवाभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ ४३ ॥ ततोऽस्यानुचरान् हत्वा सर्वान्

इनको रोक, हे विभो ! इनके बाणोंको तेरे सिवाय और कोई नहीं सहसकता ॥ ३६ ॥ कृष्णकी प्रेरणासे आवेशमें भरेहुए अर्जुनने उसी क्षणमें बाण बरसाकर पितामहको रथ, ध्वजा और घोड़ों सहित ढक दिया ३७ परन्तु कौरवोंके मुख्य योधाओं में श्रेष्ठ भीष्मने बाण छोड़कर धनञ्जयके बाणोंके समूहको बखेर दिया ॥ ३८ ॥ तब तो पाञ्चालराज, वीर्यवान् धृष्टकेतु पाण्डुनन्दन भीमसेन पृषतवंशी धृष्टद्युम्न दोनों भाई नकुल सहदेव, चेकितान पांचों केकय राजे, बड़ी शक्तिवाला सात्यकी, महाबाहु सुभद्रानन्दन, घटोत्कच ॥ ३९ ॥ ४० ॥ द्रौपदीके पांचों पुत्र, पराक्रमी शिखण्डी, कुन्तिभोज, सुशर्मा, विराट, तथा महाबली पाण्डुपक्षके दूसरे योधा आदि भीष्मजीके बाणोंसे पीड़ित होनेके कारण शोकमें मग्न होगये थे, परन्तु उन सबोंको अर्जुनने बचालिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ फिर शिखण्डी शीघ्र ही हाथमें बड़ा भारी आयुध लेकर बड़े वेगसे पितामहके सामनेको दौड़ा, अर्जुन पीछेसे उसकी रक्षा कररहा था ॥ ४३ ॥ रणविभागके पूरे२

रणविभागवित् । भीष्मयेवाभिदुद्राव योऽरत्नुतरराजितः ॥ ४४ ॥ सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४५ ॥ दुद्रुवुर्भीष्ममेवाजौ रक्षिता दृढधन्वना । अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥ ४६ ॥ दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः । ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः॥४७ बहुधा भीष्ममानर्च्छुर्मार्गणैः कृतमार्गणैः । विधूय तान् बाणगणान् ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः ॥ ४८ ॥ पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम् । चक्रे शरविघातञ्च क्रीडन्निव पितामहः ॥ ४९ ॥ नाभिसन्धत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः । स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मृत्य भीष्मो बाणान् शिखण्डिने॥५०॥जघान द्रुपदानीके रथान्

ज्ञानवाले अजित धनञ्जयने पहिले भीष्मके पीछे२ आनेवालों को मारडाला और फिर उनके ऊपर भी धावा किया ॥ ४४ ॥ और सात्यकी, चेकितान धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, नकुल और सहदेव ॥ ४५ ॥ आदि योधा अर्जुनकी रक्षामें पितामहके ऊपर चढ़ आये तथा अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी शस्त्र उठा कर पितामहके सामने चढ़ आये, संग्राममें पीछेको न हटाने वाले वह सब दृढ़ धनुषधारी भीष्मके साथ लड़नेके लिये आगेको चढ़ गये और शत्रुओंके बाणोंका नाश करनेवाले अनेकों बाण भीष्मजीके ऊपर छोड़ने लगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इन योधाओंके तथा दूसरे श्रे राजाओंके छोड़े हुए बाणोंको पीछेको हटाकर दृढ़ स्वभाववाले पितामह पाण्डवों की सेनामें घुसगये और मानो खेल कररहे हों इसप्रकार पाण्डवों की सेनाके ऊपर बाण मारने लगे ॥ ४८—४९ ॥ इसी समय पाञ्चालकुमार शिखण्डी सामने आया, परन्तु उसके स्त्रीपनेको याद करके उन्होने उसके ऊपर एक भी बाण नहीं छोड़ा और जब वह बाण छोड़देता था, तो भीष्म जी बार २ हँसदेते थे ॥ ५० ॥ जब पितामहने द्रुपदकी सेनाके

सप्त महारथाः । ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभूत्तदा ॥ ५१ ॥ मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् । ते नराश्वरथव्रातैर्मार्गणैश्च परन्तप ॥ ५२ ॥ तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् । भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रतपन्तं रणे रिपून् ॥ ५३ ॥ ततस्तस्य च तेषाञ्च युद्धे देवासुरोपमे । किरीटी भीष्ममानच्छत् पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ५४ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मपराक्रमे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच । एवन्ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् । विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य्य समन्ततः ॥१॥ शतघ्नीभिः सुघोराभिः परिघैश्च परश्वधैः । मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीयैश्च सर्वशः ॥२॥ शरैः कनकपुङ्खैश्च शक्तितोमरकम्पनैः । नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च सर्वशः । ३ ॥ अताडयन् रणे भीष्मं सहिता सर्वसृञ्जयाः ।

सात महारथियोंको मारडाला तब रणभूमिमें बड़ा कोलाहल मचगया ॥ ५१ ॥ और जैसे घनघटायें सूर्यको ढकदेती हैं, तैसे ही मत्स्य, पाञ्चाल, चेदि आदि के योधाओंने अकेले पितामहके ऊपर बाण वरसाकर उनको ढकदिया, शत्रुओंको संताप देनेवाले गङ्गानन्दन भीष्मका और पाण्डवदलके योधाओंका यह संग्राम देवता और असुरोंकेसा हुआ था, उस समय शिखण्डीको आगे किये हुए धनञ्जय भीष्मजीके ऊपर बराबर बाण छोड़ता ही रहा५२-५४ एकसौआठवां अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥

सञ्जय कहता है, कि – शिखण्डीको आगे करके सब पांडवोंने भीष्मको घेरलिया और उनके ऊपर चारों ओरसे बाण छोड़नेलगे ॥ १ ॥ महाघोर शतघ्नियोंसे, परिघोंसे, फरसोंसे, मुद्गरों से मूसलोंसे, प्रासोंसे, गोफनोंसे ॥ २ ॥ सोनेके पङ्खवाले बाणों से शक्ति तोमर और बछड़ेके दांतों के समान अस्त्र तथा भुशुण्डी आदि आयुधोंसे सब सृञ्जय भीष्मके ऊपर प्रहार करनेलगे,

स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ॥ ४ ॥ न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु । सन्दीप्तशरचापाग्निरस्त्रप्रसृतमारुतः ५ नेमिनिर्ह्रादसन्तापो महास्त्रोदयपावकः । चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ॥ ६ ॥ युगान्ताग्निसमप्रख्यः परेषां समपद्यत । विवृत्य रथसंघानामन्तरेण विनिःसृतः ॥ ७ ॥ दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् । ततः पाञ्चालराजञ्च धृष्टकेतुमचिंत्य च॥८॥ पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद विशाम्पते । ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवञ्च धनञ्जयम् ॥ ९ ॥ द्रुपदञ्च विराटञ्च धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम् । भीमघोषैर्महावेगैर्मर्मावरणभेदिभिः ॥ १० ॥ षडेतान्निशितैर्भीष्मः प्रविव्याधोत्तमैः शरैः । तस्य ते निशितान्

हजारों ओरसे मारामार होनेपर उनका कवच अनेकों स्थानोंमें फट गया, इसकारण उनके मर्मस्थानोंमें घाव होगये थे तो भी पितामह जरा भी विचलित नहीं हुए, जिसकी बाण और धनुष रूप लपटें थीं ॥३-५॥ जिसको अस्त्ररूप पवनकी सहायता थी रथके पहियोंकी घरघराहट ही जिसका ताप था बड़े२ अस्त्रोंका उदय ही जिसमें पावकपना था, चित्र विचित्र धनुषरूप बड़ी२ ज्वालायें था, और वीरोंका मरण ही जिसका इन्धन था ऐसा भीष्मरूप अग्नि, शत्रुओंको प्रलयकालके अग्निकी समान सन्ताप देरहा था, पितामह एक घड़ीमें रथोंकी पंक्तियोंको तोड़ कर बाहर निकलते थे, तो दूसरी घड़ीमें राजाओंके सेनादलके बीचमें खड़े दीखते थे, पाञ्चालराज तथा धृष्टकेतुको कुछ न गिनकर भीष्मजी पांडवोंके सेनादलके बीचमें आये ॥६॥९॥ और भीम, सात्यकी, पाण्डुपुत्र धनञ्जय, राजा द्रुपद, विराट धृष्टद्युम्न इन छः योधाओं को महावेग वाले और कवचको तोड़ डालने वाले बाणोंसे घायल करदिया, पितामहके इन बाणोंको पीछे हटाकर उनमेंके हरएक महारथी योधाने जोरसे दश२ बाण मारकर पितामहको बेध डाला ओनेके पङ्खोंवाले तथा सान्पर धरेहुए जिन बड़े२ बाणोंको शिल-

बाणान् सन्निवार्य्य महारथाः ॥ ११ ॥ दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्द्-यामासुरोजसा । शिखण्डी तु महाबाणान् यान्मुमोच महारथः ॥ १२ ॥ न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वर्णपुंखाः शिलाशिताः । ततः किरीटी संरब्धो भीष्म मेवाभ्यधावत ॥ १३ ॥ शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत् । भीष्मस्य धनुश्छेदं नामृष्यन्त महारथाः ॥ १४ ॥ द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः । भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च ॥ १५ ॥ सप्तैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः । तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ॥ १६ ॥ अभिपेतुर्भृशं क्रुद्धाश्छादयन्तश्च पाण्डवम् । तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फाल्गुनं प्रति ॥ १७ ॥ उद्धूतानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये । हतानयत गृह्णीत विध्यध्वमवकर्तत १८ इत्यासीत्तुमुलः शब्दः फाल्गुनस्य रथं प्रति । तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ १९ ॥ अभ्यधावन् परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ । सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः २०

ण्डी छोड़ता था वह बाण पितामहको जरा भी कष्ट नहीं देते थे यह देखकर कोपमें भरा हुआ धनञ्जय शिखण्डीको आगे करके भीष्मके सामने आया और उनके धनुषको काट डाला भीष्मजीके धनुषका कटना नहीं सहागया इसकारण द्रोण, कृतवर्मा, सिन्धका राजा जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य तथा भगदत्त ये सात योधा ।१०-१५। बड़े क्रोधमें भरकर अर्जुनके ऊपर टूटपड़े अपने दिव्य अस्त्रोंको चलाते हुए ये महारथी योधा अर्जुनको ढकने लगे, अर्जुनके ऊपर चढ़कर आये हुए इन योधाओंने प्रचण्ड कोलाहल किया था ऐसा, कोलाहल प्रलयकालमें उछलते हुए सागरका हुआ करता है । अर्जुनके रथके आगे मारो, मरोड़ डालो, टुकड़े २ कर दो, काट डालो, ऐसे ही शब्द कौरवोंके सेनादलमेंसे सुनाई आते थे, हे भरतसत्तम ! ऐसे घोर शब्दको सुनकर पांडवोंके महारथी अर्जुनकी रक्षा करनेको दौड़े सात्यकी, भीमसेन, पृषतवंशी

विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः। अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २१ ॥ समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुक-धारिणः। तेषां समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२ ॥ संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव। शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ २३ ॥ अविध्यद्दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे। सारथिं दशभिश्चास्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे ॥ २४ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम्। तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभि-श्चिच्छेद फाल्गुनः ॥ २५ ॥ एवं स पांडवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः। धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परन्तपः ॥ २६ ॥ स छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन्। शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारणीम् ॥ २७ ॥ तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति। तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ २८ ॥

धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, राक्षस घटोत्कच और कोपमें भरा हुआ अभिमन्यु ये सात योधा हाथोंमें चित्र विचित्र धनुष लेकर कोप में भरेहुए आगेको बढ़े चले आये, तब तो उनका और कौरवों का देवता और असुरोंकेसा रोमाञ्च खड़े करनेवाला घोर युद्ध होने लगा ॥ १६ ॥ २२ ॥ अर्जुनके उत्तमताके साथ रक्षा पाये हुए शिखण्डीने धनुषरहित हुए भीष्मको दश बाणोंसे बेध डाला था तथा दूसरे दश बाणोंसे उनके सारथीको मारकर एक बाण से उनकी ध्वजाको काट डाला ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुरन्त ही गङ्गा-नन्दनने दूसरा प्रबल धनुष हाथमें लिया कि—अर्जुनने उस को भी तीन बाणोंसे काट डाला ॥ २५ ॥ इसप्रकार कुपित हुए अर्जुनने भीष्मने जो २ धनुष हाथमें लिया उस २ को ही काट डाला ॥ २६ ॥ धनुषोंके कटजानेसे कोपमें भरेहुए पितामहने होठ चीबकर पहाड़ोंको भी फाड़ डालने वाली एक शक्ति हाथ में ली ॥२७॥ और क्रोध करके अर्जुनके रथके ऊपर फेंकी, जलते हुए वज्रकी समान इस शक्तिको अपने रथके ऊपर आती हुई

समादृत्य शितान् भल्लान् पञ्च पांडवनन्दन । तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥ संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेपिताम् । सा पपात तथा च्छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ ३० मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतह्रदा । छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः ॥ ३१ ॥ अचिन्तयद्रणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः । शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान् ॥ ३२ ॥ यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः । कारणद्वयमास्थाय नाहं योत्स्यामि पांडवान् ॥३३॥ अवध्यत्वाच्च पांडूनां स्त्रीभावाच्च शिखंडिनः । पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहत् ॥ ३४ ॥ स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा । तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवात्मनः ॥ ३५ ॥ एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्यामित-

---

देखकर ॥ २८ ॥ अर्जुनने धनुषके ऊपर पांच बाण चढ़ाये और उनसे उस शक्तिके पांच टुकड़े करडाले ॥२९॥ हे भरतसत्तम ! कोपमें भरे हुए अर्जुनके हाथसे कटीहुई भीष्मजीकी शक्ति मेघमण्डलमें से गिरने पर बिखरी हुई बिजलीकी समान कट कर नीचे गिर पड़ी अपनी शक्तिको कटीहुई देखकर कोपमें भरेहुए शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले भीष्मजी॥३०॥३१॥अपने मनमें विचार करने लगे, कि—यदि महाबलवान् विष्णु इनकी रक्षा नहीं करते हों तो मैं एक धनुषसे ही इन सब पांडवोंको मार सकता हूं, परन्तु मैं दो कारणोंसे पांडवोंके साथ युद्ध नहीं करता हूं एक तो पाण्डवों को मारना मेरे लिये उचित नहीं है, दूसरे मेरे सामने पड़ने वाला यह शिखंडी स्त्री है पहिले मेरे पिताने मत्स्यगन्धाके साथ विवाह करते समय मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे दो वरदान दिये थे, कि—तू जब चाहेगा तब ही मरेगा तथा रणमें तुझे कोई नहीं मारसकेगा, जबकि अब स्वच्छन्द मरणका समय आगया है तो मैं अपनी इच्छानुसार क्यों न मरूँ? ॥ ३२ ॥ ३५ ॥ परमतेजस्वी भीष्मजीके ऐसे निश्चय

तेजसः । ऋषयो वसवश्चैव वियत्स्था भीष्ममब्रुवन् ॥ ३६ ॥ यत्ते व्यवसितं तात तदस्माकमपि प्रियम् । तत् कुरुष्व महाराज युद्धे बुद्धिं निवर्त्तय ॥ ३७ ॥ अस्य वाक्यस्य निधने प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः । अनुलोमः सुगन्धी च पृषतैश्च समन्वितः ॥ ३८ ॥ देवदुन्दुभयश्चैव सम्प्रणेदुर्महास्वनाः । पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि मारिष ॥ ३९॥ न च तच्छुश्रुवे कश्चित्तेषां सम्वदतां नृप । ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा ॥ ४० ॥ सम्भ्रमश्च महानासीत् त्रिदशानां विशाम्पते । पतिष्यति रथाद्भीष्मे सर्वलोकप्रिये तदा ॥ ४१ ॥ इति देवगणानाञ्च वाक्यं श्रुत्वा महातपाः । ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाभ्यवर्त्तत ॥ ४२ ॥ भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः । शिखण्डी तु महाराज भरतानां

को जानकर आकाशमें खड़े हुए सब वसु और ऋषि उनसे कहने लगे, कि—हे तात ! तुमने जो निश्चय किया है यह हमें परमप्रिय है, तुम युद्धमेंसे चित्तको हटा दो और अपने निश्चयको सफल करो॥३६॥३७॥ इस बातको पूरी २ कहने भी नहीं पाये थे, कि—इतनेमें ही शुभसूचक सुखदायक स्पर्शवाला सुगंधित पवन जलके कणोंसे शीतल होकर दक्षिणमें चलने लगा ॥ ३८ ॥ देवताओंके नगाड़े बजने लगे और हे राजन् ! भीष्मके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! ऋषियों और वसुओंकी इस बातको भीष्मजीके सिवाय तथा व्यासमुनिके प्रभाव से मेरे सिवाय और कोई नहीं सुनसका था ॥ ४० ॥ हे राजन् ! सब लोकोंके प्यारे भीष्मजी रथमेंसे गिर पड़ेंगे, ऐसा विचार आते ही उस समय देवताओंको भी बड़ा अचरज हुआ॥४१॥देवताओं की इस बातको सुनकर परम तपवाले पितामह धनञ्जयके साथ लड़नेको तयार नहीं हुए ॥ ४२ ॥ यद्यपि वह कवचको फोड़ डालनेवाले तेज बाणोंसे घायल होरहे थे तो भी उन्होंने

पितामहम् ॥ ४३ ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः । स तेनाभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४४ ॥ नाकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाचलः । ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन् गांडिवं धनुः ॥ ४५ ॥ गांगेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् । पुनः पुनः शतैरेनं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ४६ ॥ सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् । एवमन्यैरपि भृशं विध्यमानः सहस्रशः ॥४७॥ तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः । तैश्च मुक्ताञ्छरान् भीष्मो युधि सत्यपराक्रमः ॥ ४८ ॥ निवारयामास शरैः समं सन्नतपर्वभिः । शिखण्डी तु रणे बाणान् यान् मुमोच महारथः ॥ ४९ ॥ न चक्रुस्ते रुजं तस्य रुक्मपुंखाः शिलाशिताः । ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाभ्यवर्त्तत ॥५०॥ शिखंडिनं पुरस्कृत्य

अर्जुनके साथ लड़नेका विचार छोड़ दिया, हे महाराज ! शिखंडी ने क्रोधमें भरकर भरतोंके पितामह भीष्मजीकी छातीमें नौ बाण मारे, परन्तु हे महाराज ! भूचालके समय भूमि डगमगाया करती है पहाड़ नहीं कांपा करते हैं,इसप्रकार ही शिखंडीके बाणों से बिंधजाने पर भी भीष्मजी जरा भी कम्पायमान नहीं हुए, फिर अर्जुनने मुसकुरानके साथ गांडीव धनुषको खेंचकर ॥४३॥ ॥ ४४ ॥ पितामहके पचीस बाण मारे और क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने फिर झटपट तले ऊपर सौ बाण छोड़कर भीष्मजीके सब मर्मस्थानोंमें मारे इसप्रकार ही और भी योधा भीष्मजीके ऊपर हजारों बाणोंका महार कररहे थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वह महारथी भीष्मके सामने बाण छोड़कर प्रहार कर रहे थे सत्यपराक्रम वाले पितामह दूसरे राजाओंके छोड़े हुए बाणोंके सामने बाण छोड़कर उनको हटारहे थे, परन्तु शिखंडीने सोनेके परोंवाले जो२ बाण छोड़े उन बाणोंने भीष्मजीको जरा भी पीड़ा नहीं दी और उसके ऊपर भीष्मजीने प्रहार भी नहीं किया,तदनन्तर आवेशमें भरा हुआ अर्जुन पितामहके पास आपहुंचा ॥ ४८ ॥

धनुश्चास्य समाच्छिनत् । अथैनं नवभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ ५१ ॥ सारथिं विशिखैश्चास्य दशभिः समकम्पयत् । सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम् ॥ ५२ ॥ तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरपातयत् । निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्रं महारणे ॥ ५३ ॥ एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ । ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नात्यवर्त्तत ॥ ५४ ॥ अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् । सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभाषत ॥ ५५ ॥ एष पार्थो रणे क्रुद्धः पांडवानां महारथः । शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाभ्यहनद्रणे ॥ ५६ ॥ न चैष समरे शक्यो जेतुं वज्रभृता अपि । न चापि सहिता वीरा देवदानवराक्षसाः ॥५७॥ मां चापि शक्ता निर्जेतुं किमु मर्त्या महारथाः । एवं तयोः सम्व-

॥ ५० ॥ और शिखंडीको आगे करके अर्जुनने पितामहका धनुष फिर काट डाला तथा नौ बाणोंसे उनको वेधकर एक बाणसे उनकी ध्वजाको काटडाला ॥ ५१ ॥ तथा दश बाणोंसे उनके सारथीको कम्पायमान कर डाला गङ्गानन्दन भीष्मने फिर एक भारी धनुष हाथमें उठाया अर्जुनने तीन बाणोंसे उसको भी काट डाला, पल २ पर पितामह हाथमें नया धनुष लेते थे और अर्जुन भी पलभरमें ही उनके धनुषको काट डालता था ॥५२॥ ॥ ५३ ॥ इसप्रकार अर्जुनने रणमें जब भीष्मजीके अनेकों धनुष काट डाले तब शन्तनुनन्दन पितामहने उसके साथ युद्ध करना बन्द करदिया परन्तु अर्जुनने भीष्मजीके पचीस बाण मारे तब बहुत ही विंधे हुए महाधनुषधारी भीष्मजी दुशासनसे कहने लगे कि-देख ! देख ! यह पांडवोंका महारथी योधा अर्जुन, अत्यन्त कोपमें भरा हुआ हजारों बाण छोड़कर रणमें मुझेही वींधे डालता है॥५४॥५६इसको रणमें इन्द्र भी नहीं जीत सकता और अपने विषयमें कहूंतो देवता, और सब राक्षस इकट्ठे होकर मेरे साथ लड़ने लगें तो भी मुझे कोई नहीं जीत सकता, फिर इन मनुष्य

दतो: फाल्गुनो निशितैः शरैः ॥ ५८ ॥ शिखंडिनं पुरस्कृत्य भीष्मं विव्याध संयुगे । ततो दुःशासनं भूयः स्मयमान इवाब्रवीत् ॥ ५६ ॥ अतिविद्धः शितैर्बाणैर्भृशं गांडीवधन्वना । वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि ॥ ६० ॥ मुक्ताः सर्वेऽप्यवच्छिन्ना नेमे बाणाः शिखण्डिनः । निकृन्तमाना मर्माणि दृढावरणभेदिनः ॥ ६१ ॥ मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः । ब्रह्मदंडसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ॥ ६२ ॥ मम प्राणानारुजन्ति नेमे बाणाः शिखंडिनः॥ नाशयन्तीव मे प्राणान् यमदूता इवाहिताः

महारथियों की तो शक्ति ही क्या है ? भीष्मजी दुःशासनके साथ इस प्रकार बातें कररहे थे, कि-इतनेमें ही शिखंडीको आगेको चला कर अर्जुनने पितामहके ऊपर तेज बाण छोड़ना आरम्भ कर दिया, उस समय गांडीवधनुषधारी धनञ्जयके बाणोंसे अत्यन्त विंधे हुए भीष्मजी मुसकुराकर फिर दुःशासनसे कहने लगे, कि-वज्रकी समान चोट मारनेवाले ॥ ५७—६० ॥ जो बाण सरर करते हुए तल पर तल मेरे ऊपरको चले आरहे हैं, यह अर्जुन के हैं, ये बाण शिखंडीके छोड़े हुए नहीं होसकते, कवचको फोड़ कर मर्मस्थानोंमें घुसते हुए जो बाण मेरे मूसलकी समान लगते हैं, ये बाण शिखंडीके नहीं होसकते, वज्रके समान स्पर्शवाले और बिजलीके समान डरावने जो बाण ब्रह्मदंड (१) की समान मेरे प्राणोंको पीड़ा देते हैं, यह बाण शिखण्डीके नहीं होसकते, यमके भेजे हुए दूतोंके समान मेरे प्राणों

(१)—ब्रह्मदण्डका अर्थ है ब्राह्मणकी बांसकी लाठिया ब्राह्मण के तपके प्रतापसे यह पतली लकड़ी इंद्रके वज्रसे भी अधिक बल बली है । तपके प्रतापसे इन्द्रका वज्र तो जिसके ऊपर पड़ता है उसका ही नाश करता है परन्तु ब्रह्मदण्ड तो जगत्का और वंशवेल तकका नाश करडालता है । केवल एक ब्रह्मदण्डसे ही मुनि वशिष्ठने विश्वामित्रके सकल दैवी अस्त्र शस्त्रोंको नीचा दिखाया था ।

॥ ६३ ॥ गदापरिघसंस्पर्शा नेमे बाणाः शिखंडिनः । भुजगा इव संक्रुद्धाः लेलिहाना विषोल्बणाः ॥ ६४ ॥ समाविशन्ति मर्माणि नेमे बाणाः शिखंडिनः । अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ६५ ॥ कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमासे गवा इव । सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ॥६६॥ वीरं गांडीव-धन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम् । इति ब्रुवञ्छान्तनवो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ६७ ॥ शक्तिं भीष्मः स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत । तामस्य विशिखैश्छित्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत् ॥ ६८ ॥ पश्यतां

का नाश करते हुए ये गदा परिघकी समान दृढ़ प्रहार वाले बाण शिखण्डीके नहीं होसकते, क्रोधमें भरे तथा विषकी समान अति उग्र मालूम होनेवाले सर्पसमान मेरे मर्मस्थानोंमें घुसनेवाले ये बाण शिखण्डीके नहीं हैं किन्तु ये सब बाण अर्जुनके ही हैं॥६१-६५॥ जैसे माघके महीनेमें ठण्ड बछड़ोंके शरीरोंको व्यथा देती है तैसे ही यह बाण मेरे मर्मस्थानोंको चीरे डालते हैं, विजय पानेवाले कपिध्वज अर्जुनके सिवाय और किन्हीं राजाओं के बाण मुझे इतनी पीड़ा नहीं देसकते (१) ॥ ६६ ॥ ऐसा कहकर मानो पाण्डवोंको जलाडालना चाहते हों ऐसे भीष्मने एक शक्ति हाथमें उठाकर अर्जुनके ऊपर फेंकी, हे भारत ! सब कौरव वीरोंके सामने अर्जुनने पितामहकी उस शक्तिके तीन टुकड़े

---

(१) यहां मूलमें "मावसा सेगवा इव" ऐसा पाठ है, उसका अर्थ यह होता है, कि—मावसा कहिये खच्चरी वा बीछनको चीरकर जैसे सेगवा कहिये उसके बच्चे बाहरको निकलजाते हैं उसके समान, ऐसा अर्थ नीलकण्ठने किया है। परंतु दूसरी प्रतोंमें " माघमासे गवा इव" ऐसा पाठ है, इसका अर्थ ऐसा होता है, कि-जैसे माघमासमें गौके शरीरको सरदीसे अकड़जाने के कारण व्यथा होती है उसकी समान। नीलकण्ठके पहिले अर्थसे यह दूसरा अर्थ अधिक उचित समझकर लिखा है।

कुरुवीराणां सर्वेषां तव भारत । चर्माथादत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६९ ॥ खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा । तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमत्सायकैस्तदा ॥ ७० ॥ रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् । ततो युधिष्ठिरो राजा स्वान्यनीकान्यचोदयत् ७१ अभिद्रवत गांगेयं मा वोऽस्तु भयमण्वपि । अथ ते तोमरैः प्रासैर्बाणौघैश्च समन्ततः ॥ ७२ ॥ पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नाराचैश्च तथा शितैः । वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः ॥ ७३ ॥ सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत्तदा । तथैव तव पुत्राश्च नेदुर्भीष्मजयैषिणः ॥ ७४ ॥ तमेकमभ्यरक्षन्त सिंहनादांश्च चक्रिरे । तत्रासीत्तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ७५ ॥ दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे । आसीद्गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधेरिव ७६ सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् । असौम्यरूपा पृथिवी

करडाले, यह देख मरनेका अथवा जीतनेका निश्चय करके पितामहने सोनेसे मँढीहुई ढाल तथा तलवार हाथमें ली. वह रथमेंसे उतरते ही थे, इतनेमें ही अर्जुनने बाण मारकर उनकी ढालके सौ टुकड़े करडाले, यह देखकर सबको बड़ा अचरज हुआ, उसी समय युधिष्ठिरने अपनी सेनाओंको आज्ञा दी कि—॥६७–७१ ॥ तुम सब पितामहके ऊपर चढ़जाओ, जरा भी भय न करो, यह सुनते ही वह सब योधा हाथोंमें तोमर, प्रास, बाण, पट्टिश, तलवारें नाराच और बछड़ेके दांतोंके आकारके भाले आदि लेकर अकेले भीष्मजीके ऊपर चढ़गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उस समय पाण्डवोंके सेनादलमें घोर सिंहनाद होने लगा और पितामहका विजय चाहने वाले तुम्हारे पुत्र भी बड़ा गर्जनायें करने लगे, जब अकेले भीष्मजीकी रक्षा करते हुए तुम्हारे योधा सिंहनाद कररहे थे, उस समय तुम्हारी सेनाका पाण्डवोंकी सेनाके साथ भयानक युद्ध होरहा था ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हे नरेन्द्र ! इस दशवें दिनके संग्राममें भीष्म और अर्जुन आमने सामने आगये, तब जरा देर तक गङ्गाके संगमके स्थानपर पड़नेवाले समुद्रके भँवरोंके समान परस्परको

शोणिताक्ताभवत्तदा ॥ ७७ ॥ समञ्च विषमञ्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन । योधानामयुतं हत्वा तस्मिन् स दशमेऽहनि ॥ ७८ ॥ अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु । ततः सेनामुखे तस्मिन् स्थितः पार्थो धनुर्धरः ॥ ७९ ॥ मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम् । वयं श्वेतहयाद्भीताः कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ ८० ॥ पीड्यमानाः शितैः शस्त्रैः प्राद्रवाम रणे तदा । सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ८१ ॥ अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वशातयः। शाल्वाश्रयास्त्रिगर्त्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥८२॥ सर्व एते महात्मानः शरार्त्ता व्रणपीडिताः । संग्रामे नाजहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना ॥ ८३ ॥ ततस्तमेकं बहवः परिवार्य्य समन्ततः । परिकाल्य कुरून् सर्वान् शरवर्षैरवाकिरन् ८४

मारने वाले योधाओंके बड़े पैंतरे दिखायी देनेलगे, रुधिरसे रँगी हुई रणभूमि अत्यन्त ही अमङ्गलरूप दीखने लगी ॥ ७६ ॥७७॥ इस समय इकसार और ऊँचे नीचे स्थान भी ठीक२ नहीं दीखते थे, यद्यपि पितामह हरएक मर्मस्थानमें विंधगये थे तो भी इस दशवें दिनके संग्राममें उन्होंने दश हजार योधाओंको मारडाला था, वह शान्तभावसे संग्राममें खड़ेहुए थे उस समय हाथमें धनुष लेकर सेनाके आगेके भागमें खड़ेहुए धनञ्जयने कौरवोंकी सेनाके मध्यभागमें भागड़ डालदी, सेनाको तित्तर बित्तर करडाला, सफेद घोड़ोंवाले कुन्तीनन्दन अर्जुनसे भयभीत हुए हम भी तेज शस्त्रोंसे घायल होनेके कारण रणमेंसे भाग निकले, सौवीर, कितव, पूर्ववाले, पश्चिमवासी, पहाड़ी, मालवीय,अभीषाह, शूरसेन,शिबी, बसाती, शाल्व, शक, त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ, और केकय आदि महात्मा बाणोंके घावोंमें पीड़ा होनेके कारणसे भीष्मजीको छोड़कर चलेगये थे, तो भी पितामह धनञ्जयके साथ लड़ते ही रहे ॥ ७८—८३ ॥ उस समय अनेकों योधा आकर अकेले घूमते हुए भीष्मजीको तथा सब कौरवोंको घेरकर उनके ऊपर

निपातयत गृह्णीत युध्यध्वमवकृन्तत । इत्यासीत् तुमुलः शब्दो राजन् भीष्मरथं प्रति ॥ ८५ ॥ निहत्य समरे राजन् शतशोथ सहस्रशः । न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥ ८६ ॥ एवंभूतस्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः । शिताग्रैः फाल्गुनेनाजौ प्राक्शिराः प्रापतद्रथात् ॥ ८७ ॥ किञ्चिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम् । हाहेति दिवि देवानां पार्थिवानाञ्च भारत ॥८८॥ पतमाने रथाद्भीष्मे बभूव सुमहास्वनः । सम्पतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम् ॥ ८९ ॥ सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन् हृदयानि नः । स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥ ९० ॥ इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम् । धरणीं न स पस्पर्श शरसंघैः समावृतः ॥ ९१ ॥ शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम् । रथात्

बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८४ ॥ हे राजन् ! गिराओ, पकड़ो लड़ो, काटडालो, ऐसा घोरशब्द पितामहके रथके आस पास सुनाई आने लगा ॥ ८५ ॥ हे भारत ! भीष्मने सैंकड़ों और हजारों योधाओंका संहार किया था, इसकारण उनके शरीरपर दो अंगुल भर खाल भी बाणोंसे बिना घायल हुई नहीं दीखती थी ॥ ८६ ॥ इसप्रकार धनञ्जयने तीखे बाणोंसे तुम्हारे पितामह के सर्वांग को वेधडाला था, इस कारण सूर्यका अस्त होनेके समय तुम्हारे पुत्रोंके सामने ही वह पूर्व दिशाको मुख किये हुए रथमेंसे नीचे गिरपड़े ॥ ८७ ॥ हे भारत! जिस समय भीष्म जी रथमेंसे गिरे उस समय आकाशमें देवताओंमें और भूमिपर राजओंमें हाहाकार मचगया और बड़ा कोलाहल होउठा, महात्मा पितामहको रणमें गिरते देखकर हमारे सब योधाओंकी छातियें बैठगयीं, इन्द्रके वज्रके गिरनेकी समान सब धनुषधारियोंके ध्वजा रूप भीष्मजी भूमिको शब्दायमान करते हुए नीचे गिरपड़े, परन्तु उनके शरीरमें चारों ओर बाण घुसरहे थे इस कारण उनका शरीर पृथिवीसे न छूकर अधर ही रहा ॥ ८८—९१ ॥ पुरु

मपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत् ॥ ९२ ॥ अभ्यवर्षञ्च पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी । पतन् स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम् ॥ ९३ ॥ संज्ञां चोपालभद्वीरः कालं सञ्चिन्त्य भारत । अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः ॥ ९४ ॥ कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः । कालं कर्ता नरव्याघ्रः सम्प्राप्ते दक्षिणायने ॥ ९५ ॥ स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् । धारयामास च प्राणान् पतितोऽपि महीतले ॥ ९६ ॥ उत्तरायणमन्विच्छन् भीष्मः कुरुपितामहः । तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ॥ ९७ ॥ महर्षीन् हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै । ततः सम्पातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः ॥ ९८ ॥ आजग्मुः सहिता द्रष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम् । यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥ ९९ ॥ ते तु भीष्मं समासाद्य ऋषयो हंसरू-

---

पोंमें श्रेष्ठ महाधनुषधारी भीष्मजी जब रथमेंसे गिरकर शरशय्या पर सोगये, उस समय उनके शरीरमें दिव्यभावने प्रवेश किया ९२ मेघ बरसने लगा, पृथिवी कांप उठी, गिरतेर भीष्मजीको ध्यान आया, कि—इस समय सूर्य दक्षिणायनमें हैं, इसकारण यह मरणका अशुभ काल है, ऐसा विचारकर वह भूमिपर गिरजाने पर भी अपने प्राणोंको धारण किये रहे उस समय अन्तरिक्षमें दिव्य वाणियें सुनायी आने लगीं, कि—सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहने दक्षिणायनमें प्राण क्यों छाड़े ? ऐसी दिव्य वाणीको सुनकर पृथिवी पर पड़ेहुए पितामहने उत्तर दिया, कि मैं जीवित हूं ॥ ९३—९६ ॥ कौरवोंके पितामह अपने प्राण छोड़नेके लिये उत्तरायणकी बाट देखरहे हैं, उनके ऐसे विचारको जान कर हिमालयकी पुत्री गङ्गाने हंसरूपधारी महर्षियोंको उनके सामने जानेकी आज्ञा दी, तब मानसरोवरमें रहनेवाले हंसोंका रूप धारण किये हुए वह महर्षि तयार होकर जहां कुरुपितामह बाण शय्यापर सोरहे थे तहां उनका दर्शन करनेके लिये आये ॥ ९७—९९ ॥ हंसोंका रूप धारण करनेवाले उन ऋषियोंने

दिशः। अपश्यञ्छरतल्पस्थं भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥ १०० ॥ ते तं दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्। गांगेयं भरतश्रेष्ठं दक्षिणेन च भास्करम् ॥ १०१ ॥ इतरेतरमामन्त्र्य प्राहुस्तत्र मनीषिणः। भीष्मः कथं महात्मा सन् संस्थाता दक्षिणायने ॥ १०२ ॥ इत्युक्त्वा प्रस्थिता हंसा दक्षिणामभितो दिशम्। सम्प्रेक्ष्य वै महाबुद्धिश्चिन्तयित्वा च भारत ॥ १०३ ॥ तानब्रवी-च्छान्तनवो नाहं गन्ता कथञ्चन। दक्षिणावर्त्त आदित्ये एतन्मे मनसि स्थितम् ॥ १०४ ॥ गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद्यन्मे पुरातनम्। उदगायन आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १०५ ॥ धारयिष्याम्यहं प्राणानुत्तरायणकांक्षया। ऐश्वर्य्यभूतः प्राणाना-मुत्सर्गो हि यतो मम ॥ १०६ ॥ तस्मात् प्राणान् धारयिष्ये मुमूर्षुरुदगायने। यश्च दत्तो वरो मह्यं पित्रा तेन महात्मना ॥१०७॥

बाणशय्यापर सोतेहुए कुरुकुलदीपक महात्मा भीष्मजीके पास आकर उनका दर्शन किया ॥१००॥ उन भरतवंशमें श्रेष्ठ महात्मा गङ्गानन्दनका दर्शन करके उनकी प्रदक्षिणा करी तथा सूर्य दक्षिणमें थे इसकारण वह ऋषि आपसमें कहने लगे कि—जब भीष्मपितामह महात्मा हैं तो जबतक सूर्य दक्षिणायनमें है तब तक वह अपने प्राणोंको क्यों छोड़ेंगे ?॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वह हंसरूपधारी ऋषि ऐसा कहकर दक्षिणकी ओरको मुख कियेहुए खड़े थे यह देखकर हे भारत ! महाबुद्धिमान् शन्तनुनन्दन भीष्म जी अपने मनमें विचार कर उनसे कहने लगे, कि—जबतक सूर्य दक्षिणायनमें है तबतक मैं किसी प्रकार भी प्राणोंको नहीं छोड़ूंगा यह मैंने निश्चय करलिया है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ हे हंसों ! मैं तुम से सत्य कहता हूं, कि—जब उत्तरायणका सूर्य होगा तब ही मैं अपने सनातन स्थानको जाऊँगा ॥ १०५ ॥ उत्तरायणकी बाट देखता हुआ मैं अपने प्राणोंको धारण किये रहूंगा, क्योंकि-अपने प्राणोंको त्यागना मेरे हाथमें है, इसलिये उत्तरायणमें मृत्यु

छन्दतो मृत्युरित्येवं पितुस्तस्य प्रसादतः वरस्तथा । धारयिष्ये ततः प्राणा-नुत्सर्गे नियते सति ॥ १०८ ॥ इत्युक्त्वा तांस्तदा हंसान् स शेते शरतल्पगः । एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि १०९ पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे । तस्मिन् हते महासत्त्वे भरतानां पितामहे ॥ ११० ॥ न किञ्चित् प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ । सम्मोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत्तदा ॥ १११ ॥ कृप-दुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः । विषादाच्च चिरं कालम-तिष्ठन् विगतेन्द्रियाः ॥ ११२ ॥ दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः । ऊरुग्राहगृहीताश्च नाभ्यधावन्त पाण्डवान् ॥ ११३ ॥ अवध्ये शान्तनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि । अभावः सहसा

पानेकी इच्छासे मैं अपने प्राणोंको अपने वशमें रक्खूँगा मेरे पिताने मुझे इच्छानुसार मरणका वरदान दिया है, यद्यपि इस वरदानके अनुसार मेरा प्राणान्त होना नियत होगया है ॥ १०६—१०८ ॥ तो भी मैं प्राणोंको धारण किये रहूंगा, हंसोंसे ऐसा कहकर पितामह अपनी शर-शय्यापर सोरहे, जब कौरवोंके शिखररूप परमतेजस्वी भीष्मपिता-मह रणमें गिरगये ॥ १०९ ॥ उस समय पाण्डव और सृञ्जय इन भरतोंके महाबली पितामहके मरणसे अति आनन्दमें भरकर सिंहकी समान गरजने लगे ॥ ११० ॥ हे भरतसत्तम ! उस समय क्या करना चाहिये यह कुछ भी तुम्हारे पुत्रोंकी समझमें नहीं आया, उन सब कौरवोंको उस समय बड़ाभारी संमोहसा हो गया ॥ १११ ॥ कृपाचार्य दुर्योधन आदि गहरे २ सांस भरकर रोनेलगे, और विषादके मारे कितनी ही देरतक मूर्छितसे हुए बैठेरहे ॥ ११२ ॥ हे महाराज ! वह बड़े विचारमें पड़गये और युद्ध करनेमें किसीकी भी रुचि नहीं रही, मानों किसीने उनके पैरोंको पकड़रक्खा हो इसप्रकार वह पांडवोंके सामने को जाही नहीं सके ॥ ११३ ॥ जिनको संग्राममें कोई मार ही नहीं सकता

राजन् कुरूणामभव तोषतः ॥ ११४ ॥ हतप्रवीरास्तु वयं निकृत्ताश्च शितैः शरैः । कर्तव्यं नाभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ ११५ ॥ पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा परत्र च परां गतिम् । सर्वे दध्मुर्महाशंखान् शूराः परिघबाहवः ॥ ११६ ॥ सोमकाश्च सपञ्चालाः प्राहृष्यन्त जनेश्वर । ततस्तूर्यसहस्रेषु नदत्सु स महाबलः ॥ ११७ ॥ आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननाद च । सेनयोरुभयोश्चापि गांगेये निहते विभौ ॥ ११८ ॥ संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समन्ततः । प्राक्रोशन् प्राद्रवंश्चान्ये जग्मुर्मोहं तथाऽपरे ॥११९ ॥ क्षत्रं चान्येऽभ्यनिन्दन्त भीष्मं चान्येऽभ्यपूजयन् । ऋषयः पितरश्चैव प्रशशंसुर्महाव्रतम् ॥ १२० ॥ भरतानाञ्च

था ऐसे महातेजस्वी भीष्मजी गिरपड़े, उस समय एकसाथ सबको यही भान हुआ कि—अब कौरव राजाओं का नाश ही होगा ॥ ११४ ॥ हमारे बड़े२ वीर मारेगये, और हम तेज बाणों से घायल होगये, इसप्रकार धनञ्जयसे हारकर हमारी समझमें यह नहीं आया, कि–हमें अब क्या करना चाहिये ॥ ११५ ॥ पाण्डवोंने विजय पाकर,यह समझा कि-मानो हमने परलोकमें श्रेष्ठ स्थान पालिया, और फिर वह हाथोंमें परिघ लिये हुए, बड़े २ शब्दवाले शंखोंको बजानेलगे ॥ ११६ ॥ हे राजन् ! इसीप्रकार सोमक और पाञ्चाल भी बड़े आनन्दको प्राप्त हुए,हजारों तुरही बजनेलगीं और महाबली भीमसेन खंभ ठोक कर सिंहकी समान दहाड़नेलगा. जिस समय महा व्यापक गङ्गानन्दन गिरगये, उस समय दोनों सेनाओंके योधा शस्त्रोंको अलग रखकर बड़े विचार में पड़गये,कितने ही डकरार कर रोनेलगे और कितने ही मूर्छित होकर गिरपड़े॥११७-११९॥कितने ही क्षत्रियधर्मकी निन्दा करने लगे. कितने ही पितामहकी प्रशंसा करनेलगे तथा ऋषि और पितर भी महाव्रतधारी भीष्मजीकी प्रशंसा करनेलगे॥१२०॥ और

ये पूर्वे ते चैनं प्रशशंसिरे । महोपनिषदश्चैव योगमास्थाय वीर्य्य-वान् । जपन् शान्तनवो धीमान् कालाकांक्षी स्थितोऽभवत् १२१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मपतने एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

धृतराष्ट्र उवाच । कथमासंस्तदा योधा हीना भीष्मेण सञ्जय । बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ १ ॥ तदैव निहतान् मन्ये कुरूनन्यांश्च पाण्डवैः। न प्राहरद्यदा भीष्मो घृणित्वाद्द्रुपदात्मजम् ॥ २ ॥ ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत् प्रभविष्यति । अद्याहं पितरं श्रुत्वा निहतं स्म सुदुर्मतिः ॥ ३ ॥ अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय । श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्य्यते ॥४॥ यदन्यनिहतेनाजौ भीष्मेण जयमिच्छता । चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत ॥५॥ पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे । न हतो

भरतोंके पूर्वपुरुष भीष्मपितामहका गुणगान करनेलगे तथा उपनिषदोंमें वर्णन किये हुए योगका आश्रय लेकर शन्तनुनन्दन वीर्यवान् भीष्मजी अपने कालकी बाट देखते हुए ध्यानमें निमग्न हो गये ॥ १२१ ॥१२२॥ एक सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ११६

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हाय बलवान् ! देवतुल्य और पिताके लिये ब्रह्मचर्य पालनेवाले भीष्मजीके विना मेरे योधाओंकी क्या गति हुई? ॥१॥ मेरी समझमें तो जबसे भीष्मजीने द्रुपदके पुत्रके ऊपर तिरस्कारके साथ न प्रहार करनेका निश्चय किया उसी समय पाण्डवोंने कौरवोंको मार डाला ॥ २ ॥ हाय ! आजमें अतिदुष्ट बुद्धि अपने पिताके मरणका समाचार सुनारहा हूं, इससे अधिक दुःखकी बात मेरे लिये और क्या होगी ॥३॥ हे सञ्जय ! वास्तवमें मेरा हृदय वज्रका बना हुआ है जो यह भीष्मको मारागया सुन कर भी सौ टुकड़े नहीं होता है॥४॥ हे सञ्जय ! जिस समय पिता मह संग्राममें मरे थे उस समय विजय चाहने वाले कुरुसिंहने जो कुछ किया हो वह भी मुझे सुना ॥५॥ भीष्मजीके मरणकी वारर

जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैरयं पुरा ॥ ६ ॥ स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना । सञ्जय उवाच । सायाह्ने निहतो भूमौ धार्त्तराष्ट्रान् विषादयन् ॥ ७ ॥ पाञ्चालानां ददौ हर्षं भीष्मः कुरुपितामहः । स शेते शरतल्पस्थो मेदिनीमस्पृशंस्तदा ॥ ८ ॥ भीष्मे रथात् प्रपतिते प्रच्युते धरणीतले । हाहेति तुमुलः शब्दो भूतानां समपद्यत ॥९॥ सीमावृक्षे निपतिते कुरूणां समितिञ्जये । सेनयोरुभयो राजन् क्षत्रियान् भयमाविशत् ॥ १० ॥ भीष्मं शान्तनवं दृष्ट्वा विशीर्णकवचध्वजम् । कुरवः पर्य्यवर्त्तन्त पाण्डवाश्च विशाम्पते ॥११॥ खं तमःसंवृतमभूदासीद्भानुर्गतप्रभः । ररास पृथिवी चैव भीष्मे शान्तनवे हते ॥ १२॥ अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ह्ययं ब्रह्म-

---

पाइ आने पर यह दुःख मुझसे सहा नहीं जाता, देखो इनको, पहिले दिव्य अस्त्रवाले परशुराम भी नहीं मारसके थे उनको पांचाल राज द्रुपदके पुत्र शिखण्डीने मारडाला। संजय कहता है, कि—सायंकालके समय पितामहको रणमें पड़ेहुए देखकर तुम्हारे पुत्रों को बड़ा दुःख हुआ और पाञ्चाल बड़े प्रसन्न हुए, भीष्म उस समय पृथिवीसे अधर शरशय्या पर लोरहे थे ॥ ६ ॥ ८ ॥ जब भीष्मजी रथ परसे लुढ़क कर पृथिवी पर गिरपड़े, उस समय सब प्राणी घोर हाहाकार कर उठे ॥९॥ जिस समय रणविजयी पितामह दोनों सेनाओंके मध्यमें सीमाके वृक्षकी समान पड़े थे, हे राजन! उस समय दोनों सेनाओंके क्षत्रिय भयभीत होगये क्योंकि—पितामह जीवित रहते तो कदाचित् सन्धि करादेते तो यह संहार होता होता रुकजाता, परन्तु अब सन्धिकी कुछ भी आशा नहीं रही, यह सोचकर भयभीत होगये ॥ १० ॥ जिस समय कवचके फटने पर और ध्वजाके कटने पर पितामह भूमिपर गिरगये उस समय पाण्डव और कौरव उनके आस पास घिर गये ॥११॥ आकाश में अन्धेरा छारहा था, सूर्य अस्त होगया था और शान्तनुनन्दन भीष्मजीके मारे जानेपर भूमि भी शब्द करने लगी थी ॥ १२ ॥

विदां वरः । इत्यभाषन्त भूतानि शयानं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ अयं पितरमाज्ञाय कामार्तं शान्तनुं पुरा । ऊर्ध्वरेतसमात्मानं चकार पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥ इति स्म शरतल्पस्थं भरतानां महत्तमम् । ऋषयस्त्वभ्यभाषन्त सहिताः सिद्धचारणैः ॥ १५ ॥ हते शान्तनवे भीष्मे भरतानां पितामहे । न किञ्चित् प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव हि मारिष ॥ १६ ॥ विषण्णवदनाश्चासन् हतश्रीकाश्च भारत । अतिष्ठन् व्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ॥ १७ ॥ पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः । सर्वे दध्मुर्महाशंखान् हेमजालपरिष्कृतान् ॥ १८ ॥ हर्षात्तूर्यसहस्रेषु वाद्यमानेषु चानघ । अपश्याम महाराज भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥ विक्रीडमानं कौन्तेयं हर्षेण महता युतम् । निहत्य तरसा शत्रुं महाबलसमन्वितम् २०

जब मरनेके लिये पितामह अपनी इच्छानुसार मृत्यु चाहते हुए शरशय्या पर सोरहे थे, उस समय प्राणिमात्र कहने लगे, यह वेद वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं तथा यह पुरुषसत्तम ब्रह्मविद्याके जाननेवालोंमें भी श्रेष्ठ हैं ॥१३ ॥ इन्होंने पहिले अपने पिता शन्तनुको कामसे पीड़ित जानकर अपने आजन्मब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा की थी इसकारण यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १४ ॥ भरतवंशियोंके पितामह शरशय्यापर सोये हुए देवव्रतकी सिद्ध चारणोंके सहित ऋषियों ने इसप्रकार सराहना की थी ॥ १५ ॥ हे महाराज ! भरतोंके पितामह शन्तनुनन्दनके मारेजाने पर तुम्हारे पुत्रोंको अब आगेको क्या करें, यह कुछ भी नहीं सूझता था ॥ १६ ॥ हे भारत ! सबके मुख उतरगये, तेज नष्ट होगया तथा लज्जाके मारे मुख नीचेको किये खड़े थे ॥१७॥ और पाण्डव विजय पाकर संग्राम के मुहानेपर खड़े थे तथा सब जने सोनेके जालसे शोभायमान बड़े२ शङ्खोंको बजारहे थे ॥१८॥ हे अनघ ! हर्षके साथ उनकी हजारों तुरही बजरही थीं और हे महाराज ! उस समय हमने महा बल भीमको देखा तो ॥ १९ ॥ वह बड़े आनन्दमें भरकर बड़े वेगके साथ महाबल शत्रुको मारकर नाचता हुआ खेल कर रहा

सम्मोहश्चापि तुमुलः कुरूणामभवत्ततः । कर्णदुर्य्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥ तथा निपातिते भीष्मे कौरवाणां पितामहे । हाहाभूतमभूत् सर्वं निर्मर्य्यादमवर्त्तत ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव । उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ २३ ॥ भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः स्वेनानीकेन दंशितः । प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यं स विषादयन् ॥२४॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कुरवः पर्य्यवारयन् । दुःशासनं महाराज किमयं वक्ष्यतीति च ॥२५॥ ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः । द्रोणस्तदा प्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ ॥ २६ ॥ स संज्ञामुपलभ्याशु भारद्वाजः प्रतापवान् । निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष ॥ २७ ॥ विनिवृत्तान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवापि स्वसैनिकान् । दूतैः

था ॥ २० ॥ उस समय कौरवोंमें बड़ा भारी शोक छारहा था, कर्ण और दुर्योधन बार२ गहरे सांस लेरहे थे ॥ २१ ॥ कौरवों के पितामह भीष्मके इसप्रकार मारेजाने पर सब जगह बड़ा हाहा कार मचगया और सेनामें कुछ मर्यादा नहीं रही॥२२॥ पितामह को रणभूमिमें गिरते हुए देखते ही तुम्हारा पुत्र दुशासन बड़ी ही शीघ्रताके साथ द्रोणाचार्यके सेनादलमेंको दौड़ गया ॥२३॥ इस सेनासहित कवचधारी वीरको इसके भाई दुर्योधनने पितामह की रक्षा करनेके लिये उनके पास खड़ा करदिया था, वह पुरुष सिंह इसप्रकार अपनी सेनाके चित्तको दुखित करता हुआ चला गया ॥ २४ ॥ उसको आते हुए देख यह न जाने क्या कहेगा, ऐसा विचार कर सब कौरव इसको चारों ओरसे घेर कर खड़े हो गये ॥ २५ ॥ तब तो इस कौरवने द्रोणाचार्यसे कहा, कि–भीष्म पितामह मारेगये, हे पुरुषर्षभ ! इस समाचारको सुनकर द्रोणाचार्य तहां ही मूर्छित होगये ॥२६॥ परन्तु प्रतापी द्रोण शीघ्र ही सचेत होगए और हे महाराज ! उन्होंने अपनी सेनाओंको लड़ाई बन्द करनेकी आज्ञा देदी ॥ २७ ॥ कौरवोंको युद्ध बन्द करके

शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तात् पर्य्यवारयन् ॥ २८ ॥ निवृत्तेषु च सैन्येषु पारंपर्व्वेण सर्वशः। निर्मुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुनराधिपाः ॥ २९ ॥ व्युपरम्य ततो युद्धाद्योधाः शतसहस्रशः। उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवामराः ॥ ३० ॥ ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम्। अभिवाद्यावतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३१ ॥ अथ पाण्डून् कुरूंश्चैव प्रणिपत्याग्रतः स्थितान्। अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३२ ॥ स्वागतं वो महाभागाः स्वागतं वो महारथाः। तुष्यामि दर्शनाच्चाहं युष्माकममरोपमाः ॥ ३३ ॥ अभिनन्द्याथ तानेवं शिरसा लम्बताब्रवीत्। शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥ ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च। उपधानानि मुख्यानि नैच्छत्तानि

लौटते हुए देखकर पाण्डवोंने भी अपने दौड़ते हुए घुड़सवार दूतोंको भेजकर चारों ओर लड़ाई बन्द कराादी ॥२८॥ इसप्रकार क्रमरसे सब सेनाओंके युद्ध बन्द कर देने पर सब राजे अपने२ कवच उतार कर भीष्मजीके पास आपहुंचे ॥ २९ ॥ उस समय सैंकड़ों और सहस्रों योधा युद्धको बन्द करके पितामहके पास आकर ऐसे खड़े होगये मानो प्रजापतिके पास देवगण खड़े हैं ॥ ३० ॥ वह कौरवों सहित पाण्डव, शरशय्या पर सोयेहुए भरतवंशमें श्रेष्ठ उन भीष्मजीके पास आ उनको प्रणाम करके खड़े होगये ॥ ३१ ॥ प्रणाम करके सामने खड़े हुए उन पांडव और कौरवोंसे उन धर्मात्मा शान्तनुनन्दन भीष्मजीने उस समय कहा, कि—॥ ३२ ॥ हे महाभागो ! आप बहुत अच्छे आये, हे महारथियो ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं, हे देवसमान वीरों ! मैं तुम्हारा दर्शन पाकर बड़ा प्रसन्न होरहा हूं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार उनको अभिनन्दन देकर जिनका शिर लटक रहा था ऐसे पितामहने कहा, कि—मेरा शिर पीछेको बहुत लटक रहा है इसके लिये तकिया दो॥३४॥ यह सुनते ही राजे बारीक और कोमल

पितामहः ॥ ३५ ॥ अथाब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहस्निन्निव तान् नृपान् । नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥ ३६ ॥ ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम् । धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥ ३७ ॥ धनञ्जय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते । दीयतामुपधानं वै यद्युक्तमिह मन्यसे ॥ ३८ ॥ सञ्जय उवाच । समारोप्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम् । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर । प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह ॥ ४० ॥ तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते । उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपदधत्स्व मे ॥ ४१ ॥ शयनस्यानुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे । त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ४२ ॥ क्षत्रधर्मस्य वेत्ता च

तकिये लाये,परन्तु वह उत्तम २ तकिये तुम्हारे पितामहको अच्छे नहीं लगे ॥३५ ॥ उस समय वह पुरुषसिंह उन राजाओंकी नासमझीपर हँसते हुएसे कहने लगे, कि-हे राजाओं ! ये तुम्हारे तकिये वीरशय्याके योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥ फिर सकल लोकों में महारथी आजानुबाहु नरश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन धनञ्जयकी ओरको देखकर कहने लगे, कि-॥ ३७ ॥ हे बेटा महाबाहु धनञ्जय ! मेरा शिर लटक रहा है, इसके नीचे जो उचित हो वह तकिया लगादे ॥ ३८ ॥ सञ्जय कहता है, कि-यह बात सुनते ही अर्जुन ने पितामहको प्रणाम करके अपना महाचाप चढ़ा लिया और नेत्रों में आंसू भरकर यह बात बोला, कि-- ॥ ३९ ॥ हे कौरवोंमें श्रेष्ठ सकल धनुषधारियोंमें उत्तम पितामह ! आज्ञा दीजिये, हे दुर्धर्ष ! मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूं कहिये क्या करूँ ? ४० शान्तनुनन्दनने उससे कहा, कि-हे बेटा ! मेरा शिर लटक रहा है, हे कुरुकुलदीपक फाल्गुन ! मेरे तकिया लगा दे ॥ ४१ ॥ हे वीर ! इस शरशय्याके योग्य तकिया मुझे शीघ्र ही दे, हे अर्जुन! तू सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ और समर्थ है ॥ ४२ ॥ तू क्षत्रियके

बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः । फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत् ॥४३॥ गृह्यानुमन्त्र्य गाण्डीवं शरान् सन्नतपर्वणः । अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम् ॥ ४४ ॥ त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः । अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना ॥४५॥ अतुष्यद्भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित् । उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद्धनञ्जयम् ॥ ४६ ॥ प्राह सर्वान् समुद्वीक्ष्य भरतान् भारतं प्रति । कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् शयनस्यानुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया । यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा ॥ ४८ ॥ एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता । स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाजौ शरतल्पगतेन वै ॥४९॥ एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः । राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थित-

---

धर्मको जानता है और तू बुद्धि बल तथा गुणोंसे युक्त है, इस पर धनञ्जयने बहुत अच्छा कहकर उनकी इच्छानुसार तकिया देनेका निश्चय किया ॥ ४३ ॥ और मन्त्रके साथ गाण्डीव धनुषको चढ़ाकर भरतोंके महारथी महात्माकी बात मानकर उस पर नमे हुए पर्ववाले तीक्ष्ण बाण चढ़ाये ॥ ४४ ॥ और बड़े वेगसे जानेवाले तीन तीखे बाणोंसे उनके मस्तकको वेधकर ऊंचा कर दिया, सव्यसाची अर्जुन, मेरे अभिप्रायको समझगया यह देखकर धर्मात्मा धर्मके तत्त्व अर्थको जानने वाले भरतश्रेष्ठ पितामह सन्तुष्ट हुए और ऐसा तकिया देनेके कारण अर्जुनकी सराहना की।४५। ॥४६॥ और फिर सब भरतवंशियोंकी ओरको देखकर मित्रोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाले योधाओंमें श्रेष्ठ भरतवंशी अर्जुनसे कहा, कि-४७ हे पाण्डव! तूने मुझे शय्याके योग्य तकिया दिया है यदि तू इसके प्रतिकूल करता तो मैं क्रोध करके तुझे शाप दे देता ॥ ४८ ॥ हे महाबाहो ! धर्म पर दृढ़ रहने वाले क्षत्रिय को संग्राममें इसी प्रकार शरशय्या पर सोना चाहिये ॥ ४९ ॥ अर्जुनसे ऐसा कहकर फिर उन सब राजे,

तान् ॥ ५० ॥ पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाभिसन्धितम् । शिष्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्त्तनं रवेः ॥ ५१ ॥ ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः । दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ॥ ५२ ॥ नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा । विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान् सुहृदः सुप्रियानिव ॥ ५३ ॥ परिखाः खन्यतामत्र ममावसदने नृपाः । उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः ॥ ५४ ॥ उपारमध्वं संग्रामाद् वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः सञ्जय उवाच । उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ॥५५॥ सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधुशिक्षिताः । तान् दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ॥५६॥ धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा

राजपुत्र और पासमें खड़े हुए पाण्डवोंसे यह बात कही, कि—५० इस पाण्डवने जो मेरे शिरके नीचे तकिया लगाया है, इसको देखो, अब जब तक सूर्य लौटकर उत्तरायणमें आवेगा तबतक मैं इस शय्या पर ही सोऊँगा ५१। उस समय जो राजे मेरे पास आवेंगे वह प्राणान्तके समय मुझे देख सकेंगे, इस समय शीघ्र गतिवाले सात घोड़ा से जुते रथमें बैठे हुए भगवान् भास्कर वैश्रवणके अधिकारवाली दिशाकी ओरको जायंगे उस समय जैसे प्रिय अपने प्यारे मित्रोंको त्याग जाते हैं तैसे ही मैं अपने प्राणोंको त्यागजाऊँगा ॥ ५२—५३ ॥ तुम यहां मेरे आस पासकी जगहमें खाई खोद दो, हे राजाओं ! सैंकड़ों बाणोंसे बिंधे हुए अपने शरीरसे मैं सूर्यकी उपासना करूंगा ॥ ५४ ॥ हे राजाओं ! अब तुम वैरको त्यागकर इस संग्रामको बन्द कर दो, सञ्जय कहनेलगा, कि— इतनेमें ही दुर्योधनके बुलवानेसे चतुर गुरुओंके पास अच्छे प्रकार सीखेहुए कुशल वैद्य भीष्मजीके बाण निकाल कर औषध करनेके लिये तयार होकर आये, उनको देखकर गङ्गानन्दनने तुम्हारे पुत्रसे कहा, कि—॥ ५५—५६ ॥ इन वैद्योंको धन देकर सन्मान के साथ विदा करदो, इस दशाको पहुंचजाने पर यहां आयेहुए

चिकित्सकाः। एवं गते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहास्ति किं ॥५७॥ क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्। नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ॥५८॥ एभिरेव शरैश्चाहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ५८ ॥ वैद्यान् विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः। ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ॥ ५९ ॥ स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्यामिततेजसः। उपधानं ततो दत्त्वा पितुस्ते मनुजेश्वराः ॥ ६० ॥ सहिता पांडवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः। उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ॥६२॥ तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिःप्रदक्षिणम्। विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ॥ ६३ ॥ वीराः स्वशिविराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः। निवेशायाभ्युपागच्छन् सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ ६४ ॥ निविष्टान् पांडवांश्चैव प्रीयमाणान् महा-

इन वैद्योंका मैं क्या करूंगा ? ॥ ५७ ॥ मैं तो क्षत्रियके धर्ममें मर्यादा पाई हुई परमगतिको पहुंचगया हूं. हे राजाओं ! शरशय्यापर पौढ़ कर मैं वैद्योंसे चिकित्सा करवाऊँ यह मेरा धर्म नहीं है ॥५८॥ हे राजाओं ! इन बाणोंके साथ ही तुम मेरा दाह कर देना उनकी इस बातको सुनकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने वैद्योंको, उनकी योग्यताके अनुसार पूजा करके विदा कर दिया, अनेकों देशोंके राजे महातेजस्वी पितामहकी ऐसी धर्मनिष्ठाको देखकर बड़ा अचरज करने लगे, तुम्हारे पिताको इस प्रकारका तकिया देकर वह राजे ॥ ५९॥ ६१ ॥ महारथी पाण्डव और कौरव इकट्ठे होकर शरशय्या पर सोये हुए भीष्मजीके समीपमेंको आये और तीन वार उनकी परिक्रमा कर प्रणाम करके आस पास रखवालोंको नियत कर परम व्याकुलताके साथ ध्यान करते हुए सायंकालके समय अपने २ तंबुओंको चलेगये, उस समय उनके शरीर रुधिर से सनेहुए थे ॥ ६२ ॥ ६४ ॥ महारथी पाण्डव अपनी छावनीमें बड़े प्रसन्न हुए वैठे थे, भीष्मजीके मरणका बड़ा हर्ष मना रहे थे

रथान् । भीष्मस्य पतने हृष्टाब्रुपागम्य महाबलः ॥ ६५ ॥ उवाच माधवः काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । दिष्ट्या जयसि कौरव्य दिष्ट्या भीष्मो निपातितः ॥ ६६ ॥ अवध्यो मानुषैरेव सत्यसन्धो महारथः । अथवा दैवतैः सार्धं सर्वशास्त्रस्य पारगः ॥ ६७ ॥ त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो घोरेण चक्षुषा । एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ ६८ ॥ तव प्रसादाद्विजयः क्रोधात्तव पराजयः । त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ॥ ६९ ॥ अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव । रक्षिता समरे नित्यं नित्यञ्चापि हिते रतः ॥ ७० ॥ सर्वथा त्वां समासाद्य नाश्चर्यमिति मे मतिः । एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः । त्वय्येवैतद्युक्तरूपं वचनं

इतनेमें ही महाबली कृष्ण आकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे कहने लगे, कि-हे कुरुवंशी ! धन्य भाग हैं जो आज भीष्म मारे गये और तुम विजयी हुए ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वास्तवमें इस महारथी सत्यप्रतिज्ञ भीष्मको कोई मनुष्य नहीं मार सकता था, इतना ही नहीं किन्तु इस सकल शास्त्रोंके पारगामी भीष्मको देवता भी नहीं जीत सकते थे ॥ ६७॥ परन्तु आप सरीखे दृष्टिमात्रसे नष्ट करदेने वाले शत्रुके पास पहुंचकर यह आपकी नेत्राग्निसे जलकर भस्म होगये हैं, (यह दैवकी लीला है) जनार्दन कृष्णकी इस बातको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर उनसे कहने लगे, कि—॥ ६८ ॥ हे कृष्ण ! जिसके ऊपर आप प्रसन्न होते हैं उसकी विजय होती है और जिसके ऊपर आपका क्रोध होता है, उसकी पराजय होती है, हम भक्तोंको अभय देनेवाले और हमारी रक्षा करने वाले आप ही हैं ॥ ६९ ॥ हे केशव ! आप संग्राममें जिनकी नित्य रक्षा करते हैं और सदा जिनका हित करनेके लिये तयार रहते हैं, उनकी विजय होनेमें कुछ अचरज नहीं है ॥ ७० ॥ और जो सर्वथा आपका ही सहारा लिये रहते हैं ऐसे हमारी यदि विजय हो तो मेरे समझमें कोई अचरजकी बात नहीं, युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्ण

पार्थिवोत्तम ॥ ७१ ॥ * ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

सञ्जय उवाच। व्युष्टायान्तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन् पितामहम् ॥ १ ॥ तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तमम्। अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ २॥ कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः। अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्रशः ॥ ३ ॥ स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः। समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ४ तूर्याणि शतसंख्यानि तथैव नटनर्त्तकाः। शिल्पिनश्च तथाजग्मुः कुरुवृद्धं पितामहम् ॥५॥ उपारम्य च युद्धेभ्यः सन्नाहान् विप्रमुच्य ते। आयुधानि च निक्षिप्य सहिता कुरुपाण्डवाः॥ ६ ॥ अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिन्दमम्। अन्योऽन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथा-

---

मुसकुराते हुए कहने लगे, हे राजसत्तम! ऐसा कहना आपको ही सोहता है ॥ ७१ ॥ एकसौ बीसवां अध्याय समाप्त ॥१२०॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज! जब रात बीतगई, सवेरा हो गया तब पाण्डव, धृतराष्ट्रपुत्र तथा दूसरे राजे भी पितामहका दर्शन करनेको आये॥ १ ॥ और हे कुरुसत्तम! क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ शरशय्या पर सोयेहुए भीष्मजीको प्रणाम करके सब क्षत्रिय उनके पास खड़े होगये ॥ २ ॥ और सहस्रों कन्याओंने चन्दन, अबीर, खीलें तथा पुष्पमालायें लिये हुए वहां आकर उन शन्तनुनन्दनके ऊपर चढ़ाया ॥ ३ ॥ जैसे भूतमात्र सूर्यका दर्शन करनेको आते हैं तैसे ही स्त्री, बूढ़े, बालक तथा और भी अनेकों दर्शक शन्तनु-नन्दनका दर्शन करनेको आये ॥ ४ ॥ इसी प्रकार सैंकड़ों ढोल वाले नट, नर्त्तक और शिल्पी आदि भी कुरुवंशके वृद्ध पितामह का दर्शन करनेको गये ॥ ५ ॥ युद्ध करना बन्द करके पाण्डव तथा कौरव अपने बख्तर उतार हथियारोंको अलग रखकर शत्रु-संहारी देवव्रतके आस पास इकट्ठे होकर क्रमसे अवस्थाके अनु-

पूर्वं यथावयः ॥ ७ ॥ सा पार्थवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता । शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवादित्यमण्डलम् ॥ ८ ॥ विबभौ च नृपाणां सा गङ्गासुतमुपासताम् । देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥ ९ ॥ भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ । अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १० ॥ शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसन्तापमूर्च्छितः । पानीयमिति संप्रेक्ष्य राज्ञस्तान् प्रत्यभाषत ॥ ११ ॥ ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्रुः समन्ततः । भक्ष्यानुच्चावचान् राजन् वारिकुम्भांश्च शीतलान् ॥ १२ ॥ उपानीतन्तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत् । नाद्यातीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः ॥ १३ ॥ अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम् । प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥ १४ ॥

सार आपसमें बड़े प्रेमके साथ बैठगये ॥ ६ ॥ ७ ॥ जैसे आकाश में सूर्यमण्डल शोभा पाता है, तैसे ही सैंकड़ों राजाओंसे भरीहुई संग्राममें इकट्ठी हुई यह भरतवंशियोंकी सभा भीष्मजीसे शोभायमान हुई ॥ ८ ॥ हे महाराज ! देवपति इन्द्रकी उपासना करने वाले देवताओंकी समान गङ्गानन्दन पितामहकी उपासना करने वाले राजाओंकी यह सभा सुशोभित हुई ॥९॥ हे भरतसत्तम ! बाणोंके घावोंमें आग पड़ने पर भी भीष्मजी, सांपकी समान सांस लेकर उस वेदनाको बड़े धीरजके साथ सह रहे थे ॥१०॥ जिनका शरीर बाणोंके घावोंसे झुलस रहा था और जिनको शस्त्रोंके लगनेसे मूर्छा आ आ जाती थी वह भीष्मजी इन राजाओंकी ओरको देखकर कहने लगे, कि-जल लाओ ॥ ११ ॥ हे राजन्! तब तो चारोंओरसे वह क्षत्रिय दौड़ पड़े और नानाप्रकारके भोजन और शीतल जलके घड़े लेकर उनके पास आये ॥१२॥ अपने समीप लाये हुए उस जलको देख कर शान्तनुनन्दन कहने लगे, कि—हे राजाओं ! इन पहिले भोगे हुए मानुषी भोगोंको अब मैं नहीं भोग सकता ॥१३॥ अब मैं इस मनुष्यलोकसे बाहर होकर शरशय्या पर सोरहा हूं मैं तो अब सूर्य और चन्द्रमाके

एवमुक्त्वा शान्तनवो निन्दन् वाक्येन पार्थिवान् । अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत ॥ १५ ॥ अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम् । अतिष्ठत् प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ १६ ॥ तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याग्रतः स्थितम् । अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयम् ॥ १७ ॥ दह्यतीदं शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः । मर्माणि परिदूयन्ते मुखञ्च परिशुष्यति १८ वेदनार्त्तशरीरस्य प्रयच्छापो ममार्जुन । त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि ॥ १९ ॥ अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् । अधिज्यं बलवत् कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ २० ॥ तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः । वित्रेसुः सर्वभूतानि सर्वे श्रुत्वा च पार्थिवाः ॥ २१ ॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन

मैं धनञ्जयकी बाट देखरहा हूं ॥ १४ ॥ हे भारत ! ऐसा कह कर उन राजाओंकी मूर्खताकी निन्दा करते हुए भीष्मजी कहने लगे कि—मैं अर्जुनको देखना चाहता हूं ॥ १५ ॥ इतना कहते ही महाबाहु अर्जुन समीपमें आगया और पितामहको प्रणाम कर के हाथ जोड़े हुए नम्रभावसे खड़ा हुआ कहने लगा, कि—मुझे क्या काम करनेकी आज्ञा है ? ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उस पाण्डु-नन्दन धनञ्जयको प्रणाम करके अपने सामने खड़ा हुआ देखकर धर्मात्मा भीष्मने प्रफुल्लित मनसे कहा, कि— ॥ १७ ॥ तेरे बाणोंसे छिदा हुआ मेरा यह शरीर जलासा जाता है, मर्म-स्थानोंमें बड़ी पीड़ा होती है और मेरा मुख सूखाजाता है ॥ १८ ॥ तथा मेरा शरीर वेदनासे बड़ा ही व्याकुल होरहा है, इसलिये हे अर्जुन ! मुझे जल दे, तू शक्तिमान् धनुषधारी है, तू ही मुझे ठीकर जल पिलासकता है ॥ १९ ॥ वीर्यवान् अर्जुन 'बहुत अच्छा, कहकर अपने रथपर चढ़गया और बड़े जोरसे गाण्डीव धनुषको चढ़ाकर उसके रोदेपर टङ्कार दी ॥ २० ॥ बिजलीके तड़कनेके समान उसकी प्रत्यञ्चाके टङ्कारशब्दको सुनकर सब प्राणी तथा सब राजे भी डर गये ॥ २१ ॥ तदनन्तर रथियोंमें

रथिनां वरः । शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥२२॥ संधाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः । पार्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥२३॥ अविध्यत् पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे । उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा ॥ २४ ॥ शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च । अतर्पयत्ततः पार्थः शीतया जलधारया ॥ २५ ॥ भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमम् । कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः ॥ २६ ॥ विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः । तत् कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषविक्रमम् ॥ २७ ॥ संप्रावेपन्त कुरवो गावः शीतार्दिता इव । विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन् सर्वतो नृपाः ॥ २८ ॥ शंखदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् । तृप्तः शान्तनवश्चापि

श्रेष्ठ अर्जुनने सकल शस्त्रधारियोंके मान्य और भरतवंशमें श्रेष्ठ शरशय्यापर सोयेहुए पितामहकी रथपर चढ़े२ ही प्रदक्षिणा की ॥ २२ ॥ फिर एक दमकते हुए बाणको निकाला और मंत्र पढ़कर सबके सामने उस पर्जन्यास्त्रको धनुष पर चढ़ाया ॥ २३ ॥ और भीष्मजीके दाहिनी ओर सामनेकी भूमिमें उसका प्रहार किया, उस बाणके लगते ही पृथिवीमेंसे निर्मल, पवित्र, शीतल और अमृतकी समान दिव्य गन्ध वाली जलकी शुभ धारा निकलने लगी, उस शीतल जलकी धारासे अर्जुनने दिव्य कर्म और पराक्रम वाले कुरुसत्तम भीष्मजीको तृप्त किया, इसप्रकार इन्द्रकी समान विशेष पराक्रम दिखानेवाले धनञ्जयके इस कामसे वहां विद्यमान सब राजे बड़े ही अचरजमें होगये, और बीभत्सुके उस अमानुषी पराक्रमको देखकर सब कौरव शीतसे दुखित हुई गौओंकी समान थर २ कांपने लगे और सब राजे विस्मयमें होकर अपने दुपट्टे हवामें हिलाने लगे ॥२४॥२८॥ चारों ओर शङ्ख और दुन्दुभियोंका घोर शब्द होने लगा और हे राजन् ! भीष्मजी भी तृप्त होकर सब वीर राजाओंके सामने सन्मान करते हुए धनञ्जय

वीभत्सुमिदमब्रवीत् ।२९।सर्वपार्थिववीराणां सन्निधौ पूजयन्निव ।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ।। ३० ।। कथितो नारदे-
नासि पूर्वर्षिरमितद्युते । वासुदेवसहायस्त्वं महत् कर्म करिष्यसि
।। ३१ ।। यन्नोत्सहति देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम् । विदुस्त्वां
निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः ।।३२।। धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां
प्रवरो नृषु ।। ३३ ।। मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः ।
सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।। ३४ ।। आदित्य-
स्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान् वरः । जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः
श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम् ।। ३५ ।। न वै श्रुतं धार्त्तराष्ट्रेण वाक्यं
सम्बोध्यमानं विदुरेण चैव । द्रोणेन रामेण जनार्दनेन मुहुर्मुहुः
सञ्जयेनापि चोक्तम् ।। ३६ ।। परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो दुर्यो-
धनो न च तच्छ्रद्दधाति । स शेष्यते वै निहतश्चिराय शास्त्रातिगो

से कहने लगे, कि—हे महाबाहो ! तुझमें ऐसा पराक्रम होना कोई अचरजकी बात नहीं है ।।२९।।३०।। क्योंकि-हे महातेजस्वी! नारदजीने तेरा पुरातन ऋषिरूपसे वर्णन किया है, श्रीकृष्णकी सहायतासे तू बड़े २ पराक्रम करेगा ।। ३१ ।। निसंदेह देवताओं सहित इंद्र भी तेरी समान पराक्रम नहीं कर सकता, हे पार्थ ! जो महात्मा दैवी मर्मको जानते हैं वह तुझको सब क्षत्रियोंका संहार-कर्त्ता जानते हैं ।।३२।। तू भूमण्डल पर सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ इकलौता धनुषधारी है ।।३३।। जैसे जगत्में सब प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ है, जैसे पक्षियोंमें गरुड़ श्रेष्ठ है, नदियोंमें जैसे सागर श्रेष्ठ है जैसे चौपायोंमें गौ श्रेष्ठ है जैसे तेजस्वियोंमें सूर्य श्रेष्ठ है जैसे पहाड़ोंमें हिमालय श्रेष्ठ है और जातियोंमें जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ है तैसे ही सब धनुषधारियोंमें तू श्रेष्ठ है ।। ३५ ।। मैंने, विदुरने, द्रोणा-चार्यने, परशुरामने, कृष्णने और सञ्जयने भी बारर समझाया परन्तु धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने किसीकी एक नहीं सुनी ३६ दुर्यो-धनकी बुद्धि उलटी होरही है, मानो उसको कुछ होश नहीं है वस

कौरवेन्द्रो दुर्यो- ... भीमबलाभिभूतः ॥ ३७ ॥ एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो दुर्यो-
धनो दीनमना बभूव। तमब्रवीच्छान्तनवोऽभिवीक्ष्य निबोध राजन्
भव वीतमन्युः ॥ ३८ ॥ दृष्टं दुर्योधनैतत्ते यथा पार्थेन धीमता।
जलस्य धारा जनिता शीतस्यामृतगन्धिनः ॥ ३९ ॥ एतस्य
कर्ता लोकेऽस्मिन् नान्यः कश्चन विद्यते। आग्नेयं वारुणं सौम्यं
वायव्यमथ वैष्णवम् ॥ ४० ॥ ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं
प्रजापतेः। धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्विवस्वतमथापि वा ॥ ४१ ॥ सर्व-
स्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः। कृष्णो वा देवकीपुत्रो
नान्यो वेदेह कश्चन ॥ ४२ ॥ अशक्याः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं
कथञ्चन। अमानुषाणि कर्माणि तस्यैतानि महात्मनः ॥ ४३ ॥
तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाहवशोभिना। कृतिना समरे राजन्

को किसीकी बात पर श्रद्धा ही नहीं है और वह शास्त्रके प्रतिकूल
काम करता है, इस कारण अब यह भीमके बलसे तिरस्कार
पाता हुआ मारा जाकर चिरकालके लिये रणभूमिमें सोवेगा
॥ ३७ ॥ कौरववंशका राजा दुर्योधन इस बातको सुनकर सुस्त
होगया, उस समय उसकी ओरको देखकर भीष्मजीने कहा, कि-
हे राजन्! अब भी समझ जा और अपने क्रोधको शान्त कर
॥ ३८ ॥ हे दुर्योधन! जिस प्रकार बुद्धिमान् धनञ्जयने अमृतकी
समान सुगन्धवाली शीतल जलकी धारा निकाली, यह तूने देखा?
॥ ३९ ॥ इस लोकमें ऐसा पराक्रम करने वाला दूसरा और कोई
है ही नहीं, आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र,
पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, विधाताका, प्रजापतिका, त्वष्टाका,
सूर्यका तथा विवस्वान् आदिका जो २ अस्त्र कहलाता है, उसको
इस सकल मनुष्योंमें अकेला धनञ्जय ही जानता है
अथवा देवकीनन्दन श्रीकृष्ण भी जानते हैं और तीसरा तो
कोई जानता ही नहीं ॥ ४०-४१ ॥ हे तात! देवता और दानव
इकट्ठे होकर लड़ें तो भी धनञ्जयको नहीं जीत सकते, इस
महात्माके ऐसे अमानुषी कर्म हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये हे राजन्!

सन्धिर्भवतु मा चिरम् ॥ ४४ ॥ यावत् कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम । तावत् पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥४५॥ यावन्न ते चमूः सर्वाः शरैः सन्नतपर्वभिः । नाशयत्यर्जुनस्तावत् संधिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४६ ॥ यावत्तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः । नृपाश्च बहवो राजंस्तावत् सन्धिः प्रयुज्यतां ॥ ४७ ॥ न निर्दहति ते यावत् क्रोधदीप्तेक्षणश्चमूम् । युधिष्ठिरो रणे तावत् सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥४८॥ नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पांडवः । यावच्चमूं महाराज नाशयन्ति न सर्वशः ।४९। तावत्ते पाण्डवैर्वीरैः सौहार्दं मम रोचते । युद्धं मदंतमेवास्तु तात संशाम्य पाण्डवैः ॥ ५० ॥ एतत्तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि

संग्राममें महाबल दिखाने वाले तथा रणको शोभा देनेवाले इस चतुरके साथ तू शीघ्र ही सन्धि करले, विलम्ब न कर ॥ ४४ ॥ हे कुरुसत्तम ! जब तक यह महाबाहु कृष्ण कोप नहीं करते हैं उससे पहिले ही हे तात ! तुझे धनञ्जयके साथ सन्धि कर लेना चाहिये ॥ ४५ ॥ जब तक अर्जुन दृढ़ गांठों वाले बाणोंसे तेरे सब सेनादलोंका संहार नहीं करता है, उससे पहले ही हे तात ! तुझे सन्धि करलेनी चाहिये ॥४६॥ जबतक यह तेरे भाई मरतेर बचे हुए हैं और ये बहुतसे राजे जब तक जीवित हैं, हे तात ! उससे पहिले ही तुझे सन्धि कर लेनी चाहिये ॥४७॥ हे बेटा ! रणमें क्रोधसे लाल २ नेत्र किये हुए यह युधिष्ठिर जब तक तेरी सेनाको भस्म नहीं करते हैं, उससें पहिले ही तुझे सन्धि कर लेनी चाहिये ।४८। हे महाराज! नकुल, सहदेव, भीमसेन, धनञ्जय जब तक तेरी सेनाका सर्वनाश नहीं करते हैं।४९। उससे पहिले ही वीर पाण्डवोंके साथ मेरी समझमें तुझे मित्रता कर लेनी चाहिये, बस मेरे प्राणान्तक ही युद्ध रहने दे और अब हे तात ! तू पाण्डवोंके साथ मेल करले ॥ ५० ॥ हे निर्दोष राजन् ! मैंने तुझ से जो कुछ कहा है इसको प्रसन्नतासे स्वीकार कर, मेरी समझ

मयानघ। एतत्क्षेममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च ॥५१॥ त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः पर्य्याप्तमेतद्यत् कृतं फाल्गुनेन। भीष्मस्यांतादस्तु वः सौहृदञ्च जीवन्तु शेषाः साधु राजन् प्रसीद ॥ ५२ ॥ राज्यस्यार्धं दीयतां पांडवानामिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु। मा मित्रध्रुक् पार्थिवानां जघन्यः पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेंद्र॥ ५३ ॥ ममावसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां संगच्छंतां पार्थिवाः प्रीतिमंतः। पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन् ॥५४॥ न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्धया। तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्थ सर्वे सत्यामेतां भारतीमीरयामि ॥ ५५ ॥ एतद्वाक्यं सौहृदादापगेयो मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा। तूष्णीमासीच्छल्यसन्तप्तमर्मा योज्या-

---

में ऐसा करनेमें ही तेरा और तेरे कुलका कल्याण है ॥ ५१ ॥ अपने कोपको शान्त करके पांडवोंके साथ विरोध करना बन्द कर दे, धनञ्जयने जो पराक्रम दिखाया है, यही तुझे चेत होनेके लिये बहुत है, मेरे प्राणान्तमात्रसे ही अपने विरोधको शान्त करो और सन्धि करके इन बचे हुए राजाओंको जीवित रहने दो हे राजन्! तू प्रसन्नताके साथ मेरी बात मान ले, इसमें ही भला है ॥ ५२ ॥ पांडवोंको आधा राज्य देदे, धर्मराज अपने इन्द्रप्रस्थ में जायँ, हे कौरवेन्द्र! मित्रद्रोही तथा राजाओंमें नीच न बन, ऐसा करनेसे तेरी पापकारिणी अपकीर्त्ति होगी ॥ ५३ ॥ मेरे प्राणान्तके साथ सब प्रजाओंमें शान्ति होने दो, सब राजे प्रेमके साथ आपसमें मिलकर रहैं, हे राजन्! पिता पुत्रके साथ, भानजा मामाके साथ और भाई भाई के साथ मिलकर रहैं ॥ ५४ ॥ यदि तू अज्ञानमें ही डूबा रहेगा और समयके अनुकूल मेरी इस बातको नहीं सुनेगा तो अपनी दुर्बुद्धिके कारण तुझे पछतावा पड़ेगा और इस मूर्खतामें ही सबका नाश होजायगा, यह सब बात मैं तुझसे सत्य ही कह रहा हूं ॥ ५५ ॥ गङ्गानन्दन सब राजाओंके बीचमें भरतवंशी दुर्योधनको यह बात सुहृद्भाव से सुनाकर चुप होगये, उस समय घावोंके कारण उनके मर्मस्थानों

त्मानं वेदनां सन्नियम्य ॥ ५६ ॥ सञ्जय उवाच । धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम् । नारोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम् ॥ ५७
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः १२१

सञ्जय उवाच । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान् पुनः । तूष्णीं भूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने ॥ १ ॥ श्रुत्वा तु निहतं भीष्मं राधेयः पुरुषर्षभः । ईषदागतसन्त्रासस्त्वरयोपजगाम ह ॥२॥ स ददर्श महात्मानं शरतल्पगतं तदा । जन्मशय्यागतं वीरं कार्त्तिकेयमिव प्रभुम् ॥ ३ ॥ निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः । भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाद्युतिः ॥४॥ राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ नित्यमक्षिगतस्तव । द्वेष्योऽहं तव सर्वत्र इति चैनमुवाच ह ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वा कुरुवृद्धो हि बलात् संवृत-

में बड़ी पीड़ा होरही थी तो भी उन्होंने अपना मन परमात्मामें लगाकर उस वेदनाको बन्द कर दिया ॥ ५६ ॥ सञ्जय कहता है कि-जैसे मरनेवाले मनुष्यके कण्ठसे नीचेको औषध नहीं उतरती है,-तैसे ही धर्मके सहित हितके वचन सुनकर दुर्योधनको अच्छे नहीं लगे ॥५७॥ एक सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त १२१

संजय कहता है, कि-हे महाराज ! शन्तनुनन्दन भीष्मके मौन होजाने पर वह सब राजे फिर अपने २ तंबुओंमें चलेगये ॥१॥ उधर भीष्मजीको घायल होकर रणभूमिमें गिरा हुआ सुनते ही राधाका पुत्र पुरुषश्रेष्ठ कर्ण जराएक भयभीत हो दौड़ा भीष्मजीके पास पहुँचा ॥ २ ॥ उस समय उसने जन्मकी शरशय्यापर विराजमान प्रभु स्वामिकार्त्तिकेयकी समान महात्मा पितामहको शरय्या पर पौढ़े हुए देखा॥३॥ नेत्र मूंदकर ध्यानमें पड़े हुए भीष्मजीके पास पहुँचते ही कर्णके नेत्रोंमें आंसू भर आये और वह महाकान्तिमान् चरण छूकर गद्गद कण्ठसे कहनेलगा, कि-हे महाबाहो! हे भीष्म ! हे भीष्म ! हे कुरुश्रेष्ठ ! जिसको तुम सदा द्वेषभरी दृष्टिसे देखते थे, वह आपकी आंखोंके सामने फिरनेवाला मैं राधाका पुत्र हूं ॥ ४ ॥ ५ ॥ यह सुनते ही अपने

लोचनः । शनैरुद्वीक्ष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ रहितं धिष्ण्यमालोक्य समुत्सार्य च रक्षिणः। पितेव पुत्रं गांगेयः परिरभ्यैकपाणिना ॥ ७ ॥ एह्येहि मे विप्रतीप स्पर्धसे त्वं मया सह । यदि मां नाभिगच्छेथा न ते श्रेयो ध्रुवं भवेत् ॥ ८ ॥ कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता । सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मम ॥ ९ ॥ कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः । न च द्वेषोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १० ॥ तेजोवधनिमित्तन्तु परुषं त्वाहमब्रुवं । अकस्मात् पाण्डवान् सर्वानवाक्षिपसि सुव्रत ॥ ११ ॥ येनासि बहुशो राज्ञा चोदितः सूतनंदन । जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी ॥ १२ ॥ नीचाश्रया-

बुढ़ापेके कारण ढीले पलकोंसे ढके हुए नेत्रोंको उघाड़ कर धीरे से देखा, फिर उस स्थानको सूना पाकर सब रक्षा करनेवालोंको भी तहांसे हटादिया और जैसे पिता पुत्रको हृदयसे लगाता है तैसे ही गङ्गानन्दन एक हाथसे कर्णको आलिङ्गन करके बड़े प्रेम के साथ यह बात कहनेलगे, कि-॥ ६ ॥ ७ ॥ हे मेरे प्रतिस्पर्धी! यहां आ, यहां आ, तूने मेरे साथ अनेकों वार डाह किया है,यदि तू आज मेरे पास नहीं आता तो तेरा कल्याण नहीं होता॥८॥ तू कुन्तीका पुत्र है, राधाका पुत्र नहीं है, तेरा पिता अधिरथ सारथी नहीं है, हे महाबाहो ! मैंने नारदजीसे सुना है, कि-तू सूर्यका पुत्र है ॥ ९ ॥ तथा कृष्णद्वैपायनने भी मुझसे यही बात कही थी, इसमें जरा सन्देह नहीं है, हे तात ! हे तात ! मेरा तेरे ऊपर जरा भी द्वेष नहीं है, यह मैं तुझसे सत्य ही कहता हूं ॥ १० ॥ हे बेटा ! तू निष्कारण ही सदा पांडवोंके साथ द्वेष करता था, इसकारण ही तेरे अनुचित मार्गमें जातेहुए पराक्रमको तोड़ देनेके लिये मैं तुझसे तीखे वचन कहा करता था ॥ ११ ॥ हे सूतनन्दन ! जिस राजानें अधिकतर तुझे उकसाया है, उसके सङ्गसे धर्मका नाश होजानेके कारण तेरी बुद्धि ऐसी होगई है ॥ १२ ॥ नीचके आश्रयसे तेरी बुद्धि गुणियोंसे द्वेष करनेवाली

मत्सरेण द्वेषिणी सुखिनामपि । तेनासि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि ॥ १३ ॥ जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि । ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम् ॥ १४ ॥ न त्वया सदृशः कश्चित् पुरुषेष्वमरोपम । कुलभेदभयाच्चाहं सदा परुषमुक्तवान् ॥ १५ ॥ इष्वस्त्रे चास्त्रसंधाने लाघवेऽस्त्रबले तथा । सदृशः फाल्गुनेनासि कृष्णेन च महात्मना ॥ १६ ॥ कर्ण काशिपुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता । कन्यार्थे कुरुराजस्य राजानो मृदिता युधि ॥ १७ ॥ तथा च बलवान् राजा जरासंधो दुरासदः । समरे समरश्लाघिन्न त्वया सदृशोऽभवत् ॥ १८ ॥ ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तेजसा च बलेन च । देवगर्भसमः संख्ये मनुष्यैरधिको युधि ॥ १९ व्यपनीतोऽद्य मन्युर्मे यस्त्वां प्रति पुरा कृतः दैवं पुरुषकारेण न

होगयी है और इस कारण ही कौरवोंकी सभामें अनेकों बार मुझे तुझसे कठोर वचन कहने पड़े थे ॥ १३ ॥ मैं अच्छे प्रकारसे जानता हूँ कि–इस भूमण्डल पर संग्राममें तेरी वीरताको शत्रु नहीं सहसकते, इसके सिवाय तेरी ब्रह्मण्यता, शूरता और दानमें बड़ीभारी उदारताको भी मैं जानता हूँ ॥ १४ ॥ हे देवतुल्य ! मनुष्योंमें कोई भी तेरी समान इन गुणोंसे युक्त नहीं है, परन्तु कुटुम्बमें भेदभाव होजानेके भयसे मैं तुझसे सदा ऐसे कठोर वचन कहा करता था ॥ १५ ॥ बाण मारनेमें, अस्त्रका प्रयोग करनेमें, अस्त्रके बलमें तथा हाथकी फुरतीमें तू धनञ्जयकी अथवा महात्मा कृष्णकी समान है ॥ १६ ॥ हे कर्ण ! काशीपुरीमें जाकर तूने अकेले ही कुरुराजको कन्या दिलवानेके लिये हजारों राजाओंको रणमें मार डाला था ॥ १७ ॥ हे युद्धमें प्रशंसा पानेवाले ! किसीके वशमें न आनेवाला बलवान् राजा जरासन्ध भी तेरे सामने आकर युद्ध करनेको समर्थ नहीं हुआ था, तू ब्राह्मणोंसे प्रेम करनेवाला तथा अपने बलके भरोसे पर लड़ने वाला है, तेज बल आदिसे देवताकी समान है और रणमें तेरा पराक्रम सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥ १९ ॥ पहिले जो मेरा कोप तेरे ऊपर था उसको अब मैंने त्याग दिया है, प्रयत्न करने पर भी दैवकी

शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २० ॥ सोदर्य्याः पांडवा वीरा भ्रातरस्तेऽरिसूदन । संगच्छ तैर्महाबाहो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ २१ ॥ मया भवतु निर्वृत्तं वैरमादित्यनंदन । पृथिव्यां सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामयाः ॥ २२ ॥ कर्ण उवाच । जानाम्येव महाबाहो सर्वमेतन्न संशयः । यथा वदसि मे भीष्म कौंतेयोऽहं न सूतजः ॥२३॥ अवकीर्णस्त्वहं कुन्त्या सूतेन च विवर्द्धितः । भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्याकर्त्तुमुत्सहे ॥ २४ ॥ वसुदेवसुतो यद्वत् पांडवाय दृढव्रतः । वसु चैव शरीरञ्च पुत्रदारं तथा यशः ॥ २५ ॥ सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिण । मा चैतद्व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव ॥ २६ ॥ कोपिताः पांडवा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम् । अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुम् ॥२७॥

गतिको कोई नहीं पलट सकता ॥ २० ॥ हे राजन् ! अब मैं तुझसे कहता हूं, कि-यदि तू मेरा प्रिय करना चाहता हो तो तेरे जो सगे भाइ पाण्डव हैं तू उनके साथ सन्धि कर ले ॥ २१ ॥ और हे सूर्यपुत्र ! मेरे मरणके साथ इस अपने वैरको तू शान्त कर दे,तथा भूमण्डलके सब राजे अबसे हिले मिले हुए निर्भयता के साथ रहैं ॥२२॥ यह सुनकर कर्णने कहा, कि-हे महाबाहो ! मैं कुन्तीका पुत्र हूं, सूतपुत्र नहीं हूं, यह जो तुमने कहा इन सब बातोंको मैं जानता हूं,परन्तु कुन्तीने मुझे त्याग दिया और सारथिने मुझे पाला है तथा मैंने दुर्योधनका लवण खाया है, उसको मैं वृथा (हराम) नहीं कर सकता ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे बड़ी भारी दक्षिणा देनेवाले भीष्म, जिसप्रकार श्रीकृष्ण पाण्डवोंके पक्षमें दृढ़ होकर रहे हैं, तैसे ही मैंने दुर्योधनके लिये तन मन धन पुत्र दारा आदिको त्याग दिया है, और हे कुरुवंशी ! रोगसे पीड़ित होकर मरना यह क्षत्रियके योग्य मृत्यु नहीं है ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ मैंने दुर्योधनका आश्रय लेकर पांडवोंको कुपित किया है,परन्तु भावी है वह अवश्य ही होगी,उसको कोई भी नहीं पलट सकता ॥ २७ ॥ पुरुषार्थसे दैवको कौन हटा सकता है? हे पिता

दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् । पृथिवीक्षयशंसीनि निमित्तानि पितामह ॥२८॥ भवद्भिरुपलब्धानि कथितानि च संसदि । पाण्डवा वासुदेवश्च विदिता मम सर्वशः ॥ २९ ॥ अजेयाः पुरुषैरन्यैरिति तांश्चोत्सहामहे । विजयिष्ये रणे पांडूनिति मे निश्चितं मनः ॥३०॥ न च शक्यमवसृष्टुं वैरमेतत् सुदारुणम् । धनञ्जयेन योत्स्येहं स्वधर्मप्रीतमानसः ॥३१॥ अनुजानीष्व मां तात युद्धाय कृतनिश्चयम् । अनुज्ञातस्त्वया वीर युध्येयमिति मे मतिः दुरुक्तं विप्रतीपं वा रभसाच्चापलात्तथा । यन्मयेह कृतं किञ्चित् तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥ भीष्म उवाच । न चेच्छक्यमवसृष्टुं वैरमेतत् सुदारुणम् । अनुजानामि कर्ण त्वां युध्यस्व स्वर्गकाम्यया ॥ ३४ ॥ निर्मन्युर्गतसंरम्भः कृतकर्मा रणे सम ह ।

मह ! पृथिवीका नाश करनेवाले जो निमित्त (अपशकुन) तुम्हें मालूम हुए थे, वह तुमने बीच सभामें सुनाये ही थे ॥ २८ ॥ यह भी मैं अच्छे प्रकारसे जानता हूं, कि-पांडवोंको और श्रीकृष्णको मनुष्य जीत ले यह कभी हो ही नहीं सकता, तो भी मैं इनके साथ लडूंगा मेरा मन साक्षी देता है, कि—मैं पांडवोंको जीत सकूंगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ पांडवोंके साथ जो वैरभाव बंध गया है, यह दारुण वैर अब छोड़नेसे छूटनेवाला नहीं है, अपने धर्म (क्षत्रियधर्म) में रहकर मैं प्रसन्न मनसे धनञ्जयके साथ युद्ध करूंगा ॥ ३१ ॥ हे तात ! मैंने विचार किया है, कि आपकी आज्ञा लेकर ही युद्ध करूंगा, इसलिये हे वीर ! आप मुझे ऐसा करनेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३२ ॥ मेरे मुखसे कुछ न कहने योग्य बात निकल गयी हो तो, शीघ्रतामें अथवा चपलतामें मुझसे कोइ विपरीत आचरण बनगया हो तो उस सबको अब आप मुझे क्षमा दीजिये ॥ ३३ ॥ भीष्मजीने कहा कि—हे कर्ण ! मैं जानता हूं कि-ऐसा गहरा वैर छोड़ से नहीं छूटसकता इस कारण मैं तुझे युद्ध करनेकी आज्ञा देता हूं स्वर्गकी इच्छा रखकर सुखसे युद्ध कर ॥ ३४ ॥ जरा भी कोप न करके मनमें

यथाशक्ति यथोत्साहं सतां वृत्तेषु वृत्तवान् ॥ ३५ ॥ अ
मनुजानामि यदिच्छसि तदाप्नुहि । क्षत्रधर्मजितांल्लोकानव
धनञ्जयात् ॥ ३६ ॥ युध्यस्व निरहङ्कारो बलवीर्यव्यपाश्र
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३७ ॥
हि कृतो यत्नः सुमहान् सुचिरं मया। न चैव शकितः क
सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥ सञ्जय उवाच । इत्युक्तवति
अभिवाद्योपमंत्र्य च । राधेयो रथमारुह्य प्रायात्तव सुतं प्र
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वेष न रख कर अपनी शक्ति तथा उत्साहके अनुसा
राजाके लिये युद्ध करके तू अपने धर्मको सफल कर ॥
हे कर्ण! मैं तुझे युद्ध करनेकी आज्ञा देता हूँ तेरी इच्छ
वह तुझे फलीभूत होगी तू धनञ्जयके द्वारा क्षत्रियधर्म
होसकनेवाले लोकको पावेगा ॥ ३६ ॥ अहङ्कार न
और अपने बल तथा वीरताका आश्रय लेकर युद्ध करना
क्षत्रियका कल्याण करने वाला धर्मयुद्धके सिवाय औ
नहीं है ॥३७॥ हे कर्ण! सन्धि करवानेके लिये मैं
उद्योग किये परन्तु उनमें मुझे सफलता नहीं मिली यह
तुझसे सत्य कहता हूं ॥ ३८ ॥ सञ्जय कहते हैं कि
नन्दन भीष्मजीने इसप्रकार कहा, तब उनकी बातकी सराहन
राधाका पुत्र कर्ण अपने रथमें बैठकर तुम्हारे पुत्रके संमुखक
आया ॥ ३९ ॥ एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १

श्रीमहाभारतका भीष्मपर्व मुरादाबाद-निवासी भारद्वाजगो
त्रस्थ पण्डित भोलानाथात्मज-ऋषिकुमार रामस्वरूपद्व
सम्पादित हिंदी भाषानुवादसहित समाप्त ॥

भीष्मपर्व समाप्त